धन्वन्तरि

वनौषधि विशेषाङ्क

[पंचम भाग]

'स' 'श' तथा 'ष' की सम्पूर्ण वनस्पतियों का सचित्र
विस्तृत वर्णन एवं विभिन्न रोगों पर हजारों
सफल-सरल प्रयोगों का उपयोगी संग्रह



प्रधान सम्पादक

स्व० आयुर्वेदसूरिः श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य
एवं पृष्ठ ३१४ से
वैद्याचार्य डा० उदयलाल जी महात्मा एच. एम. डी. एस.

सम्पादक

वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस-सी.
दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

वर्ष ४३ } फरवरी { वार्षिक मूल्य ७.५०
अंक २ } १९६९ { इस अंक का ६.५०

आवश्यक

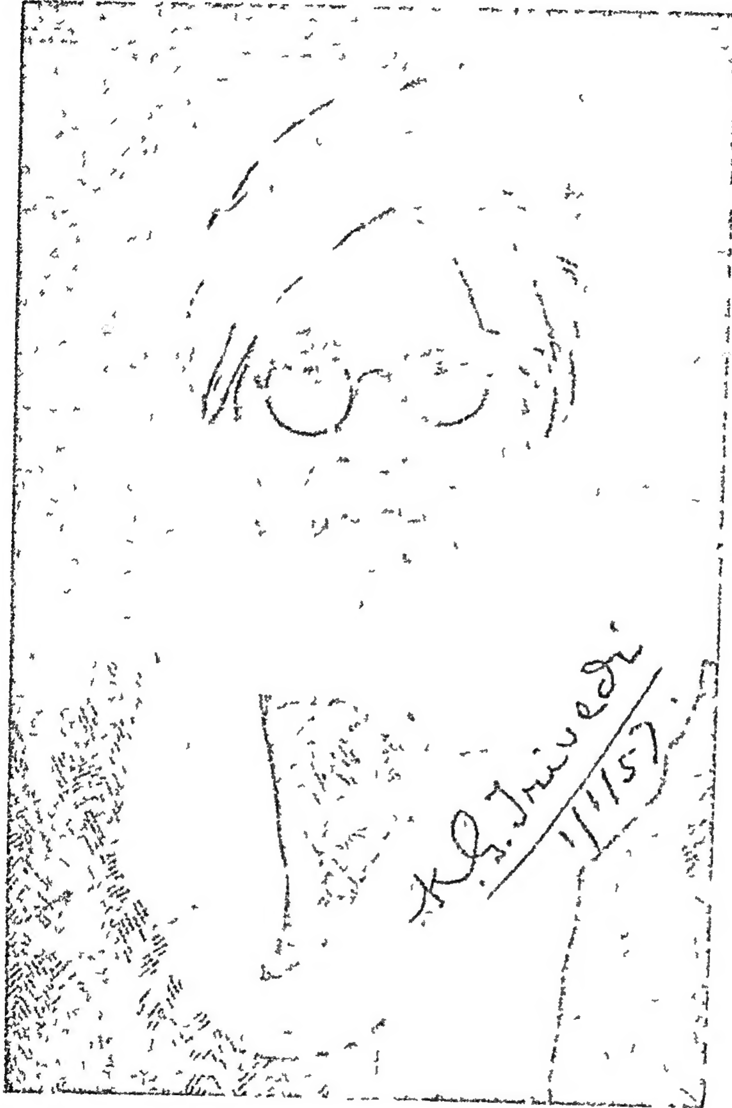
१—सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर के रैपर को सम्भाल कर रखें या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर उस विशेषांक के टाइटिल के पृष्ठ २ पर नोट करलें।

२—भविष्य में पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र में अवश्य लिख दिया करें।

३—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिले मास का अङ्क मिला है या नहीं। न मिला हो तो पोस्ट आफिस में तलाश करें और उसके उत्तर के साथ हमको लिखें। पोस्ट व्यय के लिये १० न पै का टिकट साथ भेजें।

५—धन्वतरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करें।

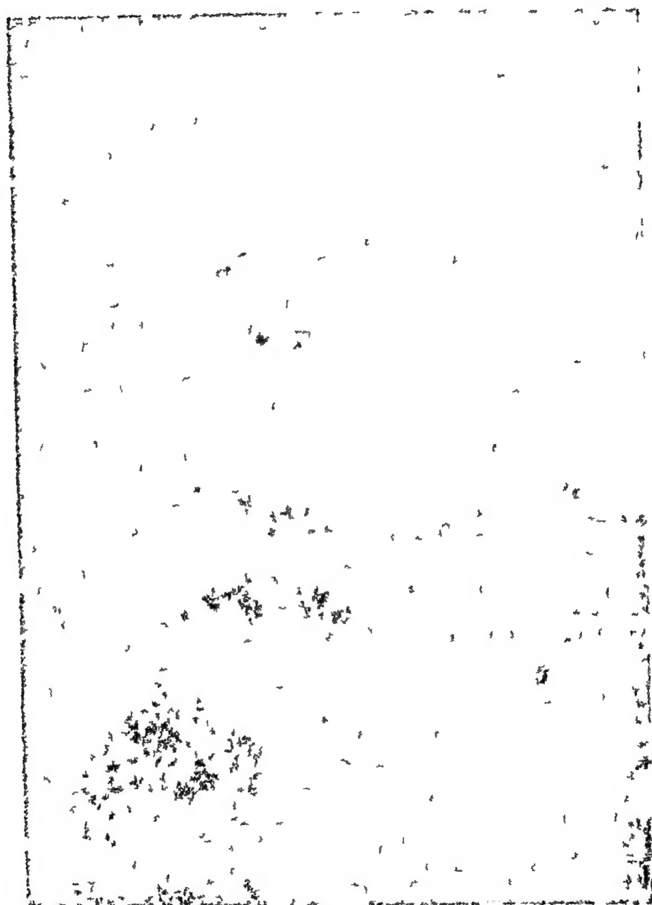
४—ध्यान रहे, यह विशेषांक फरवरी+मार्च २ माह का अङ्क है।



विशेष सम्पादक

वनौषधि-विशेषांक के चित्र प्रदर्शक

एवं पृष्ठ ३१४ से आगे के लेखक



वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा H M D S

[illegible] एवं वनौषधि अन्वेषक

श्री महावीर चिकित्सालय [illegible] (राजस्थान)

प्रकाशकीय निवेदन



धन्वन्तरि के पाठक वनौषधि–विशेषाक के चार भाग पहिले प्राप्त कर चुके है उसी का पाचवा भाग आपके हाथो समर्पित करते हुए हमको प्रसन्नता है। आशा है वनौषधि–विषयक शेष साहित्य आगामी छठे भाग मे पूरा हो सकेगा। इस साहित्य के पूर्ण होने पर यह साहित्य आयुर्वेद चिकित्सको के लिए अनमोल निधि प्रमाणित होगी यह हमारी निश्चित धारणा है।

इस बार भी पूर्ण प्रयत्न करने पर हम विशेषाक समय पर प्रकाशित करने मे असमर्थ रहे है। इस बार विशेषाक पहिले से २ हजार अधिक छापा गया है लेकिन नवीन ग्राहक जिस गति से बन रहे है उसको देखते हुए यह विशेषाक वर्ष के अन्त से पूर्व ही समाप्त होजाना निश्चय जान पड़ता है अस्तु, वैद्य समाज से निवेदन है कि जो भी इस उत्तम साहित्य को प्राप्त करना चाहे वे शीघ्र ग्राहक बनकर विशेषाक प्राप्त कर ले।

वनौषधि–विशेषाक का प्रथम भाग तीसरी वार छापा गया है, द्वितीय भाग भी दुबारा छापा जारहा है। तीसरे भाग की भी थोडी प्रतिया शेष है। इन विशेषाको की बढती हुई माग इस साहित्य की महान उपयोगिता का ज्वलन्त प्रमाण है। चारो भागो का विवरण टाइटिल के चौथे पृष्ठ पर दिया गया है। जिनके पास जो भाग न हो उनको वह भाग तुरन्त मगा लेना चाहिए।

पचम भाग का २/३ भाग स्वर्गीय श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी का लिखा हुआ है। शेष भाग को श्री महात्मा उदयलाल जी ने लिखा है। यह कैसा है इसका निर्णय पाठक करें तथा अपने विचार हमको सूचित करे। जो विद्वान आगामी भाग को अधिक विस्तृत तथा उपयोगी लिखने की क्षमता रखते हो वे तुरन्त हमसे पत्र–व्यवहार करने की कृपा करें।

वनौषधि–विशेषांक के समान ही अब हम चिकित्सा–विशेषांक कई भागों में प्रकाशित करने की योजना बना चुके हैं। इसमें सभी रोगों का क्रमश वर्णन होगा, आयुर्वेदिक सफल चिकित्सा विधि होगी तथा साथ ही एलोपैथिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा भी यथा स्थान प्रकाशित की जायगी। यह साहित्य सरल भाषा मे सभी के समझने योग्य लिखा जा रहा है। यह चिकित्सा साहित्य भी ५ या ६ विशाल विशेषांकों मे पूर्ण होगा। इन विशेषांकों से वैद्य–समाज तथा आयुर्वेद प्रेमी गृहस्थ सदैव लाभान्वित होंगे तथा वनौषधि विशेषांकों से अधिक ये विशेषांक उपयोगी प्रमाणित होंगे। इसकी विस्तृत सूचना आगामी अंक मे प्रकाशित करेंगे।

वर्ष १९६८ के लघु विशेषांक "गृह वस्तु चिकित्सांक" को पाठकों ने अत्यधिक पसंद किया है। इस वर्ष हम "सैक्स–विशेषांक' प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रहे हैं तथा हमको विश्वास है कि पाठक इस विशेषांक को भी अवश्य पसंद करेंगे। "गृह वस्तु चिकित्सांक" मे प्रकाशनार्थ लेख बहुत अधिक प्राप्त हुए थे। आधे से अधिक अप्रकाशित रखे हैं। उनमे से उत्तमोत्तम लेख आगामी अंकों मे क्रमश. प्रकाशित किए जायेंगे।

–पाठकों से निवेदन–

धन्वन्तरि के पाठकों से निवेदन है कि वे धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर हमारा उत्साह बढावें। जितने अधिक ग्राहक हो जायेंगे उतना ही अधिक उपयोगी साहित्य हम प्रकाशित करने मे सफल हो सकेंगे।

–लेखकों से–

"धन्वन्तरि" को उपयोगी बनाने मे अनुभवी आयुर्वेद विद्वानों तथा सम्माननीय लेखकों का सहयोग हमको सदैव मिलता रहा है। लेखकों के कृपापूर्ण सहयोग के आधार पर ही हम वैद्य समाज की जो सेवा बन पडती है कर रहे हैं तथा हमको विश्वास है कि विद्वान लेखकों का अधिकाधिक सहयोग भविष्य मे भी अवश्य मिलता रहेगा। अस्तु, लेखकों से भी हम प्रार्थना करते हैं कि धन्वन्तरि मे प्रकाशनार्थ अपने अनुभवपूर्ण उत्तमोत्तम लेख अवश्य भेजते रहें साथ ही धन्वन्तरि को अधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने सुझाव भी देते रहें।

निवेदक

वैद्य देवीशरण गर्ग

बनौषधि विशेषांक (पांचवे भाग) की

विषयानुक्रमणिका





बनौषधि विशेषांक (पांचवे भाग) की

चित्र-सूची

स्त्रियो के लिये गर्भाशय से सम्बन्धित विकारो मे यह विशेषत. उपयुक्त है। स्त्रियो के प्रदर व मन्द ज्वर, रक्ताधिक्यता, अग्निमाद्य आदि विकारो को दूर करती है। 'धन्वन्तरि स्त्रीसुधा' से गर्भाशय की शुद्धि होती है और गर्भाशय की विकृति नष्ट होती है। तथा मासिकधर्म की विकृति से होने वाले अग्निमाद्य, मद ज्वर इत्यादि विकारो मे भी 'धन्वन्तरि स्त्रीसुधा' से लाभ होता है।

आपकी

धन्वन्तरि

स्त्रीसुधा

वर्ष १९७० में

'धन्वन्तरि' मुफ्त मगावें

धन्वन्तरि के जो भी ग्राहक

(१) १ अप्रैल १९६९ से ३० नवम्बर १९६९ तक
(२) धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित औषधिया
(३) धन्वन्तरि कार्यालय विजयगट (अलीगढ) से
(४) १ वार मे १४१ रु० की
या २ वार मे १७१) की
या ३ वार मे २०१) की
मगा लेगे, उनको वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त दिया जायगा।

● नियमो को भलीप्रकार समझ लीजियेगा।

१—वर्ष १९६९ मे जो 'धन्वन्तरि' के ग्राहक हैं वही सज्जन उपर्युक्त विज्ञप्ति के अनुसार औषधिया मगाकर वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

२—जो सज्जन "धन्वन्तरि" के ग्राहक नही वन सके हैं और १ मार्च १९६९ के वाद औषधिया मगाकर उपर्युक्त नियम की पूर्ति करदी है तो वे ३० नवम्बर १९६९ से पहिले ही वर्ष १९६९ के लिये धन्वन्तरि ग्राहक वनकर वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।

३—इसके पृष्ठ पर एक तालिका छपी है उसे भरकर १५ दिसम्वर १९६९ से पहले पहले जव भी नियमो की पूर्ति होजाय कार्यालय को भेजना आवश्यक होगा। तालिका मिलने पर उसकी जाच करके नियमो की पूर्ति हो गई है तो आपका पता वर्ष १९७० के नि शुल्क ग्राहको मे लिखकर आपको सूचना दी जायगी।

४—१ अप्रैल १९६९ के पहले के या ३० नवम्बर १९६९ के वाद के विलो पर यह रियायत कदापि नही दी जायगी।

५—जो सज्जन इसके पृष्ठ पर छपी तालिका भर कर १५ दिसम्वर १९६९ से पहले पहले भेज देंगे उनको ही [उक्त नियमो की पूर्ति होने पर] वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त दिया जा सकेगा। अस्तु तालिका [फार्म] भरकर भेजना न भूलें।

ता लि का

जो १५ दिसम्बर १९६९ से पहिले-पहिले भेजनी होगी



श्री व्यवस्थापक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ जिला अलीगढ

आपकी विज्ञप्ति के अनुसार मैं—
१ बार मे १४१ ०० की
२ बार मे १७१ ०० की
३ बार मे २०१ ०० की

तीनो मे से जो दो अनावश्यक हो उन्हे काट दीजियेगा

औषधिया मगा चुका हू जिसका विवरण नीचे लिखा है। अपने यहा जाच करके मेरा पता वर्ष १९७० के नि शुल्क ग्राहक रजिस्टर मे लिख लें और ग्राहक सख्या की सूचना दें।

	बिल	दिनाक बिल	औषधियो का मूल्य	वी० पी० छुडाने की तारीख	विवरण
प्रथम बार					
द्वितीय बार					
तृतीय बार					

मेरा पूरा पता ....

....

....

ग्रा० सख्या ....

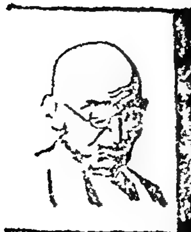
कल का संसार



आज का जागरूक मस्तिष्क ऐसे स्वाधीन राज्यों की कल्पना नहीं करता, जो आपस में ही लड़ते हों, बल्कि वह स्वाधीन राज्यों के एक ऐसे संघ की चाहत रखता है, जिसमें सभी राज्य एक दूसरे पर निर्भर हों। यह सपना पूरा होने में, हो सकता है, एक बड़ा अरसा लग जाये। मैं अपने देश के लिये ऐसी कोई बड़ी बात नहीं कहना चाहता। लेकिन, मैं इतना कहना कोई अनुचित नहीं समझता कि हमें केवल स्वतंत्रता के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता के लिये ज्यादा तैयार रहना चाहिये।



महात्मा गांधी



MAHATMA
GANDHI
BIRTH CENTENARY
OCT 2 1968 TO
FEB 22 1970
महात्मा
गांधी
जन्म शताब्दी
अक्तूबर 2 1968 से
फरवरी 22 1970

एलोपैथिक जगत में आयुर्वेद की धूम मचाने वाले

निश्चित गुणकारी मार्तण्ड, आयुर्वैदिक इंजेक्शन्स

आइये ! जरा इनके फार्मूलों का सूक्ष्म निरीक्षण करे

लोक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियो के क्रियाशील तत्वो के साथ साथ इनमे अत्याधुनिक एलोपैथिक दवाओं की मात्रा ब्रिटिश फार्माकोपिया (B. P.) और इण्डियन फार्माकोपिया (I P) के निर्देशानुसार मिलाई गई हैं। इसलिए ये स्थाई लाभप्रद और तत्काल प्रभावकारी होते हैं। २१ वर्षो से हजारो चिकित्सको द्वारा लाखो रोगियो पर परीक्षित और प्रशंसित ये परम विश्वस्त इंजेक्शन सरकारी लाइसेंस के अन्तर्गत फार्मेस्युटिकल्स इन्जीनियरो और कैमिस्टो की देख रेख में, लाखो रुपयों की लागत से बनी एयरकण्डिशन्ड लेबोरेट्री मे बनाये जाते है। **एलोपैथिक इन्जेक्शनो से ये अधिक गुणकारी होते है।**

इंजेक्शन का नाम	योग (Compositions) प्रत्येक एम्पुल मे मिश्रित दवाओं की मात्रा	लक्षित रोग निर्देश (Indications)	६ एम्पुल दाम रु०
क्लीबातक	यूहिमबीन हाइड्रोक्लोराइड आई पी 0 5 mg. स्ट्रीक्नीन हाइड्रोक्लोराइड आई पी. 0 5 mg. चीन वृक्ष 1 mg.	विश्वस्त नपुन्सकता नाशक है	६×१ ६–६०
कुर्चीनम्	एमेटीन हाइड्रोक्लोराइड 30 mg स्ट्रीक्नीन हाइड्रोक्लोराइड 1 mg. अर्कमूलत्वक 1 mg, कर्पूर 0 3 mg	पेचिश, खूनी पेचिश, अतिसार (दस्तो) मे आशुगुणकारी	६×१ ६–५०
गिरपार	एट्रोपिन सल्फेट आई पी 0 81 mg गिरिबूटी 3 68 mg, पारसीकयवानी 2 81 mg	सब प्रकार के वातिक शूलो मे चमत्कारी।	५×१ २–५०
तापीकर	स्ट्रीक्नीन हाइड्रोक्लोराइड आई पी 1. mg कटकारी 2 mg वसाका 2 mg तुलसी 2 mg	नजला, इन्फ्लूएन्जा, खासी मे श्वसन और हृदय उत्तेजक है	६×१ ३–३०
निद्रोरिन	क्लोर प्रोमाजीन बी. पी 25 mg, सर्पगन्धा 4.5 mg., ब्रह्मी 1 mg जटामासी 2 mg	मानसिक उत्तेजना, मनोविभ्रम, प्रलाप, उन्माद मे	६×१ २–५०
प्रदारारी	कैलशियम ग्लुकोनेट आई पी 50 mg प्रवाल 50 mg. दशमूल 2 mg, अशोक 2 mg	गर्भाशयशोथ, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर नाशक दिव्य दवा	६×२ ३–३०
रासोन	सोडियम सेलोसीलेट आई पी 120 mg, लहसुन 260 mg, रास्ना 5 84 mg, कुचला 1 30 mg.	गठिया, संधि शोथ, संधिशूल और आमवात नाशक है।	६×२ ३–००
सोमा	एड्रेनलीन हाइड्रोक्लोराइड आई पी 0.5 ml, भारगी 1 mg, वसाका 1 mg., कटकारी 1 mg	दमा, श्वास के दौरे को तत्काल शमन करता है।	६×१ ३–३०
स्मृतिदा	हायोसिन हाइड्रोब्रोमाइड आई. पी 0 4 mg सर्पगन्धा 1 mg, वच 1 mg, शंखपुष्पी 1 mg ब्रह्मी 1 mg	हिस्टीरिया, बच्चो के कमेडे (आक्षेप), मृगी, प्रलाप मे	६×१ ५–५०
शूलान्तक	एट्रोपिन सल्फेट आई पी 65 mg, रासोन, 2 mg, हिंगु 1 mg, स्वर्ण वल्ली 1 mg	उदरशूल, नाडीशूल, हृदयशूल, समस्त वातिक शूलो मे	६×१ २–६८
हृदयामृत	स्ट्रीक्नीन हाइड्रोक्लोराइड आई. पी 1 mg निकेथामाइड बी पी. 250 mg, अर्जुन 1 mg	सर्वाङ्गशैथ्य, हृदयस्तब्धता मे अद्वितीय हृदयोत्तेजक।	६×१ ३–३०
हिरण्य	एड्रेनलिन हाइड्रोक्लोराइड आई पी 05 mg इफेड्रिन हाइड्रोक्लोराइड आई पी 10 mg, भारङ्गी 1 mg, वसाका 1 mg. कृष्ण तुलसी 1 mg	दम्मे के दौरे को तत्काल शमन करता है।	६×१ २–५०

अपनी औषधि-पेटिका मे इन आशुगुणकारी इन्जेक्शनो को सदैव रखिये।

डा० कोकचा के हिन्दी के अनुपम ग्रन्थ रत्न

१—एलोपैथिक इंजेक्शन चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक इंजेक्शन विश्वकोष

इस विश्वकोष मे ◌आधुनिक शल्य विज्ञान, ◌डाक्टरी शालाक्य तन्त्र, ◌एलोपैथिक कौमार भृत्य, ◌प्रसूति विज्ञान (मिडवाइफरी) ◌प्रारम्भिक सहायता (फस्ट एड), ◌होम नर्सिंग (रोगी-सेवा विज्ञान), ◌कम्पाउण्डरी शिक्षा, ◌एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका, ◌एनाटोमी-फिजियालोजी (शरीर रचना विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान), ◌ड्रेसिंग कला (मरहम-पट्टी करने की सचित्र विधिया तथा ड्रेसिंग मे काम आने वाले कई दर्जन योग), ◌प्रेक्टिस आफ मेडिसन (चिकित्सा विज्ञान), ◌विष विज्ञान ◌काम विज्ञान (काम शास्त्र तथा परिवार नियोजन) आदि वैज्ञानिक विषयो का नये ढग से चार्टों और चित्रो के रूप मे सरल हिन्दी मे वर्णन किया गया है।

◌यदि आप इन्जेक्शन लगाना और बनाना सीखना चाहते है तो इसके बहुमूल्य नियमो की सहायता से आप घर बैठे इंजेक्शन लगाना और बनाना सीख जायेगे। यदि आप इंजेक्शन लगाते है तो इससे होने से आपको कई सौ नये-नये इंजेक्शनो का विशेष ज्ञान हो सकेगा। ◌इसके अलावा इसमे नये-पुराने, सब प्रकार के, कई सौ रोगो की अपटूडेट इंजेक्शनो द्वारा सफल चिकित्सा का चार्टो के रूप मे वर्णन किया गया है।

◌नाना प्रकार के इंजेक्शनो के लगाने से होने वाले विषैले विकारो को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। यह बात किसी भी पुस्तक मे नही है। डा० "कोकचा" ने हिन्दी मे पहली बार इस चीज पर खुलकर लिखा है। सात सौ के लगभग चार्टों और चित्रो से सजी, बडे आकार की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ८ रुपये, डाक खर्च अलग।

२. महर्षि वात्स्यायन के पत्र वयस्को के नाम, कामसूत्र नवनीत चार्टस, कामविज्ञान विश्वकोष

◌इस पुस्तक के तीन खण्ड है। तीनो खण्डो मे कई दर्जन अध्याय तथा भाग है।

◌ "पहले खण्ड" मे महर्षि वात्स्यायन के कई दर्जन पत्र है। इन पत्रो मे यौन विज्ञान (काम शास्त्र) की सैकड़ो गूढ समस्याओ, यौवन के रहस्यो और पेचीदा बातो को, खुलासा और खूब खोलकर समझाया गया है।

◌पुस्तक के तीसरे खण्ड मे, सृष्टि के शुरु से लेकर १९६६ तक की हुई "काम विज्ञान" की एशिया अफ्रीका और यूरोप मे हुई एक हजार से ऊपर वैज्ञानिक खोजो का पूर्ण विवरण दिया गया है। विज्ञान के प्रकाश मे पुराने कोकशास्त्र की गलत बातो को और हजारो-लाखो सालो से चली आ रही गलतफहमियो को दूर किया है।

◌"पुरुषो" और "स्त्रियो" को सताने वाले सब प्रकार के गुप्त रोगो का परिचय, निदान तथा उनका आयुर्वेदिक, यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा और एलोपैथिक का आधुनिक पेटेण्ट इलाज चार्टों के रूप मे दिया गया है।

कई सौ चार्टो तथा दुर्लभ चित्रो वाली सजिल्द पुस्तक-रत्न का मूल्य केवल ८ ०० । डाक खर्च अलग।

३. एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा विश्वकोष

◌सन् १९६६ मे दूसरी बार छपे नये सस्करण मे पुरानी और बन्द हो जाने वाली दवाइयों को निकाल कर नई-नई पेटेण्ट औषधियो को बढा दिया है। पेटेण्ट औषधियो और इन्जेक्शनो के मूल्यो को भी बताया है। किस रोग की कौन सी दवा सबसे सस्ती और कौन सी दवा सबसे महगा है। इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

◌इसके १९६५ मे छपे पहले सस्करण मे पाच सौ के लगभग चार्टस थे। अब १९६६ के नये सस्करण मे आठ सौ के लगभग चित्र तथा चार्ट है। पुस्तक का आकार, लम्बाई-चौड़ाई आदि भी ड्योढी कर दी है। पहिले सस्करण मे रोगो की केवल पेटेण्ट चिकित्सा दी थी। अब इसमे कई सौ रोगो का पहिले परिचय और निदान दिया है, बाद मे उनकी चार्टों के रूप मे पेटेण्ट चिकित्सा दी है। हिन्दी तो क्या? ससार की किसी भी भाषा मे ऐसी अनोखी पुस्तक नही छपी है। आठ सौ के लगभग चित्रों तथा चार्टों से सजी पुस्तक-रत्न का मूल्य केवल आठ रुपये। डाक खर्च अलग।

४. अनुभव के मोती, डाक्टरो के अनुभव तथा अनुभव विश्वकोष

◌इसमे पहिले प्रत्येक रोग का परिचय, कारण लक्षण, और निदान आदि चार्टों के रूप मे खूब खुलासा देकर, विश्वविख्यात डाक्टरो के हजारो बार के अनुभूत, सरल मे सरलयोग (डाक्टरी चुटके) दिये गए है। ये नुस्खे

पैथिक चुटकुले सस्ते हे, बनाने मे बिलकुल सरल हे साथ ही रोगो को दूर करने मे भी सफल सिद्ध हुए हैं ।

● ब्रिटिश फार्माकोपिया लन्दन, पजाब होस्पीटल फार्माकोपिया, दिल्ली डिस्पैन्सरीज फार्माकोपिया, आदि के सैकडो उपयोगी नुस्खो का पूरा पूरा हाल तथा एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सैकडो सरकारी डिस्पैन्सरियो मे रात-दिन काम मे आने वाले सब प्रकार के कई सौ योगो के नुस्खे, उनके बनाने की विधियां, मात्रायें, सेवन विधिया तथा विशेष गुणो आदि का बिल्कुल नए ढग से वर्णन किया है।

● सैकडो चार्टो-चित्रो से सजी, ६७२ पृष्ठो की सजिल्द पुस्तक का मू०केवल छ रुपया डाक खर्चअलग ।

५. निदान नवनीत चार्टस तथा निदान विश्वकोष

● इस "निदान विश्वकोष" मे रोगो के शब्द-कोष, प्रत्येक रोग का सही निदान, रोग का परिचय, रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग की पहचान, रोग-परिणाम, आजकल का निदान करने की नई-नई विधिया, निदान सम्बन्धी अब तक के हुए नये-नये आविष्कार, रोगो के सम्बन्ध मे आयुर्वेद के ऋषियो, यूनानी के हकीमो तथा एलोपैथिक डाक्टरो की अलग अलग अमूल्य रायें, अवैज्ञानिक पुस्तको की बहुत सी बेबुनियाद तथा गलत बातो का खण्डन, निदान-सम्बन्धी सैकड़ो प्रश्नो के चार्टो के रूप मे उत्तर और विश्वविख्यात हजारो डाक्टरो के निदान-सम्बन्धी जीवन भर के बहुमूल्य अनुभवो तथा खोजो का विस्तृत वर्णन, बिल्कुल नये ढङ्ग से चार्टो एव चित्रो के रूप मे किया गया है।

● कई सौ चित्रो, चार्टो और कोषो से सजे आठ सौ के लगभग पृष्ठो से भरपूर हिन्दी के सर्वप्रथम इस विशाल निदान विश्वकोष का मूल्य केवल आठ रुपया । डाक खर्च अलग ।

६. कामविज्ञान विश्वकोष (आधुनिक काम विज्ञान)

इसमे काम विज्ञान की प्रत्येक शाखा का एशिया, अफ्रीका और यूरोप मे हुई अगस्त १९६७ तक का हजारो नई-नई खोजो का पूरा-पूरा हाल दिया है । "पुरुषो तथा स्त्रियो" के समस्त गुप्त रोगो का नए ढङ्ग से वर्णन है । कई सौ चित्रो, चार्टो तथा तालिकाओ से सजी पुस्तक का मूल्य केवल आठ रुपये ।

७. स्त्री रोग चिकित्सा नवनीत चार्ट्स, स्त्रीरोग विश्वकोष (बाल रोग परिशिष्ट सहित)

इसमे स्त्रियो को सताने वाले सब प्रकार के रोगो का निदान आदि देकर उनकी 'एलोपैथिक', आयुर्वेदिक, यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सा आदि का चार्टो के रूप मे नए ढङ्ग से विवरण दिया है । मूल्य केवल २ ५०

८. काम सूत्र नवनीत चार्ट्स (सोलह परिशिष्टों सहित)

इसमे वात्सायन की ससार प्रसिद्ध सस्कृत को पुस्तक "कामसूत्र" का सार चित्रो तथा चार्टो के रूप मे दिया गया है । सोलह परिशिष्टो मे "काम विज्ञान' के विचित्र अङ्गो के सम्बन्ध मे विश्वविख्यात वैज्ञानिको के नए-नए विचार तथा कई सौ खोजे दी है । मूल्य ५ ००

९. परिवार नियोजन –सुख का आयोजन

इसमे परिवार नियोजन के प्रत्येक पहलू को चित्रो, चार्टो तथा तलिकाओ द्वारा स्पष्ट किया है । लगभग दो सौ चित्रो, चार्टो, तालिकाओ तथा सारिणियो से सजा पुस्तक का मूल्य ६ ०० । डाक खर्च अलग ।

१०- पुरुष रोग चिकित्सा नवनीत चार्ट्स तथा पुरुष गुप्त रोग विश्वकोष

इसमे पुरुषो के होने वाले सब प्रकार के गुप्त रोगो का निदान आदि देकर उनकी एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सा का चार्टो के रूप मे नए ढङ्ग से वर्णन किया है । मूल्य २ ५०

गुप्त रोग चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा गुप्तरोग विश्वकोष (बालरोग परिशिष्ट सहित)

इस पुस्तक मे पुरुषो तथा स्त्रियो के सब प्रकार के रोगो का अपटूडेट एलोपैथिक, आयुर्वेदिक यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा तथा बिजली से इलाज आदि नए ढङ्ग से दिया है, मूल्य केवल ३ ०० ।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

१—सर्वरक्षा मंत्रौषधिसार संग्रह

इस पुस्तक मे हर प्रकार के झारने के अमली काठग्य मन्त्र हैं तथा अनेक रोगों पर आजमाये हुये औषधियों के पाठ हैं। मन्त्र जैसे-सर्प, बिच्छू, जहर, बुखार, बाला, चोग पेट दर्द, पेट के रोग,, घाव, माथा, आख के दर्द व फुल्ला दात के दर्द, थनैला, गाहा आदि झारने के असली मन्त्र हैं विषपर हाथ चलाने, थाली साटने, गाउड बाधने का मन्त्र है और इन रोगो पर आजमाये हुए औषधियों के पाठ है और भूत प्रेतादि झारने का मंत्र है तथा लोटा घुमाने, चोरी गये हुये पर कटोरा चलाने का मन्त्र, सोह पर चोरी गये माल का पता लगाने के अनेकों प्रकार के मन्त्र है। गाउ बाधने, लाठी बाधने, देह बाधने, अग्निबान शीतल करने अग्नि बुझाने का म त्र और हनुमान देव को प्रकट करने के तीन महा मंत्र है, पीरसाहेब को हाजिर करने का मन्त्र, फल आदि मगाने का मन्त्र, बथान गूटने, खुरहिया, चरका, कान्ह, कीडा, आदि झारने के मन्त्र है। सब रोग झारने का असली श्रीराम रक्षा मंत्र भी है। पुस्तक के आदि में यात्रा बनाने और सगुण निकालने का विचार भी है। कहा तक लिखा जाय पुस्तक मगाकर स्वयम् देखिये। मूल्य केवल ६.८७ न. पै. हैं।

२—सर्पादि विष मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक मे जंगम विषधारी जन्तुओं जैसे-सर्प बिच्छू, कनखोजर, बिष्हनी, भौरा, सियार, कुत्ता, चूहा, बेग (मेढक) आदि विषधरो के विष झारने का असली काठग्य मन्त्र हैं। ये मन्त्र अच्छे-अच्छे मन्त्रियो से काठग्य म त्रो को लिखाकर शुद्धता पूर्वक छपवाया गया है और आजमाये हुए औषधियों के अनेक पाठ दिये गये हैं जिससे इसके सभी म त्र और दवा चलन सार है। इस पुस्तक की एक-एक प्रति प्रत्येक मनुष्य को रखना चाहिये सर्प और बिच्छू कहा नहो है ? इससे एक न एक दिन सभी को जरूरत पड़ती ही है। इसलिये म त्र और दूसरो को भी सिखला दीजिये तो बहुत का उपकार होगा जिससे आप महान् पुण्य के भागी होगे, संसार में आपका यश और कीर्ति होगी। मूल्य १.२५ है।

३—सर्व विष मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक मे स्थावर विष जैसे खसरा, अफीम, संखिया, धतूरा, थूहर, कनैर आदि के विष झारने के मन्त्र और औषधियो के अनेक पाठ दिये है। "सर्पादि विष मंत्रौषधिसार संग्रह और सर्व विष मंत्रौषधि सार संग्रह" से दोनो पुस्तक रखने से दोनों प्रकार के विषो के जानकार हो जायेगे। मूल्य ३.७५

४—ग्रन्थ उखरा रोग

गाय, बैल, भैंस आदि जानवर रखने वाले मनुष्यों के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है क्योंकि इस ग्रन्थ मे जानवरो के होने वाली बीमारियो के झारने का मन्त्र और आजमाये हुए औषधियों के अनेक पाठ दिये गये हैं। मन्त्र मे बथान गूटने, बिगाड़े हुये गाय भैंस को झारने का मन्त्र व सर्प बिच्छू, घाव, जानवरो के उखरा बीमारी झारने का मन्त्र है व श्री रामरक्षा, शीतलाष्टक स्तुति आदि अनेको प्रकार के मन्त्र है। मूल्य १.५०

५—हनुमत्पाठ

इस छोटी सी पुस्तक म हनुमान जी के प्रगट करने के तीन महा मन्त्र है व श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के बनाये हनुमान चालीसा, बजरंगबान-संकटमोचन है। हरिदास जी का रचा हुआ हनुमतमन्त्र बन्दन पाठ है। जैसे-जय धरणिधारन असुरविदारन जय जै मारुतनन्दन जी। हनुमान जी का प्रात कालीन भजन और अनेकों स्तुतिया भाषानुवाद है अन्त मे आरती लिखकर समाप्त की गई है। आरती जैसे—आरती कीजै हनुमान लला की दुष्टदलन रघुनाथ लला के हो। मूल्य १.०० रु.

६ बावन जंजीरा

बावन जंजीरा रामरक्षा मन्त्र के समान अनेक प्रकार की व्याधियो के झारने के काम मे आता है । इससे झारने मे बिच्छू, सर्प, डकरा-अफीम आदि के विष उतर जाते है तथा उन्माद, मृगी वाले को झारने से आराम हो जाता है । इनके सिद्ध करने की विधि भी लिखी गई है । भूत-प्रेत, पिशाच आदि झारने से भाग जाते है । देह बाधने, भूत भगाने, विकटमार्ग मे बाघ, हुडार, सियार, कुत्ता, भालू, बिलार, चोर, सर्प, बिच्छू आदि से बचने और दाढ दर्द कीडा और कुत्ते के विष झारने के भी जजीरे है और विष झारने के बिरहुली मन्त्र, बवासीर मे खून बन्द करने के लिये पानी पढने, थन के घाव झारने के तथा और भी अनेको प्रकार के जजीरे है । सगुणनिकालने का बशा-वली सगुणौती विचार है जिसमे भी अपना मनोरथ होने या न होने का शुभाशुभफल देख सकते हैं । अक्षर सुन्दर साफ छपा हुआ है । मू० १ ५० पैसे है ।

७ सगुणौती

इस पुस्तक मे सगुण निकालने के अनेको चक्र बने हुए है । दूब, चक्र मे धर दीजिये जो होने वाला होगा निकल आयेगा । कौडी का पासा या नन्दन के चौपहल मे अ, ब ज द लिख दीजिये और पाटिये जो अक्षर आवे लिखकर सगुण देख लीजिये जो शुभ और अशुभ फल होने को होगा निकल आवेगा यात्रा बनाने मे योगनी और चन्द्रमा का विचार है । रास्ता चलने मे गीदड बिलार, कुत्ता, सर्प इनके किस तरफ चले जाने से यात्रा मे हानि नही होगी उसका विचार है और मकान सम्बन्धी बहुत सी बातें लिखी गई है जो पढने से पता लगेगा । मूल्य ५ ७५ पै

८ प्रातः कालीन भजन संग्रह

भोर के समय जिस प्रात कालीन भजन को गाते सुनते है वही भजन इस पुस्तक मे है जैसे—प्राण से प्रिय राम जी हमरो । मैं न जिअब बिनु राम जननी । शरण गहो सिया राम के पिया जी । जागु अब भये भोर बन्दे । जाहु जी बसदेव गोकुला । देखहु जी एक बाला योगी मेरे द्वार पर आया है । भजन विवाह के समय का मगल-राजा जनक जी कठिन प्रण कैलन अब सिया रहलै कुमार सोहर-सभवा लगाये राजा दशरथ चेरिया अरज करै जी । आरती-आरती कीजै श्रीरामचन्द्र जी की हरिहर । जसुमति आरती उतारै है आजु गोकुल गृह पाहुना । इसी प्रकार अनेको प्रकार के भजन, मगल-सोहर, आरती और भगवान की स्तुतिया है जिनके मानस हृदय मे भगवान की भक्ति निवास करती है वे इस पुस्तक को मगा कर भगवान का गुणानुवाद गावे । मूल्य २ ५० पै

९ श्री रामरक्षादिक मन्त्र (दूसरी आवृति)	० ५०
१० गजल (उर्दू अक्षरो मे छपी हुई)	० ७५
११ कबीर स्तोत्र शब्द सग्रह	४ ७५
१२ कबीर अराधना रीति	३ ७५
१३ निर्भय ज्ञान	२ ७५
१४ ग्रन्थ मारो	१ ७५
१५ कबीर गोरस गुष्टी	१ २५

नोट—जो सज्जन एक साथ सभी पुस्तके मगायेगे उन्हे १ रुपये मे १० पैसे कमीशन बाद कर भेजी जायगी ।

बिना एडवास के पुस्तकें नही भेजी जायगी । सभी पुस्तको के मगाने वाले को १० ०० एडवास भेजना हागा । कम पुस्तक मगाने वाले ३ ०० भेजें ।

पता—पद्म पुस्तकालय, मु. पो. नोआवां,
भाया-अस्थावां, जिला-पटना (बिहार)

तो वही चीजें खरीदिये, जिन पर एगमार्क का निशान लगा हो।

जो लोग हमेशा शुद्ध और बढ़िया चीजें खरीदना चाहते हैं, वे घी, मक्खन, तेल, शहद, मसाले और अन्य ऐसी ही चीजें एगमार्क का लेबल देखकर ही खरीदते हैं।

पिछले वर्ष लगभग १५० करोड़ रु० के मूल्य की कृषि व दूध से जनित वस्तुओं पर एगमार्क के लेबल लगाये गये।

और, २ करोड़ रु० से भी ज्यादा के मूल्यों की चीजों का निर्यात किया गया।

एगमार्क का निशान केवल उन्हीं चीजों पर लगाया जाता है, जिनकी सरकार प्रयोगशालाओं में भली-भांति परीक्षा कर लेती है। इसीलिये, आप एगमार्क का निशान लगी चीजों पर पूरा-पूरा भरोसा कर सकते हैं।

एगमार्क का निशान शुद्धता और बढ़िया किस्म का द्योतक है।





धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र मासिक

धत्तेभरं कुसुमपत्र फलावलीनां घर्मव्यथां वहति शीतभवां रुजं च ।
यो देहमपचर्यात चाप्य सुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरये तरवे नमस्ते ॥
—भवभूति

भाग २८ | अङ्क २-३

वनौषधि-विशेषांक
(पांचवां भाग)

फरवरी १९६९

वनौषधि—प्रार्थना

अहो एषां वर जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ।
धन्या महीरुहा येभ्यो निराशा यान्ति नार्थिन ॥

जो किसी भी याचक को निराश नहीं करते, तथा सबके जीवनमे काम आते है, ऐसे परमार्थी वृक्षो का जन्म ससार मे सार्थक, श्रेष्ठ तथा धन्य है।

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणा पाकारोरसि नाशिनी ॥ —यजु० १२।९७

हे औषधे । तू कफ रोग एव बढे हुये अर्श रोग की नाशक है। इसी प्रकार शोथ, राजयक्ष्मा आदि अन्य विविध प्रकार के रोगो को तू दूर करती है। अर्थात् वनौषधियो मे अनेक दु साध्य एव कठिन रोगो के नाश करने वाली शक्ति है।

शत वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वोरुहः ।
अधाशत क्रत्वो यूयमिम मे अगदकृत ॥ —यजु० ११।७६

हे पात तुम्हारे सैकडो उत्पत्ति स्थान है, और हजारो अकुर है। अत सैकडो कार्यो को पूर्ण करने वाली है वनौषधे । तुम मेरे इस शरीर को स्वथ्य करो।

वनौषधि-प्रशस्ति



औषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारविष्णवः ॥

–शतपथ ब्रा० १-३-४

हे औषधियो ! आप रोगियो पर प्रसन्न हो । आप पुष्पो व फलो वाली हो । अच्छे अश्व के समान रोगो को जीतने हुए पुरुषो को नीरोग करने वाली हो ।

अश्वथो वटवृक्ष चन्दनतरुः मन्दार कल्पद्रुमो ।
जम्बू निम्ब कदम्ब आम्र सरला वृक्षाश्चयेक्षीरिणा ॥
सर्वे ते फल संयुक्ता प्रतिदिनं विभ्राजनं राजते ।
रम्यं चैत्ररथं सुनन्दन बनं कुर्वन्तो नो मङ्गलम् ॥

–सुभाषित रत्न

पीपल, बरगद, चन्दन, मदार, कल्पवृक्ष, जामुन, नीम, कदम्ब, आम, साल सभी दूध वाले वृक्ष जो प्रतिदिन फलो से लदे हुए इस वन मे शोभायमान है हमारा कल्याण करे ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति,
ज्ञात्वेति सन्देहमपास्य धीरैः संभावनीया विविध प्रभावाः ॥

–शार्ङ्गधर

जैसे देवताओ के अनेक भेद प्रभेद है, तैसे ही दिव्यौषधियो की अनेक जाति उपजतिया है। इस प्रकार की विविधता को देखकर चिकित्सक सदेह मे पड जाता है । उसे धैर्य पूर्वक औषधियो के गुण, कर्म, प्रभावादि का ज्ञान कर नि सदेह होकर चिकित्सा-कार्य का सम्पादन करना चाहिये ।

ओऽम् ! मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो, मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥

–अर्थववेद कांड २०, सूक्त १४३

हमारे लिये औषधिया रसो से परिपूर्ण तथा गुणवती हो । सूर्य, चन्द्र एव नक्षत्र आदि से युक्त द्युलोक तथा जल एव जलीय पदार्थ मधुमय हो । अन्तरिक्ष और उससे प्राप्त होने वाले पदार्थ हमारे लिये मधुमय हो । हमारा क्षेत्रो का पालक कृषक वर्ग मधुर अन्न आदि पदार्थो से सम्पन्न होकर हमारे लिये सुखदायी हो । हम परस्पर द्वेष और हिसा भाव से मुक्त होकर सभी शुभ कार्यो मे सहयोगी एव सहायक हो ।

बरना (Crataeva Religiosa)

वटादिवर्ग एव अपने वरुणकुल × (Capparidaceae) के प्रमुख, इस बडे १५-३० फुट ऊचे वृक्ष की शाखायें फैली हुई, अनेक एव शुभ्रवर्ण के रेखाकृति चिह्न युक्त, छाल- चिकनी, धूसर वर्ण की, आधी इञ्च मोटी, अनुप्रस्थ (बेडे) दिशा मे चीरो से युक्त, पत्र शाखाओ के निम्न भाग पर २-४ इञ्च लम्बी डण्डियो पर, बेल पत्र जैसे त्रिदल युक्त लगभग २-६ इञ्च लम्बे, १½ इञ्च चौडे, बर्छी के आकार के, पत्रवृन्त–एरण्ड के वृन्त जैसे लम्बे, पत्रक अण्डाकार, उदर भाग मे हरे, पृष्ठ भाग में श्वेताभ, तीक्ष्णाग्र युक्त, मसलने पर एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध युक्त, पुष्प–वसत ऋतु में नीलाभश्वेत २-३ इञ्च लम्बे (श्वेत गुलतुर्रा जैसे) सुगन्धित, फल-नीबू, जैसे १½ इञ्च व्याम के, पकने पर लाल रङ्ग के हो जाने वाले, भीतर की मज्जा पीताभ, बीज-मज्जा में लिपटे हुए, छोटे, चिकने, टेढे मेढे, पिङ्गल वर्ण के होते ह । वृक्ष का काष्ठ भाग पीताभ श्वेत, साधारण कडा होता है ।

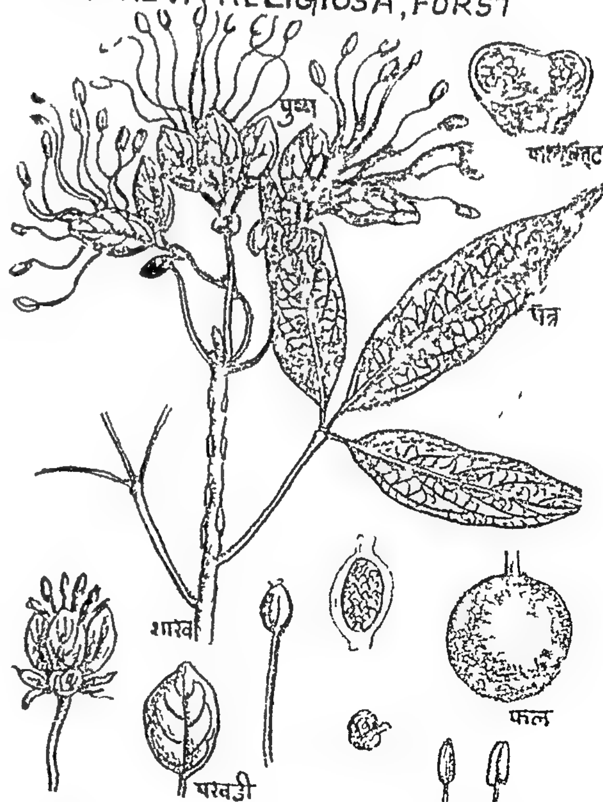
इसके वृक्ष भारत मे प्राय सर्वत्र विशेषत मध्य भारत, बङ्गाल, आसाम, मालाबार, कर्नाटक आदि में स्वयजात अधिक पाये जाते हैं । दक्षिण मे जलीय स्थानो मे अधिक होते हैं ।

नोट--१-इसके पत्र, पुष्प, व कच्चे फलो का स्वाद तिक्त (कडुआ) होता है । फल पकने पर किंचित मधुर हो जाते है । महाराष्ट्र की ओर ग्रीष्म ऋतु मे इसके नूतन कोमल पत्रो का तथा फूलो का शाक बनाया जाता है । इनमें कडुआपन अधिक होने से प्याज मिलाया जाता है ।

२- सुश्रुत के वरुणादि, वाताश्मरी, कफाश्मरी नाशक गुणो मे इसकी प्रधानता है ।

३- कोई कोई चिरईगोडा बूटी को ही भ्रमवश बरुन (बरना) मानते हैं । चिरईगोटा का प्रकरण भाग ३ मे देखिये ।

४- बाजारो मे देखा गया है कि पसारी लोग इसके स्थान मे बेल के पत्र और छाल दे देते है या असली बरना मे बेल पत्रादि मिलाकर देते है । अत परीक्षा कर के लेना चाहिये । इसके पत्रो को मसलने से तीक्ष्ण, तीव्र असहनीय गन्ध आती है तथा स्वाद मे कडुआपन जीभ मे कुछ झनझनाहट पैदा करने वाली तीक्ष्णता । छाल आदि का वर्णन ऊपर कहा गया है । तदनुसार



× इस कुल के वृक्ष के पत्र एकाकी या सयुक्त, एकान्तर द्विबीजपर्ण, विभक्त दल पुष्प बाह्य कोश के तथा आभ्यन्तर कोश के दल ४-४, स्त्री केशर नलिका बहुत छोटी मध्य स्थ बीज कोश युक्त होते हैं ।

परीक्षण करके ही उसे लेना उपयुक्त होता है अन्यथा कोई लाभ नहीं होता।

नाम—

स—वरुण, वरण, कुमारक, अश्मरिघ्न, तिक्तशाक

हि—वरना, वरुणा, बिलासी, छिलिआना इ०।

म—वायवरना हाडवर्णा। गु—वरनो, कागडाकेरी

ब—वरुण, तिक्तोशाक। अ—थ्री लीव्हड केपर (Three leaved caper), होली गार्लिक पियर (Holy garlic pear)।

लै०—क्रेटेवा रिलिजिओसा क्रेटेव्हानुरवाला (Crataeva Nurvala)। क्रे०राक्सबर्घी (C Roxburghii)

रासायनिक संगठन—

इसकी छाल मे एक साबुन जैसा सेपोनिन (Saponin) सत्व पाया जाता है। छाल के अर्क या टिंचर से तेल का दुग्धीकरण (Emulsion) होता है।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, मूल, पत्र, फल, पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, प्रभाव से भेदन है। दीपन, अनुलोमन, कफवात शामक, पित्तवर्धक कटुपौष्टिक, पित्तसारक, रक्तशोधक, मूत्रल, अश्मरी भेदक तथा अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, वातविकार, यकृत एवं प्लीहा विकार, कृमि, ज्वरादि मे प्रयुक्त होता है।

छाल—दीपन, पाचन बल्य, मृदुविरेचक व अश्मरीघ्न है। इसकी छाल की क्रिया मूत्राशय पर विशेष रूप से होती है। अश्मरी, बस्तिशूल, मूत्रकृच्छ्रादि पर यह पुनर्नवा, गोखरू, जवाखार, यवक्षार, मुलैठी आदि मूत्रल द्रव्यों के साथ दी जाती है। उदर तथा त्वचा के कुछ साधारण विकारों पर भी यह उपयोगी है। यह वमन निवारक एवं जठराग्नि को तेज करती है। गण्डमाला मे इसका रस शहद मिलाकर देते हैं और इसका लेप भी करते हैं। ... विद्रधि मे ... पुनर्नवा के साथ देते हैं। मूल की छाल विशेष मूत्रल होने से यह अकेली ही या गोखरू, काली सारिवा आदि द्रव्यो के साथ शोथ, अश्मरी आदि मूत्र विकारो मे दी जाती है।

उक्त विकारो मे तथा अन्य विकारो मे छाल का क्वाथ इस प्रकार बनाया जाता है—१० तो० छाल को जौकुट कर एक सेर जल मे पका, ५० तोला तक शेष रहने पर, छानकर, ठण्डा कर उसमे एक तोला शहद मिला २-३ बार पाच से दस तोला की मात्रा मे देते है। यह पित्त ... ज्वर नाशक व बल्य भी है। इस क्वाथ को व्रणशोथ, विद्रधि, गण्डमाला, वातरक्त आदि मे भी देते है तथा छाल का लेप भी करते है।

अश्मरी, वस्तिशूल पर—

अश्मरी पर—इसकी जड का चूर्ण ३ मा० की मात्रा मे घृत के साथ देकर ऊपर से इसी चूर्ण का उक्त विधि से बनाये हुये क्वाथ को पिलाते रहने से अश्मरी गल कर निकल जाती है। अश्मरीजन्य-शूल भी दूर होता है। १-१ घण्टे पर ३-४ बार देने से अश्मरी का भेदन होकर शूल शमन होता है। अथवा इसकी छाल के साथ गोखरू व काली सारिवा समभाग मिला ४-४ तो० का क्वाथ कर ३-४ बार पिलावे। —गा० औ० र०

वातज अश्मरी हो तो—छाल के साथ सोठ, गोखरू समभाग मिला क्वाथ कर २½ से ५ तो०की मात्रा मे थोडा जवाखार १मा० और १तोला गुड मिलाकर सेवन करावें। जीर्ण वातज अश्मरी नष्ट होती है। अथवा—बृहद्वरुणादिक्वाथ- प्रयोग देखिये आगे विशिष्ट योगो मे। भै० र०।

अथवा लघुवरुणादिक्वाथ—इसकी छाल के साथ पाषाणभेद, गोखरू कुलथीबीज समभाग के क्वाथ मे जवाखार १ मा० मिलाकर सेवन करें। यह अश्मरी भेदक है।

अथवा—इसकी छाल का क्षार (क्षार-विधि आगे विशिष्ट योगो मे देखिये) १ भाग मे जवाखार ½ भाग, तथा गुड ½ भाग एकत्र मिलाकर इन सबको ½ भाग घृत में मिलाकर रख लें। मात्रा १ तो० उष्णजल के साथ सेवन से कष्टसाध्य अश्मरी भी नष्ट हो जाती है। -व० से०।



अथवा- छाल के क्वाथ मे केवल गुड १ तो० मिलाकर या क्वाथ मे छाल के ३ मा चूर्णको मिलाकर पीने से भी अश्मरी निकल जाती है। तथा वस्तिशूल नष्ट होता है —ग नि, भै र । कफज अश्मरी हो तो इस क्वाथ मे जवाखार मिलाये ।

अथवा छाल की राख को पानी मे घोलकर कई बार छान कर रख दें। फिर ऊपर का स्वच्छ जल निथार कर उसमे इसी की छाल का महीन चूर्ण और जवखार मिलाकर पकावें। जब शुष्क चूर्ण हो जाय तो उसे निकाल कर गुड के साथ सेवन से घोरतर पत्थर जैसी कडी एव पीडादायक अश्मरी और अग्निमांद्य का नाश होता है।
—च मे

नोट—ध्यान रहे उक्त प्रयोग वातज या कफज अश्मरी पर ही किये जाते हैं पित्तज अश्मरी पर नही। कारण वरना स्वय पित्त प्रदायक है। आगे विशिष्ट योगो मे 'वरुणादि घृत का योग देंगे।

(२) गण्डमाला या गलगण्ड, विद्रधि, अण्डवृद्धि, शोथ युक्त वेदना तथा जलोदर व व्यग पर—

इसकी छाल तथा कचनार दोनो की एकत्र छाल के क्वाथ मे शहद मिलाकर प्रात साय ३-४ महीने तक पिलाने और इसकी छाल का लेप करते रहने से रक्त शोधन होकर गलगण्ड (Goitre) तथा नूतन गण्डमाला दूर हो जाती है। इससे चिरकालीन गण्डमाला मे भी लाभ होता है। —गा औ र

विद्रधि पर—विद्रधि की अपक्वावस्था में इसके मूल या मूल की छाल का क्वाथ लाभदायक है।

कफज विद्रधि हो तो—छाल के साथ त्रिफला, सेंहजना की छाल और दशमूल मिला क्वाथ बनाकर उसके साथ शुद्ध गूगल का सेवन प्रशस्त होता है।

अन्तर्विद्रधि—छाल के क्वाथ मे कमीस, सेंधानमक, शिलाजीत और हीग का चूर्ण मिलाकर सेवन से प्रवृद्ध अपक्व अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है।—ग० नि०, यो० र०

नोट—अन्तर्विद्रधि, गुल्म, मेद आदि पर विशिष्ट योगो मे वरुणादि क्वाथ देखिये।

अण्डवृद्धि पर—छाल के साथ वन्दा, दशमूल और शतावर समभाग लेकर क्वाथ बना लें। सेवन मे विशेषत वातज अण्डवृद्धि मे लाभ होता है। —हा सं

शोथ पर—आभ्यन्तरिक दाह युक्त पूयगुक्त शोथ (यह भी अन्तर्विद्रधि है) इसकी छाल ५ भाग और पुनर्नवा मूल २ भाग जौकुट कर अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर १॥ से २॥ तो या ४ तो तक की मात्रा मे पिलाते है। इससे अण्डकोष के शोथ पर भी लाभ होता है । —नाडकर्णी

साधारण दर्द और शोथ या वेदनायुक्त शोथ पर—जड की छाल का रस निकालकर समानभाग मीठे तेल (तिल या अलसी तैल) मे मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर रखलें। इसके मलने से लाभ होता है।
—डा महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ

जलोदर पर—इसकी जड की छाल, गोखरू और सोंठ एकत्र मिला क्वाथ कर, उसमे शहद व जल मिला कर सेवन कराते है।

व्यङ्ग तथा नीलिका पर—इसकी छाल को बकरी के मूत्र में पीसकर (कोई बकरी के दूध मे पीसते है) लेप करने से व्यङ्ग (चेहरे की झाई) दूर हो जाती है।
—भा. प्र

देह के अन्य भाग पर उत्पन्न व्यङ्ग (नीलिका) पर भी यह प्रयोग लाभदायक है।

(३) वातव्याधि, आमवात, कासश्वास, ज्वर मे—चित्तभ्रम होने पर--वात व्याधि -(वरुणादि स्वेद) इसकी छाल के साथ दोनो प्रकार की एरण्डी की छाल, मुण्डी (गोरखमुडी), सेंहजना की छाल, शतावर, गोखरू और सरसो एकत्र मिलाकर किये हुये क्वाथ की भाप (वाष्प) या वफारा देने से वात व्याधि नष्ट होती है। —ग नि

वात वेदना मे—जड की छाल के साथ सेहजने की छाल को काजी में पीसकर लेप करते हैं।

आमवात (गठिया) पर—जड की छाल (या छाया शुष्क ताजे पत्तो) का चूर्ण ३ या ४ माशे की मात्रा में घृत के साथ देते है। अथवा ताजे पत्तो का रस इस घृत के साथ देते हैं। जीर्ण आमवात मे भी शीघ्र लाभ होता है



कास पर—इसकी ताजी छाल २ तोला कूट कर १ सेर जल मे पकावे। २० तोला जल शेष रहने पर उसमें १ माशा सेंधानमक या २ तोला खाड मिलाकर प्रात साय पिलाने से हर प्रकार की खासी दूर होजाती है।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह जी वैद्य मेरठ।

ज्वर मे भ्रम (चक्कर आना) की विशेषता हो तो छाल को पीसकर सिर पर बाधने से बंधन स्थान मे दाह होकर भ्रम के दूर होजाता है। रोगी शुद्धि पर आने के बाद बधन को खोलकर, उस स्थान को शीतल जल से धोकर वहां तैल का लेप करे, जिससे छाला न होवे।

—सकलित।

पत्र प्रयोग—

(४) अर्श—आन्त्रशोथ, आमवात, प्लीहावृद्धि तथा स्त्री रोग पर—अर्श—इसके पत्तो के क्वाथ मे अर्श वाले रोगी को बैठाने से (उसकी कमर तक क्वाथ का जल आजावे इस प्रकार बैठाना) अर्श जन्य तीव्र वेदना शीघ्र शमन होती है।

आन्त्र शोथ पर—इसके पत्रो के साथ पुनर्नवा (विषखपरा) के पत्र समभाग १-१ तोला लेकर कूटकर ४० तोला जल मे पकावें। १० तोला शेप रहने पर छानकर पिलाने से आतो की सूजन दूर होती है—

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह जी वैद्य, मेरठ।

आमवात (गठिया, सधिवात) पर—पत्र स्वरस २ से ३ तोला तक लेकर उसमे नारियल का तेल (कोई नारियल का दूध लेते हैं) और घृत (दोनो १ तोला) मिलाकर सेवन कराते, तथा एक कपडे की पोटली मे पत्रो को तथा छाल को बाधकर सेक करते हैं।

प्लीहा वृद्धि पर—ताजे कोमल पत्रो को हाथो से मसलकर रस निकाल कर प्लीहा स्थान पर—नित्य मर्दन करते रहने मे कुछ दिनो मे वृद्धि दूर हो जाती है।

—सकलित।

स्त्री रोग—शरीर के जिस स्थान पर केशादि को नष्ट करने वाले किक्किस नाम के कृमि विशेष हो तथा तज्जन्य त्वचा का लाल हो जाना, ददोरे उठना, खुजली आदि की विशेषता हो, तो प्रथम रोग स्थान पर गाय का गोबर मलकर जल के साथ पीसे हुए उसके पत्रो को खूब मलने से स्त्रियो का यह किक्किस रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

—भा० भै० र०।

योनिकण्डु—प्रथम खुजली वाले स्थान को गोबरी मे घिसे, या गाय के ताजे गोबर से मल कर उसके पत्रो का स्वरस लगाने से योनि की खुजली दूर हो जाती है। उस प्रयोग से उस स्थान की त्वचा मे दाह होने लगे तो थोडा घृत या नारियल का तेल लगावें।

(५) कास, श्वास, निमोनिया तथा भ्रम विकार पर—इसके पत्रो की राख मे दो गुना शहद मिलाकर, १ तोला की मात्रा मे चटाने से हर प्रकार का कास व श्वास दूर हो जाता है। अथवा—

इसके पत्रो तथा लकडी को जलाकर राख बना कपड छानकर समभाग खाड मिलालें। ६-६ माशा की मात्रा मे प्रातःसाय गरम जल से देने से हर प्रकार की खासी दूर होती है।

निमोनिया (वातकफोल्वण सन्निपात ज्वर, श्वसनक ज्वर) इसके २ तोला हरे ताजे पत्रो को या १२ माशा शुष्क पत्रो को ४० तोला जल मे मिलाकर पकावें। १० तोला शेप रहने पर नीचे उतार छानकर उसमें २ रत्ती सेंधानमक मिला पिलावें। इसी प्रकार दिन मे ३ बार पिलाने से लाभ होता है। साथ ही साथ—इसके ताजे पत्रो को कूटकर निकाले हुए १ सेर रस मे ४० तोला मीठा तेल मिलाकर पकाकर तेल मात्र शेप रहने पर छान कर शीशी मे रख ले। निमोनिया रोगी की छाती पर इस तेल को मलकर ऊपर से रुई को गरम कर बाध दिया करें।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ।

भ्रम विकार (वातजन्य भ्रम) पर—पत्रो को महीन पीसकर मस्तक पर वस्त्र को चौघडी कर वेष्टन देकर, बीच मे पीसे हुए पत्रो के कल्क को रख बाध देवें। जब तक मस्तक मे वात का विकार होगा दाह या जलन प्रतीत नही होगी, वातविकार के दूर होते ही दाह होने लगेगी, तब वेष्ठन को तथा कल्क को हटा कर उस स्थान पर नारियल का तेल चुपड देवें।

—व० गु०।

(६) कर्ण रोग, नासिका का विकार, हाथ पैरो की दाह व मेदा रोग पर—कर्ण रोग—(पूतिकर्ण, कान मे दुर्गन्ध युक्त एव पूय युक्त व्रण होने पर)—(तेल) इसके पत्रो के साथ आक, कैथ, आम और जामुन के पत्र समभाग १-१ सेर लेकर एकत्र कूट कर ४० सेर जल मे पकावें। १० सेर शेष रहने पर छान ले। इसमे उक्त पाचो प्रकार के पत्र ५ ५ तोला लेकर पीसकर कल्क बना कर डाल दे तथा २½ सेर तेल मिला मन्दआग पर पकावे तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले। इसे कान मे डालने से कान से पूय स्राव होना आदि बन्द हो जाता है।

—वृ० मा०

नासिका विकार—नाक की हड्डी मे क्षत हुआ हो, उसमें सडान पैदा हुई हो तो इसके पत्रो की बीडी बना या चिलम मे रखकर धूम्रपान कर, धूम्र को नाक के रास्ते से निकालते रहने से (लगभग १४ दिन में) क्षत भर जाता है, कृमि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का इसका धूम्रपान मस्तिष्कान्तर्गत व्रण में भी लाभकारी है।

हाथ पैरो की जलन (दाह) एव सूजन पर—पत्रो को बाधने या घिसने से जलन शीघ्र ही दूर हो जाती है। सूजन हो तो पत्रो को पीसकर गरमकर लेप करते है।

मेद रोग (स्थूलता) पर—इसके ताजे पत्रो तथा कोमल जड़ो के महीन टुकडे कर, नारियल का दूध और घृत मिला, साग जैसा पकाकर खाते रहने से, अथवा केवल पत्रो का शाक प्रतिदिन नियमपूर्वक दो महीने तक खाते रहने से मुटापा दूर हो जाता है। —नाडकर्णी।

त्वचा पर छाला या फफोला उठाने के लिए—इसके ताजे पत्र को सिरके के साथ या नीबू रस के साथ या गरम पानी के साथ पीसकर त्वचा पर जहा छाला उठाना हो पुल्टिस जैसा गाढा लेप करने से प्रथम ५ से १५ मिनटो मे त्वचा लाल हो जाती है, और थोडी देर तक लेप को रखने से छाला उठ आता है। —नाडकर्णी।

इसी प्रकार इसकी छाल के लेप से भी फफोला उठाया जा सकता है।

फल—सारक, गुरु, मधुर, उष्ण वीर्य, मधुर, विपाकी वातहर, कफघ्न, यकृत प्लीहा वृद्धि, आमवात आदि में उपयोगी है।

(७) श्वास कास पर—इसके ताजे फलो को कूट कर, रस निकाल उसमे समभाग खाड मिलाकर आग पर शहद के समान शर्बत बना लेवे। मात्रा—६ मा. शर्बत मे ५ तोला गरम जल मिला प्रात तथा इसी प्रकार साय पिलाने से श्वास कास मे लाभ होता है। यदि यह शर्बत दिन मे ३ बार १० तोला जल मे मिलाकर यक्ष्मा (टी बी) मे दिया जावे, तो उसमे भी लाभ होता है। —डा० महाराव महेन्द्रसिह वैद्य, मेरठ

(८) व्रणो पर—कच्चे फलो की पुल्टिस बनाकर बाधने से शीघ्र ही व्रण पाक होता है।

पुष्प—इसके पुष्प सकोचक तथा रक्तदोष नाशक हैं।

गोद—वरना के वृक्ष से जो गोद निकलता है वह विष विकार एव रक्त दोष नाशक है। नेत्रो मे यदि भूल से किसी विष के लग जाने से दाह तथा अश्रुस्राव आदि लक्षण हो, तो गोद को जल मे घिसकर आजने से लाभ होता है। —गा औ र १

नोट—मात्रा—छाल का क्वाथ २ से १० तोला तक। पत्र स्वरस ½ से २½ तो० तक। छाल या पत्तो का चूर्ण ३-४ माशा। क्षार १ माशा (घृत के साथ)। भस्म ३-६ माशा तक।

विशिष्ट योग—

वरुणादि क्वाथ—वरने की छाल, अगस्ति या (मोलश्री) पुष्प, वेल की छाल, अपामार्ग, चित्रक मूल, दोनो प्रकार की अरणी की छाल, दोनो सहेजने की छाल, छोटी व बडी कटेरी, तीनो (श्वेत, पीली व नीली) कटसरैया (पियावासा), मूर्वा, मेढासिंगी, चिरायता, काकडासिंगी, कुन्दरु, करज और शतावर (ये सब वरुणादिगण के द्रव्य है) समभाग का क्वाथ कफ, मेद, गुल्म, शिरशूल और अन्तर्विद्रधि नाशक है। —शा स।

नोट—यह क्वाथ उदर की विद्रधि पर उत्तम कार्य करता है। इसमे चित्रक के स्थान मे हमने पुनर्नवा मूल लेकर नित्य २½ तोला जौकुट किये हुए चूर्ण का ४० तो

जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर आधा-आधा २ बार १-१ चम्मच शहद मिला कर सेवन कराया है। इससे लगभग २१ दिन मे उदर की शोथसहित विद्रधि नष्ट हो गयी, तथा शरीर का ज्वरांश भी दूर हो गया। फुफ्फुस की अन्तर्विद्रधि में भी इससे लाभ होते देखा गया है। —सम्पादक।

वरुणादि क्वाथ न०२ (वृहद्वरुणादि क्वाथ)—वरुण छाल, सोठ, गोखरु बीज, मूसली, कुलथी बीज, तथा कुशादि पच तृण मूल (कुश, कास, दर्भ, मू ज व ऊख की जड) और पाषाण भेद इनके एकत्र जौकुट किये हुए २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर उसमे खाड १ तोला और जवाखार १ माशा मिलाकर सेवन कराने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा इन रोगो से उत्पन्न बस्तिशूल, और मूत्र के समय होने वाला शिश्नशूल नष्ट होता है। यह क्वाथ अश्मरी को फोडकर निकाल देता है। —भै र।

(२) वरुण फाण्ट—इसके ताजे शुष्क पत्र चूर्ण १ भाग मे १० भाग उबलता हुआ जल मिलाकर ढक देवें। ठडा होने पर छान लेवे। यह फाण्ट कडवा एव सुगन्धित होता है। मात्रा—५ से १० तोला। यकृत्प्लीहा वृद्धि में तथा अजीर्ण में दिन मे २-३ बार सेवन से अपचन, आध्मान दूर होता और वमन बन्द होती है। अन्तर्विद्रधि में उक्त प्रकार से ही इसकी जड या जड की छाल का फाण्ट बनाकर दिन में ३ बार पिलाने से विशेषत अपक्व विद्रधि दूर हो जाती है।

(३) अर्क वरुण—(यक्ष्मा नाशक) छाया शुष्क इसकी छाल व पत्र ४ सेर, गिलोय २½ सेर, बनफशा पुष्प १½ सेर, माहतरा, चिरायता व गाजवा पुष्प ½—½ सेर, मुलहठी ८५ तोला, सूखकला १५तोला, इन सबको कूटकर एकत्र मिलाकर ३ भाग कर लेवे। प्रथम उसमे से १ भाग को ३० सेर जल में रात्रि को भिगो, प्रात भवके से ३० बोतल अर्क खीच ले। फिर इस अर्क में उक्त दूसरा भाग रात्रि के समय भिगो प्रात २० बोतल अर्क खीच लें। अब इन अर्क में उसी प्रकार तीसरा भाग मिला प्रात' १५ बोतल अर्क निकाल कर सुरक्षित रखें। प्रति-दिन में ४ बार ५-५ तोला अर्क पिलाने से १५ दिन मे यक्ष्मा (T. B) दूर हो जाती है।

अर्क न०२—इसके पत्र १ सेर तथा जड की छाल, मुण्डी, चिरायता व सत्यानाशी मूल आधा आधा सेर लेकर कूटकर रात्रि को ३० सेर जल मे भिगो प्रात ३० बोतल अर्क खीच लेवे। ५-६ तोला अर्क दिन मे ३ बार पिलाने से सर्व प्रकार के रक्त दोष, विबन्ध, कठमाला आदि रोग नष्ट हो जाते है।

—श्री डा महाराव महेन्द्रसिंह जी
भारप, वैद्य H M D S
खारी कुआ, मेरठ शहर

(२) वरुणासव—इसके पत्र ५ सेर लेकर एक मन जल में भिगोकर प्रात भवके द्वारा ४० बोतल अर्क निकाल कर उसमे इसके हरे ताजे पत्र व फल १-१ मेर बनफशा ½ सेर, कॅकडा नहरी ५ तोला तथा वासापत्र, वासा पुष्प, धाय पुष्प २०-२० तोला, चीनी २ सेर मुनक्का आधा सेर, शहद २ सेर सबको एकत्र मिलाकर एक चीनी मिट्टी के बडे पात्र मे भर कर मुख बन्दकर रख दे। ३० दिन बाद खोलकर, छानकर बोतलो मे भर रख दें।

मात्रा—२ २ तोला दिन मे तीन बार सम भाग जल मिलाकर सेवन से हर प्रकार की खासी, ज्वर, श्वास आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य मेरठ

नोट—आसवारिष्ट के अन्य योगो के लिये हमारा वृहदासवारिष्ट सग्रह ग्रन्थ देखिये।

(५) वरुणादि घृत—बरने की छाल ५ सेर को जौ कुट कर १२ सेर ६४ तो०जल मे पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें बरने की छाल, केले की जड, तृण पचमूल (कुश, कास, शर, दर्भ व ईख इन पाचो की जडें) गिलोय, शिलाजीत खीरे क बीज, बाम की जड, तिलक्षार, पलाश क्षार और जुही की जड १-१ तोला सबको पीस कर बनाया हुआ कल्क मिलाकर १ सेर घृत मे मन्दाग्नि पर पकायें। घृत मात्र शेप रहने पर छानकर रख लेवे। इसे देश तथा काल आदि की विवेचनापूर्वक



आधा से १ तोला तक की मात्रा मे सेवन कराने से अश्मरी, शर्करा, मुत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते है। इसे सेवन करने के बाद उसके पचजाने पर अन्य किसी पदार्थ के खाने से पूर्व मस्तु (दही के घन भाग का अलग करने पर जो पतला पानी सा भाग निकलता है उसे मस्तु या दही का तोड कहते है) के साथ पुराना गुड खाना चाहिये। —भै र।

घृत न० २—वरुणादि गण के द्रव्य तथा गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ नागरमोथा, कालीमिरच, चित्रक व देवदारु समभाग मिश्रित १ सेर लेकर सबका कल्क बना कर ७ सेर बकरी के दूध मे यह कल्क तथा इन्ही उक्त सब द्रव्यो का क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत कफज अश्मरी को नष्ट करता है। मात्रा– ६ से ८ बूद। —भै र

घृत न०३—वरुणादि गण के कल्क और क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ घृत, प्रात भोजन के समय और रात्रि के समय (अथवा दिन मे ३ बार) आधा से १ तो तक की मात्रा मे सेवन मे अन्तर्विद्रधि, शिरोवेदना, अग्निमाद्य और पाच प्रकार के गुल्म नष्ट होते है।—भै र

(६) वरुणादि तैल—वरने की छाल, पत्र, पुष्प व जड तथा गोखरु एकत्र ७ सेर जौकुट कर ६४ सेर जल में पकावे। १६ सेर शेष रहने पर छान कर इसे ४ सेर तिल तेल में मिला, मन्द आग पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान लेवें। इस तेल का प्रयोग वस्ति [आस्थापन] द्वारा करने में शर्करा, अश्मरी शूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होना है। —भै र

(७) वरुणक गुडपाक—उत्तम स्थान मे उत्पन्न, कृमियो से न खाये हुए, तरुण एव स्निग्धता युक्त वरना वृक्ष की छाल, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त मे लाकर जौकुट कर २० सेर जल मे पकावें। ५ सेर जल शेष रहने पर, छान कर उसमे ५ सेर गुड मिलाकर पकावें। गाढी चासनी हो जाने पर उसमे सोंठ, ककडी के बीज, गोखरू, पिप्पली पाषाणभेद, दूर्वा, पेठे के बीज, खीरे के बीज, कमलगट्टे, धनिया, बथुआ के बीज (अभाव मे बथुआ का मूल), सेहजने की छाल, मुनक्का, छोटी इलायची, शिलाजीत, हरड व वायविडङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४–४ तोला मिलाकर पाक जमा देवे या मोदक बना ले। १ तोला से ५ तोला तक की यथोचित मात्रा मे प्रतिदिन पथ्यपूर्वक सेवन से समस्त दोषजन्य अश्मरी शीघ्र ही निकल जाती है।—भा प्र

नोट—पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे (बृहत्पाक सग्रह) ग्रन्थ मे देखिये।

(८) वरुणादि लोह—वरना की छाल तथा आमला ७-७ तोला, धाय के पुष्प ४ तोला हरड २ तोला, पृश्निपर्णी (पिठवन मूल), लोह भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तो० सबके चूर्ण को एकत्र खरल कर रखे। मात्रा–१ से २ माशा। इसके सेवन से मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी प्रमेह, विषम ज्वर आदि नष्ट होते, तथा बल, वीर्य, पुष्टि एव आयु की वृद्धि होती है।

नोट—श्लेष्मिक मूत्रकृच्छ्र तथा विड्विघातज मूत्रकृच्छ्र में यह विशेष लाभदायक है। —भै र।

(९) क्षार वरुण—वरना की शाखाओ को या पत्र और छाल को जलाकर राख होने पर उसे जल मे घोल कर ३ दिन रखा रहने दे। फिर ऊपर से जल निथार कर कढाई मे पकावे। जलाश के दूर हो जाने पर कढाई मे लगे हुये क्षार को शीशी मे रख लें। यह क्षार १ माशा की मात्रा मे घृत के साथ सेवन से वस्ति की अश्मरी, वस्ति शूल, जलोदर, प्लीहोदर, मूत्र विकार तथा गर्भाशय के विकारो पर विशेष लाभदायक है।

नोट—उक्त राख को इसके ही छाल के क्वाथ मे उबाले। जलाश सूख जाने पर उतार कर क्षार को खुरच कर शीशी मे भर ले। इस प्रकार का बनाया हुआ क्षार भी उत्तम होता है। —गा औ र

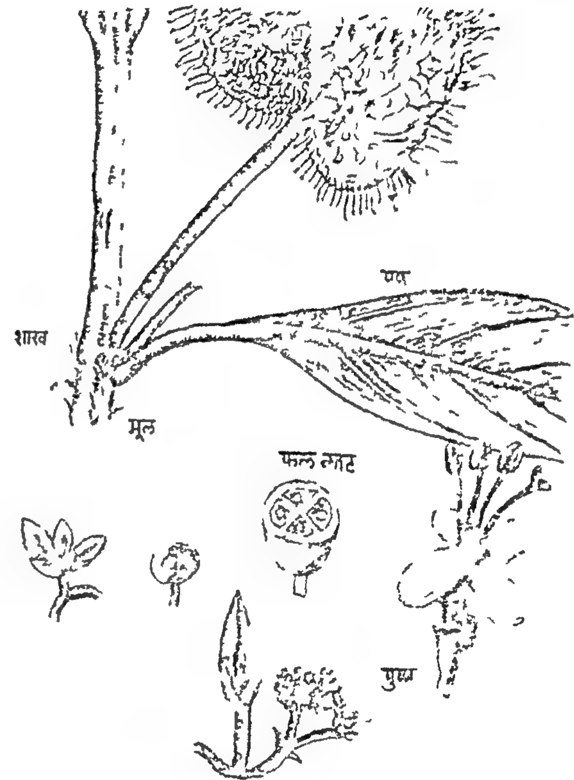
वरवेल-देखो-वेलान्तर। वरमाला-देखो वरमूला। बरमी-देखो-जलनीम तथा तालीमपत्र मे।

बरमूला (बरमाला) (Callicarpa Arborea)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaccae) के उस ३०-४० फुट ऊंचे वृक्ष की छाल किंचित धूमरवर्ण की, भीतर का काष्ठभाग धूसर व विशेष मजबूत नही होता। पत्र डिम्वाकृति १२ इंच लम्बे ६ इंच चौडे, सूक्ष्म रोम युक्त- ८-१२ सिराओं से युक्त, पुष्प हल्के बैंगनी रंग के, ४ पखुडी वाले, विशेष गंधयुक्त, पुष्पदण्ड १-२ इञ्च लम्बा ३-४ शाखायुक्त फल--गोल ⅙० इन्च व्यास के कृष्णाभ बैंगनी रंग का होता है। प्राय ग्रीष्मकाल मे पुष्प व वर्षा के अन्त में फल आते हे।

इसके वृक्ष छोटा नागपुर, बिहार, उत्तर बंगाल तथा गंगा के उत्तरी मैदानी प्रदेशों मे एवं कुमाऊ से सिक्किम तक की पहाडियो पर खसिया और बरमा मे विशेष देखे जाते है।

नोट—यह प्रियगु, गन्ध प्रियगु का ही एक भेद प्रतीत होता हे। बरभूला और बरमोलो नामक अन्य पौधो का वर्णन इसी प्रकरण मे आगे देखिये।



नाम—

हिं०—बरमूला, बरमाला। म०-घिवाला, गेहुला। गु०-घिउला। वं० बरमाला, खोजा, मकची। ले०—केलिकार्पा आर्बोरिया।

गुण धर्म व प्रयोग—

छाल विशेष सुगंधित कडुवी, पौष्टिक, वात पित्त-प्रकोप, आध्मान व चर्मरोग नाशक हे।

उक्त विकारो पर प्राय इसकी छाल के क्वाथ का ही विशेष प्रयोग किया जाता है।

नोट—बरमूला - वनौषधि अनुसंधान योजना (केन्द्रीय-स्वास्थ्य मन्त्रालय, गुरुकुल कांगडी) के नियोजक श्री वैद्य मायाराम उनियाल आयुर्वेदाचार्य A ,M B S अपने एक लेख मे इस बूटी का लेटिन नाम Mega Carpea Polyandra (Benth) देते हुये लिखते है, कि वनस्पति शास्त्र के आधार पर यह राजकादि कुल (Cruciferae) की जड १ से १½ फुट लम्बी, १ से ३ इञ्च तक मोटी, काण्ड २ ४ फुट तक लम्बा, पत्र १ फुट लम्बे कुछ कटे हुये दन्तुरदार, मसलने पर सरसो के पत्ते जैसे गन्धयुक्त, पुष्प श्वेताभ पीतवर्ण के प्याली की आकृति के होती है। पुष्प प्राय जून-जौलाई मे खिलते हैं। खिलने पर उग्र सुगन्ध आती हे।

इसके पौधे हिमालय मे प्राय १२ से १४ हजार फुट की ऊंचाई पर टिहरी गढवाल मे पवाली काटा से ताली वाले मार्ग पर—खुले घास के मैदान में उपलब्ध है। मैने गगी पवानी आदि सीमान्त प्रदेश में रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियो को इस बूटी का उपयोग करते देखा है, जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र।

मूल का प्रयोग विशेषत ज्वरो मे मुख्यरूप से विषम ज्वर एव प्लीहा वृद्धि पर इस प्रकार किया जाता है— मूल ३ या ४ छटाक की मात्रा मे लेकर जल से साफ कर कूट कर उसमे ४ से ८ छटाक तक जल तथा सेंधानमक, जीरा, कालीमिरच सोठ ६-६ माशा मिलाकर मन्द आग पर पका लेते हैं। ७ दिन के प्रयोग से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

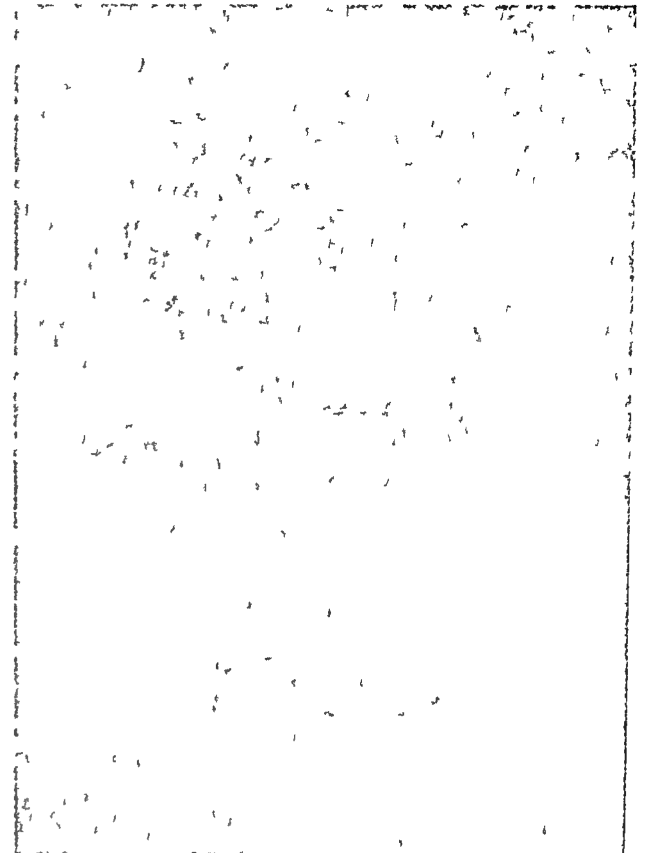
इसकी पत्तियो का शाक—विवन्ध नाशक है, यह शाक पथ्य रूप में रोगियो को देते हे। इससे उदरगत विकारो में काफी लाभ होता हे। अत इन प्रयोगो के आधार पर इस बूटी मे--दीपन, सारक, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान हैं। —धन्वन्तरि से।

श्रौपधीर्नामरूपाभ्या जानतेह्यजपावने ।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्येवनवासिन ॥
च० सू० अ० १-११८

चरक सहिता की इस उक्ति के अनुसार औषधियो के नाम, रूप, गुण आदि को जगलो मे रहने वाले गोपगण तथा वनवासियो से जाना जा सकता है। इसी आधार पर 'बरमूला' नाम की औषधि का पता टेहरी गढवाल के लोगो मे प्रचलित है। परन्तु सहिता ग्रन्थो, एव आयुर्वेदिक निघण्टुओ मे इस नाम की औषधि का वर्णन देखने मे नहीं मिला हे। यहा तक कि विख्यात पाश्चात्य द्रव्यगुण शास्त्रो मे भी इस वनोपधि का कोई वर्णन नही मिलता है। मैंने गगी पवाली आदि सीमान्त प्रदेश मे रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियो को इस औषधि का उपयोग करते देखा हे जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

परिचय—

यह हिमालय मे होने वाला एक पौधा है जो कि प्राय. १२ हजार से १४ हजार फुट की ऊचाई पर पाया जाता है। वनस्पति शास्त्र के आधार पर यह राजिकादि वर्ग (क्रूसीफेरी) की वनस्पति है जिसका मूल १ से १॥ फुट लम्बा और १ से ६ इन्च तक मोटा होता हे। काण्ड २ से ४ फुट तक लम्बा होता हे। पत्र एक फुट लम्बे कुछ कटे हुए दन्तुरदार होते हे और मसलने पर



सरसो के पत्तो की तरह सुगन्ध आती है। तथा इन पत्तियो की रचना क्रमानुसार होती हे। पुष्प पीले कुछ सफेदी लिए होते हे। ये पुष्प प्रत्येक पुष्पकाण्ड या (वृन्त) से मिले हुए रहते हे। तथा इनकी आकृति प्याले के समान होती है। ये पुष्प प्राय जून जौलाई मे खिलते हे। खिलने पर इनमे उग्र सुगन्धि आती है।

उत्पत्ति स्थान—

टिहरी गढवाल मे पवाली काटा से ताली वाले मार्ग पर खुले घास के मैदान मे करीब १२ हजार फीट की ऊचाई पर उपलब्ध हे।

ग्राह्य अङ्ग—मूल, पत्र

मूल का आमयिक प्रयोग—

बरमूला मूल विशेषत ज्वरो मे प्रयोग किया जाता है। ग्रामवासी इस वनोपधि का मुख्यरूप से विषम ज्वर एव प्लीहा वृद्धि मे प्रयोग करते है। किम्वदन्ती के आधार पर औषध निर्माण विधि इस प्रकार से है—

जल से साफ किये हुए बरमूला मूल की ३ या ४ छटाक की मात्रा लेकर उसे कूट लेते है, तदुपरान्त उसमे ४ छटाक तक्र, ८ छटाक जल मिला देते हे। फिर इस मिश्रण मे सेंधा नमक, जीरा, काली मिर्च एव सोठ प्रत्येक ६ माशा की मात्रा मे मिला लेते है। इसके पश्चात् इसको मन्द अग्नि पर पका लेते हैं और शीतल करके दिन मे तीन वार रोगी को देते हैं। इस प्रकार से दिन मे तीन वार एक सप्ताह तक प्रयोग करने से रोगी को पूर्ण आराम मिल जाता है। इसकी पत्तियो का शाक पथ्य के रूप मे रोगियो को देते हैं। जिससे उदरगत विकारो मे काफी लाभ मिलता है। एव पत्तियो का शाक विबन्ध को दूर करने मे भी लाभदायक होता है अत इन प्रयोगो के आधार पर इस पौधे मे सारक, दीपन, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान है।

ग्रामीण लोग पशुओ के हित मे इसे अचूक ओषध समझते हैं। पशुओ के लू लगने पर अथवा वाह्य चर्म के लाल पड जाने पर इसके मूल को शीतल जल मे भिगो कर देने से लाभ होता है।

सम्भवत आयुर्वेद शास्त्र मे इसका वर्णन आया हो किन्तु काल के प्रभाव से एव दुष्प्राप्य होने के कारण इस औषधि का प्रचलन न हो सका हो, जो कि धीरे-धीरे अज्ञात सी बन गई हो तथापि किम्वदन्ती के आधार पर यह औषध विषमादि ज्वरो पर अच्छा कार्य कर सकती है जिससे कि मानव-वर्ग का कल्याण हो सकता है।

अत पाठक वर्ग इस औषध का अध्ययन कर अपने चिकित्सा क्षेत्र में इससे लाभ उठाने का विशेषत प्रयत्न कर सकेंगे।

—श्री वैद्य मायाराम उनियाल
आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० वी० एस०
वनौषध अनुसंधान योजना,
केन्द्रीय स्वास्थ्य मत्रालय,
गुरुकुल कागडी (हरिद्वार) यू० पी०

बरमोली—

उक्त बूटी के समान ही एक और बरमोली है। इसका सक्षिप्त वर्णन करते हुए श्री वैद्य सत्यप्रसाद 'निर्भीक' शास्त्री जी ने 'सचित्रायुर्वेद' मे लिखा है कि यह क्षुप जातीय वनस्पति, हिमालय मे ८-९ हजार फुटकी ऊचाई पर होती है। बर्फ पिघलने के बाद उगती है तथा वर्षारम्भ मे इसकी जड परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है। जड कनखजूर नामक कीडे के जैसी होती है, जिस पर छल्ले से होते हे, तथा प्रत्येक छल्ले पर जोड होती है। जड के ऊपर डण्ठल निकलते हैं, जो २-३ इञ्च तक छोटी नहर की तरह आलवाल ऊचे उठे हुये होती है। यह अग्रभाग मे बारीक होती है, जिस पर इतस्तत पत्र नीम पत्र जैसे निकलते हैं। पुष्प श्वेत आते है। यह स्वाद मे बिलकुल खीरा की भाति लगती है।

यह गुण मे शीतवीर्य, योगवाही, मूत्रल भी खूब है। स्वाद मे राई और खीरे की तरह ही है। इससे ज्ञात होता है कि खाने मे यह उष्ण भी होगी। यथा सम्भव राई के गुणो से युक्त है। वाह्य लेप पर शीत तथा योगवाही होने से उष्ण वस्तुओ के साथ उष्ण और शीत द्रव्यो के साथ शीत है। इसका लेप शिर शूल नाशक है।

बर्सिगी—देखे—वर्सिगी। बरहता—देखे—बराहता। बरागोम—देखे—भागरा मे।

बरारा (Periploca Aphylla)

अर्क कुल (Asclepiadaceae) के इस बहुशाखी सीधे खडे हुए झाडीदार क्षुप के पत्र प्राय नहीं होने, कहीं कहीं होते भी हैं तो वे ½ इन्च से भी कम लम्बे।

पुष्प—बडे आकार के, चिकने, सुगंधित होते हैं। इस बूटी के प्रत्येक अङ्ग मे दूधिया रस भरा हुआ होता है।

यह पजाब के मैदानो में अधिक पाया जाता है।

नाम—

हिन्दी, पजाबी—बरारा, बार्री, बर्री। सिन्धी, मराठी—बुरेई। ले०—पेरिप्लोका एफिला

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका दूधिया रस शोथ व ग्रन्थि नाशक है। इसका लेप किया जाता है। छाल का क्वाथ विरेचक है।



बरासल पान (Flemingia congesta)

शिम्बी कुल (Leguminosae) के इस छोटी जाति के सीधे खडे हुए क्षुप के पत्र त्रिदल (३-३ एक साथ) गहरे हरे, चमकीले, पुष्प--छोटे बेंगनी रग के, फली--छोटी, प्रत्येक मे १-१ गोल काला बीज होता है।

वर्षाकाल के बाद इसके क्षुप पहाडी प्रदेशो में विशेष पैदा होते है।

नाम–

हि०—बरासलपान कुमुर, सुत्ता। म०—दोदोला। व०—बरासलपान, भालिया। ले—फान्जेस्टा। फ्लेमिंजिया।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह व्रण, शोथ नाशक है। इसकी जडो को या पचाग को कूट, पीसकर, कुछ गरम कर लेप किया जाता है।

बराहंता (Tragia Involucrata)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के ६-७ फुट ऊचे इस लतारूप क्षुप के पत्र डिम्बाकृति, २-४ इञ्च लम्वे, कुछ काले रग के, अग्रभाग मे क्रमश नुकीले, किनारे, दन्तुर, दोनो ओर श्वेत सूक्ष्म रोमयुक्त, पत्रवृन्त ¼-½ इच लम्बा होता है। पुष्प तुर्रेदार, ऊपर से कुछ पीले रग के अनेक पुष्प १-४ इञ्च लम्वे पुष्पदण्ड पर आते हे। फल - बहुत छोटे-छोटे गोल से २-२ फल एकत्र, रोमश होते हे।

नोट–इस क्षुप के विशेषत पत्रो का अङ्गस्पर्श होने से शरीर के उस अग पर बहुत जलनयुक्त खुजली होती है तथा वह भाग लाल हो जाता है।

यह विच्छू जैसा डक मारने वाला, वेदनोत्पादक क्षुप प्राय भारत में सर्वत्र जगली प्रदेशो में, वर्षा काल मे पैदा हुआ पाया जाता है। यह हिमालय प्रदेशो में बहुत होता है। ध्यान रहे, विच्छुवा या विच्छू बूटी इससे भिन्न है।

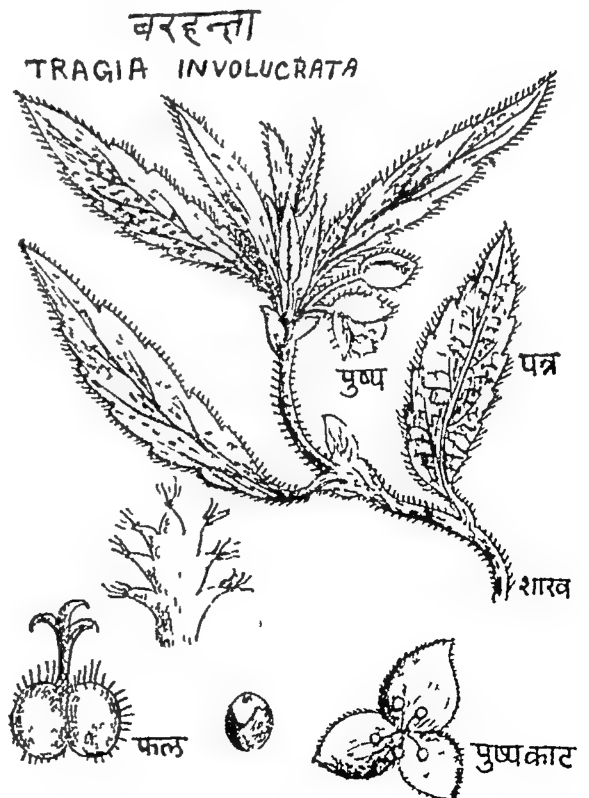
नाम–

स०--वृश्चिकाली, विरूपा, धूमपुष्पा। हि०—वराहता, बरहता। म —खाज कोलती, काचकुरी। गु —मोटी खाजवणीनी वेल। बं० —विच्छूटी। ले०—ट्रेजिया इनव्होलुक्रेटा, ट्रेजिया केन्नाविना (Tragia Cannabina)

गुणधर्म व प्रयोग–

स्वेदल, धातुपरिवर्तक, मूत्रल है। साधारण ज्वर पर जिसमे हाथ पैरो मे ठडक व ऐठन होती है, इसकी जड का क्वाथ ५ से १० तोला तक की मात्रा में दिया जाता है। यह प्रयोग फुफ्फुस शोथ (ब्राकाइटिस) मे भी साधारणत उपयोगी है।

नारू पर—इसकी जड को जल में पीसकर लेप करने से नारू का कीडा बाहर निकलता है। वह जैसे जैसे



निकले तैसे तैसे उसे रुई की मोटी वत्ती पर लपेटते हैं और लेप को लगाते जाते हैं। इस प्रकार दूसरे दिन तक वह सव बाहर निकल आता है। —व गु

खाज, चकवत या छाजन पर जड को तुलसी के रस में पीस कर लगाते है।

उपदंश—इसका क्वाथ दिन मे २ बार, २½ तोला तक की मात्रा मे देते रहने से उपदंश के व्रण और दाग दूर होते हैं।

गज पर—इसके फलो को थोटे जल के साथ सिर पर घिसते है, या लेप करते है।

बिच्छू के दंश पर भी यह उपयोगी है।

वरियारा—देखें—खरैंटी।

बरू (Andropogan Holepensis)

यवकुल (Gramineae) के इस एक जाति के घास के पौवे ज्वार के पौवे जैसे किन्तु उसकी अपेक्षा पतली डंडी वाले, पत्ते व वीज भी ज्वार के पत्र व वीज जैसे होते है।

सफेद और काले भेद से इसकी दो जातियां हैं। सफेद जाति का वन्य इधर विशेष पाया जाता है। इसके पौधे नदी या जलाशय के किनारे अधिक पैदा होते है। एक बार जिस स्थान पर यह पैदा हो जाता है, वहा उसका खूब विस्तार हो जाता है।

देहातो में तथा शहरो में भी पहले इसी के काण्डो की लिखने की कलमें बनाई जाती थी। अब तो इनका स्थान होल्डरो ने ले लिया है किन्तु अब भी कई स्थानो में इनका प्रचलन है।

इसके प्रवृद्ध पौधो के पत्ते घोडो तथा बैलो के लिए एक उत्तम रसीला चारा है किंतु छोटे या तरुणावस्था के पौधे कुछ विषाक्त होते है।

नाम--

स०--वीरकाण्डक। हि --वरूवोरू,वारहम। म -बोरू। वं०--कलमूचा। ले०--एण्ड्रोपोगान होलेपेसिस, सोरघम होलेपेंसे (Sorghum Holepense) व अमेरिकन जानसन ग्रास (American Johnson grass)

गुणधर्म--

शीतल, मधुर, रुचिकर, वल्य, वृष्य, तथा पित्त, दाह, श्रम, शोषादि नाशक है। इसके वीज शांतिदायक व मूत्रल है।

बरोला (Holigarna Longifolia)

आम्रकुल (Anacardiaceae) के इस आम के वृक्ष जैसे ऊंचे वृक्ष की छाल मुलायम, पत्र-लम्बे, चमकीले तथा पुष्प—श्वेत वर्ण व मंजरियो में आते हैं।

इस वृक्ष के काण्ड से एक प्रकार का काला रालदार कड़वा तथा विषाक्त रस झरा करता है।

नाम—

हि ग.—वरोला। म —मुर्दाविवो, हुलूगिरी, हालुगिरी। ले —होलीगेरना लांगिफोलिया।

गुण धर्म—

इस वृक्ष का निर्यास या रस प्रभावशाली चर्मदाहक हैं। इसके लगाने से शरीर के ऊपर छाला उठ आता है।

बलसां (Balsamodendron opobalsamum)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के इस बड़े कंटकयुक्त वृक्ष के प्रत्येक कांटे के निम्न भाग मे मेंहदी पत्र जैसे किन्तु कुछ छोटे पत्र लगते हैं। पुष्प-पत्रो के मध्य भाग मे आते हैं। फल-फालसे जैसे किंतु कुछ चिपटे कच्ची दशा



बलसॉ

BALSEMODENDRON OPOBALSAMUM KUNTH

में हरे, पकने पर लाल होते है। प्रत्येक फल में १ से २ बीज काली मिर्च जैसे किन्तु कुछ बडे, किंचित लम्बे, ऊपर से पीताभ कृष्ण रक्त वर्ण के भीतर श्वेत मज्जा युक्त, स्वाद मे कडवे होते है।

वृक्ष की लकडी सुगंधित, वजनदार, कुछ लाल रंग की होती है। वृक्ष मे चीरा देने से एक प्रकार का सुगंधित रक्ताभ पीत वर्ण का लशदार तेल निकलता है। स्वाद में यह तेल कड़ुवा, किंचित चरपरा होता है। इसके फल या बीजो मे मनोहर नारंगीन जैसी गंध आती है।

इसके वृक्ष विशेषत अरब, इजिप्ट आदि देशो के जंगलो मे पैदा होते है।

इसके तैल, फल (बीज) और काष्ठ का आयात भारत में अरब आदि देशो से होता है। यूनानी प्रयोगो मे यह बहुत काम आता है।

नाम—

बलसा, बलसू (यह वृक्ष का नाम है)। अं.—बालसम ट्री (Balsam tiee)। ले—बालसेमोडेंड्रा आपोबलसे मम। इसके तैल को रोगने बलसा। अंग्रेजी मे—बाम आफ मेक्का (Balm of mecca), बालसम (Balsam) कहते हैं।

तेल मे--एक उड़नशील तैल ३० प्रतिशत, कडी राल ६४ प्रतिशत, मुलायम राल ४ प्रतिशत तथा कडवा सत्व ४ प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—तैल, लकडी और फल (बीज)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तैल—उष्ण, स्निग्ध, कफ निःसारक, बाजीकरण, मस्तिष्क बलदायक तथा सुजाक, शोथ व्रण आदि के लिये विशेष उपयोगी है। अर्धांगवात, अर्दित, अपतानक, आक्षेपक, वातरोग (Tetanus), अपस्मार आदि वात कफज विकारो एवं कास, श्वास, जुखाम, वृद्धो की जीर्ण कास, फुफ्फुस के व्रण तथा औपसर्गिक पूयमेह, श्वेत प्रदर आदि पूयस्रावी व्रण आदि पर अत्यधिक प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१ से १½ माशा तक। गर्भिणी के लिए हानिकर है। हानि निवारक—कद्दू व कद्दू का तेल। प्रतिनिधि चंदन का तैल है।

लकडी (बलसा वृक्ष की लकडी) को ऊद या चोब बलसा कहते है। यह उष्ण, रूक्ष, बल्य, कफ नि सारक, मस्तिष्क एव आमाशय संशोधक, गर्भअपरा नि सारक, तथा अपस्मार, भ्रम, मूर्च्छा जैसे मस्तिष्क विकृति जन्य रोग, कफज कास, कृच्छ्रश्वास आदि मे प्रयुक्त होती है। मात्रा—२-३ माशा। यह आन्त्र के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा है। प्रतिनिधि—इसी बलसा का फल है।

फल या बीज—उष्ण, रूक्ष, दीपन, कफ नि सारक, मस्तिष्क संशोधक, बाजीकर, आर्त्तवजनन है। तथा मस्तिष्कविकार, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रमेह, धातुस्राव, बद्धार्तव आदि मे प्रयुक्त होता

मात्रा—३ से ५ माशा तक। यह मूत्राशय (वस्ति) के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा तथा प्रतिनिधि इसी वलसा की लकडी है।

इसकी लकडी या फल (वीज) के १ भाग मे २० भाग जल मिलाकर वनाया हुआ क्वाथ कई रोगो मे दिया जाता है।

जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रवाहिका पर—फलो का बवूल के गोद के साथ प्रयोग करते है।

विकृत या दुष्ट व्रणो, जखम तथा रक्तस्रावी व्रण पर फल (वीज) की पुलटिस बनाकर वाधते हैं।

वल्लर–देखे–वाकला

वलाया (Cadaba Trifoliata)

वरुण (वरना) कुल (Capparidaceae) के इस वहुशाखी, वडे (या लतारूप) क्षुप की छाल मुलायम धूसर या भूरे रग की, पत्र—३ ८ से ७.५ सें॰ मी तक लम्वे, पुष्प—छोटे-छोटे गुच्छो मे पीताभ श्वेत वर्ण के, फल या फली–हरी, चिकनी, मुलायम, वीज–वृक्काकार वहुत छोटे होते है।

नोट—यह कोधव (Cadaba Indica) का ही एक भेद विशेष है। जहा कोधव की उत्पत्ति होती है, उसी स्थान में यह भी पाया जाता है। कोधव का प्रकरण भाग २ मे देखें।

नाम–

वलाया (यह सस्कृत नाम है), ले.—केडेवा ट्रिफोलिएटा।

गुण धर्म व प्रयोग--

जड व पत्र--विरेचक, ऋतुस्राव नियामक, कृमि एव शोथ नाशक हैं। वालको के अजीर्ण वडो की सधिपीडा सधिवात, स्त्रियो के रुद्धार्त्तव, कष्टार्त्तव में उपयोगी हैं।

रुद्धार्त्तव, नष्टार्त्तव तथा कष्टार्त्तव मे पत्तो के क्वाथ मे रेंडीतेल व हल्दी का चूर्ण मिलाकर देने से विशेप लाभ होता है।

उपदश, गण्डमाला तथा सधिवात (गठिया) मे शोथनाशार्थ एव रेचनार्थ-पत्रो के क्वाथ में हरड व सोठ अथवा सनायपत्र व एप्सम साल्ट मिलाकर देते हैं।

गठिया एव सधिवात पर इसके पत्तो के साथ जिगनी के पत्रो को पीसकर पुल्टिस वनाकर वाधते या गरम लेप करते हैं।

व्रणो पर इसके पत्तो की पुल्टिस वाधने से शीघ्र ही व्रण का परिपाक होता है।

पत्तो का उपयोग औपधीय तेलो के वनाने में भी किया जाता है।

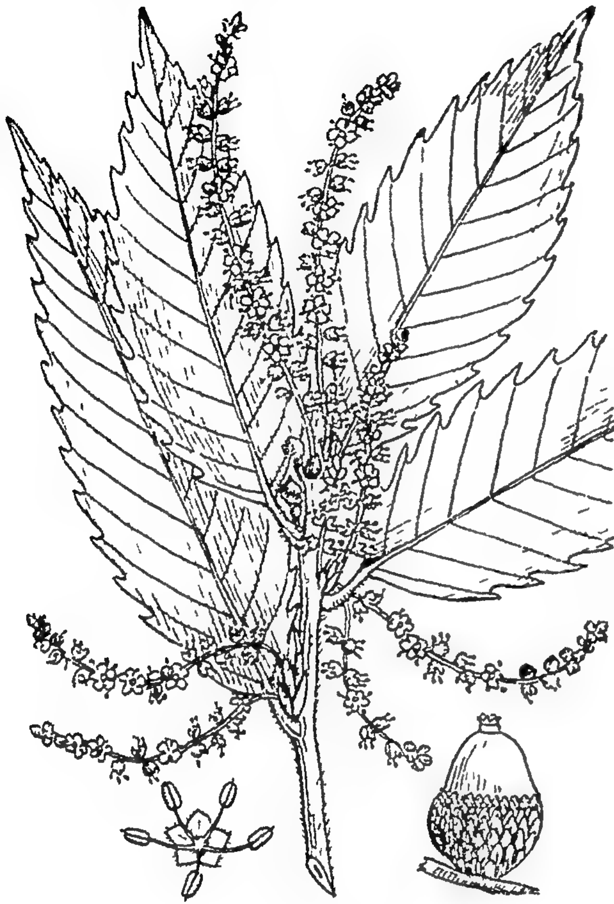
—नाडकर्णी

वलूत- (Quercus Incana)

मायाफल कुल (cupuliferae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले पहाडी वृक्ष की छाल गहरी वादामी रग की, पत्र ३-६ इन्च लम्वे एव २ इन्च चौडे आयताकार लवाग्र दन्तुर कडे। फल–कुछ वृक्षो के फल गोल १ इन्च से कुछ कम लम्वे, पकने पर वादामी रग के इसे शाह वलूत और कुछ के फल लम्वोत्तरे होते है। इसे 'वलूतुल मलिक' कहते हैं। फल के वाह्य छिलके के नीचे गूदे से चिपटा हुआ जो वारीक छिलका होता है, उसे 'जुफत वलूत' कहते हैं। इसका फल ही 'वलूत' कहलाता है।

इसके वृक्ष विशेपत शीत प्रदेशो मे पैदा होते हैं। भारत मे इसके जो वृक्ष हिमालय मे सिंधु नदी के किनारे से लेकर नैपाल तक पाये जाते है उनके फलो को सीता सुपारी, शिला सुपारी, वज, वाज, मारु, शिधार आदि नामो से पुकारते है। गुणधर्म मे वाहरी प्रदेशो के तथा भारत के वलूत मे कोई विशेप अन्तर नही है।

नोट—एक 'वलूती' नाम की वूटी भी होती है।



बलूत
QUERCUS INCANA ROXB

उसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त के नोट मे देखिये।

नोट—मोरु नामक प्रस्तुत प्रसग के बलूत की एक उपजाति (Quercus Dilatata) होती है। इसकी पत्तियो पर बने हुये कृमिग्रह (galls) स्वाद मे मधुर होने से ये खाये जाते हैं।

इसी की एक ईरानी उपजाति (Quercus Infectoria) होती हे जिससे माजूफल की उत्पत्ति होती है। आगे माजूफल का प्रकरण देखे।

नाम—

हिं—बलूत, बान, बाफ, बाज, सीता सुपारी है। अ.—कुमाऊ ओक (Kumaon Oak), ग्रे ओक (Grey-oak)। ले—क्वेर्कस इन्कैना। इसकी लकडी मे टेनिन पाया जाता हे।

प्रयोज्याङ्ग—फल, फल का गूदा, व फल के भीतर की बारीक छाल।

गुण धर्म व प्रयोग—

शीत, रूक्ष, सकोचक, मूत्रल, दीपन, रक्तस्तभन, तथा सुजाक, मदाग्नि, श्वास, उन्माद, शुक्रमेह, श्वेत-प्रदर, अतिसार, प्रवाहिका, आत्रव्रण, रक्तस्राव आदि मे प्रयुक्त किया जाता है।

फूलो को उपयोग मे लाने के पूर्व जमीन मे कुछ समय के लिये गाड कर फिर निकाल कर धो लेने से इनका कडुआ विकारी तत्व नष्ट हो जाता है।

श्वेत प्रदर में इसे पीसकर फलवर्ती बना गर्भाशय मे धारण कराते है तथा खिलाते भी है।

बहुमूत्र या वून्द वून्द मूत्र का आना, हस्तिमेह, शय्या मूत्र आदि मूत्र विकारो में बलूत २ भाग के साथ कुदर १ भाग पीसकर जैतून तेल मे मिला सेवन कराते है। अथवा इसे नागरमोथा आदि उपयुक्त द्रव्यो के साथ पीस कर चूर्ण रूप मे सेवन कराते है।

मुखपाक तथा शिश्न या अण्डकोप के व्रणो पर इसे जलाकर महीन चूर्ण कर छिडकते है। तात्कालिक हुये जखम पर इसे बुरकने से वह शीघ्र ही सूख जाता है। इसी प्रकार शरीर के किसी भी भाग मे होने वाले रक्त-स्राव या द्रव प्रवाह को बन्द करने के लिये इसे बुरकते या इसका लेप लगाते है। इसके उक्त चूर्ण को जल मे घोल कर पिलाते भी है। इसे पिलाने से रक्तष्ठीवन, आत्र व्रण, जीर्णातिसार, प्रवाहिका मे भी लाभ होता है या इसका क्वाथ बनाकर पिलाते है।

गुदभ्रश मे रोगी को इसके क्वाथ मे बिठाते तथा इसका चूर्ण छिडकते है।

आत्र वृद्धि मे इसका लेप करते हैं।

इसे पुरानी शराब के साथ पीसकर बालो पर लगाने से वे काले होजाते हे तथा उनका भडना बन्द होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण २-३ माशे। क्वाथ ६ माशे। अधिक सेवन से यह कण्ठ के लिये हानिकर है, सिर दर्द पेटफूलना, वात बढना, आत्र मे सुद्दे होना आदि विकार भी होते है। हानि निवारक—सिकजबीन, शक्कर या

खाद है। इसका प्रतिनिधि गुलनार है।

नोट—वलूती-इस बूटी के पत्र लहसुन के पत्र जैसे, हरिताभ कृष्ण वर्ण के अत्यधिक रोमश, पुष्प गोल पीत वर्ण के, तेज गंधयुक्त होते हैं।

इसकी जड व पत्र उष्ण व रुक्ष है। पत्तो को पीस कर शहद मे मिलाकर जड व पत्तों पर लगाने से उनका पीव निकलकर वे साफ हो जाते हैं। अर्श मे पत्तों को भूभल में दबाकर बांधने से बहुत लाभ होता है। पागल कुत्ते के दंश स्थान पर इसे नमक के साथ पीस कर लगाने से लाभ होता है— —व च.

वसक—देखें—वासक।

वसत (Hypericum Perforatum)

वसन्त कुल (Hypericaceae) की यह एक वर्ष जीवी बूटी समशीतोष्ण पश्चिमी हिमालय में कुमायू से काश्मीर तक ६ से ९ हजार फुट की ऊचाई तक पैदा होती है।

नाम—

हि -वसत, डंडलु, बालसत। अ -हायपेरिकन Hypericon ले हायपेरिकन परफोरेटम।

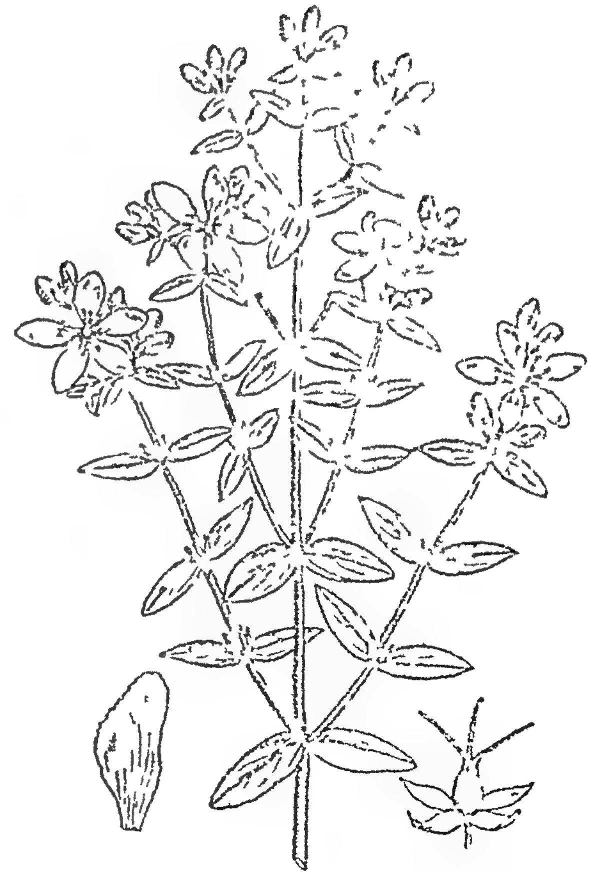
गुण धर्म तथा प्रयोग—

तिक्त, सुगन्धित, संकोचक, शोधक, मूत्रल, ऋतु स्राव नियामक, रेचक, कृमिनाशक, अर्श, व्रण आदि मे उपयोगी है।

इसके पत्र तीक्ष्ण, तिक्त, अग्निवर्धक, मृदुविरेचक, कृमिघ्न, अर्श, कर्णपीडा, अतिसार, गुदभ्रंश, योनिभ्रंश तथा विच्छू के विष मे भी उपयोगी हैं। इसकी छाल मूत्रल तथा मूत्र के विकारो और अर्श के लिए लाभदायक है।

बाह्य प्रयोग मे त्वचा के लिए यह उत्तेजक है। इसके फूलो मे एक उडनशील तैल, लालरंग की राल तथा लालरंग का पदार्थ होता है।

इस बूटी के स्वरस का जख्म, चोट, रगड तथा मोच के ऊपर लेप किया जाता है। इसका फाण्ट या शीत निर्यास जीर्ण जुकाम, आंत्र विकार एवं मूत्र मार्ग के विकारो पर बहुत सफलता के साथ प्रयुक्त किया जाता है। (नाडकर्णी, व० च०)

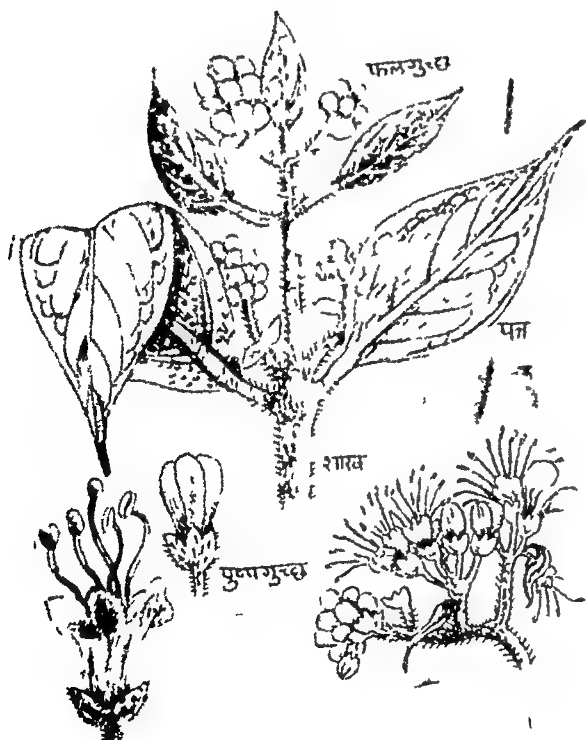


वसन्त
HYPERICUM PERFORATUM LINN

बसट्रा (Callicarpa Lanata)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस ऊचे वृक्ष की शाखायें गोलाकार, मोटी, रोमश, छाल—भूरी, खुरदरी, फटी हुई सी, पत्र—६–६ इञ्च लम्बे, ३-४ इञ्च चौड़े, बिम्बाकृति, घने रोमश, डंठ की ओर गोल, अग्रभाग में नुकीले, पृष्ठभाग मे चमकीले हरे, अध भाग मे श्वेत या पीले वर्ण के रोमाच्छादित, पत्रवृन्त–२ इ ची, गोल, रोमश, पुष्प— कुछ नलिकाकार गुच्छो मे फीके लाल रग के, पुष्प-वृन्त वहुत छोटा, फल—गुच्छो मे, चमकीले काले रग के, गोल ⅛ इ च व्यास के होते है। शीत काल मे फूल व फल आते है।

बसट्रा (ब मसान्दारी)
CALLICARPA LANATA LINN



इसके वृक्ष दक्षिण मे- कोकण, पश्चिमी-घाट, वम्बई, मद्रास व सीलोन में विशेष पैदा होते हे।

नाम–

हिन्दी—वसट्रा। म०—पोडी, कारीवाटी, इसपर। व०—मसन्दारी, मसन्दार। ले०—केलिकार्पा लेनेटा, केलि केना (Callicarpa Cana), केलि टोमेन्टोसा (C. Tomentosa,), केलि॰ वालिचियाना (C wallichiana।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र छाल व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग–

शीतल, स्निग्ध, मृदुकर, दाहनाशक, यकृदुत्तेजक है।

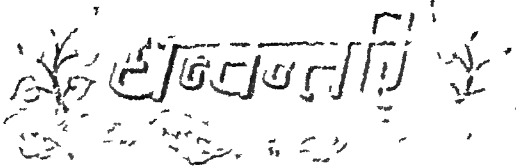
मूल तथा छाल का क्वाथ ज्वर की शाति, पित्त प्रकोप, यकृदावरोध, शीतपित्त एव चर्मरोगो पर दिया जाता है। १ भाग मूल या छाल के चूर्ण का २० भाग जल के साथ यह क्वाथ सिद्ध कर ६ मासा या १ तोला तक की मात्रा मे देते हैं।

मुख पाक या मुख के व्रण या छालो पर उक्त क्वाथ के, अथवा उसके पत्तो को दूध मे उबाल कर उसके कुल्ले कराते है।

बस्तियाज़ (Artemisia Stechmaniana)

भृंगराज कुल (Compositae) के खुराशानी अजवायन की जाति के सोया के क्षुप जैसे ऊचे, कटकयुक्त इस क्षुप की शाखायें एक बित्ता लम्बी, मूल या जड के समीप मे निकली हुई अग्रभाग मे खुरदरी घुडी से युक्त, पत्र–छोटे छोटे, खुरदरे, पुष्प—श्वेत व नीले, बीज–अजवायन के बीज जैसे, किन्तु स्वाद मे तिक्त व चरपरे, कुछ सुगन्धयुक्त होते है।

इसके क्षुप खुरासान व तुर्किस्तान के प्रदेशो के विस्तृत उत्कृष्ट भूभाग मे अधिक होते है। उधर से ही इसके बीज आदि का आयात इधर होता है।



नाम--

यूनानी व हिन्दी—वस्तियाज, दिरमना तुर्की, शीहतुर्की इ । ले —आर्टिमिसिया स्टेकमेनिएना ।

गुण धर्म व प्रयोग--

उष्ण, रूक्ष, लेखन, शोथ विलयन, विरेचक, मूत्र व आर्तव प्रवर्तक, कफ निःसारक, जीर्ण ज्वर नाशक, उदर कृमि नाशक, व्रण को शुष्क करने वाला है ।

वातज शोथ पर इसका लेप करते है । गंज पर—इसे जलाकर जैतून तेल मे मिलाकर लगाते हैं । बाल शीघ्र उग आते हैं । आमाशय की शोथ, जलोदर नाश, उदर कृमि नाशार्थ इसका क्वाथ पिलाते हैं ।

आर्तवप्रवर्तनार्थ—उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसका क्वाथ देते है ।

दांत व मसूढ़ों को शुद्ध करने के लिये—इसकी पतली टहनी या शाखा से दातौन करते है ।

नोट—मात्रा—१-३ माशा। यह आमाशय तथा मस्तिष्क के लिए हानिकर है । हानि निवारक कतीरा मस्तगी या तुरमुस है । प्रतिनिधि अफसंतीन तथा गुलाब है ।

—यूनानी द्रव्य गुण

वसौंटा—देखें - अडूसा

बहमन-सुफेद (Centaurea Behen)

भृंगराज कुल (Compositae) के भागरा जैसे क्षुपो की यह जडें हैं । ये क्षुप भारत मे पैदा न होने से इनकी शुष्क जडें—पर्शिया, ईरान, सीरिया, अरमानिया आदि देशो से यहा आती हैं । ये भूरे रग की जडें बाहर से सफेदी लिये हुए या श्वेताभ भूरे रग की, खुरदरी, अत्यन्त झुर्रीदार, पेंचदार तथा अग्रभाग मे अनेक गोल रेखाओ से अंकित होती है । काटने पर भीतर से श्वेत स्पंज जैसी , जल मे भिगोने पर फूलकर लुआबदार हो जाती है । स्वाद फीका, किंचित तिक्त तथा लुआबदार होता है ।

जो जडें कुछ वजनदार व कडी होती हैं वे तथा खुरासान से आनेवाली खुरासानी एव अरमीनिया से आने वाली अरमनी जडें विशेष उत्तम होती हैं ।



CENTAUREA BEHEM LINN

नाम–

हि —बहमन सफेद । अ —व्हाईट विहीन (White Behen) । व्हाईट हेपाटिक (White Rhapontic) ले —सेंटारिया विहीन ।

रासायनिक संघठन--

इसमें बेहमिन (Bahemin) नामक (एक चमकदार क्षारोद (अल्कलाइड) पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष आदि प्राय सब गुण धर्म व प्रयोग बहमन लाल जैसे ही है। यह कामोद्दीपक तथा कर्नल चोपरा के मतानुसार पाडु रोग व अश्मरी के विकारो पर विशेष प्रयुक्त होता है।

नोट—मात्रा—६ माशा। यह पित्त या उष्ण प्रकृति वालो के लिए हानिकर है। हानि निवारक उन्नाव, कतीरा तोदरी या मूसली सुफेद है। प्रतिनिधि—तोदरी या बहमन लाल है।

बहमन लाल (Salvia Haematodes)

तुलसी कुल (Labiatae) के तुलसी के पौधो जैसे पौधो की ये जडें हैं। उनकी शुष्क जडें जो बाजारो मे बिकती हैं। वे शुष्क छोटी लाल गाजर जैसी खुरदरी, झुर्रीदार सफेद बहमन की अपेक्षा अधिक कडी, वजनदार, कुछ टेढी सी तथा टूटने मे सख्त व कुछ सुगन्धयुक्त होती हैं। ये बाहर से कृष्णाभ रक्तवर्ण की व भीतर हलके लाल रग की होती हैं। स्वाद मे कुछ कसैली, मधुर एव लुआबदार होती है।

यह पर्शिया तथा भारतवर्ष मे भी अधिक पैदा होती है।

नाम—

हि—बहमन लाल। अ—रेड बहमन (Red Bahman), ब्लड वेन्ड सेज (Blood vened sage), रेड हेपाटिक (Red rhpontic)। ले—सल्विया हीमोटोड्स।

रासायनिक सगठन—इसमे वसा, टेनिक एसिड, बहमीन नामक एक तिक्त चमकदार क्षारोद (अल्कलायड) आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, वाजीकर, वृष्य, शुक्रवर्धक, हृदयोत्तेजक है। प्राय सर्व प्रकार की धातुविकृति, प्रमेह, नपुसकता या वीर्यक्षय व्याधियो मे इसका अकेले या उपयुक्त अन्य द्रव्यो के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है। प्राय इसका चूर्ण मिश्री मिलाकर दूध के साथ या इसके माजून का सेवन कराया जाता है। हृदय दौर्बल्य को दूर करने मे तथा हौलदिल, हृच्छूल एव हृदय के कपाटो की विकृति मे इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। यह शरीर मे वसा जातीय अश का अधिक सचयकर दुर्बल को भी सबल एव स्थूल बनाता है। वृक्क तथा बस्ति के विकारो मे तथा अश्मरी और रक्त की दूषित स्थिति मे इसका प्रयोग लाभदायक कहा जाता है।

नोट—मात्रा-६ मा तक। यह प्लीहा तथा उष्ण-प्रकृति वालो के लिये हानिकर है। हानि निवारक-उन्नाव व अनीसून है। प्रतिनिधि, मूसली, तोद्री या सफेद बहमन।

बहरोजा—देखो गन्धा बिरोजा, चीड मे। बहुफली—देखो औषफली तथा चेच (छोटी)।

बहेड़ा (Terminalia Belerica)

हरीतकी वर्ग एव हरीतकी कुल (Combrataceae) के १५ से १०० फुट (इससे भी कही २ ऊचे) इस वृक्ष का काण्ड--लम्बा, सीधा, गोल ८ से ३० फुट व्यासका शाखा—प्राय ६-१० फुट (कही २ इससे भी अधिक) लम्बी, छाल-½ इञ्च मोटी खुरदरी, पत्र-विषमवर्त्ती, छोटी-छोटी टहनियो पर अधिक सघन, वट या महुये के पत्र जैसे ३-६ इञ्च लम्बे, अण्डाकार कुछ चौडे, पत्रक—ताम्रवर्ण के दुर्गन्धियुक्त, पुष्प—३-६ इञ्च लम्बी सीको पर नन्हे नन्हे, पीताभ पुष्पो की मजरिया आती है।

फल—गोल १ इञ्च लबे धूसर वर्ण के, बीज युक्त होते है।

पतझड मे पुराने पत्ते गिरने पर जबकि नवीन पत्र

आते हैं, प्राय उसी समय (माघ, फाल्गुन मे) पुष्प आते हैं, तथा शीत काल के प्रारम्भ मे फल लग जाते हैं और अगहन, पूस तक पक जाते है।

गोद —इसके वृक्ष से बबूल की गोंद जैसी गोद निकलती है। किन्तु यह गोद विशेष उपयोग मे नही आती। यह स्वाद रहित होती है। इसे जगली लोग खाते हैं। यह जल मे भिगोने से फूलती तो है, किन्तु घुलती नही। अन्य गोदो के साथ मिलाकर यह वेची जाती है। आग मे जलाने से यह जलती है। इसके गुण धर्म के विषय मे कहा जाता है कि यह शातिदायक तथा विरेचक है।

इसके वृक्ष भारत व वर्मा मे विशेषत पहाडी जगली प्रदेशो मे अधिक पाये जाते हैं। चूने युक्त भूमि मे यह वृक्ष अधिक फूलता व फलता है।

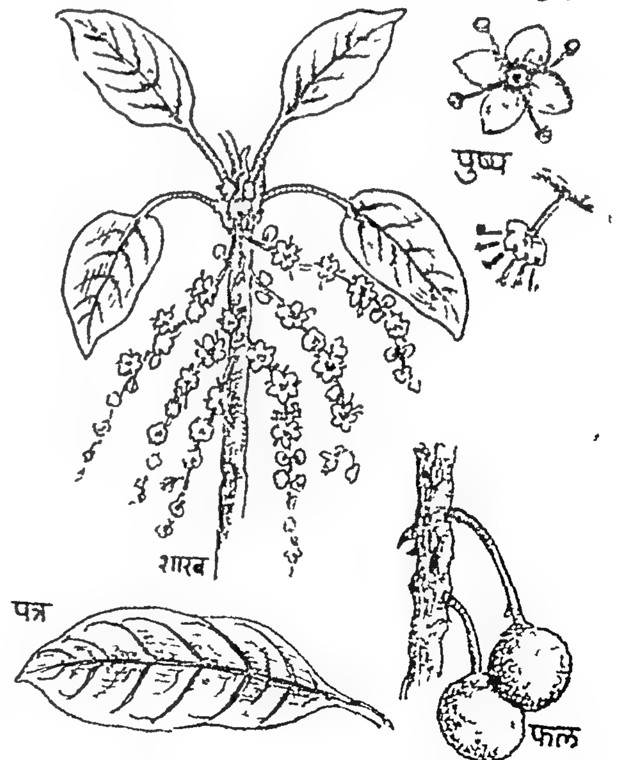
नोट १—छोटे और वडे फल के भेद से इसकी दो जातिया है। छोटी जाति के फल गोलाकार ½ से ¾ इच व्यासके तथा वडी जाति के फल अडाकार एव अपेक्षाकृत दूने वडे, वजन मे दो तोला तक होते है। वडे फलो मे टेनिन की मात्रा अधिक होने से विशेष गुणदायी है।

२—यह चरक के विरेचनीगण, ज्वरहर तथा सुश्रुत के त्रिफला, मुस्तादिगणो में लिया गया है। यह त्रिफला का एक अग होने से त्रिफलादि घृत, त्रिफलादि गूगल, अरिष्टादि मे लिया जाता है।

३—वाजार के वहेडे प्राय सच्छिद्र, कीडो से खाये हुए, या बहुत पुराने जिनके भीतर का गूदा भूरा या काला हो गया है ऐसे फल वेकार होते है। वे चिकित्सोपयोगी नही होते। चिकित्सा के लिए ऐसे फल लेने चाहिये जो कीटो से खाये हुये न हो, नवीन हो, आकार में वडे तथा रग मे उज्ज्वल, हरिताभ पीत वर्ण के गूदे वाले हो। प्राय नवम्वर से फरवरी-मार्च तक इसके फल परिपक्व होते हैं। और वाजार मे ग्रीष्मारभ मे ही ताजे फल आने लगते हैं। इसके पश्चात ये सुखाकर तथा गूदा अलग कर वेचे जाते है। सबसे उत्तम तो यह है कि जहा उसके वृक्ष हो वहा उक्त समय में जाकर फलो को वृक्षो पर से उतार कर शुष्क कर ठण्डे स्थान पर रखें या बोरियो, कनस्तरो मे वन्दकर रख लेवे।

नाम

स०- विभीतक (विगत रोग भयमस्मात् । विभ्यति रोगा अस्मात वा जिनके सेवन से रोग भय दूर हो जाता है या जिससे रोग भयभीत होते हैं।) कर्ष फल (जिसका फल १ से २ तोले वजन का हो), अक्ष (इसके फल अक्ष अर्थात जुआ खेलने में प्रयुक्त होते है) कलिद्रुम (जुआ मे प्रयुक्त होने से यह कलि-कलह का वृक्ष कहाता है अथवा■), भूतवास (काल रूप भूत का घर) इ.।



■ अथवा-राजा नल के सारथी वाहुक के शरीर मे छिपा हुआ कलि जब शाप के अन्त मे प्रकट हुआ, तब नल के शाप के भय से वह वहेडे के वृक्ष मे छिप गया, तथा उसे ही अपना घर वना लिया। अत यह वृक्ष कलिद्रुम या कलियुगालय कहाता है।

—महाभारत वनपर्व

हि॰—बहेडा, बहेरा, भैरा, बिरहा, गुल्ला इ० म०—बहेडा, धाटिङ्ग । गु०—बहेडो, बवेडा । बं०—बहेडा, भेरच । अ—बेड्डानट्स (Beddanuts), बेलिरिक मिराबोलन्स (Beliric myrobalans) । ले.—टर्मेनेलिया बेलेरिका ।

रासायनिक सगठन—फलो मे गेलोटेनिक एसिड (Gallo tannic acid) १७ प्रतिशत, कुछ रजक द्रव्य, व राल तथा बीजो मे एक हरिताभ पीतवर्ण का तैल २५ प्रतिशत पाया जाता है। तेल दो प्रकार का एक पतला पीतवर्ण का और दूसरा श्वेत घृत जैसा गाढा होता है। यह घृत के स्थान मे खाया भी जाता है ।

प्रयोज्याङ्ग—फल, बीजो की गिरी, तेल व वृक्ष की छाल ।

गुण, धर्म व प्रयोग

लघु, रूक्ष कषाय, मधुर, उष्ण वीर्य ■ मधुर विपाक त्रिदोष, विशेषत कफ पित्त शामक, दीपन, अनुलोमन, रक्त स्तम्भन, वेदना स्थापक, धातुवर्धक, कफघ्न, केशवर्धक, चक्षुष्य, शोथ (श्वास नलिका के तथा अन्य शोथों) को दूर करने वाला तथा अग्निमाद्य, आध्मान तृषा, वमन, अर्श, कृमि रोग, पलित, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभेद, रक्तष्ठीवन, सामान्य दौर्बल्य, नेत्र रोग नासारोग, रक्त दोष आदि मे उपयोगी है ।

बहेड़े का मुख्य कार्य विशेषत रस, रक्त, मास और मेद धातुओ पर होता है । इसका अर्धपक्व फल-रेचक है, यह विबन्ध पर दिया जाता है । पक्व शुष्क फल की छाल ग्राही, सकोचक, कफ नाशक तथा कठ एव श्वास-नलिका पर विशेष कार्यकारी है । इसे अतिसार व प्रवाहिका में देते हैं ।

(१) प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभग मे—इसकी छाल के टुकडे को मुख मे रखकर चूसते रहने से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है ।

(२) सद्योव्रण मे इसके चूर्ण को बुरकने से रक्तस्राव रुक जाता है ।

(३) नेत्राभिष्यन्द मे—इसका लेप नेत्रो पर लगाते हैं । वेदनायुक्त विकारो पर भी इसका लेप किया जाता है । आत्रवृद्धि पर भी इस लेप से शीघ्र लाभ होता है ।

(४) नपु सकता पर—छिलको के चूर्ण ६ माशा मे समभाग गुड मिलाकर प्रतिदिन सेवन से कामोद्दीपन होता है ।

(५) भिलावे के विष प्रकोप पर—फल के गूदे को जल मे पीसकर लेप करते, अथवा—इसके गूदे के साथ मुलैठी, नागरमोथा और चदन को जल में पीसकर लेप करते हैं ।

(६) भ्रम या चक्कर पर—फल के छिकके के जौ-कुट चूर्ण ६ माशा मे समभाग जवासा चूर्ण मिला, क्वाथ पकाकर उसमें घृत मिलाकर पिलाते हैं ।

(७) कास श्वास पर—फल का छिलका ५ तोला, लंवग, अनार का छिलका, कत्था प्रत्येक २½ तोला, कालीमिर्च १ तोला और कपूर ६ माशा, सबको कूट पीस कर रख लेवें । इसमें से ६ माशा लेकर एक पत्थर या काच की प्याली में शहद २ तोला व अदरख का रस ६ माशा मिलाकर ७ बार मे थोडा थोडा चाटने से खासी शीघ्र ही दूर होती है । —स्वानुभूत ।

अथवा—अच्छे पक्व शुष्क फलो के ऊपर घृत चुपड कर ऊपर से गेहू का आटा जल में सानकर चारो ओर मोटा-मोटा लेप कर, धीमी आच पर पकावें । ऊपर का आटा रोटी जैसा पक जाने पर निकाल कर, फलो के छाल के टुकडे कर रखें । १-१ टुकडा मुख मे धारण कर चूसते रहने से खासी शीघ्र दूर होती है । यह श्वास को भी दूर करता है ।

■ इस विषय मे मतभेद है—सुश्रुत सू स्था ४४ मे इसे अनुष्ण (न शीत न उष्ण) तथा ४६ अ मे उष्ण लिखते हैं । धन्वन्तरि चक्रपाणि, राजवल्लभ, नरहरि व हेमाद्रि इसे उष्ण कहते हैं । वाग्भट ने इसे शीत लिखा है । अरुणदत्त ने भी शीत वीर्य माना है । मालूम होता है इस मतभेद के समीकरण के लिये ही भावमिश्र, मदनपाल और कैयदेव ने इसके विषय मे लिखा है कि यह स्पर्श मे तो शीत है किन्तु वीर्य मे उष्ण है ।



नोट—गेहू के आटे के स्थान मे गाय का गोबर उक्त घृत से चुपडे हुए फलो पर लपेट कर कण्डो की मन्दाग्नि में दवा दे। अच्छी तरह स्वेदित हो जाने पर निकाल कर उनकी ऊपरी छाल को उतार रखें। इसका टुकडा चूमने से भी वही लाभ होता है। —शार्गधर

० इस स्वेदित छाल का चूर्ण बनाकर २ माशा तक की मात्रा में मधु से चटाने से श्वास व काली खासी भी दूर होती है। दिन मे ३ बार चटावें। —स्वानुभूत।

अथवा—फलो की छाल को घृत में भूनकर चूर्ण बना उसे अडूसा के पत्रो के रस में (७२ घटे) खरल कर उसका गोला बनाकर, आक के पत्तो में लपेट कर उसपर आधा अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर शुष्क कर कण्डो की मन्दाग्नि में रख दें। ऊपर की मिट्टी का लेप जब लाल हो जाय, तब गोले को निकाल कर, ठडा कर ऊपर की मिट्टी दूर कर भीतर से बहेडे के गोले को निकाल कर पीस कर रखें। इसमें से थोडा-थोडा चूर्ण मुख में रखकर चूसने से खासी अवश्य नष्ट होती है। —हा स।

अथवा—फल की छाल का चूर्ण २ भाग तथा पिप्पली का चूर्ण १ भाग एकत्र मिलाकर रखे। २-३ माशा की मात्रा मे शहद के साथ चाटने से भी खासी दूर होती है।

केवल छाल का चूर्ण ३ माशा तक की मात्रा में शहद के साथ मिलाकर भोजन के बाद सेवन से कास व श्वास मे लाभ होता है। —रा भा

अथवा—फल की छाल के साथ अतीस, नागरमोथा, पिप्पली, भारगी व सोठ समभाग का चूर्ण कर ३ माशा तक की मात्रा में मधु या उष्ण जल के साथ दिन में २ बार नियम से पथ्यपूर्वक सेवन से कास, श्वास तथा अपतत्रक में भी शीघ्र लाभ होता है। —ग नि.

नोट—इस योग को वासारिष्ट के साथ देने से श्वास व फुफ्फुस विकार नष्ट होते हैं।

अथवा—फल की छाल के चूर्ण को समभाग बकरे के मूत्र मे पकावें। गाढा हो जाने पर, उतार चिकने पात्र मे भर रक्खें। ३ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चाटने से कास, श्वास तथा प्रवृद्ध कफ का नाश होता है। —व से, वै जी, यो र.

नोट—उक्त योग को इस प्रकार भी बनाते हैं—छाल के महीन चूर्ण मे समभाग बकरे का मूत्र मिलाकर, बहेडे की लकडी के डडे से खूब खरल करें। शुष्क हो जाने पर पुन उतना ही बकरे का मूत्र मिलाकर घोटें। इस प्रकार ७ भावनायें देकर छायाशुष्क कर, महीन पीस शीशी मे रखलें। मात्रा-१ से ३ माशा तक शहद के साथ ४-४ घटे से दिन मे ३-४ बार देने से क्षयज कास, कुक्कुर कास मे तुरन्त लाभ होता है। खासी के लिए यह एक सर्वोत्तम योग है। निमोनियाँ की खासी एव फुफ्फुम प्रदाह मे-उक्त चूर्ण १ माशा, अभ्रक भस्म निश्चन्द्र शतपुटी ½ या १ रत्ती, मृगशृङ्ग भस्म २ रत्ती, तथा मुलैठी चूर्ण ४ रत्ती (यह १ मात्रा है) के मिश्रण को १ बार मे मधु या उष्ण जल से देवें। प्रति ३ घटे के अन्तर से ३ बार में देने से निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है।

— धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगाक भाग २ से।

अथवा कास, श्वास पर—फल का शुष्क गूदा और अनार का छिल्का ३-३ ग्राम, काली मिर्च ६ दाने तथा सेंधा नमक १½ ग्राम एकत्र पीस कर ३ मात्रायें बना, दिन में ३ बार उष्ण जल से देवें, शीघ्र लाभ होता है। या उत्तम स्वच्छ फलो के छिलको को दूने गोदुग्ध में भिगोकर २४ घण्टे बाद दूध से निकाल, भली प्रकार सुखाकर, महीन चूर्ण कर १ से २ ग्राम तक की मात्रा मे मधु या उष्ण जल से देने से अनेक प्रकार की खासी, श्वास, दमा मे लाभदायक है। चिकने गरिष्ठ एव शीत गुण वाले पदार्थ न लेवें। पीने के लिये गुनगुने जल का प्रयोग करें। हठीली खासी भी नष्ट हो जायगी।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल भारद्वाज,
१७६, खारी कुआ, मेरठ शहर

० अथवा फल का छिलका २० तोला तवे पर रख धीमी आच पर सेंक महीन चूर्ण कर उसमे १ तोला नौसादर (तवे पर सेंका हुआ) का चूर्ण मिला, खरल कर, १-२ माशा की मात्रा मे शहद के साथ प्रात साय चाटने से पुरानी खासी व श्वास नष्ट होता है।

० श्वास पर—फलो का छिल्का १ सेर लेकर ३ सेर जल में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर छानकर उस जल को एकत्र मिट्टी की हाडी मे भरकर पुन आग पर चढा उसमे शुद्ध नीला थोथा १ माशा, अडसा का क्षार, अपामार्ग का क्षार व नागकेशर प्रत्येक १½ तोला एकत्र मिला पोटली मे बाधकर हाडी मे लटका देवें (दोला यत्र की तरह पाक करें।) मटकी का सब जल शुष्क हो जाने पर पोटली को बाहर निकाल सुखाकर पीसकर शीशी मे सुरक्षित रखें।

ग्लूकोज या बताशे मे ½ रत्ती पिपरमेंट घोटकर उसमे उक्त क्षार ४ रत्ती मिला प्रात साय चटाने से श्वास दमा रोग ७ दिन मे अवश्य ठीक हो जावेगा

—गुप्त प्रयोग (आ० चिकित्सक)

— तमक श्वास (कफादिक श्वास रोग) पर—फलो का छिल्का १ सेर का महीन चूर्ण बना लेवे। फिर बबूल वृक्ष की अन्तर छाल, अपामार्ग पञ्चाग, कटेरी पञ्चाग १-१ सेर व भिलावा २० तो० लेकर जौकुट कर १५ सेर जल में पकावे। साढे तीन सेर क्वाथ शेष रहने पर छानकर पुन पकावे। गाढा होने लगे तब उक्त बहेडे का चूर्ण मिलाकर गाय या भैंस के घृत मे अच्छी तरह सेंक कर उसमे कुटे हुये तिल आध सेर तथा समान भाग बूरा (शक्कर) मिला २॥ तोला के लड्डू बना लें। यह लड्डू बलानुसार गरम दूध से सेवन करावें। आशातीत लाभ होगा। अनुभूत है।

—आचार्य सच्चिदानन्द जी दाधीच (रसायन)

(८) कण्ठ के विकार, स्वरभग, तथा अत्यधिक लालास्राव पर—कठशोथ या गल शोथ पर—फल का छिलका, अनार का छिलका, जवाखार और पिप्पली, समभाग एकत्र चूर्ण कर, गुड मिलाकर बेर जैसी गोलिया बनाकर चूसते रहने से लाभ होता है।

कठ में व्रण हो तो आग मे भूने हुए फल के छिलके को मुखमें रखकर धीरे-धीरे चूसते रहने से लाभ होता है।

स्वरभग या गले का बैठजाना—फल का गूदा, काजी, पिप्पली और सेंधानमक इनके अत्यन्त महीन चूर्ण को काजी में मिलाकर चाटने से या मक्खन में मिलाकर चाटने से लाभ होता है।

० लालास्राव—मुख से अधिक लार के बहने या कफ स्राव होने पर—फल के गूदे (वा छाल) का चूर्ण १½ माशे मे समभाग शक्कर मिला मुख मे रखते हैं।

० कफस्राव होता हो तो भूने हुए १ फल के छिलके का आधा भाग दिन के भोजन के बाद एक लगे हुए पान के बीडे मे रखकर तथा इसी प्रकार शेष आधा भाग शाम के बाद खाने से कुछ दिनो मे कफ स्राव होना दूर हो जाता है। साथ ही बल की भी वृद्धि होगी।

(९) अतिसार, नाभी टलना तथा पाडु रोग पर—

अतिसार पर—फलो को जलाकर, उसकी भस्म मे सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से प्रवृद्ध तीव्र अतिसार भी दूर हो जाता है। मात्रा ३ माशा दिन मे २-३ बार।

—व० से०

० नोट—इसका प्रयोग इस प्रकार करें—फलो की भस्म १ तोला मे सेंधानमकचूर्ण ३ माशा मिलाकर इसकी ४ मात्रायें बना, ४-४ घटे से १-१ मात्रा अनार के रस से या बेल के शर्बत के साथ या केवल जल से देवे। उत्तम सरल लाभकारी प्रयोग है।

नाभी टलने पर (आत्र की गिंडली उचित स्थान पर न रहने को नाभि टलना कहते हैं)—बहेडे का क्वाथ १-१ घण्टे के अन्तर से ३-४ बार पिलाने से नाभि उचित स्थान पर स्थिर हो जाती है तथा तज्जन्य अतिसार भी बन्द होता है। —गा औ र

पाडु रोग पर—(विभीतकाद्यो वटक)—बहेडा (फल की छाल), मण्डूर भस्म, सोठ और तिलका चूर्ण समभाग मे सबके बराबर पुराना गुड मिलाकर (६-६ माशा के) मोदक बना लेवें। १-१ मोदक प्रात साय तक्र के साथ सेवन से भयकर पाडु भी नष्ट हो जाता है। —ग नि

नोट—पाडु रोग पर 'विभीतकाख्य लवण' का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

(१०) ज्वर पर--विषम ज्वर हो तो बहेडा, अमलतास, कुटकी, त्रिफला और हल्दी का क्वाथ सेवन कराने से तृषा, दाह व विषमज्वर मे लाभ होता है। --ग. नि.

पित्तकफज ज्वर मे—बहेडा और जवासे के क्वाथ में थोडा घृत मिलाकर पिलाते हैं। इससे आखो के आगे अंधेरा आना, भ्रम (चक्कर) आदि विकार भी दूर हो जाते है।

वात कफज ज्वर में—इसका चूर्ण ४ मा की मात्रा में दिन मे तीन वार शहद के साथ चटाते है।

(११) हृदय के विकार तथा नेत्र विकार पर—

वहेडा तथा असगन्ध के समभाग चूर्ण में पुराना गुड मिलाकर (३-४ माशा की मात्रा मे) पकायेहुए सुखोष्ण जल के साथ सेवन से हृदयगत दूपित वात एव तज्जन्य हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं। —वा स

नेत्र विकारो पर—(विभीतकादि घृत) वहेडा, हरड, आमला, परवल, नीम की छाल और अडूसा समभाग एकत्र जोकुट कर २ सेर चूर्ण को १६ सेर जल मे पका, ४ सेर जल शेप रहने पर छान लेवे तथा उसमें उक्त ६ द्रव्यो को एकत्र ६ तोला ८ माशा लेकर जल के साथ पीसकर वनाये गए कल्क को और १ सेर गोघृत (अभाव मे भैंस का घृत) मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर छानकर रख लें।

१ या २ तोला घृत को प्रात साय गोदुग्ध के साथ सेवन से समस्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं। —यो. र

तिमिर नाशक-(विभीतकादि तैल) उक्त घृत के प्रयोग के ६ द्रव्य समभाग मिश्रित १३ तोला ४ माशा का कल्क कर अरहर के ८ सेरक्वाथ (क्वाथार्थ अरहर ४ सेर जौकुट कर ३२ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ करें) तथा २ सेरतिल तैलमे एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लेवें। इस तेलके सेवन तथा सिर पर मालिस व नेत्रो मे लगाने से तिमिर रोग (द्रष्टिगत द्वितीयपटल मेदोपज दृष्टिमाद्य Amaurosis) नष्ट होता है। —वा स

नेत्र पाक पर—उक्त प्रयोगो के ६ द्रव्यो के क्वाथ मे शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन से शोथ एव शूलयुक्त नेत्र पाक (Ophthalmia) मे लाभ होता है। —वृ मा

(१२) कर्णस्राव तथा केशपात पर—

कान से पूय का वहना—वहेडा, वच, कूट तथा मैनसिल का चूर्ण २-२ तोला तथा तिल तेल १ सेर और जल ४ सेर एकत्र मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर रख लें। इसे कान मे डालते रहने से शीघ्र ही (विशेपत वालको का) पूति कर्ण रोग दूर होता है। —वा मे।

इस तैल से अन्य कर्ण रोगो मे भी शीघ्र लाभ होता है।

केश पात—सिर के वाल झडते हों तो बहेडे के चूर्ण को जल मे भिगोकर सिर पर मर्दन करें १५ मिनट वाद जल से धोकर साफ कर भृगराज तैल (भागरे का तैल) प्रतिदिन प्रात लगा लिया करे शीघ्र ही वालो का झडना बन्द हो जाता है।

(१३) ग्रन्थि, विसर्प तथा वदगाठ पर—ग्रन्थि विसर्प [कफ वातज विसर्प (Erysipelas) इसमे शरीर पर छोटी मोटी अनेक गाठें निकलती है। गाठो मे वेदना होती तथा मोह, भ्रम, व्याकुलता, अग्निमाद्य, काम, श्वास अतिसार, कठशोप, वमन किसी को हिक्कादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। नव्य मतानुसार यह कीटाणुजन्य माना गया है।] पर वहेडे के चूर्ण का मोटा लेप करें या पुल्टिस वाधें, व ऊपर से सेंक करें लाभ होता है। साथ-साथ उदर सेवनार्थ हरड व चिरायते का क्वाथ या अन्य औपधि भी देनी चाहिये। —गा औ र।

वद की गाठ पर—फल के छिलकों को रेंडी तैल में भून कर तेज सिरके में पीसकर लेप करते रहने से २-३ दिनो मे गाठ वैठ जाती है। —यूनानी प्रयोग

वीजो की गिरी या मज्जा—लघु, कपाय, मधुर, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, प्रभाव में मादक तथा कफ वात नाशक, तृषा, वमन, कास, श्वास, हिक्का, वेदना, शोथादि में उपयोगी है। इसका मद या नशा साधारण अफीम के समान होता है, इसकी नशा की वेहोशी में ऐसा मालूम देता है मानो गहरी नीद मे सो रहा हो। यह सद्योमारक नही है, अधिक मीगी या गिरी खाने से वामक है एव जो कुछ विप प्रभाव होता है, वह भी उक्त प्रकार का साधारण नशा होता है। न्याय वैद्यक में क्वचित ही इससे वालको की मृत्यु के उदाहरण मिलते है।

यह गिरी नासिका तथा नेत्र के विकारो को नष्ट

करने वाली, कृमि नाशक, केशो के लिये परम हितकर है। अनिद्रा मे इसका प्रयोग करते हे। गिरी का लेप शोथ, दाह, वेदना तथा खुजली पर भी करते है।

(१४) वमन, तृषा तथा पित्त ज्वर पर—

वमन पर—इसकी गिरी मुनक्का व छोटी इलायची १०-१० ग्राम तथा पोदीना सत्व १½ ग्राम एकत्र थोड़े जल के साथ खरल कर ¼ ग्राम भार की गोलिया बना कर ताजे जल के साथ (१-२ गोली) देवे।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

अथवा—इसकी १ से ३ गिरी तक शहद में घिसकर दिन में २-३ बार चटावें।

तृषा पर—इसकी ३ या ५ गिरी १-२ तोला जल में ३-३ घटे से। पीस कर पिलावें।

पित्त ज्वर की व्याकुलता निवारणार्थ—गिरी को जल या ठडे दूध के साथ चटनी जैसा पीस कर शरीर पर लगाने से दाह, व्याकुलता एव अधिक उत्ताप की शाति होती है।

(१५) नेत्र के विकारो पर—इसकी गिरी २ भाग, आमले की गुठली की गिरी ३ भाग और हरड की गुठली की गिरी १ भाग, सबको गुलाब जल के साथ खरल कर वटी बना लेवे। इसे प्रात साय में आजने से नेत्रस्राव, तिमिर, वातज एवं रक्तज नेत्र पीड़ा, दृष्टिमाद्य आदि शीघ्र ही दूर होते हैं। —भा प्र

तिमिर पर—इसकी गिरी, काली मिर्च, आवले का गूदा, नीला थोथा (फुलाया हुआ) और मुलैठी को जल से पीसकर वर्ती बना छायाशुष्क कर रखें। इसे नेत्र मे आजने से शीघ्र लाभ होता है। —वा० भ०

पित्ताजपटल रोग पर—इसकी गिरी, शखनाभि और सेंधा नमक समभाग का महीन चूर्ण कर. उसे काजी मे घोट कर और समभाग गुड में मिला बत्तिया बना ले। इसे आख मे आजने से लाभ होता है। —हा०स०

आखो का फूला—गिरी को स्त्री दुग्ध मे या शहद में प्रतिदिन रात के समय आजने से लाभ होता है—भै र

नेत्राभिष्यन्द (आख आना) पर—गिरी को बकरी के दूध मे घिसकर प्रात साय लगाते है।

(१६) अश्मरी आदि मूत्र विकार तथा शोथ, ग्रन्थि आदि पर—इसकी गिरी तथा खरेटी मूल, गोखुरू, कौंच के बीज, तालमखाना, चावल, देवदारु, तथा चित्रक सम भाग मिश्रित जौकुट कर, उसमे से २ तोला लेकर शीतल जल के साथ पीसकर, कल्क बना मधु के साथ सेवन से सभी प्रकार के मूत्र दोषो की शुद्धि एव अश्मरी का नाश होता है —सु० उ० अ० ५८

अथवा इसकी गिरी को जवाखार के साथ पीसकर जल के साथ पिलाते हे तथा ऊपर से ताजा जल अधिक मात्रा मे पिलाते हे। उससे भी मूत्राश्मरी एव वृक्काश्मरी मे लाभ होता है।

शोथ ग्रन्थि आदि पर—इसकी गिरी को थोडे जल के साथ पीसकर सर्व प्रकार की शोथ, पीडा, दाह एव ग्रथि पर लेप करने से लाभ होता हे। ग्रन्थि पर लगाने के लिए लेप या कल्क को कुछ गरम कर लेवें।

अग्निदग्ध स्थान पर भी उक्त प्रकार का लेप दाह को शात करता हे।

—नोट—बहेड़े की गुठली की गिरी के स्थान में आमले की गुठली को गिरी ले सकते है। दोनो के गुण, धर्म एक समान ही हैं —भा प्र

बीज गिरी का तेल—इसके गुण, धर्म उपर्युक्त गिरी के अनुसार ही है। यह गुरु, स्वादु, शीतल, वीर्य वर्धक कातिवर्धक, कफजनक, वातपित्तनाशक, अग्निमाद्य, चर्म-श्वेतकुष्ठ, पालित्य (केशो का पकना, श्वेत होना,) शोथ, दाह, खुजली नाशक तथा केश्य (केशो को पुष्ट करने वाला) है।

(१८) केशो को हितकारी—इस तेल को केशो मे लगाने से उनका झडना या टूटना, बन्द होता तथा केश श्याम, काले, सघन एव सुदीर्घ होते है। नियमित प्रतिदिन लगाते रहने से केश अकाल मे ही श्वेत नही हो पाते हैं।

(१९) आमवात पर—वेदनायुक्त अङ्गो पर इस तेल के मर्दन से वेदनायुक्त शोथ नष्ट हो जाता है।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

खुजली आदि चर्म रोगो पर तथा श्वेतकुष्ठ पर भी यह लगाया जाता है।

छाल—वृक्ष की छाल-रक्ताल्पता पाडु रोगो, अतिसार श्वेतकुष्ठ आदि मे उपयोगी है ।

(१९) अतिसार मे—छाल के महीन चूर्ण में लौंग का चूर्ण मिलाकर १ से २ मा० की मात्रा में दिन मे २ वार चटाते है ।

(२०) श्वेतकुष्ठ तथा पुण्डरीक कुष्ठ पर—वृक्ष की छाल तथा काकोदुम्बर (कठगूलर) की जड की छाल समभाग जौकुट कर २½ तोला चूर्ण को २० तोला जल मे १२ घन्टे भिगोकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे १ तोला पुराना गुड मिला बावची बीज के चूर्ण का १२ रत्ती प्रक्षेप देकर नियमित, पथ्यापथ्य के पालनपूर्वक सेवन करने से श्वेत कुष्ठ एव पुण्डरीक कुष्ठ (यह महाकुष्ठ का एक भेद है ।) दोनो मे लाभ होता है—भै र.

नोट—मात्रा—फल (गूदे सहित शुष्क फल के छिलके का) चूर्ण १ से ६ माशे तक । ध्यान रहे प्रयोगो मे जहा जहा फल का छिलका लिखा हे, वहा वह गूदे सहित ही लिया जाता हे । क्वाथ ३ से ५ तोला तक । तैल ३-५ बूद-इसका अधिक सेवन आत्र एव गुदा के लिए हानिकर है । हानि निवारक शक्कर तथा शहद है । इसके प्रतिनिधि आवला, काली हरड तथा मेहदी की कली है ।

विशिष्ट योग--

(१) विभीतकासव (सीधु)-वहेडे के क्वाथ मे गुड और धाय के फूलो को मिला, कुछ दिन रखते है । वाद मे जो सीधु (आसव) तैयार होता है वह पाण्डुरोग नाशक, व्रणो के लिये हितकर मग्राही कषाय, मधुर, पित्त नाशक तथा रक्त प्रसादन है । —सु सू अ ४५ ।

(२) विभीतकाख्य लवण—(माण्डूरलवण)—मण्डूर को वहेडे की अग्नि मे तपा-तपा कर आग के समान लाल कर वार-वार गोमूत्र मे बुझावें । उसका चूर्ण हो जाने पर उसमे समभाग सेधानमक व सवसे चौगुना गोमूत्र मिला, सवको मटकी मे भर मुख मुद्रा कर चूल्हे पर चढा, नीचे वहेडे की लकडी की आग लगावे । समस्त गोमूत्र जल जाने पर अग्नि देना वन्द कर स्वाग शीतल हो जाने पर मटकी मे से औषध को निकाल पीसकर रख लेवें । मात्रा १ से ३ माशा तक तक्र या शहद के साथ सेवन से पाडु नष्ट होता है । पाण्डु रोग के लिए यह सर्वोत्तम प्रयोग है । —रसराज सुन्दर से ।

(३) मुरब्बा वहेडा—इसके फलो मे ८ गुना जल मिला, कलईदार पात्र मे भर आग पर पकावें । जव जल लगभग आधा रह जावे तव वहेडो को अलग निकाल कर उस जल मे मिश्री मिला गाढी चाशनी का पाक करें तथा उस पाक मे उक्त पकाये हुये वहेडो को और थोडा पिप्पली चूर्ण मिला, उत्तम चिकनी मटकी या अमृतवान मे भर रखें । यह मुरब्बा जितना जूना होगा उतना ही विशेष गुणदायक होगा । कास (खासी) के रोगी के लिये यह अधिक लाभकारी है । —व गु ।

वाक—देखें—वलूत । वाघ ककोडा—देखें—ककोडा वाझ । वाझ खेखसा—देखें—ककोडा वाझ ।
वादरा—देखें वनकगनी ।

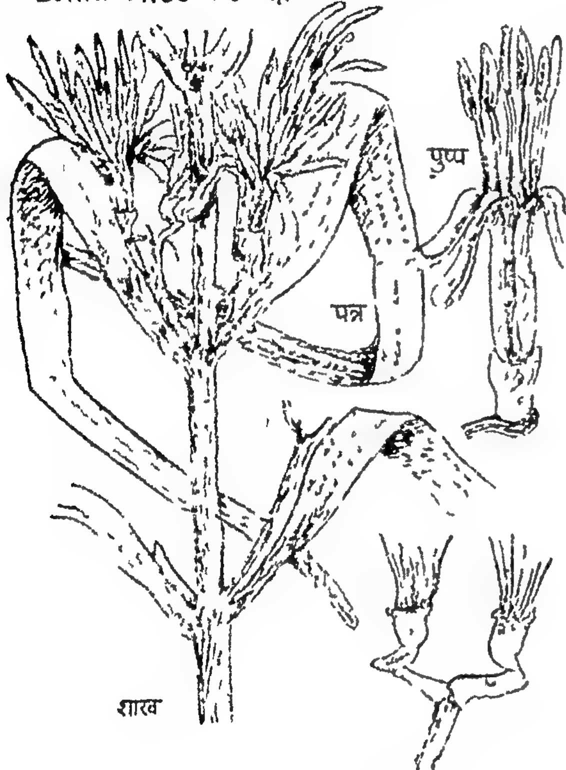
वांदा वड़ा [Lorenthus Longiflorus]

गुडूच्यादिवर्ग एव अपने ही वन्दाक कुल (Loranthaceae)* के प्रमुख इस आम, ववूल, महुआ आदि के वृक्षो पर पराश्रयी रूप से उत्पन्न होने वाले पौधे की शाखायें विविध आकार की, कोई सीधी खडी हुई ३-५ फुट लम्बी, किसी की शाखायें नीचे को लटकने वाली होती हैं । ये शाखायें चिकनी, पतली, धूसरवर्ण की, छाल-छाल भूरी मुलायम, पत्र—जिस पेड पर यह पैदा होता है, प्राय उसी पेड के पत्तो के आकार प्रकार के किन्तु

* इस कुल के पौधो के पत्र-प्रायः अभिमुख, अखड, मासल, उपपत्र रहित, पुष्प—पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल विभक्त या सयुक्त, पुकेशर ४-८ अधःस्थ बीजकोष, फल मासल, एक या अनेक बीजयुक्त होते हैं तथा इस कुल के पौधे पराश्रयी होते हैं ।

बान्दाबडा

LORANTHUS LONGIFLORUS DESR



प्रस्तुत प्रसग के बडे बादे के पत्र मोटे, चिकने प्राय ३ से १० इञ्च तक लम्बे, ½ से ५ इञ्च तक चौडे ऊपर की ओर सकडे, चिमटे अण्डाकार, प्राय लसोडे के पत्र जैसे किन्तु अधिक लम्बे व कम चौडे, पत्र वृन्त—½ १ इच लम्बे कडे होते हैं। पुष्प—कृष्णाभ लाल, नीले या श्वेत रग के १-२ इञ्च लम्बे, सपर्ण कोप नलाकार १ से ४ इञ्च लम्बी कलगी पर बाह्यकोप की नली गोल ऊपर का भाग कप (प्याले) के आकार का, छोटे-छोटे ५ दात वाला आभ्यान्तर कोप पीछे की ओर विदीर्ण सा पुकेशर फल कुछ गुलाबी रग के छोटे छोटे खिरनी जैसे—½ इञ्च लम्बे, अण्डाकृति, लमदार, एक बीजयुक्त होते हैं।

नोट—ये बादा कहाने वाले पौधे प्राय वृक्षो के उन डाल आदि स्थानो पर पैदा हो जाते हैं, जहा खोखलापन या गढा हो गया हो, तथा उसमें कुछ मिट्टी या गर्द भर गई हो पक्षी के वहा बीट कर देने से पौधा ऊग आता है। कुछ दिनो तक उसी मिट्टी आदि मे आश्रय प्राप्त कर वह फिर उस पेड की शाखा आदि का आश्रय कर उसी के रस से अपना पोपण करना प्रारम्भ कर देता है तथा जिस पेड पर यह होता है उसी पेड के नाम से पुकारा जाता है—आम का बादा, बबूल, बड आदि का बान्दा कहाता है। यह जिस पेड पर हो जाता है, वह पेड फलोत्पत्ति मे असमर्थ होकर प्राय शीघ्र ही सूख जाता है। अत पेड की रक्षा के लिये पेड के जिस स्थान पर यह पैदा होता है। उस स्थान को या भाग को साव धानी से काट दिया जाता है।

ये बान्दा नाम के पौधे—हिमालय के समशीतोष्ण एव उष्ण प्रदेशो में ३ से ७ हजार फुट की ऊचाई तक तथा उत्तर प्रदेश, गुजरात, काठियावाड, कच्छ, विहार, पजाव, मद्रास, आसाम आदि मे तथा प्राय सर्वत्र ही पाये जाते है।

नोट—इसकी अनेक जातिया है—छोटा बान्दा (Loranthus Globusus), किसमिस काबुली (Viscum Album) आदि मुख्य-मुख्य ५-६ जातियो का वर्णन आगे के प्रकरणों मे क्रमश नम्बरवार देखिये।

चरक के मूत्रविरेचनीय, हिक्का निग्रहण, शुक्रजनन में तथा सुश्रुत के वीरतर्वादि गणो मे एव चुच्चू, यूथिकादि शाको के साथ भी इसकी गणना की गई हे और कहा है कि इसका शाक वातनाशक होता है—सु सू. अ ४६ और अश्मरी, गर्भरक्षा, आमपाचनादि प्रयोगो मे यह लिया गया है।

रास्ना कुल (Orchidaceae) के बगदेशीय रास्ना (Vanda Roxburghii) को भी पराश्रयी होने से बान्दा कहा जाता है। रास्ना का प्रकरण यथास्थान देखिये।

नाम--

स —बन्दाक, बन्दा, वृक्षादनी (वृक्षो को खाने वाला), वृक्षरुहा इ । हिन्दी—बादा (बडा), बन्दा, परगाछा, अमुट, पाडा इ । म —बाडगुल, बादोलें। गु —बादो । व.—मान्दा बडा । अ —पारासाईट आफ दी ट्री (Parasite of the tree)। ले.—लारेन्थस लागिफ्लोरस, डेंड्राफथी फेलकेटा (Dendrophthoe Falcata)

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, पुष्प, फल, पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोष शामक, मलग्राही, स्तम्भन, हृद्य, दीपन, कफघ्न, वीर्यवर्धक, रसायन, रक्तशोधक, नाडीबलदायक, मूत्रल, आक्षेपशामक, गर्भस्थापक, मस्तिष्क संशोधक, व्रणरोपण, वशीकरण को सिद्ध करने वाला, तथा उन्माद, अपस्मार, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार, हृद्रोग, रक्तविकार, शोथ, कास, श्वास, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मासिक धर्म सम्बन्धी कष्ट, विषविकार, भूतबाधा आदि मे उपयोगी है।

जिस जाति के वृक्ष पर यह होता है, प्राय उसी के गुण धर्म इसमे पाये जाते है।

डा० देसाई के मतानुसार इसके पत्र व पुष्पों को पीस गरम कर शोथ तथा मन्द रक्तगुल्म पर बाधने से शोथ दूर होता है।

हृद्रोग जन्य श्वास, क्षयरोग जन्य श्वास तथा कफ के साथ होने वाले रक्तस्राव, अपस्मार, उन्माद और आशुकारी दाह (फुप्फुस प्रदाह) शोथ आदि रोगो पर इसके पुष्पों का प्रयोग किया जाता है। इन रोगो मे पुष्पो की क्रिया प्रथम रक्तवाहिनी एव हृदय पर होकर, उनके द्वारा लाभ पहुचता है। ज्वर मे भ्रम होने पर यह औषधि दी जाती है।

हृद्रोग मे—हिक्का और मूत्र की जलन इसके सेवन से कम होते हैं।

शोथ, व्रण व क्षत मे इसका लेप करते हैं। बालको के मुखपाक मे—इसके पत्रो को महीन पीसकर बुरकते हैं। रगड, रक्तातिसार तथा रक्त निष्ठीवन मे पत्तो को जल मे पीस छानकर पिलाते है।

(१) रक्त निष्ठीवन तथा कफ के साथ रक्त आने पर व श्वास पर—इसके पत्तो को गिलेअरमनी (यह लाल रग की एक प्रकार की नरम, चिकनी, किंचित सुगधित, स्वाद मे फीकी मिट्टी है, यह जिह्वा पर चिपक जाती है। यह ईरान की ओर से इधर आती है। इसके अभाव में सोना गेरू लेते है) के साथ पीसकर पिलाते है।

श्वास पर—नीम का बादा, पत्र सहित कूटकर चिलम मे रख धूम्रपान करने से १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(२) कर्ण शूल पर—इसके पत्तो को केले के पत्र मे लपेटकर भूभल मे सेंककर, हाथों से मसलकर रस निचोड, उसमे थोडा शहद मिला कान में डालने से कान के भीतर की फुसी तथा शूल दोनो का निवारण हो जाता है। कान को शीतल जल व वायु न लगने देवें तथा रात्रि के समय १०-२० मिनट हल्का सेंक कर कपडा बाध देवें।
—गा. औ र.।

(३) अतिसार पर—बेर, आम, जामुन या बबूल के वृक्ष पर होने वाले बादे के पत्तो का रस १ से २ तोला तक दिन में ३ बार सेवन कराते हैं। अतिसार में लाभ होता है।

(४) विषम ज्वर पर—बेल वृक्ष के बादे के चूर्ण को तक्र, या घृत के साथ सेवन मे विषमज्वर के कष्ट साध्य विकार भी नष्ट हो जाते हैं। —भा भै र।

अथवा—कनेर या अन्य जहरीले वृक्ष पर के बादे का चूर्ण तक्र, घृत, दही के घोल, मठे या हीग के साथ दिन में २-३ बार देने से लाभ होता है। यह भ्रम, मन्द प्रलाप आदि को भी दूर करता है। —गा औ. र

साधारण ज्वर पर—बडे पत्तो वाले बादे को जल के साथ पीसकर निकाले हुए रस को पिलावें। —व. गु

(५) गर्भ धारणार्थ—गूलर (या वड़) वृक्ष पर के बादे को कूट पीसकर निकाले हुए रस की १०-२० बून्दें, स्त्री को मासिक धर्म से शुद्ध होने पर चौथे दिन से नित्य प्रात ३ दिन तक बकरी के दूध के साथ पिलावें।
—वै० म०

अथवा—बेर, अनार या बबूल के वृक्ष पर के बांदे को गाय के दूध के साथ पीसकर मासिक धर्म के बाद १३ दिन तक पिलाने से गर्भाशय शुद्ध होकर, गर्भधारण के योग्य हो जाता है।
—व. च।

अथवा—पलाश वृक्ष के ऊपर का बादा रोहिणी-नक्षत्र मे लाकर, योनि में रखने से स्त्री गर्भधारण मे समर्थ होती है।

(६) भग्नास्थि सधान के लिए—कहा जाता है कि इसके ताजे पत्रो को या पचाग को कूट पीसकर निकाला हुआ रस पिलाने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है।

(७) नेत्र विकार पर तथा वशीकरणार्थ—सिरस वृक्ष का बादा घिसकर उसके रस को स्त्री के दूध मे मिला, नेत्रो मे डालने से समस्त नेत्र रोग दूर होते है।

वशीकरणार्थ—सिरस के ही वृक्ष का बादा, अश्विनी नक्षत्र में लाकर जल के साथ घोटकर पीवें तो जिसको चाहे वही दृष्टिमात्र से वश मे हो जाय। —सकलित।

पुष्प के गुणधर्म--उपर्युक्तानुसार ही हैं। ये हृद्विकार जन्य श्वास, हिक्का, क्षय जन्य श्वास, फुफ्फुस शोथ, रक्त-पित्त, कफ के साथ रक्तस्राव होना, अपस्मार, उन्माद, मूत्रदाह, नूतन शोथ आदि मे उपयोगी हैं।

फल—कास तथा अतिसार पर—फलो का अजीर के साथ क्वाथ बनाकर पिलावें।

मूल—

शीतला (मसूरिका, चेचक) पर—सहिजना के वृक्ष पर के बादे की जड़ को लाकर उस पर कपडमिट्टी कर, गरम राख (भूभल) मे दवाकर उसके गरम हो जाने पर २-४ बूद रस निचोड कर उसमें गूलर के पत्तो पर की छोटी-छोटी ग्रथियो को (या पत्र रस के ही) रस को और गौरोचन $\frac{1}{2}$ रत्ती तथा शहद मिलाकर चटाने से चेचक का जोर कम हो जाता है। ध्यान रहे इस प्रयोग को जिस दिन चेचक का ज्वर चढता है, उसी दिन नही देना चाहिए। अन्यथा इस योग की जितनी बूदें दी जावेंगी उससे तीन गुना अधिक चेचक के व्रण शरीर पर उठेंगे। —व गु

बिच्छू के विष पर—मूल को जल मे घिसकर, गरम कर लेप करते है।

नोट—मात्रा—चूर्ण २ से ५ माशा। पत्ररस ३ तो. तक।

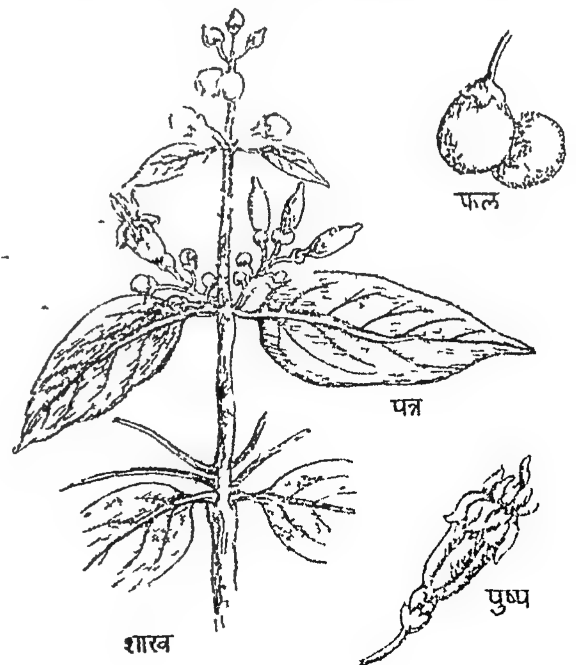
अधिक मात्रा मे—विबन्ध कारक है। निवारणार्थ—काली मिर्च तथा शहद।

तन्त्र ग्रन्थो में बादा के तान्त्रिक प्रयोग वशीकरण, भूतबाधा आदि पर विस्तार से वर्णित हैं। अर्श, रक्तार्श, रक्तातिसार के निवारणार्थ कहा जाता है कि रविवार के दिन सूर्योदय के पूर्व इसकी शाखा को तोडकर, उसके मध्य भाग मे रोगी अपने हाथो से ७ लाल धागे बाधकर रख ले। उसे लाभ हो जावेगा। इत्यादि कई प्रयोग तान्त्रिक ग्रन्थो मे देखिये।

लिसोडा (बडा) वृक्ष का बादा धनिष्ठा नक्षत्र में लाकर सोने चादी के जेवरो मे रख देने से वे सदैव बढते एवं स्थिर रहते है। इसी बादे को दूध या जल मे घोटकर पीने से वात गुल्म दूर होता है। खाने तथा लगाने से श्वेत कुष्ठ मे लाभ होता है। —सकलित

बांदा [छोटा] नं. २
(Loranthus Globusus)

उक्त कुल के ही इस पराश्रयी सूक्ष्म रोमश, अनेक शाखा युक्त पौधे के पत्र उक्त बादा नं १ के पत्र जैसे,





किंतु छोटे, पुष्प—हरिताभ पीत वर्ण के, सूक्ष्म लोमयुक्त पुष्पदण्ड ⅓-⅕ इञ्च लम्बा, पुष्प नलिका लम्बी, चिपटी लाल वर्ण की, फल गोलाकार होते हैं।

दिसम्बर से मार्च तक पुष्प तथा मार्च से एप्रिल मास तक फल आते हैं।

यह बांदा समग्र बंगाल तथा खासिया आदि पहाडी प्रदेशो मे पैदा होता है।

नाम—

हि. व बंगला—बांदा छोटा। ले.—लोरेंथस ग्लोबुसस मेक्रोसोलेम—कोचिन चिनेंसिस (Macrosblem Cochin chinensis Lour)।

गुण धर्म व प्रयोग।,-

उक्त बांदा नम्बर १ के जैसे ही।

बांदा नं. ३ [चुल्लू का बांदा] (Viscum Album)

उक्त बंदाक कुल (Loranthaceae) के इस पराश्रयी क्षुप का काण्ड अनेक शाखायुक्त, नलिकाकार २-३ फुट व्यास का पीला, हरा, शाखाये द्विविभक्त या चक्राकार क्रम से निकली, हुई, पत्र-अभिमुख १-२ इञ्च लम्बे, ½ इञ्च चौडे, आयताकार या अनेक आकार के मोटे फीके हरे निम्न भाग मे ३-५, शिराओ से युक्त वृन्तरहित, पुष्प—प्रति गुच्छो मे ३-५ पुष्प, फल—साधारण गोल ¼ इञ्च से कुछ अधिक व्यास के, श्वेत, चिकने, पारदर्शक ताजी दशा मे हरे, सूखने पर कृष्णाभ भूरे रग के, खशखस जैसे १ बीज युक्त होते है।

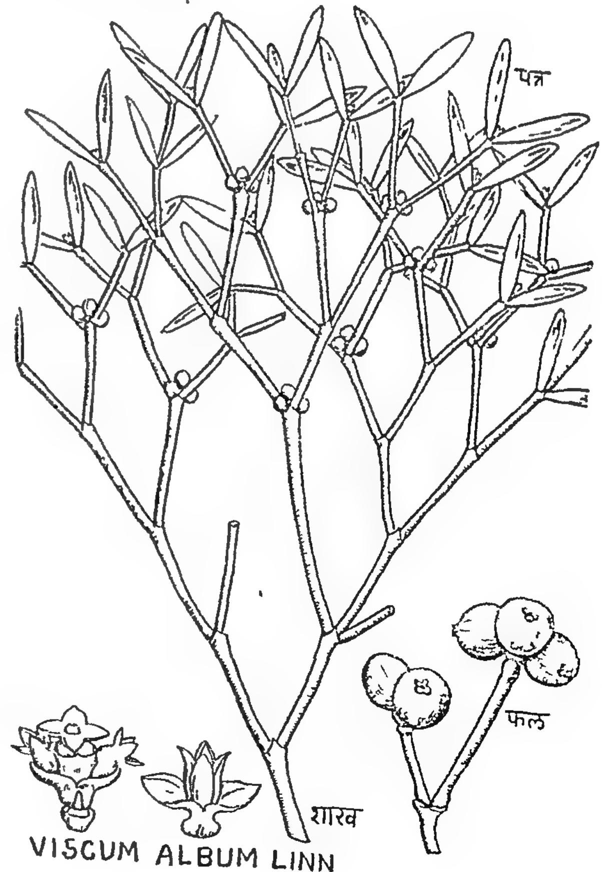
पजाब की ओर पुष्प मार्च से मई तक आते है। तथा फल पाक नवम्बर मास मे होता है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से नैपाल तक ३ से ७ हजार फुट की ऊचाई पर तथा पजाब व मद्रास के उच्च स्थानो में और पश्चिमी प्रदेशो मे अटलाटिक तक पाया जाता है। अफगानिस्थान व ईरान मे अधिक होता है। भारत में इसके शुष्क फल प्राय ईरान और अफगानिस्थान से ही आते है।

नोट—यह बादा बलूत, सेब, नासपाती, अखरोट, बादाम आदि विशेषत तरुणी कुल (rosaceac) के वृक्षो पर पैदा होता है। बलूत वृक्ष के बादे का फल उत्तम माना जाता है।

इसके पत्तो का कही कही रास्ना पत्र के नाम से व्यवहार किया जाता है।

बाजारो मे इसके ईरान आदि से आए हुए सूखे तथा ताजे फल भी तथा भारत के ताजे फल भी किशमिश काबुली नाम से बिकते हैं सूखे फल मटर जितने बडे नरम, झुर्रीदार, भूरे रग के मिलते है। इनके भीतर एक खशखश जैसा बीज तथा एक अत्यन्त ही चिपचिपा पदार्थ होता है।



VISCUM ALBUM LINN

"औषधि के लिये उत्तम फल वह है जो ताजा चिकना और गोल हो, तोड़ने पर रंग कालापन लिये नीला निकले, तथा बाहर का रंग कुछ कुछ हरा, काला, नीला हो, ऊपर खुरदरा न हो और उस पर मूली की तरह कोई चीज न हो"। —यूनानी द्रव्य गुण।

नाम—

सं —सुवर्ण वन्दाक मौक्तिक फल।

हि.—बादा (चूल्लू का), किशकिश काबुली, बन, बदर जिज, झिफ्फा, बबल, रीनी इ। म. गु. ब—बादा

अं —मिस्टलेटो (Mistletoe)। ले.—व्हिस्कम एल्बम।

रासायनिक सगठन—

फल मे विस्कीन (Viscin) नामक एक बहुत ही चिपचिपा द्रव्य होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, मधुर, कुछ अम्ल, सारक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, हृद्य, मूत्रल, कफघ्न, व्रणरोपक तथा हृद्रोग, जलोदर, शोथ, पित्त प्रकोप, यकृत प्लीहा वृद्धि, अपस्मार, कटिपीडा, गुल्म, अर्श, शारीरिक दौर्बल्य, मानसिक श्रम, व्रण, कर्णपूयादि मे व्यवहृत होता है।

डा० देसाई के मतानुसार—"अति प्राचीन काल से इस किशमिश काबुली नामक बादे का उपयोग सब राष्ट्र करते हैं। इसकी क्रिया डिजिटेलिस के समान रक्ताभिसरण पर होती है। सूक्ष्म केशिकाओ का सकोच होता है हृदय को बल प्राप्त होता है। मूत्र अधिक आता है तथा जलोदर दूर होता है। यह औषधि इतनी उत्तम है कि इसे डिजिटेलिस का प्रतिनिधि माना जाता है।

गर्भाशय पर उसकी क्रिया अर्गट के समान ही नही प्रत्युत उसकी अपेक्षा उत्तम प्रकार की एव प्रबल होती है अर्थात् इसके सेवन से गर्भाशय का सकोच जैसा व जितना चाहिए वैसा ही अत्युत्तम होता है। इसे सगर्भावस्था मे देने से गर्भपात हो जाता है। इसमें सारक गुण अधिक है यह शोथहर है।

अपस्मार आदि वातनाडियो के आक्षपयुक्त रोगो मे यह अति गुणदायक है। अत्यार्त्तव तथा प्रसव के पश्चात होने वाले अतिरिक्त स्राव पर इसका पीपलामूल के साथ फाण्ट बनाकर पिलाना विशेष लाभदायक है। गुल्म रोग मे इसका फाण्ट एरण्ड तैल व सौठ मिलाकर दिया जाता है। इससे शौच द्वारा दूषित पित्त निकल जाता है। कटिशूल शमन होता अर्श रोग दूर होता तथा उदर की सब क्रिया का सुधार होता है। प्लीहा वृद्धि मे भी यह लाभ दायक है।

व्रणशोथ पर फलो को पीसकर पुल्टिस बाधते हैं। प्रारम्भ मे ही पुल्टिस के बाधने से शोथ दूर हो जाता है। देर से बाधने से शोथ शीघ्र पक जाता है। अग्नि दग्ध व्रण, शोथ युक्त व्रण तथा व्यूची (उकवत् और छाजन) पर फलो का लेप किया जाता है।

कर्ण पूय—कान फूट कर पूय स्राव व वेदना होने पर फल के रस में थोडी अफीम घिसकर कान मे डालते हैं।

यूनानी मतानुसार—दूसरे दर्जे मे गरम, पहले दर्जे मे खुश्क, दोषो को पतला करने वाला, सूजन को बिखारने वाला ज्ञानेन्द्रियो को बलदायक, शरीर की सर्दी दूर करने वाला है। इसके उपयोग की एक साधारण विधि यह है कि इसे रात्रि के समय गरम जल मे भिगो दें। प्रात छिलके व बीजो को दूर कर अखरोट या एरड की गिरी के साथ पीसकर शहद मे मिलाकर देते है। यदि सूखा ही उपयोग करना हो तो तिल के तैल मे मिलाकर देवें। इससे कफ और सौदा का उत्सर्ग, अवरोधो का उद्घाटन तथा गृध्रसी भगदर एव सर्दी के रोगो मे लाभ होता है। शीतल शोथ पर इसका लेप करने से वह बिखर जाती है। यह कफज शीत पित्त और उदर्द में भी लाभ करता हे, दूषित पुराने फोडो एव व्रणो को नरम करता है।

इसके साथ समभाग मोम, कुदुर ‡ और राल मिला

---

‡ कुदुर—यह १ से ३ गज ऊचे [कटीले वृक्ष का गोद है, जो कुछ कडुआ होता हे। ये वृक्ष अरब, सोकोतरा, [Sacotra] व अफ्रीका आदि पश्चिमी देशो में पैदा होते है। लेटिन में [Boswellia floribunda] व अग्रेजी मे

कर कैरुती (मलहम) बनाकर लगाने से सन्धियो की जकडन (सन्धियो का कडापन) एव तज्जन्य वेदना दूर होती है ।

इसके लेप से समस्त वातज एव कफज शोथ पककर फूट जाते हैं । इससे मुँह की झाई दूर हो जाती है । सडे गले नखो पर इसे हडताल और चीड के तैल (कतरान या जिफ्त) के साथ लगाने से वे उखड जाते है । फिर इसे चूना, अगूर का रस व शहद के साथ लगाने मे नख नवीन निकल आते है, तथा उनमें शक्ति आती है ।

सिर के गज और फुसियो पर इसे मेहदी के साथ लगाते है । गुलरोगन मे मिलाकर लगाने से यह बालो को बढाता है ।

इसे चूने के पानी मे पकाकर या चूना मे मिलाकर लगाने मे प्लीहा शोथ दूर होता है, और अन्य अङ्गोपर लगाने से उनके भीतर के पतले व गाढे द्रवो को खीचकर उन्हे नष्ट कर देता है ।

इसके अधिक खा लेने से भ्रम, अङ्ग गौरव तथा उदर में मरोड व ऐंठन होने लगती है । ऐसा होने पर जल व शहद मिलाकर वमन करावे और वस्ति का प्रयोग करें । इसके उपरान्त सिकजबीन पिलावें ।

मात्रा—४½ माशा तक, कफज विकारो में ३½ मा. तक ।

यह हृदय के लिये हानिकर है । हानि निवारक, गावजवा खीरा, ककडी के बीज या बिल्लीलोटन है ।

—यू. द्र. वि०

विशिष्ट योग—

(१) अर्क (आसव या टिंचर) बादा—इसके पके फलो को ८ गुनी शराब मे मिला, बोतल मे भर रखें । ७ दिन के पश्चात् छान लेवें । मात्रा–२ से ३० बूद । हृद्रोग, जलोदर, गर्भाशय के विकार, प्लीहा, यकृत के विकार आदि मे उपयोगी है । यह अर्क शक्तिवर्धक, अपस्मार आदि के आक्षेपो का निवारक, निद्राकारक तथा शीघ्र प्रसवकारक है । यह वामक तथा रेचक भी है ।

(२) क्वाथ बादा—इसके फलो मे (१ भाग मे १० भाग) जल मिलाकर बनाया गया क्वाथ मात्रा १½ तोला से ५ तोला तक देने मे भी उक्त विकारो मे लाभ होता है ।

—नाडकर्णी

बांदा नं ४ [जुड़ा हुआ बांदा] (Viscum Articulatum)

स्वतंत्र खण्डो से जुडकर बने हुए काण्डवाला (इसके साखे को तोड कर फिर दूसरे साखे के साथ लगाने पर लग जाता है) अनेक शाखायुक्त, इस पत्र रहित पराश्रयी क्षुप का तना चिपटा, जुडी हुई सन्धियो वाला, कई सन्धियो पर इसके लटकते हुए गुच्छे ६ इञ्च से ३ फुट तक लम्बे पर्व ⅛ से ⅕ इञ्च चौडे, १ से २ इञ्च लम्बे दोनो सिरो पर कुछ सकडे, तना या काण्ड ताजी अवस्था मे हलके हरे रग का, शुष्क होने पर पीला भूरा होता है ।

पुष्प—३-३ के गुच्छो मे रस भरे, हरित वर्ण के अति सूक्ष्म, अति छोटे वृन्त युक्त पुष्प, सन्धि स्थान पर नर मादा पुष्प अलग-अलग, फल—लगभग ⅛ इञ्च व्यास का, गोल, रस भरा पकने पर पीला होता है ।

बिहार की ओर इसके पुष्प दिसम्बर जनवरी तथा पजाब की ओर जून से अक्टूबर तक आते है ।

यह बादा हिमालय, आसाम, खासिया, मध्य-प्रदेश के दक्षिणी भाग, पश्चिमी घाट, पजाब, बिहार व उत्तर प्रदेश में अधिक पाया जाता है । यह प्राय जामुन- रीठा, सीसम, धामन आदि वृक्षो पर विशेष पैदा होता है ।

नाम—

स —वन्दाक, पुत्रिणी, कामिनी, नील वल्ली इ ।

हि —बादा जुडा हुआ, पूडु, बुदू । म गु व –बादा बोडो बादो ।

ओलिबेनम [Olibanum] फ्रेन्किन्सेन्स [Frankincense] कहते है । इसके उक्त गोंद को ही हिन्दी मे लुभान लोबान कहते है। यह भारत के गुग्गुल जाति का ही है । इसके अभाव मे गुग्गुल या मस्तगी ली जा सकती है ।



ले —व्हिस्कम आर्टि क्युलेटम । व्हिस्कम ऐन्गुलेटम (V Angulatum) ।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटु, मधुर, शीत वीर्य, ग्राही, रसायन, कामोत्तेजक, वात कफ नाशक तथा रक्त विकार, यकृद्विकार, अपस्मार व व्रण मे प्रयुक्त होता है ।

मस्तिपीडा प्रधान ज्वर पर, पित्त विकार, सग्रहणी पर इसका फाण्ट दिया जाता हे । तथा अन्य विकारो पर भी फाण्ट ही दिया जाता है । व्रणो पर इसका लेप करते है ।

वांदा नं. ५ [चिमड़े पान वाला] (Viscum Orientale)

इस सघन शाखायुक्त पराश्रयी ग्रंथियुक्त क्षुप के काण्ड ग्रंथि स्थान में मोटे व चिपटे, पत्र अभिमुख अति चिमडे कुछ लम्बे, अण्डाकार, ऊपर के भाग मे सकडे १½-३ इञ्च लम्बे अति सूक्ष्म वृन्त युक्त (लगभग वृन्त रहित) ३-५ सिराओ से युक्त होते हैं ।

पुष्प—गुच्छो मे ⅓-⅛ इञ्च लम्बे हरे या पीले रग के नर मादा पुष्प मिश्रित, फल गोल या अण्डाकार कुछ चौडे से ⅙ इञ्च लम्बे हरे रग के रस भरे होते है ।

इसमे पुष्प प्राय सदैव बारहो मास रहते है विशेषत वसतऋतु मे अधिक आते है ।

यह बगाल, बिहार व मद्रास की ओर अधिक पाये जाते है ।

नाम—

हि —बादा (चिमडे पान वाला), कोल ।

ले —व्हिस्कम ओरिएन्टेल ।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके गुण धर्म उसी पेड के गुण धर्मानुसार होते है जिस पर यह पैदा होता है । इसका प्रयोग अनेक भिन्न-भिन्न रोगो पर किया जाता है ।

वांदा नं. ६ [वांदा चिपकने वाला] (Viscum Angulatum)

इस पराश्रयी पत्ररहित चिपकने वाले क्षुप की लता सदृश शाखाएँ दो प्रशाखायुक्त नीचे की ओर लटकने वाली २–३ फुट लम्बी अगुली जैसी मोटी, पर्व युक्त, कुडकीली पर्व ½ से ३ इञ्च लम्बे, पीताभ हरित वर्ण के, पर्व या सधि के स्थान की ग्रथि अधिक पीली होती है । इसके सधि स्थान से एक प्रकार का चिपकने वाला चिपचिपा रस टपकता हे । यह गन्ध मे उग्र तथा स्वाद मे चरपरा सा मधुर होता है । पत्र—नही होते । पुष्प—अतिसूक्ष्म नर मादा पुष्प पृथक पृथक, फल—बहुत छोटा, रसभरा, गोल हरिताभ पीत वर्ण का, १ अतिसूक्ष्म बीजयुक्त होता है ।

इसमें पुष्प प्राय दिसम्बर जनवरी मास मे आते है ।

यह बादा विशेषत तेदू, शीशम, रीठा, धामन, जामुन आदि वृक्षो पर, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार आदि प्रान्तो मे पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, चरपरा, शीतवीर्य, ग्राही व पित्त नाशक है ।

इसका प्रयोग महाराष्ट्र व गुजरात में विशेष किया जाता है । अतिसार तथा सग्रहणी में इसका फाण्ट या क्वाथ दिया जाता है ।

नोट—बादा न० ७ (कुचले का सलगा) (Viscum Monoicum) । इसका वर्णन "कुचले का सलगा" के प्रकरण में भाग २ मे देखिये ।

बाँस (Bambusa Arundinacea)

बाँस

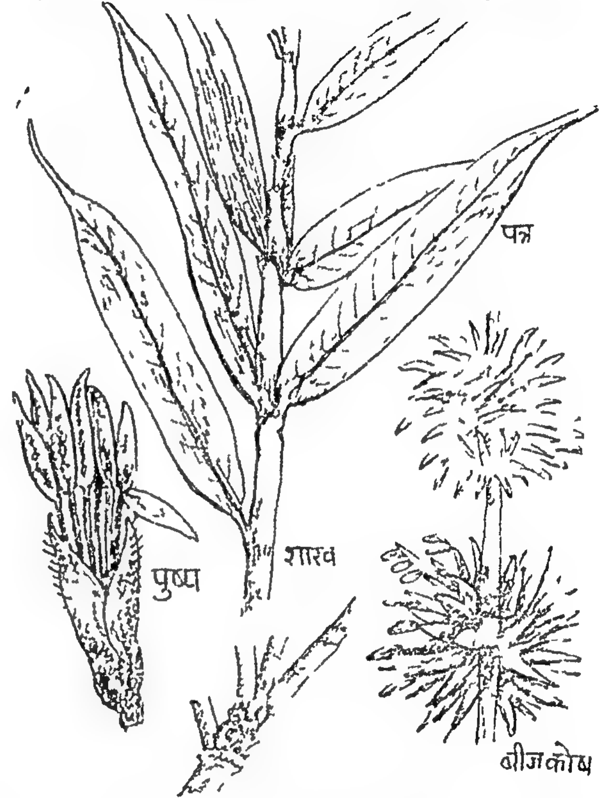
BAMBUSA ARUNDINACEA WILLD



बास) कहते है ।

नोट नं० ३–ठोस, नरबास (Dendrocalamus Strictus)—इस नर जाति के बास के बेत सदृश, अति सीधे, सकडे, देखने मे अति सुन्दर, पतनशील, सघन, गुच्छमय, दृढ काडयुक्त गुल्म के काण्ड २॥ से ६ फुट ऊचे, गोल, १ से ३ इच व्यास के, ठोस या' छोटे विल युक्त होते हैं (इसकी ही एक जाति के काड की ऊचाई २० से १२० फुट तक होती है । Dendrocalamus Giganteus इसका लेटिन नाम है) ये कांड नीले हरे रग के पुराने हो जाने पर हल्के हरे या पीले रग के हो जाते हैं । पत्र–१-२ इच लम्बे (शुष्क देश में) आर्द्र देश में १० इच तक लम्बे, ¼ से १½ इच तक चौडे, कई सयुक्त शिरायुक्त । पुष्प—लम्बी शाखा प्रशाखा युक्त मिश्र मजरी मे सघन पुष्प मजरी १ इच व्यास की कुछ पीत वर्ण की होती है । फल—⅓ इच लम्बे अण्डाकार, भूरे रग के चमकीले होते हैं । पुष्प व फल ग्रीष्म ऋतु मे आते हैं। इस बास की लाठिया बहुत अच्छी बनती हैं ।

इस बास के गुल्म बिहार, छोटा नागपुर तथा उडीसा मे अधिक पाये जाते हैं ।



नाम--

हि०—नर बास, कठबासी, बास कबान इ. । म०—नगोठ वेलू । बं०—काराइल बास । अं०—मेल बाम्बू (Male bamboo) । ले०–डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस ।

गुणधर्म व प्रयोग--

प्रस्तुत प्रसग के बास के जैसे ही है । इसके पर्व की ग्रन्थि के समीप का भीतरी कोमल भाग स्निग्धकर तथा ज्वरनाशक है । इसके पत्र विशेष सकोचक हे । गर्भाशय सकोचनार्थ पत्रो का विशेप प्रयोग किया जाता है ।

नोट न०४ —वशलोचन—मादा जाति के जो मोटे पीले एव पहाडी बास होते हे, जिन्हे नजला वास कहते है, उनके भीतर का जो श्वेत रस सूखकर ककर जैसा हो जाता है, उसे ही वशलोचन कहते हैं । वासो का जगल जब काटा जाता है, जिस बास की पोरी मे यह होता है उस बास के उठाने घरते समय इसके रवे भीतर खडकने से पता चल जाता है कि इस बास की पोरी में वशलोचन है, उसे चीर कर निकाल लेते है । यह असली बशलोचन बहुत प्राचीन काल में भारत के ही वासो से प्राप्त किया जाता था । कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र की जल की बूदें जिस मादा जाति के बास के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं, उसमे वशलोचन निर्माण होजाता है। अभी भी भारत के उत्तर पूर्व के तथा दक्षिण भारत के पहाडी अरण्य प्रदेशो में, इस प्रकार के वशलोचनोत्पादक निम्न जातिया पाई जाती है—(१) प्रस्तुत प्रसग का (Bambusa Arundinacea, Retz (Dym.) (२) Arundo Bambos Linn. (Roxb) (३) Bambusa Bambas Druce (Chopra) । ये तीन जातिया दक्षिण भारत मे प्रचुर एव आसाम व बगाल मे साधारण सहजोद्भव हे, किन्तु गगा के मैदान से लेकर सिंधु तक सहजोद्भव नही हे। बगाल की ओर इसीकी एक जाति विशेष Babusa

beceifera (Roxb) है जिसमे काटे नही होते ।

उक्त ३-४ वास की जातिया ही आजकल फल एव वशलोचनोत्पादक पायी जाती है। इससे प्रतीत होता है, कि चरक एव सुश्रुत के समय मे जबकि भारत मे विशेषत विन्ध्याचल के दक्षिण भाग मे अरण्य की विपुलता थी, दक्षिण का भाग अरण्यमय ही था, तब इस वास की ये जातिया भी प्रचुर परिमाण मे पैदा होती होगी। इसीसे तो चरक सहिता (अगद तत्र मे-गध हस्ति महागधहरित आदि अगदो में एव अन्य क्षय,कासादि प्रयोगो मे भी) सुश्रुत सहिता के अगद तत्र में वशत्वगादि मे वशलोचन, वशत्वग, इन नामो से इसका उल्लेख किया है । हमारे कथन का यह प्रयोजन नही है कि उस समय भारत से बाहर के सिंगापुर, जावा, सुमात्रादि पूर्व द्वीप समूहो से इसका आयात नही होता था। अवश्य होता होगा, क्योकि उस समय का भारत आधुनिक भारत जैसा सकुचित नही था। पता चलता है कि ईस्वी सन् की १२ वी सदी तक बम्बई प्रान्त के ठाणा नामक बन्दरगाह मे इसका अत्यधिक आयात होता था। तथा वही से यह अदन आदि विदेशी बन्दरगाहो को भेजा जाता था।

अमेरिका मे Guaduas नामक वास की एक जाति है, जिसमें वसलोचन प्राप्त होता है। किंतु इस वशलोचन मे भारतीय वशलोचन की अपेक्षा कम प्रमाण मे सेलिसिलिक एसिड होता है।

उक्त असली वशलोचन के स्वरूप के विषय मे राज निघटुकार ने लिखा है कि यह—शुक्रा, श्वेता, पिगा (अर्थात्-स्निग्ध अपारदर्शक, चमकीला श्वेत), रोचनिका (गोरोचन जैसी पीली छटावाला) होता है। यह इसके रङ्ग की हुलिया पोलकी नामक रत्न (एक कीमत दूधिया पत्थर opal) से मिलती जुलती सी है। बाजारू वशलोचन के स्निग्धश्वेत (शुक्रा) वर्ण मे नीली छटा की विशेषता होती है, किंतु रोचना पिगा छटा उसमे नही दीखती जिसका दीखना आवश्यक है। प्रतीत होता है कि असली वशलोचन पर दाह सस्कार के कारण यह उसकी आवश्यक छटा बाजारू वशलोचन मे लुप्त हो जाती है। मालूम होता है कि राज निघण्टुकार के समय मे यह परमोपयुक्त द्रव्य बिना अग्निसस्कार के मूल स्वरूप मे ही प्राप्त होता एव उपयोग मे लाया जाता था।

वास के कुल का यह एक नैसर्गिक गुण है कि रूक्ष ग्रीष्मकाल में परस्पर की रगड से इसके समूहबद्ध वृक्षों में आग लगकर वे जल जाते है। इस प्रकार से जले हुए वासो में आग से भुनगे या दग्ध हुए वशलोचन के टुकडे प्राप्त होते हैं। उन पर एक विशिष्ट प्रकार की उष्णता देकर वे स्वच्छ किये जाते है। तथा इस प्रकार की उष्णता से सस्कारित वशलोचन बाजारो में विक्रियार्थ आता है। सारांश यह कि स्वाभाविक मूल स्वरूप के वशलोचन की प्राप्ति कठिन है।

वशलोचन पर हुए अनुसधानो का जो महत्वपूर्ण विवरण आयुर्वेद-विज्ञान में प्रकाशित हुआ था, उसका सक्षिप्त साराश इस प्रकार है, कि जिस रूप मे यह वास की पोरी से निकलता है उसी रूप में इसका आजकल उपयोग नही होता,क्योकि यह देखने मे, मिट्टी का रग जैसा बहुत भद्दा सा लगता है। अत यह विद्युत की भट्टियो मे भूना जाता है। भूनते समय यह चटखता एव तीव्राग्नि के प्रभाव से फूलकर खिल उठता एव उत्तम श्वेत नील वर्ण का हो जाता है।

नकली वशलोचन—यह अमृतसर में बहुत बनता है। इसके लिये सोडियम सिलीकेट और अमोनियम सल्फेट इन दोनो को अलग-अलग जल मे घोलकर फिर उन्हें मिला देते है। दोनो के मिश्रण से उसमे रासायनिक परिवर्तन होता तथा जल मे घुला सिलीकेट धीरे-धीरे नीचे की तलैटी मे एकत्रित होता है। यह कार्य बडे-बडे सीमेंट के हौजो मे किया जाता है। जब वह सिलीकेट का यौगिक जम कर नीचे बैठ जाता है, तब उसे १०-१२ बार जल से धोकर सुखा लेते है। सूखने पर यह असली वशलोचन के समान हो जाता है। साधारण व्यक्ति क्या बडे-बडे समझदार व्यक्ति भी असली और नकली का अन्तर नही कर सकते।

असली और नकली की सहज-सरल परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है कि वासलोचन को आग में डाल देने से यदि उसमे विकृति आ जाय, उसकी आभा प्रभा

नष्ट हो जाय तो उसे नकली जानना चाहिये। यदि वह जैसा का तैसा ही बना रहे, उसमें कोई विकृति न आये तो उसे असली जाने। नकली को लकड़ी या पत्थर पर घिसने से उस पर रेखा उभर आती है या निशान पड जाते हैं। हाथ की चुटकी में लेकर जोर देने से टूटता है, तथा मुख में रखने से गल जाता है। इसमें पानी को सोखने की शक्ति नही है। असली पानी को सोखता है और पारदर्शक हो जाता है। नकली पानी में घुल जाता है।

नाम--

स०—वंश, वेणु, त्वक्सार (दृढत्वचा वाला), तृणध्वज (तृण जाति में श्रेष्ठ या ऊंचा), शतपर्वा (अनेक पर्वा वाला), यव फल इ०। हि.—बांस, नल, मगर। म.—वांबू, कडक, वेणु, माणगा, चिवा इ०। गु.—वांस, वेडो वासा, तीनकॉर। बं० बांश। अ —बाम्बू (Bamboo) ले —वम्बुसा अरुण्डिनेसिया, बाबूसा स्पिनोसा [Bambboosa Spinosa), बाबूमा ओरिएण्टालिस (B Orientalls) इ.।

रासायनिक संगठन—

पोले बांस में-राख ३ ३%, सिलिका १.८% उष्णजल में द्रवणीय द्रव्य ६%, गोंद प्रधान द्रव्य १९ ६%, केन्द्र प्रधान काष्ठौज युक्त द्रव्य २० १%, और काष्ठौज [Cellulosc] ५७ ६ % होता है।

ठोस बांस में राख २ १%, सिलिका १ ८%, पेण्टोसन (कार्बोहाइड्रेट) १९ ६%, लिग्निन ३२ २% और काष्ठौज ६० ८%, होते हैं।

पर्व संधि मे—जलीय सत्व ६ ८%, वसा व सिक्थ १ ४%, अपक्व द्रव्य २५%, लिग्निन १७ ६%, काष्ठौज ४६.१%, व राख ४ ५ % होती है।

बांस के अंकुरों मे—सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाईड [Cyanogenetic glucoside] जो पचन होने पर विषाक्त वायु उत्पन्न करता है या पाचन काल में ०३% हायड्रोसायनिक एसिड [Hydrocyanic acid] व २३% लोहवानाम्ल उत्पन्न करता है। अंकुर के रस की परीक्षा करने पर लगभग ० ३०% हायड्रोसायनिक एसिड और मुक्त लोहवानाम्ल १६% प्राप्त हुआ है, ऐसा घोष और चोपरा ने लिखा है।

बांस के फल या चावल में—जल ११ प्रतिशत, श्वेत सार ७३ प्रतिशत, पोषक द्रव्य ११ ८ प्रतिशत, तैल द्रव्य ० ६%, रेशे १.७% और राख १ २% प्राप्त होती है।

बांस की जलाई हुई राख मे—सिलिका २८%, चूना ४%, मग्नेसिया ६%, पोटाशियम ३४%, सोडियम १२%, क्लोरिन २%, गंधक १०% रहता है। कुछ लोग इसके क्षार को तथा असली वंसलोचन को गरमकर पानी मे डालते हैं, और सूखने पर वंस लोचन के स्थान पर वेचते है।

वंशलोचन मे—सिलिका (Silica) ६०%, लोहे का पेरोक्साइड या मंडूर (Peroxide of Iron) ३०% पोटाश (Potash), चूना, अल्युमोनिया (Alumina) तथा कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलिन (Cholin), विटेन (Betain), न्युक्लिएस (Nuclease), यूरिएस (Urease) प्रभूजिन एवं कार्बोज के पाचक किण्व तथा स्नेह वितेयक किण्व (Proteolytic diastatic and emulsifying enzymes) तथा कुछ सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) आदि पदार्थ पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, अङ्कुर बीज, मूल, गांठ (पर्व), छाल, पुष्प, राख व वंसलोचन।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, मधुर, कषाय, शीत वीर्य, मधुर विपाक, सारक, बस्तिशोधक, छेदन, कफहर तथा पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, रक्त विकार, कुष्ठ, व्रण, शोथ आदि पर प्रयुक्त होता है।

यूनानी मत से—शीत व रूक्ष जला हुआ बांस उष्ण व रूक्ष होता है। बांस-लेखन व मूत्रार्तवजनन है। इसकी जड और छाल को जलाकर सिरके मे मिला गंज के स्थान पर लगाने से बाल फिर जमने लग जाते है। इसमे दद्रु (दाद) मे भी लाभ होता है। इसे जला कर दांतो पर मलने से दांत साफ होते है। इसकी राख को मञ्जनो में मिलाकर दांतो पर मलते हैं। बांस को सिरके

के साथ पीसकर कमर व कूल्हो पर लगाने से शूल दूर होता है। बास को पानी मे जोश देकर पीने से रुका हुआ मासिक धर्म व पेशाब जारी हो जाता है। इसके हरे पत्तो को पानी मे खूब मल छान कर पीने से मुह से खून का आना बन्द हो जाता है। पत्तो को जलाकर सूखी तथा तर खुजली पर लेप करने से लाभ होता है। पत्तो का अर्क शहद के साथ पीने से खासी मे लाभ होता है। बास और उसके पत्तो पर जो एक प्रकार की चिकनाहट जम जाती है उसको आख मे लगाने से जाला कट जाता है। प्रसूति के बाद प्रसूता के गर्भाशय मे जो गन्दगी शेष रह जाती है वह इसके पत्रो का क्वाथ पीने से बिल्कुल साफ हो जाती है।

पोला बास—अग्नि दीपक, अजीर्ण नाशक, रोचक, पाचक, हृद शूल, गुल्म आदि नाशक है।

पत्र—आर्त्तवजनन, गर्भाशय सकोचक, कास, कटि-वेदना, अर्श, पित्त प्रकोप, सुजाक व ज्वर शामक हैं। नेत्रो को धोने मे उपयोगी है कोमल पत्तो का प्रयोग कफ मे खून जाना, कुष्ठ, ज्वर तथा बालको के सूत्र कृमि आदि के निवारणार्थ किया जाता है। रजोरोध, कष्टार्त्तव, तथा प्रसवोत्तर गर्भाशय शोधनार्थ कोमल पत्रो का क्वाथ दिया जाता है। गाय भैंस आदि पशुओ को प्रसूति के बाद इसके पत्रो को खिलाने से उनके गर्भाशय की गन्दगी साफ होकर गर्भाशय अपनी असली हालत पर आ जाता है।

(१) प्रसूति के बाद गर्भाशय की शुद्धि (जेर या झिल्ली निकालने) के लिये—इसकी १० पत्तियों को २० तोला जल में पकावें। ५ तोला जल शेष रहने पर छानकर उसमें १ तोला गुड मिलाकर गरम-गरम (सुहाता हुआ) पिला देने से जेर, झिल्ली निकल कर पीडा भी दूर हो जाती है। —भा० गृ० चि०

(२) सद्य प्रसवार्थ एव मूढ गर्भ निष्कासनार्थ—प्रसवावस्था के समय, जब गर्भाशय का मुख खुलजावें (अर्थात् जब उसमें से गन्दा बदबूदार पानी निकलने लगे, तथा दूरी मे पी वी करने से दो अगुल छिद्र--Two finger h le होकर भीतर के जीवित या मृत बच्चे का सिर दिखलाई देवे) तब निर्धूम कोयलो की आग पर फुलाए हुए सुहागा के चूर्ण ४ माशा को बास के पत्र के क्वाथ १० तोला में मिला कर पिला देने मे शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। यदि एक बार के पिलाने से कुछ भी असर न हो तो आध घण्टे बाद दूसरी खुराक पिलावे। यह २-३ खुराक तक दिया जा सकता है। अवश्य लाभ होता है।

—वैद्य श्री जी० वी० पन्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

(३) प्रमेह, सुजाक, बहुमूत्र तथा अर्श पर—शीत प्रमेह (यह कफज प्रमेह का एक भेद है) हो तो इसके पत्तो को छायाशुष्क कर ½ तोला और अनन्तमूल की जड १ तोला दोनों को जौकुट कर २७ तोला जल मे अष्टमाश क्वाथ कर (क्वाथ के पकते समय उसमे १ तोला मिश्री मिला देवे) छान कर पिलावें। इस प्रकार प्रात साय पिलाने से लाभ होता है। —व० गु०

पुराने जीर्ण सुजाक पर—उक्त पत्तो को व अनन्तमूल को समभाग ६-६ माशा लेकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे ३-४ माशा शक्कर (या मिश्री) मिला सेवन करावें। इस प्रकार ७ या १४ दिन या अधिक समय तक पिलाने से लीन विष जलकर सुजाक दूर हो जाता है। —गा० औ० र०

बहुमूत्र पर—पत्तो का फाण्ट दिन मे जल के स्थान पर पिलाते रहने मे आमाशय व मूत्र सस्थान मे आई हुई उग्रता तथा दाह, तृषा शमन होकर यह रोग दूर हो जाता हैं।

बहुमूत्र पर—२½ तोला पत्तो को २० तोले जल मे पकावें। चतुर्थांश से कुछ कम (४ तोला तक) शेष रहने पर छानकर उसमे ½ तोला शहद मिलाकर पिलाने से भी अवश्य लाभ होता है। —सकलित

अर्श पर—पत्तो के क्वाथ मे अर्श रोगी को बैठाने से अर्श की वेदना शात होती हे। —गा० औ० र०

(४) पारे के विष पर—दूषित या अशुद्ध पारद से निर्मित रस कपूर आदि के सेवन से जो पारे का दुष्परिणाम (मुख, आमाशय मे दाह, उदरशूल, अतिसार, लालाप्रसेक, रक्तपित्त, रक्तमेह, मूत्राघात, प्रलाप, संन्यास एव अन्त मे मृत्यु होना) होता है उसके निवारणार्थ इसके पत्तो के रस में शक्कर मिलाकर पिलाते है।

नोट—इसके कोमल पत्तो का या अकुरो का जो अचार, कढी या साग बनाई जाती है वह अजीर्णजन्य क्षुधा तथा पचन क्रिया की वृद्धि एव सुधार करती हे । —नाडकर्णी ।

किन्तु ध्यान रहे पत्राकुरो को अच्छी तरह उबाल कर ही अचार, साग या कढी बनाई जाती है अन्यथा वह विषाक्त हो जाती हे । इसका अचार लवणयुक्त जल मे इसे कतर कर डालकर काजी या सिरके के रूप मे बनाया जाता है। इस सिरके का उपयोग मास मछली के साथ उपयोगी होता है । क्षुधा बढती व पाचन भी ठीक होता है ।

अकुर—लघु (अन्य मत से गुरु), रूक्ष, कटु (चरपरा), अम्ल, कसैला, सारक, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, (अन्य मत मे शीत वीर्य),दीपन, पाचन, कफहर, विदाही, वातपित्त प्रकोपक, (कफवात प्रकोपक--सुश्रुत), कृमिघ्न, शोथहर है ।

अग्निमाद्य, अजीर्ण तथा कृमिरोग पर अकुर का अन्य सुगन्धित द्रव्यो के साथ क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं ।

(५) व्रणशोथ, व्रण एव कृमियुक्त दुष्ट व्रण तथा नारू पर—व्रण शोथ तथा साधारण व्रण पर अकुरो को पीसकर लेप करते है ।

कृमियुक्त दुष्टव्रणो पर प्रथम इन अकुरो के रस को टपकाकर फिर उनका पुल्टिस बनाकर बाध देने से कीडे नष्ट होकर व्रण ठीक हो जाता है । —नाडकर्णी

नोट—इसके कोमल अकुर (जिसका अचार डाला जाता है ऊपर न०४ के नोटमे देखिए) का स्वरस हायड्रोसायनिक एसिड तथा पोटासियम साइनेट जैसे विषैले द्रव्यो से भी अधिक विषाक्त एव कृमिनाशक है । अत नारू तथा अन्य कृमि रोगो पर इसका प्रयोग बहुत सफल हो सकता है । नारू पर कोमल अकुरो की पुल्टिस बनाकर बाधने से नारू नष्ट हो जाता है । —व० च०

बीज (चावल)—बास के चावल कसैले, मधुर, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, सारक (किंतु उष्णवीर्य होने से मूत्र रोधक कोई इसे मूत्र शोधक मानते है) रुक्ष, बल्य, वातपित्त कारक, कफहर, पित्तवर्धक, लेखन ,विषघ्न हैं ।

मेदोरोग, मूत्र विकार, प्रमेह तथा विषो मे इन चावलो को भात की तरह पकाकर खिलाते है । सुश्रुत ने इन की आहार वर्ग में गणना की है । महा कुष्ठ पर इसका प्रयोग किया है ।

मूल—कफ पित्त नाशक, वर्ण्य, रक्तशोधक, मूत्रल कुष्ठघ्न, विषघ्न, लेखन, मूत्रार्त्तव प्रवर्त्तक तथा मूत्रविकार, नाशक है ।

विस्फोटक व्याधियो मे (चेचक आदि eruptive infections) बहुत उपयोगी है । दाद पर भी लाभदायक है । कुष्ठादि रक्तविकारो में इसका लेप किया जाता है । कफ पित्त के विकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, रसविकारो में इसका क्वाथ दिया जाता हे ।

(६) चेचक दागो पर तथा मुख सौन्दय वर्धनार्थ- इसको ही पीसकर या अन्य औषधि के साथ पीसकर लेप करते है ।

दाद पर इसे जलाकर लगाते हैं ।

(७) खालित्य या गज पर—इसकी जलाई हुई जड तथा छाल की राख में सम भाग हल्दी का चूर्ण मिला थोडे जल के साथ पीस कर सिर पर लगाने से बालो की जडे मजबूत होती हैं । गिरे हुये बालो के स्थान में नये बाल पुन जम जाते हैं । —यूनानी

(८) आमाशय एव यकृत की उष्णता शाति के लिए जड को जलाकर उसकी राख को जल मे घोलकर थोडी देर रख कर उसका नितरा हुआ जल पिलाने से उष्णता की शाति होती हे । मूत्र खुलकर आता हे । —यूनानी

(९) सिर की गज तथा दाद पर—जड की राख को चमेली के तेल मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है । —यूनानी

(१०) कुत्ते के विष पर—कुत्ते के काटने पर इसकी जड को दूध में पीस कर पिलाने से उत्तान (उभरा हुआ) विष जल जाना तथा लीन विष पचन हो जाता है । अथवा—

इसकी जड और अङ्कोल को गोदुग्ध मे घिस कर प्रतिदिन प्रात १५ दिन पिलाने से लीन विष जल जाता

है और उत्तान विष वमन द्वारा निकल जाता है।

—गा. औ र

गाठ (पोर्वा)—गर्भ विकार, आर्त्तव विकार, कास, सधि पीडा आदि नाशक है।

(११) शुष्क गर्भपातनार्थ (गर्भाशय मे छोड जम गया हो या शुष्क गर्भ चिपक गया हो तो) इसकी गाठ को जौकुट कर १ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसमे कच्ची फिटकरी १ मा० व गुड २ तोला मिलाकर प्रतिदिन प्रात ३ से १० दिन तक पिलाते रहने से शुष्क गर्भ छोड आदि निकल जाता है। यह इस कार्यार्थ एक निर्भय उपाय है। सब प्रकार की प्रवृति वाली स्त्रियो को यह अनुकूल है। किसी को हानि नही होती। छोड के गिर जाने पर इसे बन्द कर देवे।

यह प्रयोग काठियावाड मे अनेक वर्षों से घरेलू उपचार के रूप मे प्रसिद्ध है। इससे पूर्ण रूप से सफलता मिलती है। ध्यान रहे आवश्यकतानुसार गर्भाशय पर तेल की मालिश कर रोज थोडा सेक करते रहे। भोजन मे स्त्री को गेहू के आटे को तेल या घृत मे भून कर, गुड की चाशनी मे मिला हलुआ बनाकर खिलाये। ऐसा करने से कार्य सत्वर हो जाता है। गर्भाशय मे विकार शेष नही रहने पाता एव गर्भाशय आकुचित हो जाता है।

छोड या गर्भ के निकल जाने पर सोया और सोठ ६ मा से १ तो तक का प्रतिदिन क्वाथ कर उसमे गुड २ तो मिलाकर ७ दिन तक पिलाते रहने से गर्भाशय मे चिपका हुआ दूषित द्रव्य निकल कर जो विष लीन रूप से रहा हो वह जल जाता है, तथा गर्भाशय शुद्ध एव सबल हो जाता है।

—रसतत्र सार

(१२) गर्भाशय मे आवल (जेर) रुक जाना तथा मक्कल शूल के होने पर—२ तोला इसकी गाठो का क्वाथ बनाकर छान कर उसमें २ तोला गुड मिलाकर पिलाया जाता है। आवश्यकतानुसार पुन २-३ घटे बाद दूसरी बार पिलाते है।

—गा औ र

(१३) कष्टार्त्तव या नष्टार्त्तव पर—इसकी गाठ का मोटा चूर्ण २ तोला और ४ तोले सोया बीज दोनो को एकत्र ९६ तोला जल मे पकावें। आठ-माश शेष रहने पर छान कर उसमे २३ तोला गुड मिलाकर सेवन करायें। —आगे विशिष्ट योग में देखिये।

पथ्य रूप में स्त्री को काला तिल, उडद की दाल का बरा, मठा, दही, काजी नित्य सेवन कराये। जिन को मासिक साधारणतया कम होता हो, शूलयुक्त हो, उन्हे कालातिल कल्हार कर, दूना गुड मिला २-२ तोले के लड्डू बना दिन मे ४ बार खाना चाहिये।

—चिकित्स

(१४) कास तथा सन्धि पीडा पर—कास, विशेषत बालको की सूखी खासी पर इसकी गाठ को जल मे घिसकर उसका चन्दन सा निकाल कर थोडा गरम कर, थोडा थोडा पिलाने से खासी दूर हो जाती है।

सधि पीडा के स्थान पर गाठो को पीसकर, थोडा गरम कर पुल्टिस जैसा बाधते हैं।

छाल—

(१५) त्वचा व रक्त की दाह पर तथा चोट जन्य पीडा पर—बास की छाल का क्वाथ कर ठडा हो जाने पर उसमे शहद मिला, दिन मे दो बार, ३ दिन तक पिलावें। इसमे शराब जन्य दाह, एव विष प्रकोपजदाह मे भी लाभ होता है।

—गा औ र

चोट लग जाने पर शरीर मे कही दर्द हो, तो इसकी छाल को खूब महीन कर शक्कर के साथ लेने से लाभ होता है।

—यूनानी

(१६) कर्णशूल पर (कफज कर्णशूल मे)—इसकी छाल का कल्क १० तो० और बकरी का व भेड का मूत्र ४ सेर तथा सरसो का तेल १ सेर इन्हे एकत्र पकाकर, तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवें। इसे थोडा थोडा कान में डालने से लाभ होता है।

—वा भ उ. तत्र अ १८

(१७) कोष्ठ स्थित दूषित रक्त के स्रावार्थ—इसकी छाल, अरण्डमूल, गोखरू और पाषाण भेद के क्वाथ मे हीग व सेंधानमक मिलाकर सेवन कराने से कोष्ठ स्थित रक्त निकल जाता है।

—यो र

(१८) मसूरिकान्तक धूप—इसकी छाल के साथ

तुलसी, लाख, कपास के बीज (बिनौला) मसूर, जौ का आटा, अतीस, (कुछ वैद्य अतीस नही लेते), वच, ब्राह्मी और हुलहुल इनमे से जितनी चीजे प्राप्त हो, उन्हे सम भाग लेकर कूटकर उसमें घृत मिलाकर मसूरिका (चेचक) के प्रारम्भ में इसकी धूप (धूनी) देने से मसूरिका शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। —ग से

राख—

(१९) मूत्रावरोध तथा जखम से रक्तस्राव होने पर—

बास की राख (१-२ मा) में समभाग शक्कर या मिश्री मिलाकर चावल के धोवन के साथ पिलाने से मूत्र-शुद्धि होती है।

जखम से रक्तस्राव होता हो तो वास के कोयलो को पीसकर जखम पर बुरकने से बहता हुआ खून बन्द हो कर जखम भर जाता है। इससे सूजन भी बिखर जाती है। —यूनानी

पुष्प—

(२०) कर्णशूल या बाधिर्य पर—बासके फूलो के रस की बून्दे टपकाते रहने से लाभ होता है।

बंशलोचन----

कषाय, मधुर,शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्तशामक बृहण, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, मूत्रल, हृद्य, रक्तस्तभन एव शोषक, कफनिस्सारक श्वासहर, बल्य, कामोद्दीपक, उत्तेजक, उद्वेष्टन निरोधी, तथा कास, श्वास, यक्ष्मा, तृषा, वमन, अतिसार, मन्दाग्नि, हृद्रोग, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, कामला, क्षयज्वर, सामान्य-दौर्बल्य आदि पर प्रयुक्त होता है।

वशलोचन की उत्तमता उसके सेलिसिलिक एसिड पर निर्भर है। जिसमे जितना अधिक यह एसिड होता है, वह उतना ही उत्तम होता है। इसके प्रयोग से श्वसन-सस्थान की श्लेष्मक कला को पुष्टि मिलती तथा कफ की मात्रा कम होती है। इस कार्य के लिये, इसके योग से बना हुआ सितोपलादि चूर्ण का व्यवहार विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। (इसका प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये) —डा वा ग देसाई

यूनानी मतानुसार- यह दूसरे दर्जे में शीत और तीसरे में रूक्ष है। मतान्तर से तीसरे दर्जे मे शीत व रूक्ष है। यह कब्ज करने वाला, हृदय को आनन्द देने वाला, आमाशय की उष्णता निवारक, तीव्र शीतजनन है। पैत्तिक हृत्स्पदन, मूर्च्छा एव बेचैनी के लिए गुणकारी है। पित्तज वमन का निवारक एव उष्ण यकृत और आमाशय के लिए लाभप्रद है। यह पित्तज अतिसार को तथा शुक्रमेह को, अनैच्छिक वीर्य स्राव को बन्द करता है। मुखपाक, मुख व्रण तथा मुख की फुंसियो मे अकेले गुलाब अर्क के साथ इसका सेवन और अवचूर्णन गुणकारी है। अधिक प्यास को दूर करने के लिए इसे १ तोला एक पोटली में बाध कर जल में डाल देवे, तथा उस जल मे से थोडा-थोडा जल पिलाते रहने से तृषा कम हो जाती है। मिट्टी खाने वाले बच्चो को इसकी ककरी हाथ में देने से मिट्टी खाने की आदत छूट जाती है। दातो की पुष्टि के लिए इसे मजनो मे डालते है।—यूनानी द्रव्यगुण

साधारण विष विकार—मे इसे शहद के साथ बार-बार चटाते है। मुख के छालो पर इसे शहद मे मिला लेप करते है।

श्वेत प्रदर मे—१ मा वंसलोचन को २ या ३ मा॰ चूर्ण के साथ मिला पके केले के साथ खिलाते हैं।

(२१) कास, श्वास, जीर्ण ज्वर, तथा उर क्षत पर-- इसका चूर्ण १ मा के साथ पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती मिला कर (यह १ मात्रा है) शहद के साथ चटाने से श्वास व कास मे लाभ होता है।

साधारण शुष्क कास मे—इसे १० से २० रत्ती तक की मात्रा मे शहद के साथ चटाते रहने से लाभ होता है। बालको के शुष्क कास व श्वास मे भी लाभकारी है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके साथ गिलोय सत्व समभाग ४-४ रत्ती तथा छोटी पिप्पली चूर्ण २ रत्ती मिलाकर (यह १ मात्रा है) शहद के साथ दिन मे ३ बार देते रहने से अग्निमाद्य एव दाहयुक्त जीर्ण ज्वर दूर हो जाता है।

उर क्षत पर—इसकी मात्रा ४ रत्ती, दिन मे ३ बार घृत व शहद के साथ देते रहने से क्षत शुद्ध होकर

भर जाते हैं ।   —गा० औ० र०

अथवा—सितोपलादि चूर्ण के साथ प्रवालभस्म १ से २ रत्ती तक मिलाकर घृत व शहद के साथ सेवन कराने से विशेष लाभ होता है ।

(२२) सुजाक, मूत्रदाह, तथा प्रमेह पर—

सुजाक पर—वंशलोचन के साथ शीतल मिर्च (कबाब चीनी या शीतल चीनी) नागकेशर व छोटी इलायची के बीज समभाग महीन चूर्ण कर लें । १॥ से ३ माशा की मात्रा मे चूर्ण को ६ बूंद चन्दन का तैल मिलाकर देवें । इस प्रकार प्रात सायं ३ दिन तक देने से मूत्र वेदना दूर होती तथा नये सुजाक का दमन हो जाता है ।

नोट- रोगी को पथ्य मे रोटी,घृत,शक्कर, बहुत थोडी दाल देवें नमक कम देवें, दूध न पीवें । यह रोग दब जाने पर शिलाजीत प्रधान या अन्य औषधि लम्बे समय तक देकर रोग के विष को नष्ट कर देना आवश्यक है । अन्यथा जीवन भर रोग की जड रह जावेगी । —गा० औ० र०

मूत्र दाह पर—उक्त प्रयोग लाभकारी है, उसमे चन्दन तैल न मिलाते हुए केवल मिश्री मिले हुए दूध के साथ उक्त मात्रा मे ही सेवन कराने से, अथवा केवल वंशलोचन को गोखरू के अर्क के साथ, या गोखरू के पत्तों के स्वरस के साथ सेवन कराने से भी मूत्र की जलन दूर होकर मूत्र साफ आने लगता है । अथवा—इसके चूर्ण को गोखरू व मिश्री चूर्ण मिला कच्चे दूध की लस्सी के साथ देवें । सर्व प्रकार के प्रमेहों पर— उक्त सुजाक या पूय मेह का प्रयोग प्राय सर्व प्रमेहो पर लाभदायक है । उस प्रयोग के ४ द्रव्यो के खूब महीन किये हुए चूर्ण में उत्तम चन्दन का तैल अच्छी तरह मिलाकर छोटी सुपारी जैसी गोलियां बना रखें । नित्य प्रात सायं एक-एक गोली को लगभग ४ तोला ठंडे जल में घोलकर उसमे ६ माशा मिश्री का चूर्ण मिला सेवन करावें । इसके सेवन से प्रथम दिन ही मूत्र दाह, जलन आदि विकार दूर होते हैं तथा ७ दिन मे दुस्तर प्रमेह नष्ट हो जाता है । पथ्य मे गेहूं की रोटी अरहर की दाल, घृत और शक्कर केवल इतने ही पदार्थ लेवें ।   —व० गु० ।

(२३) पैत्तिक विकार रक्तपित्त, शारीरिक अति उष्णता तथा ज्वर पर—

पैत्तिक विकारो पर—वंशलोचन १८ मा०, ककड़ी बीज की गिरी, चिलगोजा की गिरी, बबूल का गोंद और बडी इलायची के बीज प्रत्येक २८॥ मा०, निशास्ता, कतीरा ७-७ माशा और खांड १७॥ मा० सबको कूट छान कर बादाम तैल में मिश्रित कर शहद के पाक मे मिला अवलेह बना लेवें । मात्रा १ से २ तोला तक सेवन से पित्त की उग्रता कम होती है । उरःस्थल एवं फुफ्फुस के व्रण तथा पित्तज कास में लाभदायक है । इस प्रयोग को लिऊक तबाशीर कहते है   —य० नि० मा०

रक्तपित्त पर—वंशलोचन के २ माशा चूर्ण को अडूसा के स्वरस १ तोला मे मिला सेवन कराते हैं । अथवा इसके चूर्ण को शहद और मिश्री के साथ सेवन करावें ।

मुख पाक पर—इसे छोटी इलायची बीज, श्वेत कत्था व गेरू समभाग महीन चूर्ण कर थोडा२ मुख में डालते रहें तथा साथ ही ८ तो० गुलाब,फूल के गुलकन्द में लगभग २ से ३ माशा तक वंशलोचन मिला प्रात व रात्रि मे सेवन करें ।

शरीर की उष्णता कम करने के लिये—४ रत्ती वंश-लोचन को २ रत्ती प्रवाल पिष्टी या सत्व गिलोय या मुक्तापिष्टी के साथ प्रतिदिन गोदुग्ध से सेवन करावें । इस प्रयोग से उष्ण प्रकृति वालो के स्वप्नदोष, अनैच्छिक वीर्यस्राव, कृशता आदि मे भी लाभ होता है ।—सकलित

ज्वर पर (विषम ज्वर)—हुब्ब बुखार–वंशलोचन २ तोला कुनैन सल्फ (Quinine sulphas), गिलोय सत ६-६ माशा तथा गोंद बबूल ३ मा० कूट-पीस-छान कर थोडे जल मे घोटकर मूंग जैसी गोलियां बना लेवें । ज्वर आने से पूर्व १-१ गोली प्रात मध्याह्न व सायंकाल सेवन से विषम ज्वर दूर होता है । विरेचन के बाद प्रयोग करने मे अधिक लाभप्रद है ।   —यू० चि० सा०

(२४) क्षय (राजयक्ष्मा) तथा वीर्य वृद्धि के लिए ।

क्षय पर—वंशलोचन को स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म तथा



मृगश्रृंगभस्म के साथ (यथोचित प्रमाण एवं अनुपान के साथ) कई मास तक देना चाहिये। इससे प्राय क्षय रोगियो की प्रथमावस्था मे लाभ होते देखा गया है।

वाय वृद्धि के लिये— वंशलोचन को १ माशा की मात्रा मे प्रतिदिन सेवन करे। अथवा इसे प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, स्वर्णवङ्ग, शिलाजीत आदि औषधियो मे मिलाकर सेवन करना विशेष लाभप्रद है।

(२५) गर्भवती स्त्रियो के लिये—गर्भस्राव या गर्भपात की आशका हो तो वन्शलोचन १ मा० और असली असली पत्थर का जीव (कल्बुल हज्र) १ रत्ती दोनो को पृथक पीसकर मिला दें। (यह एक मात्रा है) ऐसी २-३ मात्रायें दिन मे आवश्यकतानुसार प्रयोग करे। यह गर्भपात एव स्राव के लिए अमोघ प्रयोग है।

सुन्दर, सुदृढ पुत्र प्राप्ति के लिए—गर्भवती को वशलोचन, कमलगट्टे की गिरी (मध्य का हरा भाग निकाल दें।) दोनो समभाग महीन चूर्ण कर उसमें दो गुनी मिश्री मिला रखें। २ से ३ मा० तक गौ के ताजे दूध से (दूध इच्छानुसार लें) दिन मे दो वार सेवन करें। इस योग से सुखपूर्वक प्रसव होकर पुत्र की प्राप्ति होती है। इस से स्तनो मे दुग्धाभाव या स्तनो का शैथिल्य भी दूर होता है। —यू चि स

गर्भवती स्त्रियो को प्राय मिट्टी, राख, कोयला हानिकारक वस्तुओ के खाने की आदत पड जाती है जिससे उनके स्वास्थ्य एव गर्भस्थ बालक को भी नुकसान पहुचता है। ऐसी दशा मे उसको वन्शलोचन प्रतिदिन थोडा२ खाते रहने से उसके स्वास्थ्य मे सुधार होता तथा गर्भस्थबालक भी पुष्ट होता है।

(२६) दन्त विकार, नेत्र विकार तथा अग्नि दग्ध पर—

दन्तमञ्जन—वन्शलोचन, छोटी इलायची के बीज व रूमामस्तङ्गी समभाग महीन पीस कर रख लें। नित्य प्रात साय इसे दातो पर मलने से दातो का मैल एव दन्त विकारों को दूर कर वे मोती के समान चमकने लगते हैं।

नेत्र विकारों पर—वशलोचन १२ भाग, छोटी इलायची बीज १० भाग, आवला ६ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, छोटी पिप्पली २ भाग तथा इन सबसे आधा भाग शुद्ध सुरमा सबको महीन पीस छानकर रखें। इस सुर्मे को प्रतिदिन नेत्रो मे लगाने से नेत्र के सर्व विकार दूर होते हैं। —सकलित।

अग्निदग्ध पर—वशलोचन, पाकर (या पीपल) की छाल, लाल चन्दन, गेरू और गिलोय समभाग का चूर्ण कर घृत (गोघृत) मे मिलाकर लेप करने से अग्निदग्ध व्रण नष्ट होते है। —शा० स०।

नोट—मात्रा—पत्र अकुर, छाल आदि का क्वाथ २½ से १० तोला तक। चूर्ण ३ माशा से १ तोला तक।

अधिक मात्रा मे—फुफ्फुस के लिये हानिकर है। हानिनिवारक—कतीरा और फिंदक की गिरी (फिंदक का प्रकरण पीछे देखें) है।

वशलोचन—१ से ३ माशा तक। इसका अधिक सेवन वाजीकरण शक्ति तथा फुफ्फुसो के लिये हानिकारक है। हानिनिवारक—शहद, मस्तगी, उन्नाव, एलुवा, केसर आदि है।

इसके प्रतिनिधि—कुलफा और रायतुन्ज (सुमाक) है।

विशिष्ट योग—

(१) रज शोधक क्वाथ—इसके कोमलपत्र, सोया बीज, अमलतास का गूदा, वाय विडग, कलौंजी, मूली बीज, हसराज, अजमोद, मजीठ, अपामार्ग मूल, तोदरी सुर्ख, हरमल और इन्द्रायण मूल प्रत्येक १-१तोला, चित्रक मूल की छाल ८ माशा, कपास मूल की छाल व गाजर के बीज २-२ तोला सबका जौकूट चूर्णकर उसमे से २ तोले चूर्ण ४० तोला जल मे शाम को मिट्टी के पात्र मे भिगो प्रात पकावें। १० तोला शेष रहने पर छानकर आधा क्वाथ प्रात १ तोला गुड व महायोगराज गूगल १ मात्रा के साथ लेवें। शेष क्वाथ इसी प्रकार शाम को लेवे। जिस दिन मासिक धर्म हो उसी दिन से प्रारभ कर ४ दिन तक सेवन से मासिकधर्म के सर्व विकार—अनियमितरूप से होना, कष्ट के साथ होना आदि दूर हो जाते

है। ऋतुस्राव खुलकर साफ होता है। गर्भाशय के सब विकार दूर होने, जमा हुआ दूषित रक्त मासिकधर्म के साथ निकल जाना एवं गर्भाशय सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाता है। —च० च०।

(२) रज प्रवर्तक क्वाथ—राम की गाठ (पोर्वा), अथवा कोमल पत्र, अमलतास की फली की छाल, कपास मूल, गाजर बीज, मूली बीज, काले तिल, गोखरू, उद्रायन मूल, कचरी बीज, सौंफ की जड समभाग जौकुट कर १ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथकर छान कर उसमे १ तोला पुराना गुड मिला प्रात पिलावे। ७ दिन पिलाने से बहुत समय का रुका हुआ मासिकधर्म पुन शुरू हो जाता है। ध्यान रहे, यह क्वाथ बहुत उग्र है। कोमल प्रकृति वाली स्त्री को या गर्भवती को नही देना चाहिए। —गा० औ० र०

(३) सितोपलादि चूर्ण—मिश्री से आधा वशलोचन, उससे अर्ध भाग पिप्पली, उससे अर्ध भाग छोटी इलायची बीज तथा उससे आधी दालचीनी, इनका महीन चूर्ण करलें। यह आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध सितोपलादि चूर्ण है। इसका मुख्य कार्मकारी एव प्रभावशाली द्रव्य वशलोचन है। यह जितना ही उत्तम तथा प्रमाणिक होगा, उतना ही यह योग उत्तम कार्यकारी होगा। इसकी उत्कृष्टता एव निकृष्टता वशलोचन पर ही निर्भर है। इसके प्रत्येक द्रव्य को अलग अलग कूट पीसकर कपडछन करना चाहिए। कपडछन किए हुए वशलोचन को ६ घटे तक खरल कर सुरक्षित रखे।

इसकी मात्रा २ से ४ माशा दिन मे २ बार घृत व शहद के साथ देवें। कफप्रधान विकारो मे शहद दूना मिलावे। वात व पित्त प्रधान रोगो मे शहद घी से आधा लेवे। प्रथम घृत मिलाकर फिर शहद मिलाना चाहिए। जिस खासी में कफ सरलता से निकलता हो, उसमे इसे केवल शहद के साथ देवे। यह कास, श्वास, क्षय, हाथ पावों की जलन, मुख से रक्त पडना, अरुचि, अग्निमाद्य, पसली का दर्द, जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर, बालको की कमजोरी, नेत्रो की उष्णता, कठ की जलन आदि मे विशेष लाभकारी है। राजयक्ष्मा मे भी यह लाभकारी है। चरक ने राजयक्ष्मा चिकित्सा मे इसकी योजना की है। —च० चि० अ० ८

गर्भवती स्त्री को लगातार ४–६ मास तक इसके सेवन से गर्भ को पोषक तत्व प्राप्त होकर वह पुष्ट तथा तेजस्वी होकर जन्म लेता है। यह प्रयोग पुरुष, स्त्री, बालक एव वृद्ध सबके लिए हितकारी है। यदि इस प्रयोग मे (यह कुल २७ तो हो तो उसमे) गिलोय सत ४ तो और प्रवाल भस्म २ तोला मिला देने से यह और भी प्रभावशाली होकर बल, काति एव ओज की वृद्धि करता है।

सितोपलादि चूर्ण १ तोला, भैंस का शुद्ध घृत १ तोले दोनो को काच या मिट्टी के पात्र मे रख उस पर गाय या भैंस का धारोष्ण दूध दोहकर पीलें। प्रात दो मास तक सेवन मे अपार शक्ति का सचार होता है।

नोट—तालीसादि चूर्ण मे भी वशलोचन प्रभावकारी है। इसका प्रयोग इस ग्रन्थ के भाग ३ मे तालीस पत्र न० १ के प्रकरण मे देखिये।

वृहत सितोपलादि चूर्ण मे सितोपलादि के उक्त ५ द्रव्यो के अतिरिक्त मुलैठी, बनफसा के फूल, गावजवां और तालीस पत्र ये चार द्रव्य वशलोचन से अर्ध अर्ध भाग लिए जाते है। मिश्री १६ तोला वशलोचन ८ तोला, मुलैठी, गुल बनफशा, गाजवा, तालीसपत्र ४-४ तोला, छोटी इलायची २ तो० और दालचीनी १ तोला)। मात्रा व अनुपान यथोचित या सितोपलादि के जैसे ही देते है। इसके गुणधर्म भी उसी प्रकार हैं। फुफ्फुस, सन्निपात (निमोनिया) मे विशेष लाभकारी है। कफ को आर्द्र कर, ढीलाकर शीघ्र ही बाहर निकाल देने की भी इसमे विशेषता है। वह श्वासवाहिनियो की श्लेष्मक कला के क्षोभ को शीघ्र ही दूर करता है, जिससे शुष्क कास सहित ज्वर सरलतापूर्वक शमन हो जाता है। प्रतमक श्वास मे भी लाभकारी है।

(४) वशलोचन प्रधान—प्रमेहान्तक, पूयमेहान्तक [सुजाक नाशक] तथा कफविकारादि नाशक वटी के प्रयोग—

प्रमेहान्तक वटी—वशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमी-

मस्तगी, कुन्दर गोंद, कबाबचीनी, इलायची व हल्दी समभाग महीन चूर्ण कर चन्दन तैल के साथ घोटकर मटर जैसी गोलिया वना लेवे। २ गोली तक जल के साथ सेवन से प्रमेह, मूत्रनली का शोथ, मूत्रावरोध, मूत्र के मार्ग से पूय निकलना, वेदना आदि नष्ट होते हे।

—आयु० नि० माला।

सुजाक नाशक वटी या चूर्ण का प्रयोग ऊपर वंशलोचन विषयक प्रयोग न. २२ मे देखिये।

कफ विकारादि नाशक वटी—वंशलोचन, शुद्ध सखिया, छोटी इलायची और जावपत्री समभाग चूर्ण कर अर्क गुलाब मे २ दिन खरलकर ज्वार के दाने जैसी गोलिया बना लेवें। १ गोली दूध के साथ सेवन से कफ विकार, प्रतिश्याय, श्वास, जीर्ण ज्वर, वमन, एव वात विकारो मे विशेष लाभप्रद है। कफ को पिघलाकर बाहर निकाल देती, उसकी उत्पत्ति कम करती, हृदय को बल देती तथा निर्बलता दूर करती है। यह जीर्ण वात प्रकोपज व्याधि मे शीघ्र फलप्रद है।

(५) जीर्णज्वरांतक पाक—वंशलोचन ८ तो, श्वेत जीरा, मुलेठी, प्रवाल भस्म, छोटी इलायची बीज और गिलोय-सत २-२ तोला, पिप्पली, श्वेतचदन का बुरादा ४-४ तोला सबका महीन चूर्ण कर उत्तम मिश्री ४० तो. की चाशनी मे मिलाकर पाक जमा दे। ४ माशा से १ तोला तक शहद के साथ प्रात साय सेवन से जीर्ण ज्वर, निर्बलता, खासी आदि दूर होती है।

नोट—शेप उत्तमोत्तम पाको के प्रयोग हमारे बृहद्-पाक सग्रह में देखिये।

वाइकल—देखें—बेकल। वाहशी—देखें—वेदसादा

बाइसा गूगल (Balsamodendron Pubescens)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के इसके वृक्ष छोटे कदके, सुगन्धित, कटीले, गूगल के वृक्ष जैसे ही पत्रादि से युक्त होते है। गूगल का सचित्र प्रकरण भाग ३ मे देखे।

इसके निर्यास को ही भैसा गूगल (महिषाक्ष) कहते है। बम्बई की ओर बाईसा गूगल तथा लेटिन मे 'बालसमोडेण्ड्रान पुबेसेंस' कहते हैं।

इसके गुण धर्मादि प्राय गूगल जैसे ही हैं। यह देहली मे होने वाले विशेष जाति के व्रणो (Delhi boils) पर उपयोगी है।

बाकला (Phaseolus vulgaris)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilioneceae) के सेम या वल्लर की जाति के इसके लता रूप पौधे होते हैं। इसकी फली ३-४ अ गुल लम्बी गोल सूक्ष्म रोमाच्छादित होती है। पत्र, पुष्प सेम या मटर के पत्र पुष्प जैसे होते हैं। प्रत्येक फली के भीतर बीज सेम या मटर के बीज जैसे किन्तु कुछ बडे, शीर्ष भाग पर अर्ध चन्द्राकार काले रग के चिन्ह से युक्त होते हैं।

यह साग सब्जी के बागो या खेतो मे साग के लिए प्राय सर्वत्र बोया जाता है। इसका मूल स्थान पर्शिया तथा फ्रास देश है। भारत में उत्तर-प्रदेश के पहाडी स्थानो मे इसकी अधिक उत्पत्ति होती है। इसके बीज या फली को बाकला कहते है।

नोट—फली तथा बीजो के श्वेत, पीले, लाल और काले रंग के भेद से यह ४ प्रकार का होता है। इसका श्वेत भेद ही प्राय खाने तथा औषधि कार्य मे विशेष आता है। इसका ही एक भेद बडा बाकला (Vicia Faba) होता है। इस के बीज अपेक्षाकृत बडे और चौडे होते हे। इसे अ ग्रेजी मे ब्राड बीन (Broad bean) कहते है। इसके अ कुर या जड को जल में पीसकर छान कर पिलाने से शराबी का नशा उतर जाता है, वह होश में आ जाता है।

नाम—

हि—वाकला, विलायती सेम, वल्लर, वावरी।

म—श्रावण घेवडा। अ—कॉमन फ्रेंच या किडनी बीन (common French or Kidney bean)।

ले—फेजियोलस व्हल्गेरिस।

रासायनिक सगठन—इसमे गधक तथा फास्फर युक्त प्रोटीड (Proteides) अधिक प्रमाण मे होने से यह आहार के लिए विशेष उपयुक्त है। इसमें स्टार्च एव शर्करा (ग्लुकोज) अल्प प्रमाण मे पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ताजी अवस्था मे जलीय अंश ६५%, तथा शुष्क दशा में ईथर एक्स्ट्रेक्ट (Ether extract), २% अल्बुमिनाइड्स २३ ७५% (जिसमें नाइट्रोजन ३.८% होता है), घुलनशील कार्बोहायड्रेट्स (carbohydrates) ४०. २५%, काष्ठीय तंतु २२%, और राख (क्षार) १२% पाये जाते हैं। —नाडकर्णी



वाकला

PHASEOLUS VULGARIS LINN

प्रयोज्याङ्ग—ताजी फली, हरे या सूखे बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

ताजी फली शीत व स्निग्ध, सूखी फली-शीत व रूक्ष, गुरु, विष्टंभी, वातकारक, कफ निःसारक, शोथहर और लेखन है। बीज की दाल के दो भागो के मध्य भाग मे एक छोटी, कडुवी वस्तु होती है, जो उष्ण व रूक्ष है।

इसकी ताजी फलियां अकेली या मांस के साथ पकाकर खाने से पुष्टि प्राप्त होती है। सूखे या ताजे बीजो की भी साग बनाते हैं। शुष्क बीजो का छिलका दूर कर दाल बनाई जाती है।

(१) कपोतसगार्थ—बीजो की गिरी को उपयुक्त औषधि के साथ सेवन कराते हैं।

(२) व्रण शोथ पर—इसे पीसकर लेप या पुल्टिस बना कर बांधते है। यह फोडों को तर, स्निग्ध रखने वाली पुल्टिस होती है।

(३) इसके चूर्ण को उबटन जैसा बनाकर लगाने से शरीर का रंग निखरता है, चेहरे की झाई आदि दूर होती हैं।

(४) बिना छिले हुए वाकले को सिरके मे पकाकर खाने से वमन अतिसार मे लाभ होता है। छिले हुये को सिरके के साथ खाने से गुर्दो की शुद्धि होती है।

(५) कामशक्ति के वर्धनार्थ इसे सोठ के साथ सेवन कराते हैं।

(६) मासिक धर्म प्रवर्त्तनार्थ—इसका क्वाथ पिलाते हैं। इससे गर्भाशय की शुद्धि होती है। यह क्वाथ जीर्णातिसार तथा आंत्र के व्रणो पर भी लाभकारी है।

(७) सिर पर चोट लगने से शोथ हो तो इसे जौ आदि के साथ पीसकर लेप करते है।

(८) कर्ण शोथ पर—इसके चूर्ण को गेहूं का आटा व मेथी दाना के चूर्ण मे मिला, शहद के साथ लेप करते हैं।

(९) स्त्रियों के स्तनो मे—दूध के जमाव से या चोट लगने से सूजन हो, तो इसे शराब या सिरके के साथ पका कर पुल्टिस बना कर बाधने से लाभ होता है ।

(१०) कठमाला पर—इसे जौ के आटे व फिटकरी के साथ पीस कर जैतून के पुराने तैल मे मिलाकर लेप करते हैं ।

(११) अग्निदग्ध पर—इसके छिलके और ताजे पत्तो को पीसकर लेप करने से बहुत फायदा होता है।

(१२) चेचक वा फोडे फुसियो के काले दागो पर इसके हरे पौधो को जलाकर, उसकी राख को उन दागो पर मलते रहने से दाग दूर हो जाते है ।

(१३) अण्डकोष के शोथ और बद गाठ पर—इसके चूर्ण को जीरे के साथ शराब मे पकाकर लेप करते है ।

(१४) पागल कुत्ते के काटे हुए स्थान पर—इसे शराब मे पका कर लगाते हैं ।

(१५) अस्थि सन्धानार्थ—कहा जाता है कि इसके कोमल ताजे बीजो को कूट निचोडकर रस निकाल २½ तोले की मात्रा में पिलाने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है अथवा इसके पत्तो को गिले अरमनी के साथ पीस छान कर पिलावे ।

(१६) कास पर—बीजो को अन्जीर के साथ पकाकर खावे या इसको पिलावे । इससे कफ मे खून आना भी बन्द हो जाता है, तथा अतिसार मे भी लाभ होता है ।

नोट—मात्रा औषधि के लिए ३-५ माशा । आहार के लिए जितना भी पचा सके ।

अधिक मात्रा मे इसे खाने से उदर मे अफरा, सुस्ती, हृदय की धडकन मे वृद्धि, शरीर मे तर व शुष्क खुजली पैदा होती है । खराब स्वप्न दिखलाई देने लगते है । स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है । रंज और गम पैदा करता है । इसके ऊपर का छिलका मुख मे छाले पैदा करता है । कठ मे खुश्की होकर सूजन पैदा होती है । अत इसका अधिक सेवन कभी नही करना चाहिए ।

इसके हानि निवारक सोठ, जीरा, काली मिर्च, पोदीना, सुहाग, बादाम का तैल है ।

इसे छील कर पका कर खाने से आध्मान नही होता ।

प्रतिनिधि—लोबिया या उडद है ।

बाकली—देखे—धव ।

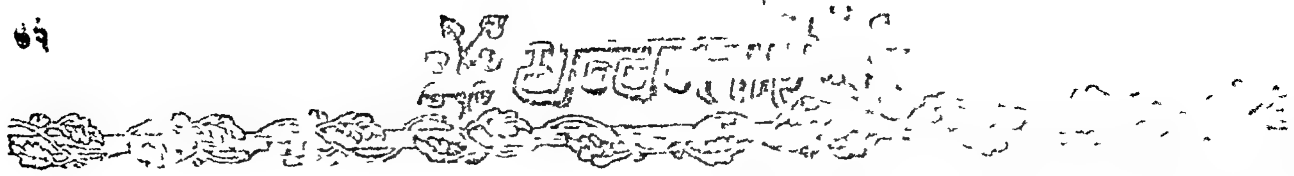
बाकेरी मूल (Caesalpinia Digyna)

शिम्बीकुल के पूतिकरंज उपकुल [Caeselpiniaceae] के बडे झाडीदार, कटीले (बैंगनी या धूसर वर्ण के काटो से युक्त), कटकरंज के क्षुप जैसे इस ३-४ फुट ऊंचे क्षुप की शाखयें चिकनी, रोमश, पत्र—६–८ इञ्च लम्बी सीको पर पत्र-६-१० इञ्च तक लम्बे प्रत्येक सीक पर ८-१२ सख्या में, पुष्प—१ इञ्ची, पीले तथा लाल वर्ण के गोलाकार, रोमाश, तुर्रो मे, फली-लम्बाकार १½-२ इञ्च लम्बी, मोटी, रोमश तथा २-४ बीज युक्त होती है ।

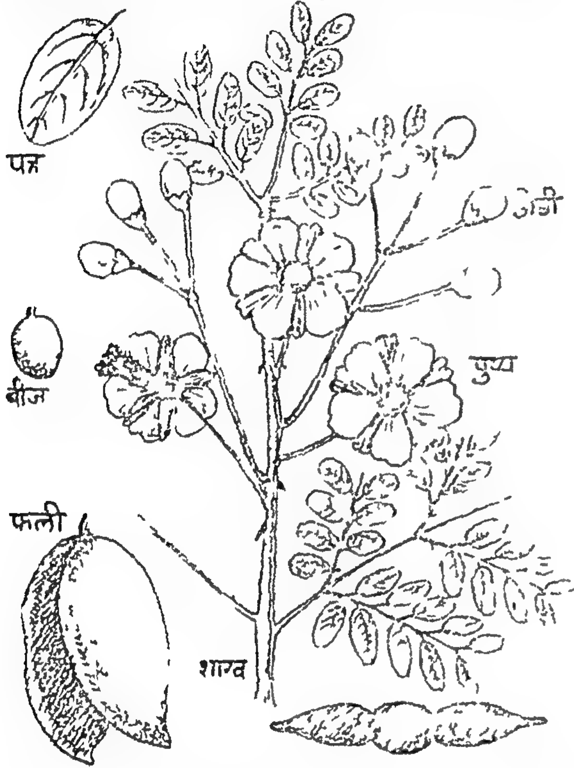
पुष्प—जुलाई से अक्टूबर तक या वर्षाऋतु मे आते है इस क्षुप के मूल प्रदेश मे जो गाठ या कद होता है, उसे ही बाकेरी मूल कहते है । औषधि मे विशेषत इसी का प्रयोग होता है ।

नोट—इस बूटी के क्षुप भारत मे दक्षिण के पश्चिमी एव पूर्वी घाटो मे—कोकण प्रान्त के सह्याद्री पर्वत के तल भागो मे तथा उत्तर बगाल आसाम, हिमालय के पूर्वी भागो मे, बर्मा व सीलोन मे विशेष पैदा होते है ।

नोट—इस क्षुप की जडे जमीन मे बहुत नीचे गहरी एव विस्तारपूर्वक बड़े-बडे पत्थर एव चट्टानों में धसी हुई होती है । इसकी छाल या मूल मे विशेष गुण नही, किन्तु अन्दर से अन्दर गहरी गई हुई जड के अन्तिम छोर में शकरकन्द जैसा या उससे भी कही-कही बडा जो कन्द होता है वह अप्रतिम गुणकारी है । यह महाराष्ट्र मे



बाकेरी
CAESALPINIA DIGYNA ROTTL



'वाकेरी भातें' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं तथा इसका प्रयोग भी वहा विशेष प्रचलित है।

उक्त कन्द बडी कठिनाई से जमीन के अन्दर १०० फुट से भी अधिक गहरा खोदने पर प्राप्त होता है। कभी-कभी अत्यधिक वर्षा के कारण पहाडो के किनारो पर दरारें हो जाने से ये कन्द नीचे की तलेटी म स्वय बाहर निकल पडते है, तब बडे परिश्रम से नीचे जाकर दरारो के बीच से खोदकर इन्हे निकालना पडता है। प्राय इसी प्रकार ये प्राप्त भी होती ह अन्यथा खोदकर इन्हें प्राप्त करना दु साध्य कार्य है। इन कन्दो को लाकर दूध में पकाकर एव अच्छी तरह सुखाकर सुरक्षित रखा जाता है।

ये कन्द वजन में बहुत हल्के, सरलता से टूटने वाले किन्तु चिमडे से, स्वादु मे कडवे होते हे। बाजारो मे इसके नाम से जो कद प्राप्त होता है वह प्राय पेठे की या अन्य क्षुपो की जडें, या इसी क्षुप की ऊपर की जडें होती हैं। अत इसे अच्छी तरह समझ बूझकर लेना चाहिये।

कोई इसे ही विधारा मानते हैं। वास्तव में विधारा इससे भिन्न है। विधारा का प्रकरण देखिये।

नाम—

सं०—वृत करञ्ज, जलमंजरी। हि०—वाकेरीमूल म०-वाकेरीचे भाते, गजगाले, गजगगन। गु०-वाकेरीमूल। बं—अमन कचि। लै०—सिसालपिनिया डिगिना। सिसाल्पिनिया ओलियोस्पर्मा (Caesalpinia Oleosperma)

रासायनिक संगठन—

इसमे महत्वपूर्ण सकोचक तत्व (टेनिन) की विशेषता देखी जाती है।

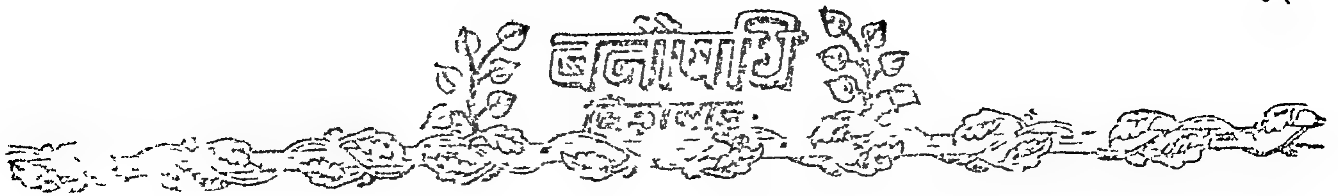
प्रयोज्याग—कन्दमूल। कन्दो को दूध में पकाकर एव शुष्क कर सुरक्षित रखने से कई वर्षा तक खराब या गुण हीन नही होते।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु (चरपरा) उष्णवीर्य, ग्राहक, बल्य, वातशामक, शोधक, चर्म विकार एव कीटाणुनाशक, व्रणरोपक है। अधिक मात्रा मे लेने से कुछ मदकारक है।

उक्त एव नीचे के गुण, धर्म प्राय आधुनिक मतानुसार डा० देसाई के ह। इसका उपयोग रक्त शोधन एव व्रण रोपण रूप से महाराष्ट्र मे भगन्दर, नाडी व्रण (नासूर), शैय्याव्रण आदि पर बहुत किया जाता है। यह जीर्ण रोगो को भी दूर करता है। उदर सेवन तथा बाह्य लेप रूप से इसका व्यवहार किया जाता है। ब्रह्मदेश मे ज्वर पर इसे जल मे घिस कर पिलाते हैं।

इसका असर अति मन्दगति मे होता है। प्रथम सप्ताह मे इसका कुछ भी असर नही प्रतीत होता। फिर दूसरे सप्ताह मे दीपन, पाचन, उदर शोधन, रक्त प्रसादन, स्फूर्ति आदि गुणो की प्रतीति होने लगती हे। जीर्ण रोगो मे १-२ मास तक या इससे भी अधिक समय तक इसका सेवन करना पडता है। कफ प्रधान जीर्ण श्वास, कण्ठमाला, जीर्ण फिरङ्ग, उपदश, जीर्ण सुजाक, अर्बुद, कर्कस्फोट (कारबकल), नाडी व्रण, दुष्ट व्रण, मधुमेह, गर्भा-



गयप्रदाह आदि रोगो मे गुजरात, महाराष्ट्र मे इसका प्रयोग हो रहा है। किस स्थिति में कितना लाभ पहुचता है ? यह अभी तक निश्चित नही हुआ है तथापि यह उत्तम निर्दोष औषधि है, इस विषय मे कुछ भी सदेह नही है।

[१] भगन्दर व्रणो पर—हमे विशेष अनुसधान एव अनुभव मे ज्ञात हुआ है कि यह शरीर के किसी भी प्रकार के व्रणो को शीघ्र या विलम्ब से ठीक कर देता है। जिस पर कई बार शस्त्र क्रिया हो चुकी हो, डाक्टर लोग निराश हो गये हो, ऐसा भगन्दर इसके सेवन से (लगभग १ वर्ष तक सेवन करने से) समूल नष्ट हो जाता है।

इसके कन्द को दूध में पीसकर दिन मे दो बार पिलावें तथा विकृत स्थान पर नीम पत्र, वच, हींग और घृत की धूनी देवें। नमक से पूर्ण परहेज करावें। यही उपचार नाडीव्रण, अर्श तथा गण्डमाला पर भी लाभदायक है। गण्डमाला पर इसका लेप भी किया जाता है। साथ ही साथ अस्थिक्षय (Bone tuberculosis) हो तो इसका चूर्ण १॥ माशा तक प्रात साय दिन मे २ बार, समभाग शक्कर तथा यथेच्छ मक्खन मिलाकर चटावे और ऊपर से पकाया हुआ सुखोष्ण दुग्ध पिलावे ३-४ महीने तक।

प्रमेह पिडका (कार्बन्कल–carbuncle) हो तो इसे महीन कूटपीस कर चकती सी बना पिडका पर बाध देवे।

[२] मासार्बुद या कॅसर पर—इसका चूर्ण ८ से १२ रत्ती तक दिन में २-३ बार, दूध मिश्री के साथ सेवन करावे तथा इसी का लेप (चूर्ण को या इसके कन्द को दूध या जल में मिला या घिसकर लेप) करते रहे और ऊपर से नागफनी थूहर का पत्ता गरम कर बाध दिया करें। अथवा कटकरज (लताकरज) के पत्तो को पीसकर गरम कर बाधा करे। यह लेपादि बाह्योपचार तभी हो सकता है जबकि अर्बुद शरीर के ऊपर हो, भीतर के अर्बुद पर उक्त प्रकार से इस बूटी के चूर्ण का सेवन कराना एव दिन में दो बार लताकरज-पत्र का स्वरस मात्रा १ से २ तोला तक पिलाना हितकर होता है। रोग को नमक व मिर्च से सख्त परहेज कराना चाहिए। जहां तक हो सके मधुर रस प्रधान ही अन्न या आहार का सेवन करावे। विशेषत घी, दूध व गेहू के बने हुए पदार्थों का ही सेवन लाभकारी होता है।

[३] पाडु, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा तथा उपदश आदि गरमी के विकारो पर—इसके कन्द को ताजे गोदुग्ध में घिस कर उसमें शुद्ध ताजा घृत मिश्री व श्वेत जीरे का सूक्ष्म चूर्ण यथोचित मात्रा में मिला दिन मे दो बार सेवन करावें। इस प्रकार ३ माह तक के प्रयोग से उक्त सर्व विकार दूर होकर शुद्ध रक्त की वृद्धि हो जाती है। काति एव बल की परिपूर्णता होती है।

फिरङ्गोपदश में—शरीरान्तर्गत रक्तवाहिनियो के बिलकुल नाजुक होकर जहा तहा फूट जाने का भय है। तथा इनके फूट जाने पर अदर का रक्तस्राव हृदय, मस्तिष्क आदि मर्म स्थानो पर होने से तत्काल मृत्यु की सम्भावना है। ऐसी दशा मे रक्त वाहिनियो की विकृति, इस बूटी के कुछ दिनो के सेवन से नष्ट होकर अर्धाङ्गवात, हृदयस्तम्भ आदि भयकर उपद्रव नही होने पाते।

पथ्य मे रोगी को पुराना गेहू, जौ, चावल तथा मूग, अरहर या मसूर की दाल का यूप, परवल, चौलाई, बैंगन, प्याज, लहसन, कुन्दर, आमला, तक्र, घृत, मक्खन, अनार, सेव आदि पदार्थ देवे। धूम्रपान, वमन, मल मूत्रादि के वेगो का धारण, मैथुन, मटर, हीग, उडद ताम्बूल, सरसो, मद्य, अम्ल पदार्थ, विरुद्धान्न, गुरुपाकी एव विदाही आहार विहार का त्याग करे।

[४] उपदशजन्य शरीर के चट्टे आदि विकारो पर—इसके चूर्ण के साथ कपूर भेंडी की जड का चूर्ण मिलाकर पिघलाये हुए गाय के मक्खन मे मिला, दिन मे ४-५ बार लेप करते रहने से तथा इसे ताजे गोदुग्ध मे पीस छानकर पिलाने से चट्टे, वदग्रथि आदि उपदशजन्य विकार दूर हो जाते हैं। —व० गु

[५] रक्त पित्त पर—इसके कन्द को शीत जल या गोदुग्ध के साथ पीस छानकर उसमे मिश्री मिलाकर सेवन कराने से शीघ्र ही ऊर्ध्व एव अधो मार्ग से होने वाला रक्त

स्राव बन्द हो जाता है।

रक्तमेह का एक रोगी हमारे पास आया। मूत्रमार्ग से रक्तस्राव की शिकायत करने लगा। वह पहले अनेक बार गर्मी के विकारो से त्रस्त रहा, अन्त मे यह शिकायत हुई कि मूत्र मार्ग से बूंद-बूंद रक्त सतत टपकना शुरु हो गया। कई डाक्टरो की चिकित्सा वह करा चुका। रोग लगभग ३ वर्ष का पुराना हो गया। उसे इसी बूटी का सेवन दूध के साथ दो माह तक कराया गया। रोग समूल नष्ट हो गया।

—सम्पादक

(६) मूत्र सम्बन्धी विकारो पर—जगलनी जडीबूटी नामक गुजराती ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि मूत्र कम उतरना, रुक-रुक कर उतरना, मूत्र होते समय जलन होना, लाल पीला अथवा धातु मिश्रित मूत्र का आना, मूत्र मे फास्फोरस का जाना, स्वप्नदोष का होना इत्यादि रोगो मे यह बूटी बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके अतिरिक्त रक्तार्श, नाक व मुख मार्ग से होने वाला रक्तस्राव, शरीर की अन्तर्दाह, हलक। ज्वर, सूखी या गीली खुजली, प्रदर, व्रण, नासूर, भगन्दर, उपदश, अस्थि व्रण, कठमाला एवं क्षय जैसे भयकर रोगो पर भी यह लाभ पहुचाती है।

उक्त सब विकारो के लिए यह बूटी प्रात साय प्रतिबार ३ माशा तक लेकर जल के साथ पिसकर उसमे ५ तोला गोदुग्ध या ५ तोला ठण्डा पानी मिलाकर पिलावें। साधारण रोगो मे इसका ४९ दिन का सेवन पर्याप्त होता है। किन्तु क्षय या भगन्दर जैसे रोगो मे इसे ६ महीने से १ वर्ष तक लगातार सेवन करना आवश्यक है। जिन रोगो मे गर्मी का प्रभाव अधिक हो उनमें इसके उक्त प्रयोग मे थोडा घृत शक्कर और जीरे का चूर्ण भी मिला देना चाहिए। कण्ठमाला, व्रण, घाव इत्यादि बाह्य रोगों मे इस औषधि को पिलाने के साथ साथ इसका बाह्य लेप भी करना चाहिए।

नोट—मात्रा—कन्द १५-३० रत्ती तक, दूध या जल मे पिसकर या चूर्ण रूप मे।

अधिक मात्रा मे यह बेहोशी या मदकारक है। इसका निवारक दूध, घृत, मक्खन तथा श्वेत जीरा है।

वागवूप—देखें—माडेवूप

वागनेला (Tradescantia Axillaris linn.)

तालमूली या स्याह मूसली कुल (Amaryllidaceae or commelinaceae) के इस वर्षायु क्षुप के पौधे, स्याह मूसली के पौधों जैसे भारत के मैदानी प्रदेशो मे विशेष पाए जाते है। ये खेतो मे भी बोए जाते हे।

नाम—

हि —वागनेला, सोलतराज, इत्साक।

ले —ट्रेडेस्कान्टिया एक्झिलेरिस, सायनोटिस एक्झिलेरिस (Cyanotis Axillaris)।

रासायनिक सगठन—इसके बीजो मे कुछ वसा, श्वेतसार (Albuminoids) १६%, कार्वोहायड्रेट्स (cardohydrates) २८%, सेल्युलोज (cellulose) ६% तथा राख या क्षार लगभग ६% पाया जाता है।

प्रयोग—इसका उपयोग कान की भीतरी झिल्ली की सूजन (Tympanitis) पर विशेष किया जाता है। इसे तेल मे पकाकर कान मे तेल टपकाने तथा इसका बफारा देते हैं।

साधारण जलोदर या आध्मान पर—इस पौधे के रस मे तेल मिलाकर मर्दन या लेप करते हैं।

वाघचुरा (Pisonia Aculeata Linn)

पुनर्नवा कुल (Nyctaginaceae) के इस लतारूप कटीले, बहुशाखी क्षुप की छाल किंचित धूसर वर्ण की पतली नूतन छाल कोमल कटकावृत, भीतरी काष्ठभाग भी धूसर वर्ण का कोमल होता है।

पत्र—अखण्ड १-३ इञ्च लम्बे, लगभग १–१½ इञ्च चौडे, अग्रभाग मे मोटे, सूक्ष्म रोमश, पत्र वृन्त ¼-½ इञ्च लम्बे। पुष्प—कोमल एव कटका वृन्तपुष्प, दण्डो पर हरिताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे पुष्प सघन एव नर मादा पुष्प सयुक्त, फल—⅓–½ इञ्च लम्बे पाच शिराओ से युक्त होते हैं। शीत ऋतु के अन्त में फूल व फल आते है। इसके क्षुप भारत के दक्षिण में कोकणादि प्रान्तो मे गजाम से गोदावरी तक तथा वगाल, उडीसा आदि के जगलो मे भी विशेष होते है।

नाम—

हि.—बाघचुरा। उडिया—हाति अकुस।

व—वाघ आचडा। ले—पिसोनिया एक्युलिआटा।

प्रयोग—

प्रदाहयुक्त शोथ और गठिया की वेदना सधि पीडा पर इसके पत्ते व छाल का उपयोग किया जाता है। फुफ्फुस की शिरा जो हृदय से फेफड़ो मे रक्त ले जाती है तत्सम्बन्धी विकारो पर इस पौधे के रसमे काली मिर्च तथा अन्य उपयुक्त द्रव्यो को मिलाकर देते हैं।

बाघनखी–देखो–व्याघ्रनखी।

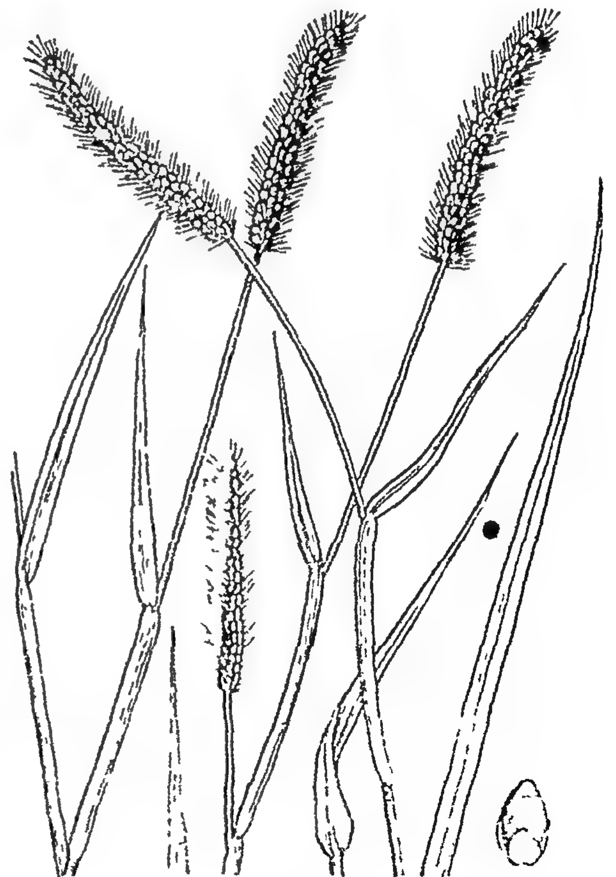
बाजरा (Pennisetam Typhoideum)

यवकुल (Gramineae) के इसके पौधे ज्वार के पौधो जैसे किंतु एकदम सीधे बढने वाले डडिया पतली होती हैं। इसमें एक लम्बा सिट्टा या भुट्टा लगता है जिस के चारो ओर छोटे–छोटे गोल दाने लगते हे। इन दानो को बाजरा कहते हैं। इसकी खेती भारत के उत्तर प्रदेश तथा पजाब, राजस्थान, (कच्छ) गुजरात, बम्बई प्रान्तो मे विशेष होती है।

नोट—इसके कई भेद है जैसे गुजरात या नाडियाद का देशी बाजरा, भावनगरी, जबलपुरी, माधोदी, ओध, दक्खिन, पूना, सिन्धु, अफ्रीकन बाजरा आदि। मारवाड तथा कच्छ भुज का बाजरा सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

सिंधु, पञ्जाब, बम्बई तथा दक्खिन (deccan) में और उत्तर प्रदेश के भी कई स्थानो में मजदूर वर्ग के लोगो का यह एक खाद्य अन्न है। बडे लोग भी प्राय शीतकाल में इसकी रोटी खिचडी चूर्मा आदि शौक से खाते हैं। ज्वार की अपेक्षा यह विशेष पथ्यकर माना जाता है, किन्तु उष्ण है। इसके हरे ताजे भुट्टो को भूनकर दाने निकालकर भी खाते हैं।

पञ्जाब की ओर इसकी एक नई किस्म निकाली गई है जिसके बाल या भुट्टो पर काटे होते हैं। काटो के



बाजरा

PENNISETUM SPICATUM ROEM.E SCHULT

कारण पक्षेरू, चिड़िया आदि फसल को नुकसान नही पहुचाती। इस किस्म का नाम एस० ५३० (S 530) है। इसकी बुआई जुलाई मास के दूसरे सप्ताह में की जाती है इसकी फसल ३ महीनो मे तैयार हो जाती है।

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थो मे तथा निघण्टुओ मे भी इसका उल्लेख हमे नही प्राप्त हुआ। मालूम होता है यह धान्य प्राचीन काल मे विशेष प्रचलित नही था।

नाम—

स—वर्जरी, नालिका आदि। हि—बाजरा, वजरी, लहरी, जोनरिया, कानजोनार, गहुमाड। म—बाजरी, सजगुरा। गु—बाजरो, मेज्जी। ब.—बाजरा, धारिया। अ—बुलरश क्याटटेल स्पाइक्ड या पर्ल मिल्लेट। [Bullrush, cattail, spiked or pearl millet] ले—पेन्निसेटम टायफोडियम, पेन्निसिपकेटम [Pennisetum spicutam]

रासायनिक संगठन--

इसके दानो में ईथर, एक्सट्रेक्ट ० ४ प्रतिशत, अल्ब्यूमिनाइड्स (जिसमे नाइट्रोजन ० २१ प्रतिशत) १ ३ प्रतिशत, पचनीय कार्बोहाइड्रेट्स [Digestible carbohydrates] २० ० प्रतिशत, लगभग १० प्रतिशत प्रोटीड्स (proteids) तथा ७० प्रतिशत स्टार्च, काष्ठतन्तु १५ ८ प्रतिशत तथा राख या क्षार २ ५ प्रतिशत पाया जाता है। —नाडकर्णी

गुण धर्म व प्रयोग--

गुरु, रूक्ष, उष्ण, दीपन, ग्राही, विष्टभी, वात, पित्त कारक, हृद्य, साधारण पुष्टिकारक, कांतिवर्धक, स्त्रियो की कामवासनावर्धक व ऋतुधर्म प्रवर्त्तक है।

पित्त एव वातजन्य वमन पर इसका हरीरा (यूष) बनाकर पिलाते हैं।

शोथ, आध्मान, अर्श पीडा, उदरशूल, वातज सिरदर्द पर इसे पोटलियो मे बाधकर तवे पर बार-बार गरम कर सेकते है। इसके सेक से बहुमूत्र के रोगी को भी लाभ होता है।

उपदश पर—इसके आटे मे नमक मिला, टिकिया बनाकर बाधते है।

पागल कुत्ते के विष पर—इसके दानो को आक के दूध मे फुला फुला कर तीन बार सुखाकर, कसोदी के पत्र रस मे घोटकर चने जैसी गोलिया बनालें। प्रात साय १-१ गोली अदरख के रस व शहद मे मिला खिलावे। ऊपर से गरम दूध पिलावे। २१ दिन बराबर पथ्यपूर्वक सेवन मे विष दूर हो जाता है। सेवन काल मे घृत व दूध का सेवन आवश्यक है अन्यथा गरमी विशेष होगी। अथवा — भा गृ चि

खेत में जाकर बाजरे के सिट्टो के कोमल फूल जैसे रोमो को सग्रहित कर रखें। इन्हे १ मा० की मात्रा मे गुड के साथ मिला खिलाने से ७ दिन मे विष नष्ट हो जाता है। —व गु

नोट—भोजन के रूप मे जितना पच सके उतना ही इसका सेवन हितकर होता है। अधिक प्रमाण मे या सदैव इसके खाने से उदर आध्मान, कब्जी, फुफ्फुस विकृति, वृक्काश्मरी, रक्त मे रूक्षता आदि हानिया होती है। गर्भवती स्त्री का गर्भपात होना सभव है। हानिनिवारक—घृत दुग्धादि स्निग्ध द्रव्य, एव कचरी की वेल की कोपल है। इसका प्रतिनिधि कगनी (काकुन) है।

इसकी रोटी, खिचडी आदि खाते समय उसमे घृत गुड या शक्कर आदि मिला कर खायें। इसके हरे पत्ते आदि तथा शुष्क कडब ज्वार के पत्र जैसी जानवरो के लिये पुष्टिदायक नही है।

बाण पुष्प (Barleria Prionitis)

पुष्प वर्ग एव वासाकुल [Acanthaceae] की नीले पुष्प वाली कटसरैया का ही यह एक भेद विशेष प्रतीत होता है। [इसका सचित्र विवरण इस ग्रन्थ के भाग ३ मे कटसरैया न० १ के प्रकरण मे देखिये।]

नोट—गौडादि देशो मे यह बाणपुष्प नाम से प्रसिद्ध है। "बाणपुष्प इति गौडादौ प्रसिद्ध" —भा० प्र०



अम्लाटन, अम्लान, अम्लातक, कुरण्टक, वर्ण पुष्प महासह ये इसके सस्कृत नाम है।

गुण धर्म मे यह—कषाय, तिक्त रस युक्त, उष्ण, स्निग्ध एव स्वादिष्ट होता है। —भा प्र.

इसके प्रयोगादि कटसरैया न०१ के समान ही किये जा सकते है।

सभव है इसके काटे कटसरैया के काटो की अपेक्षा बडे तथा बाण जैसे तीक्ष्ण होने से इसे बाण पुष्प कहते हो।

बादर—देखे तालीसपत्र। बादरज बोया—देखें विल्लीलोटन। बादवर्द—देखे. बादावर्द।

बादसाह शालप [Allium macleani]

रसोन कुल (Liliaceae) का यह कन्द विशेष आकार मे लहसुन जैसा कुछ कलौछ लिये हुए भूरे रङ्ग का ऊपर के पृष्ठ भाग पर उभरी हुई खडी रेखाओ से युक्त होता है। यह बाष्प क्रिया से शुष्क किया हुआ पर्शिया से इधर आता है तथा बाजारो में निम्न नाम से प्राप्त होता है। यूनानी मे इसका विशेष प्रचलन है। यह शुष्क कन्द जल में बहुत देर तक रखने से फूल जाता है। यह सालम मिश्री का एक कडुवा भेद है।

नाम--

हिन्दी, यूनानी—बादशाह सालप। अ —रायल-सालेप [Royal salep]। ले —एलियम मेक्लीनी।

गुण धर्म--

इसे सालम मिश्री के स्थान मे प्रयोग किया जाता है। किन्तु यह उतना प्रभावशाली एव सौम्य नही होता।

बादाम कोही (बादाम कश्मीरी)—देखे फिंदक।

बादाम [मीठा] (Prunus Amygdalus)

फलादिवर्ग एव तरुणी कुल (Rosaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल के वृक्ष मध्यम प्रमाण के, छाल लालिमायुक्त श्याम वर्ण की, पत्र—कुछ लम्बे भालाकार लम्बे वृन्त से जुडे हुए मध्य भाग मे चौडे, मध्य भाग के दोनो ओर पतले, किनारे दन्तुर या अखण्ड, कोमल नसोवाले कोमल कच्चे पत्तो का वर्ण हलका हरा, किन्तु पूर्ण बढे हुए पत्र कुछ श्वेताभ, पुष्प फैला-हुआ चौडी पाच पखुडियो से युक्त लाल छीटेदार श्वेत वर्ण का अन्दर कुछ पीत वर्ण का होता है। फल—प्रारंभिक कच्ची दशा मे जब सबसे ऊपर भी आवरण मखमली रोमश एवं कोमल होता है तब भीतर की आवरण युक्त गिरी या बीज स्वाद में किंचित कसैली अम्ल होती है। कुछ पकने पर ऊपर का उक्त आवरण कुछ कडा होकर भीतर की गिरी कोमल एव अम्लता युक्त मधुर होती है। पश्चात् भीतर की गिरी के कुछ कडी होकर स्निग्ध मधुर हो जाने पर उसके ऊपर का सलग्न पतला छिलका किंचित लालिमायुक्त भूरे रग का और उसका आवरण फीका पीले रग का कडा तथा मोटा होता है। खूब परिपक्व हो जाने पर सबसे ऊपर का उक्त आवरणीय भाग शुष्क होकर स्वय भीतर के कडे आवरणीय भाग (जो फीके पीले या खाकी रङ्ग का बाह्य भाग मे छोटे-छोटे छिद्रयुक्त सा होता है) से पृथक होकर झड जाता है, साथ ही ये भीतर के आवरण युक्त बीज भी नीचे झड जाते हैं। जिनको अच्छी तरह बटोर लिया जाता है। जो कुछ ऊपर पेड पर लटके हुए रहते हैं। उन्हे भी तोडकर रख लिया जाता है। इनमे जिनका आवरण विशेष कडा नहीं होता, चुटकी से मसलते ही अलग हो जाता है। उन्हे कागजी बादाम कहते है। ये प्राय बागो मे उपयुक्त वैज्ञानिक पद्धति से लगाये गये पेडो के फल है। इन कागजी बादमो की गिरी मोटी, वजनदार, विशेष स्निग्ध एव स्वादिष्ट होती है।

जिनका आवरण बहुत कडा होता है, सरलता मे अलग नही होता, उन्हे ठर्रा बादाम कहते है। ऐसे कडे आवरण वाले बादामो के वृक्ष प्राय जगली या पहाडी होते है। इनके भीतर की गिरी मोटी, वजनदार एव स्निग्ध नही होती। कागजी या ठर्रा दोनो बादामो की गिरी के ऊपर जो मलग्न सुर्ख जरद या कालापन युक्त रग का पतला छिलका होता है, उसका स्वाद कसैला तथा गुणधर्म मे विशेष ग्राही (कब्ज करने वाला) होता है।

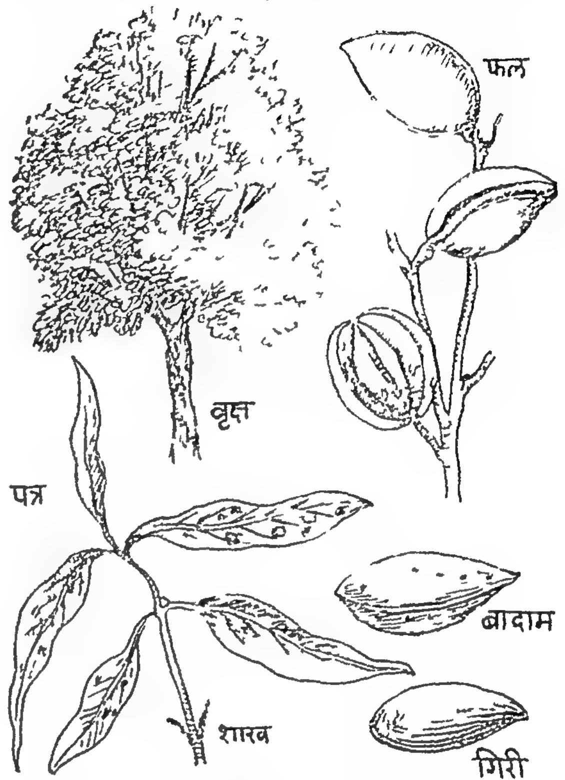
उक्त मीठे बादामो के वृक्ष विशेषत पश्चिमी एशिया के काबुल, (अफगानिस्तान) टर्की आदि देशो मे तथा यूरोप मे भी अधिक होते है। उधर से ही इसके फल यहा आते है। भारत के शीतल प्रदेशो मे विशेषत काश्मीर, पजाब तथा दक्षिण के पश्चिमी तट पर भी ये पैदा किये जाते हैं। किन्तु ये उतने उत्तम, स्निग्ध एव पौष्टिक नही होते। ये देशी बादाम प्राय कडे आवरण वाले ठर्रा बादाम होते है। आगे के प्रकरण मे बादाम देशी देखिये। बादाम जगली का भी वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

नोट—बादाम 'कोही' या बादाम काश्मीरी पीछे फिंदक के प्रकरण मे देखिए।

कटु बादाम—प्रस्तुत प्रसग के बादाम का ही एक भेद कडुवा-बादाम होता है। इसे लेटिन में (Amygdala Amarars) कहते है। इसके पेड मीठे बादाम के पेड जैसे ही किंतु कद में छोटे, पत्र भी छोटे एव रक्ताभ, पुष्प श्वेताभ लाल, फल मीठे बादाम के फल जैसे ही किन्तु कुछ छोटे तथा चौडे, और स्वाद मे अत्यन्त कडुवे होते हैं। इनमे भी जो जगली या पहाडी होते हैं वे और भी बहुत कडुवे एव अप्रिय होते हैं।

ये पेड एशिया, अफगानिस्तान, स्याम, मोरक्को, सिसली, फ्रास आदि मे अधिक होते है।

मीठे बादाम को तो जल मे भिगोने या रगडने से किसी प्रकार की गन्ध नही निकलती, किंतु कडवे बादाम की इस क्रिया मे विशेष प्रकार की गन्ध आती है, तथा वह उग्र विषाक्त हो जाता है। इसे खाने पर पेट में जल के सयोग से प्रूसिक एसिड (Prussic Acid) नामक विष उत्पन्न हो जाता है। इस विष की प्रतिक्रिया उदर



मे वही होती है जो हाइड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) नामक प्रबल विष की होती है, जिससे मृत्यु भी हो सकती है। अत इस विष के लक्षण (चक्कर आना, मुख व कठ मे जलन, पेशियो मे अत्यधिक शैथिल्य, चलने मे असमर्थ, नेत्र खुले, विस्फारित, मूर्च्छा, हनुस्तम्भ आदि) प्रकट होते ही रोगी के मुख पर जल के छींटे, शिर व मेरुदण्ड पर शीत जल की धारा छोडना, एमोनिया स्प्रिट का सेवन, एमोनिया सु घाना, वमन कराना, स्टमक पम्प से पेट धोकर साफ करना आदि उपचार करने चाहिए।

यथा सभव इन कडवे बादामो से सावधान रहना चाहिए। ये मीठे बादामो के साथ प्राय मिले हुए होते है। अत प्रथम ऐसे बादामो को पृथक करके ही औषधि या खाने के काम मे लाना चाहिए। कडवे बादाम का लेप शोथ, दाद, कुष्ठ, कृमि, कण्डू (खुजली) विशेषत.

योनिकण्डू, मस्तक शूल पुराने व्रण, गीली खुजली आदि पर लाभदायक है। इसे पीसकर सिरके में मिलाकर लगाने से छाजन, खुजली तथा शरीर के काले दागों पर लाभ होता है। इसे पीसकर वत्ती बनाकर योनि मार्ग में रखने से मासिक धर्म जारी हो जाता है। पागल कुत्ते के विष में इसे ४½ माशो की मात्रा में देते हैं, तथा इसका लेप भी करते है। युवान पिडिका या मुहासो पर इसकी गिरी और समुद्रफेन समभाग महीन पीसकर उबटन की तरह मुख पर रात्रि के समय मलकर प्रात गरम पानी से धोते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

कडुवे बादाम मे स्थिर तेल ४५% एमिगडेलिन [Amygdalin] ३% (यही तत्व जल के सयोग से प्राय विष रूप मे परिणत होता है), प्रोटीड (proteids) २५%, इमलशिन शर्करा [Emulson sugar] ३%, पिच्छिल द्रव्य [Mucilage] ३%, राख या क्षार ३ से ५% तथा हायड्रोसायनिक एसिड होता है।

यह तैल मृदुविरेचक, कृमिनाशक तथा जखम को अच्छा करने वाला, गुदा, यकृत एव प्लीहा की वेदना को दूर करने वाला, जीर्ण (चिरकालीन) प्रमेह, कर्णशूल, गले की वेदना तथा चर्म रोगो मे उपयोगी होता है। यह शोथ, वृक्क शूल, गर्भाशय का शोथ व योपापस्मार मे भी लाभकारी है। पाददारी, पैरो मे फटने वाली बिवाई पर इसे लगाने से लाभ होता है। कर्णनाद तथा कर्णशूल मे इस तैल को गरम कर २-२ बूदे कान मे डालने से लाभ होता है। जू के नाशार्थ इसे सिर पर लगाते है।

नोट—प्रस्तुत प्रसग के मीठे बादाम का ही एक भेद एमिगडेलस काम्म्युनिस [Amygdalus communis] है। इसके पेड पत्र आदि भी वैसे ही होते है। इसके पेड मद्रास की ओर पाये जाते है। इसकी जड मूत्रल तथा धातु परिवर्तक [Alterative] है। हिन्दी वा बगला में बादाम तथा मद्रास की ओर बादाम कोट्टाई कहते हैं।

नोट—आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे मीठे या कडवे भेद से बादाम का कोई गुणभेद पूर्वक उल्लेख नही मिलता। चरक के सू० स्थान अ० २७ मे तथा सुश्रुत के सू० स्था अ० ४६ मे फलो के प्रसग मे अखरोट, पिस्ता आदि अन्य मेवो के साथ केवल वाताम नाम से इसका उल्लेख है।

नाम—

स—वाताद (मधुर), वाताम, वातवैरी, नेत्रोपम फल (फल व गिरी का आकार नेत्र जैसा होने से)। हि०—बादाम (मीठा)। म० गु०—बादाम। बं०—बिलायती बादाम। अ०—[Sweet almond] (स्वीट-आलमण्ड)। ले०—प्रुनस एमिगडेलस।

रासायनिक सगठन—

इसमे स्थिर तैल ५६%, एक इमलिशन (Emulsin) नामक जलविलेय किण्वतत्व, पिच्छिल द्रव्य ३%, प्रोटीड [Proteids] २५%, तथा राख या क्षार ३ से ५% होती है। राख में पोटाशियम, कैल्शियम व मैगनीशियम फास्फेट होते हैं।

साराश—इसमे पोषक तत्व २४ भाग, स्निग्धता या चिकनाई ५८ भाग, कार्बोज १० भाग, खनिज द्रव्य ३¾ भाग, जलीय अंश ७¼ भाग, विटामिन ए० बी० साधारण प्रमाण मे, तथा 'सी' विटामिन अभी अनिश्चित है।

प्रयोज्याग—बीज की गिरी, गिरी का तैल, ऊपर का छिलका तथा तेल की खली।

नोट—जहा तक प्राप्त हो सके प्रयोगार्थ 'कागजी बादाम' ही लेना ठीक होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्णवीर्य, मधुर विपाक, वातहर, कफ पित्तवर्धक, दीपन, स्नेहन, लेखन, अनुलोमन, मृदुरेचक, कफनिस्सारक, मूत्रल, शुक्रजनन, बल्य, बृहण, वाजीकर, स्तन्यजनन, आर्तवजनन, नाडीसस्थान के लिए बल्य है। वातव्याधि, मस्तिष्क दौर्बल्य, नाडी दौर्बल्य, अग्निमाद्य, कोष्ठगतवात, जीर्ण विबन्ध, वातजन्य कास, मूत्रकृच्छ, श्वेतप्रदर, कष्टार्तव आदि मे प्रयुक्त होता है।

डा० देसाई के मतानुसार—इस मीठे बादाम मे चावल के भीतर रहे हुए श्वेतसार (स्टार्च) जैसा सत्व न होने से मधुमेह के रोगी को इसकी खीर (बिना शक्कर मिली) दी जाती है। इस खीर को बनाने के पूर्व गिरी को रात

भर गरम जल मे भिगो रखना चाहिए। प्रात छिलके दूर कर उपयोग मे लावें। ऐसा करने से उसमे पाचन क्रिया को उत्तेजक एव सहायक एक प्रकार का नया सत्व पैदा होता है। इस खीर को अधिक नही पकाना चाहिए। अन्यथा नूतन पाचक सत्व का नाश होना सभव है। रसायन के लिये उक्त प्रकार से भिगोई हुई बादाम, असगन्ध, पिप्पली, घृत, दूध व मिश्री मिलाकर बनाई हुई खीर उत्तम होती है। यह खीर निस्तेज मुख वाली स्त्री के कमर के दर्द पर अच्छी लाभदायक होती है। इसके सेवन से स्तनो मे दुग्धवृद्धि तथा श्वेतप्रदर मे लाभ होता है।

ध्यान रहे यदि यकृत के निर्बल होने से पित्तस्राव कम होता हो तो उक्त खीर मे घी मिलाना ठीक नही। अन्यथा मूत्र पीला व उष्ण होवेगा तथा खीर का यथायोग्य पाचन नहीं होगा।

श्वासोच्छ्वास सस्थान, मूत्र सस्थान तथा प्रजनन सस्थान के रोगो पर बादाम को अन्य प्रयोजक एव उपयुक्त द्रव्यो के साथ पीसकर देते है।

बादाम को पीस कर उसका द्रव बना, पिपरमेंट के साथ कफ एव कास के निवारणार्थ दिया जाता है। मृदुविरेचनार्थ एव आंत्र शूल पर बादाम के साथ अजीर का प्रयोग किया जाता है।

यूनानी मतानुसार—यह गरमी और सरदी मे समशीतोष्ण है। यह शरीर मे नया खून और वीर्य पैदा करता एव पुराने को शुद्ध व साफ करता है। पुराने वीर्य की गरमी व दोष दूर करता है। इसका शीत निर्यास शक्कर के साथ सूखी खासी को आराम करता तथा कफ के साथ आने वाले खून को बन्द करता है। मूत्रनली की सूजन एव सुजाक मे भी इसे देते हैं।

इसका हरीरा बनाकर सेवन से मस्तिष्क बलवान एव तर तथा शरीर पुष्ट होता है। शुक्र जनन एव वाजीकरणार्थ इसे वाजीकर माजूनो मे डालते है। खासी मे प्रयुक्त करने से यह उर कठ मे मार्दव पैदा कर, कफ को सुगमतापूर्वक निकाल देता है। चेहरे का रग निखारने के लिए इसे उबटनों में डालते है। बादाम को भूनकर खाने से मेदे की सुस्ती एव शैथिल्य दूर होता है।

वृक्ष से तोडी हुई अपरिपक्व, कच्ची बादाम-सारक, गुरु, पित्तजनक तथा वात पित्त व कफ के प्रकोप को नष्ट करती है।

पकी हुई—मधुर, स्निग्ध, पौष्टिक, शुक्रल, कफकारक तथा पित्त व वातपित्त की नाशक है। सूखी हुई—मधुर, स्निग्ध, धातुवर्धक, पौष्टिक, कफकारक एव वात पित्त को दूर करती है। —निघटुरत्नाकर।

[१] मस्तिष्क के विकारो पर—बादाम ५ नग रात भर भिगोये हुए, प्रात ऊपरी छिलका दूर कर मीगी के साथ थोडी शीतलचीनी (कबाबचीनी), २-३ इलायची सम्पूर्ण छिलका सहित खूब महीन पीस कर उसमे ताजा घी १॥ तोला, मिश्री १ तोला और आधा तोला शहद मिलाकर सेवन करें। इस प्रकार प्रात साय ७ दिन सेवन से मस्तिष्क बलवान तथा धातु की वृद्धि होती है।

मस्तिष्क की शून्यता एव कमजोरी के लिये ५-६ बादामो की गिरी छीलकर निधूम कोयलो की आच मे भूनकर मिश्री के साथ चबाकर खावे। १ घटा बाद मक्खन २ तोला और १ तोला मिश्री मिलाकर खावे। तथा मस्तक और सिर पर दिन मे ३ बार मीठे बादाम का तेल मला करें। —अ तत्र।

मस्तिष्क की पुष्टि के लिए प्रात काल सेवनीय नाश्ता—इसकी गिरी ७ नग तथा १ उत्तम छुहारे को रात्रि के समय कोरी मिट्टी की हाडी में जल के साथ भिगोकर, प्रात बादामो को छील तथा छुहारे की गुठली दूर कर उनके साथ ४ छोटी इलायची के बीज निकाल कर खूब पीसकर उसमें मिश्री तथा गाय का घी ५-५ तोला मिला प्रात सेवन किया करे। ७ दिन के बाद उक्त प्रत्येक वस्तु की मात्रा दो गुनी कर दें तो अति उत्तम है। १४ या २१ दिन के सेवन से अत्यधिक लाभ होता है। सिर मे चक्कर आना, मस्तक की तथा हृदय की दुर्बलता आदि विकार दूर हो जाते हैं। इस योग मे कामला, पाडु रोग मे भी लाभ होता है।

ध्यान रहे–इस योग को प्रात ही लेवें, तथा इसके पच जाने पर दोपहर मे सात्विक भोजन करें। जिसका आमाशय दुर्बल हो उसे प्रथम अर्ध मात्रा मे सेवन करना



चाहिये फिर धीरे धीरे मात्रा बढावे । जिसकी जठराग्नि तीव्र हो वह इसके सेवन के बाद दूध भी पी सकता है, इससे और भी शीघ्र लाभ होगा ।

अथवा—सौंफ व मिश्री ६-६ माशे के चूर्ण के साथ इसकी गिरी ७ नग महीन कतर कर मिला देवे । तथा रात्रि को सोते समय गरम दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करें । किंतु इसके ऊपर जल नही पीवे । इससे मस्तिष्क की अशक्ति दूर होनी तथा नेत्र ज्योति की विशेष परिवृद्धि होती है । दृष्टिमाद्य दूर होता है ।

—ह मो मुहम्मद अब्दुल्ला साहब ।

मस्तिष्क शक्तिवर्धक तथा कास, प्रतिश्याय आदि निवारक योग—बादाम की तथा कद्दू बीज की गिरी छिलका रहित, सौंफ, धनिया व खसखस प्रत्येक ५ तोला, छोटी इलायची बीज २ तोला तथा मिश्री २ तोला सबका महीन चूर्ण कर उसमे चादी भस्म ६ माशा खूब अच्छी तरह खरल कर शीशी मे भर कर रखे । ३ से ६ माशा तक की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से स्मरणशक्ति एव मस्तिष्क शक्ति बढती है तथा प्रतिश्याय, शुष्क कास व मस्तिष्कगतरूक्षता दूर होती है । इस प्रयोग को यूनानी मे 'अकसीर हाफिजा' कहते हैं । —यू० चि० सा०

अथवा—बादाम गिरी (छिलके रहित) १० से २० नग, गेहू का सत्व (निशास्ता) १ से २ तोला तक और खसखस १ तोला तक तीनों को जल के साथ घोट छानकर धीमी आच पर पका कर अवलेह जैसा बना, खाड मिला कर सेवन करें । मस्तिष्क के लिए बलकारी तथा कास प्रतिश्याय व नजला में लाभकारी है। —सकलित ।

बादाम गिरी छिलका रहित १ से शुरू कर प्रतिदिन प्रात १० गिरी तक खूब चबाते हुए खावे। फिर १० दिन के बाद १-१ गिरी कम करते हुए १ पर आजायें। इस प्रकार इसके सेवन से भी मस्तिष्क की बल वृद्धि होती है ।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे—दूध बादाम, खमीरा बादाम, हरीरा बादाम, बादाम पाक आदि के प्रयोग देखें ।

उन्माद पर—यह मस्तिष्क विकृति का भयकर परिणाम है। इसकी शाति के लिए—प्रात साय इसकी १० गिरियों को जल में फुलाकर छिलका दूर कर पीसकर पिट्ठी बना, गाय के २० तोला दूध मे पकावे । पकाते समय उसमे मिश्री २ तोला और छोटी इलायची ३ नग को भी कूटकर मिला देवे। पक जाने पर उतार कर छानकर ठडा कर रोगी को खिलाये । इससे निद्रा की कमी दूर होती है, मस्तिष्क विकृति दूर होकर उन्माद रोग मे बडा लाभ होता है, शारीरिक शक्ति भी घटने नही पाती ।

मस्तक शूल पर—इसकी गिरी के साथ थोडी केसर को गाय के घृत मे खरलकर नस्य देवें । अथवा गिरी को रात भर भिगोकर प्रात छिलका दूर कर गिरी को पीस, दूध मे खीर की तरह पकाकर, शक्कर मिला, ३ दिन खावे । तथा मस्तक पर गिरी के साथ कपूर को दूध मे घिसकर लेप करे ।

(२) सर्वाङ्गीण पुष्टि के लिये, तथा स्वप्नदोष व प्रमेह एव मूत्र दाह पर—बादाम गिरी ३ नग लेकर रात्रि के समय १० तोला तक गरम जल मे भिगोकर प्रात छिलका दूर कर खूब महीन पीसकर पिट्ठी बना लें या सिल पर थोडे दूध के साथ घिसकर चन्दन जैसा बनाकर उसमें गुलकन्द १ से २ तोला तक तथा १-२ मा अस गन्ध का महीन चूर्ण मिला इस मिश्रण को खाकर ऊपर से पकाया हुआ दूध १० से २० तोला तक पीवें, इस सरल प्रयोग के सेवन से शरीर एव मन की सर्वाङ्गीण वृद्धि अर्थात् पच ज्ञानेन्द्रिय एव पच कर्मेन्द्रिय सहित मन के नित्य के अविश्रान्त पारस्परिक कार्यो मे सहकार्यता प्राप्त होती है । —वैद्य म पु नानल बम्बई

स्वप्न दोष पर—भिगोकर छिलका दूर की हुई इसकी गिरी १ नग को मिश्री ३ माशा के साथ पीसकर उसमे उत्तम गिलोय का सत और ताजे मक्खन का निकाला हुआ घृत ३-३ माशा तथा शहद ६ माशा इन सब को एकत्र मिला, प्रात साय चाटने से बहुत शीघ्र ही स्वप्नदोष (स्वप्न मे वीर्य स्खलन होना) दूर हो जाता है ।

—आदर्श गार्हस्थ्य जीवन से ।

पूय प्रमेह (सुजाक) तथा मूत्र दाह पर—इसकी गिरी ७ नग छिलकारहित लेकर उसके साथ असली श्वेत

चन्दन का बुरादा ३ माशा दोनो को खूब महीन पीसकर मिश्री मिलाकर दिन मे ३ वार जल के साथ लेने मे अथवा उक्त ७ नग गिरी को खूब महीन पीसकर उसमे श्वेत चन्दन की लकडी का जल के साथ घिसकर निकाला चन्दन ६ माशे तक मिलाकर और थोडी मिश्री मिला दिन मे इसी प्रकार तैयार कर ३ वार सयम एव पथ्यापथ्य पालन पूर्वक सेवन से असाध्य एव कष्टसाध्य पूयमेह शीघ्र दूर होता है। मूत्र की जलन भी शात हो जाती है। अथवा छिलके रहित गिरी ७ नग और छोटी इलायची ७ नग के वीज दोनो को खूब महीन पीसकर ४० तोला जल मे छानकर मिश्री मिला दिन मे ३ बार पिलाने से मूत्र दाह एव नवीन सुजाक शीघ्र ही दूर हो जाता है।

—सकलित

(३) अशक्ति तथा वाजीकरणार्थ और वालको की वल वृद्धि के लिये—छिलकारहित बादाम की गिरी १० नग महीन पीसकर पिट्ठी कर, उवलते हुये ५० तोला दूध मे डाल दें। २-३ उवाल आ जाने पर उतार कर उसमे इच्छानुसार मिश्री या खाड तथा दालचीनी का महीन चूर्ण २ माशा मिला दें। खाड या मिश्री के स्थान मे शहद २ तोला मिलाना और भी लाभदायक है। इसे १०-१५ दिन भी यदि सेवन कर लिया जाय तो वर्षों की अशक्ति दूर हो जाती है। मस्तिष्क के लिये भी लाभ कारी है।

वाजीकरणार्थ—इसकी गिरी के साथ सोठ, भुने हुये चने, काली मिरच और मिश्री (यथोचित प्रमाण में) साथ खूब चबाकर खाने तथा ऊपर से दूध पी लेने से वाजीकरण शक्ति मे अच्छी वृद्धि होती है।

वालको की वल वृद्धि के लिये—बादाम गिरी, किशमिश, छुहारा (गुठली निकाला हुआ), नारियल की गिरी प्रत्येक १० तोला, भूने हुये छिले चने ४० तो० और शक्कर ८० तोला सबको कूटकर चूर्ण कर रक्खें। प्रात २½ से ५ तोला तक वालको को खिलाने मे वलवृद्धि होकर शरीर पुष्ट होता है।

(४) दृष्टिमाद्य नेत्र विकारो पर—

दृष्टिमाद्य पर—इसकी गिरी और सौंफ ताजी उत्तम साफ की हुई १०-१० तोला लेकर प्रथम सौंफ का महीन चूर्ण कर उसमें गिरी को खूब महीन कतर कर तथा उक्त चूर्ण के साथ खरल कर एक जीव करदें। उसमें मिश्री २० तोला चूर्ण कर मिलाकर शीशी में रख लें। १-१ तोला चूर्ण रात्रि के समय मुख में डालकर धीरे धीरे खाकर सो जावे। इस पर जल या दूध कुछ भी न पीवे। यदि प्यास लगे तो ४-५ घण्टे वाद जल पीवें। ४० दिन के सेवन से दृष्टिदौर्वल्य दूर हो जाता है।

अथवा रात्रि को सोते समय इसकी ७ गिरी को १ तोला मिश्री के साथ खाते रहने से भी दृष्टि तीव्र होजाती है।

नेत्राभिष्यन्द पर—आख आई हो तो इसकी ७ गिरी को महीन पीसकर उसमें घृत और मिश्री २-२ तो मिला प्रात साय सेवन करे। इससे आखे नही आतीं, तथा आई हो तो शीघ्र अच्छी हो जाती हैं तथा आखो के आगे आने वाला अधेरा, नेत्रो का उष्णताजन्य विकार एव मस्तिष्क की उष्णता शात हो जाती है। कम से कम ७ दिन सेवन करें। इससे शुष्क कास में भी लाभ होता है। वालको के लिए विशेष हितकारी है।

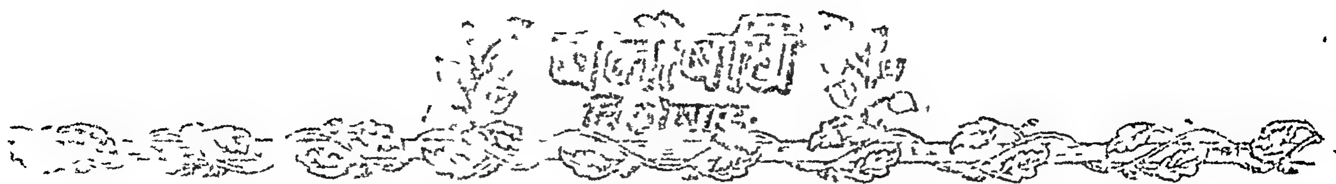
नेत्रस्राव पर—आखो से पानी वहता हो तो इसकी गिरी प्रतिदिन ३ से ७ तक चवाकर खाते रहने से लाभ होता है।

(५) कास, श्वास तथा हकलाना (तुतलाना) पर—

कासहर वटी—इसकी गिरी २५ नग, मुनक्का ३ तोला मुलैठी चूर्ण ६ माशा, छोटी पिप्पली ४ नग, काकडासिगी शकर तैगाल ⊠ वशलोचन, छोटी इलायची, गोंद ववूल,

---

⊠ यह तेगाल या तीगाल नामक वडी मक्खी या लखोरी की तरह एक कीट विशेष का घर है जो वह अपनी लाला (थूक) से बनाता है। यह घर नवीन दशा मे मधुर होता है। यह घर भीतर से खोखला होता है। जूना हो जाने पर इसकी मधुरता कम हो जाती है। इसके विषमाकार मटियाले श्वेत टुकडे होते है। इसे ही शकर तीगाल कहते है। यह यूनानी प्रयोगो मे कई स्थानों में लिया जाता है।



गोंद कतीरा, व सुहागा (भूना हुआ) ३-३ माशा एकत्र घोट पीसकर अद्रक रस मे खरल कर चने जैसी गोलिया बना लेवें। १ से ४ गोली चूसते रहने से प्रत्येक प्रकार की खासी मे उत्तम लाभ होता है। —यू चि सा.

अथवा—इसकी गिरी (छिलका रहित), मीठे कद्दू के बीज प्रत्येक २५ माशा, बबूल गोंद, कतीरा, निशास्ता (गेहू का सत, मुलेठी का सत (रुब्बे सूस) प्रत्येक ३५ माशा, खाड ७० माशा, सबको कूटकर पीसकर, बादाम तैल से मिश्रित कर एव यथावश्यक अर्क गुलाब मिलाकर अवलेह बनालें। ४ से ६ माशा तक प्रात साय चटाने से शुष्क कास तथा कठ और स्वरयन्त्र का प्रदाह एव खरखरापन दूर होता है। इस प्रयोग को लहूक बादाम कहते हैं। —यू० चि० सा०।

अथवा—इसकी गिरी, मुलैठी का महीन चूर्ण और मुनक्का (बीज निकाले हुए) समभाग एकत्र खरल में थोडे जल के साथ खूब खरल कर चने जैसी गोलिया बनालें। १-१ गोली दिन मे ४-५ बार मुख मे रखकर चूसते रहे। सर्व प्रकार की खासी दूर होती है।

अथवा—इसकी १० गिरी लेकर मुलैठी सत और कालीमिर्च चूर्ण २-२ तोला एकत्र जल या शहद के साथ खरल कर गोलिया बनाकर चूसने मे भी लाभ होता है।

अथवा—इसकी गिरी ८ नग, उत्तम मिश्री और गाय का मक्खन २-२ तोला एकत्र घोटकर प्रात चटावें। और शाम को मलाई खिलावें। शुष्क कास शीघ्र ही दूर होती है। मुख से रक्त निकलता हो तो वह भी बन्द हो जाता है। कफज कास पर, 'माजून बादाम' विशिष्ट योगो मे देखिये।

हकलाने या तुतलाहट पर—इसकी गिरी (छीली हुई) ५ तोला के साथ दालचीनी व लौंग १-१ तोला का चूर्ण और पिस्ते की गिरी २ तोला खूब महीन पीसकर उसमे चादी के वर्क १ तोला व केशर ६ माशा इन दोनो को १५ तो० शहद मे खरल कर मिलादें। पुन खरल कर सबको एक दिल कर काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे सुरक्षित रखें। प्रात साय या एक ही समय ४ से ६ माशा तक चाटकर ऊपर से गरम दूध पीवे। बालको को १ से २½ माशा तक देवे। शारीरिक शक्ति एव दिल के लिए भी यह लाभदायक है। —(सकलित)

(६) कोष्ठबद्धता, शरीर शुद्धि, अस्थिसन्धान, स्तनशोथ, कम्पवात, प्लेग की बेहोशी, भिलावे का फदकना, क्षुधा तृषा का निरोध और ज्वर उतारने के लिए।

कोष्ठ बद्धता पर—इसकी छिली हुई गिरी २१ दानो के साथ शुद्ध जायफल १ तोला को शीशी में मजबूत डाट लगा ४ दिन तक किसी गरम कमरे मे या आलमारी मे बन्द कर रखें। पश्चात् निकाल कर कही पर भी शीशी को रखे। इसमे से १ से ३ गिरी को खाने से दस्त साफ होता है, कब्जी दूर होती है। यह एक उत्तम दस्तावर प्रयोग है। —सकलित।

शरीर शुद्धि के लिये इसकी गिरी १० तोला, दूर्वा (दूब) घास १ तोला, कालीमिर्च के १० दाने तथा छोटी इलायची ५ दाने सबको सिलपर भांग की तरह घोटकर १ गिलास जल मे छानकर रुचि के अनुसार शक्कर मिला दिन मे ३ बजे पी लिया करें। एक वर्ष तक निरतर पीने से शरीर निर्मल हो जाता है।

अस्थिसन्धानार्थ—बादाम कतरे हुए तथा पिस्ता कतरा हुआ ५ ५ तोला, गागेरुकी (गगेरन बडी) की जड की छाल १५ तोला, देशी खाड ३५ तोला तथा घृत ६० तोला (छाल का महीन चूर्ण कर) सबको एकत्र मिला १८ मोदक बनालें। प्रात साय १-१ मोदक खाकर ऊपर से दूध पीवे। यदि आवश्यकता हो, तो उदर शुद्धि औषधि प्रारभ करने के पूर्व एरड तैल द्वारा कराले। १८ दिन तक दुग्धाहार करे ९ दिन के भीतर ही अस्थिसधान हो जाता है।

भग्नास्थि पर—चपडा, गधा बिरोजा, राल, उसारे रेवन्द समान भाग लेकर मेथिलेटेड स्प्रिट मे घुला कर लेप करे तथा ऊपर से आवश्यकतानुसार बास की खपचिया बाध कर भग्न स्थान को समतल रखें।
—स्व० कविराज श्री प्रतापसिंह जी।

स्तनशोथ पर—बच्चे के सर मार देने से या दूध के रुक जाने से या अन्य किसी कारण से स्त्री के स्तनपर जो शोथ हो जाता है, जिसे भाषा मे कहीं-कहीं थनेला कहते हैं। यदि इस सूजन मे पीडा हो तथा कुछ दाह भी हो,

किन्तु भीतर पीप न पडी हो, तो—इसकी गिरी के साथ समभाग किशमिश और मुनक्का एकत्र थोडे पानी के साथ खूब महीन पीसकर थोडा गरम कर, सुखोष्ण लेप दिन मे ३ बार करें। २-३ दिन मे लाभ हो जाता है।

कम्पवात पर—इसकी १-२ गिरी को जल मे भिगोकर छिलका दूर कर चन्दन घिसने के पत्थर पर थोडे जल के साथ पूर्णतया घिसकर उसमे समभाग शहद मिला चाटते रहने से १ महीने में पूर्ण लाभ होता है।

प्लेग (ग्रन्थिक सन्निपात) की बेहोशी पर—

इसकी गिरी (छिलका दूर की हुई) १ तोला को पीसकर कल्क या लुगदी बना उसके साथ केशर व कपूर १-१ माशा को भी थोडे जल के साथ पीस ४ तोला घृत मिला, मन्द आच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर, इसकी मालिश (शिर व मस्तक पर) करने तथा इसकी नस्य देने से मूर्च्छा, व बेहोशी दूर हो जाती है।

भिलावे का फदकना—शरीर पर भिलावे के तेल या उसके धूम्र के स्पर्श से जो सूजन, खुजली आदि उपद्रव होते हैं उसपर इसकी गिरी को घिसकर लगाने से लाभ होता है।

क्षुधा व तृषा के निषेधार्थ—छिली हुई इसकी गिरी और गोंद कतीरा दोनो समभाग पीसकर ईसबगोल के लुआब के साथ घोटकर १-१ तोला की गोलिया,बना लेवें। १-१ गोली खा लेने से भूख व प्यास का निरोध होता है।

ज्वर उतारने के लिये—गिरी के ऊपर के छिलके को खूब महीन पीसकर जल मे मिला, हाथ व पैरो के बीसो नाखूनो पर लेप कर देने से कभी-कभी कोई ज्वर शीघ्र ही १५ मिनटो मे उतर जाता है। प्रत्येक ज्वर पर यह क्रिया लागू नही होती किंतु कोई हानि भी नही होती।

—सकलित

तैल—

मीठे (विशेषत कागजी) बादामो मे जो ५६% स्थिर तैल पाया जाता है वह गुणधर्म मे—लघु, मधुर, पित्त वात शामक, शीतवीर्य, कामोद्दीपक, मृदु विरेचक, मस्तिष्क के लिये शान्ति एव पुष्टि प्रद, शूलनाशक, कफवर्धक, वातहर, निद्राकारक, आन्तरिक दाहशामक, वीर्य स्राव निवारक तथा शुष्क कास, मूर्च्छा, यकृद्विकार आदि में प्रयुक्त होता है। ७ से १६ माशा की मात्रा मे यह विरेचक होता है। ५० तोला मे २ सेर तक की मात्रा मे इसका एनिमा देने से आतो मे सख्त चिपके हुए मुद्दो को निकालता है।

—यूनानी।

विरेचक ओषधियो के साथ इसे देने से उनका तीव्र प्रतिक्रियात्मक दोष शात हो जाता है। सन्निपात तथा निमोनिया और योषापस्मार मे भी यह विशेष लाभकारी है। जीर्ण मलावरोध तथा क्षय पीडित रोगी को प्रतिदिन ४ से ६ माशा तक यह तैल दूध के साथ सेवन कराया जाता है। क्षय रोगी की छाती पर इसकी मालिश भी कराई जाती है।

नोट—ध्यान रहे बाजारो मे प्राय विशुद्ध बादाम तेल नही मिलता। अत औषधि कार्यार्थ एव बाह्याभ्यन्तर प्रयोजनार्थ किसी खास विश्वस्त फार्मेसी का ही तैल लेना चाहिये। अथवा निम्न विधि से स्वय इसे निकाल लेना ही ठीक होता है—

बादाम की गिरियो को (इसमे कडुवे बादाम की एक गिरी न हो) आवश्यकतानुसार लेकर मजबूत कूडी मे डाल कर खूब महीन घोटने से जब मक्खन जसा कोमल हो जावे तब थोडी खाड मिलाकर गरम जल के छींटे दे-दे कर घोटते जावें। घोटते-घोटते तेल बिल्कुल पृथक हो जावेगा। इसे लुगदी सहित महीन मोटे वस्त्र मे रख कर निचोड लेवे। जो लुगदी, छूंछ या खली वस्त्र मे रह जावे, उसे भी खूब घोटकर निचोड लेवे।

अथवा—गिरी को पीसकर थोडी सी मिश्री मिला कर ताम्र पात्र मे रख थोडा गरम करलें और पात्र को टेढा कर हाथ से निचोडें। तेल अलग हो जावेगा।

अथवा—तेल निकालने की मशीन मे या कोल्हू मे अपने सामने इसका तेल निकलवा लेवे। यह गिरी के वजन से आधे से कुछ कम निकलता है।

यह तेल स्वच्छ गधहीन तथा हल्का पीत वर्ण का होता है। इसमे रुचिकारक गिरी का स्वाद होता है। हवा मे खुला रहने से यह बिगड जाता है, अरुचिकारक

गन्ध आने लगती है तथा इसका विशिष्ट गुरुत्व भी बढ़ जाता है।

[७] कोष्ठबद्धता (कब्ज) पर—रात्रि के समय गरम दूध के साथ इसका शुद्ध तेल ३ माशा की मात्रा मे सेवन करना प्रारम्भ करें तथा प्रतिदिन थोडा थोडा बढाते हुए ६ माशा तक बढायें। कुछ दिनो मे ही जीर्ण कब्ज का विकार बिलकुल दूर हो जावेगा। यदि इस प्रकार दूध के साथ तेल पीने मे हिचकिचाहट हो तो इसके ६ माशा तेल को २॥ तोला गुलाबजल (जिसमे गोद बबूल ३ माशा महीन कर मिलाया गया हो) मे मिश्रित कर खूब उलट पलट करने से जो दूध की भाति श्वेत मिश्रण तैयार होगा उसे दो बार मे पिलायें। यह मिश्रण प्रतिदिन बनाना उचित है। क्योकि कुछ घटो के बाद यह खराब हो जाता है। —ह मौ मुहम्मद अब्दुल्ला साहब

[८] कर्णनाद, कर्ण पीडा, सिर दर्द तथा कटिवेदना पर—यदि कान मे कोई फोडा, फुन्सी या घाव के न होते हुए भी केवल वात या शीतजन्य पीडा हो या कान से साय-साय आवाज प्रतीत होती हो (कर्णनाद) तो इस तेल को गरम कर कुछ बूंदे सुखोष्ण कान मे डालने से पीडा तथा नाद का होना बन्द हो जाता है।

सिर दर्द पर—यह तेल २ माशा के साथ केशर १ माशा मिलाकर दिन मे ३-४ बार सुघाने से शीघ्र ही प्रत्येक प्रकार का शिर शूल नष्ट हो जाता है।

कटिवेदना—वात या पित्त अथवा वात पित्त जन्य कमर के दर्द पर—इसके तेल की मालिश कुछ दिन निरतर करने से वेदना दूर होकर कमर भी सीधी हो जाती है। साथ ही बादाम की गिरी को पीसकर दूध के साथ सेवन करते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

[९] कास एव कण्ठ के विकार, मूत्रकृच्छ्र व अश्मरी पर—कासादि कठ विकारो पर—इसके तेल को गोद कतीरा का महीन चूर्ण और शहद के साथ चाटते रहने से शुष्ककास दूर होती है तथा गले की खसखसाहट दूर होकर कठ साफ हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्रावरोध पर—इसके तेल मे थोडी शक्कर मिलाकर पकाये हुए दूध की लस्सी के साथ पिलाना लाभप्रद है।

मूत्राशय मे—शोथ जन्य विकार हो तो तेल को गो-दुग्ध मे मिलाकर पिलावे।

मूत्राशय की अश्मरी पर—प्रतिदिन प्रात साय तेल की ३ माशा की मात्रा गाय के दूध के साथ पिलाने से लाभ होता है।

[१०] स्त्री रोगो पर—अविकसित स्तन वाली स्त्री जिसके स्तन बिलकुल छोटे हो शरीर के अन्य अङ्गो के साथ ही साथ बढते न हो तो इसके तेल की नित्य नियमित रूप से मालिश करते रहने से वे विकसित एव परिपुष्ट हो जाते हैं।

सगर्भा स्त्री की अशक्ति पर—अयोग्य आहार विहार एव पोषक खाद्य के अभाव के कारण प्राय गर्भवती स्त्री अशक्त एव निर्बल हो जाती है जिससे गर्भ के बालक की भी परिपुष्टि नही होती। ऐसी अवस्था मे किसी भी विटामिनो की अपेक्षा केवल इसके तेल को ३ माशा की मात्रा मे शहद के साथ या दूध के साथ प्रतिदिन लेते रहने से पूर्ण लाभ होजाता है।

यदि गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन प्रात उक्त प्रकार से ९ वें मास के प्रारम्भ काल से लेकर प्रसवकाल तक तेल की ३ से लेकर ६ माशा तक की मात्रा दूध या अन्य किसी यथोचित अनुपान के साथ पिलाया करें तो प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है। कोई कष्ट विशेष की प्रतीति नही होती।

तेल की खली—

तेल की खली—बादाम की गिरी का तेल निकाल लेने के बाद जो खली रहती है वह बेकार जानकर प्राय फेक दी जाती है। वास्तव मे यह भी बहुत गुणकारी है। मधुमेह रोगी के लिये गेहू की रोटी के स्थान में खली को अच्छी तरह पीसकर दूध के साथ गूथ कर रोटिया बना कर खिलाने से बहुत लाभ होता है। —नाडकर्णी

[११] युवान पिडिका, मुह के दाग, धब्बो पर—खली १० तोला, रीठे के छिलके का चूर्ण ४तोला, चावलो का आटा २ तोला तथा लोबान ३ माशा इन सबको एकत्र मिला एव सुगन्धित करने के लिये थोडा इतर हिना मिला कर शीशी में रख ले। रात्रि तथा प्रात इस मिश्रण में

मे थोडा निकाल कर उसमें [illegible] बनाकर चेहरे पर लगायें, और २-४ घण्टे बाद गुलाब जल से धो डाले ।

(१२) सिर मे भुसी निकलने पर—प्राय जिनके सिर पर केश बहुत बढ जाते है तथा उनकी रक्षा ठीक प्रकार से नही की जाती है तो सिर में से [illegible] बहुत छोटे२ पतले टुकडे निकलने लग जाते है । ऐसी दशा मे—खली ५ तोला को रात्रि के समय जल में भिगोकर प्रात स्नान करते समय प्रथम इसको सिर मे भलीभाति मलमल कर लगावे । फिर गरम पानी से धो डालें । इसी प्रकार १०-१५ दिन करने से यह विकार दूर हो जाता है ।

(१३) वीर्य स्तम्भनार्थ तथा दूध की कमी पर—खली और मावा [खोया] प्रत्येक २० तोला, छोटी इलायची के बीज २ तो०, केशर १ माशा तथा शहद ४० तो पाक की विधि से इनका पाक बना लेवें । यह स्वादिष्ट एव गुणदायक पाक वीर्य स्तम्भनार्थ एव पुष्टि के लिये उपयोगी है ।

गाय या भैंस दूध कम देती हो तो उस खली को खिलाने से दुग्ध अधिक देने लगती है ।

—कवि० श्री प्रभुदयाल जी ओझा

नोट—कई इस खली का ही शर्बत बनाकर शर्बत बादाम के नाम से लोगो को ठगते हैं । वे इस खली को ठडे जल मे ५-६ घण्टे भिगोकर मलकर छानकर खाड मिलाकर चाशनी तैयार कर लेते है । वैसे तो यह शर्बत तरी पहुचाता है । किन्तु यह असली शर्बत बादाम नही है । शर्बत बादाम का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिए ।

छिलका—

बादामो को फोडने के बाद जिन कडे छिलकोको हम व्यर्थ जानकर प्राय फेक दिया करते हे । उनका तेल खुजली, दाद आदि चर्म विकारो के लिए विशेष लाभदायक होता है तथा उनका कोयला दन्त विकार नाशक है ।

छिलको से तेल निकालने की विधि—

(१४) लगभग ४० तोला । छिलको को जौकुट कर एक कलईदार पात्र मे रख, पात्र के मध्य भाग में एक [illegible]

[illegible]

[illegible] भर लेवें ।

[illegible] खुजली, [illegible] आदि पर लगाकर प्रात [illegible] लगाया करें । [illegible] के [illegible] दाद, खुजली पर [illegible] १ भाग तेल मे २ भाग नारियल का तेल मिलाकर लगाया करें । इससे [illegible] खुजली भी दूर होती है ।

—[illegible]

(१५) दन्त विकारो पर—छिलको को जलाने पर उनका धुआ निकल जाने के बाद किसी पात्र से ढक देने पर जो कोयला हो जाता है उसे १० तोला पीसकर उसमें माजूफल, छोटी इलायची, लौंग, फिटकरी का फूला तथा कपूर कचरी का महीन चूर्ण १-१ तोला मिला, अच्छी तरह खरल कर मञ्जन रूप से उपयोग करने से दात स्वच्छ होते तथा मसूडे बलवान बनते हैं । —गा० औ० र०

अथवा—छिलको के १ भाग कोयलो के साथ आधा-आधा भाग काली मिरच और सेंधा नमक मिला, सब कूट पीसकर छानकर रखले ।

नोट—उक्त मञ्जनो के प्रात साय प्रयोग से मसूढो से रक्त स्राव होना, दातो का हिलना, पीडा, मसूडो का फूलना आदि विकार दूर जाते हैं ।

नाल छेदन के उपद्रवो की शांति के लिये—बालक पैदा होने पर जब नाल काटा जाता है तब बादाम के



छिलके का कोयला और उत्तम कस्तूरी सम भाग एकत्र महीन पीसकर कटे हुये नाल पर अच्छी तरह बुरक देने से नाभि पाक तथा उवरा व सरदी के रोग होने का भय बहुत कम रहता है। —सकलित

गोंद—मीठे बादाम के पेड़ों से जो गोंद निकलता है, वह गोंद कतीरा के समान उपयोगी है। यह गोंद उष्ण, तर, विबन्धकारक है तथा कण्ठ पीड़ा, पुरानी खांसी, राजयक्ष्मा, कफ मे रक्त आना, अश्मरी आदि विकारो पर लाभकारी है।

नोट—मात्रा-बीज-गिरी ७ से ११ दाने।

यह गुरु एव चिरपाकी होने से अधिक मात्रा मे जिसे मन्दाग्नि या कब्जी का विकार हो उसके लिए हानिकारक है। हानिनिवारक मस्तङ्गी और मिश्री हैं। इसके प्रतिनिधि अखरोट और चिलगोजा है।

तेल की मात्रा-३ से ६ माशा तक। विरेचनार्थ ७ माशा से २ तोला तक।

विशिष्ट योग —

(१) पाक बादाम—बादाम की गिरी ४० तोला को गरम जल मे १ घण्टा भिगो, छिलका दूर कर पीस कर २० तोला घृत मे सेंक लेवे, साथ ही १० तोला खोवे को भी घृत म सेक कर बिहीदाने ४ तोला, कमल गट्टे की गिरी [भीतर की पत्ती निकाली हुई] २ तो० छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर व तेजपात १-१ तो लौंग, वंशलोचन, जायफल, जावित्री व केशर ६-६ माशा इनका चूर्ण बनाकर उक्त बादाम गिरी और खोये के साथ मिलाकर १½ सेर शक्कर की चाशनी मे पाक जमा देवें या ४-४ तोला के मोदक बना लेवें। प्रतिदिन प्रात विशेषत शीतकाल मे १ मोदक या ४ तोला की मात्रा मे पाक का सेवन कर ऊपर से दूध पीवें। यह पुष्टिकारक, बलवर्धक है। ज्वर पश्चात् की निर्बलतादि को दूर करने के लिए भी यह सेवन किया जाता है।

नोट—उक्त पाक के अतिरिक्त लगभग १० बादाम पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृ० पाक सग्रह मे देखिए।

(२) चूर्ण बादाम—छिलकारहित बादाम की २० तोले गिरी को अच्छी तरह छायाशुष्क कर कूटकर चूर्ण कर उसमे बबूल के गोंद का २½ तोला चूर्ण तथा १० तोला मिश्री का चूर्ण या शक्कर मिला, खूब घोटकर रख ले। इसे १ तोला की मात्रा में खाकर ऊपर से दूध पीवे। इससे हृदय की कमजोरी, मस्तिष्क की उन्मत्तता तथा मानसिक उदासी दूर होती है। दूध में मुनक्का डाल कर पकाकर पीने से शौच खुल कर साफ हो जाता है। डाक्टर लोग पल्विस एमगाडेली कम्पोजिटस या कम्पौण्ड पौडर आफ एण्डस के नाम से इसका व्यवहार किया करते हैं। —अ० तन्त्र।

(३) अवलेह (तुर्री) बादाम—बादाम गिरी ५ या ७ नग रात्रि को जल में भिगो द। दूसरे पात्र मे १ तोला खसखस भिगोकर प्रात गिरी का छिलका अलग कर खसखस को धोकर दोनो के साथ ही मे छोटी इलायची ४-५, नारियल की गिरी, किसमिस, चिरौंजी १-१ तोला, मुनक्का १२ नग तथा गुलाब के फूल (शुष्क) ३ माशा इन सबको पीसकर, घृत दो तोला को खूब गरम कर उसमे इस पिसे हुए मिश्रण को छौक दे। तथा मिश्री २½ तोला और ५ तोला दूध भी उसमे मिला देवें। इस द्रव अवलेह को बादाम की तुर्री कहते है। यह मृदु विरेचक, स्निग्धकारक, पौष्टिक है। सिर मे चक्कर, दिमाग की कमजोरी, माथा गरम रहना, नाड़ी की उग्रता आदि में लाभदायक है। —अ० तन्त्र

(४) पौष्टिकासव—इसकी गिरी आधा सेर, मुनक्का, छुहारा १-१ सेर तथा धाय के फूल, महुए के फूल, सतावरी, असगध प्रत्येक २० तोला एव दालचीनी, जायफल, तेजपात, इलायची, लौंग, धनिया, जटामासी व नागरमोथा २ तोला, केशर, पिप्पली, खस १-१ तोला, खैरसार ३ तोला सबका चूर्ण कर सन्धान पात्र मे डालकर, उसमे जल १५ सेर, शक्कर ५ सेर और शहद १¼ सेर मिला मुख सन्धान कर ४० दिन सुरक्षित रखने के बाद छानकर या भबके द्वारा अर्क खीच कर बोतलो मे भर लेवे।

इस आसवार्क की मात्रा १-२ तोला नियमित रूप से कुछ दिन सेवन करने से बल की वृद्धि, मन की प्रस-



भलीभाँति पीसकर मलाई जैसी होजाने पर उसमे आधा तोला शक्कर, १ छोटी इलायची के बीज तथा किंचित केशर मिलाकर अच्छी तरह घोटकर उसमे १० से २० तोला तक दूध मिलाकर स्वाद लेते हुए धीरे धीरे पीयें। उष्ण काल में इसमें बरफ युक्त ठडा दूध और शीत ऋतु मे गरम दूध मिला दे। उक्त योग मे इलायची तथा केशर मिलाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। जिनके रक्त में या कोष्ठ मे उष्णता हो, वे उक्त योग में केवल दूध और जल १०-१० तोला का मिश्रण मिलाकर पान करें। मस्तिष्क की तरावट के लिये इस पेय मे ताजी ब्राह्मी के पत्र २-४ नग मिलाकर पीसकर पान करें। यह प्रयोग नित्य प्रात अथवा तीसरे प्रहर मे ४-५ बजे लेवें। ग्रीष्म काल मे प्रात साय दो बार ले सकते है। इस प्रयोग का वास्तविक गुण तो इसके पीसने पर निर्भर है यह जितना ही अधिक घिसा या सग्न किया जावेगा उतने ही शीघ्रता से शरीर मे शोषित होकर मस्तिष्क को शात रखेगा। उत्तम निद्रा आयेगी, कोष्ठ की सफाई होगी, मूत्र की गरमी दूर होगी, रक्त शुद्ध होगा। क्षुधा वृद्धि होगी।

—आरोग्य सिन्धु

(१०) शर्बत बादाम—इसकी गिरी (छिलका रहित) ५ से १० तोला तक, श्वेत चन्दन का बुरादा १ से ३ या ४ तोला तक तथा छोटी इलायची के दाने आधा से एक तोला तक लेकर सबको आधा सेर से एक सेर तक गुलाब जल मे घोट छानकर मिश्री ६० तोला से १॥ सेर तक मिला शर्बत की चाशनी तैयार करलें। इसे 'शर्बत बादाम सदली' कहते हैं। मात्रा ५ तोला तक इच्छानुसार जल मिलाकर दिन मे २ बार सेवन से हाथ, पैर एव आमाशय की जलन, तृषाधिक्य, दिमाग की कमजोरी, शुष्क कास, हृदय-दौर्बल्य एव धड़कन आदि विकारो मे विशेष लाभकारी है। पित्त नाशक है।

शर्बत न० २—इसकी गिरी (छिलकारहित) १० तोला को खूब महीन पीसकर १६ गुने जल में छानकर उसमे ६० तोला खाड मिला मन्द आच पर शर्बत की १½ तारी चाशनी तैयार कर ले। मात्रा—५ तोला को १० या १५ तोला जल मे मिला सेवन करें। यह दिल, दिमाग तथा यकृत को लाभकारी है। खुश्की व प्यास को कम करता है।

(११) खमीरा बादाम[1]—इसकी छिलकारहित १० तोला गिरी को गोदुग्ध २० तोला मे अच्छी तरह पीस व ½ सेर मिश्री मिला, कलईदार पात्र मे मन्द आच पर पकावें। गाढा हो जाने पर, नीचे उतार किसी साफ चौडे पात्र मे डालकर खूब अच्छी तरह घोटकर श्वेत रग का अच्छी तरह गाढा हो जाने पर उसमे १५ नग चादी के वर्क तथा १ तोला छोटी इलायची के बीज महीन पीसकर मिला देवे। ठण्डा हो जाने पर चीनी मिट्टी के पात्र या डिब्बे मे भर सुरक्षित रक्खें। मात्रा २ से ४ तोला तक प्रात लेने मे मस्तिष्क की निर्बलता दूर होकर स्मरणशक्ति बढती है। थकावट दूर होती एव चित्त प्रसन्न रहता है।

—सकलित

(१२) हरीरा बादाम—छिली हुई गिरी २० नग, खशखश १ तोला और गेंहू का आटा २ तोला इन सबको जल मे घोट छानकर उसमें घृत मिलाकर पकावे। साधारण पतला गाढा हो जाने पर, नीचे उतारकर खाड मिलाकर घूट-घूट थोडा थोडा पीवें या चाटें। इससे मस्तिष्क मे तरावट आती है तथा खासी, जुखाम, नजला आदि मे भी लाभकारी है। यह शरीर को मोटा, ताजा, फुर्तीला बनाता है।

(१३) सीरा बादाम—इसकी छिली हुई १० गिरियो के साथ, छोटी इलायची १० दाने, सौफ २ माशा तथा

---

[1] यह एक प्रकार का शर्बत का घन पाक है। शर्बत का पाक पतला होता है, और खमीरे का पाक घनकर के घोट दिया जाता है जिससे यह श्वेत रग प्राय होजाता है। शर्बत का पाक पतला होने से उसके खराब होने की सम्भावना रहती है। किंतु यह घन पाक होने से अधिक समय तक बिगडता नही, तथा रग और स्वाद मे भी शर्बत की अपेक्षा उत्तम होता है।

मुनक्का ५ दाने सब को जल के साथ अच्छी तरह घोट छानकर उसमे केवडे की सुगन्धी तथा मिश्री मिलाकर पीवे। इससे मस्तिष्क शक्तिशाली होता, प्यास एव गर्मी की शाति होती है।

दूध बादाम—इसकी १० गिरी को, रात्रि के समय जल मिला, कोरी मटकी में भिगो, प्रात. छिलका दूर कर थोडे दूध के साथ खूब घोटे। मक्खन जैसा कोमल होजाने पर ½ सेर गाय का दूध मिला, मन्द आच पर पकावें २-३ उबाल आ जाने पर उतार कर थोडी मिश्री मिलाकर दो पात्रों में खूब भली भाति बार बाधकर लोट पोट करें। खूब झाग उठने पर ठण्डा होने पर पीवें। इस प्रयोग मे मिश्री के स्थान में दूध के ठण्डा हो जाने पर कोई कोई इच्छानुसार छोटी मक्खी का उत्तम शहद मिलाते हैं। यह पीने मे अति स्वादिष्ट एव कोमल से कोमल प्रकृति वालो के लिये भी सेवनीय है। इस से देह के समस्त अवयवो को बल मिलता है। शीतकाल मे दालचीनी का महीन चूर्ण १ से २ माशा तक फाक कर ऊपर से यह दूध पीने से बहुत शीघ्र चमत्कारी लाभ होता है।

यह दूध दिमागी शक्ति एव स्मरण शक्ति को बढाता है। काम करते समय दिमाग में थकावट नही प्रतीत होती है। शरीर मोटा ताजा, तथा फुर्तीला होता है।

नोट—बादाम से एक ऐसा दूध प्रस्तुत होता है जो गोदुग्ध के समान गुणकारी होता है। गिरी को आध घटे तक जल मे भिगोकर हाथ से रगडकर छिलको को दूरकर पीसकर जल मे मिला वस्त्र से छान लेवें। यह देखने व गुण में गोदुग्ध जैसा ही होता है। इसका शर्बत आदि कई प्रकार से व्यवहार किया जाता है। इस बादाम के दूध को थोडा गरम कर उसमें थोडा दही का जामन देने से वह दही के जैसा ही जम जाता है। तथा बहुत स्वादिष्ट एव पुष्टिकर होता है।

(१५) घृत बादाम—इसकी छिलकारहित गिरी, नारियल की गिरी ५-५ तोला, खशखश व चारो मगज ७-७ तोला, खरबूजे की गिरी ६ माशा, चिरोंजी ६ माशा तथा पिस्ता ६ तोला इन सबको कूट पीस कर रख लें। गो घृत ½ सेर को आग पर लाल हो जाने तक गर्म करें तथा उक्त मिश्रण को उसमें डाल दें। जब घृत की नाली कुछ कुछ कालिमायुक्त हो जावे, तब नीचे उतार कर, छानकर रख लेवे। इस घृत को १ तोला तक की मात्रा मे गर्म दूध मे मिला सेवन करने तथा प्रात. साय शिर और तलुवो पर मालिश करने से मस्तिष्क की निर्बलता, शुष्कता एव पीडा आदि विकार दूर होते तथा नेत्र ज्योति बढती है। अधिक मानसिक कार्य करने वालो के लिये यह उत्कृष्ट पौष्टिक, बलवर्धक योग है। उक्त घृत को छानने के बाद जो छूंछ निकले उसमे भुना हुआ आटा व खाड मिलाकर पजीरी बना लें। प्रात नाश्ते के लिये उत्तम है।

—सकलित।

(१६) हलुवा बादाम—इसकी छिली हुई गिरी २० तोला, चिलगोजा की गिरी, मीठे कद्दू की गिरी, खशखश व चिरोंजी प्रत्येक ५ तोला सबको पीसकर १½ सेर शक्कर की चाशनी में मिलाकर पश्चात् थोडी इत्र गुलाब की बूदे मिला परात में फैलाकर २० तोला खाड इसके ऊपर बुरकाकर टुकडे करके रख लेवे। मात्रा २-१ तोला गरम दूध के साथ लेवें। दिल दिमाग के लिए बलवर्धक है। वीर्यप्रद वाजीकरण है, शरीर को दृढ बनाता है।

हलुवा न० १—छिलकारहित १० तोला गिरी को महीन पीसकर २० तोला मिश्री की चासनी मे डालकर उसमे ५ तोला गरम घृत मिलाकर चलावें। फिर नीचे उतार कर उसमें १-२ रत्ती इलायची पीसकर मिला दें। यदि चादी के २-४ वर्क भी उसमें डाल दिये जावें तो और भी उत्तम है। इसके शीत काल में अपने बलानुसार सेवन से बल वीर्य की वृद्धि होती है।

—सकलित

(१७) माजून बादाम—इसकी गिरी के साथ फिन्दक की गिरी, चिलगोजा, अखरोट, कद्दू, काहू इनकी गिरी, अफीम, भाग प्रत्येक ६ माशा, जायफल, जावित्री ४-४ माशा, कस्तूरी व अम्बर ६-६ रत्ती सबको विधिवत कूट छानकर, दूनी खाड की चाशनी मे मिलाकर रखें।

२ रत्ती से १ माशा तक की मात्रा मे रात्रि के समय शयन के समय मे १ घण्टा पूर्व सेवन करें। वीर्य-स्तम्भक है, प्रमेह को दूर करता है।

माजून न० २—इसकी गिरी ३५ माशा चिल गोजा



की गिरी १०½ माशा, पिस्ता १७½ माशा तथा खाड ७ तोला ६ माशा कूट छानकर यथाविधि माजून तैयार कर लेवे। मात्रा—६ माशा से १ तोला तक। कफज कास मे उत्तम है। —यू० चि० सा०।

[१८] मुरव्वा बादाम—इसकी गिरी आवश्यकतानुसार लेकर चूने के जल मे १-२ दिन भिगो रखे। फिर साफ जल से धोकर कपडे से भलीभाति साफ पोंछ कर जल मिश्रित शहद मे डालकर आग पर उबालकर नीचे उतार, ३ दिन के बाद उत्तम शहद मे डालकर हल्का सा जोश देकर, ठडा कर काच की बरनी मे रख दे। मात्रा १ तोला। यह दिल दिमाग को शक्तिप्रद एव मानसिक श्रम करने वालो को विशेष गुणकारी है। यह खासी और फुप्फुस एव कठ की खरखराहट मे लाभप्रद है।

—यू० चि० सा०।

[१९] हव्वा [वटी] बादाम—मीठे बादाम की गिरी छिली हुई, कडुवे बादाम की गिरी [छिली तथा भुनी हुई], अलसी बीज, चिलगोजाबीज २-२ तोला, अफीम, आलूबुखारा की गोद [अथवा बबूल का गोद] ईरसा और मुलैठी का सत [रुब्बेसूस] १-१ तोला तथा मिश्री २ तोला सबको कटपीसकर सोफ के पत्र स्वरस मे खरल कर चने जैसी गोलिया बनालें।

२ गोली को अर्क गाजवा १२ तोला, शरबत खसखस २ तोला के साथ प्रयोग करे। खासी के समय १ गोली मुख मे रखकर चूसें। यह फुप्फुस व्रण, जीर्ण कास, स्वरभेद मे लाभप्रद हे। कफ नि सारक हे।—यू० चि० सा

[२०] उबटन-बादाम—इसकी गिरी २०तोला, मजीठ, हल्दी, छडीला, और बालछड प्रत्येक १½ तोला इन सब का चूर्ण कर रखे। इसे आवश्यकतानुसार जल मे मिला उबटन जैसा बना शरीर तथा चेहरे पर मर्दन कर गरम जल से स्नान करते रहने से शरीर एव चेहरे की काति का निखार होता है। —सकलित।

बादाम देशी (Terminalia Catappa)

हरीतकी कुल (Combietaceae) के ४० से ८० फुट तक ऊचे, सुन्दर इसके वृक्षो की शाखायें चारो ओर को फैली हुई, पत्र—६ मे ८ या १२ इञ्च तक लम्बे, २-६ इञ्च चौडे अग्रभाग विस्तृत गोल, निम्न भाग नुकीला, नूतन मुलायम, पत्र रोमश, दोनो ओर चमकीले पीताभ हरित वर्ण के जूने हो जाने पर लाल रग के शीतकाल में पतनशील, पत्र वृन्त—½-¾ इञ्च लम्बा दोनोओर रस ग्रथियो से युक्त, पुष्प—४ से ८ इञ्च लम्बी कलगी पर पीताभ हरितवर्ण के छोटे-छोटे गोल चक्राकार ५ या ६ पखुडियो वाले धूसर रग के, फल—१-२ इञ्च लम्बे, डिम्बाकृति, कडे, चिपटे दोनो किनारो पर कुछ उभार युक्त, पकने पर गहरे, हरे, उज्ज्वल बैंगनी आभा युक्त अथवा बैंगनी लाल या श्वेत पीले वर्ण के हो जाते है। भीतर की गिरी छोटी, कही-कही बडी भी होती है। ग्रीष्म काल मे पुष्प तथा शीत काल मे फल आते हैं।

इसके वृक्ष साधारणत भारत मे और ब्रह्मदेश मे सर्वत्र लगाये जाते हैं, तथा नैसर्गिक भी पैदा होते है। बगाल के प्राय कतिपय स्थानो मे रास्तो क किनारे ये वृक्ष लगाये हुए देखे जाते है।

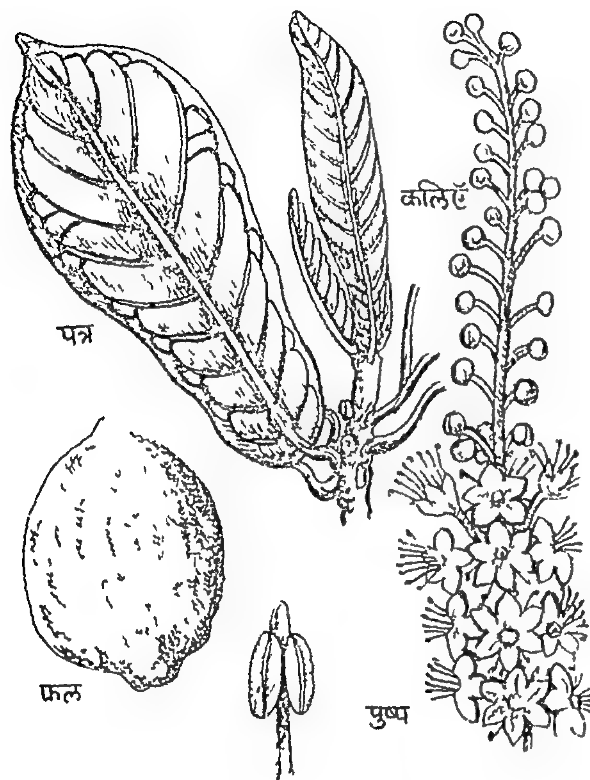
नोट—कई लोग इसे ही जगली बादाम कहते है। किन्तु वास्तव मे जंगली बादाम इससे भिन्न है। आगे 'बादाम-जगली' का प्रकरण देखिये।

नाम—

हि—देशी बादाम, हिन्द बादाम। म०—बगाली बादाम, हिरानी बादाम, नट बादाम, देशी बादाम। गु०—बदाम नीली, देशी बदाम। ब०—बादाम। अ०—इण्डियन आलमण्ड [Indian Almond]। ले०—टर्मिनेलियाकेटेपा।

रासायनिक संगठन—

पत्र और छाल में टेनिन, तथा छाल की राख में



पोटाश और टेनिन की विशेषता होती है। इसकी गिरी मे स्थायी तैल ५०% तक पाया जाता हे । वह हल्के पीले रग का, गव रहित उक्त प्रकरणोक्त मीठे वादाम के तैल जैसा ही गुणधर्म युक्त, स्वाद मे उससे भी अच्छा होता है। तथा बहुत दिनो तक खराब नही होता। इस तैल मे स्टिरीन (Steerine) और ओलीन (Oleine) नामक तत्व पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, छाल, गिरी और तैल।

गुणधर्म व प्रयोग—

छाल-ग्राही, सकोचक, मूत्रल व हृद्य है। छाल का क्वाथ सुजाक व प्रदर मे लाभकारी है। इस क्वाथ मे व्रणो को धोने से वे शीघ्र भर जाते है। इसके कुल्ले करने से मुख के छाले दूर होते हैं। कहीं-कहीं जड की छाल अतिसार तथा प्रवाहिका रोग मे सकोचक द्रव्य की तरह उपयोग मे लायी जाती है। छाल से एक प्रकार का काला रग निकलता है, जिसका उपयोग कहीं-कहीं दांतो को रगने मे किया जाता है।

इसके कोमल पत्तो के रस के द्वारा एक मलहम तैयार किया जाता है, जो गीली खुजली, कुष्ठ आदि चर्म-विकारो मे उपयोगी होता है। पत्र रसका आभ्यतरिक सेवन सिर दर्द तथा उदर शूल में किया जाता हे।

फल की गिरी कुछ मीठी, कसैली, शीतवीर्य, सग्राही कामोत्तेजक पित्तनाशक, फुफ्फुस शोथ (ब्राकाइटीज) निवारक हे। शेष गुणधर्म मीठे वादाम के जैसे ही किंतु इसमे पौष्टिकता अपेक्षाकृत न्यून होती है।

गिरी का तैल पौष्टिक हे। इसकी मालिश से शरीर की कांति बढती तथा केशो की मजबूती होती है। शेष गुणधर्म मीठे वादाम के तैल के समान है।

बादाम जंगली (Canarium Commune)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के जावा, तथा मलाया आर्चिपिलेगो देश के ये छोटी जाति के जगली बादाम के वृक्ष भारत के दक्षिणी प्रान्तो मे विशेष लगाये जाते हैं। जावा देश मे इसे वादामी कहते हैं।

नाम—

हि०—जगली वादाम। वादाम वर्वटी। म०—जगली वदाम। अ०—जावा आमण्ड ट्री [Java almond tree] ले—केनेरियम काम्यून।

रासायनिक संगठन—

इसके फल एव तैल मे ब्रेइन [Brein] नामक तत्व ६०%, एक एमिरिन [Amyrin] नामक राल जैसा पदार्थ २५%, तथा ब्रिआईडिन (Bryoidin) व एलेमिक एसिड [Elemic acid] पाये जाते है। इसके प्रभावशाली उडनशील तैल मे एनेथाल [Anethal] नामक तत्व होता है। यत्रो से दवाकर निकाला गया इसका स्थायी तैल आधा जमा हुआ सा होता हे जो खानेमे स्वादिष्टहोता है।

गुणधर्म व प्रयोग–

फल की गिरी मृदुकर, उत्तेजक, मृदुरेचक व कफ निसारक है।

तैल—मधुर, रोचक, मृदुकर है। यह खाने के कई पदार्थों के बनाने मे उपयोगी है तथा पूयुक्त व्रण, गुदपाक आदि मे भी इसका प्रयोग किया जाता है।

इस वृक्ष की छाल से जो एक प्रकार का स्वच्छ निर्मल तैल विपुल प्रमाण मे, टर्पेन्टाईन जैसी चरपरी गध वाला निकलता है, वह जमाने पर मक्खन जैसा हो जाता है। इसका मलहम बनाकर शिथिल व्रणो पर लगाते हैं।

इस वृक्ष की जड का कन्द उत्तेजक, स्वेदल तथा रक्तस्राव निवारक है। इसका विशेष आभ्यन्तर प्रयोग जीर्ण फुफ्फुस शोथ, यकृत विकार, पीलिया, मस्तक शूल, तथा मूत्राशय के शोथ मे किया जाता है। इसका बाह्य प्रयोग राई की पुल्टिस के साथ यकृत विकार स्नायुशूल तथा सधि वात मे किया जाता है।

इसके वृक्ष का गोंद उत्तेजक, दाहक, त्वचा पर छाले या फफोले उठाने वाला होता है। इस गोद का मलहम या लेप बनाकर शिथिल जीर्ण व्रणो पर लगाया जाता है।

बादावर्द (Volutarella Divaricata)

भृगराज कुल (compositae) कटकयुक्त गोखरू के क्षुप जैसा किंतु श्वेत वर्ण का यह ब्रह्मदण्डी नामक वनौषधि का ही एक भेद विशेष है। ब्रह्म दण्डी का क्षुप खडा हुआ होता है किन्तु इसका क्षुप बहुशाखी, भूमिपर प्रसरणशील, सर्वाङ्ग सूक्ष्म रोमश, शाखा-चौपहली या गोल पतली, रेखायुक्त, खोखली, श्वेत वर्ण की सर्पाकार मुडी हुई, पत्र—ब्रह्मदण्डी के पत्र जैसे किन्तु रोमश, पुष्प—गुच्छो मे नीलाभ श्वेत वर्ण के ब्रह्मदण्डी के पुष्प जैसे किंतु कटक युक्त, फल–गुच्छो मे, गोखरू जैसे कटीले किंतु भीतर एक रुई जैसे पदार्थ से युक्त, जो फल के टूटने पर रुई जैसा ही हवा मे उडता है। बीज–कुसुम या कुटज के बीज जैसे, किंतु कुछ गोल तथा स्वाद मे कडवे होते है।

इसके क्षुप मैसूर तथा दक्षिण भारत के कई प्रान्तो में और उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेशो में २ हजार फुट की ऊचाई पर विशेष पाये जाते है। मुस्लिम काल से ही इसका इधर आयात पर्शिया आदि देशो से हो रहा है बाजारो मे इस क्षुप के शुष्क टुकडे बादावर्द नाम से बिकते हैं।

यह यूनानी वैद्यक की एक खास औषधि है।

नाम–

स—भूदण्डी। हि–बादावर्द, गुले बदवर्द, सकाई,



बादावर्द
CARDUS NUTANS LINN

कछार, टिसो। गु॰—भोयदन्डी। अ—ब्याक थिसल (Bank Thistle)। ले—वाल्युटेरेला डायवरिकेटा, कारडुसस रामोसस (Gurduus Ramosus) ट्रायकोलेप्सिस प्रोकम्बेन्स (Tricholepsis procumbens)।

रासायनिक संगठन--

इसमें एक क्षाराभ एक हरिताभ उडन शीलतैल, एक अम्ल राल, वसादि पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग, बीज।

गुण धर्म व प्रयोग--

पौष्टिक, मृदुरेचक, रक्तस्तम्भन, वेदनास्थापक, निरोध निवारक, किंचित् पिच्छिल, ज्वरघ्न (विशेषत कफज जीर्ण ज्वर मे उपयोगी), रक्तष्ठीवन, यकृच्छूल, यकृदावरोध जीर्णातिसारादि मे प्रयुक्त होता है।



बादावर्द
VOLUTARELLA DIVARICATTA Benth.

यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे मे गर्म व खुश्क है। इसके गुणधर्म धमासे के गुण धर्म से मिलते जुलते है। यह सूजन को बिखेरता, रक्तस्राव को बन्द करता है। यह थोडा काबिज भी है। इसकी जड का लेप कफ की सूजन को बिखेर देता है। इसके ६ माशा बीजो को खाने से धनुर्वात, खासी व कमर का दर्द दूर होता है। इसकी जड और पत्ती के क्वाथ के सेवन से अर्धाङ्ग मे लाभ होता है तथा इस क्वाथ के कुल्ले करने से दातो का दर्द व मसूढो की सूजन मिटती है। इस क्वाथ के पीने से कफ के साथ खून आना बन्द हो जाता है। यह आमाशय एव यकृत की कमजोरी को दूर कर मल की गठानो को दस्त की राह निकाल देता है। इसके पत्तो का शराब मे क्वाथ करके पीने मे निमोनिया और गृध्रसी मे लाभ होता है। आमाशय के विकार से होने वाला अतिसार इसकी जड व पत्तो के सेवन से दूर हो जाता है। रुका हुआ पेशाव तथा मासिक धर्म भी इससे खुल जाता है। इसके निरतर सेवन से पथरी गल जाती है। जलोदर व पीलिया मे भी यह मुफीद है। कफ के पुराने ज्वर को दूर करने की इसमे विशेष शक्ति है। यदि आमाशय मे कमजोरी आजावे अथवा आमाशय मे गर्मी पैदा होकर ज्वर आजाय तो ऐसे ज्वर के निकालने मे बादावर्द एक उत्तम वस्तु है। साप और बिच्छू के विष पर इसको चबाकर लगाने से लाभ होता है। —व० च०

इसके पौधो को घर मे रखने से सर्पादि विषैले जन्तु भाग जाते हैं। बिच्छू के दश पर इसके बीजो का लेप करते है।

नोट—मात्रा—पत्र चूर्ण ४॥ से ५॥ माशा तक। पत्र रस ३॥ माशा तक। जड १७॥ माशा तक। बीज ९ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह फुफ्फुस और मस्तिष्क के लिए हानिकर है।

हानिनिवारक—अफसतीन और तुख्म काहू।

प्रतिनिधि—शाहतरा (पित्तपापडा) व धमासा या चिरायता है।



वादियान खताई (Illicium Verum)

चम्पक कुल (Magnoliaceae) के सदैव हरे भरे रहने वाले, प्राय सर्वाङ्ग मे सौंफ(अनीसून) जैसी सुगन्धयुक्त तथा स्वाद वाले इस छोटे झाडीदार वृक्ष के पत्र-अखण्ड, निर्मल, चिह्नयुक्त, पुष्प—एकाकी या गुच्छो मे पीले रङ्ग के, फल या डोडी–इस वृक्ष पर ६ वर्ष बाद दबी हुई सी काले रग की डोडिया आती है। प्रत्येक फल या डोंडी मे ७—८ परदे होते है। ये फल स्वाद मे मधुर व तीक्ष्ण होते है। फल के परदो के भीतर इसके बीज दबे हुए, गोल, कुछ कटे किनारे के, तारो की आकृति के चमकदार, लाल या पीले रग के कडे छिलकेदार होते है। फल तथा बीजो मे सौंफ जैसी हल्की सुगन्ध आती है। स्वाद मे भी ये सौंफ के समान होने मे इसे बादियान खताई कहते हैं। सौंफ का फारसी नाम वादियान है।

इसका मूल निवासस्थान कोचीन-चायना (चीन देश का दक्षिणी भाग) व टागकिंग तथा जापान है। उधर से ही इसके फलो का आयात होता है। इस जातिके ये वृक्ष जिनके फलो से व्यापारोपयोगी एव व्यवहारोपयोगी तेल की प्राप्ति होती है, इधर पैदा नही होते। एक जाति का बादियान खताई जिसका Illicium Griffithii लेटिन नाम है इधर मद्रास की ओर बोया तो जाता है किंतु उक्त प्रकार के तेल की दृष्टि से वह निरर्थक है।



वादियान खताई
ILLICIUM VERUM HOOK

नाम—

हि०—बादियान खताई, अनासफल। म, गु,–बादियान, अनसफल। ब –अनसफल। अ –स्टार एनिसी (Star Anise)। ले.—इलिसियम वेरम, इलिसियम एनिसेटम (Illicium Anisatum)।

रासायनिक संगठन—

बाष्पयत्र द्वारा इसके ताजे बीजो से १॥-२॥%तथा शुष्क बीजो से ८ ९ % (या लगभग ४ से ५ %) एक सुगधित उडनशील तेल तथा शर्करा, एक तिक्त पदार्थ तथा न्यूनाधिक प्रमाण मे टेनिन पाया जाता है। इसके तेल मे उत्तेजक कफघ्न द्रव्य सैपोनिन (Saponin) नामक होता है।

प्रयोज्यांग—फल व तेल।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल- मधुर, दीपन, पाचन, उत्तेजक, शूलहर, उदरवातहर, कफघ्न, मूत्रल, सारक है तथा अपचन, अग्निमाद्य, ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, आध्मान, जुकाम, खासी आदि विकारो मे उपयोगी है। यह बडी मात्रा मे वामक तथा मूर्च्छाकारक है। शाकाहारी लोगो के अजीर्ण व कुपचन मे फलो का चूर्ण लाभकारी है।

पाचन सस्थान पर यह विशेष प्रभावकारी है। आमाशय एव पक्वाशय के कार्य को इससे पर्याप्त उत्ते-

जना प्राप्त होती है। अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा अन्नद्रव एव परिणामशूल को यह शांत करता है। आध्मान, विबन्ध तथा अन्य अवरोधजन्य व्याधियो मे इसका फाट विशेष लाभकारी होता है। इसके प्रयोग से वृक्को को भी उत्ते-जना प्राप्त होती हे तथा मूत्र मे भी सफाई आती है।

यह बालको के लिये भी हितावह है, आध्मान, अति-सार, प्रवाहिका तथा नूतन प्रतिश्याय मे दिया जाता है। कफ कास पीडितो को यह फल हितकारक है।

इसका फाट ही प्राय उक्त सब विकारो पर दिया जाता है। बालकों के लिए इसकी मात्रा ४ माशा तक है। चाय के साथ इसका फाट मेदोरोग, मरोडयुक्त आत्र विकार तथा आध्मान मे देते है। चाय मे फलो का चूर्ण मिलाकर पिलाने से मूत्रल असर होता है।

तेल—इसका तैल कृमिघ्न एव कफघ्न है। अन्य औषधियो के साथ दिया जाता है। बालको के उदर शूल निवारणार्थ उदर पर इसकी मालिश की जाती है। गठिया, संधिवात तथा कर्ण पीडा पर तेल की मालिश से लाभ होता है।

अर्द्धाङ्गवात तथा अर्दित पर—बादियान खताई ६ माशा, सौंफ की जड १ तोला, गोया बीज व अजवायन ३-३ माशा, जटामासी ४ माशा, व कासनी की जड १ तोला इन सबको कूट पीसकर गुलकंद २ तोला मिला कर ३० तोला जल मे क्वाथ कर यथायोग्य मात्रा मे सेवन करावे। —र. न. गुलगुर्बा

नोट—मात्रा—२ से ८ रत्ती, भने हुये बीज अधिक से अधिक ५ माशा तक। तेल आधा से २ या ३ बूंद बताशे मे या कफघ्न क्वाथ मे।

अधिक मात्रा मे यह मासपेशी, स्नायुमण्डल तथा मस्तिष्क के लिए हानिकर है, शिर शूलकारक है।

हानि निवारणार्थ—इसे भून लेने से इसका हानि-कारक दोष दूर हो जाता है।

इसका प्रतिनिधि—जावित्री है।

बान—देखें—बलूत। बाबुई तुलसी—देखे—तुलसी।

बाबूना (Matricaria Chamomilla)

भृङ्गराज कुल (Compositae) के इस लगभग ३ फुट ऊचे क्षुप की अनेक उपशाखायें पतली, कोमल, हरित वर्ण की, पत्र-छोटे, कुछ लम्बे, मृदुरोमश, पतले, पुष्प-सेवती के पुष्प जैसे चक्रदार, एकहरी या दोहरी घुडियो के आकार के पीताभ श्वेत, तीक्ष्ण सुगधयुक्त, मनोरम, स्वाद मे तिक्त होते हैं। पुष्प मे ही इसके बीज होते हैं।

इसके क्षुप भारत के उत्तरीय प्रदेशो मे विशेषतः गगा के उत्तरीय मैदानी प्रदेशो मे तथा यूरोप व पर्शिया मे विशेष स्वयमेव पैदा होते हैं, बोये भी जाते है।

नोट—भारतीय बाबूना के पुष्प विशेषत एकहरी घुडीयुक्त होते है। यूरोप मे दोहरे श्वेत पुष्पो वाला होता हे तथा अब इसी विदेशी बाबूना का ही अधिक प्रचलन हो गया है। बडे-बडे नगरो के बाजारो मे प्राय यही अधिक बिकता है। इसे लेटिन मे अन्थेमिस नोबिलिस (Anthemis Nobilis) कहते है। यह दोहरे पुष्पो वाला बाबूना अब पंजाब की ओर बोये जाने लगा है। इसके पुष्पो मे कुछ कपूर जैसी गंध आने से अग्रेजी मे इसे क्याम्फर प्लान्ट (Camphorplant) भी कहते है।

इजिप्ट देश मे श्वेत पुष्पो वाला एक बडी जाति का बाबूना होता हे। इसे 'करफास' कहते है।

'बाबूना गाव' या 'बाबूनए गावचश्म' इसी जाति के हैं। इनका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम—

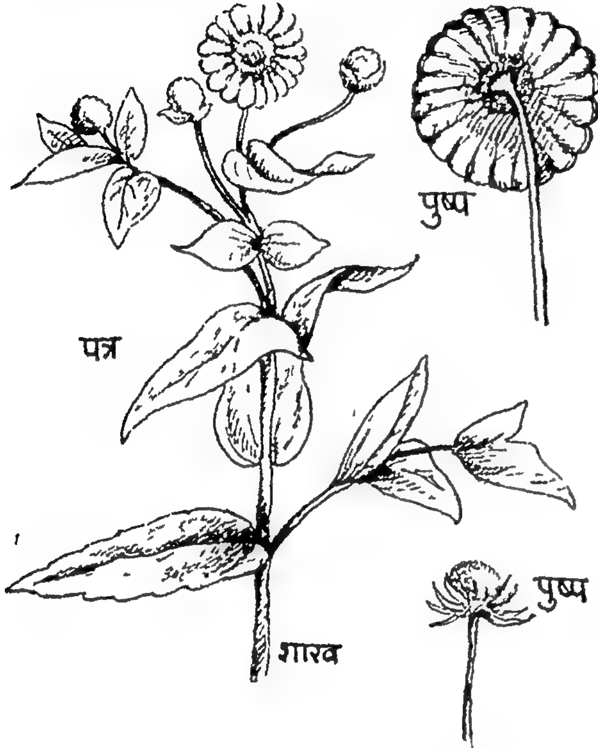
हि म गु —बाबूना सोना मोती। अ —कैमोमाईल फ्लावर (Chamomile flower), कैमोमाइल (amomile)। ले —मेट्रिकेरिया केमोमिला, अन्थेमिस नोबि-लिस (Anthemis Nobilis)।

रासायनिक संगठन—

इसके पुष्प मे—एक कुछ नीले रग का प्रभावशाली उडनशील तेल तथा एझुलीन (Azulene), कुछ ग्लुको-साईड, एन्थेमीन (Anthemene) १ %, एन्थेमिनिक एसिड, एक तिक्त सत्व, टेनिन, राल आदि पदार्थ, और

बाबूना

MATRICARIA CHAMOMILLA LINN.



तैल में विशेषत एजेलिक (Angelic) व टिग्लिक (Tiglic) नामक सत्व, अल्कोहल एन्थेमाल (Alcohol anthemol) एव एन्थेमीन आदि पाये जाते है ।

प्रयोज्याग—पुष्प, तैल और जड ।

गुण धर्म व प्रयोग--

पुष्प—तीक्ष्ण, उत्तम सुगन्धित, दीपन, पौष्टिक, मूत्रल, आर्तव प्रवर्तक, ससर्गज व्याधिनाशक, दूषित कृमिनाशक, दुर्गन्धहर, दाहयुक्त शोथनाशक, आक्षेप निवारक, आमाशय शैथिल्य नाशक, उत्तेजक, रक्त शोधक, कामोद्दीपक, स्वेदल, शातिदायक तथा मस्तिष्क-शूल, सुजाक, छाती का दर्द, गीली खुजली, नेत्र विकार, अश्मरी, उदरशूल, पीलिया, शुष्क कास, शोथ, मेद रोग, शारीरिक दौर्बल्य, योपापस्मार, अग्निमाद्य, विषम ज्वर, कर्ण रोग, स्नायुशूल, बालको के आक्षेपयुक्त विकार आदि मे प्रयुक्त होता है ।

यह मल, पित्त, मूत्र, लाला, पाचक रस तथा कफ आदि शरीर के उत्सर्जक स्रावो को बढाता है, जिससे शरीर का सचित दोष इन्ही स्रावो के साथ निकल जाता है । स्वेदावरोध मूत्राघात, विबन्ध, शुष्क कास एव आन्तरिक अवरोध की स्थिति मे इसके सेवन से लाभ होता है अपरा के निर्हरण के लिये इसके क्वाथ का सेवन कराया जाता है । वृक्कशूल तथा अश्मरी मे भी यह उपयोगी है, अश्मरी को तोडकर निकाल देता है । अवरोधजन्य कामला मे इसका सेवन करने से नियमित रूप से पित्त का उद्रेक होकर रक्तगत पित्त की अधिकता नष्ट हो जाती है । नेत्रो मे अजन करने से अनन्तवात तथा दृष्टि विकारो को शात करता एव दृष्टिशक्ति की वृद्धि करता है । उदर रोगो मे वातानुलोमन कार्यार्थ इसका उपयोग किया जाता है मस्तिष्क एव स्नायु विकारो मे इसका कुछ समय तक सेवन करते रहने से पर्याप्त सुधार हो जाता है ।

—श्री गगासहाय पाडेय ए एम एस आयुर्वेदाचार्य ।

फूलो के फाण्ट मे खाद्य पदार्थो को प्रक्षालित कर रखने से वे बिगडते नही है ।

(१) शोथ तथा शरीर के किसी भाग के कडेपन के विलीनार्थ इसे उपयुक्त द्रव्यो के साथ लेप बनाकर लगाया जाता है ।

शरीर के भीतरी अङ्गो की शोथ निवारणार्थ इसके पुष्प, मुण्डी, पोदीना शुष्क १-१ तोला तथा मकोय शुष्क २ तोला सबको जौकुट कर ८ गुना जल मे क्वाथ करे । ⅓ शेष रहने पर छानकर उसमें ३० तोला खाड मिला पकावे। शर्बत की चाशनी होने पर उतार कर शीशी मे भर रखें । यह शर्बत बाबूना २ से ४ तोला की मात्रा में सेवन से भीतरी अगो की शोथ को नष्ट करता है ।

—यू चि सा

(२) शीत जन्य शिर शूल तथा शरीर की जकडन पर इसका लेप करते है ।

(३) नेत्र पीडा मे इसके क्वाथ से नेत्रो का प्रक्षालन करते है । नेत्र के कोने में नासूर हो तो इसे पीसकर लेप करते तथा इसके चूर्ण को उसपर बुरकते हैं ।

(४) बधिरता तथा नजला पर—इसे सिरके के साथ औटाकर उसकी वाष्प को कान के भीतर पहुचाते रहने से नवीन बहरापन दूर होता है ।

नजला (प्रसक या दुष्ट प्रतिश्याय) में—इसे जल में जोश देकर इसके धुवे को ऊपर मस्तिष्क तक पहुचाने से लाभ होता है।

(५) अश्मरी तथा मोच एव शोथ पर—इसके चूर्ण को ३½ माशा की मात्रा मे जल के साथ सेवन कराने मे अश्मरी टूट फूट कर निकल जाती है।

मोच तथा शोथ पर इसके क्वाथ का सेंक करते है।

(६) सुखपूर्वक प्रसवार्थ तथा मूत्र आर्त्तव प्रवर्तनार्थ—इसके क्वाथको टब में भरकर उसमे कटिस्नान कराने से सरलता से प्रसव हो जाता है। अपरादि दूषित रक्त सरलता से निकलकर गर्भाशय की शुद्धि हो जाती है मूत्रार्त्तव का प्रवर्तन भी यथास्थित होने लगता है।

जड–इसकी जड फूलो की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी है। उक्त प्रयोगो में फूलो के स्थान मे जड का उपयोग करने से विशेष लाभ होता है।

तैल–इसका तैल (वाष्प यत्र द्वारा निकाला हुआ) उष्ण, रूक्ष, कामोद्दीपक, वेदनास्थापक, वातजन्य शूल नाशक तथा आक्षेपनिवारक हैं।

इस तैल की मालिश–शीतजन्य शोथ, चोट, मोच, कटिशूल, सन्धिवात, गठिया, गृध्रसी, अण्डकोष की सूजन, कफ जन्य ज्वर आदि मे लाभ होता है। शरीर के अङ्ग पुष्ट होते हैं। इसके शुद्ध तैल के अभाव मे निम्न विधि से तिल तैल द्वारा वनाया हुआ तैल भी उक्त विकारो मे लाभदायक है।

(७) शोथ, पीडा तथा कर्णशूल आदि विकारो पर–

इसके ताजे पुष्प १२ तोला को तिल तैल ४० तोला मे डालकर पात्र का मुख वन्द कर धूप में रख दे, ४० दिन वाद छानकर काम में लावें। यदि शीघ्र तैयार करना हो तो पुष्पो को रात्रि के समय जल मे भिगो दे। प्रातः पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें तिल तैल मिलाकर पुन पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर उतार कर ठण्डा हो जाने के वाद छानकर काम में लावे।

यह तेल शोथनाशक, पीडाशामक तथा कर्णशूल में लाभप्रद है। इसे कुछ गरम कर २-४ बूदें कान में डालते रहने से कान का दर्द दूर होता है। कुछ दिनो तक इस प्रकार कान मे डालते रहने से वधिरता भी दूर होती है।
—यू० चि० सा०

(८) कामशक्ति वर्धनार्थ—इसके विशुद्ध तैल की २–४ बूदें वताशो मे डालकर प्रतिदिन सेवन से कुछ दिनो में यथेष्ट लाभ होता है।

नोट–मात्रा–पुष्प की मात्रा १ से ५ माशा तक। जड की मात्रा १ से ३ माशा तक। घनसत्व १ से ५ रत्ती। प्रवाही सत्व ३० से ६० वूद। तैल १ से ३ बूद।

इसका अधिक सेवन सिर, कठ तथा शरीर के भीतरी अङ्गो के लिये हानिकर है। हानि निवारक शहद, शर्वत अनार, नीलोफर, कमल कन्द हैं।

प्रतिनिधि—विरजासिफ और नाग्वूना है। तैल का हानि निवारक रोगन नीलोफर है। तैल का प्रतिनिधि मालकागनी का तेल है।

वावूना गाव (Cotula Anthemoides)

यह उक्त प्रकरणोक्त वावूना का ही एक भेद विशेष हैं। इसका फूल गोल तथा पीले रग का, आकार प्रकार मे वावूना के फूल जैसा ही होता है, किन्तु कुछ वडा व अधिक सुगधित होता है। इसके आसपास छोटी व श्वेत वर्ण की पत्तिया होती हैं।

नाम—

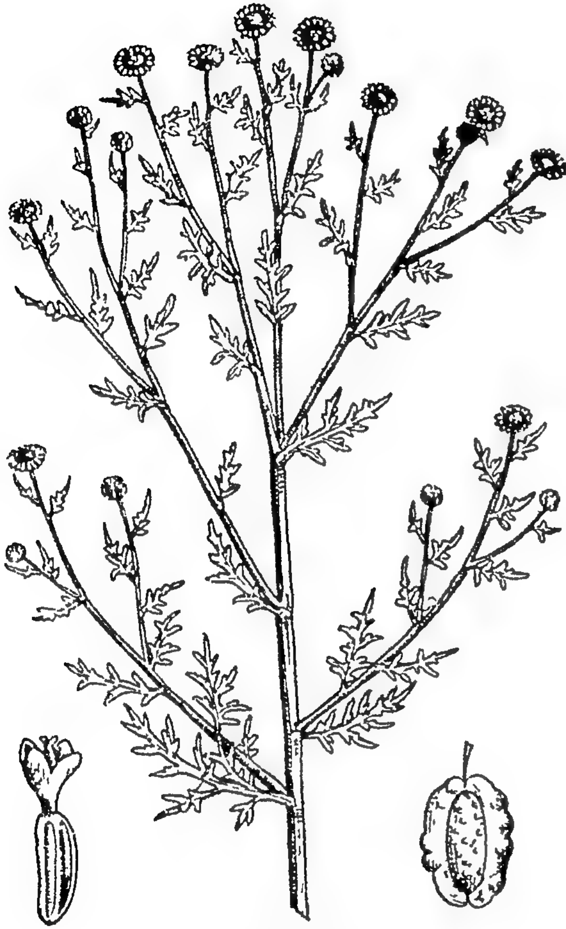
हि उर्दू–वावूना गाव,वावूना। ले–कोटूला एन्थेमोइड्स

गुण धर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, इसके गुणधर्मादि वावूना के जैसे ही हैं। यह कफ व वात के दोषो को दस्त की राह निकाल देता है।

अर्धाङ्ग वात पर—फूलो को चौगुने जैतून या तिल के तैल में डालकर ४० दिन तक धूप मे रखकर छानकर मालिश करते रहने से लाभ होता है। इस तैल की मालिश से रोमछिद्र खुलकर पसीना आने लगता है।

अनिद्रा, उन्माद तथा अपस्मार (मिरगी) पर—इसके फूलो के साथ, छिले हुए जौ और जल को मिलाकर पकाकर ठडा कर उस जल मे खसखस का तैल मिलाकर रोगी के सिर पर धार वाधकर धीरे-धीरे छोडते रहने से अच्छी नीद आने लगती है। उन्माद तथा अपस्मार मे भी



बावूना गाव
COTULA ANTHEMOIDESLINN.

इससे लाभ होता है।

इसके फूलो का चूर्ण ९ माशा तक जल के साथ ३० दिन तक सेवन से अपस्मार मे विशेष लाभ होता है। अथवा–इसी प्रकार इसके ७ माशे फूलो को प्रतिदिन २५ रोज तक शराब के साथ सेवन से भी लाभ होता है। इसके सेवन से अर्द्धाङ्गवात (लकवा) मे भी लाभ होता है।

नोट—इसका सेवन शराब के साथ करने से मूत्राशय और आमाशय मे सचित दूषित रक्त निकल जाता है तथा मूत्र खुलकर होने लगता है।

इसके फूलो को पीसकर बत्ती बना योनि मे रखने से मासिक धर्म की रुकावट दूर होती है, तथा ऋतुस्राव खुल कर होने लगता है। गर्भाशय की गांठ मिट जाती हैं।

ताजे पुष्पो को पीसकर लेप करने से लिगेन्द्रिय, अण्डकोष, जाघ तथा कामशक्ति को बहुत ताकत मिलती है।

इसे दूध के साथ सेवन से वीर्य पुष्ट होता एव शक्ति बढती है।

मात्रा—३ से ६ माशा तक। इसका अधिक सेवन गुर्दा, मसाना, प्लीहा और आमाशय, तथा मस्तिष्क शक्ति के लिये हानिकर है, स्मरणशक्ति कमजोर होती है।

हानि निवारक— गुर्दा व मसाने की हानि पर धनिया, प्लीहा व आमाशय की हानि पर अनीसून व धनिया, मस्तिष्क की हानि पर गुल नीलोफर देवे। —यूनानी ग्रथ से

बावून ए गावचश्म—यह भी उक्त बावूना का एक भेद है। इसके क्षुप बावूना के क्षुप जैसे ही होते हैं। इसके पुष्प बावूना के पुष्प जैसे ही, किन्तु श्वेत तथा मध्य भाग मे पीले, गाय की आख जैसे होने से इसे बावून ए गाव चश्म कहते हैं। गध मे अप्रिय, स्वाद में तिक्त होते है।

इसके क्षुप शीतल प्रदेशो में आबादी के समीप खेती की जाने वाली भूमि में पैदा होते है। बगीचो में सुन्दरता के लिये इसे लगाते है।

नाम–

फा–बावून ए गाव चश्म। यू—फर्तानिफ़्यून। उकहवान। अ—फेदरफ्यू [Fetherfew]। ले०—मेट्रिकेरिया पार्थिनियम [Matricaria Parthenium]।

इसकी केवल पुष्पित शाखाये औषध में ली जाती हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

दूसरे दर्जे में गरम व खुश्क, प्रमाथी, वातानुलोमन, स्वेदल, शोथ नाशक, मूत्रल तथा आर्तवप्रवर्त्तक है। जलोदर, अग्निमाद्य, आध्मान, वस्ति में सचित रक्त को पिघलाने एव सूजन उतारने के लिए इसका प्रयोग करते है। श्वास कास मे इसका अवलेह बनाकर चटाते है। मूत्रार्त्तव प्रवर्त्तनार्थ इसके क्वाथ का उपयोग करते है। गर्भाशय या जरायु के कडेपन को दूर करने के लिए इसके क्वाथ से कटिस्नान कराते है।

मात्रा—२ से ५ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह शिर शूल जनक एव व्याकुलताकारक है। हानिनिवारक बावूना है। —यू० द्र० वि०।

बासबहाटी—देखें—सारंगी में। बायखुबा—देखें—कटभी व कुम्भी।

वाय विडंग [नं. १] (Embelia Ribes)

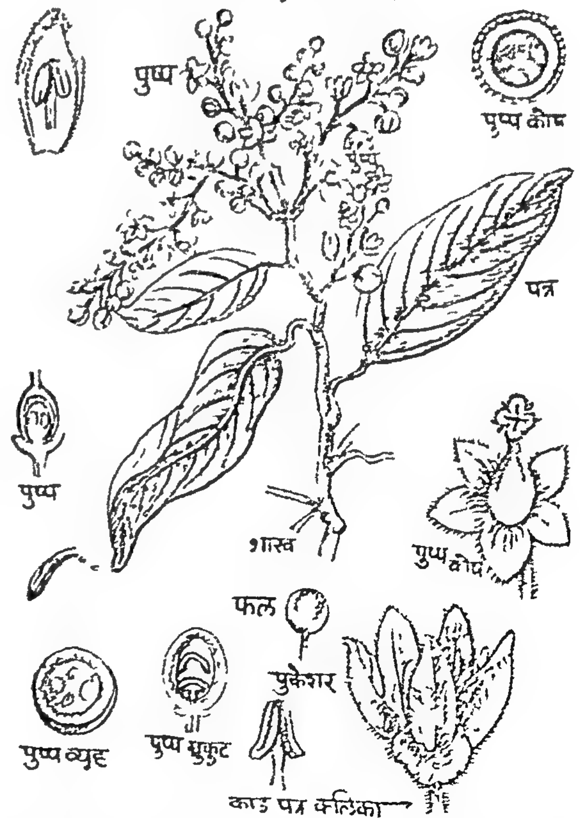
हरीतक्यादि वर्ग एव अपने कुल■ [Myrsinaceae] के प्रमुख इस बडी लता एव गुल्मकार क्षुप के काण्ड साधारणत मनुष्य की जांघ जैसे मोटे, शाखायें खुरदरी, अनेक ग्रंथियुक्त, छाल ½ इन्ची चमकीली, भीतरी काष्ठ धूसर वर्ण का छिद्रयुक्त शाखाओं की टहनिया समीपवर्ती वृक्षों का सहारा लेकर उनपर लपटती हुई बढती है। पत्र—अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र, २-५ इन्च तक लम्बे ऊपरी भाग में कुछ चमकीले, निम्न भाग मे चदनिया रग के दोनो ओर सूक्ष्म रोमश, पुष्प—किंचित् हरिताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे ⅛ इन्ची ५ पखुडीयुक्त टहनियो के अग्रिम भाग में श्वेत, कोमल लोमावृत, पुकेशर ५, फल—चौथाई इन्च तक गोलाकार पकने पर लालवर्ण के किन्तु शुष्क दशा में काले रग के कुछ झुर्रीदार हो जाते हैं। फलो में डण्ठल के साथ पाच पट्टो का पुष्प पात्र लगा रहता है, जो अग्रिम भाग में नोकीला होता है। फल के भीतर लाल रंग के आवरण से युक्त १-१ बीज निकलता है जो स्वाद में चरपरा एव गरम मसाले के समान सुगन्धित होता है। उक्त बीजो के ऊपर जो लाल रग का आवरण होता है उसे ही भ्रमवश कई लोग कबीला (कमीला) मानते है। वास्तव में कमीला उससे भिन्न है। नीचे नोट न० ३ को देखें। वसन्त ऋतु मे पुष्प आते हैं तथा वर्षा में फल पकते हैं।

इसके क्षुप मध्य हिमालय से लेकर भारत के पहाडी प्रदेशो में पूर्व एव उत्तर बङ्गाल तथा सिलोन से सिङ्गापुर तक विशेष पाये जाते है।

नोट—(१) चरक के कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, तृप्तिघ्न, शिरोविरेचन गणो में एवं अनेक प्रयोगो मे तथा सुश्रुत के सुरसादि पिप्पल्यादि गणो मे एव अनेक प्रयोगो मे व रासायनिक कल्पो मे यह लिया गया है।

(२) इसका एक भेद विशेष एम्बेलिया रोबुस्टा (Embelia Robusta) है। इसका वर्णन आगे वायविडङ्ग न० २ के प्रकरण में देखिए।

(३) ध्यान रहे वायविडङ्ग के ताजे फलो को तोडने पर जो लाल रग का एक प्रकार का आवरण सा होता है उसे कमीला मानना उचित नहीं है। विडङ्ग यह कमीला का फल नहीं है। ये दोनो एकदम भिन्न भिन्न हैं। कमीला का तो मध्यमाकार का वृक्ष होता है तथा विडङ्ग का वृक्ष नही होता है। इन दोनो का स्पष्टीकरण हम कमीला के सचित्र प्रकरण (भाग २) में



■ इस कुल के क्षुप के पत्र एकान्तर, सादे, पुष्प के वाह्यकोष तथा आभ्यन्तरकोष के दल ४-४, फल-मासल होते है।

कर आये है ।

(४) विडङ्ग और डीकामाली (नाडीरिङ्ग) इन दोनो को कुछ वैद्यगण एक ही मानते हैं। किन्तु ये एक ही वस्तु नही है । यद्यपि दोनो के गुणो मे समानता है । किन्तु शास्त्रो मे तथा व्यवहार मे भी जैसे विडङ्ग का कृमिघ्न गुण स्पष्ट देखने मे आता है वैसा डीकामाली का नही । बिडङ्ग विशेषत भीतरी कृमियो का नाशक है तथा डीकामाली विशेषत बाहरी कृमियो को मारने वाली है। भाग ३ मे डीकामाली का प्रकरण देखिए ।

(५) बिडग 'त्रिमद' का एक खास द्रव्य है। वायबिडग, नागरमोथा और चित्रक इन तीनो के समूह को त्रिमद शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार कहा जाता है। "बिडगमुस्त चित्रैश्च त्रिमद परिकीर्तित" –(भै०र०)

नाम–

स०—विडग, कृमिघ्न, चित्रतण्डुल (फलो के भीतर के बीज पर श्वेत चिन्ह होने से) इ० ।

हि०—बायबिडंग, भाभिरग, राहिणो, वाविरग इ० । म०—वावडिग, कारकुनी । अ०—बावडीग । ग०—बिडग । अ–बाब्रेग (Babreng) । ले०–एम्बेलियारिब्स, एम्बे ग्लेण्डुलीफेरा (Embelia Glandulifera), एम्बे इण्डिका (Embelia Indica) ।

सगठन—इसके फलो मे विडगाम्ल एम्बेलिक एसिड (Embelic acid) या एम्बेलिन (Embelin) नामक एक सुनहरे पीले रग का रवेदार पदार्थ २ ५% पाया जाता है । जो मद्यसार, ईथर, क्लोरोफार्म तथा बेंजीन मे घुलनशील और जल मे अघुलनशील हे । इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में एक क्रिस्टेम्बिन (Christembine) नामक क्षाराभ तथा एक उडनशील तेल, एक स्थिर तेल, रजक द्रव्य, टेनिन एव राल सदृश पदार्थ पाये जाते है ।

प्रयोज्याग—फल, पत्र तथा जड की छाल ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, उष्णवीर्य कटुविपाक, कफवातशामक, दीपन, पाचन, रोचक, अनुलोमन, रक्तशोधक, श्रेष्ठकृमिघ्न, मूत्रल (मूत्र की अम्लता वर्धक) जन्तुघ्न कुष्ठघ्न, शिरोविरेचन, वर्ण्य, मस्तिष्क एव नाडियो के लिये बल्य, तथा मन्दाग्नि, अरुचि, भ्रांति, आध्मान, शूल, उदररोग, प्लीहा, अजीर्ण, कास, श्वास, हृद्रोग, आम, मलस्तभ, मेदरोग, प्रमेह, विषविकार आदि मे उपयोगी है ।

इसकी क्रिया अन्नवह स्रोतो पर प्रभावशाली होती है । यह अपने कटुरस एव उष्णवीर्य द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करता एव आहार को पचाता है । साथ ही साथ यह रस, रक्त, मास व मूत्र स्थानो की अग्नि को भी बढाता है एव इसके इसी क्रिया द्वारा आत्रान्तर्गत कृमियो का नाश किया जाता है । सटोनिन द्वारा जैसे गोल कृमियो का बहिर्निष्कासन होता है वैसा इसके द्वारा स्पष्टतया नही होता । इसकी क्रिया कृमियो पर अप्रत्यक्ष रीति से होती है । सटोनिन के द्वारा कृमि निष्क्रिय एव बेहोश हो जाते है तथा सारक औषधि देने पर प्रत्यक्ष मल के साथ बाहर निकले हुए देखे जाते हैं । वैसे इसके प्रयोग से बाहर निकले हुए नही देखे जाते । तथापि कृमि तथा कृमि विष का नाश करना यह इसका महत्वपूर्ण कार्य है ।

कृमियो के साथ ही साथ मल पर भी यह सुधारपूर्ण कार्य करता है। पाचन क्रिया को बढाकर मल को आम रहित कर देता है । एव फिर स्वाभाविक ही मल पर पित्त का पीतवर्ण चढ जाता है । वैसे ही मूत्र की आमावस्था का श्वेत, गदले वर्ण का सुधार होकर उसका पीला वर्ण हो जाता है। रक्त, धातु तथा रजक पित्त मे सुधार हो जाने से मल का रग यथास्थिति सुधर जाता है । साथ ही शरीर का वर्ण भी सुधर जाता है ।

सुश्रुत ने इसके मानसिक दोषजन्य उपद्रवो की शाति के कार्य की तथा इसके उत्तम रसायन कार्य की विशेष प्रशसा की है ।

डा० देसाई के मतानुसार "इसके सेवन से मूत्र का रग लाल होता, तथा उसकी अम्लता बढती है । इसकी क्रिया शरीर की सब ग्रथियो पर एव प्रधान रूप से रस ग्रन्थि पर होती है । यह शरीर की समस्त जीवन विनिमय

क्रिया को उत्तेजना देता है। शरीर पर इसका प्रभाव पारद के जैसे ही विलक्षण होता है। इसके सेवन से क्षुधा लगती, आहार पचता, दस्त साफ होता, वजन बढता, त्वचा की काति दीप्त होती, तेज का सचार होता तथा मन मे प्रसन्नता पैदा होती है। बालको के लिये तो यह एक दिव्य औषधि है। जिन बालको को सूखे का रोग हो गया हो, खाया हुआ कुछ भी न पचता हो, हाथ पैर पतले होकर त्वचा ढीली हो गई हो, पेट बडा हो गया हो ऐसे बालक के प्राण बचाने वाली औषधि बायविडग ही है। इसे अनन्तमूल के साथ देने से यह विशेष लाभदायक होती है। बच्चो की स्वास्थ्य रक्षा के लिये इसके दानो को दूध में पकाकर वह दूध पीने को दिया जाता है। (गडमाला पर डा० साहब का प्रयोग आगे प्रयोगावली मे देखिये)। अर्धांग वात आदि मज्जा ततु सम्बन्धी रोगो में इसे लहसन के साथ दूध मे पकाकर वह दूध पिलाया जाता है।

चर्म रोगो मे इसके भीतरी व बाहरी दोनो प्रकार के प्रयोग होते हैं। कई प्रकार के कुष्ठ रोग तथा चर्मरोग आहार की पाचन क्रिया ठीक न होने से ही होते है। यह पाचन क्रिया को सुधारता व दस्त साफ लाता है। अत कुष्ठ व चर्म रोगो पर इसका अनुकूल प्रभाव होना स्वाभाविक है, इसके अतिरिक्त त्वचा पर इसकी उत्तेजक क्रिया भी होती है।

अग्निमाद्य, अरुचि, अजीर्ण, वमन, उदरशूल, आध्मान विबन्ध व अर्श मे यह मट्ठे के या उष्णोदक के साथ दिया जाता है। अतिसार व सग्रहणी मे इसका क्वाथ दिया जाता है। अजीर्ण विकारजन्य कास व श्वास मे इसे पिप्पली के साथ देते है। गोल व चपटे कृमियो के नाशार्थ इसका १ तोला चूर्ण जल या दही के साथ देते हैं। इससे सब कृमि मरकर निकल जाते हैं। कृमियो के नाशार्थ इसे देना हो तो पृथक रेंडी तेल का जुलाब देकर आंतो के साफ हो जाने पर खाली पेट इसका सेवन करावें तथा दूसरे दिन पुन जुलाब देवे। पीनस व आधा शीशी मे इसका चूर्ण सुघाने से लाभ होता है"।

इसकी जड का क्वाथ इन्फ्लूएंजा ज्वर पर बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसे दिन में १ या २ दफे देना चाहिए। यह बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में कृमिनाशक वस्तु की तरह प्रचलित है। यह टेपवर्म्स को नष्ट करने की शक्ति अवश्य रखता है, किन्तु गोल कृमि (Rounds worms) हुक वर्म्स तथा व्हिप वर्म्स पर इसका कोई असर नही होता। टेपवर्म के ऊपर इसका प्रभाव इसमे पाये जाये वाले एम्बेनिक एसिड या एम्बेलिन पर अवलबित है जो कि उसमें २ ५ से ३ ७% तक पाया जाता है। टेपवर्म्स पर एम्बेलिन के असर स्पष्ट रूप मे देखे गए और यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इन कृमियो को नष्ट करने के लिये एम्बेलिन एक बहुत उपयोगी एव सुरक्षित औषधि है। —इण्डियन फारेस्टर

डा० सखाराम अर्जुन का कथन है कि इसका १ तो० चूर्ण रात्रि में सोते समय दही के साथ दिया गया, तथा दूसरे दिन प्रातः रेंडी तेल का जुलाब दिया गया। रोगी के चपटे कृमि (टेपवर्म्स) मल के साथ निकल गये। शरीर की वृद्धि के लिये विशेषत दुर्बल एव क्षय ग्रस्त शिशुओ के लिए यह अति उपयोगी है।

इसके क्वाथ का गडूष (कुल्ले) कृमिदत, दतशूलादि मे लाभकारी है। चर्म रोगो मे इसका लेप किया जाता है। इसके चूर्ण का नस्य जीर्ण प्रतिश्याय, कामला तथा शिरोरोगो मे दिया जाता है।

इसका लहसन के साथ बनाया हुआ क्षीर पाक मस्तिष्क दौर्बल्य, नाडी दौर्बल्य से उत्पन्न आक्षेपक, अपस्मार, पक्षाघातादि वात विकारो में दिया जाता है।

कृमिनाशक कार्य मे यह विदेशी मेलफर्न [malafurn] +

× मेलफर्न यह अग्रेजी नाम है। लेटिन नाम Dryopt eris felix है। हन्सराज या हन्सपदी कुल [Filices] के इस वनस्पति के सुन्दर महीन पत्र युक्त छोटे छोटे पौधे हसराज के पौधो जैसे होते हैं। इसमे तिर्यक स्थित बहुवर्षायु भौमिक काण्ड [Perennial rhizome] होता है, जिसके आधार भाग से अनेक पतली-जडें निक-

का प्रतिनिधि ही नहीं, प्रत्युत् उसकी अपेक्षा उत्तम है यह मेलफर्न के समान उदर मे ऐंठन शूलादि नही करता।

(१) कृमि पर—स्फीत, गण्डूपद तथा तन्तु कृमियो के नाशार्थ १ तोला इसका चूर्ण खाली पेट देकर बाद मे जुलाब (विशेषत अण्डी तेल का) देते है। कृमि नष्ट होकर मल मार्ग से निकल जाते है। इसके बाद कुछ दिनो तक थोडी मात्रा मे इसका चूर्ण इन्द्रयव, पलासबीज नीम की छाल आदि के साथ सेवन कराते हे।

स्फीति कृमि [टेपवर्म] पर भी उत्तम कार्य करता है। बच्चो को ४ माशा तक तथा बडो को ८ माशा तक इसका चूर्ण मधु या दही के साथ प्रात मिलाकर ४ घण्टे बाद अण्डी तेल का या कोई अन्य विरेचन देना चाहिये। अथवा प्रथम कोष्ठ शुद्धि के पश्चात रात्रि मे इसका चूर्ण मठे के साथ देकर दूसरे दिन प्रात विरेचन देवे। इससे मरे हुए कृमि निकल जाते है। इसका कृमिघ्न गुण इसके एम्बेलिक एसिड के कारण है। इसका लवण अमोनियम एम्बेलेट [Ammonium embelate] १½ से ३ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देने से भी उत्तम लाभ होता है। इसके पूर्व तथा पश्चात अण्डी तेल से विरेचन कराना चाहिये।

अथवा उक्त कृमियो के नाशार्थ इसके चूर्ण को अनार की जड के क्वाथ (१तोला तक क्वाथ) के साथ पिलादे। यह क्वाथ ४-४ घण्टे से पिलावें।

अथवा इसके चूर्ण के साथ सोंठ, मिर्च, पिप्पली का चूर्ण मिलाकर चावला के माड के साथ पीने से कृमि नष्ट होते तथा अग्नि दीप्त होती है। —बं० से०

अथवा इसके चूर्ण के साथ सेंधव नमक, कमीला और हरड का चूर्ण मिला, मठे में अच्छी तरह घोलकर सेवन करावें। सर्व प्रकार के कृमि नष्ट होते है। —चक्रदत्त

अथवा वायबिडग, बडी हरड, व आमला प्रत्येक ३५

लती हैं। इसी भौमिक काड से एक वर्षायु अनेक पत्तिया निकलती है, द्विपक्षवत् सपत्रक पत्र (Bipinnate compound leaves) होती हैं। इसमें लगभग ४० युग्मपत्रक तथा पुन प्रत्येक पत्रक में २०-३० युग्म प्रपत्रक (pinnules) होते हैं, प्रत्येक प्रपत्रक के अधस्तल पर ८-१० तक स्पज जैसी छिद्र युक्त सोरिया (Sori) होती हैं। पर्णवृन्त भूरे रग के होते हे।

यह बनस्पति इगलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका, फ्रास आदि देशो में विशेष पैदा होती है। भारत मे भी यह वनस्पति उद्यानो मे लगाई जाती हे। किन्तु भारतीय मेलफर्न आकार मे अपेक्षाकृत छोटा होता है।

इस वनस्पति के पर्णमूल एव भौमिक काडो को सितम्बर-अक्टूबर मास मे उखाड कर, साफकर ग्राह्य भाग को सतर्कता पूर्वक शुष्क कर (जिसमे इसका हरा रग बना रहे) सग्रहीत कर लिया जाता है। बाजार मे इसके बेलनाकार टुकडे मिलते है। ये भूरे काले रग के टुकडे गधहीन, स्वाद मे तिक्त, अरुचिकारक एव उत्क्लेशकारी होते हैं। विभिन्न प्रकार के स्फीतकृमि [टेप वर्म] पर घातक क्रिया के लिये यह विशिष्टऔषधि मानी जाती है। साधारण मात्रा मे तो कोई अनिष्ट लक्षण नही प्रकट होते, हा अधिक मात्रा मे देने से आमाशयान्त्र प्रणाली पर क्षोभक प्रभाव होता है, ऐंठन, वमन, मिचली आदि उपद्रव होते है।

कृमिघ्न क्रिया के लिये इसका प्रवाही घनसत्व या प्रवाही सत्व केप्सूल में १ से २ ड्राम तक की मात्रा मे बच्चो के लिये १ बूट की मात्रा मे दिया जाता है। अथवा इसे दूध में मिलाकर भी देते हैं। यह प्रयोग प्राय प्रात खाली पेट दिया जाता है। इससे कृमि मरजाते हे। उनके निहरणार्थ, औषधि सेवन के २-३ घण्टे बाद एक तीव्र विरेचन (रेंडी तेल नही, मैग सल्फ आदि लवण Saline purgative अधिक उपयुक्त होते हे।) देना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार १ माह बाद पुन यह प्रयोग किया जाता हे। ध्यान रहे वृद्ध, दुर्बल, गर्भवती, रक्ताल्पता एव हृदय, वृक्क तथा यकृत के रोगियो को इसका प्रयोग निषिद्ध है।

अन्य भारतीय नामो के अभाव के कारण इसे मेलफर्न ही कहा जाता है। अग्रेजी मे फर्न कहते है सुन्दर महीन पत्रयुक्त छोटे छोटे पौधो को इस विशिष्ट पौधो मे अलैंगिक प्रजनन होने के कारण ही शायद इसे मेल अर्थात् नर फर्न कहते हैं।

माशा, निशोथ (श्वेत) ८ तोला ९ माशा इन सबका चूर्ण कर उसमें चूर्ण से दुगुनी खाड मिलाकर रखें। मात्रा ७ माशा सेवन से उदर के लम्बे तथा छोटे कृमियो का नाश होता है। —यू०चि०सा०

नोट—कृमिनाशार्थ विडगारिष्ट का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखे। ध्यान रहे कृमिनाशार्थ कोई भी प्रयोग देने के पूर्व गुड आदि कोई मधुर वस्तु रोगी को खिला देना ठीक होता है। इससे अन्त्रगत (आतो की दीवारो मे रहने वाले) कृमि आतो से निकल कर (मधुर वस्तु के समास्वादनार्थ) उसके मल मे चिपट जाते है। तब विडङ्गादि कृमिनाशक औषधि की तीक्ष्णता एव कृमिघ्नता के कारण व्याकुल होकर कई मर जाते है। पश्चात् विरेचन देने मे यथेष्ठ लाभ होता है।

यूका (जू) तथा लिक्षादि अर्थात् लीखआदि वाह्य कृमियो के नाशार्थ इसके बीजो का पतला कल्क बनाकर लेप करते है या इसके तेल का प्रयोग करते है। आगे विशिष्ट योगो मे विडङ्गादि तेल का प्रयोग देखें।

शिरोगत कृमि पर—वायविडग, सज्जीखार, दन्ती मूल व हीग ५-५ तोला सबको एकत्र थोडे जल के साथ पीसकर कल्क कर उसके साथ २ सेर सरसो तेल और ८ सेर गोमूत्र मिला मद आच पर पकावे। मूत्र के जलजाने पर तेल को छान लेवे। इसकी नस्य लेने से शिरोगत कृमि नष्ट होते हैं। —ग०नि०

कृमिजन्य हृद्रोग पर—विडग और कूठ का चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन करने से निम्न मार्ग से कृमि निकल जाते है —व से

कृमिदन्त पर— इसके चूर्ण की छोटी पोटली गरम जल मे डुबोकर दातो के नीचे दबाकर रात्रि के समय रखें। प्रात देखे उसमे कृमि निकलेंगे। पीडा कम होगी।

(२) वालरोगो पर—वालको के प्राय सर्व रोगो के लिये वायविडग अच्छी औषधि है। सूखारोग, आध्मान, शूल, कुपचन तथा अग्निमाद्यादि मे नित्य नियमित इसके ५-६ दाने दूध मे उबाल छानकर वही दूध पिलाते रहने से बच्चो का स्वास्थ्य ठीक रहता है, सब विकार दूर हो जाते हैं। यदि इसके साथ अनन्तमूल भी दूध में डाल दिया जाय तो अधिक लाभ होता है।

अथवा—जन्म के पश्चात् १ महीने तक प्रतिदिन इसका १ दाना (चूर्ण कर दूध या शहद से), दूसरे महीने मे प्रतिदिन २-२ दाने, तीसरे मास में ३-३ दाने इस प्रकार क्रमश बढाते हुए देते रहने से वालको को कोई भी रोग सहसा नही होने पाता, यदि हुआ भी तो उस रोग का प्रभाव या अनिष्ट परिणाम नही होता।

इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से वालको का कृमिजन्य कास एव श्वास रोग दूर होता है। हृदयान्तर्गत असाध्य कृमि नष्ट हो जाते हैं। —व गु।

वालको के कुकूणक (क्षीरदोषजन्य वाल वर्त्मगत रोग [Ophthalmia in children] और पोथकी (कुकरे, रोहे, कुथुआ (Trachoma Granulor lids) नामक नेत्र रोग पर—वायविडग, हरताल, शुद्ध मनसिल, दारुहल्दी, लाख और गेरु इनके सममाग मिश्रित चूर्ण को काजी मे घोटें, शुष्क हो जाने पर महीन कर रखे। इसे नेत्रो मे लगाने से लाभ होता है। —व० से०।

(३) अग्निमाद्य, शूल, अरुचि, विष्टभ, गुल्म, प्लीहा उदावर्त्त तथा लोहाजीर्ण पर—

अग्निमाद्य पर—(विडगादि मोदक) वाय विडग के चावल (बीज), त्रिकुट, निशोथ, दतीमूल व चित्रक समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को समभाग गुड मे मिला ६-६ माशा के मोदक (गोलिया) वना लेवें। इसे प्रात उष्ण जल के साथ सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है। तथा त्रिदोपज परिणाम शूल भी नष्ट होता है।—ग० नि०

अथवा—(पानीय भक्तवटी) वायविडग, व कालीमिर्च का चूर्ण एव अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा पारद भस्म ½ तोला सबको एक दिन (१२ घटे) काजी में घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। इसे काजी के साथ सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। सात्म्य भोजन करे, विशेप अन्न भोजन न करें। सेवन काल मे माडयुक्त चावल का भात खावे। —च० द०।

शूल पर—आमाशय एव पक्वाशय के वातज शूल मे



इसके १ तोला चूर्ण को रात्रि मे सोते समय, माखन निकाले हुए दूध के साथ सेवन कर प्रात अण्डी का तैल पीने से अथवा इसके चूर्ण को तमाखू के साथ मिलाकर, चिलम मे रख धूम्रपान करने से भी लाभ होता है।

सर्व प्रकार के शूलो पर—शूलान्तक रस—

वायविडग, लोहभस्म, अभ्रक भस्म २-२ तोला, त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, निसोथ प्रत्येक १-१ तोला तथा कज्जली [पारद गधक की] १ तोला सबके महीन चूर्ण को एकत्र मिला, त्रिफला क्वाथ मे खरल कर ३-३ रत्ती की गोलिया बनाले। १-१ गोली प्रात काजी के साथ सेवन से सब प्रकार के शूलो मे लाभ होता है। अम्लपित्त तथा वमन मे भी लाभकारी है। —भै० र०

ऊपर अग्निमाद्य पर दिया गया विडगादि मोदक शूलनाशक भी है।

अरुचि पर—इसके चूर्ण को शहद के साथ खरल कर गोलिया (छोटे बेर जैसी) बना लेवें। गोली को मुख मे रखने से चिरकालीन अरुचि भी शीघ्र दूर होती है। —व गु०

विष्टम्भ [कब्जी] या मलबद्धता पर—इसके चूर्ण में समभाग अजवायन का चूर्ण मिला, [मात्रा ४ माशा तक] उष्ण जल के साथ सेवन से लाभ होता है। इससे ग्रहणी रोगान्तर्गत विष्टम्भ भी दूर होता है। —वृ. नि र

गुल्म और प्लीहा पर—[विडङ्गादि क्षार] वायविडग, चित्रक, सोठ, सेंधानमक और वच एकत्र समभाग लेकर एक भाग घृत से मर्दन कर दो सकोरो में बन्द कर कपड-मिट्टी कर पुट दे दें। या उक्त घृत मर्दित द्रव्यो को मिट्टी के कपाल में डालकर ऊपर उल्टा सकोरा रख चूल्हे में आग कर जला लें। पश्चात् महीन कर २-३ माशा की मात्रा में दूध के साथ सेवन से गुल्म और प्लीहा का नाश होता है। —च० चि० अ० १३।

इस योग मे घृत प्रत्येक द्रव्य के समभाग ही मिलायें। कोई इसमें जौ का सत्तू भी समभाग मिलाते हैं।

उदावर्त—इसमें मलमूत्र व वायु का अवरोध होता हे एव उदर में शूल होता हे।

द्विगुणार चूर्ण—वायविडग १६, सज्जीखार ८, वच ४, कूठ २ और हीग १ तोला लेकर चूर्ण बना लेवें। इसे मद्य के साथ [३ माशा तक] लेने से उदावर्त नष्ट होताहै। यह गुल्म को भी दूर करता है। —यो० र०

लोहाजीर्ण पर—लोहे के सेवन से होने वाले विकार रूप अजीर्ण मे इसके चूर्ण को अगस्ति [अगस्तिया, हथिया] के स्वरस के साथ मिलाकर चटाने से लोहाजीर्ण से उत्पन्न शूल अवश्य ही शीघ्र शान्त होता है, लोह विकार का शमन होता है। — आयुर्वेद प्रकाश

[४] अतिसार शोथ, पाडु हलीमक, कामला, प्रवाहिका व वमन पर—

अतिसार पर—यदि अतिसार के रोगी की अग्निदीप्त हो और दोष अधिक हो, तो उसे वायविडग, त्रिफला व पिप्पली के क्वाथ से विरेचन देवें। विशेषत आमातिसार मे यह प्रयोग किया जाता है। — वृ० नि० र०

यदि शोथयुक्त अतिसार हो तो वायविडग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाठा, इन्द्र जौ और कालीमिर्च समभाग का चूर्ण बना लेवे। ३-४ माशा की मात्रा में जल के साथ सेवन करे। यह प्रयोग क्वाथ रूप में भी देते है। —वृ० नि० र०

रक्तातिसार पर—इसके अधभुने बीज ३ माशे को अर्क गुलाब या मिश्री शर्बत से देवें, शीघ्र लाभ होता है।

बालको के अतिसार पर—विडग, अजमोद और पिप्पली समभाग का चूर्ण [४ रत्ती की मात्रा में] उष्ण जल के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। —यो०र०

शोथ पर—विडग, दतीमूल, कुटकी, निशोथ, चित्रक, देवदारु, त्रिकुट, पिप्पली व त्रिफला १-१ भाग तथा लोह भस्म सबसे दो गुनी लेकर यथाविधि चूर्ण बनावे। इस विडगादि चूर्ण के ३ रत्ती की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से शोथ नष्ट होता है। —यो र

अथवा—विडग, अतीस, देवदारु, सोंठ, इन्द्र जौ, बच, और कालीमिर्च समभाग चूर्ण कर [१ तोला की मात्रा में] उष्ण जल के साथ सेवन करें। — ब० से०

विडगादि लोह— विडग, त्रिफला और त्रिकुट के प्रत्येक द्रव्यो का चूर्ण १-१ भाग तथा लोह भस्म ७ भाग लेकर सबको



एकत्र खरल कर रखें। इसे [२ ३ रत्ती मात्रा मे] पुराने गुड के साथ ७ दिन सेवन करने से शोथ पाण्डु और हलीमक[वात पित्त जन्य पाडु का वह भेद है जिससे रोगी का वर्ण हरा, नीलाभयुक्त पीला हो जाता है।] रोग नाश होता है।

विडग मज्जा चूर्ण १½ से ३ माशा तक अभ्रक भस्म १ रत्ती मिला, सेवन से सर्व प्रकार की सूजन दूर होती है। विशेषत राजयक्ष्मा के रोगी के पैरो का शोथ भी दूर होता है। —अ यो माला

पाण्डु व कामला पर—[विडगादि लोह] विडग, त्रिफला, त्रिकुटु, दारुहल्दी का चूर्ण तथा मण्डूर भस्म और लोह भस्म १-१ भाग लेकर एकत्र खरल करें। मात्रा [१ से १½ माशा] घृत व मधु के साथ सेवन करें। पाडु व कामला में लाभ होता है। —वं० से०।

कामला पर—(विडङ्गाद्यवलेह)–विडग, त्रिफला, नागरमोथा, मुलैठी, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी व चित्रक इनका चूर्ण तथा लोह भस्म १-१ भाग, एकत्र खरलकर गुड़ और खाड ११-११ भाग लेकर खैर के क्वाथ मे चाशनी बना उसमे उक्त खरल किये हुए चूर्ण को मिला, थोडा पकाकर रख लें। इसे यथोचित मात्रा मे घृत व मधु के साथ सेवन से एक वर्ष का जीर्ण कामला भी नष्ट होता है। यह योग पित्तज शोथ एव पाडु का भी नाशक है।

—ग० नि०

कामला व पित्तज विकारो मे विडग चूर्ण को केवल दूध के साथ भी देते हैं।

प्रवाहिका पर—फल के ऊपर की छाल या इसके चूर्ण को ३ माशा तक साबूदाना और मक्खन मे मिला कर देते हैं।

जिस प्रवाहिका मे श्वेत आम जाती हो, अधिक पीडा हो उसमें इसके चूर्ण को जल या मधु के साथ सेवन करावें।

वमन पर-विडग, त्रिफला, व सोठ के समभाग चूर्ण को या विडग, नागरमोथा व सोठ के चूर्ण को मधु के साथ सेवन से कफज वमन शात होती है। —ग नि

(५) ज्वर, यक्ष्मा तथा वाजीकरणार्थ—ज्वर, विशेषत जीर्ण कफज ज्वर पर–(विडगघृत)–विडग, संचल (काला नमक), चव्य, चित्रक, त्रिकटु, सेंधानमक और जवाखार ५ ५ तोला एकत्र पीसकर इस कल्क को घृत व दूध २-२ सेर और जल ८ सेर में मिला मन्द आच पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। (१ तोले की मात्रा मे) इसके सेवन मे लाभ होता है।

—ग नि

यक्ष्मा पर—विडग चूर्ण, शिलाजीत, लोह भस्म और हरड का चूर्ण समभाग एकत्र खरल करें। (१-३ माशा की मात्रा में) शहद व मधु के साथ पथ्यपूर्वक सेवन मे उग्र राजयक्ष्मा भी दूर होती है। —वृ० मा०

अथवा—विडङ्ग के २५ दाने, लहशुन की १ पुथी, नारियल की गिरी ६ माशा इनको दूध मे पका, मिश्री मिला छानकर पिलाते हैं। तथा हर पाचवें दिन विडग के २५ व १ पुथी लहशुन की बढाते हैं। लहशुन ५ पुथी से अधिक नही और विडग के दाने २०० से अधिक न करे। इसी क्रम से घटावें। इससे कास श्वास सहित यक्ष्मा सोपद्रव शात हो जाता है। —अ० यो० मा०

वाजीकरणार्थ रसायन के रूप मे—विडग, त्रिफला, पिप्पली और लोह भस्म समभाग लेकर यथाविधि चूर्ण बना रखें। इसे खाड, घी व मधु के साथ सेवन से वृद्धता एव पलित का नाश होता है। —ग० नि०

(६) प्रतिश्याय, कास, नासा रोग तथा सिर पीडा पर—

प्रतिश्याय पर–विडग, सेंधानमक, हीग, गूगल, बच, और मनसिल समभाग का चूर्ण बना, नस्य लेने से लाभ होता है।

–व० से०।

कास पर—विडग, सेंधा नमक, कूठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सोठ, भुनीहीग व शुद्ध मनसिल समभाग चूर्णकर (चौथाई से आधी रत्ती मात्रा में) मधु व घी के साथ सेवन से कास, हिक्का व श्वास नष्ट होते हैं।

–च स चि अ १८

नोट—विशिष्ट योगो मे–विडगादि चूर्ण न०३ देखे।

नासा रोग—(नाक के रोग-नासाकृमि, नासागत अर्बुद, शोथ, शोष, पिडिका, दाह, नासानाह, पाक आदि)

पर—(विडंगादि तैल)—विडग, सेंधानमक, [सोंठ]ठी, दे... त्रिकटु प्रत्येक द्रव्य १। तोला लेकर एकत्र ... गोंदे ... साथ पीसकर कल्क करें तथा क्वाथार्थ—उक्त ७ द्रव्यों को २०-२० तोला लेकर जौकुटकर १४ सेर जल में पकावें। ३॥ सेर (चतुर्थांश) शेष रहने पर छानकर इसमें उक्त कल्क व तिल तैल १ सेर ६० तोला मिला कर मंद आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसका नस्य लेने से नासिका के विकार दूर होते हैं।
—ग० नि०।

सिर दर्द पर—इसके चूर्ण को गाय के माखन के साथ मिलाकर माथे पर लेप करने से लाभ होता है।

यदि अर्धावभेदक (आधा शीशी) आधे सिर का दर्द हो तो विडग और काले तिल समभाग एकत्र पीसकर नस्य लेने से, (अथवा विडग चूर्ण को काले तिल के तैल में मिलाकर नस्य लेने से) लाभ होता है।
--भा. प्र तथा व से।

(७) मेदरोग, गण्डमाला, श्लीपद व अर्श पर--

मेदरोग (अत्यन्त मोटापा, मेदोवृद्धि (Obesity) पर--(मेदोहर रस)—विडगचूर्ण तथा शुद्ध पारा व गन्धक समभागलेकर (पारा गंधक की कज्जली कर उसमें चूर्ण मिलाकर) आक के रस में खरल कर रख लेवें। मात्रा १ से ३ रत्ती तक शहद के साथ सेवन कर ऊपर से शहद का शर्बत बनाकर पीयें। प्रवृद्ध मेदोरोग नष्ट हो जाता है।
--भा० भै० र०

नोट—इस योग को पथ्य पालनपूर्वक ३ दिन सेवन करें। यदि कुछ लाभ हो तो आगे और कुछ दिनो तक लें।
—सम्पादक

अथवा—विडग, सोंठ, यवक्षार, लोह भस्म, जौ और आंवला समभाग के चूर्ण को ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाने से स्थूलता नष्ट होती है। पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है।
—भै० र०।

गडमाला पर—विडग चूर्ण को शुद्ध गूगल, शुद्ध मैनसिल तथा मृगशृग भस्म (सब समभाग) को घोटकर रखें (२-३ रत्ती मात्रा) मधु और घी के साथ सेवन करते रहने से धीरे धीरे निश्चित लाभ होता है।
—भा० प्र० नि०

श्लीपद (फील पाव) पर—(विडगादि तैल)—विडग, कालीमिर्च, आक की जड की छाल, सोंठ, चित्रक, देवदारु, एलुवा, पाचो नमक (सेंधा, काला, विड, ... व काच नमक) १ १ तोला सबको एकत्र पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क को ६६ तोला (उत्तम) तिल तेल में मिला उसमें चार गुना जल मिलाकर मन्द आग पर पकायें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलो। इसके पीने से श्लीपद में लाभ होता है।
—भै० र०

अर्श पर—विडग, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इलायची, नेपाली धनिया (तुम्बरु), धनिया और तिल समभाग लेकर क्वाथ करे। इसमें हरड का चूर्ण, गुड तथा घी मिलाकर सेवन से अर्श का नाश होता है। –भै० र०

(७) प्रमेह, कुष्ठ, चर्म विकार तथा व्रण पर—

प्रमेह पर—विडग, हल्दी, मुलेठी, सोंठ व गोखरू समभाग लेकर क्वाथ बनाकर, उसमें मधु मिलाकर सेवन से भयकर प्रमेह भी नष्ट होता है।
—यो० र०

अथवा—(विडगादि लोह)—विडग, त्रिफला, नागरमोथा, पिप्पली, सोंठ, श्वेत जीरा व कालाजीरा प्रत्येक १-१ तोला, तथा लोह भस्म ६ तोला एकत्र खरल कर २ रत्ती की मात्रा मे सेवन से प्रमेह एव सम्पूर्ण मूत्रविकार नष्ट होते हैं।

नोट—लोह भस्म का प्रयोग वृक्क तथा बस्ति के सभी विकारो को शात करता है। यह योग विशेषकर मूत्रयंत्र के आभ्यन्तर शोथ को दूर करता है। —भै० र०

कफज प्रमेह हो तो—विडग, शाल वृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल, कायफल, कदम्ब वृक्ष की छाल, लोध्र व असन वृक्ष की छाल समभाग लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करावे।
—भै० र

नोट—उक्त ७ द्रव्यो को जौकुटकर २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर प्रात व सायं पिलावे।

कुष्ठ पर—(विडगादि मोदक) विडग, बावची, पिप्पली, बाराहीकन्द, कलिहारी की जड व त्रिफला प्रत्येक द्रव्य समभाग चूर्ण कर सबको एकत्र चूर्ण के समान भाग गुड के साथ घोटकर मोदक (६-६ माशा के) बना ले। १-१ मोदक जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
—वं० से०

अथवा—विडग, त्रिफला व निशोथ इनका समभाग चूर्ण कर प्रतिदिन प्रात साय गुड के साथ एक मास तक सेवन से सर्व प्रकार के क्षुद्र कुष्ठ नष्ट होते हैं। सतत ६ मास पथ्यापथ्य पूर्वक सेवन से महाकुष्ठो मे भी उपशय दृष्टिगोचर होता है। —आयुर्विद्या

विडग पवाड के वीज, कुठ, हल्दी, सेंधानमक व सरसो इन्हे काजी के साथ पीसकर लेप करते रहने से दद्रु व कुष्ठ रोग नष्ट होता है। —भैं० र०

चर्म विकारो पर--(विडगादि लेह) विडग चूर्ण, शिलाजीत, शहद, घी तथा खैरसार (कत्था) समभाग एकत्र कर, पथ्यपूर्वक सेवन से किटिभ कुष्ठ (कालेदाग, छाजन Psoriasis), श्वेत कुष्ठ तथा दाद का नाश होता है। --वा भ चि अ १८

लेपार्थ—विडग, सेंधा नमक, हरड, बावची, सरसो, हल्दी और करज बीज समभाग महीन चूर्ण कर, गोमूत्र मे मिलाकर लेप करते रहने से दाद आदि चर्मविकार दूर होते है। —च. द

व्रणो पर—विडग, त्रिफला तथा त्रिकटु प्रत्येक द्रव्य समभाग चूर्ण कर सबके बराबर शुद्ध गूगल एकत्र मिला, थोडा थोडा घी मिलाते हुए कूटें। सबके अच्छी तरह मिल जाने पर (१ से ३ माशा तक की) गोलिया बना लें। १ से २ गोली तक जल के साथ सेवन से दुष्ट व्रण, अपची, नाडी व्रण, प्रमेह एव कुष्ठादि चर्म विकारो का नाश होता है। —वृ मा

पत्र प्रयोग—वायविडङ्ग के कोमल पत्रो के क्वाथ मे सोठ का चूर्ण मिलाकर कुल्ले करने से गलदाह, गलशोथ, कृच्छ्र श्वास (श्वासोच्छ्वास मे कष्ट होना) तथा मुख पाक (मुख के भीतर के दूषित व्रण) मे लाभ होता है। —नाडकर्णी

छाल प्रयोग—निमोनिया आदि के फुफ्फस विकारो में इसके वृक्ष की छाल को जल के साथ पीसकर थोडा गरम कर छाती पर बाधने मे विशेष लाभ होता है। ऐसे रोगियो को इसकी छाल को चावल की काजी मे पका-छानकर सेवन भी कराते है। —नाडकर्णी।

दत शूल मे—इसके वृक्ष की जड़ की छाल को चबाने एव उसी का मजन करने से लाभ होता है। —वृ० द०

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से ४ माशा। क्वाथ-- ३ तोला। प्रवाही सत्व १ से ४ ड्राम।

अधिक मात्रा मे यह आत्र के लिये हानिकर है।

हानि निवारक- कतीरा व मस्तगी है। प्रतिनिधि कमीला व तुरमुस हैं।

इसका प्रवाही सत्व या अर्क—उदर रोग, कृमि विकार, वात विकार तथा विबन्ध नाशक है।

ध्यान रहे विडग वमनकारक है, तथा विरेचक भी किन्तु किस मात्रा मे? एक रोगी को पेट के वायु का दवाव होने से हृदय शूल होता था डाक्टरो ने उसको हृदय के भिन्न-भिन्न अवयवो का जीर्णत्व माना था और इसलिए उनके मत से यह असाध्य था। मैंने वायु का कार्य कराने की इच्छा से केवल विडग चूर्ण देना शुरु किया। मात्रा बढाते गये। उसको एक बार मे ½ तोला दिन मे तीन वार केवल जल से देने लगा। ६ दिन तक रोगी को कोई फल नही हुआ। किन्तु सातवें दिन विरेचन शुरु हुआ, ३ बार वमन हुआ तथा कई प्रकार का कफयुक्त विकार बाहर आया। इतने परिमाण मे यह कहा से निकला उसकी कल्पना भी नही हो सकती थी। क्योंकि ८ दिन से मूग के पानी के सिवाय आहार मे कुछ भी नही दिया था। बस फिर विडग देना बन्द कर दिया। वमन के बाद तुरन्त ही उसके हृदय का शूल चला गया जो फिर कभी नही हुआ। मुझे यह प्रथम अनुभव हुआ कि मात्रा को न जानने से वही औषध काम नही करती।

—आचार्य श्री वल्लभराम विश्वनाथ वैद्य डीन एव प्रधानाचार्य आ० महाविद्यालय, जामनगर

विडग से जो अमोनियम एम्बेलेट (Ammonium Embelate) नामक क्षार या सत्व प्राप्त किया जाता है। उसकी मात्रा ३ ग्रेन (६ ग्रेन तक) की है। यह टेपवर्म (स्फीत कृमि) नाशक है। इसे १½ से ३ ग्रेन तक की मात्रा मे मधु या मिश्री के शर्बत के साथ देने से विशेष लाभ होता है। ऊपर कृमि के प्रयोग न० १ मे इसका उल्लेख आ चुका है।

विशिष्ट योग–

(१) बिडंगादि चूर्ण—बिडग, पिप्पली, इलायची व दालचीनी १-१ तोला कालीमिर्च ३ तोला, सोठ १६तोला तथा मिश्री सबके बराबर लेकर चूर्ण कर रक्खें। ३-४ माशा चूर्ण (शहद के साथ) सेवन से कास, श्वास, ज्वर, प्लीहा, पाडु व क्षय का नाश होता है। —र० र०।

चूर्ण न० २—बिडग १० भाग, कालानमक ८ भाग, कूठ ६ भाग, बच ४ भाग तथा भुनी हीग २ भाग एकत्र महीन चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—२ से ३ माशा तक सुखोष्ण जल के साथ सेवन से आध्मान, विसूचिका, हृद्रोग, गुल्म तथा वात की विलोम गति आदि विकार दूर होते है।

चूर्ण न० ३—बिडग, सोठ, रास्ना, पिप्पली, हीग, सेंधानमक, भारंगी व जवाखार समभाग चूर्ण बना लें। इसे घृत के साथ सेवन से कफवातज कास श्वास हिक्का तथा वात व्याधि व मदाग्नि में लाभ होता है। (मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक)। —च चि अ. १६

चूर्ण न० ४—बिडग, त्रिफला व पिप्पली इनके समभाग चूर्ण को (यथोचित मात्रा में) मधु के साथ सेवन से कुष्ठ, कृमिरोग, प्रमेह, नाडीव्रण तथा भगन्दर नष्ट होता है। —भै र

नोट—इस योग के चूर्ण मे १-१ भाग मधु व तिल तैल मिला लेने से वह बिडगाद्यवलेह कहाता है। इसके (५-६ माशा की मात्रा में) सेवन से उक्त विकार दूर होते है। —वा भ उ अ० २७।

चूर्ण न० ५—बिडग के चावल, त्रिफला, जवाखार व पिप्पली १-१ भाग तथा निसोथ सबसे आधा लेकर चूर्ण करें। (१ से ३ माशा तक) मधु व घृत के साथ या गुड के साथ सेवन से गुल्म, प्लीहा, कास, हलीमक, अरुचि तथा कफ वातज अनेक रोग नष्ट होते हैं। —वा० भ० कल्प अ २

(२) विडगाद्यवलेह—विडग के चावलो का (ऊपर के छिलके रहित विडग का) चूर्ण तथा पिप्पली के चावलो का चूर्ण प्रत्येक २५६ तोला, मिश्री ४ सेर २४ तोला, गोघृत, तिल तैल व मधु प्रत्येक १२ सेर ६४ तोला सबको एकत्र मिला घृत से चिकने किये हुये पात्र में रख पात्र का मुख बन्द कर उसे राख के ढेर मे दबा दे। यह प्रयोग प्रावृट ऋतु में बनावें। तथा उक्त पात्र को वर्षा के अन्त तक राख में ही दबा हुआ खुले स्थान मे रहने दें। वर्षा के बाद शरद में निकाल कर सेवन करें। प्रतिदिन प्रातः कुटी प्रावेशिक विधि से या ऐसे ही साधारण विधि से अपने अग्निबल के अनुसार १ या २ तोला तक की मात्रा मे लेवें। औषध के जीर्ण हो जाने पर शालि या साठी चावल का भात दूध व घृत से खावें। अथवा सात्म्य भोजन अग्निबलानुसार करें। इससे १०० वर्ष की जरारहित आयु प्राप्त होती है। —च चि अ १
वा भ. (अष्टाग सग्रह अ ४९)

अवलेह न० २—उक्त विडगादि चूर्ण में न० ४ के प्रयोग मे नोट देखें।

(३) विडग तण्डुल रसायन (सर्वोपघात शमनीय)–* विडग चावलो को (विडग को १० मिनट जल में भिगो निकाल कर छायाशुष्क कर ऊखल मे कूट ऊपरी भूसे को पछोड कर सार भाग तण्डुलो को) कूटकर चूर्ण करें। उत्तम मुलैठी लेकर उसको ऊपर ऊपर से छीलकर व कूट कर चूर्ण करें। दोनो चूर्णो को समभाग मिला खरल कर सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। तथापि प्रथम ४ दिन तक ३ मा. फिर

---

* महर्षि सुश्रुत ने सर्वश्रेष्ठ कृमिनाशक बिडग तथा जीवनी शक्ति की सर्वोत्तम रक्षक मुलैठी इन दोनो के सयोग से इस सर्वोपघात शमनीय प्रयोग का आविष्कार किया है। इसकी प्रस्तावना में वे लिखते हैं "शरीरस्योपघाता ये दोषजामा सास्तथा। उपदिष्टा प्रदेशेपु तेषा वक्ष्यामि वारणम्" अर्थात् वातादि शारीरिक तथा रज एव तम दोषो के द्वारा उत्पन्न होने वाले विकारो को जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है दूर करने का उपाय बतलाया जाता है। —सु. चि. अ. २७

चार दिन तक ६-६ माशा इस प्रकार क्रमश ३-३ माशा अपनी अग्निवलानुसार बढाते हुए प्रतिदिन प्रात मधु से लेवें। अनुपान रक्त विकार तथा रक्त, पित्त प्रधान अर्श पीडितो को शीतल जल, वातज अर्श प्रकोप हो, या भगन्दर या वात विकारो मे मधु मिश्रित भिलावे का क्वाथ, कृमि प्रकोपज वात विकारो मे एव काया कल्प या शरीर की धातुओ के आप्यायनार्थ मधु युक्त आवलो के रस केसाथ कृमि प्रकोपज पित्त विकार में जीर्ण कोष्ठवद्धता हो तो मधु युक्त द्राक्षा (मुनक्का) के क्वाथ के साथ, वात रक्त प्रकोप तथा सन्निपात, कुष्ठ, जीर्ण ज्वर आदि में गिलोय के क्वाथ के अनुपान मे प्रकृति एव रोग लक्षणानुसार अनुपान में थोडा अन्तर करते हुए इस योग का सेवन करावें।

पथ्य में—औषध पचन हो जाने पर आवला चूर्ण मिश्रित मूग का यूप लवणरहित अच्छी तरह गोघृत मिला हुआ दिन मे १ या २ वार देवें। उक्त आवला मिश्रित मूंग के यूप के साथ साठी चावलो का भात (केवल यूप पर नही रहा जा सके तो) अल्प प्रमाण मे दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चीज न देवें। इस प्रकार पथ्य भोजन दिन मे एक ही वार देना ठीक होता है। एक महीने तक सेवन से सर्व प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। किसी भी व्याधि को पैदा करने वाले किसी भी जाति के एव शरीर के किसी भी अग मे रहने वाले जन्तु इससे नष्ट हो जाते हैं। कुष्ठ, वातरक्त, फिरग, उपदश के उपद्रव, सुजाक के उपद्रव, रक्तपित्त आदि दूर होते हैं। स्मरण-शक्ति वहुत वढती है। प्रतिवर्ष वसन्त ऋतु मे (जिसे सामान्य रीति से प्रतिवर्ष इसके सेवन की इच्छा हो, तो उन्हे वसन्त में १ या २ मास तक सेवन से कफदोष का सचय शरीर मे नही होने पाता एव कफ दोपज व्याधि की भी निवृति होती है। अत इस का सेवन वसन्त ऋतु 'वसन्त व्रत' कहाता है।) इसके सेवन से शरीर निरोगी एव दीर्घायु होता है। अन्य ऋतु मे भी किसी कुष्ठादि रोग पर इसका प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। इससे किसी भी कष्टसाध्य रोग मे लाभ होता है। किंतु प्रयोग के पूर्व पचकर्मों द्वारा शरीर शुद्धि करा देना विशेष हितकारी होता है। जो रोगी दृढ मनोबल वाला है, धूम्र पानादि व्यसन जिसे नही है, लवण को छोड सकता है, उसके लिये यह अधिक लाभकारी है। यदि पूर्ण पचकर्म न हो सके तो, कम से कम स्नेहन स्वेदन तो करा देना ठीक होता है। रोगी को प्रयोग काल मे कोई मिष्ठान्न, खाड या दूध भी नही देना चाहिये। यदि नही रहा जा सके तो मोसम्बी, अण्डखर्बुजा (पपीता) आदि सात्म्य फल देने में कोई विशेष हानि नही है।

वम्बई के सुप्रसिद्ध रस वैद्य श्री झडूभट्टजी (जिनकी झडू आयुर्वेदिक फार्मेसी अभी भी सुप्रचलित है) ने इस सर्वोपघात शमनीय प्रयोग का अनेक रोगियो पर अनुभव करके वतलाया कि इसमे अग्निवर्धक, कृमिनाशक, रक्त-शोधक, वातकफनाशक तथा ज्ञान तन्तुओ के लिये शक्ति वर्धक ये सव गुण पाये जाते हैं। अतिसार, सग्रहणी, अर्श आदि मदाग्नि से होने वाले, आध्मान, गुल्म, शूल आदि वात कफ से होने वाले, प्रमेह, उपदश, भगन्दर, कण्ठमाला, कुष्ठ आदि रक्त विकार एव कृमियो से पैदा होने वाले, उन्माद, अपस्मार, अर्द्धांग आदि ज्ञानतन्तुओ की निर्बलता से होने वाले तथा क्षय, कास, श्वास आदि फुफ्फुसो की खरावी से होने वाले रोगो में इस प्रयोग से वहुत उत्तम लाभ होता है। इसके अतिरिक्त हैजा, मलेरिया, प्लेग-जन्य प्राणघातक संक्रामक व्याधियो के प्रकोप काल में इस प्रयोग का सेवन करते रहने से इन रोगो के आक्रमण का भय नही रहता।

नोट—सुश्रुत ने उक्त प्रयोग के वादही विडग तण्डुल की एक दूसरी रसायन विधि का भी विधान दर्शाया है जो विस्तार भय से यहा नही दिया जा सकता। (सुश्रुत सहिता चि स्था अ २७ देखें)

(४) मणिभद्र मोदक—विडग की गिरी, आवला, व हरड ४-४ तोला निसोथ १२ तोला इनका महीन चूर्ण कर २४ तोला पुराने गुड के साथ घोटकर (३ से ६ माशा तक के) मोदक वना लें। इसे जल के साथ सेवन से उत्तम उदर शोधन होता है। आन्त्र मे मल सग्रह एव आम व कीटाणुओं के सग्रह से होने वाले अर्श, उदर रोग

प्लीहा वृद्धि, उदरशूल, कृमि, गुल्म, कुष्ठ, कास, श्वास, प्रमेह, क्षय, भगन्दर, जलोदर आदि रोगों मे यह योग विशेष लाभदायक है । इस योग के सेवन से वृद्ध भी यथेष्ट आहार विहार करता हुआ तरुण हो जाता है । यह योग शरीर का पोषक है। —भैं० र०।

नोट—जलोदर तथा कुष्ठ मे अति कोष्ठबद्धता होने पर ४ मोदक या अधिक देने मे भी हानि होने का भय नही है। यदि रोगी पथ्य मे लवण का सेवन छोड देवें। या किंचित सेंधानमक लेवें तो लाभ शीघ्र होता है। यह योग शाक्य भिक्षु के अर्श निवारणार्थ मणिभद्र नामक यक्ष-वर ने मिश्रित किया था।

(५) विडगयुक्त सम शर्कर लोह पाक—विडग चूर्ण १ तोला, लोह भस्म ४ तोला, गोदुग्ध १६ तोला तथा गोघृत (गोदुग्ध एव गोघृत के अभाव में भैंस का दुग्ध व घृत लेवें) ८ तोला लेकर प्रथम भस्म, दूध व घृत को एकत्र कलई किये हुए ताम्र पात्र मे पकावें। खूब गाढा हो जाने पर (दुग्ध के जल जाने पर) विडग चूर्ण का प्रक्षेप देकर अच्छी तरह मिश्रित कर, उतार कर, ठडा हो जाने पर उसमें मधु और मिश्री (या खाड) ४-४ तोला मिला, स्निग्ध पात्र मे सुरक्षित रखे । यदि इसे बरफी जैसा जमाना हो तो मिश्री दो गुनी डालकर पाक करे ।

मात्रा—६ रत्ती प्रारभ मे देकर रोगी की शक्ति अनुसार क्रमश पूर्ण मात्रा १२ रत्ती तक बढावें। अनुपान में नारियल का जल, या दूध की लस्सी देवें। यह पाक तीव्र रक्तपित्त, अम्लपित्त, उर क्षत या क्षतक्षय का नाश कर काति व आयु की वृद्धि करता है। वृष्य है।—भै र

नोट—पाको के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ मे देखिये।

(६) विडग लोह—शुद्ध पारद, शुद्ध गधक, कालीमिर्च, जायफल, लौग, पिप्पली, शुद्ध हरताल, सोठ व वगभस्म १-१ भाग, लोहभस्म ६ भाग तथा विडग १८ भागलेकर प्रथम पारे गधक की कज्जली कर उसमे अन्य द्रव्यो का महीन चूर्ण मिलाकर खरल कर रखें। (मात्रा २ से ४ या ८ रत्ती तक) इसके सेवन से अर्श, अरुचि, अग्निमाद्य, विसूचिका, शोथ, शूल, ज्वर, हिक्का, कास श्वास, तथा कोष्ठस्थ कृमि नष्ट होते है। —भै र.

(७) विडगयुक्त लोहभस्म योग—निरुत्थ लोह भस्म को त्रिकुट और विडग के समान भाग मिश्रित ४ माशा चूर्ण मे मिलाकर घृत व मधु के साथ सेवन मे जरा, व्याधि व अकाल मृत्यु दूर होती है तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। इसके सेवन करने वालो को गर (सयोग जनित विष) जन्य कोई रोग नही होने पाता। —भा भै र।

(८) विडग तैल—विडग, गधक व मनसिल ४-४ तोला (कई 'मनसिल' नही लेते। योगरत्नाकर मे गधक नहीं लिया गया है, मनसिल लिया है) एकत्र जल के साथ पीसकर इस कल्क को १ सेर १६ तोला सरसो तैल तथा तैल से चार गुना गोमूत्र मिला मन्द आग पर पकावे, तैल मात्र शेप रहने पर छानकर रखें। इसे लगाने से जू, लीख हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। —भै र

'विडगादि तैल' का योग भै० र० मे देखिये।
—कृमिरोगाधिकार।

(९) विडगारिष्ट—विडग (१ वर्ष का पुराना) २½ सेर तथा त्रिफला २० तोला, कमीला ½ सेर, पीपलामूल, कुडा छाल व इन्द्रजौ २०-२० तोला सबका जौ कुट चूर्ण कर ४००० तोला जल मे चतुर्थाश क्वाथ कर छान कर सधान पात्र मे भर उसमे मधु १००० तोला व धाय के पुष्प १०० तोला तथा दालचीनी, त्रिकटु, तेजपात व बडी इलायची का चूर्ण ५-५ तोला डालकर एक महीने तक बन्द कर रखें। पश्चात् छानकर बोतलो में भर ले। यह उत्तम कृमि विकारनाशक है।

नोट—आसवारिष्ट के अन्य प्रयोग हमारे 'बृहदासवारिष्ट सग्रह' में देखिये।

वायविडंग नं. २ (Embelia Robusta)

उक्त विडग न० १ के ही कुल के इसके छोटे-छोटे घने झाडीदार वृक्ष होते है। (जलवायु एव स्थानानुसार इनके आकार प्रकार मे अन्तर होता है) शाखायें, अनेक विन्दु युक्त, छाल—खाकी रग की, पत्र—५-७ इन्च चौडे,



वायविडग(वर्यटी)
EMBELIA ROBUSTA ROXB

लहरदार, कभी कभी सूक्ष्म दन्तुर धार से युक्त कुछ गोल, वृन्त की ओर अण्डाकार, अध पृष्ठ पर सुरमई रङ्ग (लोहे के जग जैसा) के प्राय रोमश, पुष्प–छोटे छोटे हरिताभ श्वेत या हरिताभ कुछ पीत वर्ण के, फल–छोटे-छोटे गोल, किंचित् लम्बाकार, नीरस, लाल रग के तथा बीज–गोल, आधार पर भीतर की ओर धसे हुए से होते हैं। माघ फाल्गुन मास तक इसके फल पक्व जाते है ।

बाजार मे इसके बीज प्राय कालीमिर्च के साथ मिश्रित पाये जाते ह ।

इसके वृक्ष हिमालय के पूर्व की ओर के प्रदेशो मे, तथा बगाल और दक्षिण की ओर सीलोन तक न्यूनाधिक पाये जाते हैं ।

नोट–न०१ इसका एक भेद बनवान (Myrsine Africana) है। इसे चंम्रा,नुग्रा, गुगेनी,वायव्र ग भी कहते हैं। इसके हरे क्षुप हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक पाये जाते है। इसका फल तीव्र विरेचक एव कृमिनाशक है, स्फीत कृमि (टेप वर्म्म) पर विशेष उपयोगी है। इसके वृक्षो मे जो गोद प्राप्त होता है, वह कष्टार्तव, जलोदर, एव शूल (Colic) पर उपयोगी है ।

नोट—२—इसका ही एक अन्य भेद Embelia Tsjeriam Cottan A Dc है। इसे भी वायविडग कहा जाता है। इसके पौधे दक्षिण मे मलाबार की ओर अधिक पाये जाते हैं। इसकी छाल मुख के दूषित व्रणो पर उपयोगी हे ।

उक्त दोनो भेदो के फलो के गुणधर्म एव प्रयोग प्रायः विडग न १ के जैसे ही हैं ।

प्रस्तुत् विडग न०२ के नाम, गुणधर्मादि –

नाम —

स०—विडग भेद। हि वायविडग, गैया, बेवरग। म —वार्वाडग, वरवटी, आमटी। नैपाली–कलयपोवोटी। अ०—बासल (Basal) । ले०—एम्बेलिया रोबस्टा ।

गुणधर्म व प्रयोग–

वातानुलोमक ,कोष्ठवात एव कृमिनाशक, अर्श मे तथा शोथ मे विशेष लाभकारी तथा रसायन है। शेष गुणधर्म विडग न०१ जैसे ही हैं।

स्फीत कृमि (टेप वर्म्स) पर–फलो का चूर्ण प्रातः साय खाली पेट जल के साथ दिया जाता है। छोटे बालको को यह चूर्ण मधु या शक्कर के साथ १ ड्राम से २ ड्राम तक की मात्रा मे दिया जाता हे। अर्श पर यह चूर्ण केवल जल के साथ देते है ।

गण्डमाला पर—अनन्तमूल के साथ इसका क्वाथ बनाकर सेवन कराते तथा इसे ठण्डे जल मे पीसकर गाठो पर लेप करते हैं।

दन्त शूल पर—इसका चूर्ण थोडी हीग के साथ दात की पोल मे रखने से लाभ होता है तथा इसका मञ्जन मे व्यवहार करते हैं। इसकी जड की छाल भी इसमे उपयोगी है ।

गले की सूजन मुख के छाले एव व्रण पर—इसके कोमल पत्रो का सोठ के साथ क्वाथ बनाकर मुख मे धारण कराने से लाभ होता है।

निमोनिया तथा फुफ्फुस के विकारो मे—इसकी छाल को चावल के माड के साथ उबालकर पिलाते हैं, तथा छाल को पीसकर मक्खन के साथ छाती पर लेप करते है। इसके फलो को पीसकर मक्खन के साथ छाती पर लेप लगाने से फुफ्फुसावरण शोथ मे लाभ होता है। शिर शूल मे भी इसका इसी प्रकार मस्तक पर लेप लगाया जाता है।

रुद्धार्त्तव पर—फलो को जल मे औटाकर पिलाने से स्त्रियो का बन्द आर्तव जारी हो जाता है —संकलित

शेष प्रयोग वि० ग न० १ के अनुसार ही है।

बायलो [Pterospermum Heyneanum(wall)]

मुचकुन्द कुल (Sterculiaceae) के मध्यम प्रमाण के इस वृक्ष के पत्र एकान्तर या सयुक्त ४–६ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौडे, पुष्प मुचकुन्द के पुष्प जैसे, श्वेत एव सुगन्धित होते हैं।

इसके वृक्ष भारत के पूर्वी तट पर, उडीसा आदि प्रान्तो मे तथा पहाडी प्रदेशो मे पाये जाते है।

नाम—

हिन्दी, उडिया भाषा मे—बायलो। ले०—टेरोस्परमम् हेनीनम्।

गुण धर्म व प्रयोग—

वातशामक, शान्तिदायक, प्रदरादि नाशक है। श्वेत-प्रदर पर इसके पुष्पो का प्रयोग किया जाता है। मज्जा-तन्तु विकारजन्य या वातजन्य सिर दर्द पर इसके पत्तो के चूर्ण को तम्बाखू की तरह चिलम मे रखकर धूम्र पान करते है।

बायधुर—देखें—रास्ना।

बारक कांटा (Pericamphylus Incanus [nieers])

गुडूची कुल (menispermaceae) की अन्य वृक्षादि के आश्रय से बढने वाली लता रूप यह बनौषधि आकार मे प्राय गिलोय के समान होती है।

यह सिक्किम, खासिया पहाड तथा चितागाग आदि बगाल की उत्तरी सीमा पर पाई जाती है।

नाम—

हिन्दी-बगला—बारक काटा। नेपाली—लहारा पीपल पाती। ले०—पेरिकेम्फायलस इनकेनस।

रासायनिक संगठन—

इसमे एक निद्रा या मूर्च्छा कारक क्षाराभ पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह विष नाशक है। सर्पों को वश में करने वाले सपेरे लोगो मे, इसकी जड सर्प विष निवारक रूप मे विशेष प्रसिद्ध है।

डा० कनिंघाम का अनुभवपूर्ण कथन है कि सर्प विष का प्रभाव अन्दर तक पहुचने के पूर्व ही यदि इसकी जड के प्रवाही सत्व का इञ्जेक्शन दिया जाय तो विष का असर नही होने पाता है। —नाडकर्णी

अन्य विषैले जन्तुओ के दश पर भी जड का लेप करने तथा उसे घोट कर पिलाने से विष का असर दूर हो जाता है। कहा जाता है कि किसी भी मारक विष के साथ इसका रस मिला देने से उसका प्राणघातक प्रभाव नष्ट हो जाता है।

बारतङ्ग नं० १ [Plantago Lanceolata (Linn)]

अश्वगोल कुल ‡ (Plantaginaceae) के वहु वर्षायु इस क्षुप के पत्र शल्याकृति, कगूरेदार, रोमश एव छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे कई भागो मे विभक्त डण्डिओ पर आते हैं।

इसके क्षुप हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों मे काश्मीर से शिमला तक पाच से सात हजार फुट की ऊचाई तक तथा वजीरी स्थान, वलूची स्थान मे विशेप पाये जाते है।

नोट—इसका ही एक भेद लहुरिफ़ या लहुरिया [P major] है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

पीछे इस ग्रंथ के भाग १ मे ईशवगोल के प्रकरण में नोट देखें।

नाम

हिन्दी मे—वारतग, वारटग। कश्मीरी—ईसवगुल, गोला। व०—वारतुङ्ग,। अ०—रिववर्ट (ribwort] ले०—प्लैण्टेगो लेंसिओलाटा।



वारतग

PLANTAGO LANCEOLATA LINN



वार तग

PLANTAGO LANCEOLATA LINN

‡ इस (ईसवगोल) कुल के पुष्प के वाह्य व आभ्यान्तर कोप के दल ४-४, पुकेशर ४, फल विदारी वहु-बीज, जो जल मे डालने से लुआवदार हो जाते है।

रासायनिक सगठन—इसके पत्र,बीज या जड मे आकुबिन (Aucubin) नामक एक ग्लूकोसाईड पाया जाता है।

गुण,धर्म व प्रयोग-

पत्र-वेदनास्थापक, व्रणहर है। बीज-बिरेचक, शोणितस्थापनीय, रक्तपित्तहर है। जड-ज्वर निवारक है।

पत्रो का ताजा रस या शुष्क पत्रो का लेप या पुल्टिस व्रण, दाह, शोथ युक्त चट्टे या पीडायुक्त फोडो पर प्रयुक्त होती है। जखमो को धोने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

बीजो को विरेचनार्थ शक्कर के साथ देते हैं।

यूनानी मत से—यह शीत व रूक्ष है। पत्र सकोचक होने से रक्तस्राव निवारक हैं। पत्तो के प्रयोग से जीर्ण या नूतन व्रणो का शीघ्र रोपण होता है। व्रण रोपणार्थ इसके जैसी अन्य वस्तु नही है। शरीर के भीतरी अङ्गो से होनेवाले रक्तस्राव के अवरोधार्थ पत्तो का रस पिलाते हैं।

कफ के साथ रक्त या रक्त मिश्रित कफ के आने पर पत्तो का लेप छाती पर किया जाता है। नकसीर या नाक से रक्तस्राव हो तो इसका लेप ललाट (मस्तक) पर करें।

उष्णता या पित्तज कर्णशूल मे ताजे पत्तो का रस कान में टपकाने से लाभ होता है।

पित्तज या उष्णताजन्य गल शोथ पर—पत्र रस के कुल्ले कराते हैं। पत्तो का रस क्षय मे भी लाभकारी है। बीजो की मगज कामोत्तेजक है।

इसका सत यकृत व वृक्को के लिये बल्य है, तृषा नाशक है। अपचन को दूर करता है। मूत्र एव ऋतुस्राव की जलन को शात करता है, रक्तार्श, पैत्तिक ज्वर, राज्यक्ष्मा व सुजाक में लाभदायक है।

इसका पञ्चाग आत्र व्रणो को दूर करता है, शीतपित्त मे भी लाभकारी है।

जड—जड के क्वाथ से कुल्ले करने से मसूढ़ो से रक्त निकलना बन्द होता है। आधुनिक मत से जड का चूर्ण वसतकालीन ज्वरनाशक है।

नोट—मात्रा-पत्र रस ४ से ६ तोला तक।

इसका अधिक सेवन, फुफ्फुस व प्लीहा के लिये हानिकर है। हानि निवारक-बनफ्सा, शहद व मस्तङ्गी है।

बारतंग नं० २ (Plantago major)

उक्त बारतग न १ के ही कुल के, किन्तु वर्ष जीवी इसके क्षुप के पत्र १-५ इञ्च लम्बे, भेड की जीभ जैसे, बीज ईसबगोल जैसे, लम्बे छोटे, गोल, भूरे या लालिमायुक्त काले, स्वाद मे फीके, हीकदार होते हैं। औषधि कार्यार्थ रक्ताभ कृष्ण वर्ण के बीज उत्तम माने जाते हैं।

इसके क्षुप भारत के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा पेशावर, पजाब, काश्मीर से भूटान तक। तिब्बत के पश्चिम भाग मे, आसाम, खासिया पहाड, वर्मा, मलक्का, सिंगापुर, बम्बई, नीलगिरी तथा सूडान के उच्च स्थानो, कोकण, पश्चिमी घाट आदि स्थानो पर पाये जाते है। तथापि इसका आयात भारत में पर्शिया से विशेष होता है।

नाम—

हि —बारतग, लहुरिया, लहुरस, इसफगोल, गुल, करठे म —बारतग। अ —कार्ट। ट्राक प्लाट (Carter track plant), ग्रेटरप्लाटेन (Greater plantain) वे ब्रेड (Waybread)।

ले —प्लेंटेगो मेजर, प्ले सिलीयम (Plantago psyllium), प्ले एशियाटिका (Plantago Asiatica)।

रासायनिक सगठन—बीज मे हरा रजक द्रव्य, राल, मोम, अल्ब्युमिन, पेक्टीन [Pectin], शर्करा एव अति पिच्छिल (लुवाब) द्रव्य होता है।



बारतग (लहुरिया)
PLANTAGO MAJOR LINN

गुण धर्म व प्रयोग—

[illegible], [illegible], [illegible] रक्त [illegible], [illegible] है। डा० [illegible] अन्नाजन्य अतिसार या आमा- [illegible] विशेष लाभदायक है। किंतु [illegible] अतिसार में [illegible] प्रयोग किया जाता है। इसकी [illegible] क्वाथ [illegible] में उपयोगी माना जाता है।

[illegible] की [illegible] पीना पर [illegible] है। [illegible] है। [illegible] पत्र [illegible] परि-र्तक एव मूत्रल हैं।

पत्तो की पुल्टिस व्रण व जख्मो पर बाधते हैं तथा इसके गरम क्वाथ का बफारा देते है। पत्तो का रस व्रण या जखमो के रक्तस्राव को बन्द करता है। अतिसार व अर्श मे भी यह उपयोगी है। बर्र, ततैयादि के दश स्थान पर पत्तो को रगडने से शान्ति प्राप्त होती है।

कर्णशूल मे पत्रो के क्वाथ का बफारा देते तथा पत्र रसको कान मे टपकाते हैं। कठ की पीडा तथा दतशूल में पत्र रस या शुष्क पत्रो के क्वाथ के कुल्ले कराते हुए कई प्रकार के उष्ण दाह युक्त शोथो पर वेदना शमनार्थ इसका लेप करते है।

जिस क्षय रोग मे कफ के साथ रक्त आता हो उसमे इसका रस विशेष उपयोगी माना जाता है। कही-कही



बारतग (लहुरिया)
PLANTAGO MAJOR LINN

इसके पत्रो को पीसकर मक्खन के साथ मिला मसूढो की सूजन पर लगाते है।

बीज—इसके बीज उत्तेजक, उष्ण एव पौष्टिक हैं। ईसबगोल के स्थान में इसका उपयोग किया जाता है। ये रक्तातिसार नाशक है। मूत्र विकार तथा अतिसार मे बीजो का हिम (१ भाग मे ५ भाग जल मिलाकर बनाया हुआ) ५ से १० तोला तक की मात्रा मे, इलायची चूर्ण व मिश्री मिलाकर दिया जाता है। इससे आतो की ऐंठन युक्त पीडा भी दूर होती है।

पेचिश (आमातिसार) तथा प्रवाहिका पर—

बीजो को महीन पीस, छानकर ४ माशा की मात्रा मे पथ्यपूर्वक गाय की छाछ के साथ देवे। भोजन मे केवल दही व खिचडी देवे।

पूययुक्त पुरानी प्रवाहिका हो तो अकाकिया (बबूल की छाल एव पत्र का घनसार), कागज जला हुआ प्रत्येक ९ माशा, हरताल पीली शुद्ध की हुई १३½ माशा सबको बारतग के स्वरस १¼ सेर मे खरल कर टिकिया बनारखें। यदि पीप अल्प प्रमाण मे आ रही हो तो इसे २-३ रत्ती खाकर चावलो का माड (पिच्छ) पीवे। यदि अधिक पूय आती हो तो इसे जल मे घोलकर वस्ति देवें।

—यू चि सा

नोट—पत्र रस या पत्तो के स्वरस को फाडकर किया हुआ जल ५-७ तोला तक। बीज ५-७ माशा तक।

अधिक सेवन फुफ्फुस व प्लीहा के लिए हानिकर है। हानि निवारक—शहद, बनफशा व मस्तगी है।

प्रतिनिधि—बीज का प्रतिनिधि ईसबगोल है। पत्र के अभाव मे बीज ही लेवें।

बारहमासी—देखें—सदाफूल।

बाराही कन्द नं.१ (Dioscorea Bulbifera)

गुडूच्यादि वर्ग, एव वाराहकन्द कुल° (Dioscoriaceae की इस सुहावनी, वामावर्त्त आरोही लता के काड चिकने तथा काड के पत्रकोणो में लगभग १ इन्च व्यास के कद जैसे दानेदार उभार या ऊची उठी हुई थारिया होती है। लता का वर्ण कोमल दशा मे कुछ लाल सा फिर रक्ताभ पीत हो जाता है। पत्र काड के दोनो ओर अलग अलग क्रम से ताम्बूल (नागर वेल खाने के पान) पत्र जैसे, किन्तु कोमल दशा में लाल रग के, फिर धीरे धीरे हरे, पीले रग के होते हैं। पत्रोद्गम स्थान से इसके दूसरे कल्ले फूटते हैं जो धीरे धीरे नवीन शाखा रूप में ऊपर को बढने लगते हैं। यह लता प्राय शकरकन्द की लता जैसी होती है। भेद इतना ही है शकरकन्द की लता आरोही नही होती। किंतु इसे भी जमीन पर ही फैलने दिया जाय तो इसकी प्रत्येक गाठ पर जड निकलकर कन्दाकार हो जाती है। इसके पत्र प्राय साधारण एकान्तर २-६ इन्च लम्बे, १॥-४ इन्च चौडे, पतले, पुच्छाकार लम्बे तथा वृन्त के समीप या पत्राधार पर ताम्बूलाकार, पत्राधार गोल एव ९ शिराओ से युक्त होता है।

पुष्प—वर्षा ऋतु के अन्तकाल में प्राय पत्र कोणो से निकली हुई मजरियो में, पुष्प छोटे छोटे पीत या श्वेत वर्ण के आते है तथा शरदऋतु के अन्त तक विकसित होते रहते है। विशेषत रात्रि के समय अति मधुर सुगन्ध आती है। कही कही ज्येष्ठमास मे भी पुष्प आते हैं। इसके नर पुष्पो की मजरियाँ नीचे की ओर लटकी हुई, तथा नारीपुष्पो की मजरिया ४-१० इ च लम्बी होती हैं। फल-तीन पख वाले (पख के जैसे फैले हुए) तथा बीज भी आधार पर पखयुक्त होते है।

कन्द—विशेष बडा नही होता। यह वृषण (अडकोष) जैसा या शूकर (वाराह) मुख सदृश एक ओर को मोटा एव दूसरी ओर पतला, दृढ सघन लवे-लोम

° इस कुल के क्षुप लम्बे प्राय आरोही लता रूप मे होते हैं, जड-बडी या छोटी स्थूल, कन्दाकार, पत्र-एकान्तर या अभिमुख सामान्य या सयुक्त, पुष्प-छोटे-एक लिंगी, पुकेशर ६, बीजकोश-त्रिकोष्ठीय होता है।



बाराही कन्द (रतालु)
DIOSCOREA BULBIFERA LINN

युक्त होता है। भीतर श्वेत रंग का, ऊपर काले रंग का होता है। तोडने या नख से कुरेदने से दूध निकलता है। यह स्वाद मे चरपरा एवं कुछ कडुवा तथा नील कमल की सी गन्ध वाला होता है। गुजरात की ओर इसे ही डूकर कन्द कहते है।

यह कन्द हिमालय प्रदेशो मे ५ हजार फुट की ऊचाई तक भारत के कई पर्वतीय जगली प्रदेशो मे और मध्य-भारत व कोकण मे भी पाया जाता है।

नोट न० १—इस कन्द के विषय मे बहुत मतभेद है। तुरार नामक एक कन्द (Dioscorea Bellophylla) इसकी जाति का होता है। इसकी दक्षिणावर्त्त आरोही लता होती है, पत्र-साधारण या करतलाकार सयुक्त होते है। कई लोग इसी को वाराहीकन्द मानते है। देहरादून की ओर शाकार्थ- इसका उपयोग किया जाता है।

भावप्रकाशकार का कथन है कि वाराहीकन्द को ही पश्चिम देश मे 'ग्रष्टि' कहते है तथा इसी को कुछ लोग 'चर्मकारालुक' कहते हैं। आनूप (जलप्राय) देश मे यह सूअर के बालो की तरह कडे रोमो से युक्त कन्द वाला होता है। किन्तु ध्यान रहे चर्मकारालु तथा गृष्टि (गेंठी) ये दोनो वाराहीकन्द से भिन्न है।

नोट न० २—चर्मकारालु (चमार आलु) पर भी शूकर के समान रोम होते हैं किन्तु वाराहीकन्द की अपेक्षा यह बहुत सुलभ्य है, मुगेर, भागलपुर, चम्पारन, दरभगा, पटना, सारन तथा बलिया, गाजीपुर, बनारस, छपरा आदि जिलो के जगल, झाडी, बास के खेत, नागफनी थूहर आदि पडित भूमि मे इसकी हरी हरी बेलें वर्षा काल मे बहुत देखने मे आती हैं। बरई लोग पान के खेतो मे इसको रोपण करते तथा इसके कन्द की शाक बनाकर खाते है। इसे प्रान्तीय भाषा मे 'सुथनी' कहते हैं। इसकी भी लता बाराही कन्द की लता जैसी किन्तु श्वेत वर्ण की, पत्र भी वैसे ही किन्तु छोटे इसके कन्द भी प्राय वैसे ही होते हैं। तथापि यह वाराहीकन्द की अपेक्षा कुछ हीन गुण वाला माना गया है। शास्त्रकारो ने इसे वाराहीकन्द का प्रतिनिधि माना है।

नोट न० ३—गृष्टि (गेठी, आरेठाशाक, ऋषिभोजन) स्व कविराज श्री प्रतापसिंह जी ने इसके विषय मे विशेष अन्वेषण पूर्वक प्रकाशित किया कि—"सुश्रुत (चि अ १) के कुष्ठाधिकार मे 'महातिक्तक घृत' मे 'गृष्टि' शब्द आया है। टीकाकारो ने इसका कुछ भी स्पष्टीकरण नही किया (किसी किसी ने भ्रम से विदारीकन्द अर्थ लिख दिया है) सुश्रुत के सिवा अन्य सहिताओ के महातिक्तक घृत मे यह गृष्टि नामक द्रव्य नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि सुश्रुत काल मे यह द्रव्य सुपरिचित था, किंतु उसके बाद मे इसका लोप हो गया। निघण्टुकारो ने इसे वाराहीकन्द के परिवार का समझकर उसका वाराहीकन्द ही नामकरण कर दिया। किन्तु जिसे मै गृष्टिका (गेंठी) कहता हू



वह कन्द विना लोम का होता है। वाराहीकन्द जैसा गठा हुआ (रोमश) नहीं होता। गृष्टिका का फल भी आलू जैसा गोल, रोम रहित, भूरे रग का एव स्पर्श मे चिकना ऊपर की भूरे रग की त्वचा निकाल देने पर नीचे नीले रग की त्वचा प्रकट होती है। इसका फल व कन्द दोनो ही स्वाद मे मधुर व पौष्टिक है। नैनीताल, अल्मोडा तथा मसूरी मे इसके फल व कन्द दोनो को उबाल कर शाक के रूप मे पथ्य देते है। भोजन मे शाक की जगह भी इसका उपयोग करते है। मुझे विदित हुआ है कि यह अत्यधिक पौष्टिक है। ऋषिगण इसी कन्द को खाकर पूर्ण भोजन का काम लेते थे। जिस कन्द मे स्टार्च अधिक होता है और फल में उतना ही प्रोटीन अधिक होता है। मद्रास मे एक चीनी बौद्ध वनस्पति विशेषज्ञ ने बताया कि भगवान बुद्ध को भी इसी कन्द व फल का पथ्य दिया गया था।

भारत सरकार ने जो 'दी वेल्थ आफ इन्डिया' नामक पुस्तक प्रकाशित की है उसमे लिखा है कि इसका स्टार्च मक्का तथा चावल के स्टार्च से पर्याप्त मिलता जुलता है अत प्राचीन ऋषि इसी का उपयोग भोजनार्थ करते थे। इससे उनकी शारीरिक शक्ति सुदृढ रहती थी।

वाट्स की डिक्शनरी मे इस कन्द के नाम लेटिन मे डायोस्कोरिया व्हर्सिकालर (Dioscorea versicolor woll) प्राकृत भाषाओ में गेंठी, गाजिर,गाजिरा, दोलालु, दुधालु कानरी, गिठी, घाजिन इ।

यह भारत के उत्तर प्रदेश तथा पूर्वीय प्रायद्वीप मोधीर से कुमाऊ नैपाल, आसाम तक एव ब्रोम आदि प्रान्तो में विशेष पाया जाता है, भारत के उत्तर-प्रदेश के मुरादाबाद, बिजनौर आदि जिलो के जगलो में दुष्काल के समय इसका कन्द आनन्ददायक भोजन का काम देता है। यह कन्द काफी बडा तथा वजन में कई पौण्ड वजन का होता है। जमीन को २ से ६ फुट तक खोदकर यह निकाला जाता है। शाक आदि बनाने के पूर्व इसकी चरपराहट को दूर करने के लिए यह रात भर राख और पानी में भिगोकर रखा जाता है।

इसी गेंठी (गृष्टि) के विषय मे वनस्पति अन्वेषक वैद्याचार्य श्री उदयलाल महात्मा (देवगढ) जी ने विशेष विवरण अपने पत्र मे हमे लिखकर भेजा है। उसका साराश इस प्रकार है—राजस्थानी में इसे आरेठा शाक आवलियो कन्द कहते हैं। गुजरात मे पचमहाल तथा राजस्थान मे उदयपुर जिले के अन्तर्गत बडी सादडी तहसील के पास सीतामाता के जगल मे एव केलवाडा तहसील के गावो के जगलो मे तथा खेतो पर लगाया हुआ यह मिलता है उदयपुर मे शाक सब्जी विक्रेताओ के पास भी इसके कन्द मिलते है।

इसकी लता का आकार प्रकार आदि सब वाराहीकन्द की लता के समान ही है। इसके कन्द पुराने होने पर १ सेर से ३-४ सेर वजन तक होते हैं। कन्द काटने पर भीतर पीला निकलता है। इसके कन्द व फल (फल इसकी लता पर पत्रो के पास अरीठे, आंवले या छोटे आलुओ जैसे गोल लोम रहित रग मे भूरे व चिकने लगते हैं) गढवाल, जौनसार, बावर आदि पर्वतीय प्रदेशो मे और राजस्थान के उदयपुर जिले में खूब खाये जाते है। रोगियो को पथ्य में दिये जाते हैं। उदयपुर के ग्रामनिवासियो के घरो मे शाक एव सुन्दरता के लिए इसकी लता लगी हुई मिलती है।

नवम्बर, दिसम्बर मे इसके कन्द नैनीताल, रानीखेत, अलमोडा, उदयपुर (राज०) से प्राप्त कर मार्च मास मे इसको गज भर गहरा गर्त खोदकर गाड देते तथा अच्छा गोबर या पत्तियो का खाद देकर गर्त को भर देते है। गर्त के पास ५० फीट लम्बा बास सुदृढ गाड देते हैं या किसी का सहारा लता को मिल जाय ऐसे स्थान पर इसे गाडते बोते है।

वाराहीकन्द और गृष्टिका कन्द मे अन्तर—

(१) वाराहीकन्द की आकृति सूअर के मस्तक जैसी ऊपर सख्त लोमयुक्त होती है तथा गृष्टिका कन्द वृक्काकार, गोल व चिपटा होता है।

(२) वाराही कन्द काटने पर अन्दर से सफेद, लाल निकलता है किंतु गृष्टिका कन्द अन्दर से पीला।

(३) वाराहीकन्द को उदयपुर जिले के पहाडी प्रदेशो मे कदोलिया कहते हैं। तथा गृष्टिकाकन्द को आरेठा की वेल या आवलियो कन्द कहते है।

(४) वाराहीकन्द और उसका फल स्वाद मे कडवे होने से उसका शाक नही बनता। गृष्टिका कन्द स्वाद में मधुर होने से स्वादिष्ट शाक बनता है।

च सू अ. २७ के श्लोक ११६ मे जिस अम्लीका कन्द का गुणधर्म (अम्लीकाया स्मृत कन्दो ग्रहण्यर्शो हितोलघु. । नात्युष्ण कफवातघ्नो ग्राहीशस्तो मदात्यये ॥) दिया गया है, वही यह गृष्टी या अरेठा शाक है। ऐसी जो लेखक की मान्यता है, वह विचारणीय है। चरक का यह अम्लीका कन्द विवादास्पद है। उक्त स्थान पर टीकाकार चक्रदत्त ने "अम्लीका स्वल्प विटप। प्राय कामरूपादौ भवति" बस इतनी ही गोलमटोल बात कहकर अपना पिण्ड छुडाया है। यह स्वल्प विटप, चाहे कन्द प्रधान ही हो, एक छोटा पौधा ही हो सकता है, न कि गृष्टिका की जैसी विस्तृतलता फिर श्री गगाधर जी टीकाकार उक्त अम्लीका कन्द के विषय मे अति सक्षेप मे अम्लार्द्रकस्य कन्द ऐसा लिखते हैं। यह अम्लार्द्रक क्या है? क्या कोई अम्ल अदरख भी होता है? आगे चरक ने विमान स्थान अ ८ की अम्लस्कन्ध मे ४ प्रकार की अम्लिका (आम्रातकाश्मन्तक चागेरीणा चतुर्विधाना चाम्लिकाना ८) का उल्लेख किया है। उक्त प्रस्तुत प्रसग की गृष्टिका इन चारो मे कोई होना कदापि सभव नही। गृष्ठिका मधुर है तथा ये सब अम्ल रस प्रधान हैं। अस्तु दक्षिण मे तथा मध्यप्रदेश मे जिसे मटारु कहते है, वही यह गृष्टिका या गेंठी है —सम्पादक

नोट न०४—दूधवा—इसके विषय मे स्व बूटी विशेषज्ञ श्री लाला रूपलाल जी वैश्य ने प्रकाशित किया है। कि यह वाराहीकन्द की जाति की जान पडती है। इसके पत्र वाराहीकद के पत्तों से मिलते जुलते है। इसकी लता निकटवर्ती वृक्षो पर फैलती है, किन्तु इसका विस्तार अधिक नही होता। प्राय गर्मी के दिनो मे लता पत्र सूख जाते हैं, किन्तु कन्द जमीन मे सजीव रहता है। वर्षा मे उसमे अकुर निकल लता रूप मे बढता है। नवीन पत्र बडे-बडे पान पत्तो के आकार वाले १ बालिश्त की गोलाई में होते है। ज्यो ज्यो लता और समय बढता जाता है, त्यो-त्यो पत्तो का आकार छोटा होता जाता है। यहा तक कि मघा फाल्गुन मे गिलोय के पत्तो के आकार वाले छोटे छोटे हो जाते हैं। फूल और फल देखने मे नही आते है। भूमि के भीतर इसका कन्द गोल १½ इन्च व्यास का लम्बा होता है, तथा उन पर रोमवत् सोरिया होती हैं। कन्द के ऊपर जहा डडी निकलती है, उसके चारो ओर सघन लम्बी मोटी रोमवत् सोरिया रहती है। तथा वे फीके लाल रग के होते है तथा कन्द के ऊपर डडी की ओर लाल रग झलकता है शेष भाग खाकी या किंचित् बादामी रङ्ग का होता है। ऊपर का छिलका उतारने पर सफेद दीख पडता है।

पहाडी लोग इसे दूधवा के नाम से पुकारते हैं। आयुर्वेद निघटुओ में इसका उल्लेख नही पाया जाता।

यह मिर्जापुर के आसपास विन्ध्याचल की पहाडी पर विशेष पाया है।

इसका प्रधान गुण स्त्रियो के स्तनो में दूध उत्पन्न करने का है। प्राय इसका कन्द औषधि कार्य में आता है।

' यह जगली और बागी दो प्रकार का होता है। दोनो की लम्बी लता एक समान, पत्र—पान (ताम्बूल) जैसे कुछ पीताभ पुष्प-गुच्छो मे आते है। जगली गेंठी के फल बागी या घरो मे पैदा होने वाली गेंठी से छोटे तथा उनमे चिकनापन भी कम होता है। कन्द भी प्राय इसी प्रकार के होते है। किन्तु इन जगली कन्दो मे जडें अधिक होती है। स्वाद मे कडवा होता है। बागी गेंठी मे किंचित् कडवाहट (जगली की अपेक्षा बहुत कम) होती है।

यह एक बहुत ही पौष्टिक खाद्य पदार्थ है। इसको फसल के समय तोडकर सुखाया जा सकता है तथा आटे के रूप मे उसका उपयोग किया जा सकता है। उसकी पैदावार भी भारत मे इतनी ज्यादा होती है कि एक ही लता मे ३-४ किलो से १० किलो तक फल मिल सकते है।

यह पौष्टिक फल चर्मरोग और कुष्ठ मे भी उपयोगी है। यह व्रण, आतशक, अर्श, पेचिस, अतिसार आदि मे भी लाभकर है। मधुमेह के बीमार के लिये यह केवल एक पथ्य ही नही एक महान औषधि भी सिद्ध होगी।

—श्री गोविन्द वल्लभ पत

गीले कन्द की मात्रा ६ से ९ माशा तक तथा सूखे की ३-४ माशा तक है। इसे थोडे गोदुग्ध मे पीसकर १५ दिन या आवश्यकतानुसार २१ दिन तक दोनो समय सेवन कराने से स्तन में दूध खूब उत्पन्न होता है। जिस स्त्री के बालक पैदा होने के बाद काफी दूध उत्पन्न न होता हो उसको सेवन कराना चाहिए कई स्त्रियो पर परीक्षा कर देखा है। इसमें दूध उत्पन्न करने की अव्यर्थ शक्ति है। जिस स्त्री के बच्चा न भी हुआ हो तो भी इसके सेवन कराने से उसके स्तन में दूध उत्पन्न हो जाता है।'

—धन्वन्तरि वर्ष १३ अक ९

नोट न०५—कालिया कन्द (याजकन्द)—इसके विषय में आधुनिक विद्वान वैद्य वर्गो मे तथा आमतौर से सामयिक पत्रो में अत्यधिक चर्चा हो रही है कि इस कन्द के खाने से ८-१० दिन के लिए क्षुधा निवृत्ति होती है तथा शक्ति जैसी की तैसी बनी रहती है। और यह बडी मुश्किल से प्राप्त होता है।

इस कन्द के विषय में परिश्रमपूर्वक गहराई से अनुसधान कर श्री वल्लभराम जी वैद्यराज आयुर्वेद भास्कर ने अभी कुछ दिन हुए जो कुछ अपना निर्णय प्रकाशित किया है उसका साराश इस प्रकार है—

यह कालिया नामक कन्द प्रस्तुत प्रसग के बाराही कन्द [Dioscorea Bulbifera] का ही एक भेद विशेष है।

छोटा उदयपुर (गुजरात) के जगल में से तथा कई अन्य स्थानो से मैंने प्राप्त किया है। वहा के लोग इसे याजकन्द, दुष्कालिया कन्द (दुष्काल के समय विशेष उपयोगी होने से) आदि कहते हैं। यद्यपि दुष्काल के समय वहा के लोग इसे उबाल कर खाते हैं व अपनी क्षुधा निवृत्ति करते हैं तथापि उनके द्वारा ऐसा कही भी सुनने में नही आया कि इसके खाने से कुछ दिनो के लिये क्षुधा नही लगती। अत यह सिद्ध नही होता है कि यह कन्द ८-१० दिन के लिये क्षुधा निवारण करता है, यह एक भ्रमपूर्ण प्रचार मात्र है।

यह कन्द दुर्लभ भी नही है। गुजरात में वुलसर से गोलबाद व थाना तक तथा डाग की पहाडी, सोलवास, छोटा उदयपुर और पालनपुर की पहाडी पर यह अत्यधिक प्रचुरता से पैदा होता है।

इसके गुणधर्म तथा उपयोग त्रिपानी कन्द (Dioscorea Triphylla) के जैसे हैं। इसका वर्णन आगे मण्डा के प्रकरण मे देखिये।

बूटी विशेषज्ञो का मत है कि इस कन्द के दो भेद है। एक भेद तो वह है जिसके खाने से मुख में दाह, चिमचिमाहट, वेदना तथा वमन होता है। अत इसे जल मे खूब उबाल कर खाने में उपयोग किया जाता है। दूसरे भेद वाले कन्द को उबालने की विशेष आवश्यकता नही रहती। शारीरिक दुर्बलता मे पुष्टि के लिये तथा कामोत्तेजनार्थ व उदर की दाह शमनार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है।

वास्तव में प्रस्तुत प्रसग के वाराहीकन्द के कुल की १६० जातिया है जिनमे से ८-१० जातिया भारतवर्ष मे प्राप्त होती हैं। श्वेतालु, शकरकन्द, कण्टालु कमालु, रक्तालु, पिडालु आदि कन्द इसी कुल के हैं।

नोट ६—वाराही कन्द न २ [Tucca Aspera] आगे के प्रकरण में देखिये।

प्रस्तुत प्रसङ्ग के बाराही कन्द के नाम गुण आदि—

नाम—

स०—वाराही कन्द। हिन्दी—वाराही कन्द, कडवा कन्द, जमीकन्द, वनवासी, करिन्दा इत्यादि। म०—डुक्कर कन्द, कडू करादा, मिर्वोली कन्द। गु०—डुक्कर कन्द, वणावेल। बङ्ग०—वोन्दोरेचालु। ले०—डायोस्कोरिया वाल्बिफेरा।

रासायनिक संगठन—

इसके कन्द मे स्टार्च प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है तथा लता मे एक विषैला ग्लुकोसाइड होता है।

प्रयोज्याङ्ग—

कन्द तथा फल।

गुण, धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, रक्त सग्राहक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, वृष्य, तथा अग्निमान्द्य, शूल, रक्तातिसार, प्रवाहिका, व्रण, रक्तविकार, गण्डमाला, प्रमेह,

आमवात, कुष्ठ, उपदश, स्वप्नदोष, दौर्गंध्य आदि मे प्रयुक्त होता है।

नोट—जगलो मे पैदा होने वाला बहुत कड़ुवा होता है। बागी (बागो मे लगाया हुआ) कड़ुवा नही होता।

(१) दुखदाई घाव, फोडे या व्रणो पर इसके शुष्क फलो के चूर्ण को बुरकते है या मलहम बनाकर लगाते है।

(२) उपदश, अर्श, आमातिसार, रक्तातिसार, उदरशूल व आत्र मे—इसके चूर्ण को ३-४ माशा की मात्रा मे, थोडा जीरा चूर्ण व शक्कर मिला दूध के साथ सेवन कराते हैं।

नाड़ी व्रण मे इससे सिद्ध तेल प्रयुक्त करते है।

(३) अर्श पर विशेषत इसकी बागीलता के फलो को भूनकर चूर्ण कर उसमे घी व मिश्री मिलाकर सेवन कराते हैं।

(४) अतिसार पर—फलो को या कन्द को पीसकर गाढे कल्क के रूप मे बनाकर उसमें मक्खन मिलाकर देते हैं।

(५) वीर्य दोष निवारणार्थ—तथा वीर्य वृद्धि के लिए एव रसायन योग—

कन्द का चूर्ण व मिश्री चूर्ण सममाग एकत्र मिश्रण कर ६-६ माशा की मात्रा मे प्रात साय लेकर ऊपर गोदुग्ध धारोष्ण २० तोला तक सेवन से वीर्यदोष दूर होकर पुष्टि होती है।

वीर्य वृद्धि के लिये—कन्द के चूर्ण के साथ सममाग भागरे का चूर्ण एकत्र खरल कर जरा घी मे भून लेवें, फिर उसमे सममाग मिश्री मिलाकर सुरक्षित रख लेवें। ६ माशे मे १ तोला तक चूर्ण को दूध के साथ सेवन से वीर्य वृद्धि होती है। —भा० भै० र०

इसके चूर्ण को यथोचित मात्रानुसार शहद मे मिला कर दूध के साथ सेवन करने और दूध भात तथा घी का आहार करने से वृद्ध पुरुष भी युवा के समान हो जाता है। यह एक रसायन योग है— —ग० नि०

अथवा—कन्द का महीन चूर्ण मिलाकर दूध को पकावें, तथा उसका दही जमाकर घी निकाल लें। यथोचित मात्रा मे इस घी मे शहद मिलाकर सेवन करें। यह प्रयोग रसायन है। इसे १ मास तक सेवन करना चाहिए। —ग० नि०

नोट—वाजीकरणार्थ योग—आगे विशिष्ट योगो मे देखें

(६) तृतीयक ज्वर में—इसकी शाखा या जड का टुकड़ा पचरगी सूत मे बाध कर भुजा अथवा गले में बाधते है। —व० गु०

नोट—मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा।

वाराही कद के स्थान में कटालु (Dioscorea Pentaphylla) का उपयोग किया जाता है। इसका वर्णन भाग २ मे देखिये।

विशिष्ट योग—

(१) वाजीकरण लेह या पाक—वाराहीकद और सिघाडे का महीन चूर्ण ४-४ तोला लेकर घी मे भून ले। फिर उसमे १ सेर १६ तोला दूध तथा आवश्यकतानुसार मिश्री मिला, मद आच पर पकावें। गाढा हो जाने पर उसमे लौंग, पिप्पली, अगर व नागकेशर का चूर्ण १-१ तोला मिलाकर रख ले। पाक करना हो तो उक्त दोनो के चूर्ण को दूध मे पकाने पर खोया जैसा होजाने पर उसमे उक्त ४ द्रव्यों के चूर्ण को अच्छी तरह मिलाकर १ सेर मिश्री की चाशनी में मिलाकर पाक जमा देवें।

१ तोला की मात्रा मे प्रात सेवन करने से शीघ्र कामोत्तेजना होती है। नपुन्सकता दूर होती है।

नोट—उत्तमोत्तम पाको के प्रयोग हमारे 'वृहत्पाक सग्रह' मे देखें।

वाराहीकंद नं. २ (Tacca Aspera)

सूरन कुल (Taccaceae) की इस लता के पत्र पान के जैसे ८-१६ इञ्च लम्बे, ४-८ इञ्च चौडे अग्रभाग नुकीला पुष्प अवनत, पीताभ, बैगनी रग के, फल—१½ इञ्च के, लम्बाकृति, रोमश। कन्द—लम्बगोल, काले रग



बाराही कन्द
TACCA ASPERA RoxB

के, शूकर के रोम जैसे रोमो से आच्छादित, स्वाद में विशेषत कच्ची दशा मे बहुत कडवे। भीतर से हलके पीले रग के होते हैं। वर्षा के अन्त मे शरद् काल मे पुष्प तथा बाद मे फल आते हैं।

यह बगाल, कोकण, मध्यभारत एव उष्ण भागो के पर्वतो पर अधिक पैदा होता है।

नाम–

स — वाराहीकन्द। हि — वाराहीकन्द, भेवर कन्द, मिरवोलीकद। म — साकराकद, डुक्करकन्द, देवकाडो।

गु — वणावेल, एकलकन्द। व. — वाराहीकन्द। ले — टेक्का एस्पेरा, टेक्का ईन्टेग्रिफोलिया (Tacca Integrifolia) टेक्का लेविस (Tacca lavis)।

रासायनिक संगठन–

इस कन्द मे स्टार्च अधिक होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

कटु तिक्त, उष्णवीर्य, वल्य, पित्तकारक, रसायन, कामोद्दीपक, वीर्य, क्षुधा व कान्तिवर्धक, स्वर शुद्धिकारक तथा कुष्ठ, प्रमेह, कफवात, कृमि, अर्श, गुल्म, शोथ, मूत्र कृच्छ्रादि मे उपयोगी है।

जीर्ण चर्मरोगो मे इसका शर्बत देते हैं। इस कन्द का स्टार्च हलका व पौष्टिक है। जीर्ण आमातिसार मे इसकी पेया बनाकर दी जाती है।

मात्रा — चूर्ण ३-६ माशा तक।

बारीक भवरी — देखो — मिरचाई। बालगू — देखो — तुलसी बालागा।
बाल छड — देखो — जटामासी। बालवच — देखो — वच

बालरक्षा (Gnaphalium luteoalbum)

भृङ्गराज कुल [Compositae] के इस छोटे क्षुप के पत्र २ ५–३ ६ सें० मी० लम्बे तथा १ ३–३ सें० मी० चौडे वृन्त रहित होते हैं। पुष्प — छोटे अग्रभाग पर पीले रग के होते हैं।

ये क्षुप भारत के उष्ण प्रदेशो में विशेष पैदा होते हैं।

नाम–

हि० — बालरक्षा। अ० — जेर्सी कुडवीड (Jersey cudweed)। ले — नेफेलियम ल्युटोएलबम।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके पत्र सकोचक, व्रणपूरक हैं, वायु शुद्धि के लिये पत्तो को घर में जलाते हैं, व्रणोपर पत्र चूर्ण बुरकते हैं।

बाबसन — देखो — बबसा। बालुज — देखें — बेदसादा।

वालूका साग (Gisekia Pharnaceoides)

भारस कुल (Ficoideae) के इस बहुशाखी क्षुप के पत्र मांसल, अखंड, अण्डाकार लगभग १ इञ्च लम्बे होते है। बीज काले रंग के गोल, चिपटे मे होते है।

इसके क्षुप पंजाब, सिन्धु, दक्षिण महाराष्ट्र व सीलोन मे विशेष पाये जाते है।

नाम–

सं०—वालुका, कुष्ठ गन्धी, एलवालुक इत्यादि। हिन्दी—वालुका साग। म०—वालूची भाजी। बं०—वालुक। ले०—जिसेकिया फरनेसोआइडिस।

रासायनिक संगठन–

इसके बीजो में टेनिन सदृश आल्फाजिसेकिया व बेटा जिसेकिया (Alpha Gisekia and beta Gisekia) नामक पदार्थ पाए जाते है।

गुण, धर्म व प्रयोग––

कटु, तिक्त, दीपन, सुगन्धित, कृमिनाशक, मृदुविरेचक, व्रण रोपक तथा कंडू, तृषा आमातिसार, हृत्पीडा, कुष्ठ, शोथ, मूत्रविकार आदि मे उपयोगी है।

इसके पञ्चाग के स्वरस २½ तोला में समभाग जल मिलाकर प्रात खाली पेट पिलाते हैं। यह प्रयोग बीचबीच में छोड कर ४ दिन तक किया जाता है। इससे उदर, आन्त्र के चिपटे कृमि नष्ट होते है।

बावची (Psorala Corylifolia)

गुडूच्यादि वर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस १ ६ फुट ऊंचे वर्षायु क्षुप का काण्ड व शाखायें झुर्रीदार किंचित श्वेत, रोमश, गाठो से आवृत, काण्ड सरल, शाखाऐं दृढ, पत्र-साधारण, लम्बगोल, एकांतर, १-३ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौडे, कडे किनारे पर कंगूरेदार, दन्तुर, प्राय चिकने या दोनो ओर श्वेतरोमावृत्त, काले रंग के कुछ छींटो से युक्त, पत्रवृन्त–लगभग ½-१ इञ्च लम्बा, (शाखा, पत्र प्राय ग्रन्थियो के चिन्ह युक्त) पुष्प—पत्र कोणो से निकले हुये १-३ इञ्च लम्बे पुष्प दण्डो पर बहुत छोटे-छोटे नीलाभ बैंगनी पखुडी वाले १ ३० पुष्प गुच्छो मे आते है। फल—एक बीजयुक्त फली के रूप मे चिकने, पुष्प गुच्छ से ही निकलते हैं। कच्ची दशा में हरे रंग की ये फलिया पकने पर काली हो जाती है। बीज—मसूर के दाने जैसे कडे खुरखुरे किन्तु कुछ बडे, काले या गहरे भूरे, गोल, किंचित लम्बे, चपटे, कडे, खुरदरे, किंतु ऊपरी छिलका मुलायम गले होते है। बीज का फलावरण बीज से सदैव चिपका रहता है। बीज का भीतरी भाग श्वेत, स्वाद मे तिक्त, चरपरा तथा गंध, बेल के फल जैसी प्रिय होती है। इन बीजो को ही बावची कहते हैं।

पुष्प शीतकाल मे प्राय अगस्त से दिसम्बर तक तथा पश्चात शीत के अन्त मे फल आते हैं। उष्ण काल मे पौधे शुष्क हो जाते है। किन्तु सावधानी से धूप से रक्षा एवं जल के सिंचन आदि करते रहने से कई वर्ष तक ये पुष्प व फल देते रहते है।

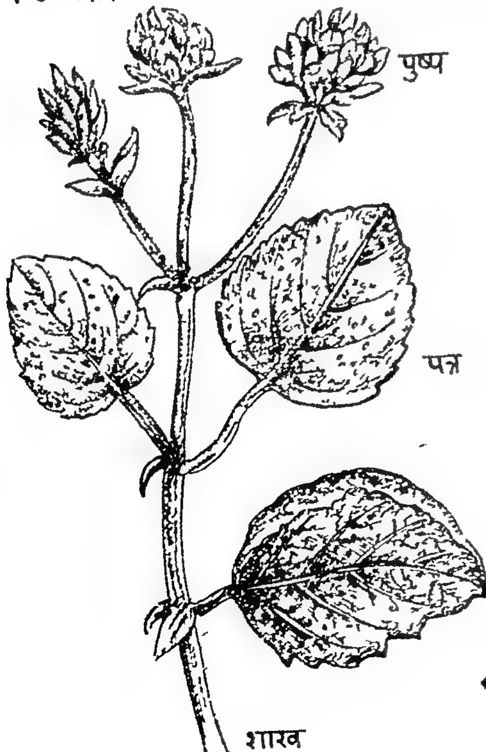
इसके पौधे प्राय समस्त भारत के जंगलो, झाडियो, खादरो एव ककरीली भूमि मे तथा खेतो की बाड पर, बङ्गाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, बम्बई आदि मे और सीलोन में भी विशेष पैदा होते हैं। अमेरिका मे भी इसकी कई उपजातिया पैदा होती है जिनके गुण धर्म प्राय. सबके एक समान है।

नोट नम्बर १—श्वेत बावची का उल्लेख भी कही कही पाया जाता है। सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के मेधायुष्कामीय रसायन शीर्षक अ० २८ मे 'श्वेतावल्गुज' नाम आया है। 'अवल्गुज' कहते है वाकुची (बावची) को। टीकाकार ने श्वेत बावची लिखा है। यह श्वेत बावची क्या है?

धन्वन्तरि के वर्ष १६ के अनुभवांक मे हरद्वार के

श्री प० शिवचन्द्र की राजवैद्य ने प्रकाशित किया है कि "सफेद बावची को मुष्क दाना भी कहते है। मुष्कदाने का वर्णन हमने वनौषधि विशेषाक भाग २ मे कस्तूरी दाना के प्रकरण मे दिया है।) यह मरुस्थल, जैसलमेर के ग्रामो मे प्राय आश्विन, कार्तिक मे प्राप्त होती है।" (सम्भवत यह कस्तूरीदाना या सर्व प्रसिद्ध मुष्कदाने [Hibiscus Abemoschus से कोई भिन्न बूटी है) इस श्वेत बावची के स्वानुभूत प्रयोगो मे राजवैद्य जी लिखते हे कि इसे १ सेर लेकर ४ दिन तक गोमूत्र मे भिगो ऊपर का छिलका दूर कर चूर्ण करलें। १-१ तोला प्रात सायं छोटी मक्खी के शहद मे मिलाकर चटावें तथा ऊपर से बावले के पत्र व नीम पत्र का ४ तोला स्वरस पिलाते रहे। एक मास मे श्वेत कुष्ठ, स्त्री रोग नष्ट होता है, यह ध्यान रहे कि रोगी ५०-६० वर्ष से ऊपर की आयु का न हो यह हमारा स्वानुभूत प्रयोग है।

बावची
PSORALEA CORYLIFOLIA, LINN



सुश्रुत ने उक्त रासायनिक प्रयोग मे श्वेत और काली दोनो बावची का उल्लेख किया है। वे लिखते है कि— बुद्धि व आयु की कामना वाला व्यक्ति, धूप मे शुष्क किये गये श्वेत बावची के बीजो का महीन चूर्ण कर उसमे गुड मिला घी के घडे मे ७ दिन तक धान के ढेर मे रखे। फिर वमन विरेचन के द्वारा शुद्ध शरीर होकर शक्ति के अनुसार सूर्योदय से पूर्व औषध पिंड (४ तोला तक) सेवन कर ऊपर से उष्ण जल पीवे। कुटि प्रवेश विधि से इसका सेवन करें। औषधि का पाचन होने पर—अपराह्न मे, शीतल जल से स्नान कर शाली व साठी चावलो का मिश्रित दूध के साथ भोजन करें। इस प्रकार ६ मास के सेवन से स्मृतिशाली, मेधावी, निरोगी एवं दीर्घायु जीवन की प्राप्ति होती है।

फिर इसी प्रसग मे आगे लिखते है कि कुष्ठी, पाडु रोगी या उदर रोगी को काली (कृष्णया) बावची के बीजो का चूरा गोमूत्र मे घोलकर आधे पल (२ तोला) की मात्रा मे उष काल में पिलावे। दो पहर के बाद लवणरहित आवले के यूष के साथ घी मिला हुआ भात रोगी भोजन करे। इस प्रकार १ मास के सेवन से रोगी निरोग, स्मृतिशाली एव दीर्घायु होता है।

नोट न० २—बावची के लिये जो 'सोमराजी' पर्यायवाची नाम है वह उपयुक्त है। सोमराजी शब्द से कालीजीरी लेना यह अर्थ का अनर्थ करना है। यद्यपि काली जीरी रक्तशोधक, त्वग्दोषहर, कुष्ठघ्न भी है, तथापि वह सोमराजी या बावची से एकदम भिन्न है। इस विषय मे हमने प्रयोगानुसार, कालीजीरी के प्रकरण मे कुछ विस्तार से लिखा है। भाग २ मे कालीजीरी के प्रकरण मे निम्नाकित टिप्पणी देखिये।

नोट—न ३—चरक के तिक्तस्कन्ध मे इसका उल्लेख है तथा अर्श आदि अनेक रोगो मे इसका प्रयोग है। सुश्रुत के कटुवर्ग मे तथा अनेक रोगो मे इसकी योजना है, इसके अतिरिक्त मेधायुष्कामीय अध्याय २८ मे उक्त नोट न० १ मे कथित इसका रसायन कल्प भी दिया है।

नाम--

स०—बाकुची (वायु शमन करने वाली), कृष्णफला,

पूतिफली (फल से दुर्गन्ध आने से), कुष्ठघ्नी, सोमराजी, अवल्गुज इ० । हि०—बावची, बाकुची । म०—बावची । गु०—बावची । ब—हाकुच । अ —एस्क्युलेंट फ्लाकोर्टिया (Esculant flacurtia) पर्पल फ्लीबेन (Purple flea bane), मलाया टी (Malaya tea) । ले०—सोरेलिया कोरिलीफोलिया ।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजों में—एक पीताभ उड़नशील तैल १५-२० % तक, एक स्थिर तैल, एवं सोरलेन (Psoralen) तथा आइसोसोरलेन (Iso-psoralen) नामक दो रवेदार क्षार तत्व ७½% (इसका कमिघ्न एवं त्वग्दोषहर गुण इन्हीं सार तत्वों के मिश्रण से है) इसे वर्मोनिन (Vermonine) भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त अलब्युमिन, शर्करा, राल, मैंगनीज आदि भी पाये जाते हैं। इसका उड़नशील तेल सर्वाधिक क्रियाशील है।

प्रयोज्याग—बीज, बीज तैल व पत्र ।

शोधन—बीजों को गोमूत्र में या अदरख के रस में ७ दिन तक भिगोकर शुष्क कर लेने से शुद्धि हो जाती है। विशेषत उदर सेवनार्थ यह उपयोगी है। बाह्य प्रयोगार्थ शोधन की प्राय आवश्यकता नहीं रहती।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य कफ वात शामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, सौम्य उत्तेजक, यकृदुत्तेजक, विष्टंभ नाशक, वाजीकरण, कुष्ठघ्न, केश्य, स्वेदल, व्रणशोधन रोपण, तथा नाडी दौर्बल्य, अग्निमांद्य, रक्तपित्त, शोथ, आमदोष, कृमि विशेषत गण्डूपद कृमि, अर्श, हृदय शैथिल्य, कास, श्वास, प्रमेह, नपुन्सकता, श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग, जीर्ण ज्वर, पाडु आदि में प्रयुक्त होता है।

नव्य मतानुसार—इसका कीटाणुनाशक गुण श्वेत कुष्ठ एव अन्य त्वचा के विकारों में अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। श्वेत कुष्ठ में इसका अन्तर्बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसके तैल या क्वाथ के उदर सेवन से इसका स्निग्धांश जो रक्त में प्रविष्ट होता है, वह तदन्तर्गत दूषित मल, विष एवं कीटाणु [illegible] (Haemoglobin) [illegible] [illegible] में [illegible], [illegible] स्थित कीटाणु [illegible] प्रविष्ट होता है, [illegible] किया करता है, जिससे [illegible] की भी [illegible] व वृद्धि होती है। [illegible] से त्वचा रोग [illegible] आदि पर [illegible] चाहिये। [illegible] की अपेक्षा [illegible] विशेष लाभ होता है।

यूनानी मत से—यह [illegible] वायु को बिखेरती है। [illegible], [illegible] जनक, आमाशय के [illegible], [illegible] कुष्ठ, बवासीर, और [illegible] के विकारों को दूर करती है। इन रोगों में इसका खाना व लगाना दोनों मुफीद है। यह कफज्वर नाशक, कृमि रोग को दूर करने वाली, मूत्रमार्ग के घाव का शोधन करने वाली है। यदि स्त्री मासिक धर्म से शुद्ध होकर इसके बीजों को तेल में पीसकर योनि में रख लेवें तो वह बांझ हो जाती है। इसके बीज गाढ़े कफ को पतला करते हैं। [illegible] को [illegible] व मसूढ़ों को मजबूत करते हैं।

(१) श्वेत कुष्ठ तथा अन्य कुष्ठ विकारों पर—प्रथम दिन इसके १ दाने से प्रारम्भ कर प्रतिदिन १-१ दाना बढ़ाते हुए २१ तक बढ़ावें। फिर १-१ दाना घटावें। इस प्रकार प्रतिदिन प्रात ठडे जल से दाने को निगल जाया करें। एक मास मे १ आवृत्ति पूरी होती है। आवश्यकतानुसार रोग शमन होने तक २-४ आवृत्ति करें। साथ साथ केवल बावची तैल अथवा बावची और तुवरक (चालमोगरे) का तेल मिलाकर श्वेतकुष्ठ पर लगाते रहे। —श्री प यादव जी त्रिकम जी आचार्य

रोगी को अम्ल, लवण तथा चरपरे पदार्थों का त्याग करना चाहिये। चावल, जौ या गेहू की रोटी को बिना खटाई, नमक एव गरममसाला डाले मूग के यूष के साथ खाना चाहिये व मीठे फलों को खावें। अथवा—

इसके बीजो के साथ चौथाई भाग तबकिया हरताल मिला गोमूत्र मे पीसकर श्वेत कुष्ठ पर लेप करें (या विशिष्ट योगो मे दिये हुये श्वित्रारि लेप का प्रयोग करें) तथा इसके बीजो के साथ आवले व खैर छाल समभाग जौ कुट कर २-२ तोला चूर्ण का प्रात साय ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें । १-२ मास में लाभ हो जाता है ।

अथवा—इसके बीजों को जल के साथ पीस कर मटकी के भीतर लेप कर उसमे दूध भर कर दही जमा लेवें । फिर मथकर मक्खन निकाल कर घृत बनालें । इस घृत का सेवन शहद के साथ प्रतिदिन प्रात करते रहने से २-३ मास मे लाभ हो जाता है ।

(आगे विशिष्टयोगो मे श्वित्रारि योग या वाकुच्यादि लोह का प्रयोग देखें) ।

अथवा—बीजो का चूर्ण १½ रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा है) त्रिफला के क्वाथ के साथ, मधु मिलाकर प्रातः साय सेवन करें ।

लगाने के लिए मलहम—बीजो को पत्थर के खरल मे घोटकर किया चूर्ण ½ सेर लेकर मिट्टी के पात्र मे ५ सेर जल के साथ पकावें । चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर पुन उसी पात्र मे छाने हुए जल में उत्तम मोम १० तोला मिला पकावें । पानी के जल जाने पर मोम मलहम सा हो जावेगा । इसे चीनी या काच के पात्र मे रखे उसे नित्य श्वेत दागो पर लगावें । यदि लगाने से छाले पड जावें तो लगाना बन्द करें । आराम होने पर फिर लगावें । यदि शरीर मे दाग अधिक हो तो धीरे धीरे जब पहले वाले ठीक हो जावें तब दूसरो में लगावें । अवश्य लाभ होगा । साथ ही निम्न कुष्ठहरासव का भी सेवन करावें—

दारुहल्दी, नीम छाल, गोरखमुण्डी के फूल इनका जोकुट चूर्ण व गुड समभाग लेकर संधान पात्र में ६ गुना जल मिला, मुख मुद्रा कर पृथ्वी में गाड कर ऊपर घोडे की लीद भर देवें । १५ दिन या ३० दिन बाद, निकाल, छानकर बोतल में भर लें । प्रात साय ६-६ माशा पिलावें ।

पथ्य मे खटाई, प्याज, लहसुन, मास, मदिरा, लाल मिर्च, तैल व मैथुन का निषेध है ।

—स्व. प० भागीरथ स्वामी रसायन शास्त्री ।

मलहम न० २—इसके ५ तोला बीजो के साथ समभाग सत्यानाशी (स्वर्ण क्षीरी) के ताजे पुष्प और नीम की कोपल लेकर उसमें नीबू के बीज १½ तोला, हाथीदात का बुरादा २½ तोला मिला, सबको एकत्र त्रिफला के क्वाथ मे खूब खरल करे । फिर मिट्टी के पात्र में मन्द आग पर पकावे । लेहीसी बन जाने पर उसमें लोह भस्म १½ तोला तथा आवश्यकतानुसार ग्लिसरीन मिला मलहम बनालें । काच के पात्र में रखें । रोज रात्रि के समय इसे लगाकर सोवें । प्रात शौचादि से निवृत्त होकर निम्न तैल की मालिश करें—

आधा सेर तिल तैल में रतन जोत व लाक्षा २० २० तोले का क्वाथ मिला मन्द आग पर पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर उसमें बावची बीजो का चूर्ण ५ तोला मिला नीचे उतार कर ठण्डा होने पर मालिश करें तथा धूप में २०-२५ मिनट बैठकर उत्तम किस्म का नीम का साबुन या कार्बोलिक साबुन लगा स्नान करें । मुलायम तौलिये से पोंछे रगडें नही । इस प्रकार कुछ दिनो के प्रयोग से सफेद दाग मिट जावेगे ।

पथ्य में—दूध में केशर मिलाकर पिलावे, या चना गेहू आदि की रोटी एव पत्तियो का शाक खिलावे ।

—श्री प्राणाचार्य सच्चिदानन्द दाधीच

अथवा—(सर्व प्रकार के कुष्ठों पर) बावची व हल्दी २-२ भाग, घर का धुआ १ भाग, तीनो को गोमूत्र में ७२ घटे खरल करें । मलहम जैसा हो जाने पर काच के पात्र मे रखे । इसे दिन में ३-४ बार लगावे । तथा इसीमें से प्रात ६ माशा की मात्रा को गोमूत्र व चिरायते के क्वाथ २-२ तोला में मिला पिलावे । भोजन के बाद बृहन्मजिष्ठादि क्वाथ २ तोला तक, समभाग जल मिला ४० दिन तक, पिलावे । पथ्य मे लालमिर्च, मद्य, मास, तैल, गुड, दूध, चावल, उर्द की दाल, चाय न लेवे ।

—श्री प० जगदीशप्रसाद मिश्र शास्त्री

अथवा—बावची को १२ दिन तक गोमूत्र में प्रतिदिन

गोमूत्र बदलते हुए रखें। फिर निकाल, धोकर, छिलका उतार कर शुष्क चूर्ण कर उसमें शुद्ध गंधक अर्ध भाग मिला कर रखें दिन में २-३ बार, ३ माशा तक की मात्रा में गर्म जल के साथ सेवन करें। श्वेत कुष्ठ दूर होता है।

अथवा—बावची चूर्ण और शुद्ध गंधक समभाग एकत्र खरल कर रखें। इसमें से १ तोला चूर्ण को ५ तोला जल में प्रातः भिगो कर शाम को मसल, छानकर पिलावें। छानने पर जो मिट्टी बचेगी, उसीके बराबर अनार पुष्प मिला पानी या गोमूत्र में पीसकर लेप करें। पथ्यपूर्वक इस प्रयोग से श्वेत कुष्ठ में अवश्य लाभ होता है—

—श्री रामशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य

अथवा—बावची और काबुली अंजीर समभाग चूर्ण कर प्रातः सायं ६-६ माशा गोमूत्र २ तोलाके साथ पीवें।

पथ्य में—दूध, दही न देवें। उत्तम घृत मिली हुई चने की रोटी खावें।

अथवा—हाथी की लीद की भस्म १० से २४ तोला लेकर उसको हाथी मूत्र में ही (मूत्र भस्म से ६ गुना हो) मिला कम से कम ७ बार छान कर उसी मूत्र में मूत्र का दशमांश बावची चूर्ण मिला पकावें। गाढ़ा हो जाने पर उतार कर गुटिका बना लें। उसे घिसकर श्वित्र पर लेप करते रहने से वह स्थान शरीर के समान वर्ण वाला हो जाता है। —भै० र०।

अथवा—शशिलेखावटी–शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक और अभ्रक भस्म समभाग को बावची बीजों के क्वाथ से एक दिन खरलकर चने जैसी गोलियां बना लें। मात्रा १ से ४ गोली तक शहद या बावची तैल के साथ कुछ दिन सेवन से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है। पथ्य में चने की रोटी घृत के साथ बिना नमक और कुछ नहीं खावें।

अथवा—बावची के साथ समभाग श्वेत मूसली और चित्रक चूर्ण कर, पथ्यपूर्वक शहद के साथ सेवन से सर्व कुष्ठों का नाश होता है। क्षुधा व बल की वृद्धि होती है।

अथवा—बावची, लाल चन्दन का बुरादा और भांगरा पंचांग छायाशुष्क किया हुआ समभाग का महीन चूर्णकर रखें। प्रातः सायं ४-४ मा० मधु से १ वर्ष तक लेवें। श्वेत कुष्ठ में लाभ होता है। —गुणयोग रत्नावली।

यूनानी प्रयोग श्वेत कुष्ठ पर—

इसके बीजों को हल्दी व मूली के बीजों के साथ पीस कर, तलवार की धार से जमाये हुए गाय के दही के तोड़ में मिलाकर लगाने से बड़ा फायदा होता है।

इसके बीज १० तोला, गेरू व आमलासार गंधक २०-२० तोला सबको पानी जल के साथ ८ प्रहर तक खरल कर गोलियां बना दिन में धूप तथा रात्रि में चांदनी में सुखाकर रख लें। इसे पानी में पीस या घिसकर श्वेत दागों पर लगावें। बहुत लाभ होता है।

नव्य मतानुसार प्रयोग—

१ पौंड बावची के बीजों को कूटकर महीन चूर्णकर चूर्ण को ६० नं० की चलनी से छानकर जैतून के तैल में या मूंगफली के तेल में भिगोकर रात्रि के समय रख देवें प्रातः तैल निष्कासन यन्त्र द्वारा तैल निकाल लेवें। यह तैल श्वित्र नाशार्थ विशेष गुणकारी है। इसके इस गुण से प्रभावित होकर आजकल के पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता डाक्टर भी इसका बाह्य और आभ्यन्तरीय प्रयोग करने लगे हैं। तथा मुक्तकण्ठ से इसके श्वेतकुष्ठ नाशक गुण की प्रशंसा करते हैं।

उक्त प्रकार से निष्कासन यन्त्र (टिंचर प्रेस) में डाल कर प्रपीडन द्वारा या पेर कर (Expression) तैल को निकालकर ऐकमात्र (शीशी) के मुह पर रुई का फोया रखकर उस पर उस तैल में पुनः इतना जैतून या मूंगफली का तैल मिलावें कि तैयार तैल की मात्रा २ पौंड हो जाय। इसे अच्छी तरह बन्द पात्र में ठंडी जगह में रखना चाहिए।

यह तैल लघु, कटु, तिक्त, सर, कटु विपाक एवं उष्ण वीर्य है। यह कफवातघ्न, कुष्ठघ्न, व्रण शोधक रोपक, रंजन, त्वचा के विकार–श्वेतकुष्ठ, छाजन, गज आदि का निवारण करता हुआ शरीर का रक्षक है। यह श्वित्रकुष्ठ के सब भेदों पर लाभकारी है। इसी तैल के प्रभाव से एवटन नामक वैज्ञानिक विद्वान ने श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा

में सफलता प्राप्त की। तथा अन्य वैज्ञानिको को बावची के विशेष गुणो का दिग्दर्शन कराया। जिन गुणो का आयुर्वेदीय पुरातन सहिता ग्रन्थो मे वर्णन बहुत प्राचीन काल से पाया जाता है। यद्यपि आयुर्वेद मे इस के तेल की भिन्न भिन्न विधिया वर्णित है तथा उनके गुणो मे भिन्नता रहते हुए भी वे सब सफल हे तथापि उक्त पाश्चात्य विधि से निकाले हुए तेल के विशेषत वाह्य प्रयोग (लेपादि) फिरग रहित श्वेत कुष्ठ मे अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

इस तेल को कैप्सूल मे भरकर उदर सेवनार्थ भी प्रयोग अवश्य करना चाहिए। फिरगोपदश जन्य श्वेतकुष्ठ मे इससे विशेष सफलता नही मिलती। ऐसी अवस्था मे "रस माणिक्य' (माणिक्य रस–रस चडाशु या भै. र. का) के साथ केवल बावची तेल (उक्त मिश्रण तेल नही) का आभ्यन्तरीय प्रयोग ही ठीक कार्य करता है तथा लगाने के लिये भी केवल बावची तेल का प्रयोग वाह्य त्वचा पर अवश्य करते रहना चाहिये। ऐसा करने से शीघ्र लाभ होता है।

ध्यान रहे किसी-किसी को केवल बावची तेल के लगाने से छाले होने लगते है। किन्तु उक्त बावची तेल मिश्रण के प्रयोग से छालो की सभावना बिलकुल कम रहता है क्योकि जैतून (या मूङ्गफली) का तेल स्नेहन कर्म त्वचा मे करता हुआ छालो की उत्पत्ति नही होने देता। इस मिश्रित तेल के प्रयोग द्वारा त्वचा गत रुजेट कोषाणु (Rouget cells) और मैलेनोब्लाष्टिक रगोत्पादक कोषाणुओ (melanoblastic cells) पर विशेष प्रभाव होता है। बावची के उत्तेजक गुण विशिष्ट होने के कारण रगोत्पादक कोषाणु अधिक क्रियाशील होते है। इस प्रकार यह तेल श्वेतकुष्ठ पर लाभ पहुचाता है। इसके बाह्य एव आभ्यन्तरीय प्रयोगो से धमनियो मे रक्त की मात्रा बढ जाती है, केशिकायें फैल जाती हैं तथा रगोत्पादक कोष, इसकी उत्तेजना से उत्तेजित एव क्रियाशील होकर मेलेनिन का निर्माण कर, श्वेत दोष के कारण त्वचा मे जो सफेदी होती है उसे दूर करने में समर्थ हो जाते हे।

उक्त वाकुची तेल मिश्रण या तैलीय राल सदृश सत्व (oleo-resinous extract) को चालमोगरा के तेल के साथ मिलाकर लगाते है, तथा आन्तरिक प्रयोग भी करते हैं। जिससे श्वित्र, सिध्म एव किटिभ क्षुद्रकुष्ठ (सोरियासिस) जैसे चर्म विकारो मे लाभ होता है। लगाने के लिये इसके साथ दो भाग चालमोगरा तेल तथा दो भाग लैनोलिन मिलाकर मलहम रूप मे दिन मे १ या २ बार दागो पर मलते है। लगभग ३ महिने में लाभ होता हे। श्वित्र के साथ साथ यदि अन्य आंत्रिक विकार आमातिसार आदि हो तो उनकी भी चिकित्सा साथ साथ करनी चाहिए।

सर्व प्रकार के कुष्ठो पर—इसके बीज के साथ श्वेत मूसली और चित्रक समभाग एकत्र चूर्ण कर मधु के साथ पथ्यपूर्वक सेवन से सर्व प्रकार के कुष्ठो में लाभ होता है। क्षुधा व बल की वृद्धि होती है।

वाह्य प्रयोगार्थ बावची, कलौंजी, गूगल व दारुहल्दी ५-५ तोला और गन्धक ढाई तोला सबको पीसकर दो सेर तक नारियल के तेल मे मिलाकर ७ दिन धूप मे रखने के पश्चात् छानकर रख ले। इसे प्रात साय लगावें। इससे त्वचा के विभिन्न विकारो पर लाभ होता है।

अथवा रागी को अच्छी तरह स्वेद आजाय तब तक सूर्य के ताप का स्वेदन करायें, केवल दूध पर रह कर उसे ४ माशा बावची के बीजो को निवाये जल से देते रहे तो रोगी २१ दिनो मे कुष्ठ से मुक्त हो जाता हे। यह प्रयोग जीर्ण श्वेत कुष्ठ एव अन्य सर्व प्रकार के कुष्ठो पर लाभ कारक है। अथवा—

बावची और तिल एकत्र मिला ४ से ६ माशा तक प्रात साय शीतल जल के साथ १ वर्ष पर्यन्त सेवन करते रहने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।—गा ओ. र

गलित कुष्ठ पर—इसके बीजो को ४ माशा तक तथा सोठ १ माशा दोनो को जल के साथ पीस छानकर प्रात साय पिलावें। विशिष्ट योगो मे–सोमराजी योग देखें।

गजचर्म कुष्ठ पर—इसके बीजो के महीन चूर्ण को मक्खन के साथ मिलाकर लगावे।

(२) खाज, खुजली, फुंसी आदि पर—शरीर पर तेल मर्दन के बाद बावची को तक्र में पीसकर मलने से खुजली, पामा, अत्यन्त कडूयुक्त चिकना, काला, गोल, ठोस स्रावयुक्त किटिभ नामक क्षुद्र कुष्ठ आदि नष्ट होते हैं। —ग नि

अथवा—इसके बीज, कुटकी, हरताल, गंधक, तूतिया (नीलाथोथा) समभाग, जल में पीस सरसों का तैल मिला उबटन करने से खाज, खुजली, दाद आदि में लाभ होता है।

दाद पर—इसके बीजों को पंवार (चक्रमर्द) के बीजों के साथ तक्र में पीसकर लेप करते रहने से दाद तथा खुजली नष्ट होती है।

बावची बीज १ तोला, नीम पत्र ४ तोला तथा काली मिर्च १ माशा इनको चौगुने जल में पीसकर उसमें २० तोला सरसों का तैल मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रखें। इसे प्रात मालिश करने से समस्त शरीर की खुजली दूर होती है।

अथवा—बावची चूर्ण ४ तोला को १० तोला गोमूत्र में पीसकर या मिलाकर सर्वाङ्ग पर उबटन करें। फिर १ घंटे बाद नीम पत्र के जल से (नीम पत्र को मिलाकर पकाये हुए जल से) स्नान करें (शरीर पर कोई साबुन न लगावें)। साबुन के स्थान में सीकाकाई का चूर्ण लगाकर स्नान करें। सर्वाङ्ग की खुजली दूर होती है।

अथवा—बावची और गंधक १-१ तोला दोनों को पीसकर उसमें शुद्ध सरसों तैल १० तोला तथा पुनर्नवा की जड का रस १ तोला मिला उबटन की तरह खाज पर लगावें। लगभग २-३ घंटे धूप में बैठने के बाद अच्छी तरह नीम का साबुन लगाकर मलकर स्नान करें। प्राय एक ही बार के प्रयोग से खाज, खुजली में लाभ होता है।

अथवा—बावची के तैल और चन्दन के तेल १-१ भाग में चालमोगरे का तैल २ भाग मिला कर लगाने से खाज, पामा (छाजन) तथा विचर्चिका में लाभ होता है।

(३) उदर कृमि, उदर शूल, ज्वर, प्रमेहपिटिका, पलित रोग और शीत पित्त पर—

बावची का तैल प्रात साय ½ से १ ड्राम तक कैपसूल में भर कर या शक्कर के साथ देवें, दूसरे दिन जुलाब देने पर सब गोल कृमि मरे हुए बाहर निकल जाते हैं।

बीजों का मोटा चूर्ण २ तोला को २० तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ कर छानकर प्रात शहद मिला कर पिलावें। कृमि नष्ट होते हैं।

उदर शूल पर—इसके चूर्ण को अजवायन के अर्क के साथ देवें। अथवा इसके चूर्ण के साथ त्रिकटु चूर्ण मिला उष्णोदक से पिलावें। —व० गु०

ज्वर पर—इसका चूर्ण १ से २ माशा तक चिरायते के २ तोला अर्क के साथ दिन में ३ बार पिलावें।

प्रमेह पिटिका पर—इसके चूर्ण को गूलर के दूध में मिलाकर लेप करना हितकर है —यो० र०।

पलित (अकाल में केश श्वेत होना) पर—प्रतिदिन रात्रि के समय बीजों के महीन चूर्ण का मोटा शुष्क लेप बालों पर करें। प्रात धो डाला करें।

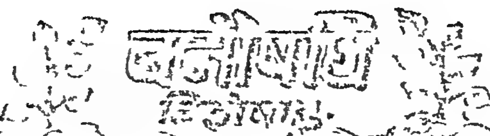
शीत पित्त पर—बीजों का चूर्ण, शुद्ध गन्धक और गेरू समभाग एकत्र चूर्ण खरल कर २ माशा तक जल के साथ दिन में २-३ बार देवें। —संकलित।

बद गांठ पर—इसके बीजों को जल में पीस, पुल्टिस बना कर बांधने से गांठ शीघ्र ही फट जाती है।

(४) प्लीहोदर, अर्श, पांडु, वातविकार तथा कास पर—प्लीहोदर पर बावची १० तोला को गोमूत्र में १४ दिनों तक रोज ३ घंटे तक खरल करें। रोज ताजा गोमूत्र खरल करते समय लेवें। १४ दिन के बाद छाया शुष्क कर बिजौरा नीबू के रस की १ भावना देकर उसमें नाराचरस ३ तोला मिला अच्छी तरह खरल कर शीशी में भर रखें।

उक्त नाराच रस में ताम्रभस्म, पारद, गंधक व जमालगोटा १-१ भाग, त्रिफला व त्रिकटु ३-३ भाग लेकर खरल करें। यही नाराच रस उक्त योग में मिलावें।

उक्त योग की मात्रा २ रत्ती तक, २ तोला गरम जल के साथ दिन में ३-४ बार देवें। यह योग विरेचक



है। रेचन द्वारा प्लीहा वृद्धि को दूर करता है। रोगी की शक्ति के अनुसार इसके प्रयोग की योजना करने से अवश्य लाभ होता है। यह योग वैद्य बाबूराव बोकडे आयुर्वेद रत्न के एक लेख (सचित्रआयुर्वेद) से हम साभार सकलित करते है।

अर्श पर—बावची, सोठ और हरड समभाग का चूर्ण बना रखे। मात्रा—२ मात्रा गुड में मिलाकर सेवन करने से वात कफज अर्श नष्ट होता है।

—भा० भै० र०

पाडु पर—बावची चूर्ण २-३ माशा तक पुनर्नवा रस १ तोला के साथ दिन में ४ बार सेवन करें।

वात विकार पर—इसका चूर्ण ३-४ माशा और गुड ६ माशा एकत्र मिला प्रात साय सेवन करें।

कास पर—इसका चूर्ण २ माशा की मात्रा में अदरख रस ६ माशा में मिला कर प्रात साय चाटें।

—सकलित

पत्र—बावची के पत्ते सकोचक, अतिसार निरोधक है। अतिसार एव प्रवाहिका पर उदर में वेदना एव मरोड के साथ थोडा-थोडा आमाशयुक्त चिकना मल शौच के समय रुक-रुक कर निकलता हो, इस प्रकार की प्रवाहिका की आरभिक अवस्था मे इसके कोमल पत्तो का शाक दही, अनारदाने तथा अधिक तिल तैल या घृत मिलाकर सेवन कराने मे लाभ हो जाता है।

—गा. अ रो।

मूत्र वृद्धि के लिए इसके पत्तो के साथ गिलोय को जल में पीस, छानकर पिलाते है।

मूल—बावची के पौधो की जड दत विकारनाशक है जड का चूर्ण कर उसमें थोडी भुनी फिटकरी मिला मजन करने से दत कृमि नष्ट होते हैं। दातो की मडान दूर होती है।

पचाङ्ग—बावची के पचाङ्ग का अर्क विष्टभ कृमि, पाडु शोथ तथा कफनाशक है।

इस अर्क में शहद मिलाकर सेवन से रक्त शुद्धि होती है।

तेल—कर्नल चोपरा के मतानुसार बावची मे पाये जाने वाले उडनशील तेल का वाह्य त्वचा पर तथा श्लैष्मिक कलापर उत्तेजक एव प्रदाहक असर होता है। जीवन तत्व (Protoplasm) को भी यह लाभकारी है इसका स्थिर तैल उत्तम कृमिनाशक है। इस स्थायी तैल के १ भाग का १० हजार भाग वाष्प वजल में डायल्यूशन (मिश्रण) करके देने से, दृढता से चिपककर रहने वाले स्ट्रेप्टोकोकोसी (Streptococci) नामक उद्भिद् कीटाणुओ■ का १० मिनट मे नाश हो जाता है। चर्म रोगो के कीटाणुओ पर इस तेल के डाल्यूशन का असर काफी प्रभावशाली होता है। किंतु प्रलापक ज्वर (Typhus) के कीटाणुओ पर इस तेल का कोई प्रभाव नही होता। विशूचिका तथा उद्भिद् प्रवाहिका (बैसीलरी डिसेंट्री) के कीटणुओ पर भी इसका सन्तोषप्रद परिणाम नही हुआ।

डा० एन० सी० वसु का कथन है कि बावची का तेल त्वचा के श्वेत दाग, श्वेत, केश खुरदरी विकृत रग की त्वचा, नख आदि को अपने स्वाभाविक वर्ण मे ३ मास मे बदल देता है। यह प्रसिद्ध डाक्टरो द्वारा सुपरीक्षित किया गया है। (The oil Bowchi oil psoralea chauges, white skin, grey hair, rough scaly, discoloured skin nails, hairs etc to normal colour within 3 months and that it is well tried and prescribed by eminent doctors

—N C Basu, School of tropical medicines Calcutta

ऊपर श्वेत कुष्ठ एव अन्य कुष्ठो की प्रयोगावली न. १ मे नव्य मतानुसार बावची के मिश्रित तैल की निष्कासन विधि का विस्तृत वर्णन, स्पष्टीकरण सहित हम लिख आये है। ध्यान रहे, केवल बावची बीजो का आधुनिक यत्रो द्वारा प्रपीडन पूर्वक या कोल्हू द्वारा या पाताल यत्र द्वारा जो तेल निकाला जाता है वह अधिक उग्र होता है। उसके ही एक भाग मे दस हजार वाष्प जल के मिश्रण के

■ कीटाणु सामान्यत त्वग्रोग, त्वचा प्रदाह (Dermatitis) सूतिका ज्वर, कण्ठक्षत, आन्त्र प्रदाह, आमवात, न्यूमोनिया और रक्त विकार आदि रोगो के उत्पादक है।

प्रयोग के विषय मे ऊपर कहा गया है। इसकी उग्रता को कम करने के लिए ही जैसा कि ऊपर कह आये हैं इसके बीजो के साथ जैतून तैल या मूगफली का तेल मिलाकर यत्र द्वारा तेल निकाला जाता है। अथवा इसके बीजो को कूटकर उसमे समभाग तिल तैल या करञ्ज का तेल मिला २४ घण्टे बाद कोल्हू द्वारा या सम्पुट कर पाताल यत्र द्वारा निकाल लेवे। इस तेल के गुणधर्म भी उक्त मिश्रित तेल के अनुसार ही है। यह श्लीपद (फील पाव) के रोग मे भी उपयोगी है। मूत्रकृच्छ्र के निवारणार्थ तेल की १० बूदें, ५ तोला जल में मिलाकर पिलाते हैं।

नोट—मात्रा—बीजो का चूर्ण १ से ३ माशा तक (यह चूर्ण आवश्यकतानुसार ताजा ही बनाकर सेवन करना चाहिए)। कृमिरोग मे यह चूर्ण ४–६ माशा तक देदें। क्वाथ—१½ तोला तक। पत्र-स्वरस—१–२ तोला तक तेल—केवल बावची का ही निकाला हुआ तेल ½ ड्राम, उदर सेवनार्थ इसके मिश्रित तैल की मात्रा दो ड्राम तक।

इसका अधिक सेवन आध्मानकारक, पित्तवर्धक, नेत्र दृष्टि मन्दकारक एव धातु शुष्ककारक है।

हानि निवारक—मलाईदार दही, स्निग्ध द्रव्य, घृत, सिकजबीन, सौंफ आदि।

प्रतिनिधि—कालीजीरी या पवाड बीज हैं।

विशिष्ट योग–

(१) श्वेत कुष्ठहर वाकुच्यादि लेप—बावची १६ तो, तवकिया हरताल ४ तो, मैनसिल, श्वेतगुजा व चित्रक मूल ६–६ माशा एकत्र चूर्ण कर गोमूत्र में तीन दिन तक खरल कर लम्बी लम्बी गोलिया बना लेवे। प्रथम श्वेत दागो को अच्छी तरह रगडते हुए जल से धोकर पोछकर उन पर इस गोली को गोमूत्र मे घिसकर मोटा मोटा लेप करते रहने से कुछ दिनो मे त्वचा का रग बदल जाता है। अथवा—

बावची १६ तोला, आवले ४ तोला और हरताल २ तोला एकत्र मिला, गोमूत्र मे ३ दिन खरल कर गोलिया बनालें। इसे गोमूत्र या नीबू के रस में घिसकर लेप करते रहने से भी लाभ होता है। यह लेप उक्त लेप से अधिक सौम्य है। नाजुक स्त्रियो और बालको के लिये यह हितकारी है। —गा औ र

(२) श्वेतकुष्ठादिचर्म रोग नाशक बृहत्सोमराजी तैल-बावची बीज, पवार के बीज ५-५ सेर, एकत्र कूटकर ४० सेर जल में पकावें। चतुर्थाश जल रहने पर छान कर उसमे २५६ तोला गोमूत्र, ६४ तोला सरसो का तेल तथा चित्रक मूल, कलिहारी मूल, सोठ, हल्दी, करज बीज, हरताल, मेंसिल, अनन्तमूल, आक की जड, कनेर मूल, सप्तपर्ण की छाल, गाय का गोबर, खैरसार, नीमपत्र, कालीमिर्च और कसौदी के बीज प्रत्येक १-१ तोला जल के साथ पीस कल्क बनाकर उसमे मिलाकर मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसकी मालिश से श्वेतकुष्ठ, दाद, समस्त प्रकार के कुष्ठ, खाज, विसर्प आदि अनेक विकार दूर होते हैं। यह तेल विशीर्ण चर्म, मासादि को दृढ करता एव त्वचा के अन्य रोगो मे भी लाभ करता है। —भै र.

(३) सोमराजी तेल—बावची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसो, कूठ, करजबीज, पवाड बीज व अमलतास के पत्र १-१ तोला एकत्र जल के साथ पीस कल्क करें। इसे १सेर सरसो तेल व ४ सेर जल मे मिला मन्द आग पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसके लगाने से १८ प्रकार के कुष्ठ, दुष्ट नाडी व्रण, नीलिका, पिडिकायें, व्यग, गभीर वातरक्त, कण्डू, कच्छू, दद्रु व पामा का शीघ्र ही नाश होता है। —भै र।

(४) सोमराजी घी—बावची ८ तोला, खैरसार ३२ तोला दोनो को कूट कर ६ सेर ३२ तोला जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें १६ तोला बावची, खैरसार ४ तोला तथा पटोल मूल, त्रिफला, त्रायमाणा, धमासा व त्रिकटु प्रत्येक १-१ तोला सबको एकत्र जल में पीसकर बनाया हुआ कल्क और शुद्ध गूगल ८ तोला तथा घी २ सेर और जल ४ सेर मिला मन्द आग पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसके सेवन से श्वेत कुष्ठ एव अन्य प्रकार के कुष्ठ शीघ्र ही नष्ट होते हैं। मात्रा आधा तोला से २ तोला तक। —व० से०

सोमराजी घी नं० २—बावची १६ तोला, खरसार ४ तोला तथा पटोल मूल, त्रिफला, त्रायमाण, धमासा व कुटकी १-१ तोला इनको जल के साथ पीसकर बनाया हुआ कल्क तथा शुद्ध गूगल ८ तोला और घी १ सेर ८ तोला व घी से दो गुना जल सबको एकत्र मिला, मन्दाग्नि पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसके सेवन से श्वेत कुष्ठ एवं अन्य कुष्ठ भी नाश होते हैं। मात्रा आधा तोला से २ तोला तक। —भैं० र०

(वास्तव में उक्त दोनों घृतों में कोई विशेष भेद नहीं है। पाठ में 'कटुक शब्द होने से एक में त्रिकटु व दूसरे में कुटकी लिया गया है)।

(५) वाकुच्यादि चूर्ण—बावची ४० तोला और त्रिफला के तीनों द्रव्य एकत्र ४० तोला, बायबिडङ्ग की गिरी २८ तोला, शुद्ध शिलाजीत १४ तोला, शुद्ध गूगल ४ तोला, शुद्ध पके भिलावे १०० नग, पोहकरमूल ४ तोला, लोह भस्म १२ तोला, फिटकरी का फूला २ तोला तथा तेजपात, नागरमोथा, पिप्पली, मुलैठी, चित्रकमूल, पीपलामूल, नागकेशर, वड की जड की छाल, कालीमिर्च व केशर १-१ तोला सबका महीन चूर्ण कर उसमें सब चूर्ण के समभाग मिश्री मिला कर सुरक्षित रखें। ३ से ६ माशा तक जल के साथ सेवन से सर्व प्रकार के कुष्ठ, अर्श, उदररोग, क्षय, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, कण्ठरोग, प्रमेह, उन्माद, ज्वर, नासा रोग, गुल्म, वात पित्त व कफ के समस्त रोग नष्ट होकर मनुष्य सुन्दर गौर वर्ण एवं दीर्घायु होता है। इसे केवल १ मास तक ही सेवन करने से समस्त जटिल रोग नष्ट हो जाते हैं। —ग० नि०

रोगी को भोजन में आवले मिश्रित मूङ्ग का यूष नमक रहित देवें तो शीघ्र लाभ होता है। इस चूर्ण की मात्रा ६ माशा से १ तोला तक बढाई जा सकती है। यदि कुष्ठ के रोगी को शीर्ष शूल, कोष्ठशूल, ज्वर तथा तृषा लक्षणों की विशेषता हो व रात्रि में कष्ट अधिक होता हो तो कृमि या विषजनित रक्तविकार मानकर इस योग के सेवन काल में विडङ्गारिष्ट और खदिरारिष्ट दोनों को मिला दिन में दो बार भोजन करने पर तुरन्त देते रहना चाहिए। —रसतन्त्रसार

(६) बाकुची का श्वित्रारि अवलेह योग—बावची के १ सेर चूर्ण को असन वृक्ष की छाल और खैर की छाल के क्वाथ की ७-७ भावनायें देकर सुखा लें। फिर उसमें हरड व चित्रक मूल का चूर्ण १-१ सेर, शहद व घी प्रत्येक २-२ सेर तथा लोह भस्म ८ तोला मिलाकर खरल कर रखें।

२-३ माशा की मात्रा में दिन में १ या २ बार देवें। यह योग जीर्ण एवं दृढ श्वित्रकुष्ठ के लिए उत्तम है। मन्दाग्नि व कोष्ठबद्धतायुक्त कुष्ठ रोगी के लिये लाभदायक है। इसके सेवन से कोष्ठाग्नि प्रदीप्त होती है। आम, कृमि व कीटाणु नष्ट होते हे। आन्त्र निर्दोष बनती तथा रक्त प्रसादन होकर श्वित्ररोग दूर हो जाता है। इस योग के साथ गन्धक रसायन का भी सेवन कराया जाय तो लाभ शीघ्र होता है। —रसतन्त्रसार

(७) वाकुचीयुक्त स्वयंभुव गुग्गुल—बाकुची चूर्ण २० तोला, गोरख मुण्डी चूर्ण व लोहभस्म ८-८ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १२ तोला, शुद्ध शिलाजीत ३२ तोला तथा शुद्ध गूगल ४० तोला, सबको एकत्र अच्छी तरह कूटकर २-३ माशा की गोलियां बना ले। इसकी व्यवहारिक मात्रा ३-४ रत्ती दें। इसके सेवन से वातरक्त, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, भगन्दर, क्षुद्ररोग, अर्श, ग्रहणी रोग, बस्ति के रोग, शुक्रदोष, पाडु और उदर रोगों का नाश होता है। —भा० भै० र०

(८) सोमराजी योग (गलित कुष्ठ पर)—छिलके रहित बावची के १ सेर चूर्ण को, १६ सेर दूध और ६४ सेर जल के मिश्रण मे मिलाकर पकायें। दूध शेष रहने पर छान कर उसका दही जमायें तथा घी निकाल लें। इसे (उचित मात्रा में) शहद के साथ चाटने से गलित कुष्ठ दूर होकर नवीन उंगलियां और नासादि अंग निकल आते हैं। इसके चाटने के बाद अनुपान में तक्र पिलायें। —भा० भै० र०

(९) वाकुच्यासव—(श्वेतकुष्ठादि पर)

बावची, खैर की लकडी का बुरादा और आमला प्रत्येक १½ सेर लेकर जौकुट कर १० सेर जल मिला सन्धान पात्र में भर कर उसमें पुराना गुड ४ सेर व शहद २½ सेर मिला, पात्र का मुख बन्द कर १ मास तक सुर-

क्षित रखने के बाद छानकर बोतलो मे भर लेवें। मात्रा १ से ४ तोला तक, सेवन से श्वेत कुष्ठ पामा खुजली आदि चर्म विकार दूर होते हैं।

—वैद्यराज प० टीकादत्त जी त्रिवेदी मुरादाबाद।

शेष आसवारिष्टो के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिये।

बावली बूटी (Vinca Pusilla)

कुटजकुल (Apocynaceae) के इस ६-२० इन्च सीधे ऊचे जमीन पर से घास जैसे निकले हुए चौकोन अनेक शाखायुक्त वर्षायु क्षुप के पत्र १½–३ इन्च लम्बे, १ इन्च चौटे, तीक्ष्ण, वल्लमाकार, चिकने, दतुरकिनारेदार, पुष्प श्वेत, छोटे, एकाकी या युग्म, फली—सीधी १½–२ इन्ची लम्बी, मिर्च के आकार की अतिकोमल, नोकदार होती है।

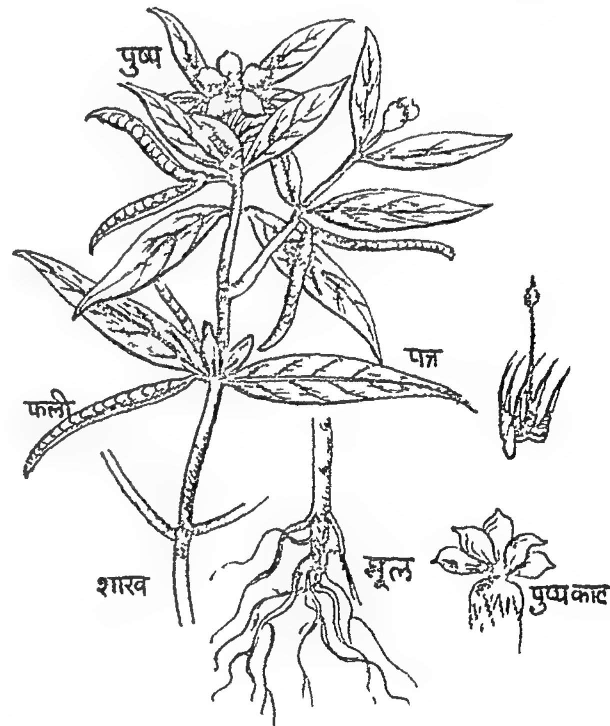
बाज—लम्बे, दोनो ओर अग्रभाग पर गोल हरे रग के पकने पर काले जीरे के समान काले पड जाते है।

इस बूटी के क्षुप पश्चिम हिमालय गंगाजा के ऊर्ध्व प्रदेश, सिंध, गुजरात, कोंकण, दक्षिण कर्णाटक तथा सीलोन मे विशेष पाये जाते है। राजस्थान में भी कही-कही पाये जाते हैं।

नोट—इसे बावली घास भी कहते है। संदिग्ध वनौषधि ग्रन्थ के लेखक स्व० श्री प० भागीरथ जी स्वामी ने धन्वन्तरि के वर्ष १६ और २२ मे प्रकाशित किया था कि यह बूटा वर्षा ऋतु मे ज्वार, बाजरे, मक्का, अरहर के खेतो मे स्व मेव पैदा होती है। और आश्विन से लेकर पौष-माघ तक, बगाल को छोड कर उत्तर प्रदेश, मारवाड आदि प्रान्तो मे प्राप्त होती है। यह देखने में काई के रग की हरी होती है। पत्ते तृण के समान छोटे ८-१० अगुल के होते हैं। इसमे हरे रग की मजरी आती है जिसमे काले जीरे के समन बीज होते है। इसे चूहे प्राय: प्रेम से खाते हैं।

नाम—

म०—सग फूली, खवी। हि०—बावली बूटी, बावली घास, अर्शहर बूटी। ने०—व्हिका पुसिला, लोचनेरा पुसिला [Lochnera Pusilla]।



रासायनिक संगठन—

इसमे एक प्रकार का क्षाराभ (अल्कलाईड) पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

अति कटु रस युक्त यह बूटी अर्श, तथा कटिशूल नाशक है। रक्तार्श मे यह रामबाण है। केवल ४-५ दिन मे ही इसके सेवन से रक्तार्श का रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

अर्श पर—१० माशा इस बूटी के पचाग को ११ कालीमिर्च के साथ घोटकर १० तोला जल मे छानकर

पिलावें। ४० दिन के सेवन से रक्तार्श, पित्तार्श व कफार्श भी नष्ट हो जाते हैं। जब तक यह बूटी ताजी हरी मिले उसे ही व्यवहार करें। तथा सुखाकर रख लेवें। इसकी मात्रा ६ माशा से १२ माशा तक है। शुष्क की मात्रा ३ से ४ माशा है।

यह बूटी विशेष शीतवीर्य होने से वातवर्धक है। इस के पत्रादि यदि कुत्ते आदि पशु खा लेवें तो वे बावले हो जाते है। इसीलिए शायद इसे बावली बूटी कहते हैं। यह बूटी हमारे यहा भी काफी पैदा होती है। मक्का के दिनो मे मक्का के खेतो मे अधिक पाई जाती है। पूस से माघ तक हम इसे हरा भेज सकते है। —सम्पादक धन्वन्तरि

डाक्टर एन्सली का कथन है, कि इसके पचाङ्ग के द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल कटिशूल पर मालिश किया जाता है।

वासक [Dichroa Febrifuga (Lour)]

पाषाणभेद कुल (Saxifragaceae) के झाडीदार क्षुप की छाल फीके पीले रग की मुलायम व कुछ सुगधित पत्र—अभिमुख, कोमल चमकीले, सूक्ष्म रोमश, पुष्प नीले रग के छोटे-छोटे होते हैं। जड की छाल—पपडी या कार्क के रूप मे, कुछ भीनी सुगधयुक्त एव स्वादरहित होती है।

ये क्षुप हिमालय, खासिया पहाडी पर और नेपाल मे विशेष पाये जाते है।

नाम—

हिं०—वासक, बसक। नेपाली—वासक, असेरू, सिंग-नामूक। लें०—डिक्रोआ फेब्रीफ्यूजा।

रासायनिक संगठन—

जड की छाल मे डिक्रोइन (Dichroin) नामक एक प्रभावशाली चमकीला ग्लुकोसाईड होता है। इसमे टेनिन नही होता।

गुणधर्म व प्रयोग—

छाल ज्वर नाशक, वामक, ग्लानिकारक है। इसके चबाने से जी मिचलाता है। मलेरिया मे इसकी जड व मुलैठी समभाग का क्वाथ कर थोडी शराब मिलाकर पिलाते है। इससे वमन होकर दूषित पित्त निकल कर ज्वर शात होता है। किंतु वृद्ध व निर्बलो को यह सहन नही होता।

विककस—देखें—वेकल।

बिंगली (Celtis Australis)

वट कुल (Urticaceae) इस ३० मीटर तक ऊचे वृक्ष की छाल मुलायम, भूरे वर्ण की, पत्र ७-५ से १५ सें० मी० लम्बे, ३ ८—७ ५ सें० मी० चौडे, पुष्प—छोटे-छोटे हरिताभ श्वेत होते हे।

ये वृक्ष हिमालय मे मरी से नैपाल तक ४ से ८ हजार फुट की ऊचाई पर पाये जाते है।

नाम--

हि (पजाबी)—बिगली, बिगनी, खारा कचरा, वटकर, चोकू, खडग, रोखू इ०। अ—यूरोपियन नेटल-ट्री (Europian nettle tree)। ले.--सेल्टिस ओरिए-न्टालिस (Celtis Orientalis)

गुण-धर्म—

इस वृक्ष का फल रजोरोध तथा तीव्र उदरशूल में उपयोगी माना जाता है।

बिंदा (Colebrookea Opp ositfiolia)

तुलसी कुल (Labiatae) के बहु शाखी इस छोटे क्षुप के पत्र-फीके हरे रग के, ३-३ पत्र सयुक्त रूप मे,

पुष्प—छोटे-छोटे पीताभश्वेत रग के, गुच्छो मे आते है। यह प्राय: इतस्ततः, भारत में सर्वत्र पाया जाता है।

नाम--हि - बिदा, पाजरा, शकरदाना, वरमेरा, बसूती इ।नैपाली—दोसुल।ले -कोलेब्रूकीअपोजिटीफोलिया कोले टर्निफोलिया (Cole Ternifolia)

गुणधर्म--इसके पत्तो को पीसकर जखम तथा दुष्ट व्रणो पर लेप किया जाता है। इसकी जड मगो (अपस्मार) मे उपयोगी है।

बिदाल—देखें – गदाल।

बिंदी मुट्ठी--Fimbristylis Junciformis (Kunth.)

मुस्ता कुल (cyperaceae) के छोटे-छोटे क्षुपनागर मोथा के क्षुप जैसे किन्तु गन्धरहित, भारत मे प्राय सर्वत्र पहाडी प्रान्तो में वर्षाकाल में पैदा होते है।

बिंदी मुट्ठी यह इसका पहाडी प्रान्तीय नाम है। लेटिन नाम--फिम्ब्रीस्टायलिस जुसीफार्मिस।

गुणधर्म--इसकी जड रक्तातिसार में उपयोगी है

विकला (विकचत)—देखें—वेकल।

बिखमा (Aconitum palmatum)

हरीतक्यादिवर्ग एव वत्सनाभ कुल (Ranuncula-Ceae) के इसके क्षुप अतीस के क्षुप जैसे, काण्ड-सीधा १-५ फुट उचा, चिकना, पत्रयुक्त, पत्र—वृक्काकार ४-६ इञ्च व्यास के पाच विभाग वाले, गहरे दतुर, पत्रवृन्त–१½-४ इञ्च लम्बा, पुष्प–लम्बी शलाका पर पुष्प बडे, हरिताभ नीलवर्ण के, डोडी– १-१½ इञ्च लम्बी, पाच विभाग युक्त, वीज -काले, प्राय अण्डाकार, मूल (कन्द)-प्राय युग्मरूप मे अतीस की जड जैसी किन्तु कुछ अधिक लम्बा, १½ से ४ इञ्च तक व ¼ इञ्च से १¼ तक चौडी, कईमूल कुछ मोटे, नलिकाकार, ऊपर से भूरे, श्याम वर्ण के चिकने कडे- गठानदार, तोडने पर भीतर से अरुण या पीताभ श्वेत, स्वाद में अति कडवे, तथा विशेष वजनदार होते हैं।

इसके क्षुप हिमालय के पूर्वीय समशीतोष्ण प्रदेशो मे गढवाल से मनीपुर तक, तथा नैपाल से सिक्कम तक १० से १६ हजार फुट की ऊचाई पर पाये जाते है।

नोट न १—यह विषरहित होती है। कही कही विषैली भी पाई जाती है। गुजराती भाषा की 'जगलनी जडी बूटी' के लेखक का कथन है कि नैपाल होकर भूटान जाने के रास्ते पर विखमा नामक बूटी के ४ ५ फुट ऊचे पौधे है जिनके सपर्क से मनुष्य वेहोश हो जाता



विखमा
ACONITUM PALMATUM D DON

है। अन कई लोग इन पौधो की जडें लाकर क्लोरोफार्म की तरह बेहोश करने के लिये सुघाते है। तथा जहा यह विखमा पैदा होती है उसी के समीप एक निर्विषी नामक बूटी भी पैदा होती है। इसकी जड को उक्त बेहोश व्यक्ति की नासिका के आगे रखते ही बेहोशी दूर हो जाती है।

नोट न २—आयुर्वेदीय निघटुकारो ने इसे अतीस (अतिविषा) का ही एक भेद माना है। भा नि मे जो अतीस के नाम दिये हैं। उनमें 'प्रतिविषाऽरुणा' तथा 'अतिविषाऽरुणा प्रतिविषा विषा" (कै नि) और "श्याम कन्दा प्रतिविषा विरूपा घुणवल्लभा (नि स) आदि से इसी का बोध होता है।

नाम—

प्रतिविषा (विष रहित), श्यामकन्दा, विश्व। हि-दिखमा, बखमा। म०—बखमा। गु०—वखमो। ले०-एकोनाइटम पाल्मेटम।

रासायनिक संगठन—

इसमे पाल्मेटेसीन (Palmatisine) नामक एक रवेदार क्षार तत्व पाया जाता है जो ज्वरघ्न और आमाशय के लिये बल्य है।

प्रयोज्याग—मूल (कन्द)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातहर, दीपन, पाचन, सकोचक, कटुपौष्टिक, शूल प्रशमन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, अग्निमाद्य, अजीर्ण, आध्मान, अतिसार, ग्रहणी, वमन, विसूचिका आदि आमाशय एव आत्र विकार हर है।

आमवातादि मे इसका लेप करते है। शेष सब गुण धर्म व प्रयोग अतीस के समान ही है।

नोट—मात्रा—२-५ रत्ती (कालीमिर्च या जायपत्री के साथ) इसका प्रतिनिधि-अतीस है।

बिगारी—देखे—बिदारी। विसमोगरा—देखें—वेला मे नोट।

बिछुआ—Martynia Diandra [Glox]

तिल कुल (Pedaliaceae) के इसके पौधे लगभग ५ फुट ऊचे, मुलायम, किन्तु मोटे, स्पर्श करने पर इसका सर्वाङ्ग भीगा हुआ सा चिपचिपा, मृदुरोमश प्रतीत होता है। पत्र—पौधे के काण्ड के दोनो ओर पत्र-विपरीत या अभिमुख ६ ९ इञ्च लम्बे, ताम्बूल (पान) के आकार के दोनो किनारे टेढे मेढे सूक्ष्म, दन्तुर, पृष्ठ भाग प्राय ओसकणो जैसे किंतु चिपचिपे सूक्ष्म विन्दुओ से आच्छादित, पुष्प-अधोमुखी, गुलाबी या गहरे बेगनी रग के, आकार मे तिल पुष्प जैसे, किंतु कुछ दुर्गन्धित, फल—बहुत कडे, हल्के काले रग के अग्रभाग मे बडिशाकार काटो के रूप मे उभारयुक्त (या काले दो आकडियो वाले बिच्छू के आकार के) होते हैं। वर्षाकाल मे पुष्प तथा वर्षा के अन्त मे फल आते है। फल का आकार बिच्छू जैसा होने तथा बिच्छू के दश पर इसका लेप उपयोगी होने से इसे बिछुआ कहते है।

यह पौधा अमेरिका के मेक्सिको प्रात का आदि निवासी है। भारत के बगाल, कोकण आदि कई प्रान्तो मे कूडे करकट के स्थानो मे तथा गावडो के बाह्य जगल के किनारे पैदा हुआ देखा जाता है।

नोट न० १—कई वैद्यगण इसके फलो का या पचाङ्ग का काकनासा के नाम से उपयोग करते हैं। किन्तु यह काकनासा नही है। इस ग्रन्थ के भाग दो मे काकनासा (काकतुण्डी न० २) का प्रकरण देखिये।

नोट न०२—बिच्छू बूटी इससे भिन्न है। आगे इसका प्रकरण देखिये।

नाम—

हि०—बिछुआ, वघनखा। म०—विचू। गु०—विछिदा व०—वागनखा। अ—टायगर्सक्ला (Tiger's Claw)

डेविल्स क्लो (Devil's claw) ले०—मर्टीनिया डिएन्ड्रा मर्टिनिया एन्नुआ (Martnla Annua)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तीक्ष्ण, शोथहर, बाजीकरण, नपुसकता नाशक व अर्शघ्न है।

बिच्छू आदि विषैले जतुओ के दश पर इसके फल को जल मे पीसकर लेप करने से शाति प्राप्त होती है।

वाजीकरण तथा नपुसकता पर—इसके ताजे शुष्क फल ४० तोला लेकर छोटे-छोटे टुकडे कर मटकी मे भर कर पाताल यत्र की विधि से तेल निकाल लेवें। १२ से १५ तोला तक तेल निकलेगा। यह तेल वाजीकरण है। प्रतिदिन इसकी १० बून्दें दुग्ध के साथ कुछ दिनों तक पीते रहने से निर्बल शुक्रकीट वलवान हो जाते हैं। नपुसकता या ध्वजभग हो तो शिश्न पर हलके हाथो से तेल की मालिश की जाती है। —स्वास्थ्य से साभार

उक्त तेल पामा आदि चर्म रोगोपर भी उपयोगी है।

अर्श के मस्सो पर—फलो को कूटकर तिल तैल मे जला लें। जल जाने पर घोटकर उस कज्जली मे फाहा भिगो, गुदामार्ग पर रखकर पट्टी बाधे फिर गरम ईट कर नीम व बकायन के पत्ते रखकर मामूली सेंक करे। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होगा।

—प० केशवप्रसाद मिश्र वैद्यशास्त्री
पो०—वकतरा (भोपाल)

पत्र—इसके पत्र जब आश्विन व कार्तिक मास मे पीले पड जाते हैं तब उनका संग्रह कर छायाशुष्क कर चूर्ण कर के सुरक्षित रखे। चूर्ण की मात्रा १ से २ रत्ती तक शहद क साथ ६-६ घटे के अन्तर से दें। यह हृदय के लिए डिजिटेलिस के समान उपयोगी है। थोड़ी मात्रा मे यह हृदय की गति को बढाता है किंतु अधिक मात्रा देने से हृदय की गति को मन्द करता है। इसके अतिरिक्त यह जीर्ण ज्वर को दूर करता, कफ को पतला करके बाहर निकालता है। निमोनिया मे इसके प्रयोग से फेंफडो की सूजन कम होती तथा कफ छूटकर निकल जाता है। मूत्र नलिका के विकारो पर इसे देने से मूत्र खुलकर होजाता है तथा विकार दूर हो जाते है। सर्वांग शोथ में इसका वाह्य और अन्त प्रयोग किया जाता है। —व० चं०

पत्तो का उपयोग अपस्मार में भी किया जाता है। क्षयजन्य कठमाला या अपची मे पत्रो को पीसकर लेप करते हैं। गले के छालो को दूर करने के लिए पत्तो के रस या शीत कषाय के कुल्ले (गण्डूष) कराते हैं।

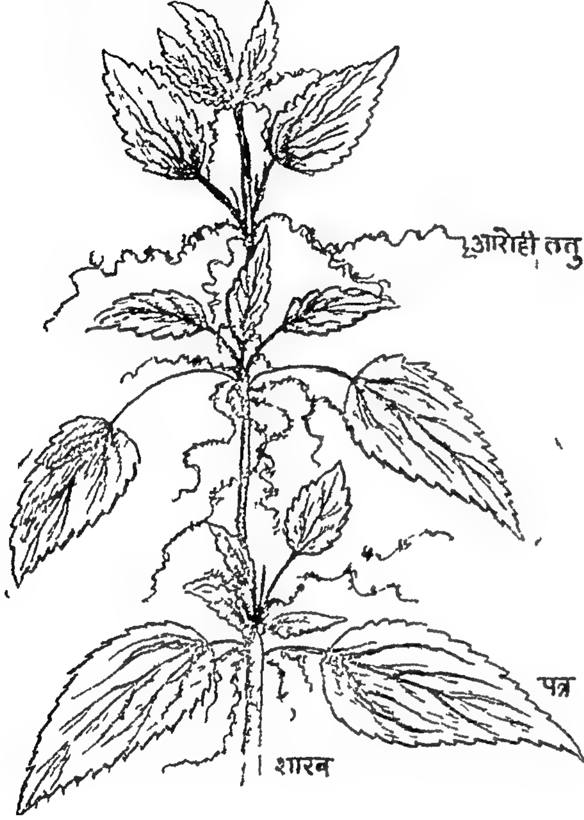
बिच्छू बूटी (Girardiuia Heterophylla)

वट कुल (Urticaceae) के इस ४-६ फुट ऊचे, सर्वांग तीक्ष्ण कडे रोमो से व्याप्त क्षुप के पत्र ४-१२ इच लम्बे, ४-५ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, लम्बाग्र, अध पृष्ठ भाग चिकना (पत्र वृन्त तथा शिरायें डङ्कदार रोमो से व्याप्त), पुष्प—छोटे, वृन्तरहित, पुष्प मजरी सहतूत जैसी ६ इञ्च लम्बी, सघन रोमो से आच्छादित होती है।

हिमालय के प्रदेशो मे ७ हजार फुट की ऊचाई तक इसके क्षुप अधिक पाये जाते हैं। इस क्षुप के रोम शरीर पर लग जाने से विच्छू के डक मारने जैसी तीव्र पीडा होती है। पहाडी लोग इसके पत्तो का साग वनाकर वडे प्रेम से खाते हैं।

नोट न० १—गढवाल निवासी कविराज योगेश्वर प्रसाद जी वैद्य वाचस्पति ने जो लेख इस बूटी के विषय मे हमारे पास भेजा है, उसका साराश इस प्रकार है—

हिमालय के पहाडी प्रान्तो मे यह बूटी छोटी और वडी दो प्रकार की पाई जाती है। ये दोनो प्रकार की बूटिया प्राय वर्षाकाल के पहले ही पैदा होती हैं। छोटी के पौधे २—६ फुट ऊचे, पत्र ८ इञ्च लम्बे ४—५ इञ्च चौडे होते है। पत्तो तथा डंठलियो पर श्वेत रोम सदृश सूक्ष्म काटे मे होते है। श्रावण या भाद्रपद के अन्त मे इस पर बीच बीच की ग्रन्थि स्थानो में से शहतूत के समान पुष्पो की मजरी सी निकलती है। कुछ काल मे ये मजरिया हरे रंग की वाल रूप मे परिवर्तित होकर बीज युक्त



हो जाती हैं जब तक यह श्वेत पुष्प युक्त रहती है तब तक ही इसकी शाक बनाई जाती है। जो अत्यन्त उष्ण होती है। श्वास, कास, गुल्मोदर, अर्श, सर्वांग शोथादि विकारों पर पथ्य रूप मे यह शाक दी जाती है। इससे उदर हलका हो जाता, मूत्र काफी प्रमाण मे होता तथा शरीर हलका हो जाता है।

बडी बूटी का पौधा १० फुट से भी कहीं-कहीं अधिक ऊंचा पाया जाता है। पत्र ५-१० इञ्च लम्बे तथा २½ से ५ इञ्च तक चौडे, दोनो पृष्ठ भाग श्वेत रोमो से युक्त होते हैं। इन रोमो के स्पर्श से बिच्छू के डंक मारने जैसी वेदना होती है। पुष्प—श्वेत नलिकाकार मंजरियो में शहतूत के सदृश ही, तथा बीज काले रंग के, या भूरे समुद्रशोथ के बीज जैसे होते है। इसकी भी शाक बनाई जाती है। इसकी नूतन कोमल कोपलो को किसी चिपटे या कपडे से पकडकर, तोडकर कढाई में जल के साथ उबालते हैं। उबालने से यह निर्दोषहो जाती है फिर नीचे उतार कर ठण्डा हो जाने पर हाथो से मसल व निचोड कर पीसते हैं। उसके साथ उडद, कुलथी या लोबिया आदि की पिट्ठी मिला कढ़ाई मे घृत के साथ हींग का छौंक देकर इसे बघारकर पतला शाक बनाते हैं जिसे चावलों के साथ बडे स्वाद से खाते हैं। जो सूखी सब्जी बनाते है वह बिना पिट्ठी की ही बनाते है। यह शाक सर्वांगशोथ, उदर विकार, जलोदर, श्वास, कास, प्रतिश्याय आदि में विशेष लाभप्रद है। कुमाऊ, गढवाल तथा तिब्बत मे इसकी शाक शीतकाल में आमतौर से सब कोई बडे प्रेम से खाते है। ध्यान रहे यह शाक प्रमेह, प्रदर, अतिसार तथा पित्त जन्य प्रसूति रोग में हानिकारक है।

इसके शुष्क पत्तो की चाय (फाण्ट) बनाकर पीने से कफजन्य ज्वर दूर होता है। वात व्याधि तथा श्वास कास में इसके ६-४ ताजे पत्तो को कुलथी की दाल के साथ पकाकर उसमे हींग, जीरे का छौंक देकर खाने से लाभ होता है।

नाम--

सं०—वृश्चिक। हिं०—बिच्छू बूटी, बिच्छू पान, बिच्छू घास, कडाली, भिर कडाली। ले—गिरारडिया हेटेरोफिला।

गुणधर्म व प्रयोग--

उष्ण वीर्य, वातकफ नाशक, पित्तवर्धक, इसके पत्तो के प्रयोग ऊपर के नोट में देखिए।

प्रमेह पर—इसके बीज २ से ४ रत्ती तक लेकर ६ माशा मिश्री के साथ पीस कर धारोष्ण गायके दूधमे प्रात साय सेवन से लाभ होता है। विशेषत कफजन्य प्रमेह पर यह लाभदायक है। इससे शक्ति भी बढ़ती है।

बिशिष्ट योग--

लोह, मल्ल तथा हरताल भस्म—लोह चूर्ण को इसके पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ घोटकर २-३ बार गजपुट देने से उत्तम निरुत्थ लोह भस्म तैयार होती है जो विशेष गुणप्रद है।

मल्ल या हरताल भस्म के लिये इसके पञ्चाग को जला कर उसकी राख को एक मजबूत मटकी मे अधो भाग तक भर देवें। फिर इसके १० पत्तो की लुगदी बना कर उसमें २ तोला शुद्ध मल्ल (सखिया) या २ तोला हरताल की डली रखकर, उस लुगदी को उक्त मटकी में भरकर मटकी के शेष भाग को उक्त राख से ही गले तक दबा दबाकर भर दें। अब इस मटकी को चूल्हे पर चढाकर ५-५ घटे की मन्द, मध्यम व तीव्र आच दे। कुल १५ घंटो में उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। इस प्रकार बनी हुई भस्म चाहे मल्ल की हो या हरताल की १ चावल की मात्रा मे भोजन के बाद पान के बीडे में या केवल पान मे रख कर खाने से श्वास, कास, कुष्ठ इत्यादि रोगो मे बहुत लाभ होता है। किंतु इसका सेवन १० दिन से अधिक दिनो तक नही करना चाहिये। पथ्य में—केवल गेहू, चावल, घी, दूध, शक्कर आदि सौम्य पदार्थ ही लेना चाहिए। —जगलनी जडी बूटी

नोट न १–इस बिच्छू बूटी के समीप ही एक अन्य बूटी का क्षुप होता है, जिसके पत्र, पुष्प, फलादि सब वन तुलसी (तुलसी अर्जकी Ocimumcanum) के क्षुप जैसा ही होता है। इसके पत्रो का रस लगा देने से, बिच्छू बूटी की बिच्छू के दश जैसी तीव्र वेदना शीघ्र ही शात हो जाती है।

नोट न० २—उक्त बिच्छू बूटी की ही जाति की एक 'गिरारडिनिया झेलेनिका (Girardinia Zeylenica) नामक बूटी होती है। इसे हिन्दी मे–अल्ल, बिछुआ, आवा, चीचट। मराठी में–मोतीखजानी। पजाबी में–अजन, थावल। नैपाली में—डली कहते है।

इस ऊचे, फैले हुए झाडीदार क्षुप की शाखाओ पर बिच्छू के डक जैसे वेदनाकारक रोम होते है। पत्र काफी चौडे तथा अग्रभाग मे कटे हुए होते है। पुष्प-उक्त बिच्छू बूटी के ही जैसे मजरियो मे, तथा फल पर दोनो ओर रोम होते है।

गुण धर्म व प्रयोग---

यह वेदनाशामक, शोथहर तथा ज्वरघ्न है। इसके पत्र सिर दर्द पर उपयोगी हैं। सधि शोथ पर पत्रो को पीसकर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से लाभ होता है। ज्वर मे इसका क्वाथ दिया जाता है।

नोट न० ३—उक्त बिच्छू बूटी के ही कुल की एक अन्य बूटी होती है। इसे ले०–अर्टिका यूरे स या अर्टिका डायओइका (Urtica urens or urtica dioica) अ०–कामन स्टिंगिग नेटल (common stinging nettle) हि० व पजाबी—बिच्छू, बिछूटी कहते है।

इसके क्षुपादि सब उक्त बिच्छू बूटी के ही समान है। यद्यपि यह यूरोप का आदि निवासी है तथापि इसकी जातिया भारतवर्ष के पहाडी प्रान्तो मे पाई जाती हैं। जो उक्त बिच्छू बूटी के जैसी ही वेदनाकारक है तथापि औषधि कार्यो मे विशेष उपयोगी है।

इसमे फार्मेक एसिड (Formic acid), लेसीथिन (Lecithin), एक लसदार पदार्थ, नमक, अमोनिया (ammonia) कार्बोनिक एसिड और जलाश होता है।

फुसी, फफोले, ददोरे, मसूरिका जैसे त्वचा के उभारो पर इस बूटी का टिंचर या शर्बत बनाकर सेवन कराया जाता है। वृक्क-सम्बन्धी विकारो तथा रक्तस्राव पर यह एक घरेलू औषधि है।

गुणधर्म मे यह सकोचक, सग्राहक, शामक, मूत्रल, रक्तविकार नाशक, तथा प्रभावशाली रक्तपित्तहर है।

प्रतिश्याय, श्वेतप्रदर, फुफ्फुसान्तर्गत स्राव, मूत्र के साथ रक्तस्राव आदि पर यह विशेष उपयोगी है। इसकी सूखी पत्ती का चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा मे रात को सोते समय आग पर डालकर सूघने से धुये को नासिका द्वारा अन्दर खीचने से श्वास तथा फुफ्फुस सम्बन्धी अन्य विकारो मे लाभ होता है।

इसके टिंचर की मात्रा ½ से २ ड्राम तक, शर्बत की मात्रा २ से ४ ड्राम तक है। इसके टिंचर मे समभाग जल

मिलाकर उसमे स्वच्छ कपडे को भिगोकर अग्निदग्ध के स्थान पर रखने से विशेष लाभ होता है। —नाडकर्णी

डाक्टर ग्रियर्स का कथन है कि एक स्त्री को ३-४ वर्ष तक कोई सन्तान न हुई। किसी कारणवश, एक दिन उस स्त्री ने बूटी का पञ्चाङ्ग उबालकर, उसका लगभग दो आउन्स पी लिया। उससे पहले तो उसका स्तन फूल गया, इसके बाद स्तन से रस की तरह एक प्रकार का स्राव निकलने लगा। पश्चात् साफ दूध आने लगा। अतएव प्रसव के बाद किसी के स्तन मे यदि दूध कम हो, या बिल्कुल न हो, तो इसके सेवन से विशेष लाभ होने की सम्भावना है। —वैद्य उदयलाल जी महात्मा

विजयसार (Pterocarpus Marsupium)

वटादिवर्ग एव शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस वनौषधि का सचित्र वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ के आसन न १ के प्रकरण मे दे चुके हैं। यहा इसके विषय मे अवशिष्ट उपयुक्त प्रयोगादि का विवरण दिया जाता है।

ध्यान रहे इस का उपयोग अति प्राचीन काल से आयुर्वेद मे हो रहा है। चरक के उदर्द प्रशमन दशेमानि, शिरोविरेचन द्रव्य एव सार आसव की गणना मे इसका उल्लेख है। इसके उत्तम शोधन गुण के कारण चरक तथा वाग्भट ने भी इसका रसायन रूप से प्रयोग दिया है और कहा है कि इसकी मूल या छाल १-१ तो का क्वाथ दिन मे दो बार ४-६ मास तक देते रहने से जीर्ण रक्तविकार एव जीर्ण त्वचारोग (उपकुष्ठादि) दूर हो जाते है। कच्चा दूध, तेज खटाई, मलावरोध करने वाला भोजन तथा मासाहार का त्याग कर इसका शान्तिपूर्वक सेवन करना चाहिए। कुष्ठरोगोक्त महाखदिर घृत, खालित्य रोग का महा नील तैल तथा उरुस्तभ नाशक श्योनकादि प्रलेप मे इसकी योजना की गई है। सुश्रुत ने सालसारादिगण मे इसे लिया है। तथा कुष्ठ, शोथ, रक्तपित्तादि रोगो पर, एव दूषित जल या मलिन जल को साफ करने के लिये भी इसकी योजना की है और अञ्जनो को इसकी लकडी के पात्र में रखने के लिये कहा है।

विजयसार का गोंद—इसे हीरादोखी, हीरा दक्खण, चिनाई गोद, दम्मुल अखवीन, Kino काइनो कहते हे। यह कडवा, वेस्वादु गोंद–शीतल, ग्राही, कीटाणुनाशक, रक्तस्रावरोधक, रोपण, यकृत के लिये बल्य, ज्वरघ्न, आक्षेपज वेदनानाशक तथा अतिसार, मुखपाक, पित्त प्रकोप, चक्षुप्रदाह, फोडे, सुजाक जन्य जीर्ण मूत्र प्रसेक, नलिका प्रदाह (Gleet), छाजन, दतशूल, दाह, प्रमेहादि विकारो पर हितावह है।

सामान्यत इसके गुण ढाक के गोद से मिलते जुलते हैं। ध्यान रहे वृक्क पीडित रोगियो के लिये यह हानिकारक है।

(१) अतिसार—गोद का एक निम्न प्रसिद्ध चूर्ण प्रयोग (पल्विस काइनो कम्पोजिटस (Pulvis Kino compositus) इस प्रकार है—

इसके १५ भाग गोद के साथ १ भाग अफीम तथा ४ भाग दालचीनी लेकर सबका चूर्ण बना लेवे। मात्रा २ से १० रत्ती दिन मे तीन बार जल के साथ देने से रक्तातिसार, एव जीर्ण अतिसारो मे शीघ्र लाभ होता है। रक्तातिसार मे इस चूर्ण का सेवन तीन दिन कराने तथा पथ्य में केवल खिचडी दही या दही भात देने से उदर पीडासह यह विकार दूर हो जाता है।

जीर्णातिसार व प्रवाहिका मे अन्य उपयुक्त औषधि के साथ इसका गोद २–२ रत्ती मिलाकर सेवन कराने से कीटाणुओ का नाश होता, अन्त्र प्रदाह दूर होता, वेदना शमन होती तथा इसके ग्राही प्रभाव से अतिसार व प्रवाहिका मे शीघ्र लाभ होता है।

(२) छाला, फोला, क्षत तथा अभिघातजन्य उदर मे रक्त सग्रह होने पर—

फोला या छाला या क्षत के फूटने पर उसमे से चिप-

छिपा रस स्राव होकर चारो ओर लगता रहता है । तथा क्षत में दाह भी होती है । ऐसी अवस्था मे गोद का चूर्ण बुरकने से लाभ होता है ।

अभिघात या चोट के लगने से उत्पन्न उदर या छाती मे रक्त संग्रह जनित विकार में या अस्थि भग में इसका गोद १-१ माशा दिन मे तीन बार दूध के साथ पिलाने से लाभ होता है । अथवा इसकी छाल ६ माशा का क्वाथ या इसके पत्तो का रस दूध मे मिलाकर पिलावें ।

(३) मुखपाक, दतशूल तथा छाजन और श्लीपद पर—

दाहक पदार्थ या गरम-गरम भोजन के कारण मुह के भीतर क्षत हुआ हो या जीभ फट गई हो तो इसके गोद के चूर्ण के साथ कत्थे का चूर्ण मिला मुख के भीतर बुरकाने से लाभ होता है ।

दंतशूल—इसके गोद को दातो के गड्ढे मे भर देने से या दन्त मजन मे इसे मिलाकर प्रयोग करने से दातो की पीडा दूर होती है ।

छाजन (उकवत या एग्ज़ीमा) पर—इसके गोद के चूर्ण को बुरकने से, या श्वेत चन्दन को जल के साथ घिस कर, उसमें इसके चूर्ण को मिलाकर लेप करने से, जलन शात होती, कीटाणु नष्ट होते तथा छाजन शीघ्र नष्ट होती है । साथ साथ यह गोद ४ रत्ती की मात्रा में, दिन मे २ या ३ बार जल के साथ पिलाते रहने से शीघ्र लाभ होता है ।

श्लीपद पर—इसका गोद १-१ माशा की मात्रा मे, गोमूत्र या शहद के साथ दिन मे दो बार ४-६ माशा तक सेवन कराने से श्लीपद (हाथ-पैर मोटे हो जाना) दूर हो जाता है । यदि शरीर मे मेद (चरबी) बढी हो, तो वह भी इस प्रयोग से या इसकी छाल के क्वाथ के सेवन से कम हो जाता है । —गा औ र

लकडी, मूल और छाल के प्रयोग—

(४) रक्तपित्त और इक्षुमेह या मधुमेह पर—

रक्तपित्त—इसकी लकडी को जलाकर, क्षार बनाकर इसे एक माशे की मात्रा मे, घृत के साथ, प्रात सायं सेवन कराने से मुख, नाक, गुदा या मूत्रेन्द्रिय से होने वाला रक्तपित्त प्रकोपज रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

इक्षुमेह और मधुमेह में—इसकी लकडी का ६ मा० से १ तोला तक का टुकडा, रात्रि के समय काच के गिलास मे जल के भीतर रख देवे । प्रात जल को छानकर पी लेवें । पुन: उसमें जल भरकर शाम को या रात्रि के समय पीवे । दूसरे दिन लकडी का नया टुकडा लेवें । इस प्रकार २-४ मास तक (पथ्यापथ्य पूर्वक) इस प्रयोग के करते रहने से मूत्रगत शर्करोत्पत्ति बन्द होकर इस विकार में लाभ होता है ।

(५) दृष्टिमाद्य पर—

इसकी छाल के १ सेर क्वाथ में तिल तैल व बहेडे की गिरी का तैल २०–२० तोला और भागरे का रस १ सेर मिला लोहे की कढाई मे मन्द आग पर पकावें । तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे । प्रात. साय इस तैल की नस्य कराते रहने से नेत्र ज्योति बढ जाती है । —गा. औ र

उदर के गुल्म विकार मे छाल को दूध में पीसकर पिलाते हैं ।

चोट पर—छाल का चूर्ण ३ मा० की मात्रा मे प्रात साय गरम जल से देवें ।

फूल—इस वृक्ष के पुष्प विपाक मे मधुर, कफपित्त नाशक तथा वातवर्धक हैं ।

नोट—मात्रा—गोद २ से ५ रत्ती या १२ रत्ती तक, लकडी या छाल का चूर्ण २ से ६ मा० । क्वाथ ५–१० तोला ।

इसके गोद का प्रतिनिधि ढाक (पलाश) का गोद है । फोडा, जखम या त्वचा के विकारो पर इसके कोमल पत्तो को पीसकर लेप या पुल्टिस के रूप मे प्रयोग करते है ।

विशिष्ट योग—

बीजकासव—इसकी छाल ६५ तोला, त्रिफला एक सेर मुनक्का २० तोला और पीपल की लाख २८ तोला सब को जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावे । चतुर्थांश जल शेष रहने पर, छानकर, सधान पात्र मे भर ठण्डा होने पर उसमे खाड ५ सेर, शहद ६५ तोला, तथा त्रिकुट, नख (सुगन्धित द्रव्य), खस, सुपारी, शीतलचीनी, मुलेठी व कूठ प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला मिला पात्र का मुख

अच्छी तरह बन्द कर जौ के ढेर मे दबाकर रखें। ग्रीष्म ऋतु में १० दिन पश्चात् तथा शीतकाल में २० दिन के बाद निकालकर छान लेवें। मात्रा १ से ४ तोला तक, समभाग शुद्ध जल मिलाकर सेवन से संग्रहणी, पाडुरोग, अर्श, शोथ, गुल्म, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, कुष्ठ, कामला, प्रमेह और सन्निपात का नाश होता है। —ग० नि०

शेष प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह मे देखिये।

बिजिंदक (Lepidium Dabra Linn)

राजिका कुल (Cruciferae) की यह एक जाति की घास है। इसके पत्ते केश के जैसे होते हैं।

यह पजाब मे अधिक बोया जाता है।

पंजाबी व अफगानी भाषा में बिजिदक, अग्रेजी मे हेयरी ग्रास (Hairy grass) तथा लेटिन में लेपिडियम डाब्रा कहते है।

उदर के वात विकार (गैस) पर इसके बीज एक बार मे ७-८ नग तक दिये जाते है।

रक्तातिसार पर इसका टिंचर दिया जाता है।

बिजौरा—देखे—नीबू मे

बिथुआ (Dalderga Lanceolaria)

शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस सुन्दर पौधे के पत्र गूलर के पत्र जैसे पुष्प व फल छोटे-छोटे गुच्छे में लगते हैं।

ये पौधे पश्चिम हिमालय के प्रदेशो से लेकर नीचे सीलोन तक प्राय सर्वत्र पहाडी जगलो मे पाये जाते है। मिर्जापुर और बनारस के पहाडी इलाको मे यह प्रचुरता से पाया जाता है।

नाम —

हि०—बिथुआ, गोरख, पासी। म०—टाकोली, जाकोली, हर्रानी, गप्री, कानरेही, डाडूसा। ब०—चाकेमदिया नैपाली—वादेर सिरिस। लै०—डालबेर्जिया लेंसिओलेरिया

इसकी छाल मे टेनिन १४% पाया जाता है।

प्रयोग—

सधिशोथ या आमवात पर—इसके बीजो के तैल का बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। छाल के क्वाथ का घनसत्व या अवलेह तैयार कर सेवन कराते हैं।

मन्दाग्नि पर—छाल के फाण्ट का सेवन कराते हैं। पार्यायिक ज्वर पर—इसकी छाल को कन्टाई की छाल के साथ पीस कर शरीर के मर्म स्थानो पर लेप करते है।

विदारी कंद नं० १* (Pueraria Tuberosa)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बीकुल (Leguminosae) की इस आवर्तिनी या चक्रारोही, अति विस्तार मे फैलने वाली मोटी, अचिरस्थायी लता का काण्ड छिद्रयुक्त (पोला सा) छाल—भूरे रग की ½ इन्च तक मोटी, पत्र—ढाक (या सेम) के पत्र जैसे पक्षाकार, त्रिपत्रक, ४-६ इन्च लम्बे ३-४ इन्च चौडे लटवाकार, अग्रभाग कुछ लम्बा

---

* इसके दो भेद—विदारी और क्षीर विदारी चरकने मधुरस्कन्ध (वि. अ. ८) मे किये है। इस पर चक्रपाणी की टीका है, कि "एको दीर्घकन्दो बहुक्षीर क्षीर विदारीति व्यवह्रियंते। अन्योहस्तिपादकोऽल्पक्षीर।" इनमें से प्रस्तुत प्रसग के कन्द को विदारी और आगे के प्रकरण मे वर्णित (Ipomoea Paniculata) को क्षीर विदारी ऐसा अधिकाश विद्वानो ने माना है, तथा हमे भी यह भेद मान्य है। बगाल की ओर एक अन्य कन्द (Trichosanthes cordata) को विदारी कन्द माना जाता है। भुई कुम्हडा यह नाम उक्त तीनो कन्दो को दिया गया है। उत्तर प्रदेश मे अधिकतर प्रस्तुत प्रसग के कन्द को ही बिदारीकन्द माना जाता है। अत हम प्रथम उसीका शीर्षोक्त नं० १ के नाम मे वर्णन करते है। अन्य दोनो कन्दो का वर्णन आगे विदारीकन्द नं०२ के प्रकरण मे देखिये।

नोकीला निम्न पृष्ठ भाग मुलायम सघन रोंओं से युक्त, पुष्प—६-१८ इन्च लम्बी मंजरियों में प्राय पत्तों के गिरने पर नूतन पत्रों के निकलने के पूर्व ही सुन्दर नीले या बैंगनी रंग के पुष्प आते हैं। फली—२-३ इन्च तक लम्बी, चिपटी, बीजों के बीच दबी हुई, भूरी रंग के रोंओं से आच्छादित होती है। प्रत्येक फली में ३ से ६ तक गोल मोटे से बीज रहते हैं। कन्द—इसके मूल में जमीन के नीचे प्राय कई कन्द आपस में सूत्रमूल शाखा के द्वारा जुड़े हुए तथा निम्न भाग में भी मूल शाखा से युक्त (सनाल) होते हैं। इनको ही विदारी कन्द कहते हैं। प्रत्येक कन्द हरे रङ्ग का गोल कुम्हड़े के आकार का प्राय २ फुट तक लम्बा तथा २½ फुट तक व्यास का होता है। बहुत बड़े एवं अत्यधिक वजनदार (कहीं-कहीं २० मन से भी अधिक वजनदार पुराने कन्द होते हैं) ये कन्द, छोटे कन्दों की अपेक्षा हीन वीर्य समझे जाते हैं। तथा ये छोटे कन्दों की अपेक्षा शीघ्र ही सड़ गल जाते हैं। छोटे कन्दों का स्वाद भी बड़ों की अपेक्षा सुमधुर होता है। बाजार में पतले पतले, दूध के जैसे श्वेत दिखाई देने वाले छोटे कन्दों के शुष्क कतरे विदारीकन्द नाम से बिकते हैं। इसके छोटे-छोटे ताजे मुलायम कन्द हरिद्वार आदि में शाक सब्जी विक्रेता की दूकानों में सराल नाम से बिकते हैं। ये स्वाद में मुलैठी जैसे मधुर स्वाद वाले होने से इन्हें स्वादुकन्दा, ईक्षु विदारी आदि संस्कृत में कहा जाता है। इस कन्द की लता को हाथी और घोड़े बड़े स्वाद से खाते हैं। अत इसे 'गजवाजि प्रिया' तथा भाषा में 'घुड़ बेल' कहते हैं।

नोट—चरक के बल्य, बृंहणीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, स्नेहोपग, तथा मधुरस्कन्ध गणों में और सुश्रुत के विदारिगंधादि, वल्लीपंचमूल एवं पित्तसंशमन गणों में इसकी गणना की गई है।

यह लता पश्चिम हिमालय के निम्न भाग में शिमला कुमाऊं आदि पहाड़ी स्थानों में नेपाल तथा विन्ध्याचल, उड़ीसा, छोटा नागपुर, दक्षिण में कोंकण के पहाड़ी स्थानों में अधिक पाई जाती है। बिहार में भी कहीं कहीं देखी जाती है। यह उक्त स्थानों में प्राय नदी नालों की कगारों पर विशेष पाई जाती है।

नाम—

सं० विदारी, स्वादुकन्दा, इक्षुगन्धा, [illegible], (पलाश के समान [illegible] होने से), गजवाजिप्रिया, भूमि कूष्माण्ड इ०। हि०—विदारीकन्द, [illegible] विदारी, बनकुम्हड़ा, पताल कोहड़ा, भुँइ कुम्हड़ा, सुराल, सराल इ०। म०—भुई [illegible], [illegible] बेल, घोड़ बेल गु०—[illegible], विदारी, [illegible]। बं०—शीमिया। ले०—पुएरिया ट्यूबरोसा, [illegible] (Hedysarum Tuberosum)।

रासायनिक संगठन—

कन्द में राल, शर्करा एवं विशेषत स्टार्च अधिक पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—कन्द।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्त नाशक, स्नेहन, अनुलोमन, पित्तशामक, हृद्य शोणित-स्थापक, कफनिःसारक, कण्ठ्य, वर्ण्य वृष्य, स्तन्यजनन, मूत्रल, दाहप्रशमन ज्वरघ्न, बल्य, बृंहण, रसायन, गर्भप्रद तथा कोष्ठगतवातशामक, पित्तविकार, शुक्रक्षय, प्लीहावृद्धि, विबन्ध, हृदौर्बल्य, रक्तविकार, स्वरभेद, वातरक्त, प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, वर्णविकार, विषमज्वर, दौर्बल्य, क्षय, शोष आदि में प्रयुक्त होता है।

(१) बलवृद्धि व पुष्टि के लिये—इसके कन्द के चूर्ण को घृत में भून कर उनमें बादाम की गिरी, चिरौंजी, पिस्ता, लौंग, इलायची, जायफल, गोखरू, केवांच बीज, शतावरी, मूसली व किशमिश यथायोग्य प्रमाण में मिलाकर मिश्री की चाशनी में सबको डालकर २ या २½ तोला के लड्डू बना लेवें। नित्य प्रातः १ या २ लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से शरीर में पुष्टि आती है।

अथवा—कन्द के चूर्ण के साथ सफेद मूसली, सालम-पंजा, असगंध, गोखरू और अकरकरा समभाग, सबका महीन चूर्ण कर शीशी में भर लेवें। भोजन के तीन घंटा



पूर्ण प्रात -साय ३-३ माशा चूर्ण गाय के गरम दूध के साथ सेवन से वीर्य की वृद्धि, पुष्टि, स्तम्भन तथा कामोत्तेजना होती है। —सिद्ध योग सग्रह

अथवा—केवल कन्द के चूर्ण को ही ६ मा तक की मात्रा मे, उत्तम घृत १ तोला मिला, दूध के साथ सेवन से उत्तम बलवृद्धि, व पुष्टि होती है। स्वप्नदोप तथा मस्तिष्क की दुर्बलता भी दूर होती है।

नोट—आग विशिष्ट योगो मे–शुक्रसजीवनी मोदक, वृष्य गुटिका तथा पाक प्रयोग देखिये।

(२) प्रसूता स्त्री के दुग्ध के लिये, तथा सधिशोथ व रक्तार्श पर—

कन्द के चूर्ण मे खाड या मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन कराने से स्त्री का शरीर पुष्ट होकर, स्तनो मे खूब दूध आता है —ग से।

सन्धिशोथ पर कन्द को जल के साथ पीस कर गरम कर लेप करते है।

रक्तार्श पर— कन्द के चूर्ण के साथ तिल का चूर्ण मिला २ से ६ मा तक की मात्रा मे शहद और दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(३) बाजीकरणार्थ—कन्द के कल्क को गूलर के फल की मात्रा मे (१ तो तक) उष्ण दूध के साथ पीनेसे यथेच्छ कामवृद्धि होती है।

अथवा—कन्द के महीन चूर्ण मे इस कन्द के ही स्वरस की भावना देकर घृत और मधु के साथ सेवन से भी खूब कामोत्तेजना होती है —सु चि, अ २६

वीर्यवृद्धि के लिये–इसके कन्द के साथ गोखरु, मूसली, आमला, सेंधानमक व पिप्पली समभाग का एकत्र चूर्ण कर उसमे चूर्ण के बराबर खाड मिला कर रखें। ६ मा तक की मात्रा मे इसे दूध के साथ सेवन करें। —हा स

शेप बाजीकरण के प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

(४) विपमज्वर पर—कन्द का रस, ईख का रस, शहद, घृत व तिल तैल १-१ भाग लेकर ८ भाग गरम किये हुये दूध मे मिलाकर पिलाने से विपमज्वर नष्ट होता है। —च द

(५) प्रमेह, भस्मक रोग, उदरशूल, बहुमूत्र, सिर दर्द दाह तृषा व दन्त रोग पर—

प्रमेह पर—कन्द के रस १० तो मे मिश्री व श्वेत जीरे का चूर्ण २-२ माशा मिलाकर सेवन करावे।

भस्मक रोग पर—(विदारी घृत) कन्द का रस और दूध ४-४ सेर, भैस का घृत १ सेर तथा जीवनीय गण का कल्क १० तोला सबको एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे घृत मात्र शेप रहने पर छान लवे। २ से ५ तोला तक की मात्रा मे इस घृत के सेवन से भस्मक रोग मे लाभ होता है। —ग से

शूलपर—कन्द के रस के साथ अनार का रस मिला कर उसमें त्रिकुट व सेधा नमक का चूर्ण मिलाकर पीने से त्रिदोषज शूल शीघ्र ही नष्ट होता है। —भा भै र

बहुमूत्र पर—कद के चूर्ण को घृत मे भूनकर उसमें लौग, इलायची, जायफल, जावित्री, पीपलामूल व दालचीनी का समभाग चूर्ण मिला, सब चूर्ण का चतुर्थांश सोठ चूर्ण और चूर्ण का १६ वा भाग पिप्पली चूर्ण मिलावे। फिर उसमे सब चूर्ण के समभाग शक्कर मिला, घृत के साथ घोटकर १ या २ तोला की गोलिया बना रखें। प्रात. तथा रात्रि मे सोते समय १–१ गोली सेवन करें। —ब० गु०।

सिर दर्द पर—कन्द को पीसकर लेप करने से दर्द दूर होता है। —ब० गु०।

दाह व तृषा पर— कन्द के साथ अनारदाना, लोध, कैथ और बिजोरे नीबू का गूदा समभाग एकत्र पीसकर सिर पर (तालू पर) लेप करने से विशेषत ज्वर जन्य दाह व तृषा की शाति होती है। —भै र

दन्त रोग पर—[विदार्यादि तैल] विदारि कन्द, मुलेठी, सिघाडा व कसेरू २–२ तोला एकत्र जल के साथ पीसकर कल्क करे। इसे २ सेर दूध तथा १६ तोला तिल मे मिला पकावें। तैल मात्र शेप रहने पर छानकर रख ले। इस तैल की नस्य लेने से दन्त रोग नष्ट होता है। —भै० र०

नोट—मात्रा—कन्द चूर्ण ३ मे ६ माशा तक।

अत्यधिक मात्रा मे यह वमनकारी है। तथा उष्ण प्रकृति वालो के लिये अहितकर है।

विशिष्ट योग—

(१) शुक्रसजीवनी मोदक—विदारीकन्द का चूर्ण ५६ तोला, सिहोडा (शाखोट) के बीज ८ तोला, धान की खील १६ तोला, मिश्री और दूध ५-५ सेर सबको एकत्र मिलाकर पकावे। अवलेह जैसा गाढा हो जाने पर नीचे उतारकर उसमे जायफल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कचूर, गठौना, अजवायन, त्रिकुट (सोठ, मिरच, पिप्पली) प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिलाकर मोदक बनावें। १ से २ तोला तक सेवन से बल, वीर्य और तेज की वृद्धि होती है। —भा भै. र

(२) वाजीकरणार्थ—

विदार्यादि योग—पिप्पली, आमला, मुनक्का व मुलैठी समभाग का चूर्ण कर (एकत्र पीसकर) उसे विदारी कन्द के रस की लगभग ७ भावनायें देकर सुखा लेवें। फिर उसमे सबके बराबर मिश्री मिलाकर सुरक्षित रखें। मात्रा ६ माशा तक शहद और घृत के साथ चाटकर दूध पीने से उत्तम वाजीकरण होता है। —ग नि

योग नं० २ (वृष्य गुटिका)—गो घृत १ भाग को १०० भाग विदारी कन्द के रस के साथ पकावे। जब थोडा सा रस अवशिष्ट रह जावे तब उतार कर उसमें १०० भाग गोदुग्ध (दुग्ध, घृत से १०० गुना हो) मिला कर पुनः पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे खाड, वंशलोचन का चूर्ण, शहद, तालमखाने का चूर्ण (पाठ मे 'इक्षुरस' शब्द है। ईक्षुरस से ईख का रस तथा तालमखाना भी दोनो का बोध होता है किंतु यहा अब इस मे ईख का रस मिलाने से गुटिका विगड जावेगी अतः ताल मखाना ही लेना उपयुक्त है) पिप्पली चूर्ण और गोखरू के बीजो का चूर्ण घृत से चतुर्थांश प्रमाण मे मिला गूलर के समान गोलियां बना लेवें। आधुनिक मात्रा इसकी ६ माशे तक पर्याप्त है। इसके सेवन से कामशक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। —च० चि० अ० २।

योग नं ३ (वृष्य योग)—विदारी कन्द चूर्ण १ प्रस्थ (६४ तोला) माष १ तुला (५ सेर), गोघृत ५ सेर, पिप्पली चूर्ण ६४ तोला, वंशलोचन चूर्ण १२८ तोला (१ सेर ४८ तोला) ताजा शहद ३ सेर १६ तोला इन सबको एकत्र मिलाकर घी से चिकने किए हुए मिट्टी के पात्र में भरकर रख देवे। अग्नि बलोचित मात्रानुसार (१ से ४ तोला तक) प्रातःकाल इसके सेवन से यथेष्ट बल वीर्य बढ़ता एवं कामोत्तेजना होती है।

—च चि अ २

(३) विदारीकन्दादि पाक—विदारीकन्द का चूर्ण आधा सेर, श्वेत मूसली, कौंच बीज, शतावर, गोखरू ६-६ तोला, छोटी इलायची, जायफल, वंशलोचन २-२ तोला, लौंग एक तोला इनका महीन चूर्ण तथा बादाम गिरी, कतरी हुई चिरौंजी, पिस्ता व कसेरू ४-४ तोला इन सब को एक सेर ताजे खोये मे मिला फिर सबको आधा सेर घृत मे मद आंचपर सेक कर पाक जमा दें। २ से ४ तोला की मात्रा मे प्रातः साय मिश्री मिलाकर पकाये हुए दूध के साथ लेवें। वीर्य स्राव, अशक्ति, धातुविकार प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं।

नोट—विदारी कद के अन्य उत्तमोत्तम पाको के योग हमारे वृहत्पाक सग्रह ग्रथ मे देखिये।

बिदारीकंद नं० २—क्षीरबिदारी (Ipomoea paniculata)

त्रिवृत्कुल (Convolvulaceae) की इस आरोहिणी प्रतानिनी (विस्तृत फैलने वाली) लता की शाखायें कुछ पीतवर्ण की। पत्र—हाथ के पंजे जैसे ३–७ इञ्च व्यास के ५–७ भागो मे विभक्त। पुष्प—नलिकाकार, गोल ½ इञ्च व्यास के अग्रभाग मे १½-२¼ इञ्च व्यास के बैगनी रंग के वर्षाकाल मे आते हैं। फल—गुच्छो में गोल छोटे छोटे, चार परत वाले। बीज—फल के भीतर एक प्रकार की पतंदार रुई से ढके हुए त्रिकोणाकार, अर्ध गोल बीज रहते है। वर्षाकाल में इन्ही बीजो से लता पैदा होती है।



कन्द—आकार प्रकार में शकरकन्द [रतालू] के जैसा वजन में अधिक से अधिक १ सेर तक वाहर से कूष्माण्ड जैसा भूरे रग का खुरदरा सा होता है। काटने पर भीतर श्वेत रग का तथा उसमें से बहुत क्षीर [दूध] निकलता है। इसीसे यह क्षीर विदारी कहाता है स्वाद में यह कुछ कसैला एव कडुआ सा तथा पिष्टमय होता है। इसकी सुखाई हुई कतरिया वजन मे बहुत हल्की तथा उनमें चक्राकार मण्डल दिखलाई देते है।

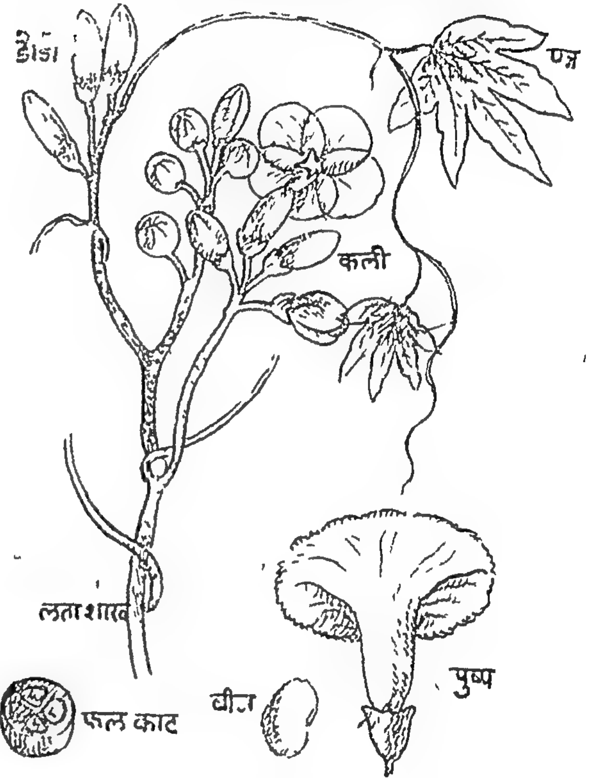
यह लता भारतवर्ष के उष्ण प्रान्तो में विशेषत. वगाल व आसाम से सीलोन तक जगलो मे तथा वागो मे वोयी हुई देखी जाती है। अत्यधिक शुष्क प्रदेशो मे तथा पश्चिम की ओर यह नही पैदा होती।

नोट—वगाल की ओर इसका ही एक भेद ट्राइकोसेन्थस-कार्डेटा (Trichosanthes Cordata) भुई कुम्हडा के नाम से प्राप्त होता है। इसकी लता वहुत दूर तक फैली हुई, काण्ड-सुदृढ एव सघन रोमाच्छादित, वहुशाखा-युक्त, पत्र—६-८ इञ्च लम्बे, गोल, पान के आकार के अनीदार, किनारे दन्तुर या कगूरेदार, पत्रवृन्त—२-४ इञ्च लम्बा, मजबूत, पुष्प—४ इञ्च लम्बी सलाका पर, वैंगनी रंग के नलिकाकार पुष्प, एक लिंग विशिष्ट एव पखुडियाँ कटे किनारे वाली, फल—चमकीला, लाल, इन्द्रायन के फल जैसा होता है। कन्द—बडा, पेठे के आकार का, पीताभ, स्वाद मे कटु, तिक्त व कसैला होता है।

इसे हिन्दी मे—भुईं कोहडा, पाताल कोहडा। बगला मे—भुईं कामडा, भू कामडा, भारवुवा कहते हैं।

यह उत्तर व पूर्व बगाल मे तथा पूर्व हिमालय के तल प्रदेशो मे और आसाम से पेग् तक, एव खासिया पहाड की तराइयो मे नेपाल मे अधिक पाया जाता है।

इसके कन्द और पुष्प औषधि कार्य में आते हैं। कद उत्तम शक्तिवर्धक होता है। विहार (पटना) की ओर इसके शुष्क फलो का चूर्ण १ रत्ती से २॥ रत्ती तक की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप मे व्यवहृत होता है। ढाका की ओर इसके शुष्क कन्द का चूर्ण ५ रत्ती की मात्रा मे प्लीहा, यकृत एव उदर के विकारो में दिया जाता है। ताजे कन्द को पीसकर तैल में मिलाकर श्वेत कुष्ठ



पर तथा जखमो पर लगाते है। —भारतीय बनौषधि

शेष गुण धर्म प्रस्तुत प्रसग के विदारी कन्द न० २ के अनुसार ही है।

प्रस्तुत प्रसग के कन्द न० २ के नाम, गुण धर्मादि

नाम—

स०—क्षीर विदारी, क्षीर वल्ली, पयस्विनी। हिन्दी—विदारीकन्द, बिलाईकन्द, भुईं कुम्हडा। म०—दूध भुईं कोहडा, हडधाकादा। गु०—विदारीकद। व०—भुईंकामडा, विलाई कन्द। ले०—आयपोमीया पेनिकुलेटा, आयपोमीया डिजिटाटा (Ipomoea Digitata) कानव्हलव्हुलस पेनिकुलेटा (connvolvulus-Paniculata)।

रासायनिक संगठन—

इस कन्द में पिष्टमय पदार्थ (स्टार्च) अधिक होता

है। इसके अतिरिक्त शर्करा १० % एवं अत्यल्प प्रमाण मे निसोथ में पायी जाने वाली आनुलोमिक (मृदुरेचक) राल होती है।

प्रयोज्याग–कन्द और पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग––

कन्द––कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, अनुलोमक, पित्तसारक, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक, रसायन, वल्य, मूत्रल कफकारक, कांतिवर्धक, स्तन्यजनक, स्वर-शोधक, क्षुधावर्धक, पाचन तथा पित्त विकार, रक्तविकार, वातजदाह, प्रमेह आदि मे प्रयुक्त होता है।

यह शरीर के वजन को बढाता है। किसी भी कारण से शिथिलता आयी हो, वजन कम हुआ हो तो इसके चूर्ण को घृत मे भूनकर दूध और शर्करा के साथ मिलाकर सेवन से शीघ्र वजन बढता है। काडलिवर आईल (तैल) की अपेक्षा इससे अधिक उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन के समय न किसी प्रकार की घृणा होती है, और न शरीर मे कोई दुर्गन्ध आती है। प्रौढ मनुष्यो के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। यकृत एव प्लीहावृद्धि में इसका चूर्ण देने से पित्तस्राव ठीक होकर शौच साफ होता है। दुग्ध वृद्धि के लिए इसे द्राक्षासव के साथ देते हैं।

(१) कृशता निवारणार्थ तथा अनियमित मासिक धर्म पर–धूप शुष्क कर कन्द के महीन चूर्ण को मक्खन और शक्कर के साथ तल कर सेवन करने से कृशता दूर होती है, मेद बढता है तथा इसके ही सेवन से स्त्रियो का अनियमित ऋतुस्राव नियमित यथायोग्य प्रमाण में होने लग जाता है।

(२) स्वप्नदोष तथा मूत्रकृच्छ्र और पित्तज शूल पर––इसके ताजे कन्द के रस में जीरा चूर्ण और शक्कर मिलाकर सेवन से स्वप्नदोष में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर–इसके कन्द के साथ समभाग गोखरू, मुलैठी व नागकेशर लेकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे शहद मिलाकर सेवन कराते है।

पित्तजशूल में–कन्द के रस में मधु मिलाकर पिलाते हैं।

(३) बालको की निर्बलता पर––निर्बल, कृश तथ जिसकी पाचन क्रिया ठीक न हो ऐसे वालक को कन्द का चूर्ण, गेहू और जो का आटा समभाग एकत्र मिला घी मे भूनकर उसमें घी व मधु विषम भाग तथा दूध थोडी मिश्री मिला हलुवा जैसा पका कर १ या २ तोला की मात्रा में खिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा कन्द चूर्ण १ माशा को शहद के साथ चटाते रहने से बच्चो की निर्बलता दूर होती है तथा इसके चूर्ण मे पिप्पली चूर्ण व मधु मिलाकर चटाने से पाचन शक्ति बढती है।

पुष्प––इसके पुष्प-गुरु, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, कामोद्दीपक, कफकर, वातवर्धक और पित्तनाशक हैं।

शुष्क पुष्प का चूर्ण १ से २॥ रत्ती की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है।

नोट––मात्रा – कन्द चूर्ण, १ से ६ माशा तक।

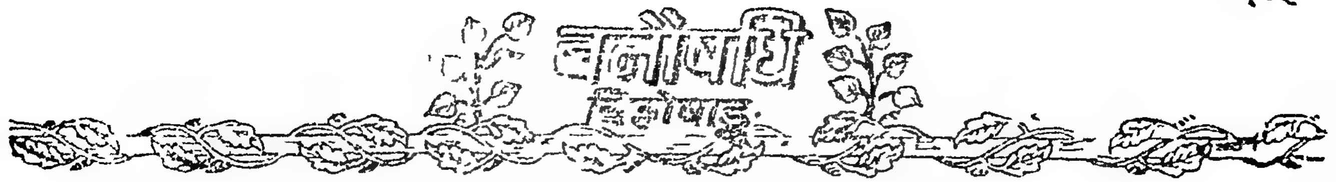
विशिष्ट योग––

बिदारिकन्दादि क्वाथ––बिदारीकन्द, सरिवन, छोटा गोखरू, सतावरी, अनन्तमूल (सारिवा), पुनर्नवामूल, और वडी कटेरी मूल समभाग जौकुट कर २॥ तोला चूर्ण को ४० तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ५ तोला तक की मात्रा में, दिन मे दो वार प्रतिदिन पिलाने से ज्वर, कफ विकारतथा फुफ्फुस शोथ युक्त विकार (ब्राका-इटिस) मे विशेष लाभ होता है। ––नाडकर्णी

विधारा* नं० १ (Rourea Santaloides)

गुडूच्यादिवर्ग एव कोनोरेसी [Conoracee] कुल की इस बडी विस्तारवाली बडे-बडे वृक्षो पर चढने वाली, वडी-वडी शाखा प्रशाखा युक्त लता की शाखायें बिलकुल त्रिवृत [निशोथ] की शाखा जैसी, किंचित श्वेत मटमैली

* 'वृद्ध दारक' और 'जीर्णदारु' नाम से इसके दो भेद हैं। प्रस्तुत प्रसग के विधारा (वृद्धदारक) की लता खूब लम्बी होती है। अत यह दीर्घवल्लरी तथा वृद्धावस्था का नाशक (वृद्धत्व दारक नाशक य स.) होने से



होती हैं । अत कई बार इस विधारा और निशोथ मे भ्रम हो जाता है । तथा बगाल के कई स्थानो के अनजान वैद्यगण त्रिवृत्त [निशोथ] को ही विधारा कहते है । कानपुर की ओर भी निशोथ लता के टुकडे विधारा नाम से विकते है । काशी बनारस के बाजारो मे प्राय त्रिवृत्त [निशोथ] कुल के ही आइपोमिया पेटालायडी (Ipomoea Petaloidae) नामक लता विशेष के टुकडे विधारा नाम से बेचे जाते है । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे नोट न० ३ देखिये ।

ध्यान रहे निशोथ की लता अधिक से अधिक तीस या चालीस फुट लम्बी होती है, किन्तु प्रस्तुत प्रसग की विधारा की लता १५० से २०० फुट तक लम्बी होती है । दोनो के पत्रो में बहुत कुछ साम्य है । निशोथ के फल कालीमिर्च से कुछ बडे बिलकुल गोल व चिकने होते है तथा मूल [जड] महीन और लम्बान मे बहुत थोडी होती है । विधारा की मूल बहुत बडी तथा जमीन मे बहुत ही गहरी गई हुई होती है, जैसे कि दक्षिण में वाकेरी भाजे (अश्मभेदी) की होती है । इसीसे मराठी भाषा मे किसी-किसी ने विधारा को ही 'वाकेरी' नाम दे दिया है । यह मूल देखने मे समुद्रशोप की मूल जैसी ही होती है । तथा दूसरा भेद यह है कि निशोथ अत्यन्त भेदक (दस्तावर) है । विधारा वैसा नही है । पीछे निशोथ का प्रकरण देखें ।

पत्र—विषमवर्ती, दीर्घवर्तुलाकार, अनीदार, गिलोय पत्र या बगलापान जैसे, अधिक सिरा, उपसिरा युक्त, ऊपरी भाग हरा, चिकना, पृष्ठ भाग किंचित श्वेत मखमल जैसा होता है । पत्र को हाथ मे पकडने से बहुत ही मुलायम मालूम देता है । महाराष्ट्र मे कोमल पत्तो की पकौडियां व शाक बनाते हैं ।

पत्र वृन्त या डठल—४-५ इञ्च तक लम्बे, अग्रभाग मे चपटे, बडो एव कुछ काले रग की दो ग्रन्थियुक्त होते है । डठल को तोडने से दूध जैसा द्रव पदार्थ निकलता है। इस प्रकार का दूध समुद्रशोष के पत्र वृन्त से नही निकलता ।

पुष्प—इसकी लता पर पुष्प बारहो महीने गुच्छो में लदे रहते है । डालियो के अन्त में स्थान-स्थान पर पुष्पो का गुच्छा होता है । ये पुष्प कुछ बडे, भीतर से किंचित लाल या गुलाबी रग के, बाहर से श्वेत वर्ण के, आकार प्रकार में प्राय समुद्रशोप के फल जैसे ही होते है । इनमे एक प्रकार की सुगन्ध भी होती है । पुष्पवृन्त पत्र वृन्त की अपेक्षा कुछ बडे, जिसके आगे छत्राकार फूलो का गुच्छा ऊपर को उठा हुआ होता है तथा उसके अन्दर के कोटर मे पुष्प होते हैं इसीसे इसे अन्त कोटर पुष्पी भी कहते हैं । पुष्पो की कलिया बहुत सी निकलती है । जो आकार प्रकार में बडी, गोल, श्वेत रेखायुक्त एव अग्रभाग

वृद्धदारक [दारुक] वृद्ध दारयतीति] कहलाता है । इसकी लता दीर्घकाल तक चिरस्थायी रहने से इसे 'वृद्ध' कहा गया है । लता की आकृति बकरी के आन्त्र सदृश टेढी-मेढी उत्सेध युक्त होने से इसे अजान्त्री या छागलान्त्रिका कहते हैं । पुष्प बडा एव भीतर के भाग मे कोटर जैसा होने से कोटर पुष्पी कहते हैं ।

'जीर्णदारु' उक्त वृद्ध दारुक का ही एक भेद विशेष है इसकी लता भी सुदीर्घ ही होती तथा अधिक काल तक रहती है । दोनो में भेद इतना ही है कि उक्त विधारा प्राय हर प्रकार की भूमि में होता है, पत्ते बडे अधिक सिरायुक्त होते, फूल कुछ छोटे, कलिया प्राय गोल एव रेखायुक्त, फल शुष्क प्राय होते हैं । तथा यह जीर्णदारु ककरीली, रेतीली एव चिकनी ऐसी मिश्रित भूमि में होता है, पत्ते अपेक्षाकृत कुछ छोटे कम सिरायुक्त व पुष्प कुछ बडे, कलिया छुरी की धार जैसी एव रेखा रहित और फल कोमल होते है । इसका शेष वर्णन ऊपर के नोट न० १ में देखिये ।

आधुनिक मतभेद—अधिकाश मे आधुनिक वैज्ञानिक 'समुद्रशोप' को ही विधारा मानते हैं । तथा दक्षिण मे बबई, सूरत आदि के बाजारो में वरधारा या विधारा के नाम से समुद्रशोप या फाग की मूल या शाखाओ के टुकडे ही प्राय देखने मे आते हैं । इसका एक मात्र कारण यही है कि समुद्रशोप और विधारा में बहुत कुछ समानता पाई जाती है किंतु दोनो को एक ही माना निराभ्रम है । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे इसका विस्तृत वर्णन देखिए सक्षेप मे खास पहिचान यह है कि विधारा के ताजे डठल को तोडने से उसमें दूध निकलता है समुद्रशोप मे नही निकलता ।

मे बहुत सूक्ष्म या पतली होती है। ये कलियां शीघ्र ही झड जाने वाली होती हैं।

फल—गोल, सिंगोडा के फल जैसे ½ से ¾ इन्च तक लम्बे व चिकने प्राय गुच्छों मे लगते हैं। पकने पर नारंगी वर्ण के लाल स्वाद मे मधुर होते है। पके हुए फल किसी खास उपाय के बिना नही टूटते। वैसे ये स्वय टुकडे-टुकडे होकर फट जाते हैं। ये चिरस्थायी होते हैं। इसी से इसे वृद्ध फल भी कहते हैं। प्रत्येक फल के भीतर एक या दो बीज होते हैं।

इसकी लता विशेषत चित्रकूट के पास का विन्ध्य-प्रदेश, बंगाल तथा दक्षिण भारत के विशेषत खानदेश, कोकण आदि प्रान्तो मे लेकर ट्रावनकोर तक और सीलोन के जंगलो में पायी जाती है।

नोट न० १—इसका जो भेद जीर्णदारु है, उसके सस्कृत मे जीर्णा, फजी, सूक्ष्म पत्रा, सुपुष्पिका, अजरा आदि पर्याय नाम हैं। हिन्दी मे विधारा भेद, काला विधारा तथा बंगला मे विद्धडक कहते हैं। उक्त विधारे का जो शीर्षोक्त लेटिन नाम है वही इसका भी है।

इसकी बहुवर्षायु लता वृक्षो पर चारो ओर से लिपटी हुई, लम्बाई मे उक्त विधारे की अपेक्षा छोटी, कोमल, लता की पसरी हुई शाखायें कुछ कृष्ण वर्ण या जामुन के रग की गोल गोल, छाल-हलके बैंगनी रग की चमकीली होती है। इसकी ताजी छाल या लकडी भी देखने मे ऐसी मालूम देती है कि मानो बहुत वर्षो की पुरानी जीर्ण शीर्ण होगई हो। इसीसे शायद यह 'जीर्णदारु' या जीर्ण वल्कला कहलाती है।

पत्र—इसकी टहनियों की विषमवर्ती सीको पर—पत्ते ३ से ७ तक उक्त विधारा पत्र की अपेक्षा कुछ छोटे, गोलाकार, अनीदार तथा कडे होते हैं। पत्र के मध्य भाग मे हलका सब्जरग का रुआ सा होता है। पत्रवृन्त-लम्बा, गोल तथा कुछ रोमश होता है। वृन्त के पास की ग्रन्थिया प्राय उक्त विधारा पत्रवृन्त की ग्रन्थियो जैसी ही होती हैं। भेद इतना ही है कि ये हरे रग की होती हैं।

पुष्प—चौथाई इन्च के घेरे में (व्यास के), पाच दल वाले, प्राय श्वेत गुलवास या निसोथ के पुष्प जैसे भाद्रपद मास मे आते हैं। कहीं कहीं वैशाख से कार्तिक तक इसमें फूल रहते हैं।

फल—समुद्रशोष के फल जैसे ही किंतु आकार में छोटे कोमल, गुठली युक्त होते हैं। फल के पकने पर अन्दर जो बीज निकलते हैं, उन पर कोमल श्वेत पदार्थ का वेष्टन होता है, जो स्वाद में मधुर मालूम देता है। प्रत्येक फल में २ से ४ तक बीज होते हैं।

इस लता के कोमल पत्र या फलों को तोडने पर उन में से दूध निकलता है। वनोषधि अन्वेषक वैद्य हीरामण जगले का कथन है कि दुष्काल के समय गरीब लोग इसके पत्रो पर ही अथवा जीवन निर्वाह करते हैं। अन्य समय मे भी विशेषत आषाढ मास में कोमल पत्रो की पकौडिया बनाई जाती है। यह लता खानदेश में सर्वत्र पायी जाती है तथा फाग या फजिका नाम से प्रख्यात है। निशोथ कुल की फजी या फाग जिसका वर्णन पीछे यथा स्थान किया गया है, उससे मिलती जुलती ही यह लता होती है।

यह लता खडकीली, ककरीली, पथरीली जमीन पर प्राय बम्बई के नीचे पश्चिम घाट में यथा कोकण से ट्रावनकोर तक के प्रदेश में तथा मलाबार व सीलोन में बहुतायत से पाई जाती है।

गुणधर्म मे यह कुछ अल्पवीर्य है *। शेष गुण धर्म प्रस्तुत प्रसग के विधारा जैसे ही मधुर, पिच्छल (लसदार) कफ वातनाशक, बल्य तथा खासी और आम दोष को दूर करने वाला है। रक्त विकारो को दूर करने मे यह सालसापरेला के समान गुणकारी है।

नोट न २—चरक मे इसे अधोगुणा तथा अन्त कोटर पुष्पी इन दो पर्यायो से विरेचनार्थ प्रयोग किया गया है तथा इसके उक्त दूसरे भेद 'जीर्णदारु' का प्रयोग 'फजी' नाम से किया गया है। सुश्रुत में वृद्धदारुक के लिये 'छगलान्त्री' नाम दिया गया है, तथा जीर्णदारु को चरक के अनुसार ही फजी नाम दिया गया है।

---

* वृद्धदारु द्वय गोल्य पिच्छिल कफवात हृत।
बल्य कासामदोपघ्न द्वितीय स्वल्प वीर्य कम् ॥
—राज निघण्टु

प्रस्तुत प्रसग के विधारा के नाम, गुण धर्मादि—

नाम--

स०—वृद्धदारुक, आवेगी, दीर्घवल्लरी, वृद्ध (वृद्धा) अजान्त्री, छागलान्त्रिका इ.। हि०—विधारा, विधापरा, बधारा इ०। म०—वरधारा, म्हैसवेल, म्हातारीचा वेल वाढता देवदार, सावरवेल इ०। गु०—वरधारो। व०—बिताडक, वितरका, विधारका इ०। ले०—रोरिया सेंटेलाइडस। श्रं० मे भी इसका यही नाम है।

प्रयोज्याङ्ग—जड या मूल की डंडी।

गुण धर्म व प्रयोग-

लघु कटु, तिक्त, कषाय, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, रसायन, मेधाजनक (बुद्धिवर्धक), स्वर को शुद्ध करने वाला, सारक, दीपक, कातिजनक, कामोद्दीपक, धातुजनक बल्य, रुचिकारक, रसायन, तथा उपदश, पाडु, क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, वातरक्त, आमवात, वातविकार, शोथ एव कफविकार आदि मे प्रयुक्त होता है।

आधुनिक मतानुसार—इसकी जड का उपयोग कटु पौष्टिक वस्तु की तरह किया जाता है। यह रसायन, बलकारक, तथा वात और फिरङ्ग रोग की अमोघ औषधि मानी गई है। यह सधिवात, स्कर्वी, मधु प्रमेह तथा फुफ्फुस सम्बन्धी शिकायतो में उपयोगी है। व्रण, फोडे, फुसी तथा अन्य चर्म रोगो पर बाह्य उपचार के काम मे ली जाती है।

यूनानी मतानुसार—उष्ण व रूक्ष है। कफ को दस्तो की राह निकालता, कामशक्ति को बढाता, वातकफ व रक्त दोपो को मिटाता, कब्ज दूर करता है। सुजाक, सूजन, गठिया व गृध्रसी मे लाभदायक है। ३½ माशा की मात्रा में इसे देने से जलोदर मे फायदा होता है। इसमे जो चेप (दूध) होता है, उसके सेवन से रक्त शुद्ध होता है। शरीर सगठन या वीर्य सम्बन्धी खराबी को दूर करने के लिए इसके चूर्ण को दूध के साथ देते है।

इसका प्रतिनिधि असगव है।

(१) रसायनार्थ—मूल को छायाशुष्क कर, महीन चूर्ण कर सतावरी के रस मे (अथवा क्वाथ मे) भिगोकर धूप मे सुखावे। अच्छी प्रकार सूख जाने पर पुन उसे सतावरी के रस या क्वाथ में घोट कर धूप में सुखावे। इस प्रकार ७ भावनाये देकर खूब महीन कर काच की शीशी में सुरक्षित रखे।

प्रथम हलका विरेचन देकर पेट साफ हो जाने पर इसकी मात्रा २ माशा से १ तोला तक गोघृत (६ माशा से २½ तोला) में मिला, नित्य प्रात साय, रसायन विधि से, एक मास तक या ४० दिन तक सेवन करने से बल वीर्य की वृद्धि होकर बुद्धि, मेधा, स्मरण शक्ति बढेगी तथा वली पलित आदि वृद्धावस्था के विकार दूर होगे। इसके सेवन काल में दूध, भात का भोजन करें। — भै० र०।

अथवा—इसके चूर्ण को आमला स्वरस की भावनायें देकर घृत के साथ या शहद व घृत के साथ अथवा गोदुग्ध के साथ एक मास तक विधिपूर्वक सेवन से रोगरहित दीर्घायु प्राप्त होती है।¹

अथवा—इसके चूर्ण के साथ समभाग असगन्ध का चूर्ण मिला घृत के पात्र मे रख दें। एक तोला तक की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से विशेष वाजीकरण होता है। कामशक्ति खूब बढती है। यदि इसका सेवन करते हुए ब्रह्मचर्य या सयमपूर्वक रहे तो वली (बालो का झडना या त्वचा मे झुरियां पडना) एव पलित (बालो का श्वेत होना) रोग नही हो पाते।

—शार्ङ्गधर।

अथवा—इसकी जड को बसन्त ऋतु मे उखाड कर धूप में शुष्ककर खूब महीन चूर्ण कर, गोघृत से तरकर घृत पात्र में भरकर मुख बन्द कर अनाज के ढेर मे १५ दिन तक दबाकर रक्खें। पश्चात् निकालकर एक तोला तक की मात्रा मे सेवन कर ऊपर से दूध पीवें। तथा औषध के पच जाने पर घृतयुक्त दूध का आहार करें।

—ग० नि०।

---

¹ 'वाजिवेगो दीर्घप्राण सुरूपो भास्करद्युति। योलिह्यात्सर्पिपा चूर्ण वृद्धदारुक मूलजम्॥
लिहन् वा मधुसर्पिभ्या धात्री स्वरस भावितम्। क्षीरेण वा पिबेन्मास शत जीवेदरुक सुखी॥' (सोढल)

इसके सेवन से वृद्धावस्था में बहुत लाभ होता है। बालको की कुरूपता दूर होकर उनका स्वर सुस्वरता, टूटी हुई हड्डी जुड जाती एव रक्तदोष, अपस्मार, ग्रह, उन्मादादि मे लाभ होता है।

(२) श्लीपद, स्थूलता, आमवात आदि पर—

इसकी मूल ५ तोला तथा सोठ, कालीमिरच और पिप्पली एक-एक तोला सबका एकत्र कल्क कर उसमे एक सेर घृत और चार सेर काजी मिला, मद आग पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर, छानकर रख लें। मात्रा १-२ तोला तक सेवन करने से श्लीपद व आमवात नष्ट होता है, अग्नि दीप्त होती है।

यदि साथ ही साथ शोथ या शूल, गृध्रसी या पाडु रोग हो, तो उक्त प्रयोग के कल्क मे त्रिफला, पुनर्नवा मूल दारुहलदी व चित्रक एक-एक तोला मिला लेवें। तथा घृत सिद्ध कर ले। यह घृत उक्त सब विकारो को नष्ट कर बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि करता है।

श्लीपद मे—केवल इसकी मूल का चूर्ण ही काजी या गोमूत्र के साथ सेवन करते रहने से भी लाभ होता है।

आगे विशिष्ट योगो में 'वृद्ध दारुकादि चूर्ण' का प्रयोग देखें।

दूषित वात विकार, उदर विकार और अर्श पर—

इसके मूल का चूर्ण ७ भाग तथा त्रिफला, पिप्पली, दारुहलदी, सोठ और पुनर्नवा मूल एक-एक भाग, सवका महीन चूर्ण कर, एकत्र अच्छी तरह खरल कर रखें। इसे १ से ६ माशा तक काजी के साथ सेवन से दुष्ट वायु, गुल्म, उदर विकार एव गर विषादि का नाश होता है। औषध के पच जाने पर यथेच्छ आहार कर सकते है।

—ग० नि०

अथवा—उदर विकार पर इसका मूल, छोटी हर्र (वालू मे भूनी हुई), सौफ, अजवायन, कालीमिरच, सेंधा नमक, श्वेतजीरा, धनिया व आमला समभाग महीन चूर्ण करें। ६ माशा की मात्रा मे प्रात साय जल से लेवे। उदर के सर्व विकारो मे लाभ होता है।

अर्श पर—वृद्धदारुक मोदक—विधारा, शुद्ध भिलावा और सोठ का चूर्ण एक-एक भाग तथा गुड सवके बरावर लेकर एकत्र घोट कर (३ से ६ माशा तक) मोदक बना लेवे। उसके सेवन से ६ प्रकार का अर्श रोग नष्ट हो जाता है।

—शा. स

(४) वातरोग, उपदश तथा मूत्राशय की दाह पर—

इसके मूल के चूर्ण को, यथोचित मात्रा मे गोदुग्ध, रेंडी तैल या गोमूत्र या मद्य या आरनाल काजी, इनमें से किसी भी एक उचित अनुपान के साथ सेवन से नानाप्रकार के वात रोगो का शमन होता है।

सधिवात मे—विधारा २ भाग और शतावरी एक भाग इन दोनो का क्वाथ सेवन कराते हैं। उससे गठिया (आमवात) भी दूर होता है।

ऊरुस्तम्भ पर—विधारा चूर्ण दो भाग और सोठ चूर्ण एक भाग, दोनो को एकत्र खरल कर लें। एक से चार माशा तक की मात्रा में प्रात साय गरम जल से सेवन करावे।

—ग० नि०

उपदश पर—विधारे के चूर्ण को, त्रिफला के क्वाथ के साथ, नित्य प्रात सेवन कराने से लाभ होता है।

मूत्राशय की दाह पर—विधारे का क्वाथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। उससे प्रतिश्याय भी दूर होता है।

यदि विधारा और चिरायता समभाग का चूर्ण मात्रा दो तोला तक का ४० तोला जल में अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराया जाय तो पित्त की ऊष्मा शीघ्र शात होती है। तथा कुछ दिन के सेवन से रक्त दोष भी मिट जाता है।

—सकलित

(५) स्त्री रोग तथा बाल रोग पर—

श्वेतप्रदर पर—इसकी जड़ के साथ लोध और समुद्र शोष (आगे के प्रकरण मे वर्णित विधारा न. २) की जड समभाग लेकर महीन चूर्ण कर उसमे चूर्ण के बराबर चीनी (शक्कर) मिलाकर रखें। ६ माशा की मात्रा मे गो दुग्ध के साथ सेवन करावें। श्वेत प्रदर मे अति हितकर है।

—सि० भै० म० मा०

अथवा—विधारे का चूर्ण और असगध का चूरा ८-८ भाग, बडी इलायची चूरा व कुक्कुटाण्डकपाल चूरा २-२ भाग, वग भस्म १ भाग और मिश्री चूरा ८ भाग सबको एकत्र मिलाकर शीशी मे रखें। प्रात साय ४-४ माशे देकर



ऊपर से गो दुग्ध पिलावें। श्वेत प्रदर वाली स्त्री को २ से ६ मास तक या रोग अच्छा होने तक इस चूर्ण का सेवन करायें। —सिद्ध योग सग्रह

शुष्क गर्भ वृद्धि के लिए—बिधारा और गुडहल के पुष्प दोनो को गोदुग्ध के साथ पीसकर उसमे मिश्री मिला, प्रात काल ७ दिन तक पिलायें। विशेषत मासिक धर्म के बाद चौथे दिन मे ७ दिन तक पिलाने से अवश्य ही लाभ होता है। —व० गु०

अथवा—बिधारा मूल चर्ण १ से ४ माशा तक प्रति दिन प्रात बकरी के ताजे दूध के साथ पिलाने से भी लाभ होता है।

पुत्रोत्पत्ति के लिये वृद्धदारुक घृत—१ सेर गो घृत मे १० तोला बिधारे की जड का कल्क और ४ सेर गोदुग्ध मिलाकर मन्द आग पर पकायें। घी मात्र शेष रहने पर छान ले। यह घी अत्यन्त वृष्य है। इसे पुत्र की अभिलाषा वाली स्त्री और साथ ही साथ पुरुष को भी सेवन करना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला तक गोदुग्ध के साथ। —व० से०

बालको के नेत्र रोग 'कुकूणक' (क्षीर दोष जन्य-बालको के नेत्रो के पलक मे होने वाला रोग, कोथ, कुमर्द Ophthalmia in children) पर—बिधारे के स्वरस मे उत्तम शहद मिलाकर नेत्रो के भीतर पलको मे लगाने से यह रोग नष्ट होता है। —व० से०

नोट—मात्रा—मूल चूर्ण १ से ६ माशा तक।

पत्र—इसके पत्रो के विषय मे (जो कहा जाता है कि बिधारे के पत्र का पृष्ठ भाग खुजली पैदा करता है, तथा उसे व्रण या फोडे पर बाधने या चिपकाने से फोडा शीघ्र पक कर फूट जाता है। ध्यान रहे ये सब गुण धर्म समुद्र शोष के पत्ते मे विशेषता से पाये जाते है, न कि प्रस्तुत प्रसग के बिधारा पत्र मे) आगे बिधारा न० २ (समुद्र शोष) का प्रकरण देखिये।

किन्तु मूत्रकृच्छ्र मे—बिधारा पत्र को कुचल कर जल मे भिगोने से जल के कुछ गाढे हो जाने पर उसमे मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्र कृच्छ्र या सुजाक मे लाभ होते देखा गया है।

विशिष्ट योग—

(१) वृद्धदारुक समचर्ण—बिधारा मूल चूर्ण १२ भाग तथा त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, वरन की छाल, गोखरू, गोरखमुण्डी और गिलोय ये १२ द्रव्य प्रत्येक १-१ भाग सबका चूर्ण एकत्र खरल कर रक्खे। मात्रा १ से ३ माशा तक काजी के साथ सेवन करे। औषधि पच जाने पर बिना किसी विशेष परहेज के यथा रुचि आहार कर सकते है। इसके सेवन से श्लीपद, स्थूलता, आमवात, गुल्म, कुष्ठ, अरुचि एव वात कफ ज्वर नष्ट होता है। —भै० र०

अथवा—लघु वृद्धदारुक सम चूर्ण—पिप्पली, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, सोठ और पुनर्नवा मूल ८-८ तोला तथा बिधारा मूल सबके बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बना ले।

मात्रा ३ माशा तक काजी के साथ सेवन से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा और भस्मक रोग नष्ट होता है तथा अग्नि दीप्त होती है। इस पर भी किसी विशेष परहेज की आवश्यकता नही है। —ग० नि०

(२) वृद्धदारुकाद्य घृत—बिधारामूल ८ तोला, सोठ ४ तोला तथा पिप्पली, हरड, बहेडा, आमला, दारुहल्दी, चित्रक व पुनर्नवा मूल २-२ तोला सबको एकत्र पीसकर कल्क करे। ६४ तोला घी मे यह कल्क तथा घी से चौगुना जल मिलाकर मन्द आग पर पकाये। घी मात्र शेष रहने पर छान ले। यह घी श्लीपद, गृध्रसी, शोथ, शूल, पाण्डु और आमवात को नष्ट कर बल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि करता है। —भा० भै० र०

(३) बिधारा पाक—बिधारा मूल ४० तोला जौकुट कर ४ सेर जल मे पकावे। १सेर जल शेष रहने पर छान कर इस क्वाथ जल मे मिश्री ४०तोला डाल चासनी करें। इस चाशनी में घी २१ तोला तथा घी मे भुना हुआ खोया २० तोला मदाग्नि पर रख उसमे अकरकरा, बिधारा, दोनो मूसली, सतावर, कौच बीज, असगन्ध और ताल-मखाना प्रत्येक १-१ तोला महीन चूर्ण कर अच्छी तरह

मिला नीचे उतार कर जमा देवें या २॥ तोला के मोदक बना ले। प्रात साय इसे गोदुग्ध के साथ सेवन से प्रमेह, स्वप्न मे धातुस्राव, वीर्य की कमी आदि विकार दूर होकर रक्त शुद्ध होता एव शरीर बलवान व पुष्ट होता है।

नोट—शेष अन्य पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ में देखिये।

विधारा नं. २ (समुद्रशोष)–Argyreia Speciosa

त्रिवृत कुल (Convolvulaceae) की इस विस्तृत आरोहिणी लता के काण्ड व शाखायें-कड़ी, गोलाकार, स्थूल रुई जैसे श्वेत चमकीले रोमो से आच्छादित, पत्र–लट्वाकार ६-१२ इञ्च व्यास के, ४-१२ इञ्च लम्बे, अधिक चौडे, तीक्ष्णाग्र या कुण्ठिताग्र, ऊपर के पृष्ठ भाग मे चिकने, अध भाग मखमली श्वेताभ रोमो से व्याप्त, पत्र-वृन्त ३-६ इञ्च लम्बा, पुष्प-गुच्छो मे घटाकृति, १½-३ इञ्च लम्बे बाह्य दल श्वेत रक्ताभ रोमश, आभ्यन्तर दल बेंगनी या गुलाबी रङ्ग के होते हैं। ये पुष्प रात्रि मे विकसित होते तथा कुछ सुगन्धित होते हैं। फल–गुच्छो मे १ इञ्च लम्बे, गोल किंचित नोकयुक्त, चिकने, चमकीले, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर पीताभ धूसर होकर फट जाने पर भीतर के बीज श्वेत भूरे रङ्ग के त्रिकोणाकार बाहर निकल पडते हैं। वर्षाऋतु से शीत काल तक पुष्प तथा बाद में फल आते है।

यह पश्चिमी शुष्क प्रदेशो को छोडकर भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। बागो मे भी लगाया जाता है।

नोट–इस लता की जड व काण्ड के ४-६ अगुल लम्बे टुकडे विधारा के नाम से बाजारो में बिकते हैं।

समुदरसोख (Salvia Plebeia) नामक जो इससे भिन्न बूटी है उसका सचित्र वर्णन 'कमरकस' के प्रकरण में, भाग २ मे देखिये।

सुश्रुत के अधोभागहर गण मे लिया गया है।

नाम—

स –वृद्धदार, समुद्रशोष, छागान्त्री इ। हि–विधारा, समुद्रशोष, घावपत्ता, घावबेल इ। म --समुद्रशोक। गु-- समदर शोष, वरधारो। व.--बिजतारक। अ -एलेफेन्ट क्रीपर (Elephant creeper) ले--आर्जिरिया स्पिसिओजा लेट्सोमिया नर्व्होसा (Lettsomia Nervosa)।



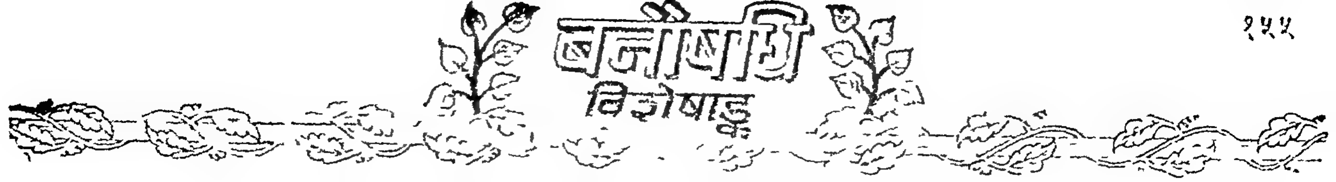
रासायनिक संगठन—

इसमे क्वाथ द्रव्य (टेनिन) और एक प्रकार की अम्ल राल पाई जाती है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, काण्ड, पत्र व बीज। बीजो को दोलायन्त्र विधि से दूध मे ३ घटे तक स्वेदित कर लेने से उनकी शुद्धि एव उनके गुणो की वृद्धि होती है। बीजो से तैल भी निकाला जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

मूल व काण्ड—लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, मधुर



विपाक, उष्ण वीर्य, कफवातशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन,रेचन, हृद्य, मेध्य, नाडी बल्य, कफघ्न, कठ्य, शुक्रजनन, बल्य, गर्भाशय शोथ तथा मस्तिष्क दौर्बल्य, वातव्याधि,आमवात, स्नायु के विकार, अग्निमाद्य, आमदोष, विबन्ध, अर्श, हृद्रोग, कास, स्वरभेद, शुक्रदौर्बल्य, प्रमेह, क्षय, शोष आदि मे प्रयुक्त होता है।

मूल या काण्ड का चूर्ण २ से ६ माशा तक गोदुग्ध या गरम जल के साथ प्राय साय लेने से दस्त साफ होता तथा आमवात और स्नायुविकारो मे लाभ होता है। बंगाल की ओर पौष्टिक रूप मे इसका प्रयोग करते हैं।

(१) सधियो की दाहयुक्त पीड़ा तथा उपदश मे इसके चूर्ण को दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(२) श्वेत प्रदर पर-इसके चूर्ण मे समभाग शक्कर मिलाकर १ तोला तक की मात्रा मे एक घूट ताजे जल के साथ दिन मे ३ बार सेवन कराते हैं। इससे योनिशूल में लाभ होता है।

(३) रक्तदोष नाशार्थ-इसकी जड २½ तोला को जौकुट कर २० तोला जल मे पकाकर ५ तोला शेष रहने पर छान कर उसमे शहद ३ माशा मिलाकर सेवन कराते है।

(४) श्लीपद (फीलपाव) पर-इसकी जड १ तोला पीसकर २½ तोला गोमूत्र मे छानकर उसमे ४ तोला शहद मिलाकर रोग की प्रारम्भावस्था में ही सेवन कराने से लाभ होता है।

(५) आन्त्र वृद्धि पर—इसकी जड को गोमूत्र के साथ खूब महीन पीसकर थोडा सेधा नमक मिला,गरम कर सूजन पर अर्थात उतरी हुई आन पर लेपकर १ घण्टा बाद लेप को साफ कर महुआ के तेल मे दसवा भाग कपूर मिला कुछ गरम कर मालिश करें। पश्चात् सभालू (निर्गुण्डी) की पत्तियो को पानी में उबालकर उस पानी में सेंधा नमक मिला उसमें कपडा तर कर चौपरत कर सुहाता हुआ सेंक करे। साथ ही साथ रोगी को छोटी हर्र को रेंडी तेल मे गर्म कर हर्र यदि १० तोला हो तो उस में काला नमक, अजवायन २-२ तोला हीग, भुनी हुई १ तोला मिला खूब एकत्र महीन कर ६-६ माशा प्रात साय खाकर ऊपर से २० तोला गरम दूध मे गो मूत्र और शक्कर प्रत्येक २½ तोला मिलाकर पिलाया करें। उतरी हुई आत ठिकाने पर आजावेगी। लगभग ८-१० दिन तक यह प्रयोग करें। —भा० गृ० चि०

(६) पत्र—इसके पत्र व्रणो के लिये पाचन, दारण शोधन तथा रोपण कार्य करते हे। व्रण के पाचन व दारण के लिये पत्र को रोमश पृष्ठ भाग की ओर से व्रण शोथ पर बाधते है। फिर शोधन व रोपण के लिये ऊपरी चिकना पृष्ठ भाग व्रण पर रख कर बाधते है। इसी प्रकार इनके बाधने से भारी दूषित व्रण, नाडी व्रण, जीर्ण व्रणो में लाभ हो जाता है।

फोडे पर—इसके पत्ते पर घी अथवा तेल सीधी तरफ लगाकर गरम कर फोडे या सूजन पर बाधने से फोडा बैठ जायगा, सूजन जाती रहेगी। फिर यही पत्ता उलटा कर बाधने से फोडा फूट जायेगा।

(७) पामा व बालको के चर्म रोगो पर—पत्र रस मे तिल तेल मिला उसमे सोया के बीजो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है। पत्तो के रस को ही लगाने से पामा तथा उसके कीडे नष्ट हो जाते हैं।

(८) अण्डकोष के शोथ और वात विकारो पर—इसके पत्ते पर रेडी का तेल चुपड कर कुछ गरम कर बाधने से अण्डकोष की सूजन दूर होती है।

वात विकार पर—पत्तो की पकौडी घृत मे तल कर बनावें। इनके खाने से लाभ होता हे।

नोट—मात्रा-मूल का चूर्ण १-३ माशा। बीज चूर्ण ५ १० रत्ती।

इसके मूल तथा काण्ड के शेष सब प्रयोग, विशिष्ट योग आदि विधारा नम्बर १ के अनुसार ही कहे जाते है। अर्श रोग पर जमीकन्द (सूरण) के प्रकरण मे (भाग ३ में) जो सूरण वटक(मोदक) बृहत् का विशिष्ट योगो में प्रयोग दिया गया है उसमे विधारे की योजना की गई है। यह प्रयोग बहुत उत्तम लाभकारी है।

विधारा नं.३ [दो पाती लता]—Ipomoea Biloba

उक्त त्रिवृत (निशोथ) कुल की ही इस बहुवर्षायु ६०-७० फुट लम्बी फैलने वाली लता के काण्ड ताजी दशा मे मासल, जामुनी रग के, पुराने होने पर रस्सी की तरह हो जाने वाले, पत्र–१.५–२.५ इञ्च लम्बे, चौडाई मे लम्बाई की अपेक्षा प्रायः अधिक, मोटे चिकने, चमकीले, अग्रभाग मे कचनार के पत्र जैसे द्विभक्त, निम्न भाग में वृन्त के पास कुछ लाल एव दो बड़ी रङ्गीन ग्रन्थियो से युक्त, पुष्प–बडे घण्टाकार, रक्ताभ, जामुनी रङ्ग के या गुलाबी फल–½ इञ्च लम्बे, बडे, अण्डाकार, धनीदार, चिकने चार खण्ड युक्त, बीज फल के प्रत्येक खण्ड मे १-१ बीज काले बडे, मृदु रोमश होते है।

मूल—अनेक उपमूल युक्त, बडी, लम्बी, मोटी, भूरी छाल युक्त, काष्ठमय, मजबूत, ऐंठी हुई सी, लगभग ½ इञ्च मोटी होती है।

यह लता वैसे तो भारत के प्राय सभी भागो में यत्र तत्र पाई जाती हैं, किन्तु विशेषत बगाल, उडीसा, मद्रास, बम्बई, कच्छ आदि में समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में जहा अन्य कोई पौधे पैदा नही होते वहा यह खूब विस्तार से फैली हुयी देखी जाती है। मानो समुद्र के किनारे की रेती को यह खूब दूर तक मजबूती से जकडकर समुद्र की मर्यादा की रक्षा करती हो। इसी से शायद इसे मर्याद वल्ली कहते है।

नाम–

स०—मर्याद वल्ली, सागर मेखला, मारवल्ली, वृद्धदारु इत्यादि। हि०—विधारा, दो पातीलता (पत्तो का अग्रभाग द्विभक्त होने से) मर्याद बेल। म०—मर्याद वेल। गु०—मरजाद वेल, दरिया वल। व०—छागल खुरी (पत्र बकरे के खुर सदृश दिखलाई देने से) अ०—गोट्स फुट क्रीपर [Goats foot Creeper] सैंड बाइन्डिंग क्रीपर [Sand binding creeper] ले—आइपोमिया बाइलोबा, आ पेस्केप्री [Ipo Pescaprae]।

रासायनिक संगठन—

इसके पचाङ्ग मे राल ७ २७%, अल्प मात्रा मे उड़नशील तैल, अधिक मात्रा मे लुआबदार पदार्थ, तथा समुद्र के अनेक क्षार एव स्निग्ध पदार्थ पाये जाते हैं। इसकी जड व शाखाओं मे गाढा पीत वर्ण का चिकना दूध, पिष्ट पदार्थ (स्टार्च) एवं क्षाराभ [Alkaloid] पाये जाते हैं। इसके सुखाये हुए दल का चूर्ण मृदुरेचक पदार्थ का काम करता है।

नोट—इसका ही एक भेद विशेष 'आइपोमिया पेटलाएडिया (Ipomoea Petaloidea) है उसे भी विधारा कहते है। इसकी लता बहुत विस्तृत, झाडदार, काण्ड-चिकना ऊपरी भाग पर २-४ उभरी हुई रेखाओ से युक्त, पत्र ५-७ इञ्च लम्बे, नीचे को लट्वाकार, ऊपर की ओर लट्वाकार प्रायवत् आयताकार, चिकने, रक्ताभ, अग्रभाग द्विभक्त या कुठित, रोमश, पत्र वृन्त २-३ इञ्च लम्बा पुष्प—कुछ श्वेताभ पीत वर्ण फल – ½ इञ्च अण्डाकार बीज छोटे-छोटे, सूक्ष्म लहरदार होते हैं।

उक्त दोनो विधारा या आइपोमिया विशेष की जडें खाकी या भूरे रङ्ग की हलकी एव मुलैठी जैसी मोटी होती है। उनके विभिन्न आकार-प्रकार के काटकर सुखाये हुए टुकडे बाजार मे मिलते हैं। इनके कटे हुए भाग पर इसका दूध गोंद की तरह जमा हुआ रहता है। स्वाद मे कुछ कडुवे व फीके होते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य, ग्राही, वातहर, सारक (विशेषत कफ विरेचनीय), मूत्रल, वाजीकर, शोथहर, तथा शूल, कास, वमन और आम निवारक है। गर्भधारक है इसकी जड की क्रिया अनन्तमूल या चोबचीनी के समान होती है। जड का स्वरस अत्यन्त मूत्रल है।

कास पर—इसके काण्ड या जड का क्वाथ सेवन कराते हैं। आमवात तथा सधिशोथ मे जड के स्वरस को पिलाते तथा पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

पत्र—इसके पत्ते शोथहर, वेदना स्थापक, कासहर और मूत्रल है। फोडे फुसी या व्रणो पर पत्रो का पीस-



कर बांधने से वे बैठ जाते हैं या फूट जाते हैं।

सन्धिवात पर—पत्तों को पीसकर लेप करते हैं।

जलोदर, उदर शूल और कास मे पत्र स्वरस पिलाते हैं।

जलोदर मे साथ ही साथ पत्रो को कुचल कर उदर पर बांधते हैं।

शोथ, बद गाठ, जल शोथ, शिर शूल तथा मोच आदि मे पत्तो को पीसकर बाधते है।

बदगाठ, गडमाला तथा किसी भी ग्रथि पर पत्रो को वफाकर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट—शुष्क मूल का चूर्ण १ से ३ माशा तक। पत्र स्वरस ½ से १ तोला। सुखाया हुआ मूल स्वरस या दूध ५–६ रत्ती।

यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकारक है। निवारक आलूबोखारे का शीत कषाय है। प्रतिनिधि-निसोथ है।

बिधारा नं. ४ [गंभारी भेद]–Gmelina Asiatica

निर्गुंडी कुल (Verbenaceae) की इस सुन्दर अनेक शाखा प्रशाखा युक्त, झाडीदार, वृक्षादि के सहारे बढती व फैलती हुई लता की शाखा से छोटी-छोटी टहनियो के काटे जैसे उभारो से युक्त, छाल—पतली पीताभ श्वेत रग की, पुष्प—विषमवर्ती १½ इञ्च तक लम्बे अडाकार, अनीदार। पुष्प—डालियो के अन्त मे स्थान-स्थान पर चमकीले पीले या रक्ताभ पीतवर्ण के पुष्प गुच्छो मे, फल—½ से ¾ इञ्च तक लम्बे, एक या दो बीजो से युक्त होते है। इस पर पुष्प प्राय बारहो मास आते रहने से यह लता और भी सुन्दर दिखाई देती है।

यह बूटी भारत के दक्षिण मे ट्रावनकोर से कारोमण्डल कोष्ट तक तथा मद्रास व सीलोन मे नैसर्गिक पैदा होती है। अन्यत्र शोभा वृद्धि के लिये बाग बगीचो मे लगाई जाती है।

नाम–

स—बिदारी, बिकारिणी, गोपामुद्रा। हि.–बिधारा बधारा, भेदेरा। म—लहान शिवण, शिवणी। गु.–लटकेसर नु झाड। ले—मेलिना एशियाटिका, मेलिना पार्विफ्लोरा (Gmelina Parviflora)।

रासायनिक संगठन–

इसमे एक प्रकार का ग्लुकोसाईड पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, उष्णवीर्य, पिच्छिल, सारक, दीपन, धातुवर्धक, बल्य, शातिदायक, कामोद्दीपक कफनि सारक, सकोचक तथा प्रमेह, मूत्राशय के विकार, सधिवेदना, नवीन सुजाक, उपदशजन्य अन्य विकारो मे उपयोगी है।

शीत जल मे इसके पत्र व कोमल शाखाओ को डालकर मलने से जो उनमे एक प्रकार का पिच्छिल एव लसीला पदार्थ निकलता है उसके कारण जल जमकर गाढा हो जाता है। सुजाक, स्नायु विकार, मूत्रदाह आदि मे इसका प्रयोग किया जाता है। सुजाक या मूत्रकृच्छ्र मे उक्त जमे हुए जल में मिश्री मिलाकर सेवन कराते है।

इसके शेष प्रयोग बिधारा न० १ के समान ही हैं।

बिनजोम (बनजई)—देखो—सगकुप्पी।

नोट—बनचांद (Flagellaria Indica) नामक फ्लेगेलेरी (Flagellarieae) कुल की इस बूटी की वृक्षारोही लता ऊचे-ऊचे वृक्षो को जकडते हुए ऊपर को चढती है। काण्ड-लगभग १ इञ्च मोटा, शाखायें-चिकनी गोनाकार। पत्र—वृन्तहीन, ६–१० इञ्च लम्बे अग्रभाग में लम्बी शिखायुक्त निम्न भाग मे गोलाकार, बहुशिरा विशिष्ट होते हैं। पुष्प—श्वेत वर्ण के छोटे–छोटे लम्बी फुनगियो या केशर तन्तुओ से युक्त तीन दल वाले तथा फल लाल रग के चिकने, गोल, छोटे–छोटे अमरूद के आकार के कुछ चमकीले होते है। वर्षा काल में-पुष्प तथा शीत काल के अन्त मे फल आते है।

यह लता सुन्दर वन मे चटगाव तक तथा प्राय समुद्र के किनारे के जगलो मे सिंगापुर की ओर विशेष देखने मे आती है। इसके पत्र सग्राही, सकोचक होते हैं।

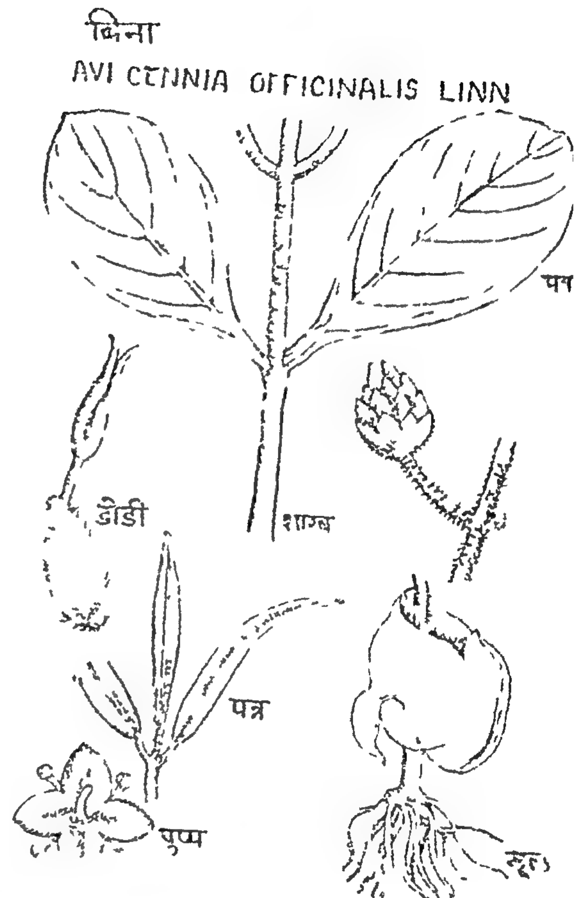
—भारतीय बनौषधि

बिना (Avicennia Officinalis)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) की इस बहुशाखी झाडदार २५ फुट तक ऊची वनस्पति के पत्र अभिमुख, अखण्ड, चमकीले, लम्बगोल ३॥ X १॥ इची के सदैव हरे रहने वाले, पत्रवृन्त—क्रमश नोकदार, निम्न भाग में सूक्ष्म रोमश, पुष्प—शाखाओ के अग्रभाग पर, चौथाई इञ्च लम्बी शलाका पर पीले रग के ४-५ डिम्बाकृति पखुडियो वाले, सुगधित, ४ पुकेसरयुक्त पुष्प आते हैं। फल या डोडी—१ इञ्च लम्बी, कुछ चिपटी, तीक्ष्ण रोमयुक्त तथा मूल—मोटी, अनेक उपमूल युक्त होती है। इसमें वसतऋतु मे पुष्प व वर्षाकाल में फल आते हैं।

यह वनस्पति भारत के दक्षिण में, पूर्व व पश्चिम के समुद्र के तटवर्त्ती स्थानों मे अधिक पैदा होती है तथा भारत के कई जगली प्रदेशो मे भी देखी जाती है।

दुष्काल के दिनो मे घास आदि के अभाव मे इसे काट काट कर पशुओ को खिलाते हैं।



नाम—

स०—सागरोद्भूत। हि०—बिना। म०—तिवर। गु०—तवर, चेरिया। ब—बीना, बानी। अ०—व्हाइट मेन्ग्रोव्ह् (White mangrove)। ले०—एव्हीसीनिया आफिसिनेलिस।

गुण धर्म व प्रयोग—

मल—उत्तेजक, कामोद्दीपक, छालसाफोचक, उग्र, पत्र—कफनि सारक। बीज—पित्त नाशक है।

चेचक मे इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है। व्रण और फोटो को पकाने के लिये कच्चे फलो का या बीजो का पुल्टिस बनाकर बाधते है।

फल—लघु, तिक्त, कसैले, मधुर, उष्णवीर्य, व्रणो को पकाने वाले तथा कृमिज्वर, विबन्ध, प्रमेह, उदावर्त, कुष्ठ, गुल्म, उदर रोग, अर्श तथा दूषित कफ नाशक है।

बीजो का तेल, मधुर, कसैला, उष्णवीर्य, कटुविपाकी है तथा यह वमन, विरेचन द्वारा दोषहारक है। वात, कफ, कुष्ठ, सेद रोग एव कृमि रोग मे उपयोगी है।

इन्फ्लुएञ्जा पर इसका प्रयोग—"एक स्त्री को भयंकर इन्फ्लुएञ्जा का आक्रमण हुआ। श्वास नलिका मे शोथ, छाती मे कफ भरा हुआ, श्वास मे रुकावट, फेफडे मे श्वासावरोध की आवाज बहुत खराब सुनाई देती थी जिससे मालूम होता था कि उसके फेफडे भी कफ से भरे हुए है। कफ नि सारणार्थ अडूसा क्वाथ, अलसी की पुल्टिस का सेक, भारङ्ग्यादि क्वाथादि प्रयोग किये गये, ज्वर के लिये महासुदर्शन क्वाथ दिया गया। किन्तु रोगी की हालत मे कोई सुधार न होने से मैंने इस वनस्पति के पत्तो को १० तोला लेकर, जौकुट कर उसके साथ ६ माशा नमक मिला क्वाथ बनाया और उसमें १ तोला शहद मिला पिलाया। आध घन्टे मे पीले, दुर्गन्धित, चिकने कफ के गुच्छे खासी के साथ निकलने लगे तथा ३-४ घण्टे

में लगभग सेर, सवा सेर कफ निकल गया। पुन दूसरी बार पत्रो का क्वाथ पिलाने से ज्वर जो १०४ डिग्री मे स्थित था उतर गया स्त्री अच्छी होगई। इसी प्रकार और भी २-३ रोगियो मे इसके प्रयोग से सन्तोपजनक लाभ हुआ।

—व० च०

बिनोला—देखे—कपास मे।

बिरंजासिफ (Achillea Millefolium)

भृङ्गराज कुल (Compositae) के बहुवर्षायु इस अफसन्तीन के समान क्षुप के काड ३-४ फुट तक ऊचे, शाखाये बारीक, पत्र—एकान्तरीय, बरछी के आकार के, पुष्प—छत्तेदार, सोया या सोफ के पुष्प जैसे पीताभ श्वेत या गुलाबी नील वर्ण के बाबूने की जैसी सुगन्धयुक्त, स्वाद में किंचित तिक्त, विशेपत नमकीन होते है। इसके क्षुप पर एक प्रकार का लसदार द्रव्य लगा हुआ रहता है।

नोट—कही कही गन्दना बूटी को ही बिरजासिफ कहते है। किंतु वह इससे भिन्न है। गन्दना का प्रकरण इस ग्रन्थ के भाग २ मे देखिए।

इसके क्षुप पश्चिम हिमालय के प्रदेशो मे काश्मीर से कुमाऊ तक ६ से ९ हजार फुट की ऊचाई तक पाये जाते हैं। प्राय यह बाग बगीचो मे भी लगाया जाता है।

नाम—

हि०—बिरजासिफ, बरजासफ। म०—रोजमरी*। अ०—मेलफोइल (Melfoil), यर्रो (Yarrow), नोज ब्लीड (Nose bleed)। ले०—एचिलीया मिलीफोलियम।

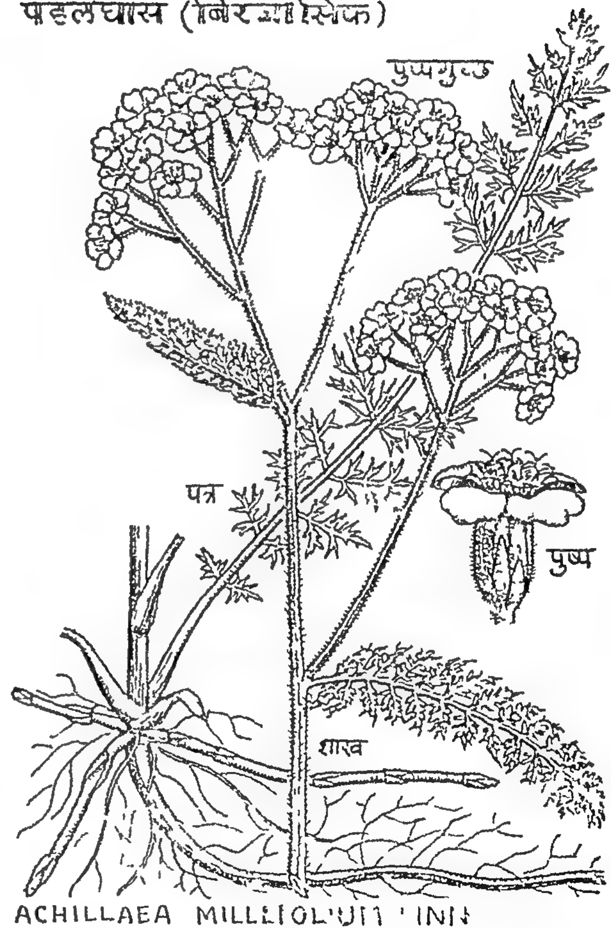
रासायनिक संगठन—

इसमे एक नीला या गहरा हरा उडनशील तैल तथा एचिलीन (Achillein) नामक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पुष्प, पत्र, पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग

इसके पुष्प- उष्ण, रूक्ष, कडुवे, मृदुरेचक, ऋतुस्राव नियामक, वेदना निवारक, व्रणपूरक, मूत्रनि सारक उत्तेजक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, मस्तिष्क के लिये बल्य, कामोद्दीपक, शोथहर, प्रमाथी, मूत्रार्त्तवजनन तथा अश्मरी, आमाशय का शोथ, कष्ट प्रसूति, यकृद्विकारयुक्त कफज्वर, जीर्णज्वर आदि मे उपयोगी है।



पहलघास (बिरंजासिफ)
ACHILLAEA MILLEFOLIUM

*तुलसी कुल की 'रोजमरी' नामक बूटी इससे भिन्न है। इसका वर्णन आगे यथास्थान 'रोजमरी' मे देखिए।

इसका पचाग-ज्वर निवारक, उत्तेजक, पौष्टिक है। ज्वर के प्रारम्भ मे तथा पसीने की रुकावट मे तथा विबन्ध, हृदय की जलन, शूल और अपस्मार मे भी यह लाभदायक है। इन सब विकारो मे इसका क्वाथ दिया जाताहै। शोथ और जीर्ण ज्वर के निवारण मे भी इसकी विशेषता है। कृमि पर-फूलो के चूर्ण को ३ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चटाने से कृमि (विशेषत गोल कृमि) निकल जाते है।

ज्वर, वेहोशी तथा जुखाम मे इसके चूर्ण को गरम जल के साथ देते हैं। सिरदर्द पर इसका लेप करते हैं।

गर्भाशय के विकारो पर-इसके फल को ½-१ तोला की मात्रा मे जल के साथ थोडा पकाकर पिलाते है।

व्रण रोपणार्थ-इसके पचाग की राख को व्रण या जखमो पर बुरकने से वे शीघ्र भर जाते है।

शोथ तथा कर्ण विकार पर-इसके पत्र या पुष्प के शीतनिर्यास से सूजन को बार बार धोने से सूजन उतर जाती है।

पत्तो का शीत निर्यास, कान के रोगो मे भी लाभदायक है।

इसके पत्तो की धूनी मकान मे देने से सब जहरीले कीडे भाग जाते हैं।

अर्क—पचाग चूर्ण २० तोला को ८ सेर जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात २ सेर अर्क खीच लेवें। ४ से ८ तोला तक सेवन से शोथ, कफ ज्वर एव यकृत विकार मे लाभ होता है। —यू. चि सा.

नोट—मात्रा-चूर्ण २ से ५ माशा।

अधिक सेवन मूत्र पिण्डो (गुर्दो) के लिये हानिकर है। हानि निवारक अनीसून या सौंफ है। प्रतिनिधि बालूजा या अफसतीन है।

बिरमोवा (Flemingia Tuberosa)

शिम्बी कुल (Leguminoceae) के इस क्षुद्र क्षुप के पत्र–त्रिदलाकार या ३-३ गुच्छो मे, पुष्प–बैंगनी रग के, फली–छोटी-छोटी, प्रत्येक फली में १-१ काले रग का गोल बीज होता है। इस क्षुप की जड मे एक कन्द होता है।

इसके क्षुप महाराष्ट्र प्रान्त में विशेषत कोकण में अत्यधिक पैदा होते है।

बिरमोवा, बिरमोली मरेठी भाषा के नाम है। लेटिन नाम फ्लेमिजिया ट्युबेरोसा है।

रासायनिक संगठन–

इसके कन्द में एक पीताभ राल १.३%, शकरा व गोद २५%, एस्पेरागिन (Asparagin) ४ ३%, स्टार्च ४०%, क्षाराभ १३%, सेलुलोज (Cellulose) १२ १%, राख ३ ५% तथा अल्प प्रमाण में टेनिन पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग––

कन्द–मधुर व सकोचक है। कन्द को जल मे उबाल लेने से स्वाद मे अखरोट जैसा हो जाता है।

आमातिसार, रक्तातिसार तथा श्वेतप्रदर पर–कन्द का क्वाथ दिया जाताहै। अथवा कन्द के चूर्ण को द्राक्षासव के साथ देने से लाभ होता है।

इसके कोमल पत्र जहरीले होते है। मस्तक शूल पर पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

बिरोजा—देखे—चीड मे। बिलाई कन्द—देख—बिदारी कन्द।

बिलायती इमली (Pithecellobium Dulce)

शिम्बी कुल के बबूल उपकुल (Mimosaceae) के इसके पौधे 'कचलोरा' जैसे ही होते है (कचलोरा का प्रकरण भाग २ में देखिये) इसके बीजो पर एक श्वेत मोटा सा आच्छादन होता है, जो मधुर होने से बालक-



गण बड़े प्रेम से खाते है। इसके पेड़ घर के या बागो के आवार मे विशेषत लगाये जाते है।

प्रवाहिका, विशेषत शूलयुक्त प्रवाहिका मे इसके १-२ बीज (दिन मे १ बीज तथा रात्रि मे १ बीज) निगलवा देने से विशेष लाभ होता है।

विलायती सारिवा —देखे—सारिवा मे।

बिलारी Mukia Scabrella (Arm)

कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इस अवनत एव अति रोमश लता के पत्र-२-३ इञ्ची, दन्तुर,पत्र वृन्त लगभग प्राय १ इञ्ची, पुष्प गोल $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{3}$ इञ्ची व्यास के, पीले, फल—$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इञ्ची, चमकीले लाल वर्ण के होते हैं। बीज—फल में बीज घन सन्निबद्ध एव चिपटे होते हैं। पुष्प और फल विशेषत शीत काल के प्रारभ मे आते हे, तथा पुष्प वर्ष भर प्राय सदैव ही बने रहते हैं।

बगाल आदि एव भारत के प्रायः सर्व स्थानो में यह लता देखी जाती है।

नाम —

स०—अहिलेखन। हिं०—बिलारी। म०—बिराती। ब०—आगमुखी, गोयाल काकडी। ले०—मुकिया स्केब्रेला, ब्रायोनिया स्केब्रेला (Bryonia Scabrella)।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह दीपन, मूत्रल, कफ नि सारक है। इसके बीज का क्वाथ प्रस्वेदकारक है।

मूल का क्वाथ आध्मान तथा दन्तशूल निवारक है। लता की कोमल शाखा तथा कोमल पत्र मृदु विरेचक हैं, ये शिर शूल तथा हृल्लास मे व्यवहृत होते हैं।

पत्र रस का उपयोग गर्भवती स्त्री के गर्भाशय के शोथ पर किया जाता है।

—नाड़कर्णी तथा भारतीय बनौषधि से।

नोट—उक्त बूटी का विशेष वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ में अगमकी के प्रकरण मे देखिये।

बिलिंबी (Averrhoa Bilimbi)

चागेरी कुल (Geraniaceae or oxalidaceae) का यह कमरख की ही एक जाति विशेष है। इसका पौधा कमरख के पौधे जैसा ही होता है, किन्तु फल अपेक्षाकृत छोटा, पीला या पीताभ हरित, दीर्घायताकार (oblong), १$\frac{1}{2}$-२$\frac{1}{2}$ इञ्च लम्बा, $\frac{1}{2}$-१ इञ्च मोटा, अधिक कोण युक्त एवं स्वाद मे कच्ची दशा में अधिक खट्टा, पकने पर कुछ मधुर होता है।

यह भारत तथा वर्मा के बाग बगीचो मे लगाया जाता है। विशेषत मलाया मे यह अधिक पैदा होता है। भारतवर्ष के बाजारो मे साग-सब्जी की दुकानो मे इसके पक्व या अर्धपक्व फल प्राप्त होते है।

नाम--

स—कर्कटी। हि०-बिलिंबी, बेलवू, तामरग। म—बिलबा। गु०—बिलम्बु। ब० —बिलबी। अ०—बिलिंबी (Bilimbi), ककुंबर ट्री (Cucumber tree) ले०—एव्हेरोहा बिलिंबी।

रासायनिक संगठन—

कमरख के समान ही इसके फल की अम्लता एसिड आक्जेलेट आफ पोटास (Acid potassium oxalate, oxalic acid) पर निर्भर है। इसमे कमरख की अपेक्षा लवण की मात्रा अत्यधिक होती है।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

सकोचक, दीपक, मनोल्लासकारी, शातिदायक, तथा दाह, रक्तविकार, अतिसार, पैत्तिक उदरशूल आदि मे उपयोगी है।

फलो का अचार, मुरब्बा आदि बनाया जाता है, तथा भोजन को स्वादिष्ट करने के लिये इसकी चटनी, तथा इसके रस का रायता, कढी आदि बनाते हैं। इसका फल या कढी अर्श तथा स्कर्वी (Scurvy रक्तपित्त का एक भेद विशेष) रोगो मे उत्तम पथ्य रूप मे दी जाती है।

फल का शर्बत विशेष उपयोगी है। उत्तम परिपक्व फलो के अच्छी तरह छने हुये रस २५ तोला मे उत्तम शर्करा ७५ तोला, तथा जल २५ तोला मिला मन्द आग पर पकावें, शर्बत की गाढी चाशनी आने पर नीचे उत्तार शीशी में भर रक्खें। मात्रा ३ से ६ फ्लुइड ड्राम। शर्बत जल में अच्छी तरह मिलाकर २४ घटे में ४-५ बार पिलावें। इससे पैत्तिक ज्वर में रोगी को शाति मिलती, दाह एव तृषा शात होती, ज्वर प्रकोप कम होता है। भीतरी आत्र, आमाशय एव अन्तःस्थ अर्श आदि मे होने वाले साधारण रक्तस्राव में भी विशेष लाभदायक है।

बिल्ली लोटन (Melissa officinalis)

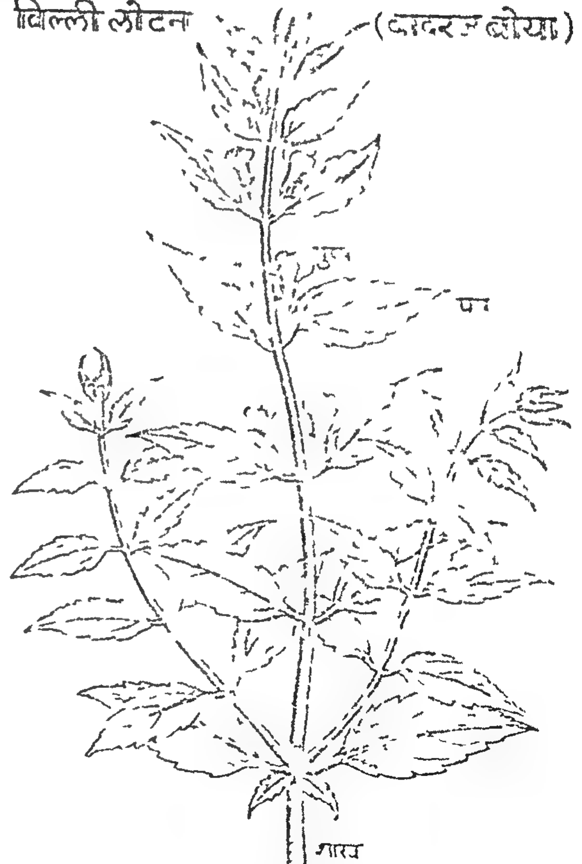
तुलसी कुल (Labiatae) के इसके घास जैसे, कही कही २ से ४ गज तक ऊचे क्षुप होते हैं। ताजे क्षुपो से बिजौरा जैसी मनोरम गन्ध आती है। इसीसे इसे बादरज बूया अरबी में कहते हैं। इसकी सुगन्धपर बिल्ली मोहित और मस्त होकर इस पर लोटने लगती है, अत इसे बिल्ली लोटन कहते हैं।

इसकी विशेष उत्पत्ति पर्शिया, यूरोप व उत्तर अमेरिका में होती है। भारत में इसका आयात पर्शिया से होता है।

नोट—इसी की एक जाति भारत में हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो में गढवाल से सिक्किम तक तथा खासिया की पहाडियो में पैदा होती है। इसे लेटिन में मेलिसा पार्विफ्लोरा (Melissa paruiflora) कहते हैं।

अफगानिस्थान, पंजाब, बगाल, मध्य व दक्षिण भारत मे इसके नीले फूल वाली एक जाति होती है, जिसे लेटिन में नेपेटा हिंदोस्ताना (Nepeta Hindostana) कहते हैं। निपेटा रुडेरालिस (Nepeta Rudaralis) भी इसी को कहते हैं। इसकी ऊचाई १५-४५ से मी तक, पत्र–१-३–५ से मी. तक लम्बे व १–३ ८ से. मी तक चौडे किनारे उभरे हुए हृदय के लिये बल्य हैं, सर्व प्रकार के ज्वरो में उपयोगी है। इसके क्वाथ के कुल्ले करने से गले के छाले दूर होते हैं। शेप गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसग के बिल्ली लोटन के जैसे ही हैं।

इसका एक भेद और होता है, जिसके पत्र लम्बोत्तरे तथा पुष्प श्वेत होते हैं। यह काश्मीर मे होता है।



MELISSA PARVIFLORA BENTH

नाम—

हि०—बिल्ली लोटन,बौरा,बादरजबूया,बदरग खताई, बदरग बोया। म०—कालावल। अ०—अरेबियन बाम (Arabian balm), जेन्टल बाम (Gentle balm)

ले०—मेलिसा आफिसिनेलिस ।

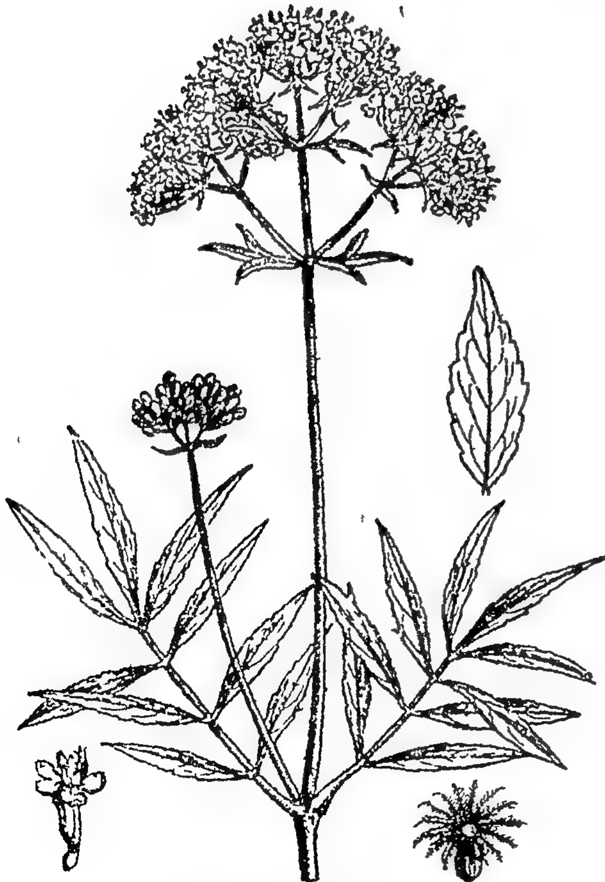
रासायनिक संगठन----

इसमे कोमेरिन (Coumarin), ग्लुकोसाईड के अतिरिक्त स्वल्प प्रमाण में टेनिन एक तिक्त सत्व तथा लगभग $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{4}$ % रंगरहित कुछ पीला सा उडनशील तैल होता है।

प्रयोज्याग—पचाग ।

गुण धर्म व प्रयोग---

उष्ण, रूक्ष, दीपन, वातघ्न, हृद्य, उल्हासकर, रक्त-शोधक, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोथघ्न, बल्य, श्वासकृच्छ्रनाशक स्मरण, काम व आमाशय की शक्ति वर्धक तथा वात कफ विकार, मूर्च्छा, मरोड, हिक्का, अपस्मार, अर्दित, अर्धांग



बिल्ली लोटन (बादरंजबोया)
YALERIANA OFFICINALIS LINN

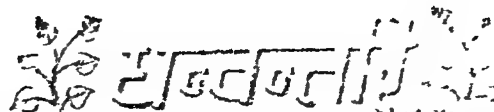
वात, सधिशोथ,वृक्कविकार आदि में उपयोगी है

आधुनिक मतानुसार—इसकी जड पचाग उत्तेजक होने से ज्वर की बढी हुई स्थिति में, जब शरीर मे बहुत दुर्बलता होती तथा तापक्रम गिरने लगता हैं तब उपयोग में ली जाती है। यह आक्षेप निवारक होने से इसका सफल प्रयोग आक्षेप निवारक औषधि को तरह हिस्टीरिया, अपस्मार, हेजा आदि विकारो में किया जाता है। किंतु ध्यान रहे आक्षेप निवारक औषधि की दृष्टि से हीग की अपेक्षा बहुत कमजोर है। अधिक मात्रा मे इसे लेने से सिरदर्द, मानसिक उत्तेजना और ज्ञान ततुओ की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। पार्यायिक ज्वरो में इसे सिनकोना की छाल या अन्य कटु पौष्टिक द्रव्यो के साथ लेने से लाभ होता है। इसके क्वाथ में स्नानकरने से तीव्रसधिवात में लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार—इसके सू घने से स्मरणशक्ति तेज होती, मस्तिष्क को शक्ति मिलती एव मस्तिष्क के विकार दूर होते है। इसके पत्रो को पीसकर शहद के साथ चाटने से श्वास कृच्छ्र (सास की तगी) व खासी मे लाभ होता है। यकृत तथा पाचन क्रिया को यह शक्तिप्रद है तथा हिक्का मतली का निवारक है। दिलकी कमजोरी से यदि निद्रा न आती हो तो इसके प्रयोग से निद्रा आने लगती है। इसके सेवन से वायु के सब दोष दस्तो की राह निकल जाते हैं। इसकी ताजी जड को गर्भ शय में रखने से गर्भ गिर जाता है।

इसके लेप से दूपित पूययुक्त व्रण, स्तन शोथ, आम-वात, सधि पीडा, आखो के आसपास की सूजन, वातप्रकोप जन्य खुजली में लाभ होता है। पशु के व्रणो को साफ कर इसके चूर्ण को भर देने से कृमि नष्ट होकर व्रण भर जाता है"।

हृदय की व्याकुलता तथा चित्त भ्रम मे इसका अन्त प्रयोग चूर्ण या अर्क के रूप में और बाह्य प्रयोग लेप के रूप मे उपयोगी माना जाता है। नीद में जिसे अधिक भय लगता है या भयानक स्वप्न देखने से घिग्घी बध जाती है उसे इसका सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है।



पागल कुत्ते और विच्छू के जहर में इसके पत्ते १३ माशा की मात्रा में पीसकर शराब के साथ देते हैं। मुख दुर्गन्ध निवारणार्थ इसे मुख मे रख कर चबाते हैं। कफ के विकारों में इसका शर्बत या अर्क देते हैं।

शर्बत प्रयोग—इसके घनसत्व के साथ गावजवान का घन सत्व सम भाग एकत्र कर उसमें गुलाब का अर्क दोनो के समभाग तथा शर्बत सेब मिला कर पाक करें। यह शर्बत दिल को बल देने मे बहुत गुणकारी है। मात्रा २ तोला। यू० चि० सा०।

नोट—मात्रा-पचाग का चूर्ण ३-७ माशा तक। बीज-४ माशा मे १ तोला तक।

अधिक मात्रा मे सेवन से या अधिक सूघने से सिर दर्द पैदा होता है। पेशाब मे जलन, मस्तिष्क में अव्यवस्था होती है। गरम प्रकृति वाले के यकृत के लिये हानिकर है।

हानिनिवारक—बबूल का गोद, धनिया या कुदुर है। प्रतिनिधि—अबरेशम, फरज मुश्क या माल तुलसी है।

नोट—इसका ही एक भेद फुलकिया, फण्डी नामक घास है। जिसे म० गोंडवेल व गुजराती में मीदटियु, मीदाडियु घास तथा लेटिन में क्लोरिस बारबेटा (Chloris Bardeta) कहते हैं। यह १-३ फुट ऊचा या जमीन पर फैला हुआ होता है। यह पशुओ को खूब खिलाया जाता है।

बिलैया-देखें—हाथी शु डी मे।

बिशोनी (Tephrosia petrosa)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionceae) की यह एक क्षुद्र वनस्पति सरफोका जैसी ही होती है।

यह राजस्थान के जोधपुर, जैसलमेर आदि में विशेष पैदा होती है।

नाम—

स०—कथापुखा, कयालू। हिन्दी—बिशोनी (राजस्थानी भाषा में)। ले—टेफ्रोसिया पेट्रोसा तथा टेफ्रोसिया स्पिनोसा (Tephrosia spinosa)

रासायनिक संगठन—

सरफोका के समान ही इसमें क्लोरोफिल, भूरे वर्ण का राल, मोम आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

किन्तु गुणधर्म में यह उससे हीन वीर्य है।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्ण वीर्य, वेदनानिवारक, कृमिनाशक है। उपदश मे इसके पत्तो को उबालकर खिलाते है।

विष-देखें—वत्सनाग। विषकोगरा-देखें—बेला में। बिसखपरा—देखें—पुनर्नवा।

बिसफेज (Polypodium Vulgare)

हसराज कुल (Polypodiaceae) की इस क्षुद्र वनस्पति के पत्र कगूरेदार या कटी हुई किनारी वाले तथा जडें बहुत घनी होती है। बाजार में इसकी जड़ें ही बिस्फेज नाम से बिकती है। ताजी दशा में ये जडें हरी तथा सूखने पर भूरे रग की कुछ रक्ताभ एक ओर को चिपटी हुई सी तथा दोनों ओर इसकी प्रत्येक गाठ में बारीक बारीक रेशे या उपमूलें निकली हुई होने से आकृति में कनखजूर जैसी दीखती हैं।

औषधि कार्यार्थ उत्तम जड वह मानी जाती है जो मोटी व ताजी हो, ऊपर से सुर्ख पीलापन लिए हो भीतर से पिस्तेके मगज जैसी हरी हो, चबाने से स्वाद में कुछ कटुयी तथा मधुर प्रतीत हो और जीभ मे खिचावट पैदा करे। भारत में इसका आयात पशिया और यूरोप के देशो से होता है। यूनानी में इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

नाम—

हि —विषफेज, वसफेज, खकाली, खगाली। म -वस्केज विचवा ; ले.—पोलिपोडियम व्हल्गेरे।

प्रयोज्याङ्ग—जड ।

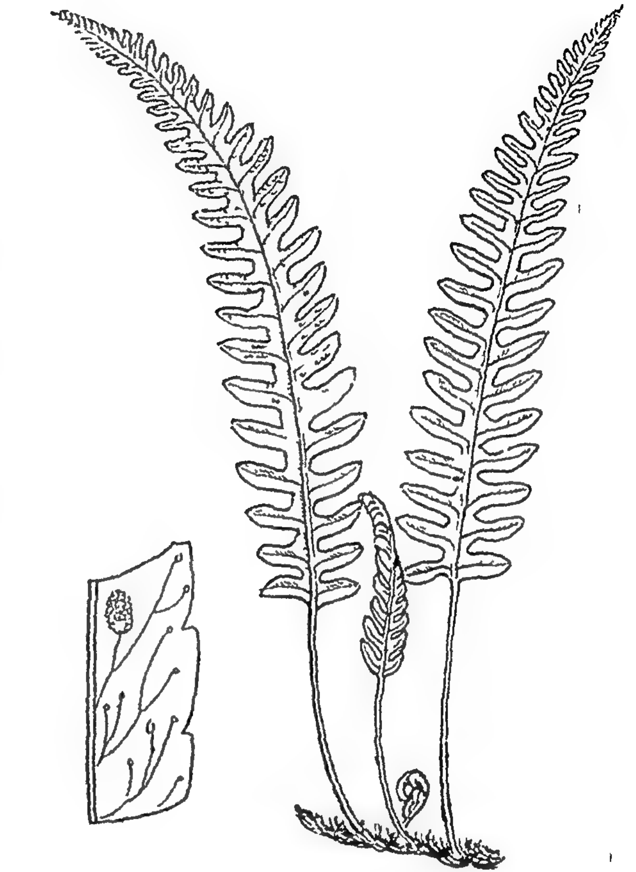
गुण धर्म व प्रयोग—

ऊष्ण, रूक्ष, तिक्त, किंचितकषाय, कफनिस्सारक, वेदना निवारक, वातानुलोमन, शोथघ्न, उदरशूल, आध्मान, अपस्मार, मद, आमवात, कुष्ठादि मे उपयोगी हैं। अर्शाङ्कुरो को गिराने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

यूनानी मतानुसार—यह हृदय के लिये बल्य एव प्रसन्नताकारक है। दिल और दिमाग के विकारो को दस्त की राह निकाल देता है। इसे मिश्री के साथ लेने से वात, कफ तथा रक्त के दोष दस्तो की राह निकल जाते है। यह आमाशय के जमे हुए सुद्दो को विखेर देता, कुष्ठ व रक्त के विकारो मे बहुत लाभ पहुचाता है। मालीखोलिया और गठिया में यह लाभदायक है। कास व श्वास मे इसे अनीसून और मुलैठी के साथ जोश देकर पीने से लाभ होता है। कालिक (उदरशूल) में शहद के पानी के साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाते हैं।

अर्श, आमाशय का जीर्ण शूल और अपस्मार पर इसे अमलतास या तुरजबीन (बीसशर्करा) के साथ देने से लाभ होता है।

फोडे फुसिया आदि रक्त विकार पर—इसकी ताजी जड को ऊपर से छीलकर पानी और नमक मे एक रात भिगोकर प्रात धोकर, पीसकर शहद मे मिला अवलेह तैयार कर प्रतिदिन चाटने से लाभ होता है



विषफेज
POLYPODIUM VULGARE LINN

नोट—मात्रा–कम से कम ५ रत्ती तक अधिक से अधिक३ से ७ माशा तक, किन्तु अधिक मात्रा मे देने से आमाशय मे दाह पैदा होती है, जी मिचलाता है, फुफ्फुस और वृक्को को हानिकर है।

हानि निवारक—हसराज, गुलाब के फूल तथा पीली हरड हैं।

विसौटा—देखो–अडूसा।

बिसौरा (Aspidium Felix Mass)

हसराज कुल (Polypodiaceae) की एक शीर्षोक्त लेटिन नाम की वनस्पति यूरोप, ब्रिटेन, उत्तरी अमेरिका, उत्तरी एशिया तथा हिमालय के पहाड़ो प्रान्तों मे पैदा होती है। इस वनस्पति मे पुष्प नही आते।

उक्त वनस्पति की ग्रन्थियुक्त जडो को बसतकाल में काटकर ऊपर के पत्र एव सडे गले भाग को दूर कर सग्रह कर लेते है। इन्ही जडो को भाषा में बिसौरा, कीलदारु आदि कहते हैं।

उक्त कटी हुई जडो में ३ से ६ इन्च या अधिक लम्बी गोल गाठें, ३/४ से १इन्च तक व्यास की चारो ओर से छोटी-छोटी नोकदार मोटी, काले रङ्ग के पत्तो की डठलो से आच्छादित होती है। रग मे ये बाहर से भूरी या रक्ताभकृष्ण वर्ण की, भीतर से पीताभ श्वेत, स्वाद मे प्रथम मधुर और कसैली, पश्चात् तिक्त एव उत्क्लेशकारक, गध में हलकी अप्रिय होती हैं। औषधि कार्य के लिए ये एक वर्ष बाद हीनवीर्य हो जाती हैं।

नाम—

हि —विसौरा, कीलदारु। फा.—सरख्स। स —पखराज। अ.—मेलफर्न (Male Fern) ले.—एस्पीडियम फिलिक्स मास, ड्रायोप्टेरिस फेलिक्स मास (Dryopteris Felix mass)

रासायनिक संगठन—

इसमें प्रभावशाली फाइसिलिक एसिड श्वेत चूने के रूप में, एस्पाइडीन नामक एक विषैला तत्व, एक उडनशील तथा कई प्रकार की रालें पाई जाती है।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण रूक्ष, उपशोषक, गर्भशातन (गर्भनाशक), उदर कृमि नाशक, वाह्य कृमि जूआदि नाशक, सक्षोभ जनन तथा वातरक्त एव हृत्स्पन्दन मे लाभकारी है। उदर तथा आन्त्रगत कृमि विशेषत कद्दूदाना कृमि के नाशार्थ प्रथम विरेचन के द्वारा आत व आमाशय की शुद्धि हो जाने पर रोगी को भूखा रख कर रात के समय इसको चूर्ण रूप में अकेले या अन्यान्य उपयुक्त औषधियो के साथ सेवन कराते है। फिर दूसरे दिन प्रात विरेचन देने से मृतप्राय कद्दूदाना विशेष निकल जाते है। इसके क्वाथ से सिर धोने या इसके चूर्ण को तेल में मिलाकर बालो की जड मे लगाने से सिर के जूए मर जाते हैं। व्रण रोपणार्थ इसके चूर्ण को बुरकते हैं।

नोट—मात्रा—३ माशा तक। यह फुफ्फुसो के लिए हानिकर है। हानि निवारक—शीह अरमनी (किरमानी अजवायन) है। प्रतिनिधि कमीला है।

—यू० द्र०।

विही (Cydonia Vulgaris)

तरुणी कुल (Rosaceae) के मध्यमाकार के बहुशाखा प्रशाखायुक्त इस वृक्ष के काण्ड की छाल गहरी भूरी या काली, शाखायें टेढी मेढी, पत्र—सादे अखण्ड २-४ इन्च लम्बे १½–३ इन्च चौडे लगभग अण्डाकार गहरे हरे, ऊपरी भाग पर चिकने, नीचे भूरे रोमश, उपपत्र—छोटे, ३ इन्च लम्ब गोल, आरी जैसे दात वाले, पत्रवृन्त ½ इन्च लम्बा, रोमश, पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए श्वेत या गुलाबी आभावाले, २ इन्च चौडे, छोटे वृन्तयुक्त, पुष्प वाह्यकोष—नलिकाकार, रोमश, ५ पखुडियो से युक्त फल—नासपाती या सेव या अमरूद के आकार का मासल धूसर रुओ से आच्छादित, भीतर ५ विभाग का, अनेक बीजयुक्त, पकने पर सुगन्धित, सुनहरी पीले रग का, मधुराम्ल एव वजनदार होता है। बीज—लम्बगोल, चपटे, रक्ताभ भूरे रग के होते हैं। इन्ही बीजो को विहीदाना कहते हैं। जल मे भिगोने से ये फूलकर लुआबदार हो जाते हैं।

यह एक प्रकार का मेवा है तथा रसभेद से मधुर, अम्ल एव मधुराम्ल (खटमीठा) तीन प्रकार का होता है भारत के उत्तर-प्रदेश मे कई स्थानो मे अमरूद को ही विही कहते है। किन्तु यह विही अमरूद नही है।

यह यूरोप तथा अमेरिका का आदिवासी है। वहा इसके वृक्ष प्रचुर परिमाण मे पैदा होते है। भारत मे काश्मीर, पजाब तथा पेशावर, अफगानिस्तान और ईरान मे ५–६ फुट की ऊचाई पर होता है। विशेषत इसके फलो का तथा बीजो का आयात काबुल, ईरान और काश्मीर से भी होता है।

सं.—सिचितका, अमृतफल। हि.—विही, बही, काश्मीरी नाशपाती। म —बीही, मोगाली बेदाणा। गु —मोगलाई बेदाणा। ब —विहीदाना। अ.—क्विन्स (Quince) ले —सायडोनिया व्हलगेरिस, पायरस सायडोनिया (Pyrus sydonia)

रासायनिक संगठन-

इसके बीजो मे सायडोनिन (Sydonin) नामक निर्यासयुक्त पिच्छिल द्रव्य (विशिष्ट प्रकार का लुआब) तथा एक पीत वर्ण का गाढा तेल १५ ३% निकाला जाता है जो ताजा होने पर खाया जाता है। किन्तु यह शीघ्र ही दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। बीजो को जलाने पर जो ३½% राख होती है उसमे यवक्षार ७%, सज्जीखार २%, मंगनीशियम १३%, चूना ७⅓%, लोह १%, फास्फोरिक एसिड ४१%, सल्फ्युरिक एसिड २¾% तथा लवण १५% पाए जाते हैं।

इसके उक्त लुआब द्रव्य मे केलशियम साल्ट (Calcium salt) प्रोटीन और ओक्जलिक एसिड प्रतीत होते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—फल और बीज।

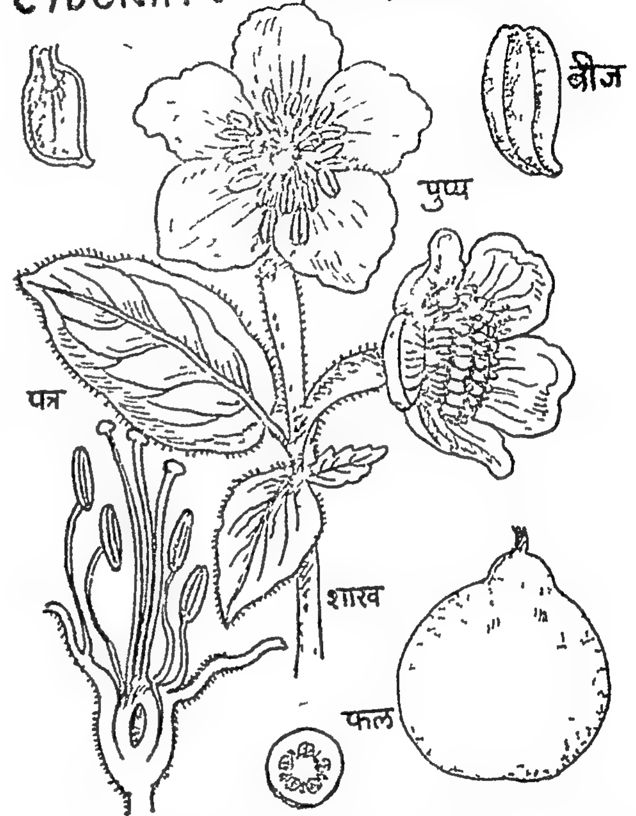
गुण धर्म व प्रयोग-

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्त शामक, कफनि सारक, दीपन, रोचन, स्नेहन, यकृत के लिये बल्य, मेध्य, सौमनस्य जनन, हृदय, रक्त प्रसादन, रक्तवर्धक, रक्तस्तभक, मूत्रल, वलवर्धक, बृहण, दाहप्रशामक, ज्वरघ्न तथा अग्निमाद्य, अरुचि, हृल्लास, वमन, तृष्णा, कोष्ठगत रूक्षता, उदरशूल, मस्तिष्कविकार, मूर्च्छा शिर शूल, हृदौर्बल्य, रक्त विकार, रक्तातिसार यकृद्विकार रक्ताल्पता, रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र दाह पैतिक विकार सामान्य दौर्बल्य वातपैत्तिक कास श्वास ज्वरादि मे प्रयुक्त होता हैं।

मीठी विही—अनुष्णाशीत व स्निग्ध है। खट्टी शीत रूक्ष होती है। फल का मगज—यक्ष्मा कास व रक्तष्ठीवन (ऊर्ध्व रक्तपित्त) मे उपयोगी है।

इसकी छाल—ग्राही होने से अतिसार व प्रवाहिका में विशेष उपयुक्त है।

यूनानी मतानुसार—इसका फल पौष्टिक, सकोचक, मूत्रल, घाव को अच्छा करने वाला, कफनि सारक व ज्वरघ्न है। यह मस्तिष्क व यकृत को शक्तिप्रद है। क्षुधावृद्धि कर वा श्वास में लाभकारी है। हृद्दौर्बल्य, ह्वौलदिल पित्त या रक्त दोषोत्पन्न प्रवाहिका यकृत एव आमाशय का



शोथ तथा इसी प्रकार की मन सतापकारक अन्य व्याधियो मे इसका मुरब्बा, शर्बत, रुब्ब (धनवलेह) आदि का प्रयोग लाभकारी होता है। प्यास मिचली व वमन पर इसे अकेला या उपयुक्त औषधियो के साथ देते हैं।

इसके बीज या विहीदाना शीत व स्निग्ध हैं। रक्तपित्त या क्षयज रक्तष्ठीवन मे विशेष उपयोगी है, इससे रक्तस्रुति बहुत शीघ्र बन्द हो जाती है। मुखपाक पित्तज मुखविकार तथा शुष्क कास मे येबहुत उपयोगी हैं। गले की खराबी या खुश्की, रक्तमूत्रता, पित्तजज्वर, दाह तृष्णा प्रतिश्याय, पैत्तिक कास, जिव्हाशोथ, उरःक्षत, राजयक्ष्मा अतिसार तथा आन्त्रगत रूक्षता निवारणार्थ बीजो का जल मे भिगोकर लुआब निकाल कर उसमें मिश्री मिला कर पिलाते हैं। आग से जले हुए स्थान पर इसके लुआब का लेप करने से शीघ्र ही शाति मिलती है तथा फफोले नहीं उठने पाते। खौलते हुए ४० तोला जल मे १ तोला विही

दाना पिलाने से गाढा लेप तैयार हो जाता है जिसे जले हुए स्थान पर या जखम पर लगाने से शांति प्राप्त होती है।

बीजो का फाण्ट बनाकर सुजाक मे देने से पेशाब की जलन कम होकर अधिक परिमाण मे पेशाब होता है। इस फाण्ट को शुष्क कास में पिलाने व उससे कुल्ले करने से लाभ होता है। पुराने अतिसार मेंबीजो का क्वाथ दिया जाता है। आन्त्र व्रणो के लिये बीजो का लुआब पिलाने से वह ईसबगोल के लुआब की तरह आंतो की श्लेष्म त्वचा पर लिपट जाता है। जिससे वगैर किसी तकलीफ के आन्त्रव्रण शीघ्र ठीक हो जाता है।

(१) प्रवाहिका पर—इसके १ तोला बीज को लगभग चालीस तोला जल मे भिगोकर लुआब मे थोडी शक्कर मिला पिलाने से आन्त्र स्निग्ध होती है। तथा क्षत स्थान मे वेदना होकर जो बार-बार दस्त होता है वह कम हो जाता है। यदि अत्यधिक समय शौच होता रहता हो तो उक्त लुआब मे से २½ या ५ तोला जल थोडे थोडे समय पर या शौच होने पर बारबार पिलाते रहने से लाभ हो जाता है। मल में यदि दुर्गन्ध हो या रक्त आता हो तो सुहागे का फूला एक-एक रत्ती दिन में ४–६ बार मिला दिया करें।

(२) शुष्क कास पर—बीजो का लुआब मिश्री मिलाकर दिन मे ४–६ बार थोडा थोडा पिलाते रहने से स्वर यन्त्र और श्वास नलिका स्निग्ध बनकर कास का वेग दूर हो जाता है।

(३) सुजाक और दाह पर—सुजाक मे जो भयकर जलन होती है उसकी तुरन्त शांति के लिये इसका लुआब दिन में ३–४ बार प्रत्येक बार लगभग २० तो तक पिलावें।

दाह विष प्रकोप, आमाशय के पित्त प्रकोप या मिर्च आदि दाहक पदार्थों से उत्पन्न दाह शमनार्थ बीजो के लुआब मे मिश्री मिलाकर बार२ पिलाते हैं।

(४) मुखपाक में—बीजो के लुआब से कुल्ले कराने से तीक्ष्ण पदार्थों के सेवन से उत्पन्न मुखपाक दूर होता है। तापचन या आमाशय के पित्त प्रकोप से मुखपाक हुआ हो तो कुल्ले कराने के अतिरिक्त लुआब में शक्कर मिला कर थोडा थोडा बार-बार पिलावें।

—गा औ र.

(५) प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात पर—बीज १ या २ तोला को रात्रि के समय, जल में भिगोकर प्रात उसमे २ तोला मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

नोट—मात्रा-फल १ से ५ तोला तक। अधिक मात्रा में अधिक सेवन से यह काम, शूल, हिक्का और कम्पवात पैदा करता है। हानि निवारक शहद और अनीसून हैं। प्रतिनिधि सेव और अमरुद है।

फल का मुरब्बा १-२ तोला।

बीज (बिहीदाना)—३-५ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह आमाशय को ढीला एव दुर्बल करता है। हानिनिवारक चीनी और सौंफ है। प्रतिनिधि ईसबगोल है।

विशिष्ट योग--

(१) बिही बीजकल्प—प्रारम्भ मे इसके ५ ७ बीजो को कूटकर रात्रि के समय ५ तोला जल मे काच के पात्र में भिगोकर प्रात उसमें १० तोला गरम किया हुआ दूध और २॥ तोला मिश्री मिला अच्छी तरह धीरे धीरे चबाते हुए सेवन करें। इसी प्रकार प्रात भिगोकर रात्रि या सायकाल मे सेवन करें। १० दिन तक यही क्रम चालू रखे। पश्चात् इसके दो बीजो को और बढाये तथा इसी क्रम से १० दिन तक लेवे। इस प्रकार ३ महीने तक बीजों को वृद्धि क्रम से बढायें। बीजो की सख्या २२ से २४ तक होजाने पर कुछ दिनो तक उसी सख्या में लेते रहे। बीजो के वृद्धि क्रम के साथ ही साथ जल, दूध और मिश्री की भी वृद्धि करते रहे। पश्चात् घटाते हुए ५-७ बीजो पर आ जायें। इस कल्क प्रयोग से आध्मान, अरुचि, अग्निमांद्य, प्रसेक, हिक्का, शूल, जलन, सदाह अल्प मूत्र प्रवृत्ति, मलावष्टम्भ, गात्र शैथिल्य, क्लम, ओजोहानि, सताप, निद्राल्पत्व या निद्रानाश, विस्मृति, स्मृति भ्रंश, वीर्य दौर्बल्य आदि विकार धीरे धीरे ३०-३५ दिनो में दूर होकर देह सिद्धि एव मन शुद्धि हो जाती है।

—आ० पत्रिका से साभार

(२) ज्वारश बिही-फल– फल के टुकडे ४ सेर लेकर ३२ सेर शराब में हलकी आच पर पकाये। टुकडे गल

जाने पर उन्हे १० सेर झाग उतारे हुए गाढे शहद मे मिला पुन जोश देवे। अब इसमें लौग २ तोला ८ माशा, वालछड ४ तोला, करफस बीज (अजमोद) १३ तोला ४ माशा, काली मिर्च २१ तोला ४ माशा सबका महीन चूर्णकर बिही के टुकडो पर छिडक कर मरतबान में भर रखें। मात्रा—१ तोला प्रतिदिन सेवन से आमाशय व पक्वाशय सशक्त होते है। अजीर्ण दूर होता है--यू चि सा इस योग को "ज्वारश-आवो गैरमदकूक" कहते है।

ज्वारश न० २—(ज्वारश सफर जली कावज)—विहीफल ४० तोला को छिलका तथा बीजरहित-कर उत्तम सिरका ६० तोला में जोश देवें। जब विही नरम हो जावे तो काटकर मलीदा सा बना, उसमें खाड तथा शहद २०-२० तोला मिला पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर (उत्तम गाढा पाक होने पर) नीचे उतार उसमें सोंठ १½ तोला, काली मिर्च, पिप्पली, लौंग ७-७ माशा तथा अगर (ऊद) २२ माशा और केशर २¼ माशा सबका चूर्ण कर मिला देवें। मात्रा—७ माशा भोजनोपरान्त सेवन से आमाशय के लिये बल्य है। क्षुधा वृद्धि होती है, पैत्तिक अतिसार व वमन दूर होता है। शरीर में स्फूर्ति तथा मन में आनन्द होता है— यू०चि०सा०।

ज्वारश सफर जली मुसहल—उक्त प्रकार से फल का मलीदा सा बन जाने पर—उसमें ६० तोला शहद मिला पाक बना लें तथा नीचे उतार कर इलायची छोटी व बडी प्रत्येक २२ माशा, सोंठ, मस्तङ्गीरूमी प्रत्येक १½ तोला, पिप्पली, दालचीनी, केशर प्रत्येक १०½ माशा, सकमूनिया भुना हुआ ३ तोला और निसोथ ८½ तोला सबका चूर्ण पाक में मिलायें।

यह ज्वारश रेचक है, आत्र को मल तथा दोषो से शुद्ध करता है उदर शूल आन्त्रशूल को नष्ट करता तथा आमाशय बल्य व पाचक है। मात्रा—७ माशा अर्कसौंफ १२ तोला के साथ सेवन करे। —यू०चि० सा०

(३) मुरब्बा विही—विही को छिलकेरहित कर मुरब्बा आमले की विधि के अनुसार मुरब्बा तैयार करें।

यह हृदय व मस्तिष्क को बलप्रद, सग्राही और पाचक है। मात्रा—२ तोला प्रातः सेवन करें।

(४) शर्बत विही—विही खटमीठी (मीठी और खट्टी) के छिलके और दाने दूर कर स्वरस १½ सेर निकाल कर उसमे खाड ३ सेर ६० तोला मिला पाक करें। शर्बत की चाशनी हो जाने पर उतार कर रख लें। यह हृदय व आमाशय को बल्य तथा वमन अतिसार में उत्तम लाभप्रद है। मात्रा—२ से ४ तोला तक।

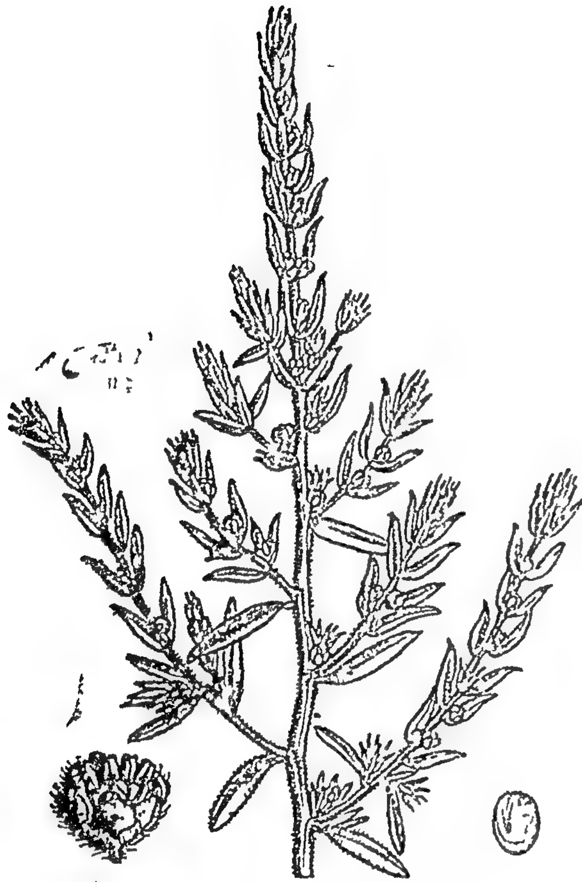
(५) रुब्ब विही (घने गाढे शर्बत को रुब्ब कहते हैं) विही को छीलकर छोटे-छोटे टुकडे कर बीज दूर कर दे। और गूदे को कूटकर स्वरस निकाल उसमें अर्धभाग खाड मिलाकर घन शर्बत बना लें। यह हृदय आमाशय तथा आत्र को बलप्रद है, वमन तथा अतिसार में भी लाभप्रद है। मात्रा—½ से १ तोला तक।

(६) मुख सुधार वटी—विही फल को बीच में से खाली करें तथा खाली स्थान में लौंग कूटकर भर दें। उसके ऊपर भिगोया हुआ कपडा लपेट कर ऊपर से मुलतानी मिट्टी लगा आग मे दबा दे। ऊपर की मिट्टी पक जाने पर उसे तथा कपडे को दूर कर के कूटें। पित्त प्रकृति वालो के लिये इसमें कपूर ६ रत्ती, चन्दन श्वेत ३½ माशा, जरदालू शुष्क (अर्क गुलाव में पिसा हुआ) २ तोला १० माशा मिला वटी बना लें। कफज प्रकृति वालो के लिये कस्तूरी १½ माशा, जायफल १¾ माशा, सोंठ ३॥ माशा मिलावें। इन गोलियो को मुख मे रखने से मुख की बदबू (जो कि आमाशय के विकृत होने से होती है) दूर होती है। —यू० चि० सा०

बीजक—देखें—विजयसार और आसन न० १। बीज बन्द—देखें—खजुरार, खिरेंटी और पालक जगली। बीजाबोल—देखें—बोल। बीरतरु—देखें-सरपत (मुज) और बेलन्तर।

बुई [Otostegia Limbata(Benth)]

तुलसी कुल (Labiatae) की यह क्षुद्र वनस्पति पजाब की छोटी पहाडियो पर तथा झेलम नदी के पश्चिम


पुई छोटी
KOCHIA INDICA WIGHT

तट पर विशेष पैदा होती है।

इसे पजाब की ओर बुई, अगभान, अवनी बूटी कटियारी (वडी कटेरी को भी कटियारी कहते हैं) नाम और फुट कद तथा लेटिन में—घ्रोटोस्टेगिया कहते हैं।

उसका पत्ररस मसूढो के विकारो पर लगाया जाता है। मनुष्यो तथा जानवरो के नेत्राभिष्यन्द पर भी इसका स्वरस उपयोगी है।

नोट—बुई छोटी (Kochia Indica) नामक एक अन्य बूटी वास्तूक कुल (Chenopodia Ceae) की वर्ष जीवी बथुआ जैसी होती है। इसकी छोटी-छोटी शाखायें श्वेत रोमश होती हैं। यह बूटी उत्तर पश्चिमी भारत (पजाब आदि मे) तथा दक्षिण मे भी पैदा होती है।

इसे पजाबी मे बुई छोटी, कौरेरो तथा लेटिन मे कोचिया इण्डिका कहते हैं।

यह बूटी हृद्य है। जिस रोगी का हृदय दुर्बल एव अव्यवस्थित हो तथा साथ मे ज्वर भी रहता हो उसके लिये इसका प्रयोग विशेष उपयोगी है।

बुत्म [बतुम] (Pistacia Terbenthus)

आम्र कुल (Anacardiaceae) के आम या भिलावे के वृक्ष जैसे किन्तु कुछ छोटे वृक्षो के हरे रग के फलो को बुत्म या बतुम अरबी मे, हिन्दी मे गुले पिस्ता (विशेषत इसके पत्तो पर बनी हुई गाठ या कृमिगृह) मुस्ताकी, कावुली मुस्ताकी, खिजक, बूजगज आदि अग्रेजी मे टेरीबिंथ या चियान टर्पेन्टाईन ट्री (Terebinth or chian turpentine tree) तथा लेटिन मे पिस्टेसिया टेरीबिंथस कहते है।

ये वृक्ष बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, अफरीका और यूरोप में विशेष पैदा होते हैं।

इस वृक्ष की तीन जातिया है। इनमें से एक प्रकार का स्निग्ध राल या रूमामस्तगी के समान निर्यास प्राप्त होता है जिसे कावुली मस्तगी कहते हैं। यह रूमामस्तगी के स्थान मे उपयोगी है।

इसके उक्त फलो को तोडने पर भीतर से चिपटी सी पिस्ता जैसी गिरी निकलती है, जो स्वादिष्ट होती है। इसे दबाकर तैल निकाला जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

फल—उष्ण, रूक्ष, सकोचक, स्तभक, पौष्टिक, वाजीकर, कफनि सारक, लेखन एव मूत्रार्त्तवजनन है। विशेषत वाजीकर माजून आदि कल्पो में इसके चूर्ण को मिलाकर नपुसक एव वीर्य विकार ग्रस्त रोगियो को सेवन कराते

हैं। कास श्वास में छाती या फुफ्फुसो को कफ से शुद्ध करने के लिए इसे खिलाते हैं। यह लेखन होने के कारण झाई, छीप, दाद आदि पर इसका लेप बनाकर लगाया जाता है। इससे चेहरे का रग निखरता है, तथा त्वचा के विकार नष्ट होते हैं।

नोट—माना ३ से ५ माशा तक। अधिक मात्रा में यह मस्तिष्क तथा आमाशय के लिये हानिकर है। हानि निवारक-कतीरा, वनफशा और अर्क गुलाब है। प्रतिनिधि-बादाम, अखरोट, पिस्ता और तरबूज के बीज हैं।

वुतसुर—देखें—अमसानिया (भाग १ में)

बुन्दार (Eupatorium cannabinum)

भृ गराज कुल (compositeae) के इस क्षुप के पत्र हाथ के पजे की आकृति के कुछ रोमश, कटी हुई किनारो वाले, पुष्प छोटे छोटे उग्रगन्धी गुच्छो में आते हैं। इस बूटी का सर्वाङ्ग कड़वा रहता है।

इसके क्षुप हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा यूरोप मे वहुत पैदा होते हैं।

नाम—

हि०—बम्बई की ओर वु दार। अ०—हेम्प एग्रिमोनी (Hemp Agrimony) ले—यूपेटोरियम केनेविनम।

इसके पत्र पुष्पो मे एक श्वेत वर्ण का क्षाराभ पाया जाता है, जो ईथर मे घुलनशील है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी जड व पत्ते साधारण मात्रा मे देने से मूत्रल व स्वेदल कार्य करते हैं। बडी मात्रा में ये वामक व भेदक हैं। कामला, रक्तपित्त (स्कर्वी), दुष्ट व्रण और पैरों (चरणो) की सूजन पर इसका फाण्ट पिलाते, तथा इसी फाण्ट से शोथ या व्रणो को धोते है। फाण्ट विधि लगभग ५३ तोला उबलते हुए जल में इसके २½ तोला शुष्क पत्रों को डाल, नीचे उतार ढाक कर १०-३० मिनट रखने के बाद छानकर प्रयोग में लावें। इसे ५ तोला की मात्रा में २-२ घटे के अ तर से पिलाने से खूब पसीना व मूत्र आता है।

बुन्दुक—देखें—कटकरज। बुन (बून्द)—देखें—काफी

बुब्बुर बूटी (Phaseolus Lunatus)

शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) की इस बूटी के पुष्प छोटे छोटे हरिताभ पीतवर्ण के अधिक परिमाण मे आते हैं। बीज श्वेत होते हैं।

यह ब्राजील देश की आदि निवासिनी बूटी सम्प्रति भारत मे दक्षिण प्रान्तो के पहाडी स्थानो मे पाई जाती है।

नोट—इसकी एक जाति मे कभी-कभी विषैले तत्व पाये जाते है।

नाम—

हि०—विशेषत बगला में बुब्बुर बूटी, सिमरा

अ०—लिमापोल वीन (Limapole bean), डबल बीन (Double bean) रगून वीन (Rangoon bean)। ले०—फेजिओलस लूनेटस।

रासायनिक सगठन—

इसके बीजो मे हाइड्रोसायनिक एसिड युक्त एक विशेष ग्लुकोसाईड और फेजिओ ल्युनेटिन (Phaseolunatin) नामक द्रव्य पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह सकोचक है। बगाल की ओर इसके कोमल पौधो की शाक बनायी जाती है। ज्वर मे विशेषत. यह पथ्य रूप में दी जाती है।

बुलु (Rhododendron Cinnabarim)

तालीश कुल (Ericaceae) के इस झाड़ीदार क्षुप की छाल पतली लालिमा युक्त भूरे रग की पत्र बहुत छोटे तालीश पत्र जैसे, पुष्प-छोटे गहरे लाल रङ्ग के या केम-रिया रङ्ग के होत हे।

यह बूटी भूटान तथा सिक्किम मे १० से १२ हजार फुट की ऊचाई तक पैदा होती है।

नेपाल तथा भूटान की ओर इसे वुल सेनुचिमाल तथा लेटिन में रोडोडेंड्रान सिनेबेरियम कहते हैं।

इसमे एक विषैला कड़वा तत्व पाया जाता है। इसके पत्ते पशुओ के लिये जहरीले होते है। इसके धूम्रपान से नेत्र तथा चेहरे पर सूजन पैदा हो जाती है।

बुराँस (Rhododendron Arboreum)

तालीस कुल (Ericaceae) के इस छोटे-छोटे सदा हरे भरे रहने वाले वृक्ष की छाल लाल भूरी, पत्र-शाखा पर दलबद्ध ४-६ इच लम्बे, भालाकार या अण्डाकार आय-ताकार, ऊपरी पृष्ठ भाग चिकना, अध· पृष्ठ भाग रोमश, भुरचई या श्वेत रग का, पुष्प-बडे-बडे, लाल या गुलाबी रग के आकर्षक, स्वाद मे खट्टे इनका अचार बनाया जाता है। कोपलो का शाक भी होता है।

यह काश्मीर से भूटान तक ५ हजार फुट की ऊचाई तक पाया जाता है।

नाम—

हि पजाबी—बुरास, अर्दवाल, आरू, ब्रोस, ब्रोआ चचिभोन, च्यू आदि। नेपाली—भोरास, घोनास। ले —रोडोडेंड्रान आर्बोरियम।

इसमे एरीसोलिन (Ericolin) नामक एक तत्व पाया जाता है।

रासायनिक संगठन—

पुष्प-सग्राही है। इसके कोमल पत्र कुछ विषैले होते हैं। इसके पुष्पो को पीसकर सिरदर्द पर लेप करते है। ये अतिसार मे भी उपयोगी हैं।

बुरोचूचा (Cyperus Iria)

मुस्ताकुल (Cyperaceae) की यह क्षुद्र वनस्पति विशेषत बम्बई की ओर चावल के खेतो मे पैदा होती है। इसके क्षुप नागरमोथा के क्षुप जैसे होते हैं। इसे बम्बई की ओर बुरोचूचा तथा ले -सायप्रसइरिया कहते हैं।

यह पौष्टक, उत्तेजक, दीपन एव सकोचक गुण धर्म विशिष्ट है।

बुशान (Salix Alba)

वेतस कुल (Salicaceae) के इस बडे वृक्ष की शाखायें मृदुरोमश, कोमल, पत्र—रेशमी मुलायम, पुष्प—पीत वर्ण के होते हैं।

हिमालय के उत्तर पश्चिमी प्रदेशो में यह बोया जाता हे। यह काश्मीर में उत्पन्न होने वाला वेस (वेद) जाति की एक उपजाति हे। आगे बदसादा का प्रकरण देखें, उसका और इसका लेटिन नाम एक ही है।

नाम——

हि पजाबी में—बुशान, बिस, चम्मा, चग, कलचान, मलचाग, मदाना, मूर, वेदीस्याह इ। काश्मीरी में—बुदर, बिपर। ले —सेलिक्स एलबा।

इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाईड पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग——

छाल—कृमिनाशक, पौष्टिक, सकोचक ज्वरघ्न है। ज्वर की दशा मे होने वाली सर्वपीडा में इसका क्वाथ दिया जाता हे। अतिसार व रक्तातिसार में यह उपयोगी है।

बुहरना (pulicaria Crispa)

भृङ्गराज कुल (compositae) के इसके क्षुप भांगरा के क्षुप जैसे ही होते है।

इसके क्षुप बगाल, पजाब, सिंध तथा गगा के ऊपरी मैदानो मे विशेष पैदा होते हैं।

इसे हिंदी मे बुहरना, बुरहना। पजाबी मे बुई, गिडी, फटमीर, सुतेह आदि तथा लेटिन मे पुलीकेरिया क्रिस्पा कहते है।

यह जतुनाशक है, कोथप्रशमन है। जानवर या मनुष्यो के दूषित व्रणो पर इसका लेप लगाया जाता है। यह लेप साधारण चोट या रगड पर भी लाभकारी है।

वेफरा—देखिये—भेकल। वकरियो—देखिये—भेसरियो।

बेकल (विकंकत) [Gymnos poria Montana]

तुवरक कुल (Flacourtiaceae or Bixinae) के इस ५-१५ फुट तक ऊचे वृक्ष की अनेक शाखाये पीताभ हरित वर्ण की या बेंगनी रङ्ग की ऊची, नीची, टेढी मेढी फैली हुई, लम्बे तीक्ष्ण नोकदार काटो से युक्त, पत्र १½ से २½ इच लम्बे, १ से १½ इच चौडे, हल्के हरे रङ्ग के, अग्र भाग मे चौडे, नीचे वृन्त की ओर सकडे किंचित कगूरेदार, पुष्प—शीतकाल मे छोटे-छोटे श्वेत रङ्ग के आते हे। फल—कालीमिर्च के जेसे, कच्ची दशा मे पीताभ हरित वर्ण के, अर्द्ध पक्वावस्था मे बैंगनी रङ्ग के तथा पकने पर काले हो जाते हैं। पककर ये फल बीच मे से फटकर उनमे से बहुत छोटे छोटे श्वेत बीज २-२ या ३-३ निकल आते हैं।

इसके पौधे हिमालय के प्रदेशो मे तथा पजाब, विहार, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान आदि के जगलो मे एव गङ्गा के मैदान और दक्षिण के पश्चिमी घाटो मे पाये जाते हैं।

नोट—इस ग्रथ के द्वितीय भाग मे वर्णित 'कण्टाई' का ही यह एक भेद विशेष है।

नाम—

स०—विकंकत, व्याघ्रपदा, ग्रथिला, ब्रह्मपादप इ०। हि०—बेकल, बाइकाल, काकरा, कटाई, कडाई, विकणी, टोटर इ०। म०—हरमेना, मारुली, वेफरा, वेकर। गु०—विकारो, बाकलो। व०—वेचिगाछ। पजाबी—दजकर, खेराई, किगारा इ०। ले०—जिम्नोस्पोरिया माटेना।



बैकल (विकंकत)
GYMNOSPORIA MONTANA BENTH



गुण धर्म व प्रयोग--

फल–लघु, अम्ल, मधुर शीतवीर्य विपाक मधुर, दीपन, पाचन, पित्तशामक, रक्तशोधक, सर्व दोष नाशक तथा कामला, दाह, शोष, व्रण, अर्श आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके पत्तो मे भी उक्त गुण धर्म है। रक्त विकार, अर्श, पाडु, कामला, शोथ एव पित्त विकार पर पत्तो के क्वाथ मे शक्कर मिलाकर पिलाते है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होकर, क्षुधा वृद्धि एव पाचन ठीक प्रकार से होता है।

आख के फूले पर पत्तो का रस लगाते है। इसके वृक्ष की जड की छाल के चूर्ण को सरसो के तेल मे मिलाकर लगाने से सिर केजुये, लीके आदि नष्ट होती है। कैसर मे भी इसका सफल प्रयोग हो सकता है।

वेख वादियान–देखिये–सौफ मे (सौफ की जड)

बेंत (Calamus Rotang)*

नारिकेल के कुल (Palmae) के साधारणत वेत के बहुवर्षायु, काटेदार, चढने वाली लता सदृश, कोमल क्षुप के काड अति कोमल, नलिकाकार, परिवेष्टक अकुर युक्त, वास जैसे पर्व वाले, काड की छाल अति दृढ, पत्र

---

* विद्वानो मे इसके विषय मे मतभेद है। निघण्टु ग्रथो मे वेतस तथा जलवेतस इन दो भेदो का उल्लेख है। राजनिघण्टु मे वेत्र नाम से एक स्वतन्त्र बूटी (वेतो वेनो योगिदण्ड सुदण्डो मृदुपर्वक। वेत्र पचविध शैत्यकषायो भूत पित्त हृत्) का उल्लेख है। कई विद्वानो ने वेतस शब्द से वेत ग्रहण किया है। जिसका प्रस्तुत प्रसग मे वर्णन किया जाता है।

कई लोग वेतस शब्द से वेदसादा, वेदमुश्क आदि तथा इसी जाति के अन्य उपभेद (जलमाला, वेदलैला) एव वेदवडा को 'जल वेतस' मानते है, जिनका विस्तृत वर्णन आगे के वेदसादा आदि के प्रकरणो मे क्रमश देखिये।

भावप्रकाश मे वेतस के पर्याय मे वजुल और वानीर शब्द दिये गये है। किंतु चरक (क अ १ व ९ मे तथा सि अ १० व १९) मे इन दोनो शब्दो का एक साथ उल्लेख होने से मालूम होता है वजुल और वानीर दो अलग अलग बूटिया है। चरक चि अ ४, १२, २७ व ३६ मे वेत्र तथा वेतस भी साथ साथ दिये गये है, जिससे स्पष्ट है कि ये दोनो भिन्न बूटिया है। वेत्र नाम से रक्तपित्त (चि अ ४) शोथ (चि अ १२) एव ऊरुस्तम्भ (चि अ २७) मे उपयोग किया गया है।

गुण धर्म की दृष्टि से वेद (सादा, विशेषत वेदमुश्क) के गुण भावप्रकाशोक्त 'वेतस' से मिलते जुलते है। आगे पृष्ठ १७८ पर वेद का प्रकरण देखिये।

—सम्पादक

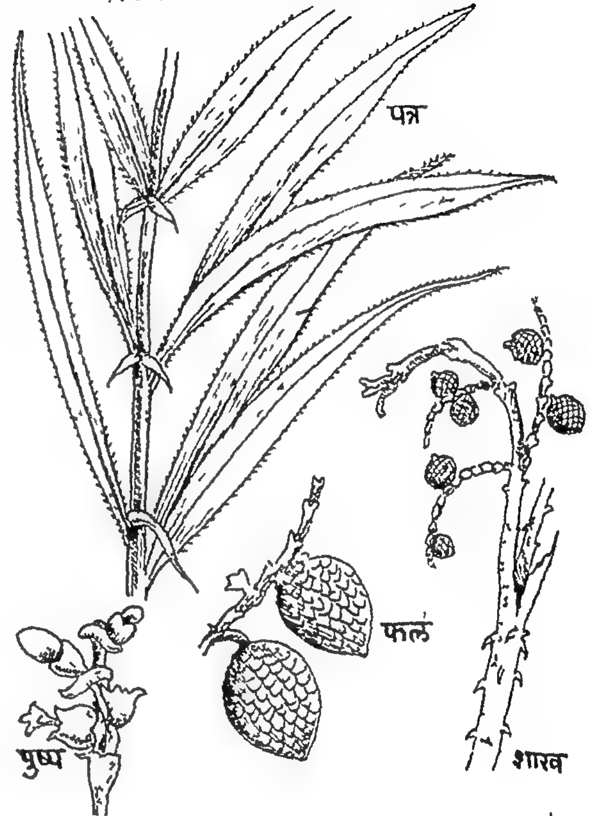
वास के पत्र जैसे, एकातर, पक्षाकार, तीक्ष्ण नोकदार, क्वचित चौडे, समानातर शिरा वाले, काटेदार अकुरयुक्त पुष्पावरण (Spalhes) के भीतर नर मादा पुष्प छोटे छोटे वृन्तयुक्त, स्त्री पुष्प मे वाह्यकोप नरपुष्प जैसा नीचे नलिकाकार, ऊपर ३ खण्डयुक्त होता है। पुष्प की वालमजरी (Spadices) पुष्पावरण के भीतर अनेक शाखा युक्त काटेदार होती है। फल गोल, पतले कवचयुक्त होते है।

नोट—ऊपर बेत का सर्व साधारण परीक्षात्मक वर्णन दिया गया है। बेत की कई जातिया है, उनमे से मुख्य जातियो का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(१) सिलोन जाति का वेत—केलेमस रोटाग (calamus Rotang) के काड अतिकोमल, ऊपर साधारण काटो से युक्त, पत्र—समानातर पर २० से ३६ इच तक लम्बे, बहुत छोटे वृतयुक्त, उपपत्र ७–८ इच लम्बे, पुष्प नर पुष्प की वालमजरी (Male spadix) अतिलम्बी, अकुरयुक्त तथा उपमजरी ½ से १ इच मुडी हुई। स्त्री पुष्प की उपमजरी लम्बी, फल– गोल-लगभग ¾ इची व्यास के होते है। इसे लेटिन मे केलेमस एक्सटेसस (Calamus extenus) भी कहते है।

इसके क्षुप विशेपत. सिलोन, सिलहट, चीन तथा मध्य प्रदेश, दक्षिण मे महावलेश्वर, गोवा, मलावार, रामेश्वर, कर्णाटक आदि मे अधिक पैदा होते हे।

(२) वडा बेत (Calamus viminalis)—सरल भाव से पैदा होने वाले कभी–कभी किसी वृक्ष के सहारे वर्द्धित होने वाले इस क्षुप के काण्ड मोटे, दृढ होते हैं। इसके काण्ड, पत्रदण्ड तथा पत्र के ऊपर छोटे–छोटे टेढे काटे होते है। पत्र २–३ फुट लम्बे, अग्रभाग तीक्ष्ण लम्बे काटो से युक्त, पत्र वृन्त सीधा, लम्बा, काटेदार, उपपत्र ४–१० इच लम्बे हल्के हरे, ३–३ के गुच्छो मे होते है। ये पत्र विपमान्तर पर या गुच्छो मे तथा ३ धार वाले होते हे। पुष्प मजरी ४–५ इच लम्बी तथा ½–१¼ इच लम्बे काटो से युक्त होती हे। फल—गोल ⅓–½ इच

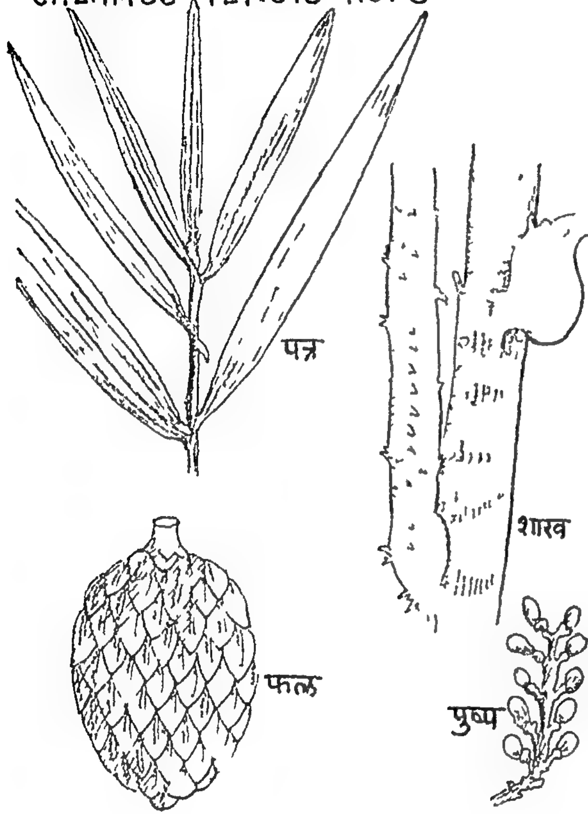


व्यास के, आयताकार चिकने वीजो से युक्त होते हे। वर्षा काल मे पुष्प तथा शरद या शीतकाल मे फल आते है।

वगाल की ओर इसको वडा वेत कहते है। इसका प्राचीन लेटिन नाम (Calamus Fasiculatus) केलेमस फेसिकुलेटस हे।

इसके काटे तथा विशेपत पत्र विहीन स्थान का भूमि पर रेगने वाला अकुर (Flagella) जहरीला होता है। इसका कुछ अश शरीर मे घुस जाने पर उस स्थान पर पाक हो जाने की सभावना है। अत शीघ्र ही उसे सूई से या शस्त्र से वाहर निकाल देना चाहिए।

इसके क्षुप पूर्वी वगाल या वगाल के प्राय सर्वस्थानो मे ग्रामो के आसपास या जगलो मे, तथा उडीसा, वर्मा और अन्डमान मे विशेप पैदा होते है।



(३) छोटावेंत—केलेमस टेनुइस (Calamustenuis) अग्रेजी मे रतन केन (Rattan cane)। इस पृष्ठ पत्र स्थित टेढे काटो की सहायता मे ऊपर को फैलने वाली आरोहीलता के काण्ड छोटी अगुली के जैसे मोटे, अति लम्बे कभी कभी २००–३०० फुट तक लम्बे, चिकने, हरे, कोपमय पत्राधारो मे ढके हुए, पत्र—१½ से ४ फुट तक लम्बे, पक्षाकार, ममदल युक्त, पत्र वृन्त कण्टकावृत, पत्रक ६–१२ इच लम्बे, ½–¾ इच चौडे, रेखाकार या भालाकार लम्बी नोक एव ३–३ शिराओ से युक्त किनारे तथा शिराओ पर मुडे हुए छोटे कटकयुक्त होते है। पत्रनाल व पत्रकोप पर भी प्राय १ इच तक लम्बे, सीधे काटे होते हे। पत्र कोप से चाबुक के सदृश ८ फुट तक लम्बी एक रचना (Flagellum) निकली रहती है इस पर भी काटे होते हे। पुष्प—पत्रकोपो (Spathe) के भीतर एक लिंगी पुष्पो की विदण्टिक (Spike) वह मजरी जिसमे विनानाल पुष्प भिन्न भिन्न ग्रथियो से निकले हो) मजरिया पाई जाती है। निम्न पुष्पावरण ६–१० इच लम्बा, फल–½ इच व्याम का लगभग गोलाकार काले किनारे के वल्क पत्रो (Scale leaves) मे ढका हुआ रहता है। शीत ऋतु मे (प्राय जनवरी मे एप्रिल तक) इसमे पुष्प और फल आते हैं।

यह अधिक लम्बा होने के कारण बगाल मे इसे छाची वेत कहते हे।

उत्तर पूर्व, व मध्य बगाल मे कुमाऊ से पूर्व भाग मे सुन्दर वन, आसाम, सिलहट, चटगाव तथा ब्रह्म देश और कोचीन मे २ हजार फुट की ऊचाई तक प्राय जलप्राय भूमि मे इसकी सघन लताए देखी जाती हैं।

(४) वेथरा वेत—केलेमस ट्रावनकोरिकस (Calamus Travancoricus) इसका काड बहुत नाजुक पत्र–३ से ५ तक गुच्छो मे रहते ह।

इसके कोमल पत्र पित्त विकार, अग्निमाद्य तथा कान के विकारो मे उपयोगी ह। ये कृमिनाशक हैं। यह दक्षिणी प्रायद्वीप मे मलावार मे ट्रावनकोर तक पैदा होता हे।

नोट—भारत मे चीन से जो वेत आता है। यह अधिक कोमल एव उत्तम जाति का होता हे। यह जल मे भीगने पर भी नही सडता। कुर्सियो मे प्राय इसका अधिक उपयोग होता है।

उक्त सब वेत की जातियो के गुण धर्म प्राय एक समान हे।

नाम—

स—वेतस, निचुल, वजुल, अभ्रपुष्प, दीर्घपत्रक इ। हिंदी—वेत,वैत। म—वेत। गु—नेतर। व—वेत्र, वेत। अ—चेअर वाटम, केन (Chair bottom cane) लेटिन नाम—ऊपर सबके भिन्न-भिन्न देदिये गये हे।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य एव कास, पित्त, दाह, शोथ, अर्श, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, अतिसार, रक्तस्राव



योनिरोग, तृषा, रक्त विकार, व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके अंकुर लघु, कटु, कुछ नमकीन, उष्ण, दीपन कफ वातनाशक है। इसके पत्र लघु, तिक्त, कटु, कसैले वातकारक, मल भेदक, मूत्रल, शीतवीर्य, रक्त प्रसादक कफघ्न एव पित्तशामक है। इसका बीज मधुराम्ल, कसैला, रूक्ष, पित्तकर, रक्तदोष हर, व कफघ्न है। फल पित्तवर्धक, कफ व रक्त विकार नाशक है।

नोट—चरक मे वेदना स्थापन दशेमानि मे वजुल नाम से तथा सूत्रस्थान (अ २७) के शाको मे वेतस शाक, कल्पस्थान प्रथम अध्याय मे एव सिद्धि स्थान के १० वें अध्याय मे वजुल और पनीर नामो से पित्तशामक बस्ति द्रव्यो के साथ इसकी योजना की गई है। चरक और सुश्रुत दोनो के रोगोपचार मे इसका उपयोग पाया जाता है।

(१) योनिशैथिल्य और शोथ रोग पर—इसकी जड को जौकुट कर ४ तोला चूर्ण को ६० तोला जल मे मिला, मन्द आच पर अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर छानकर इससे योनि को दिन मे दो बार अच्छी तरह प्रच्छालन करें। इसी प्रकार नित्य क्वाथ बनाकर ८-१० दिन प्रयोग करने से योनि सकुचित एव सुदृढ हो जाती है। साथ ही साथ उक्त प्रक्षालन क्रिया के बाद इसकी जड को पत्थर पर घिसकर योनि के भीतर बाहर लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता हैं।

शोथ पर—इसकी छाल के साथ सम भाग क्षीरीवृक्ष (बड, गूलर, पीपल, पिलखन व पारसपीपल) की छाल मजीठ, कमलनाल, लालचन्दन और सुगन्धवाला लेकर सबको महीन पीसकर तेल मे पकाकर लेप या मर्दन करने से विशेषत पित्तज शोथ मे लाभ होता है।

—व० से०

साधारण शोथ रोगी को—बेत की कोमल शाखाओ के टुकडे कर जल मे पकावे। खूब नरम होने पर छान कर तैल मे पका कर खिलाते रहे। नमक न मिलावे।

(२) ज्वर, उरुस्तम्भ, रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र पर—सर्व ज्वर पर—इसकी जड के साथ समभाग नल या नरसल की जड, मूर्वा वा देवदारु इनका यथाविधि क्वाथ बनाकर सेवन कराने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट होते है

—सुश्रुत उ अ ३९

ऊरुस्तम्भ पर—इसके कोमल पत्तो को तिल तैल मिश्रित जल मे पकाकर काले नमक का प्रक्षेप देकर शाक बनाकर खिलावे।

रक्तपित्त पर—इसकी जड के क्वाथ मे शहद मिला कर सेवन कराते है।

मूत्रकृच्छ्र पर—बेत की लकडी को ६ माशा तक घिस कर चावलो के धोवन या जल के साथ पिलाने से पेशाव साफ आता है। अथवा इसकी लकडी के ६ इच टुकडे को जलाकर बीडी के समान धूम्रपान कराने से पेशाव तुरन्त उतरने लग जाता है। —र त सा

(३) कुत्ते के विष पर तथा मत्स्य विष पर—इसकी जड के साथ समभाग कूठ (कुष्ठ) को जौकुट कर फाट बनाकर पिलाते रहने से कुत्ते का विष दूर होता है।

मछली के दश पर—इसकी जड को जल मे घिस कर उसमे घृत मिला गरम कर लेप करने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा—मूल का क्वाथ १० तोला तक। कोमल शाखा या अकुर का रस १-२ तोला।

बगाल की ओर 'छोटे बेत' का प्रयोग बहुत किया जाता है। दक्षिण मे सिलोन जाति के बेत का औषधि कार्य मे विशेष प्रचलन है।

बेत्तिर (Juniperus Recurva)

देवदारु कुल (Coniferae) के इस झाडीदार क्षुप के पत्र—बरछी जैसे, फल लम्बगोल, गहरे बादामी रग के पकने पर चमकदार हो जाते है। प्रत्येक फल मे १-१ बीज रहता है।

यह भारत के पश्चिम उत्तर प्रदेश, पजाब आदि मे विशेष होता है।

नाम—

हि०—वेतिर, वतर, यैलू, विदेलगज, विल, इ०। ले०—जूनिपेरस रिकरवा।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी हरी लकडी का धुआ तेज वमनकारक होता है वमन कार्यार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। —नाडकर्णी

वेद-सादा (Salix Alba)

वेतस कुल (Salica eae) के इस सुन्दर बडे झाडीदार वृक्ष के काड पीताभ श्वेत वर्ण के कुछ पोले से, छाल—श्वेत रग की, उपशाखाये पीली, लाल या बैजनी, पत्र—बारीक ६-६ इच लम्बे, उपपत्र २।। से ४ इच लम्बे, सफरे, वल्लभाकार, नोकदार, प्राय ४ ५ पत्र एकत्र, एकान्तर समूहबद्ध, ऊपरी भाग मे हरे, पृष्ठ भाग मे श्वेत या श्यामवर्ण के, पत्र वृन्त .१० इच लम्बा, पुष्प—वसन्त ऋतु मे, पत्र निकलने के बाद, कही कही पत्र निकलने के पूर्व ही, पुष्प पीत वर्ण या श्वेताभ नीले रङ्ग के कोमल मखमली, छोटे छोटे सुगन्धित, लम्बी मजरियो मे, पु-मजरी १-२ इच लम्बी, पतनशील, स्त्री मजरी कुछ अधिक लम्बी (२-३ इच तक) पतनशील होती है। कही कही इसमे जो फली आती है वह चिकनी, प्राय वृन्तरहित होती है।

हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रदेशो मे तथा तिब्वत मे यह अधिक पैदा होता है। काश्मीर के रास्ते पर इसके अत्यधिक वृक्ष लगाये हुए देखे जाते हैं।

आयुर्वेदिक निघण्टु के मतानुसार यह या इसकी जातिया जल वेतस या जल माला है। इनके क्षुपदार वृक्ष प्राय नदी या नालो के किनारे विशेष पैदा होते है। इनके लचीले पतले काड या शाखाये टोकरियो के बनाने मे काम आते हैं।

नोट—इसकी कई जातिया या उपजातिया हैं। पीछे 'बुशाने' नाम से जिसका वर्णन किया जा चुका है, वह इसीका एक खास भेद है। इसके अतिरिक्त—वेद मुश्क, वेद लैला, वेद मजनू, वेद बडा, वेद स्याह ये पाच मुख्य इसकी जातिया हैं। इनमे से वेद मुश्क और वेद लैला इनका वर्णन आगे के प्रकरणो मे स्वतत्र रूप से किया जाता है। शेष वेद मजनू, वेद बडा और वेद स्याह पर सक्षिप्त नोट इस प्रकार है—



स०- वेतस (वेद)

SALIX ALBA LINN

(अ) वेद मजनू—(Salix Babylonica) इसके मध्याकार के वृक्ष हिमालय के काश्मीर नेपाल आदि प्रदेशो मे तथा उत्तरी हिन्दुस्तान मे अधिक पैदा एव लगाये भी जाते हैं। इसे हिंदी मे पजाब की ओर वेद मजनू, वेसू, बाला इत्यादि। काश्मीर मे—गुर्हर, विसा। नेपालीमे—तिस्सी अग्रेजी मे—वीपिंग विलो (Weeping willow), ले० मे सेलिक्स वेबीलोनिका कहते हैं।

इसकी छाल और पत्र—पौष्टिक, सकोचक है, ज्वरघ्न भी है। पार्यायिक ज्वर तथा सतत ज्वर मे इसका विशेष

उपयोग होता है। छाल कृमि नाशक भी है। इसमे सेलिसिन (Salicine) नामक तत्व पाया जाता हे।

(आ) वेद वडा–(Salix Acmophylla) इसके वृक्ष छोटे-छोटे, छाल खुरदरी, लम्बान में फटी हुई, पत्र २ से ७ इच लम्बे, $\frac{1}{4}$–$\frac{3}{4}$ इच चौडे, भालाकार, हरे चमकीले, पुष्प—नर व नारी पुष्पो की मजरिया पृथक-पृथक, नीचे की ओर झुकी हुई होती हे।

इसके वृक्ष पूर्व पश्चिम हिमालय के प्रदेशो मे तथा उत्तर प्रदेश मे लगाये जाते हैं।

इसे हिंदी मे—वेद वडा, वेड, जलमाला, बवई की ओर तथा सिंधी मे—बुड्ढा, लेटिन–सेलिक्स एक्मोफाला कहते है।

इसकी छाल ज्वरघ्न हे। इसका क्वाथ ज्वर मे दिया जाता हे।

(३) वेद स्याह–(Salix Nigra)–इसके भी वृक्ष छोटे होते है। इसे वेदस्याह, वेद बेडी, काश्मीर मे—मुर तथा लेटिन मे—सेलिक्स नायग्रा, सेलिक्स डेफ्नोडेस [S Daphnoides] कहते है। इसकी छाल मे एक ग्लुकोसाइड और सेलिसिन पाया जाता हे।

नाम--

स०–वंजुल, वेतम, विनिका। हि०–वेद सादा, वेद पजाबी–विस, बुशन, चम्पा। काश्मीर–विविर। अ०–व्हाइट विलो (White willow), हटिंगटन विलो (Huntigdon willow), लेटिन—सेलिक्स अल्वा। इसमे भी प्रभावशील द्रव्य सेलिसिन पाया जाता है।

प्रयोज्यांग--

छाल, पत्र, पुष्प। विशेषत छाल का क्वाथ, ताजे पत्तो का रस और पुष्पो का अर्क।

गुण धर्म व प्रयोग--

शीतल, रुक्ष, कटु, तीक्ष्ण, सुगधित, दाहशामक, मस्तिष्क एव हृदय के लिये वल्य, सौमनस्यजनन, मूत्रल, वेदनास्थापन, पैत्तिक ज्वर मे लाभकारी है। पित्तज्वर, उष्णवात, पित्तप्रकोप, रक्तविकार, यकृत एव हृदय की सताप दशाओ मे रोगी को इसकी पत्तो की शय्या (पर्ण-शय्या) पर शयन कराने से वडी शाति प्राप्त होती है।

यकृत का अवरोध, कामला, प्लीहा विकृति, अतिसार रक्तातिसार, प्रवाहिका मे पत्र रस मे शहद मिलाकर दिया जाता है। या छाल का क्वाथ देते है। जीर्ण यकृतावरोधज कामला और प्लीहा वृद्धि पर भी इसके ताजे पत्रो का रस दिन मे ३ वार पिलाया जाता हे। कर्णशूल मे पत्तो का रस कुछ गरम कर कान मे डाला जाता है।

हृदय की विशेष धडकन, हृच्छूल, शिर शूल, व्याकुलता, रक्तस्राव, चेचक, रोमान्तिका, मथर ज्वर, दाह, तृपावृद्धि आदि पर पुष्पो का अर्क पिलाया जाता है। अनेक औषधियो के निर्माण मे यह अर्क भावना के रूप मे प्रयुक्त होता है। क्षय और मसूरिका तथा अन्य पित्तज रक्त दुष्टियो मे यह अर्क विशेप लाभकारी है। सामान्यत वेदसादा का उपयोग वेदमुश्क (आगे का प्रकरण देखे) के स्थान पर हो सकता है।

नोट—मात्रा–छाल क्वाथ के लिये $\frac{1}{2}$ से १ तोला पत्र स्वरस १ से २ तोला या ५ तोला तक, पुष्पार्क ५ से १० तोला या १५ तोला तक। कटि (कमर) के लिये यह हानिकारक है। हानि निवारक मिश्री, अर्क गुलाब या गुलकद। प्रतिनिधि-नीलोफर, मेहदी के पुष्प है।

स्व० श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने इसे ही चरक सहिता कथित वजुल (जलवेतस) माना है। चरक के वेदनास्थापन महाकपाय तथा आसव योनिसार वृक्षो मे वजुल का उल्लेख मिलता है।

वेद या सेलिक्स की सब जातियो मे से इसकी लकडी विशेष मूल्यवान मानी गई हे। इसकी लकडी दृढ एव हल्के वजन की होती हे। इसके क्रिकेट वैट वहुत अच्छे बनते हे। वेदमुश्क के समान इसके फूलो से अर्क खीचा जाता है। इसकी छाल का क्वाथ व्रणो को धोने मे भी उपयोगी हे। —गा औ. र

विशिष्ट योग–अर्क वेदसादा को, वेदमुश्क के विशिष्ट योग मे देखिये।

बेद मुश्क (Salix Caprea)

उक्त वेतस कुल के उक्त वेदसादा के वृक्ष जै ,से का्तु उसकी अपेक्षा कुछ छोटे १५–२० फुट ऊचे, काण्ड—३–४ फुट व्याम के, छाल—पतली, लचीली, स्वाद मे बहुत कडवी, शाखाये—अभिमुख, पत्र—एकान्तर, २–४ इच लम्बे, गोल, अण्डाकार, दतुर, नोकदार, गहरे हरित वर्ण के, चिकने, ऊपर की ओर न्यूनाधिक स्थान मे ऊवड-खावड, निम्न भाग मे पिगलरोमश, पुष्प—पीतवर्ण के, अति सुगधित, पत्रोद्गम के पूर्व ही आते है। वीज-रोमश।

पुष्पो को वेदमुश्क, वेदमिशी कहते है। वाष्पीकरण विधि से इनका जो सुगधित अर्क या इत्र निकाला जाता है उसे उत्तर भारत मे ईरानी व फारसी लोग विशेष उपयोग मे लाते है।

इसके वृक्ष ईरान, यूरोप तथा पश्चिमोत्तर भारत विशेषत पजाव, काश्मीर और पश्चिम उत्तर प्रदेश मे लगाये हुए देखे जाते है।

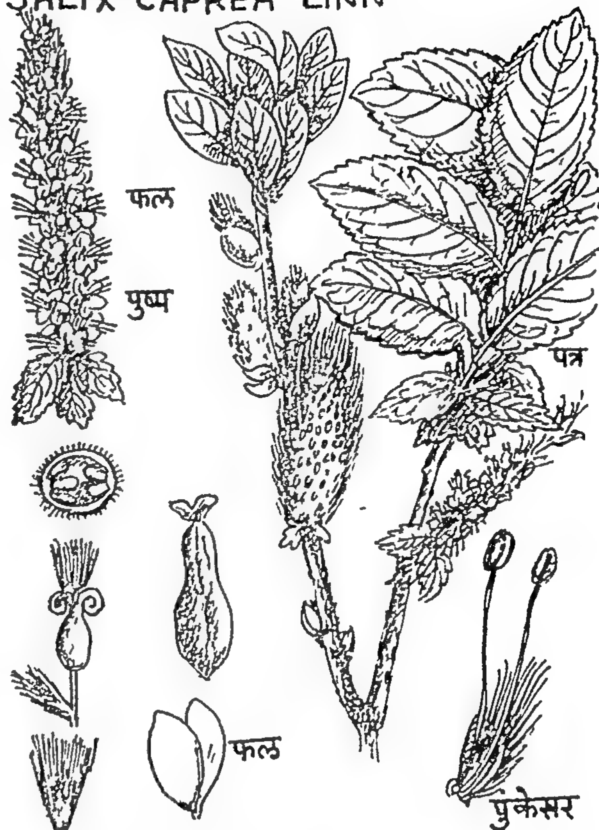
नोट—कहा जाता है कि ईरान या परसिया से आने वाले लोगो ने भारत मे इसके पुष्प एव उसके अर्क का प्रचार किया। पश्चात् मुगलो ने इसका उपयोग करना प्रारम्भ किया। वे लोग इसको मस्तिष्क एव हृदय सम्बन्धी विकारो तथा हर प्रकार की अस्वस्थता मे एक घरेलू औषधि की तरह उपयोग मे लेते थे।

ईरान मे इसके वृक्षो की ऊचाई २५–३० फुट होती है तथा भारत मे कम होती है।

इसकी तथा इसकी अन्य जातियो की शाखाये भी वेंत के समान होती हैं। तथा इन शाखाओ की छाल से भी कुर्सी आदि बुनते हैं। वेत के समान इसकी भी छडी (वेंत मे कुछ कम कोमल) वनती है। शाखा को वाष्प देकर छाल निकाल ली जाती है।

नाम–

सं—वेतस, वानीर, गन्ध पुष्प, नम्र। हि—वेदमुश्क। अं—ब्राड लीव्हड विलो (Baroad Leaved willow), गोट्स सेलो (Goats Sallow) ले—सेलिक्स केप्रिया।



रासायनिक संगठन–

इसकी छाल मे टेनिन (कषायाम्ल) ४.१०%, एक तिक्त, रेशम जैसा मुलायम, चमकीला, श्वेतस्फिटिक जैसा ग्लुकोसाईड सैलिक्स (Slicinemin) २७% (जो लाला रस के प्रभाव से सैलिजनिन (S lige) एव शर्करा मे परिणित हो जाता है) होता है इनके अतिरिक्त मोम, वसा गोद आदि द्रव्य भी पाये जाते है।

इसकी पत्तियो पर एक मधुर निर्यास जमकर सूख जाता है। जिसे वेद अगवीन कहते है।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पुष्प, पत्र तथा वेद अगवीन।



गुण धर्म व प्रयोग--

स्निग्ध, कटु, तिक्त, कटु विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, ग्राही, हृद्य, यकृदुत्तेजक, कोष्ठमार्दवकर, रक्तस्तम्भन, सधानीय, मूत्रल, वृष्य, कामोद्दीपक, वेदनास्थापन, दाहप्रशमन, मेध्य, मस्तिष्कशातिप्रद, योनिदोषहर, ज्वरघ्न तथा अग्निमाद्य, ग्रहणीविकार, यकृद्विकार, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, क्षय, रक्तनिष्ठीवन, उरःक्षत, मूत्र कृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, नपुसकता, स्वप्नदोष, रक्तविकार आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके गुण धर्म प्रयोगादि बेदसादा के जैसे ही हैं किंतु उसकी अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है।

डाक्टर देशाई के मतानुसार इसकी छाल--सकोचक शीतल, ज्वरघ्न व दाहशामक है। पुष्प-रोचक हैं। छाल का क्वाथ विषम ज्वर, पित्तज्वर, नवीन आमवात एव तज्जन्यज्वर व क्षयज्वर मे दिया जाता है। इसके देने से अन्तर्दाह, शिरदर्द, फेफडो से होने वाला रक्तस्राव कम होजाता है। सधिवात मे इसे देने से सधिशोथ एव वेदना शात हो जाती है।

साधारण ज्वर तथा अजीर्ण मे इसके पुष्पो का अर्क देने से क्षुधा वृद्धि होती है। इस अर्क से हृदय की धडकन कम होती है। नेत्राभिष्यन्द व शिरःशूल मे भी यह लाभदायक है। कास और कफ क्षय मे--इसके ४ भाग अर्क को १ भाग तिल के ताजे तेल मे मिलाकर हल्की आच पर पकाने पर तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रोगी को सेवन कराते हे (नस्य देते और छाती पर मर्दन करते हे)

इसकी लकडी की राख फुफ्फुसो से होने वाले रक्त स्राव पर (शहद या अडूसा के स्वरस के साथ) दी जाती है। तथा इसे सिरके मे मिलाकर अर्श के मस्सो पर लेप करते है।

छाल--इसकी छाल का क्वाथ विषमज्वर, पैत्तिकज्वर, नूतन आमवात तथा कफ क्षय मे देते है। इससे शिरःशूल, सधिपीडा, सधिशोथ तथा कफक्षयजन्य रक्तष्ठीवन मे लाभ होता है।

अर्श मे उक्त क्वाथ से परिषेक करते हैं तथा छाल को महीन पीसकर लेप करते हे। इससे वेदना व दाह की शाति एव रक्तस्राव बन्द होता है।

पत्र--इसके पत्ते सकोचक, कफनिःसारक, मृदुरेचक ज्वर मे लाभप्रद, हाथपैरो का कम्प निवारक तथा स्नायु शूल, नेत्राभिष्यन्द, प्लीहावृद्धि आदि मे उपयोगी है। ज्वर मे पत्तो का क्वाथ दिया जाता है।

पुष्प--इसके पुष्प रोचक है। औषधि कार्यार्थ पुष्पो का अर्क ही काम मे लिया जाता है। उष्ण ज्वर, हृदय की धडकन आदि मे अर्क का सेवन कराया जाता है। नेत्राभिष्यन्द तथा शिरःशूल पर अर्क मे स्वच्छ वस्त्र को भिगोकर उसकी पट्टी रखी जाती है।

वेदअगवीन का उपयोग विशेषतः नेत्रो की ज्योति बढने के लिये किया जाता है।

नोट--मात्रा--ताजा स्वरस २-५ तोला तक। क्वाथ के लिए छाल आधा तोला से एक तोला तथा क्वाथ १० तोला तक। पत्र या पुष्पो का अर्क १ से ५ तोला तक।

अर्क का उपयोग माणिक्य, पन्ना, मोती आदि की पिष्टी बनाने के लिए भी किया जाता है।

इसका मुख्य प्रभावशाली सेलिसिन (Salicin) जो श्वेत रग का कड़ुवा, पौष्टिक एव ज्वरहर है इसकी मात्रा २½ से १५ रत्ती तक है। यह आमवातिक ज्वर, पार्यायिक विषम ज्वर, प्रतिश्याय, स्नायु शूल आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके तरल सत्व (Liquid extract) की मात्रा २० बूद तक है। यह स्वप्नदोष की उत्तम औषधि है। रात्रि के समय, शयन के ½ घण्टा पूर्व इसकी २० बूदे, २½ तोला जल मे मिलाकर लेने से विशेष लाभ होता है वीर्य स्राव नही होने पाता। किन्तु वीर्योत्तेजक कारणो से दूर रहना आवश्यक है। --नाडकर्णी

ध्यान रहे वेदमुश्क के किसी भी रूप मे विशेषत अर्क रूप मे अति सेवन से शैत्य के कारण वात प्रकोप हो कर वातविकार विशेषत कटिशूल आदि हो जाया करते है।

हानिनिवारक--अर्क गुलाब, शर्करा आदि हैं।

प्रतिनिधि--नीलोफर, वेदसादा हैं।

विशिष्ट योग—

अर्क वेद मुश्क।

वेद मुश्क के पत्र को २० तोला लेकर, रात्रि के समय ४ सेर जल मे भिगोकर प्रात भवका यत्र से २ सेर तक अर्क खीच लेवे।

मात्रा—१० तोला तक सेवन से दिल दिमाग को वल देता है। तृषा तथा खफकान को दूर करता है।

—यू चि सा।

इसी प्रकार वेदसादा का भी प्रयोग है। जो खफकान (विक्षेप, वहशत, व्याकुलता) और पित्तरोगो मे उपयोगी है।

विशेष प्रभावशाली अर्क वनाना हो तो—

वेद सादा (या वेदमुश्क) के पत्र १ सेर रात को १६ सेर जल मे भिगोकर प्रात १० वोतल तक अर्क खीचने के पश्चात् पुन इस अर्क मे उतने ही पत्र भिगोकर दोवारा १० वोतल अर्क खीच लेवे। मात्रा—३ तोला तक यह अर्क प्रात या सायकाल के समय २ तोला शर्वत उन्नाव मिलाकर पिलावे। इससे हृदयगत ऊष्मा, वहशत और दिल की धडकन दूर होती है। उष्ण व्याधियो मे तथा राजयक्ष्मा मे विशेष लाभदायक है। इसे अर्क वेदसादा (जदीद) कहते है।

पुष्पो का अर्क (तैल या इत्र) भी उक्त वाष्पी करण विधि से निकाला जाता है। इसकी मात्रा १ से २ तोला तक है।

वेद लैला (Salix Tetrsperma)

उसी वेतसकुल के इसके वृक्ष वेदमुश्क या वेदसादा से भी वडे ५० फुट तक ऊचे, सुन्दर, काण्ड—दृढ, १० फुट तक व्यास का, शाखाये—लगभग सीधी, छाल—श्वेत, खुरदरी, कही कही काली, रेसेदार, कडुवी, सुगन्धित; छाल के भीतर की लकडी लोहिताभ या लाल रग की, नरम, पत्र—१-६ इच लम्वे, ½-¾ इच चौडे, अण्डाकार, नोकदार, सूक्ष्म रोमश, दन्तुर धार वाले, पृष्ठ भाग मे श्वेत, दूसरी ओर हरे, पत्र वृन्त ³⁄₁₀ इची, पुष्प कोमल, मखमली, पाडुवर्ण के, कुछ सुगन्धित प्राय एक लिङ्गी, पत्रोदगम मे पूर्व ही वसन्त ऋतु मे आते हैं। फल या फली—चिकनी ५ इच तक लम्वी, कडी, ४-६ वीज युक्त वर्षाकाल मे आती है।

हिमालय के प्रदेशो मे नदी, नालो के किनारे, छ हजार फुट की ऊचाई तक तथा पश्चिमोत्तार भारत काश्मीर आदि छोटा नागपुर, विहार, उत्तर वगाल, दक्षिण मे महालेश्वर, ट्रावनकोर तथा ब्रह्मदेश, सिंगापुर, सुमात्रा, जावा आदि मे इसके वृक्ष विशेष पाये जाते है। सीलोन मे यह नही होता।



नाम—

स —वरुणा, जल वेतस, नादेय, निकेतन (गृहनिर्माण मे उपयोगी होने से)। हि —वेद लैला, भैन्स, जलमाला, वेगस, बेंट, वेधा, वक्षेल, मगशेर इ । म —वालुज, वेसी,

वितसा, वोचा, धानी, धनई इ । व—पानीजामा, वोई शाकी । ले—सैलिक्स टेट्रास्पर्मा ।

इसकी छाल में भी सैलिसिन (Salicin) नामक तत्व पाया जाता है ।

इसके गुणधर्म प्रयोगादि सब वेदमुश्क के समान ही है । छाल का क्वाथ कड़ुवा तथा ज्वरहर है ।

पुष्पो का अर्क वेदमुश्क के अर्क जैसा ही दाहशामक और शातिप्रद है । किंतु इसके पुष्पो का अर्क प्राय नही निकाला जाता ।

बेंदरली (Lycopodium Clavatum)

स्थूल शैवाल कुल (Lycopodiaceae) के जलाशय के किनारे या आर्द्रभूमि पर पैदा होने वाले इस सेवार या काई रूप क्षुप के हरित वर्ण के स्थूल छत्ते से होते हे । ये प्राय सर्वत्र आर्द्रशीतल या समशीतोष्ण स्थानो मे पाये जाते है ।

नाम–

दक्षिण मे मद्रास की ओर इसे बेंदरली, अ०—क्लब मास स्पोरम (Club mass Spores), व्हिजीटेवल सल्फर (Vegitable Sulpher) वुल्फ क्ला (wolf claw), लेटिन—लिकोपोडियम क्लेवेटम, लिकोपोडियम स्पोरम (Lycopodium Spores) कहते है ।

रासायनिक संगठन–

इसमे एक स्थिर तैल ४७%, शर्करा २%, उडनशील मेथिलामिन (Methylamin) व क्षार ४% पाये जाते है ।

गुणधर्म व प्रयोग–

मूत्रल, मार्दवकर, विकाशी या आक्षेपहर, कृमि नाशक, उपशोषक तथा आर्त्तवजनन हैं ।

सन्धिवात, अपस्मार तथा फुफ्फुस सम्वन्धी विकारो पर इसका टिंचर (१ भाग मे १० भाग मद्यार्क मिलाकर वनाया हुआ) १५ से ६० वून्द की मात्रा मे तथा इसका सूक्ष्म चूर्ण ५ से १५ रत्ती की मात्रा मे दिया जाता है ।

यह वृक्को के सदाह शोफ तथा मूत्रकृच्छ्र मे भी उपयोगी है । वालको के तथा वडो के शैय्यामूत्र के विकारो मे यह विशेप उपयोगी हे ।

मुहासो पर तथा उकवत (छाजन) तथा जुलपित्ती (Herpes जो कि प्राय वालको की जघा एव काख मे लाल पीली नन्ही फुसिया उठती हे) पर इसके महीन चूर्ण का अवधूलन किया जाता हे ।

औषधि की गोलियो के अप्रिय स्वाद को छिपाने के लिये गोलियो पर इसके चूर्ण का आस्तरण किया जाता है । इससे चिपकनी गोलिया परस्पर मे चिपकने भी नही पाती ।

बेदाना (Berberis Vulgaris)

दारुहरिद्रा कुल (Berberidacee) की इस वूटी के विषय मे हम दारुहरदी के प्रकरण (भाग ३ मे) के सक्षिप्त नोट मे कह आये है कि इसके गुल्म रूपी क्षुप दारुहल्दी के क्षुप जैसे ही होते हे । ये विदेशो मे तथा भारत के हिमालय प्रान्त के नेपाल तथा तिब्वत से लेकर अफगानिस्तान तक या काश्मीर मे लेकर नेपाल तक १२ हजार फुट की ऊचाई तक पाये जाते है ।

नाम–

इसे हिन्दी, फारसी मे–वेदाना, पजावी मे—झिरइक, चाचर, काशमल, चौहार आदि । अ०—ट्रू वारवेरी (True barberry), ले०—वरवेरिस व्हलगेरिस, वरवेरिस पेटियोलरिस (B Petiolaris) कहते हैं ।

गुणधर्म व प्रयोग–

इसकी जड शीतवीर्य, पौष्टिक, पित्तनाशक, विरेचक

है। मस्तिष्क सम्बन्धी विकारो मे तथा कास, अर्द्धाङ्ग, सन्निवात एव अर्धावभेदक (आधा शीशी) मे लाभदायक है।

जड की छाल मूत्रल है। उष्णता तथा तृषा की शांति के लिए एव हृल्लास (जी मचलाना) को दूर करने के लिए यह उपयोगी है। यह सकोचक है, ज्वर तथा पित्त के निराकरणार्थ भी यह प्रयुक्त होती है। इसका क्वाथ अरुण ज्वर (Scarlet fever) मे विशेष लाभकारी है।

इसकी जड का क्वाथ भीतरी चोट की पीडा को दूर करने के लिए भी पिलाया जाता है।

बेफोल (Desmodium Polycarpam)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इसके लता रूप क्षुप कोयल (अपराजिता का प्रकरण देखिये भाग १ मे) के क्षुप जैसे ही हिमालय की तलैटी के मैदानो मे तथा अन्य मैदानी प्रान्तो मे भी पैदा होते है।

नाम–

इसे सथाली पहाडी भाषा मे—वेफोल तथा ले०—डेस्मोडियम पोलिकार्पम, हेडिसेरम परपुरियम (Hedysarum purpureum) कहते हे।

गुणधर्म–

इसका उपयोग मूर्च्छा तथा आक्षेप के निवारणार्थ किया जाता है।

बेबीना (Mussaendra Frondosa)

मजिष्ठा कुल (Rubiaceac) के इस पराश्रयी लतारूप कोमल रोमयुक्त गुल्म की छाल चिकनी, धूसर वर्ण की भीतरी काष्ठभाग श्वेतवर्ण, कोमल, किंचित् कडा, पत्र—लम्बे, गोल डिम्बाकृति के, पत्र वृन्त—बहुत छोटा, पुष्प—नारगी रग के तुर्रेदार अनेक शाखायुक्त गुच्छो मे रेशम के समान मुलायम, कोमल, रोमश, फल—डिम्बाकार एव सूक्ष्म रोमयुक्त होते हे। वर्षाकाल मे पुष्प तथा शीत काल मे फल आते हे।

इसके क्षुप नेपाल, आसाम, खसिया पहाड तथा दक्षिण के पश्चिमी घाट एव मलाबार कोस्ट मे प्रचुरता से पैदा होते हैं। दक्षिण के कोकण प्रांत मे इसके क्षुप बडे वृक्षाकार होते है।

नाम–

स०—नागवल्ली, श्रीवल्ली, भूताकुश। हि०—वेबीना वेदीना। म०—भूतकशी, भूतकसा, वेवना, लवसाद, भूतेगी। व०—नागवल्ली, नेपाली–अमारी। अ०—व्हाईट केलिसीन (white calycine)। ले०—मुसीन्ड्रा फ्रान्डोसा, मु फ्लेवेसेन्स (Mussaendra Flavescens)

बेबीना
MUSSAENDA FRONDOSAVAR GLABRATA HOOK



रासायनिक संगठन—

इसकी जड मे एक कडुवा ग्लुकोसाईड सेपोनिन (Saponin) नामक होता है। इसके अतिरिक्त एक राल शर्करा, पिच्छिल द्रव्य, रजक पदार्थ पाये जाते हे।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, कटु, कषाय, तीव्र गध, कफवात शामक, दीपन, त्वग्वात, श्वेतकुष्ठ, कफ, भूत बाधा, ग्रहपीडा निवारक तथा धातु परिवर्तक, मूत्रल, मार्दवकर हे। जड—कफ नाशक, पौष्टिक तथा कास, श्वास, ज्वर, मेदो वृद्धि पर उपयोगी है।

श्वेतकुष्ठ मे—जड को ६ माशा तक गोमूत्र मे घिस कर देते हैं। नेत्राभिष्यन्द पर—जड को जल मे घिसकर नेत्रो पर मोटा लेप करते है।

पाडु या कामला मे—पत्तो का रस २ तोला दूध के साथ मिलाकर देते है।

दृष्टिमाद्य या तिमिर रोग पर—पत्तो का रस लगाया जाता हे। सिर के भारीपन मे—पत्तो का रस सुघाते हे, छीके आकर सिर हलका हो जाता है।

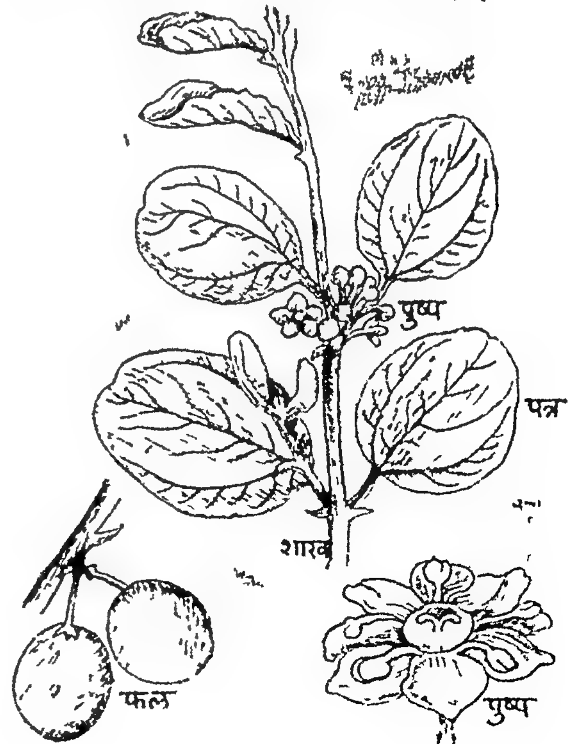
बालको की शीत एव प्रतिश्यायजन्य कास पर इसकी शुष्क कोपलो का फाट पिलाते है।

पुष्प—मूत्रल, शोथघ्न, व्रणशोधक एव चर्मरोग तथा फुफ्फुस के विकार, पार्यायिक ज्वर व जलोदर मे उपयोगी है। व्रणो की शुद्धिकरणार्थ फूलो को पीस कर लेप करते हे।

बेर (Zizyphus Jujuba)

बदर कुल* (Rhamnaceae) के इस मध्यम प्रमाण के कण्टकयुक्त २० फुट ऊचे (बागी या बोये हुए वृक्ष और भी अधिक ५० फुट तक ऊचे) वृक्ष की शाखाये चारो ओर फैली हुई, छाल—धूसरवर्ण की विदीर्ण या खुरदरी, बीच बीच मे कण्टकयुक्त (तीक्ष्ण काटे दो दो होनेपरएक सीधा व एक मुडा हुआ, कभी कभी किसी किसी मे काटे बिलकुल नही होते), पत्र—१-१½ इच के घेरे मे गोल या लम्बगोल ¾ से २½ इच लम्बे, ¾ से २ इच तक चौडे, पत्रोदर हरितवर्ण, पत्रपृष्ठ श्वेत या पाडु वर्ण का, पुष्प—हरिताभ श्वेत, २ इच व्यास के गुच्छो मे, फल—आधा से डेढ इच व्यास के गोल, मासल या शुष्क, पहले हरे, फिर पीतवर्ण तथा पूर्ण पकने पर लाल होते है। इनमे गुठली कडी गोल होती हे। पुष्प—शीतऋतु से पूर्व तथा फल शीत काल फाल्गुन, चैत्र मास मे आतेह।

भारत मे ये प्राय सर्वत्र दो प्रकार के एक नैसर्गिक पैदा होने वाले तथा दूसरे बोये हुए पाये जाते हे। बोये हुए की ऊचाई, घेरा, पत्रादि मे बहुत अन्तर होजाता है।



*इस कुल का वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ मे 'उन्नाव' के प्रकरण मे फुटनोट मे देखिये।



इसके पत्र, पुष्पादि रग के कार्य मे आते है। रेशम के कीडो को इसके पत्र खिलाते है। इसके वृक्ष पर लाख अच्छी होती है तथा इसकी छाल मे कषाय द्रव्य (टेनिन) भी अधिकता से पाया जाता है।

नाम–

यह सक्षिप्त वर्णन सर्व साधारण वेर का है। जिसे स—वदरीकोल, पत्रकटक, उभयकटक आदि, हि—वेरी, बदर, म—वोर, गु—वोरडी, कुल, देमर, अ—इडियन जुजुबे (Indian jujube), इडियन प्लाम (Indian plam) और ले—जिजाइफस जुजुवी कहते है।

इस कोल या छोटे वेर के अतिरिक्त जो सौवीर नामक वेर छोटा, मधुर तथा पका हुआ हो उसे ही 'कोल' कहा जाता है। (राजवेर, वडा वोर), भूवदरी (झड वेरी) और कर्कन्धु (कटवेर) ये फलो की आकृति भेद से ३ प्रकार की और मुख्य जातिया है। इनमे से—

(१) राजवोर (सौवीर) यह मध्य एशिया का मुख्य निवासी है। भारत के वागो मे फलो के लिये यह वोया जाता है या इसकी कलमे लगाई जाती है। इसके फल वडे छुआरे के आकार के होते है। वृक्ष छोटे छोटे होते है। इसे—

स—राजवदर, राजकोल, मधुर फल, कुपल, नृप श्रेष्ठ, दृथु फला आदि। हि—वडा वेर, पेवन्दी वेर, लम्बे वेर आदि, म—राजवोर, पेवन्दी वोर, अमदावादी वोर ग—सारेक वोर, अजमेरी वोर, काशी वोर इ, व—नारकूल, अ—जुजुवा फ्रुट (Jujuba fruit), लोटो फागी (Loto phagi), ले—जिजायफस सेटिवा (Zizyphus Sativa), जि लोटस (Z Lotus) कहते हैं।

इसके वृक्ष काश्मीर, पश्चिमोत्तर प्रदेश, ईरान, अफगानिस्तान तथा चीन मे अधिक पैदा होते है।

उन्नाव या सोरामानी वेर (Zizyphus vulgaris) इसी का एक भेद है। इस ग्रन्थ के १ भाग मे उन्नाव का प्रकरण देखिये।

(२) झड वेरी—इसकी अत्यधिक तीक्ष्ण काटेदार झाडी २ से ६ या १० फुट तक ऊंची, पत्र फल आदि छोटे छोटे होते है। फल—गोल, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर लाल एव चमकदार, भीतरी गुठली वहुत कठोर होती है।

इसकी झाडी भारत मे प्राय सर्वत्र, पजाव, सिंध, गुजरात, दक्षिण राजस्थान, मालवा आदि मे प्रचुरता मे पाई जाती है। राजस्थान, मेवाड आदि मे इसके ताजे व शुष्क पत्तो को, या समस्त झाडी को ही महीन काट काट कर पशुओ को खिलाते है। फल वालक गण वडे प्रेम से खाते है। कोई कोई इसे ही उन्नाव या विलायती वेर कहते है। किन्तु वास्तव मे उन्नाव इससे भिन्न है।

इसे स—भूवदरी, अजप्रिया, सूक्ष्म फला, वहु कटका इ, हि—झडवेर, कोकण वेर, जाली वेर इ। म—भुई वोर, गु—चणिया वोर, व—मेटोकुल, कुलगाछ, तथा ले—जिजाईफस नुमुलेरिया (Zizpyhus Nummularia) कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग–

कसैला, अम्ल, मधुर, शीतल, सकोचक, दीपन, पाचन-रोचक, रक्तपित्त प्रकोपक है। इसकी गुठली की गिरी, मधुर, कसैली, कामोद्दीपक, वीर्यवर्धक तथा तृषा, वात, वमन, दाह, पित्त आदि निवारक है। इसके पत्र फोडे, फुसी व खुजली मे लाभकारी है। इसका धुआ जुकाम एव नासिका स्राव मे उपयोगी है। सन्धि पीडा मे इसके क्वाथ से स्नान कराते है। मुख के छाले तथा मसूढो से रक्तस्राव होने पर इसके क्वाथ से कुल्ले कराते है।

(३) कटवेर (कर्कन्धु)—कटकयुक्त ६ से १५ फुट ऊंचे इस झाडीदार वृक्ष की लकडी पीताभ भूरी या लाल, भूरी व कडी होती है। वृक्ष पुराने हो जाने पर काटे रहित हो जाते है। इसकी छाल मे टेनिन अधिक होता है। छाल का उपयोग चमडे को उत्तम काला रगदार



बनाने के लिये किया जाता है। ये वृक्ष सीलोन व ईस्ट इडीज मे बहुत होते है।

इसे स —क्षुद्रबदर, कर्कन्धु, घोण्टा, बदरिका इ, हि —कटबेर, कठबेर, भण्डेर, म —काटे गुठी, खारकी ग —गटबोरडी, गुटबोरडी, ले —जिजाईफस एक्सलोपायरा (Zizyphus xylopyra)।

कोई कोई इसके फल को ही उन्नाव कहते है। गुण धर्म मे यह प्राय. उन्नाव से मिलता जुलता है।

इसीका एक भेद जो बगाल और ईस्ट इडीज (पूर्व प्रायद्वीप) मे अत्यधिक पैदा होता है, उसे बगाल की ओर सेयाकुल और लेटिन मे जिजाईफस सोरोरिया (Z Sororia) कहते है। इसके फल कुछ खटमीठे तथा सकोचक स्तभक एव कफ नि सारक है। पत्र—धातु परिवर्धक है।

नोट—इसके अतिरिक्त मकाई बेर (Z Oneoplia) के काटेदार क्षुप की शाखाये बहुत लम्बी इधर उधर फैली हुई पत्र १ से ३ इच तक लम्बे ½ से १ इच चौडे, दन्तुर, अतिसघन, नूतन पत्र कोमल रोमश, पुष्प—चिकने रोमश, पखुडी त्रिकोणाकार, फल—छोटे छोटे कच्ची दशा मे हरे, पकने पर काले होते है।

यह प्राय भारत के सब उष्ण प्रदेशो के जगलो मे तथा सीलोन मे पाया जाता है।

इसे स—लघुबदरी, श्रृगालकोली, बहुकटका, हिं—मकाई, म—कनेरबदली, मकोर, हरुण, ब —सियाकुल, माहकोआ, अ —जेकाल जुजुबी (Jackal jujube), ले —जिजिफस ओनियोप्लिया कहते है।

इसकी छाल ज्वरघ्न, पाचक, पौष्टिक है। जड की छाल का क्वाथ ताजे व्रणो के पूरणार्थ उपयोगी है। उदरशूल निवारणार्थ इसके फलो के मिश्रण से एक प्रकार की गोलिया बनाकर दी जाती है।

इसकी ही एक अन्य जाति इमली बेर जिजिफस आक्सिफायला है। (Z Oxyphylla) इसके भी काटेदार क्षुप होते है। फल—पकने पर नारगी लाल वर्ण के किंतु कुछ देर रखने पर काले हो जाते है। ये स्वाद मे इमली जैसे खट्टे होते हैं।

प्रस्तुत प्रसग के बेर के विषय मे—

चरक के हृद्य, हिक्कानिग्रहण, उदर्द प्रशमन, विरेचनोपग, श्रमहर, स्वेदोपग गणो मे तथा फलासव औषधि सग्रह, कषाय एव अम्लस्कन्ध मे, सुश्रुत के आरग्वधादि एव वातसशमनगण मे इसका उल्लेख है।

रासायनिक संगठन—

फल मे अम्ल, पिच्छिल द्रव्य व शर्करा, तथा छाल व पत्र मे टेनिन और जिजिफिक एसिड (Jijyphic acid) नामक एक स्फटकीय तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, फल की गुठली की गिरी, जड, छाल, पत्र, लाख, गोद।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, अम्ल, शीतवीर्य, वातपित्त शामक, तृष्णानिग्रहण, रुचिवर्धक, दीपन, अनुलोमन, हृद्य, शोणितास्थापन, हिक्कानिग्रहण, मूत्रल, मूत्रगतशर्करान्यून कारक, स्वेदोपग, उदर्दप्रशमन, दाहप्रशमन, बृंहण, श्रमहर, तथा अरुचि, अग्निमाद्य, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्तपित्त, वातपैत्तिक कास श्वास, मूत्रकृच्छ आदि मे प्रयुक्त होता है।

कच्चा फल—पित्तकफकारक, पका फल—स्निग्ध, मधुर, अम्ल, कफकारक, पित्तकासहर, वात, अतिसार, शोष, रक्तदोष व श्रमहारकहे। शुष्क फल—लघु, दीपन अनुलोमन, तथा कफ, वात, तृषा, पित्त, क्लम, श्रम आदि नाशक है। छोटी जाति के क्षुद्रबेर खट्टे, कुछ स्वादिष्ट मृदुविरेचक, दाहकारक होते है। इनमे कर्कन्धू (कटबेर) अम्ल, किंचित् मधुर, कषाय, स्निग्ध, गुरु एव वात पित्त नाशक है।

राजबेर—शीतल, गुरु, मलभेदक, शुक्रजनक, बृंहण (रस रक्तादिवर्धक) तथा पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय, एव तृषानाशक है। छोटा या कोल नामक राजबेर ग्राही, रोचक, कफ पित्त जनक, गुरु, सारक एव वातनाशक है।

यूनानी मतानुसार—बेर पहले दर्जे मे शीत व रूक्ष है। सौमनस्यजनन विशेषत सतापहर व पित्तघ्न है। यह मेवा की तरह खाया जाता है। यद्यपि यह गुरु (चिर

पाकी) एव कम पुष्टिकर है तथापि इसमे एक उत्तम पोषणाश या पुष्टि प्राप्ति होती है। उष्ण प्रकृति को यह सात्म्य है, रक्त एव पित्त के उद्वेग कोऔर तृष्णा को शमन करता है। भुना हुआ पित्तातिमार को बन्द करता है।

श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी का कथन है कि "हृदय को बल देने वाले फलों मे बेर उत्तम है । मधुराम्ल रस विशिष्ट जो बेर होते है, वे ही हृद्य होते हैं। गोल बेर जो बडी या छोटी, कुछ मीठी कुछ खट्टी होती है, हृदय के लिए लाभदायक है। बडी बेर, कलमी बेर, पेवदी बेर जो लम्बी गोल बडी होती है, उसकी अपेक्षा कम हृद्य होती है, यद्यपि वह मधुर भी है। श्रमहर या थकावट दूर करने का गुण बडे छोटे सभी बेरो मे है जो मीठे हो। श्रमहर गुण प्राप्त करने के लिये इच्छानुसार बेर खाना चाहिये।

विरेचकोपयोगी गुण—बडी बेर जो मीठी हो, पककर लाल हो गई हो, खाने पर पेट साफ करती है। अधिक खाना दस्तावर होता है। यह गुण केवल मीठी बेर मे ही है। बेर अधिक खाने से शरीर मे पसीना आता है। शारीरिक विषो को दूर करने के लिए, मौसम मे बेर अधिक खाना अत्यावश्यक है। यह एक बल्य खाद्य की तरह काम आता है।" —फलाङ्क से साभार

सत्तू के रूप मे सेवन—झडबेरी, बडे गोल बेर तथा कलमी या पेवन्दी बेरो को सुखाकर चूर्ण बना सत्तू के समान शक्कर आदि के साथ सेवन करने का प्रचार बहुत प्राचीन काल से भारत मे है। यद्यपि इसमे सत्तू के सब गुण (सक्तवो बृहणो वृष्यास्तृष्णापित्त कफापहा। पीता सद्यो बलकरा भेदिन पवनापहा ॥ सु सू अ ४६) नही है तथापि जो निम्नाङ्कित गुण है—वे इसे ग्राह्य एव उपयोज्य बनाने के लिये पर्याप्त है। कहा है—

"कर्कन्धु बदरादीना श्रम क्षुत तृट् क्लमच्छिद ।
सक्तवोऽम्लरसा हृद्या यथा द्रव्य गुणाश्च ते ॥
—अष्टाङ्ग सग्रह सू अ ७

अर्थात्—कर्कन्धु तथा बदर (छोटे या बडे बेर) से बनाये हुये सत्तू थकावट, क्षुधा व तृषा को दूर करते हैं। अम्ल रस वाले एव हृद्य होते है। सत्तू जिस द्रव्य से (या जिस प्रकार के बेर आदि मे) बनाये गये हो, उस द्रव्य के गुण विशिष्ट ही वे होते है।

(१) ज्वर के दाह तथा उदर्द पर—ज्वर की दशा मे दाह की विशेषता हो तो सूखे या ताजे झडबेर २ तोले को ३२ तोला जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर थोडी शक्कर मिला पिलाने से दाह, तृषा, व्याकुलता शात होती है, एव पित्तज्वर भी कम हो जाता है। विषम ज्वर मे भी यह क्वाथ दिया जाता है।

अरुचि को दूर करने तथा क्षुधा वृद्धि के लिये शर्बत-शुष्क बडे बेर (या उन्नाव) २ सेर को कूटकर जल ४ सेर मे पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमे २ सेर शक्कर मिला शर्बत की एक तारी चाशनी तैयार कर लें। मात्रा—२ से ५ तोला तक शर्बत मे जल मिलाकर दिन मे २ ३ बार सेवन से अरुचि दूर होकर क्षुधा वृद्धि होती है।

उदर्द या शीतपित्त पर—झडबेर जो पककर लाल होकर जगलो मे सूख गये हो उन्हे लाकर चूर्ण बना लें। १ से २ माशा तक यह चूर्ण जल के साथ पिलावे। इसमे वमन और अरुचि मे भी लाभ होता है।

(२) प्रदर, वात विकार तथा शुक्रप्रमेह पर—बेर के महीन चूर्ण (३ माशा) मे समभाग गुड और उत्तम घृत मिलाकर सेवन कराने से स्त्रियो का प्रदर रोग दूर होता है। —भा भै र

अथवा उक्त चूर्ण को केवल शहद के साथ देते रहने से भी लाभ होता है।

वात विकार पर वातहर उपनाह—सूखे हुये बेर का गूदा, कुलथी, देवदार, रास्ना, उडद, अलसी, तिल, रेडी के बीज, कूठ, बच, सौंफ और जौ इनका चूर्ण कर खट्टी काजी (या गोमूत्र) मे पका (गाढा कर), दो कपडो के बीच मे रखकर जहा वात का दर्द हो वहा सेकने से पीडा शात होती है।

—सिद्ध योग सग्रह (चरक सू अ ३)

शुक्र प्रमेह पर—जगली कच्चे बेरो को जिनमे गुठली न पडी हो छायाशुष्क कर चूर्ण कर रोगी को सेवन

कराते हैं। —यूनानी

(३) नाडी व्रण (नासूर) पर—बेर फल का ऊपर का छिलका, मैनफल, सुपारी, दालचीनी व सेधा नमक समभाग मिश्रित अत्यन्त महीन चूर्ण कर (सेहुण्ड डडा थूहर) और आक के दूध मे घोट कर वत्ती बना उसे लगाने से नाडीव्रण शीघ्र ही नष्ट होता है। —वृ० मा०

बेर के बीज (गुठली एव गिरी)—कसैले, कुछ मधुर लेखन, पित्त शामक, शुक्रवर्धक, वल्य, वृष्य (कामोद्दीपक), चक्षुष्य तथा कास, श्वास, हिक्का, तृषा, वमन, दाह एव श्वेत प्रदर आदि मे उपयोगी है।

(४) पित्त विकार, ज्वर की तृषा आदि पर—बीज की गिरी और लौंग समभाग एकत्र पीस कर मिश्री की चाशनी मे मिला दिन मे ३-४ बार चटाने से जी मिचलाना, वमन, दाह आदि पित्तविकार शात हो जाते हैं।

ज्वर मे पित्त प्रकोप जन्य तृषा शाति के लिये इसकी गिरी और मुलैठी का चूर्ण एकत्र मिला थोडा थोडा मुख मे डालते है।

—वमन पर—गिरी के साथ धान की खील, वटाकुर (बरगद के अकुर) और मुलैठी एकत्र कर जल मिला, गाढा सा क्वाथ कर उसमे शहद व मिश्री मिला, थोडा-थोडा पिलाते है।

(५) नेत्र रोग, वीर्य क्षीणता, मूर्च्छा, प्रमेह, भस्मक रोग, हिक्का, मसूरिका और बिच्छू के विष पर—इसकी गुठली को जल मे घिस कर दिन मे दोबार नेत्रो मे अजन के समान लगाते रहने से उष्णता या रोहो (पोथकी) के कारण होने वाला नेत्रस्राव बन्द होता है तथा रोहे भी दूर हो जाते हैं।

वीर्य की क्षीणता पर—गिरी को पीसकर गुड के साथ मिलाकर खाने से वीर्य की कमजोरी दूर होकर वीर्य पुष्ट होता है।

मूर्च्छा पर—गिरी के साथ कालीमिर्च, खस और नागकेसर समभाग चूर्ण बना लेवे। २-३ माशा की मात्रा मे जल के साथ पिलाने से मूर्च्छा दूर होती है। —यो० र०

प्रमेह पर—वेर बिलकुल कच्चे जिनकी गुठली दातो से विना परिश्रम (सहज ही मे) चबाई जा सके १ सेर छायाशुष्क कर साथ ही मे १० तोला इमली के बीज की गिरी लेकर दोनो का महीन चूर्ण कर रक्खे। मात्रा—३ से ६ माशा तक, २० तोला दूध के साथ सेवन से प्रमेह दूर होता है। दूध अधिक सेवन करें। खटाई, मैथुन, गरम वस्तु निषेध है। —स्व श्री प भागीरथ स्वामी

भस्मक रोग पर—गिरी को जल मे पीसकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। —वृ नि र

हिक्का पर—गिरी को सौंफ और लौंग के साथ पीस कर थोडा जल मिलाकर पीने से हिक्का शीघ्र वन्द होता है तथा उबकाई आना भी वन्द हो जाता है। अथवा—गिरी को चिलम मे रखकर धूम्रपान करने से भी तत्काल हिक्का वन्द होती है। अथवा—गिरीको पीस उसमे आक दूध की १ भावना दे छायाशुष्क कर थोडा चूर्ण चिलम मे रख धूम्रपान करे।

अथवा—राजवेर (कोल) की गुठली की गिरी के साथ समभाग शुद्ध सौवीराजन (सुरमा) और धान की खील का चूर्ण कर ३ से ६ माशा की मात्रा मे दुगने शहद के साथ मिलाकर सेवन से हिक्का दूर हो जाती है। —सु उ त अ ५०

मसूरिका मे—गुठली के छिलके को पीसकर गुड मे मिलाकर खाने से सर्व प्रकार की मसूरिका पक जाती है। —व च

बिच्छू के विष पर—गिरी के साथ समभाग ढाक (पलास) के बीज लेकर एकत्र चूर्ण कर आक के दूध मे ६ घण्टे खरल कर वडी गोली या वर्ति बना लेवे। इसे जल मे घिसकर लेप करने से विष उतर जाता है। —गा औ र

पत्र—बेर के पत्ते शीतल, दाह प्रशामक, कफ विकार पित्तविकार, अतिसार, कृमि, मुख शोथ, श्वास, यकृत विकार आदि मे उपयोगी है। मसूढे के रक्तस्राव को बन्द करते है। जखम तथा उपदश जन्य व्रणो को भरने वाले है। पथरी (अश्मरी) को दूर करने के लिए पत्तो का प्लास्टर लगाते है। पत्तो को चबाने से जिह्वा की

स्वाद ग्रहण की शक्ति नष्ट होती है, जैसे कि गुडमार पत्र के चबाने से होती हे।

(६) दाह, मूत्र कृच्छ्र, स्वरभेद आदि पर—इसके कोमल पत्तो को कूटकर जल मिला मथन करने पर जो झाग निकलता है उसे शरीर पर मलने से ज्वर की दशा मे होने वाला या मदात्यय के कारण होने वाला दाह शात हो जाता है। अन्य कारणो से होने वाला स्थानिक दाह भी इसके मर्दन से दूर हो जाता है। पत्तियो को पीसकर कल्क का लेप करने से भी दाह दूर होती है। इससे विस्फोट की भी शाति होती है।

मूत्रदाह तथा पीडा के निवारणार्थ—पत्तो को पीस कर पेडू पर लगाते है।

रुग्दाह सन्निपात पर—इसके पत्तो के साथ, श्वेतचदन और नीम पत्र समभाग लेकर सब को एकत्र पीस पैरों के तलुओ मे लेप करने से लाभ होता हे। —भा भै र

पित्त ज्वर मे सन्ताप निवारणार्थ—इसके कोमल पत्र २ तोला को अच्छी तरह धो पीसकर ८ तोला जल मे घोलकर हाथो से आलोडन करने पर जब झाग उठे तब उसमे ४ रत्ती सेंधा नमक मिला मद आच पर पकावे। ५ तोला तक शेप रहने पर उतार कर छानकर प्रात साय पिलावें। —सि भै म माला

अग्निदग्ध पर—कोमल पत्तो को दही के साथ पीस कई बार लगाने से अग्निदग्ध की पीडा, जलन दूर होती है, तथा दाग मिट जाता है।

मूत्र कृच्छ्र पर—इसके कोमल अकुर और श्वेत जीरा एकत्र घोट छानकर पिलाने से उष्णता मे रुका हुआ पेशाब साफ उतरता हे।

स्वर भेद तथा कास पर—पत्तो को पीसकर थोडे घृत मे सेक कर या गरम कर उसमे सेंधा नमक मिला रोगी को थोडा थोडा चटाने से स्वरभग (गला बैठना) तथा कास मे लाभ होता है। —यो र

(७) अतिसार, चेचक, मुखपाक और इक्षु मेह (मधु मेह) पर—अतिसार मे पत्र चूर्ण को मठे के साथ देते हैं। रक्तातिसार हो तो दिन मे रोगी को बेरी के पत्तो का रस और रात्रि के समय सोठ तथा कदम्ब की छाल का क्वाथ पिलावें। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। —भा भै र

चेचक या शीतला पर—पत्तो का कल्क ६ माशा और गुड २ माशा एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) सेवन कराने से शीतला का विष शीघ्र बाहर निकल जाता या जल जाता है। दूसरे या तीसरे ही दिन से शीतला मे शाति आने लगती हे। पशुओ को शीतला निकली हो तो काठियावाड मे रेवारी बेर के पत्तो और छाल का क्वाथ बनाकर छाछ मिलाकर पिलाते है। —गा औ र

इसके पत्तो का रस दूध के साथ सेवन कराने से चेचक का प्रकोप नही होता, यदि हुआ भी तो उसका जोर कम हो जाता है। —व गु

मुख पाक पर—पत्तो का क्वाथ कर दिन मे २-३ बार कुल्ले कराने से लाभ होता हे। यदि आमाशय का पित्त तेज होने से मुख पाक हुआ हो तो पित्त शमनार्थ विरेचन एव शामक औपधि भी देनी चाहिए।

यदि रस कपूर वाली औपधि के सेवन से मुख पाक हुआ हो मसूढे शिथिल होगये हो, मुख से लार गिरती हो तो इसके पत्तो का या छाल का क्वाथ कर कुल्ले कराये जाते है। —गा औ र

इक्षुमेह—(इसमे ईख के रस जैसा मूत्र होता हे, यह कफज प्रमेह का एक भेद है, इसमे शर्करा होती है—Glycosuria) गुडमार की भाति बेर के पत्तो का चूर्ण ३ माशा तक दिन मे दो बार देने से इक्षुमेह मे लाभ होता है।

(८) कुक्कुर कास, नकसीर, व्रण विद्रधि, नासूर, यौनिशैथिल्य, बालो का झडना, आदि पर—

कुक्कुर कास पर—पत्तो पर मेसिल का लेप कर धूप मे शुष्क कर, उन्हे दूध मे भिगोकर चिलम मे रख धूम्रपान कराते हैं।

नकसीर पर—पत्तो को पीसकर कनपटी पर बार-बार लेप करते हैं।

दुष्ट व्रण, विद्रधि तथा अन्य फोडो को पकाने के लिए इसके कोमल पत्र तथा कोमल डालियो को पीसकर गरम कर लेप करते या पुल्टिस जैसा बनाकर बाधते हैं।



यदि नासूर (नाडी व्रण) हो तो इसके पत्तो के साथ नीम के पत्तो को पीसकर नासूर मे भर देते है।

योनिशैथिल्य पर या भग सकोचनार्थ—इसके ताजे पत्तो को महीन पीसकर योनि पर लेप करते रहने से योनि शैथिल्य दूर होकर काफी या दृढ योनि सकोच हो जाता है।

बालो का झडना—बालो को शक्ति देने तथा शिर की भूसी दूर करने के लिये, पत्तो के क्वाथ से सिर को धोते है।

इसके पत्तो को पीस पानी मे मथने पर जो झाग उठता है, उसके मलने से केशो का झडना बन्द हो जाता है।

बिच्छू के विष पर—इसके कोमल नूतन पत्रो को गूलर के साथ पीस कर लगाते हैं। —सकलित

छाल और जड—बेर वृक्ष की छाल—ग्राही, व्रण शोधन है। अतिसार, रक्तातिसार, प्रदर, रक्त पित्तादि पर प्रयुक्त होती है। छाल और जड दोनो पौष्टिक है। जड का क्वाथ ज्वर के निवारणार्थ दिया जाता है, किंतु उसका असर ज्वर पर बहुत ही मदगति से होता है। डा ईन्ह-र्सन का कथन है कि इसमे ज्वर निवारण करने वाले तत्वो की अपेक्षा पौष्टिक तत्व ही अधिक रहते है। जड़ का चूरा व्रण और पुराने जख्मो को दूर करने के काम मे लिया जाता है।

विस्फोट मे छाल को पीसकर लेप करते है। फोडो पर इसकी पुल्टिस बनाकर बाधते है। इसके क्वाथ से फूटे हुये फोडो को या सडे हुए क्षत को धोते है। पुराने क्षत या फोडो पर छाल का चूरा बुरकाते है। झडबेरी की जड की छाल का उपयोग शुक्र प्रमेह, श्वेत प्रदर मे किया जाता है।

(९) अतिसार, प्रदर, उपदश व आत्र पर—इसकी जड की छाल का क्वाथ कर उसमे मूङ्ग का यूप बनाकर पिलाने से अतिसार शमन हो जाता है।

रक्तातिसार हो तो जड की छाल और तिलो को (लगभग समभाग) पीसकर गाय के दूध मे (बकरी का दूध हो तो उत्तम) मिला, उसमे शहद डालकर पिलावे —शार्ङ्गधर

प्रदर पर—छाल का चूरा प्रात साय ३ माशा की मात्रा मे गुड के साथ देते रहने से श्वेत और रक्तप्रदर दोनो मे लाभ होता है। —गा औ र

उपदश पर—जगली बेर के वृक्ष की छाल (जड की हो तो उत्तम) ५ तोला कुचल कर पीसकर आवश्यकता-नुसार जल मे मिला उसमे ५ तोला मिश्री डालकर २० बार ठडाई की तरह लौट-पलट कर ३ दिन पीने से उप-दश समूल नष्ट होता है।

—स्व श्री प भागीरथ स्वामी

अथवा—जड की भस्म १ तोला को आम के अचार के तैल मे मिलाकर सेवन करे। ऊपर से ताजा ठडा जल पीवे। पथ्य मे—तैल, अम्ल, लवण का सेवन न करे। उपदश मिटता है। —सि भे म. माला

आत्रवृद्धि पर—झडबेर की जड (अगूठे जैसी मोटी) के ५ तोला टुकडे को कूटकर ६० तोला जल मे मन्द आच पर पकावे। २० तोला जल शेप रहने पर छानकर रोगी को पिलावे। इसी प्रकार प्रात साय ४० दिन पिलाने से फिर कभी आत नही उतरती।

ध्यान रहे, इसके सेवन से कभी कभी विबन्ध हो जाता है। अत उष्ण जल की वस्ति द्वारा पेट साफ रखना आवश्यक है। हलका एव सुपाच्य भोजन देवे। तथा रोगी को किसी भी प्रकार का परिश्रम न करने दे। आराम से शय्या पर ही लिटाए रखे।

(धन्वन्तरि से)

—श्री वैद्य लालाराम जी शर्मा 'वशिष्ठ'
यूहा (करनाल)

(१०) स्वरभेद, सिरपीडा, पित्त ज्वर, प्रलाप, मुखपाक व पामा तथा दुग्धवृद्धि के लिये—

स्वर या कठ के बैठ जाने पर इसकी छाल का टुकडा मुख मे रखकर चूसते रहने से २-३ दिन मे लाभ हो जाता है।

सिर दर्द पर—जड की छाल और पिप्पली को पीस

कर लेप करने से मस्तक पीडा नष्ट होती है। —ग नि

पित्त ज्वर पर—धूप मे सुखाई हुई इसकी जड को जल मे औटाकर छानकर उस जल को पिलाते है।

प्रलाप पर—जड की छाल को ब्राह्मी पत्र के साथ जौकुट कर २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे पकाकर चतुर्थांश शेप रहने पर छानकर पिलाते है।

मुख पाक पर—इसकी जड की छाल के साथ बबूल की जड की छाल समभाग जौकुट कर उसका हिमनिर्यास या क्वाथ बनाकर कुल्ले कराते है। किसी भी कारण से हुए मुख के छाले दूर हो जाते है। —सकलित

पामा—इसकी छाल के हिम निर्यास (कपाय) मे चावलो को पकाकर बिना माड निकाले, गोघृत व मिश्री मिला कर सेवन करने से पामा का नाश होता है।

—सि भै म माला

दुग्धवृद्धि के लिए—छोटी बेरी (या मकाई बेर देखो पीछे नोट मे) की जड को दातो से चबाकर मुख मे रखकर उसका रस चूसने से प्रसूता स्त्री के स्तनो मे दुग्ध वृद्धि होती तथा दूध के कृमि नष्ट हो जाते है। (दूध शुद्ध होता है) इस प्रयोग का फल ७ दिन मे मालूम होता है। —भा भै र

लाख (लाक्षा)—चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ लाख—पीपल वृक्ष की है। दूसरे नम्बर मे बेरी की लाख है। इसके गुण धर्म पीपल वृक्ष की लाख के जैसे ही है किन्तु उर:क्षत आदि कई रोगो मे यह उसकी अपेक्षा अधिक उत्तम कार्य करने वाली है।

(११) उर क्षत (Pthisis) पर—क्षय रोग मे अथवा अधिक चोट आदि कारणो से थूक एव कफ के साथ रक्त आता रहता हो तो इसकी लाख १ तोला का क्वाथ कर उसमे ४ गुना पेठे का रस मिला दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से रक्त स्राव बन्द हो जाता है तथा वक्षस्थल का विकार दूर होता है। —गा औ र

(१२) उन्माद आदि हर 'लाक्षारिष्ट'—बेरी की लाख २॥ सेर महीन पीसकर १० सेर जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात मन्द अग्नि पर पकावे। चतुर्थांश शेप रहने पर उतार कर छान लेवें। उसमें लालचन्दन का चूरा, कमल फूल २०-२० तोला, श्वेत चन्दन का चूरा १० तोला, नीलोफर ५ तोला और धाय के पुष्प १५ तोला सबको जौकुट कर तथा खाड १। सेर मिलाकर चिकनी मटकी मे मुख बन्द कर ३० दिन तक सुरक्षित रखे। फिर छानकर बोतलो मे भर लेवे।

मात्रा—४ तोला, दोनो समय जल मिलाकर सेवन करने से उन्माद, मानसिक दुर्बलता, बुद्धि की मन्दता, योपापस्मार आदि शीघ्र दूर होते है।

—बृ आसवारिष्ट सग्रह से

गोद—बेरी के वृक्ष के गोद को बकरी के दूध मे घिसकर लेप करने से दाह दूर होती है।

नोट—मात्रा—फल ५-७ नग। छाल क्वाथ १० तोला तक।

मूल छाल का चूर्ण ३-४ माशा। पत्र कल्क-आधा से १ तोला। अधिक मात्रा मे फल-चिरपाकी होने से आध्मानकारक है। हानि निवारक—गुलकन्द तथा मस्तङ्गी।

विशिष्ट योग—

(१) बदरादि चूर्ण—बेर, त्रिफला, त्रिकटु प्रत्येक ८-८ तोला, कपूर १-१ तोला, धान की खील ४८ तोला तथा इलायची, दालचीनी व तेजपात ४-४ तोला, वसलोचन ३२ तोला और अम्लवेत (चकोतरा नीबू का गूदा सुखाया हुआ) १६ तोला इन सबका चूरा कर, उसमे दो गुनी खाड अच्छी तरह मिलाकर रखे। यह चूर्ण हृदय के लिये हितकारी तथा वमन, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, ज्वर व कास नाशक है। मात्रा ६ माशा तक। —ग नि

(२) कर्कन्ध्वादि पानक—झडबेरी के बेर ६४ तोला कूटकर चौगुने जल मे मिला अच्छी तरह मसलते हुए ७ बार छान कर जल को शुद्ध मटकी मे डालकर उसमे गुड ८ तोला, खाड ४ तोला तथा काली मिर्च १ तोला, केशर ३ माशा, दालचीनी ४ माशा, तेजपात ४ माशा, छोटी इलायची १ तोला, कमलनाल ६ माशा इनका महीन चूर्ण तथा सुगन्ध योग्य जावित्री मिलाकर (अथवा

चमेली के फूलो से सुगन्धित कर) ढककर रख देवे।

इसके पान करने से विभ्रम, तृषा, वमन, दाह, अतिसार, प्रवाहिका, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और मदात्यय का नाश होता है। —ग नि.

इस योग का सेवन ७ या ८ दिन मे अधिक दिन नही करना चाहिए।

(३) बदरी फलासव— (मस्तक विकृति हर)— झडबेरी के शुष्क बेर १॥ सेर, झडबेरी की जडकी छाल आधा सेर इनको जौकुट कर ५ सेर जल मे शाम को भिगोकर प्रात पकावें। ४ सेर जल शेष रहने पर उसमे २½ सेर शक्कर मिला मिट्टी के चिकने पात्र मे भर उसमे इलायची के दाने, धनिया, खस, नागरमोथा, श्वेतचन्दन का बुरादा, नागकेशर, गुलाब के फूल, कपास के फूल और नीलोफर २-२ तोला, धाय के फूल २० तोला सबको जौकुटकर मिला कर २१ या ३० दिन तक पात्र का मुख बन्द कर रखे। पश्चात् मल छानकर बोतलो मे भर देवे। मात्रा—१ से ३ तोला तक सेवन से मन्द या चिडचिडे मिजाज वालो को विशेष लाभ होता है। उदण्डता या बदमाशीपन को दूर करने का यह एक अच्छा प्रयोग है। जो व्यक्ति कुत्सित विचार वाला, बुरे आचरण वाला या नटखट स्वभाव वाला हो उसे इसके सेवन से आशातीत लाभ होता है।

—स्व० श्री मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज

बदरी फलासव न०२ (प्रतिश्याय आदि पर)—उत्तम बढिया मीठे बेर २½ सेर कुचलकर मन्द भूभल की आच पर दो घटे, किसी कलईदार पात्र मे मुख बन्द कर रखें फिर कपडे मे दबाकर रस निचोड लें। यदि यह रस १½ सेर तक हो, तो उसमे आधा सेर खाड मिला काच की एक बडी बोतल मे भरें। (यदि बडी बोतल न हो, तो २ या ३ शीशियो मे भरले)। मुख पर मजबूत कार्क लगा दे। फिर इन बोतलो को किसी बडे पात्र मे रखे। जल भर देवे। जल इतना हो कि बोतले उसमे डूबी रहे इस पात्र को चूल्हे पर चढाकर एक पहर तक मन्द आग मे पकावें। फिर निकाल कर बोतलो का मुख चपडे से अच्छी तरह लेस देवें। १० दिन रखा रहने पर उसे काम मे लावें। मात्रा—१ से २ तोला तक। जुकाम तथा जुकाम की खामी, सिर दर्द आदि पर बहुत लाभकारी है। जुकाम के लिए यह अद्वितीय वस्तु है। सोते समय इसे दो चम्मच गरम जल मिलाकर पीना चाहिए। यह पसीना लाकर ज्वर को भी उतार देता है।

—स्व० श्री० मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज।

० (४) बदरी पत्रासव—(कास, श्वासहर)—बेरी के हरे ताजे पत्तो को ४ सेर कुचल कर ३० सेर जल मे २४ घण्टे तक भिगोकर, भवके द्वारा १२ सेर अर्क खीच लेवे। उसे मिट्टी के चिकने पात्र मे भर कर उसमे पुराना गुड २½ सेर, बबूल की छाल आधा सेर झरबेरी की जड की छाल १० तोला, अदरख, पोस्त के डोडे, अनार के छिलके बहेडा गुठली रहित, कसौंदी के बीज, धतूरा मूल, कटेरी मूल, अडूसा मूल और लौंग प्रत्येक ५-५ तोला, धाय के फूल २० तोला इन सबको जौकुट कर मिला दे। पात्र का मुख बन्द कर १ महीने बाद छान कर बोतलो मे भर लेवे। मात्रा—२ से ६ तोला तक। यह हर प्रकार के कास, श्वास को नष्ट करने मे अद्वितीय गुणकारी है। इस पर तैल, दही, गुड, खटाई, उर्द की दाल और लाल मिर्च से परहेज करना चाहिए।

—स्व० श्री मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज।

(५) बदरी त्वकाद्यारिष्ट (कास, श्वासादि नाशक) जगली बेरी की छाल, अपामार्ग, अडूसा, कदली गोभ (केले के स्तभ के मध्य का भाग) प्रत्येक ४-४ सेर जौकुट कर क्वाथ विधि से २६ सेर जल मे पकावे। चौथाई भाग शेष रहने पर छान कर, अगर से धूपित शुद्ध चिकने मटके मे भर ठडा हो जाने पर उसमे गुड ८ सेर, लोटा सज्जी १०तोला, जवाखार ५तोला और नवसादर २½तो० मिला, २० दिन तक सन्धान कर रक्खे। पश्चात् छानकर काम मे लावे। मात्रा—२½ तोला। सर्व प्रकारकी असाध्य पुरानी खासी, श्वास, हिक्का, पाण्डु, कामला आदि रोग शीघ्र ही नष्ट होते है। खटाई, मिठाई, तैल, लाल मिर्च आदि से परहेज करना चाहिए।

रसायनाचार्य श्री आर के शर्मा जगराओ

(६) बदरादि पाक[हृद्य तथा रक्तपित्तादि नाशक]— बेर की गुठली की मीगी, त्रिकटु, त्रिफला प्रत्येक का चूर्ण

८-८ तोला, धान की खील ४८ तोला तथा इलायची, दाल चीनी, तेजपात ४-४ तोला, बसलोचन ३२ तोला और अम्लवेत १६ तोला इन सवका महीन चूर्ण कर सव चूर्ण से दो गुनी खाड की चाशनी कर उसमे चूर्ण को अच्छी तरह मिलाकर पाक जमा दे या मोदक वना लेवें।

मात्रा—६ माशा प्रात साय वकरी के दूध या गोदुग्ध के साथ सेवन से रक्तपित्त, वमन, राजयक्ष्मा, ज्वर और खासी मे लाभ होता है। यह पाक हृदय के लिये विशेष लाभदायक है —वैद्य गिरिजाशकर जी प्रेमी

नोट—हमारे वृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ मे इसके अतिरिक्त अन्यान्य उत्तमोत्तम पाक प्रयोगो को देखिये।

बेरबंज (Olea Cuspidate)

पारिजात कुल (Oleaceae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले, मध्यम प्रमाण के वृक्ष की नूतन छाल अति मुलायम, पुरानी होने पर कडी खुरदरी, पत्र—हारसिगार (पारिजात) या जैतून के पत्र जैसे, पुष्प—कुछ श्वेत वर्ण तथा फल—कलमीवेर जैसे अण्डाकार, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर पीत वर्ण के स्निग्ध तैल युक्त होते है।

इसके वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर आदि मे २ से ६००० फुट की ऊचाई तक पाये जाते है।

नाम—

वेरवज यह इसका पहाडी गढवाली नाम है। हिन्दी—काऊ, कान, कौ, कोहू, खाऊ आदि, तथा लेटिन मे—ओलिया कुस्पिडेटा कहते हैं।

गुण धर्म—

इसके फल—पौष्टिक, ऋतुस्राव नियामक, पित्तशामक, यकृद्विकार नाशक तथा गीली खुजली, तृषा, नेत्रदाह, दतशूल आदि मे उपयोगी हैं।

फलो का तैल—प्रमाथी, उत्तेजक, अप्रिय स्वादवाला, विरेचक, आत्रशूल, सधिवात, जीर्णव्रण आदि मे उपयोगी है।

पत्र और छाल—कडुवे, सकोचक एव विषमज्वर मे उपयोगी है।

बेल (Aegle Marmelos)

गुडूच्यादि वर्ग एव जम्वीर कुल (Rutaceae) के २५–३० फुट ऊचे वृक्ष की शाखाये सीधे मोटे तीक्ष्ण १ इञ्च लम्वे काटो से युक्त, पत्र-सयुक्त त्रिपत्रक (यदि इसके ३ से अधिक पत्र सयुक्त कही-कही प्राप्त हो जाते है तो भारतीय कर्मकाण्डी उसे वहुत ही महत्व देते हैं) गधयुक्त पत्रवृन्त—१–२ इञ्च लम्वा होता है। उष्णकाल के प्रारम्भ मे पत्र झड जाते हैं। और चैत्र-वैसाख मे क्रम से नवीन पत्र निकलते है।

पुष्प—नूतन पत्तो के आगमन के साथ ही प्राय हरिताभ श्वेत वर्ण के ४-५ पखुडियो वाले, लगभग १ इच तक चौडे पुष्प, मधु समान गधयुक्त आते है। फल—प्रारम्भ मे वहुत छोटे, गोल ३ मे ८ इच व्यास के, वीज रहित, हरिताभ रग के आते हैं, जो धीरे-धीरे वढकर ग्रीष्म ऋतु मे, उनके भीतर वीजो का पूर्ण विकास होने पर वे शनै शनै पक कर पीत वर्ण के हो जाते है। प्रारम्भ मे जव ये वाल दशा मे रहते है तव उनके ऊपर का आवरण हरे रग का पतला एव भीतर का गूदा हरे-पीले रग का होता है। पकने की दशा मे ऊपरी आवरण कडा तथा भीतर का गूदा लाल पीले रग का मधुर स्वादिष्ट एव सुगधयुक्त हो जाता है। तथा गूदे और वीजो मे गोद जैसा पीला चिपकने वाला गाढा रस रहता है। फलोके पकने के समय वृक्ष के सव पत्ते झडकर केवल फल ही फल रह जाते है। वागो मे लगाये हुए वृक्षो के ये फल काफी वड़े ½ पाव से लेकर २½ सेर तक वजन के होते है। वीज—अनेक, १०–१५ समूहो मे, विनौले के सदृश श्वेत रोमो से युक्त एव चिकने तथा रगहीन गोद



से लिपटे रहते हैं।

इसके वृक्ष प्राय समस्त भारत मे विध्य तथा सतपुडा पर्वतावलो मे नदियो के किनारे बहुतायत से, और बगाल बिहार, मध्य भारत, दक्षिण भारत व वर्मा मे भी अधिक पैदा होते है।

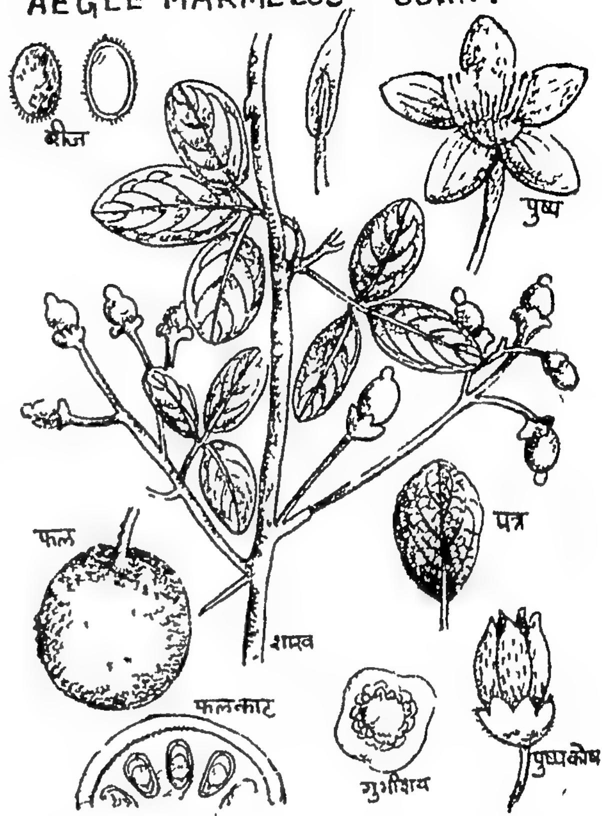
नोट न० १—जगली और बागी (वन्य एव ग्राम्य) भेद से इसके वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। जगली के पत्र तथा फल छोटे अत्यन्त कडे, बीज अधिक तथा अधिक गोद से लिपटे हुए होते है। ये कुछ मादक, स्वाद मे हीक दार एव अप्रिय होते है। इनके वृक्षो मे काटे भी अत्यधिक होते हैं। बागी के पत्र बडे तथा फल भी काफी बडे छिलका नरम, अच्छे सुनहरे रग के कम बीज वाले सुस्वादु सुगधित होते है। वृक्षो मे काटे बहुत कम होते है। किसी किसी मे कांटे बिल्कुल नही होते।

नोट न० २—यह एक पूर्ण भारतीय वृक्ष है। शास्त्र पुराण आदि आर्य एव वैदिक साहित्य मे इसकी बहुत महिमा गाई गयी है ऐसी कि यह एक दिव्य वृक्ष अन्यान्य दिव्य वनस्पतियो के समान पृथ्वी मे गहरी धँसी हुई अपनी जडो से साधारण आहार के अतिरिक्त पारद जैसी धातुओ के अशो को ग्रहण करता रहता है। इसीलिये इसमे भिन्न भिन्न दिव्य गुणो के अतिरिक्त वाह्य स्पष्ट प्रतीत होने वाला दिव्य गुण यह है कि इसके वृक्ष मे लगे हुए पुराने फल वर्षा काल के बाद पुन हरे हो जाते है। तथा इसके पत्र तोडकर सुरक्षित रखे हुए ६ मास तक ज्यो के त्यो बने रहते है एव गुणहीन नही होते।

उक्त दिव्य गुणो के कारण यह बहुत पवित्र एव अशुद्धिनिवारक माना गया है। सूतिकागार के निर्माण मे एव सूतिका के पलग की लकडी बेल की लेने का चरकादि मे विधान है। इसके वृक्ष की छाया शीतल एव आरोग्य-कारक है।

नोट न० ३—चरक के शोथहर, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग गणो मे यह लिया गया है। चरक सूत्रस्थान अ २५ मे कहा गया है "बिल्व साग्राहिक दीपनीय वातकफ-प्रशमनानाम्" अर्थात् मल का सग्रह, अग्नि का दीपन एव वातकफ का पूर्णतया शमन ये सर्व कर्म एक साथ करने वाले द्रव्यो मे बेल श्रेष्ठ है।

बिल्व (बेल)
AEGLE MARMELOS CORR.



सुश्रुत के बृहत्पचमूल, वरुणादि, अम्बष्ठादि गणो मे यह लिया गया है। सुश्रुत ने चि अ २८ के मेधायुष्का मीय अध्याय मे विशिष्ट पद्धति से ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के द्वारा बिल्व की आहुती आदि का विधान किया है, जिससे अलक्ष्मी का नाश एव आयुवृद्धि होती है।

नोट न० ४—बाजारो मे प्राय कही-कही बेलगिरी के साथ कैथ की गिरी का मिश्रण कर दिया जाता है। ध्यान रहे, बेलगिरी मे जैसे बीजो के चारो ओर कुछ पोला सा भाग एव चिपचिपा सा शुष्क गोद रहता है वैसा कैथ की गिरी मे नही रहता।

नाम—

स—बिल्व (रोगान् बिलति भिनत्ति—जो रोगो को



नष्ट करे), शाण्डिल्य (पीडा निवारक), शैलूष (सुन्दर फल), श्रीफल (लक्ष्मीप्रियफल), मालूर (शरीर शोभावर्धक), गन्ध गर्भ [गन्धयुक्त], कण्टकी, सदाफल [फल सदा लगे रहने के कारण], महा कपित्थ [बडे कैथ के समान], ग्रथिल [शाखायें गाठदार होने से]। बाल फल की मज्जा या गिरी को बिल्वपेशिका, बिल्व कर्कटी हि—बेल, बिल, बील, बोलो, शुष्क गूदे को गिरी, बेलसोठ, बेलकचरी। म—बेल। गु—बीली। व—बिल्व, बेल। अ—बील (Beel), बेगाल क्विन्स (Bengal quince)। ले—ईग्ल मार्मेलस।

रासायनिक संगठन–

फल के गूदे मे म्युसिलेज [पिच्छिल द्रव्य], पेक्टिन, शर्करा, उडनशील तैल, तिक्त सत्व, निर्यास, टैनिन तथा भस्म २%होते है। इसमे विशेष कार्यकारी द्रव्य मार्मेलोसिन' [Marmelosine] नामक होता है। फल का अत्यन्त महत्वपूर्ण खाद्य-घटक कार्बोहाइड्रेट हे जो पके फल मे १६ २% पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमे ९७% प्रोटीन, ० ७% वसा तथा ७ ६ ग्राम विटामिन 'सी' प्रतिशत ग्राम मे होता है, विशेषत इस फल मे टैनिन का जो तत्व होता है उसके कारण यह विशेष गुणदायक हो जाता है। इसके गूदे मे ९% तथा छिलकेमे२०% टैनिन होताहै। इसके ताजे पत्र से एक विशिष्ट गधयुक्त हरिताभपीत वर्ण का तैल निकाला जाता है। बीजो से भी एक हल्के पीले रग का तैल प्राप्त होता हे, जो रेचक गुणधर्म विशिष्ट होता है। जड, पत्र और छालमे मुख्यत टैनिन की विशेषता होती हे। इसके काण्ड की भस्म मे सोडियम तथा पोटाशियम के लवण, कैल्शियम एव लोह के फास्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैगनीशियम कार्बोनेट, सिलिका आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पत्र, मूल, छाल, बीज, फूल।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रुक्ष, कषाय, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, रोचक, दीपन, पाचन, हृद्य, रक्तस्तभन, कफघ्न, मूत्र एव तद्गत शर्करा कम करने वाला, कटुपौष्टिक तथा अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, श्वेतप्रदर अतिरजस्राव, रक्तार्श आदि मे प्रयुक्त होता है।

बाल फल—लघु, तिक्तकषाय, दीपन, पाचन, स्निग्ध, उष्ण तथा शूल, आमवात, सग्रहणी, कफातिसार, वातकफनाशक, आत्र के लिये बल्य है।

तरुण या अर्धपक्व फल—लघु, कटु, कसैला, उष्ण स्निग्ध, सकोचक, दीपन, पाचन, हृद्य एव कफ वात नाशक है।

पक्व फल—गुरु, कटु, तिक्त रस युक्त, मधुर रस प्रधान, उष्ण, दाहकारक, मृदुरेचक [किंतु अधिक मात्रा मे लेने मे विष्टम्भ कारक] वातानुलोमक, दुर्गन्धयुक्त अर्थात् वायु उत्पन्न करने वाला हृद्य एव बल्य है।

नोट—प्राय सर्व प्रकार के अन्यान्य फल परिपक्व होने पर ही अधिक गुणशाली होते हैं। किंतु बेल का कच्चा [बाल] फल ही औषधि कर्म मे विशेष प्रभावशाली होता है। यद्यपि बेल की जड मे जितनी त्रिदोषनाशक शक्ति है उतनी फल मे नही होती तथापि जितनी कुछ शक्ति होती है उसके द्वारा ही वह अतिसार एव ग्रहणी आदि विकारो की सन्निपातिक अवस्था मे भी लाभ पहुचाता है। बाल फल के जो ऊपर गुण धर्म कहे गये है, उन्ही गुणो से इसका उपयोग ग्राही कार्यार्थ या मल विसर्जन मे गाढापन लाने के लिये होता है। यह इसका मलावरोधक गुण अन्यान्य ग्राही द्रव्यो जैसा केवल अवरोधक ही न होकर पाचकगुण युक्त होता है। इसके गूदे या गिरी के छोटे-छोटे टुकड़े कर धूप मे सुखा लेते है। यह बिल्व पेशिका या बेल कचरी विशेष लाभकारी होती है। अतिसार मे यह मल को गाढा करती तथा आतो के क्षोभ या शैथिल्य को दूर कर उसकी सकोच शक्ति को बढाती है। आमातिसार मे यह आम का पाचन कर आत्र शक्ति को बढाती है। रक्तातिसार मे यह दूषित रक्त को शुद्ध कर एव आत्र के क्षोभ को कम कर उसकी सकोच शक्ति को बढाती है। बडी आत्र पर इसका उत्तम प्रभाव होने से यह सग्रहणी विकार मे उत्तम लाभकारी हे। इस विकार मे यह ग्रहणी यत्र के शैथिल्य को दूर कर उसकी सकोच शक्ति को बढाती

है तथा यथायोग्य आहार की पाचन क्रिया मे सहायता पहुचाती है। ध्यान रहे उक्त गुण विशेषत कोमल [बाल] फलो की गिरी मे अधिक पाये जाते हे तथा कुछ अश मे ये गुण तरुण या अधपके फलो मे भी रहते है, जैसा कि ऊपर तरुण फल के गुण धर्म मे कहा गया है। परिपक्व बेल फल मे कसैलापन, चीकटपन कम हो जाने से उसका उपयोग विशेष लाभदायक नही होता, प्रत्युत वह पचने मे दुर्जर होता है। यद्यपि यह भी ग्राही या मलावरोध अवश्य है, तथापि अपचन को बढाने वाला होने से हिता-वह नही है।

आधुनिक वैज्ञानिको ने सिद्ध किया है, कि बेल फल के गूदे, पत्र एव मूल मे जो रासायनिक तत्व पाये जाते है उनका विशेष प्रभाव आत्र और रक्तवह सस्थान पर पडता है। फल का उतना प्रभाव नूतन अतिसार मे नही होता जितना कि चिरकालीन आमातिसार या रक्तातिसार मे होता है। बेल मे जो लसदार पदार्थ होता है, उसके प्रयोग से ही आत्र मे स्निग्धता आती तथा उसकी गति नियमित होकर मलावरोध के द्वारा रस का शोषण रक्त मे होता एव बधा हुआ मल आने लगता है।

डा० डीमक का कथन है कि बेल फल बलकारक व रक्तशोधक है। यह मृदु विरेचक एव उदरशोधक है। दाह की शाति के लिये हरे फल के गूदे को इमली के पत्ते के साथ व्यवहार करना चाहिये। "डा० ग्रीन के मत से पके बेल फल के शर्बत के व्यवहार से उदरामय और अजीर्ण रोग शीघ्र शात हो जाता है। अतिसार और वमन की शाति के लिये कच्चे बेल को आग मे पका कर देना चाहिये। बरफ और मिश्री के साथ पके बेल के शर्बत का उपयोग करने से रक्त शुद्धि होती है।"

डा० घोष का कथन है कि इसके पक्व फल का गूदा मृदुरेचक है, अत स्तब्धता प्रधान [Spastic] एव जीर्ण मलावष्टम्भ मे उपकारी है। उपयोग मे गूदा वैसा ही खाया जा सकता है अथवा शर्बत के रूप मे लिया जा सकता है। शर्बत बनाने के लिये इसके टुकडे कर जल मे मसल छान कर लेना चाहिये। रुचि के लिये अल्प मात्रा मे शक्कर मिलाई जा सकती है। अपक्व फल को किंचित् भून कर या उसके महीन टुकडो का क्वाथ बना कर दिया जावे, तो यह शोषक [astringent] होने से कफातिसार तथा प्रवाहिका मे लाभकारी होता हे। पक्व फल उपलेपक एव मृदुरेचन होने से प्रवाहिका के शात हो जाने पर अथवा ग्रहणी विकार की आरभिक अवस्था मे दिया जा सकता है। सम भाग अरारोट के चूर्ण के साथ पक्व फल का चूर्ण मिला कर भी उन्ही रुग्णो को दिया जा सकता हे। पक्व फल दुस्साध्य कफज अतिसार तथा जीर्ण प्रवाहिका मे बहुमूल्य औषधि है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे इसके अपक्व या अर्ध पक्व फल का द्रवसार [लिक्विड एक्सट्रैक्ट] उक्त रोगो मे ६० से १२० बूदो की मात्रा मे दिया जाता है।"

"डा० रामसुशील सिह जी ने अपने पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान मे लिखा है कि बेलगिरि का अन्य उपयुक्त औष-धियो के साथ क्वाथ बनाकर देने से श्वेत आव [mucous diarrhoea] एव लाल आव या प्रवाहिका [dysentery] मे बहुत लाभ होता है। स्नेहन [demulcent] एव मृदु सारक प्रभाव के लिये पके फल के गूदे का सेवन प्रवा-हिका के रोगोत्तर काल मे बहुत उपयोगी होता है। ऐसे अग्निमाद्य [dyspepsia] के रोगियो मे जिनमे कभी तो कब्ज रहता है और फिर अतिसार होने लगता है तथा यही क्रम बराबर बना रहता है, बेल का सेवन बहुत उपयोगी होता है।"

श्री गगासहाय जी पाण्डेय अपने भावप्रकाश निघण्टु मे लिखते है कि भूना हुआ कच्चा फल या कच्चे फल का सुखाया हुआ गूदा ग्राही एव दीपन होने के कारण अति-सार, रक्तातिसार एव प्रवाहिका मे दिया जाता है। जब ज्वर न हो, रोगी दुर्बल हो तथा पाचन खराब हो गया हो, तब इससे विशेष लाभ होता है। आव, रक्त एव कुथनयुक्त तीव्र प्रवाहिका मे यद्यपि इसके चूर्ण को लाभदायक माना गया है, तथापि इन अवस्थाओ की अपेक्षा जीर्ण विकारो मे इसका गुणकारी प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। इसके सेवन के पश्चात् धीरे-धीरे

अतिसार मे रक्त कम होकर मल वधा हुआ होने लगता है। अधिक दिन लेते रहने से आम भी कम हो जाती है, तथा वाद मे विल्कुल नही रहती। जीर्ण आव की शिकायत होने पर इसके साथ वडी सौफ एव घोडवच मिला क्वाथ वनाकर देते है। रक्तपित्त वाले रोगी को आव होने पर यह विशेष लाभदायक है। अरारूट के साथ इसकी पेया वनाकर देने से आन्त्र को वल प्राप्त होता है। प्रवाहिका मे इसके फल का कल्क, तिल का कल्क दही मलाई तथा घृत के साथ देते है। पित्त एव रक्तातिसार मे इसका गूदा और मुलैठी शर्करा, मधु एव चावल के धोवन के साथ देने से लाभ होता है। इसके गूदे के साथ गुड का प्रयोग आमशूल विवन्ध, कुक्षिरोग तथा रक्तातिसार मे लाभदायक होता है। अत्युग्र ग्रहणी मे इसके गूदे के साथ सोठ एव गुड मिलाकर सेवन करे, तथा आहार मे तक्र का सेवन करें। पुराने विकारो मे इसका मुरब्बा भी लाभकारी होता हे। पुराने मुजाक मे ताजा गूदा व कवाव चीनी दूध के साथ देते हैं।

कच्चे फल की शुष्क गिरी को काजी मे भिगोकर सेवन करने से जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती, अरुचि दूर होती, हृदय विकृति दूर होती तथा आमवात नष्ट होती है।

पके फल मे जो शहद जैसा गाढा रस होता है वह मधुर और उष्णवीर्य हे।

डा० मुनुद्दीन शरीफ के मत से वेलगिरी का चूर्ण पौष्टिक, अग्निदीपक तथा ज्वरनाशक है। यह अतिसार व रक्तातिसार के सभी रूपो मे उतना उपयोगी एव लाभकारी नही है जितना कि तीव्र मरोडयुक्त अतिसार मे। यह दस्त के साथ गिरने वाले रक्त को वन्द करता, आव को निकाल देता तथा दस्त होने के समय मे वहुत अन्तर कर देता है। किन्तु यह दस्त के प्रमाण को कम नही कर सकता। अत दस्त के प्रमाण को कम करने के लिये इसे अफीम के साथ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह चूर्ण टायफाइड ज्वर, क्षय ज्वर [Hectic fever] या अन्य किसी भी औषधि से न उतरने वाले, हमेशा समान रूप से शरीर मे वने रहने वाले ज्वर को उतारने मे बहुत उपयोगी है। इस प्रकार के ज्वरो मे जब उष्णता या तापमान वहुत वढा हुआ होता है तव इस चूर्ण को देने मे वह एकदम कम हो जाता है। ऐसे ज्वरो मे इसे ५ से ८ रत्ती तक की मात्रा मे २४ घण्टे मे ४ या ६ वार देना चाहिये। अतिसार के रोग मे इस चूर्ण की मात्रा १० से ३० रत्ती तक की मात्रा मे चौथाई ग्रेन अफीम के साथ मिलाकर २४ घण्टे मे ४ से ६ वार देवें।

(१) अतिसार, वमनादि तथा संग्रहणी पर—कही-कही कच्चे या तरुण (अधपके) वेल की वेलगिरी को वगैर सुखाये ही जल मे उवाल कर शहद मिला अतिसार या प्रवाहिका मे सेवन कराते है।

कभी-कभी कच्चे वेल को आग मे भूनकर खिलाने से अथवा भूने हुए वेल के गूदे मे मिश्री और अर्क गुलाव मिला प्रात खाली पेट सेवन कराने से भी सर्व प्रकार के अतिसारो मे लाभ होता है। अथवा—

वेलगिरी (सुखाई हुई) ५ तोला, श्वेत कत्था २ तोले एकत्र महीन चूर्ण कर उसमे १० तोला मिश्री मिला १० रत्ती की मात्रा मे दिन मे ५-६वार के सेवन से सर्व प्रकार के अतिसारो मे उत्तम लाभ होता है।

उक्त प्रयोग मे कोई-कोई वेलगिरी के समभाग कत्था, आम की गुठली, ईसवगोल की भूसी और वादाम की मीगी मिला शक्कर या मिश्री के साथ सेवन कराते हैं। जीर्णातिसार, आमातिसार, प्रवाहिका आदि पर यह अच्छा कार्य करता हे। अथवा—

वेलगिरी, धनिया, सोठ, नागरमोथा व अतीस प्रत्येक ३-३ माशा जौकुट कर आधा सेर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर प्रात साय सेवन से भी अतिसार मे पूर्ण लाभ होता है। यह धान्यपचक क्वाथ आम शूल तथा विवन्धयुक्त अतिसारनाशक एव दीपन पाचन है। यदि रोगी की क्षुधा नष्ट हो गई हो, पेट फूला (आध्मान) हो तो इस क्वाथ मे कुडा छाल और इन्द्र जौ थोडा मिला देने से यथेष्ट लाभ होता हे। अथवा—

वेलगिरी २० तोला मे १० सेर जल मिलाकर पकावे १ सेर जल शेष रहने पर, छानकर उसमे लगभग आधा सेर तक मिश्री मिला, वोतल मे भर रखे। मात्रा १ या



२ तोला प्रत्येक मात्रा मे भुनी हुई सोठ का चूर्ण ४ रत्ती और अफीम मूग बराबर मिलाकर सेवन करावें। २ या ३ बार के सेवन से ही लाभ होता है । सर्व प्रकार के अतिसार दूर होते है। अथवा आगे विशिष्ट योगो मे बिल्वासव देखिये। —स्वानुभूत।

अथवा—बेलगिरी, आम की गुठली, सेमर का गोद (मोचरस), सोंठ तथा पोस्त के डोडे समभाग पीस छान कर सबके बराबर शक्कर मिला रखे। ६-६ माशा की मात्रा मे ४-४ घटे बाद खिलाकर ऊपर से १० तोला गाय का मट्ठा थोडा नमक मिलाकर पिलावे पथ्य मे दही और खिचडी देवें।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे बिल्वादि चूर्ण देखिये। —भा. गृ चि।

कफातिसार पर—बेलगिरी, काकडासिगी, नागरमोथा, हरड़ और सोठ इनका क्वाथ कफातिसारनाशक एव अग्नि व बल की वृद्धि करता है। —च चि अ १९

ज्वरातिसार पर—बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, धनिया, सोंठ, कुडे की छाल और नागरमोथे का क्वाथ लाभकारी है। यह शूल नाशक भी है। —यो र

आमातिसार पर—बेलगिरी और आम की गुठली की गिरी दोनो समभाग एकत्र पीस, मात्रा २ से ४ माशा तक चावल के माड के साथ या शीतल जल के साथ प्रात साय सेवन करावें।

अथवा—दोनो उक्त गिरियो को १-१ तोला लेकर कूट पीसकर ३२ तोला जल मे पकावे। ८ तोला शेष रहने पर छानकर शहद और मिश्री मिला, मात्रा आधा तोला से २ तोला तक आवश्यकतानुसार पिलावे। इससे हैजा या वमनयुक्त अतिसार मे भी लाभ होता है। —स्वानुभूत

अथवा—एक अधपके (तरुण) बेल को लेकर नीचे पटककर चिटका दे, तथा आग मे भून कर उसमे से ५ तोला गूदे के साथ १ तोला सोंठ चूर्ण व २ तोला गुड एकत्र पीस, उसकी ३ मात्रा कर दिन रात मे ३ बार खिलाकर ऊपर से १० तोला तक्र, नमक व भूनी हीग मिलाकर पिलावे। भोजन दही और खिचडी का करे।

अथवा—बेलगिरी और सोठ प्रत्येक २½ तोला, अलसी भूनी चूर्ण की हुई ५ तोला और शक्कर १० तोला सबको कूट छानकर रखे। मात्रा ६ माशा तक ४-४ घटे से ४ बार सेवन करा, ऊपर से गाय का मट्ठा १० तोला मे सेधा नमक १ तोला मिला पिलावे, पथ्य मे दही खिचडी देवे। —भा गृ चि

वमन युक्त अतिसार या विसूचिका पर—बेलगिरी और गिलोय ४-४ माशा एकत्र जौकुट कर २० तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर थोडा-थोडा पिलावे। विकार की विशेष प्रबलता हो, तो इस योग मे जायफल कपूर और छुहारा थोडे प्रमाण मे मिला क्वाथ करे तथा बार-बार थोडा-थोडा पिलाने से विशेष लाभ होता है।

क्षुधा मद हो गई हो, पाचन शक्ति क्षीण हो तो बेलगिरी का चूर्ण, छोटी पिप्पली, बसलोचन व मिश्री २-२ माशा के एकत्र चूर्ण मे अदरख का रस १ तोला तक मिला तथा थोडा जल मिला आग पर पकावे। गाढा हो जाने पर दिन मे ४ बार चटावें। अथवा—

बेलगिरी चूर्ण और अदरख दोनो को पीस थोडी शक्कर व इलायची चूर्ण मिला, तथा थोडा जल मिलाकर पकावे। अवलेह जैसा हो जाने पर बार-बार चटावे। —स्वानुभूत।

हैजे के दिनो मे बेल फल का शर्बत नित्य सेवन करते रहने से हेजे का प्रकोप नही होने पाता।

अथवा—बेलगिरी के चूर्ण को पुराने गुड के साथ पीसकर मटर जैसी गोलिया बना, नित्य ३-४ गोली सेवन करते रहने से हेजे का आक्रमण नही होने पाता।

गर्भवती के वमन या अतिसार पर—बेलगिरी २ तो को चावल के धोवन या माड के साथ पीसकर थोडी मिश्री मिला, दिन मे २-३ बार देने से लाभ होता है। साथ ही ज्वर हो या किसी भी दशा मे इससे लाभ ही होता है। उसे अन्य किसी भी उपद्रवो की सभावना नही रहती। —वृक्ष विज्ञान।

बालातिसार पर—बेलगिरी को सौफ के अर्क मे घिस कर देने से बालक के हरे, पीले, लाल दस्तो की शिकायत दूर होती है। अथवा—

वेलगिरी व ढाक का गोद एक-एक रत्ती तथा मिश्री दो रत्ती एकत्र थोडे जल के साथ खरल कर मन्द आच पर गाढा कर चटाने मे भी विशेष लाभ होता है ।
अथवा—

वेलगिरी, सोंठ, जायफल, नागकेशर व वडी इलायची समभाग महीन चूर्णकर खमखस [पोस्त दाना] के क्वाथ मे खरलकर, चना जैसी गोलिया वना, अवस्थानुसार आधी या एक गोली माता के या गाय के दूध मे घिस कर पिलावें ।

दात निकलते समय वच्चों को जो दस्त आने लगते हैं, पेट मे मरोड होती है, उस दशा मे उपरोक्त योग लाभकारी होते हैं । अथवा—

वेलगिरी, सोंठ, मरोडफली व आम की गुठली की मिगी एकत्र जल के साथ पीस छानकर पिलाने से भी लाभ होता है । अथवा—

केवल गिरी के एक तोला चूर्ण को १५ तोला जल मे पकाकर दो तोला शेष रहने पर उसमे ६ मा मधु मिला पिलावे ।

यदि रक्तमिश्रित दस्तो की विशेषता हो तो वेलगिरी, अतीस, माजूफल, दूधियावच तथा पाठा समभाग का चूर्ण कर, अवस्थानुसार ½ से एक माशा तक की मात्रा मे एक–दो तोला गौ दुग्ध मे घोलकर पिलावे ।
—स्वानुभूत ।

रक्तातिसार पर—वेलगिरी एक तोला को दस तोला वकरी का दूध और वीस तोला जल मे एकत्र मिला पकावे । दूध मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे थोडी मिश्री मिला सेवन कराने मे लाभ होता है । प्रवाहिका भी दूर होती है ।
अथवा—

गिरी के दो माशा चूर्ण और मुलैठी चूर्ण एक माशा को चावल के दो तोला धोवन मे पीस दो माशा शकर और शहद तीन माशा मिला दिन मे २–३ वार सेवन करावें । पित्तरक्तातिसार नष्ट होता है । अथवा—

गिरी और धनिया १–१ भाग तथा मिश्री दो भाग एकत्र चूर्ण कर २ से ६ माशा तक ताजे जल से प्रातःसाय सेवन कराने से उत्तम लाभ होता है ।

अथवा—गिरी के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला, मात्रा २ से ६ माशा तक शहद के साथ या शर्वत अजुवार या वीज वन्द के लुआव के साथ सेवन करावे ।

अथवा—कच्चे वेल को कडे की आग पर रखे । ऊपर का छिलका विल्कुल काला हो जाने पर भीतर का गूदा निकाल मात्रा १ से २ तोला तक दिन मे तीन वार मिश्री मिला सेवन करावें ।
—स्वानुभूत
अथवा—

वेलगिरी दो तोला को १६ तोला वकरी के दूध और ६४ तोला जल के साथ पकावे । दूध मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे मोचरस व इन्द्रजौ का चूर्ण ४–४ रत्ती और मिश्री एक तोला मिला पिलाने से उत्तम लाभ होता है । अथवा—

वेलगिरी, लून खरावा, राल, सौंफ और श्वेत जीरा समभाग चूर्ण वना लेवें । मात्रा–२ से ६ माशा दिन मे १–३ घटे के अन्तर से तक्र या शर्वत अनार के साथ देवे
—सचित्रायुर्वेद

रक्त के साथ पतला पानी जैसा मल होने पर वेलगिरी के २–३ माशा चूर्ण को फाणित [राव], शहद और तैल के साथ भोजन के पूर्व चाटने से शीघ्र ही लाभ होता है ।
—सु. उ अ ४२

नोट—वेल का मुरब्बा भी अतिसार, रक्तातिसार मे उपयोगी है । मुरब्बा, शर्वत आदि के प्रयोग आगे विशिष्ट प्रयोगो मे देखिये ।

सग्रहणी पर—ग्रहणी विकार की प्रारभिक अवस्था मे विल्व फल का प्रयोग विशेष लाभदायक होता है ।

वेलगिरी चूर्ण एक तोला, सौंठ चूर्ण और पुराना गुड ६–६ माशा एकत्र खरल कर मात्रा–३ मा दिन मे तीन या चार वार तक्र के साथ सेवन करावें तथा रोगी को तक्र पर ही रखे । अन्य भोजन न देवे । अथवा—

वेलगिरी और कुडा छाल दोनो का चूर्ण १–२ तो एकत्र मिला, रात्रि के समय १५ तोला जल मे भिगोकर प्रात इस हिम को मल छानकर पिलाते रहने से भी विशेष लाभ होता है ।
—स्वानुभूत ।

अथवा—वेल के कच्चे फल को आग मे सेककर, गूदा निकाल कर १ तोला गूदे मे थोडी शक्कर मिलाकर

सेवन करते रहने से भी उत्तम लाभ होता है।

जीर्ण संग्रहणी मे—बडे-बडे पके फलो को भाड मे भुनवाकर उसके गूदे मे थोडी खाड मिला, दिन-रात मे जब-जब भूख लगे यही खाया करे तथा प्यास लगने पर गाय का धारोष्ण दूध पिया करे। शेष सब भोजन और पानी छोड दे। शीघ्र लाभ होता है। —फलाक से

अथवा—बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्र जौ, सुगन्धबाला और मोचरस प्रत्येक १ तोला एकत्र चूर्ण कर, बकरी का दूध १ सेर तथा जल ४ सेर मे मिला पकावे। दूध मात्र शेष रहने पर छानकर, इसे दिन मे ३-४ बार पिलावे। इसी प्रकार तीन दिन तक प्रतिदिन इस योग को तैयार कर पीने से अति प्रवृद्ध एव रक्तयुक्त पुराना ग्रहणी विकार भी नष्ट होता है। —व से

(२) तृषा, वमन, दाह, कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि पर—पके फल के गूदे को शीतल जल मे मसल, छानकर उसमे मिश्री, इलायची, कालीमिर्च, लौंग तथा किंचित कपूर मिला, शर्बत बनाकर पीने से तृषा, वमन एव दाह की निवृत्ति होकर, समस्त शरीर की थकावट दूर होती है। जिन्हे कब्जी की विशेष शिकायत हो, वे इसे भोजन के बाद लेवें।

अथवा—उक्त गूदे को जल मे मसल छानकर उसमे बर्फ और थोडी शक्कर मिला सेवन करने से कोष्ठबद्धता दूर होकर पित्त, दाह एव तृषा शात होती है, मलमूत्र साफ होकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

अथवा—उक्त गूदे को इमली के पानक के साथ थोडी शक्कर मिलाकर या दही के साथ शक्कर मिला पीने से खुलासा दस्त होकर, दाह शात हो जाती है।

नोट—कोष्ठबद्धता के निवारणार्थ सायकाल के समय एक अच्छा पका हुआ बेलफल खाने से भी चाहे जैसा कडा कोठा हो, मुलायम हो जाता है। किंतु वातप्रधान प्रकृति वालो को, या जिनके कोठे [पक्वाशय] मे पहले से ही अधिक रूक्षता हो, उन्हे इसके खाने से दस्त साफ नही होता, पेट मे आध्मान [अफरा] होता है। ऐसो को चाहिये कि उक्त पके फल के गूदे को मिश्री या खाड मिलाकर खावे, या गूदे को खाकर ऊपर से शक्कर का शर्बत पीवें।

मन्दाग्नि पर—पके फल के गूदे मे शक्कर, सोठ, जीरा, इलायची, काली मिर्च एव किंचित कपूर मिला खूब घोट छानकर पीने से जठराग्नि प्रदीप्त होती तथा आमदोष शमन होकर भोजन मे रुचि बढती है।

(३) बल वीर्य की अशक्ति, बहुमूत्र, रक्तविकार, मस्तिष्क एव स्नायु-सम्बन्धी विकार तथा ज्वर पर—

बलवीर्य की कमजोरी के लिए—बेलगिरी, असगध, और मिश्री समभाग चूर्ण कर उसमे चौथाई भाग उत्तम केशर का चूरा मिलाकर रखे। मात्रा—४ माशा तक, प्रात साय सेवन कर ऊपर से सुखोष्ण दूध पीवे।

अथवा—केवल बेलगिरी के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन करे। इन प्रयोगो के सेवन से रक्ताल्पता, भयकर रोगो से मुक्त होने पर शारीरिक दुर्बलता, वीर्य की कमजोरी आदि दूर होती है।

अथवा—अच्छे पके हुए फल का गूदा १ भाग, गाय का दूध ४ भाग, जल ८ भाग तथा शक्कर १ भाग एकत्र मिला भबके द्वारा अर्क खींच लेवे। मात्रा—२॥ तोला तक नित्य पीने से पित्तदाहादि दोष दूर होकर रक्त शुद्धि तथा बलवीर्य की वृद्धि होती है।

अथवा—पके फल के गूदे को सुखाकर महीन चूर्ण बना रखें। थोडी मात्रा मे इसका नित्य सेवन करने से शरीर मे पुष्टि आती है तथा दन्तरोग एव आमाशय सम्बन्धी रोगो की वृद्धि नही होने पाती।

रक्त विकारो पर रक्तशुद्धि के लिये—इसका ताजा गूदा या शुष्क गूदे का चूर्ण ३ या ४ तोला तक लेकर समभाग शक्कर मिला नित्य सेवन करे।

बहुमूत्र पर—बेलगिरी १ तोला और सोठ ६ माशा एकत्र जौकुट कर ४० तोला जल मे, अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराते रहने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

मस्तिष्क एव स्नायु सम्बन्धी विकारो पर बिल्वादि चूर्ण—बेलगिरी, नागरमोथा, छोटी इलायची, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अजवायन, अजमोदा, निशोथ, चित्रक, बिड नमक, असगध, खिरैटी मूल, पिप्पली, बंसलोचन व शिलाजीत समभाग चूर्ण करे। मात्रा—१ से २ माशा तक दूध

या काजी के साथ सेवन से मस्तिष्क तथा स्नायु सम्वन्धी रोग (Nervous diseases) शीघ्र ही दूर हो जाते है। पथ्य मे हलके एव शरीर को पुष्ट करने वाले अन्नपान का सेवन करे। इससे विपरीत का परित्याग करना चाहिये।
—भैं० र०

ज्वर पर—जीर्ण ज्वर पर— वेलगिरी और रेंडी की जड जौकुट कर १-१ तोला, गोदुग्ध ४० तोला तथा जल २ सेर एकत्र मिला पकावें। दूध मात्र शेप रहने पर छान कर सेवन करावे। इस विल्वादि क्षीर पाक के सेवन से ज्वर की हालत मे जो मलद्वार मे कभी कभी असह्य वेदना होती है, वह भी दूर हो जाती है। —व० से०

शीत ज्वर या व्रणादि से उत्पन्न ज्वर के वेग की शाति के लिए केवल वेलगिरी के चूर्ण को जल के साथ सेवन करावे। —सकलित

(४) अर्श, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र (सुजाक), वातगुल्म, कास, सखिया का विप, वगल की दुर्गन्ध और अग्निदग्ध पर—

अर्श पर—कहा जाता है कि वेल फल के सेवन से बवासीर पैदा होती है। यह कुछ अश मे ठीक है, किंतु खाड या मिश्री के साथ इसका सेवन पैदा हुई बवासीर को नष्ट कर देता है। वेलगिरी के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला, मात्रा ४ माशा तक शीतल जल के साथ सेवन कराने से विशेपत रक्तार्श मे शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—वेलगिरी के साथ सौंफ और सोठ मिला क्वाथ बनाकर सेवन कराते है।

प्रदर पर—वेलगिरी, नागकेशर और रसौत समभाग चूर्ण कर लेवे। मात्रा—४ माशा तक चावल के धोवन के साथ सेवन कराने से दोनो प्रकार (श्वेत व रक्त) के प्रदर दूर होते है। यह प्रयोग रक्तार्श तथा रक्तातिसार मे भी लाभकारी है। —स्वानुभूत

मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) पर—ताजे फल के गूदे को दूध के साथ पीस छान कर उसमे थोडा शीतलचीनी (कवाव चीनी) का चूरा बुरका कर ३-३ घटे के अन्तर से पिलाने मे मूत्र के परिमाण मे वृद्धि होती है तथा जीर्ण मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) भी दूर होता है। इस योग मे किंचित यवक्षार (जवाखार) भी मिला सकते हैं।
—सकलित

वातगुल्म पर—वेलगिरी या कोमल फल के गूदे के साथ गुड मिलाकर सेवन से लाभ होता है। शरीर मे प्रविष्ट हुआ दूपित वात विकार तथा उदर का शैथिल्य भी दूर होता है। —व० गु०

वधिरतादि कर्ण विकारो पर—वेलगिरी ५ तोला को गोमूत्र १५ तोले मे पीस उसमे आधा सेर तिल तैल, वकरी का दूध और जल २-२ सेर मिला मद आग पर पकावें। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर रख लें। इसे कुछ गरम कर ४-५ बून्द कान मे प्रात साय डालते रहने से वहरापन, कर्णशूल, कर्णस्राव आदि विकार दूर होते हैं। इस योग से कफज एव वातज कर्ण रोग नष्ट होते हैं।
—भैं० र०

कर्ण वाधिर्य पर—वेल का ताजा गूदा लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर चौगुने तिल तैल मे पकावें। पकाते समय तेल से चौगुना वकरी का मूत्र भी इसमे मिला देवें। पककर तेल मात्र शेप रहने पर छानकर रख लेवें। नित्य कानो को गोमूत्र से धोकर यही तेल ५-५ बूद डाला करें। जल्दी न करें, जितना पुराना रोग होगा उतना अधिक समय उसके अच्छे होने मे भी लगेगा। इससे कान का वहरापन दूर हो जावेगा। —भा० गृ० चि०

नोट—वधिरता के साथ ही कर्णनाद भी हो तो उक्त भैं० र० के तेल के प्रयोग के साथ ही साथ सोठ और गुड को जल के साथ महीन पीस कर नस्य लेना हितकारी होता है। इससे कर्णनाद, कानो मे सनसनाहट दूर होगी।
—भैं० र०

कास पर—वेलगिरी का चूर्ण, मिश्री ५-५ तोला, वसलोचन १ तोला एकत्र चूर्ण कर ३ माशे की मात्रा मे—दिन मे ३ वार शहद के साथ सेवन से खासी तथा श्वास का फूलना दूर होता है।

सखिया के विष पर—पके फल के गूदे को भर पेट खिलाने से सखिया (मल्ल) के विप को यह अपने मे जज्ब कर लेता है तथा उसका मारक असर नही होने



पाता।

बगल की दुर्गन्ध नाशार्थ—बेलगिरी और हरड सम-भाग एकत्र जल मे पीसकर लेप करने से दुर्गन्ध दूर होती है। —भा भै र

अग्निदग्ध पर—बेल का गूदा पासकर तिल तैल मे मिलाकर १० दिन रखने के बाद वस्त्र से छान कर सुर-क्षित रखें। दग्ध स्थान पर इसे लगाने से तुरन्त शाति प्राप्त होती है। —सकलित

फल का ऊपरी कडा छिलका—यह छिलका ग्राही या सकोचक होता है। इसके महान चण मे थोडी अफीम मिला उचित मात्रा मे तीव्र अतिसार मे देते हैं।

वमन पर—छिलका ५ भाग तथा गिलोय ४ भाग एकत्र जौकुट कर २ तोला चूर्ण ३२ तोला जल मे पकावे। ८ तोला शेष रहने पर छानकर ठडा हो जाने पर थोडा शहद मिला २-२ घटे से थोडा थोडा पिलाते हैं।

—नाडकर्णी

जू नाशार्थ—पके फल के खापडे (छिलके) को साफ कर कटोरी जैसा बना लेवें। उसमे तिल तेल को थोडा कपूर मिला भर कर ऊपर इसी कटोरी के दूसरे भाग को ढककर मुख मुद्रा कर रखने के बाद उस तेल को सिर पर लगाने से जू आदि कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, बाल साफ रहते हैं।

इस छिलके की धूनी देने से (आग पर जला कर धुवा करने से) मच्छर मक्खी आदि दूषित कीटाणु भाग जाते हैं। —सकलित

पत्र—बेल के पत्ते सकोचक, पाचक, त्रिदोष विकार नाशक, कफनिसारक, आमशूल निवारक, व्रणशोधक, रोपक, शोथहर, वेदना स्थापन तथा मधुमेह, जलोदर, कामला, ज्वर, नेत्राभिष्यन्द आदि मे उपयोगी है।

फलो की अपेक्षा पत्तो मे पारद के यौगिकाणु की मात्रा अधिक पाई जाती है।

डा देसाई के मतानुसार ताजे पत्तो का स्वरस ज्वर, कफ ज्वर, शोथ, कास आदि कफ विकार एव नेत्राभि-ष्यन्द मे लाभदायक होता है। इससे दस्त साफ होकर ज्वर हलका पड़ जाता है। अग्निमाद्य से होने वाले श्वास विकार मे कफ निकालने के लिये पत्तो का क्वाथ बनाकर दिया जाता है। जल शोथ, विबन्ध व कामला मे पत्तो का स्वरस काली मिर्च के साथ दिया जाता है। व्रणो पर तथा शोथयुक्त विकारो मे ताजे पत्तो को पीसकर बाधने से या पत्तो की पुल्टिस बाधने से बहुत लाभ होता है। नेत्राभिष्यन्द मे पत्तो का स्वरस नेत्रो मे डालते है। तथा पत्तो को पीसकर पलको पर लेप करते है।

मधुमेह मे पत्र स्वरस १—२ तोला देने से लाभ होता है। यह शरीर की दुर्गन्ध को भी दूर करता है। ज्वर की सन्निपातिक अवस्था (Delirium) मे पत्तो का गरम पुल्टिस ललाट के ऊपर बाधा जाता है।

बेलपत्र श्री शंकर जी के पूजन की एक मुख्य सामग्री है। प्राचीन ऋषिगण योगाभ्यास और समाधि लगाये, विना अन्न—जल के जिस वनस्पति के सहारे ध्यान मग्न रहते थे उसीमे से यह भी एक है। बेलपत्र के सेवन से मलमूत्र कम निकलता है, शरीर की इन्द्रिया एव चचल चित्त की वृत्तिया एकाग्र होती तथा गूढ तत्व विचार की शक्ति जागृत होती है। यज्ञ के शाकल्य मे ये पत्र काम मे लाये जाते है। अग्नि होत्री बेलपत्र और दूध के सयोग से श्वेतवर्ण की भस्म तैयार कर शरीर पर लगाते है।

पत्र स्वरस बालको के लिये रेचक एव कफनाशक है। प्रतिश्याय, कास, श्वास व ज्वर मे उपयोगी है। पार्श्वशूल, शोथादि मे पत्तो से स्वेदन करते है। कृमि विकार मे पत्र रस पिलाते है।

शरीर की दुर्गन्ध नष्ट करने के लिये पत्र रस का लेप करते हैं। शरीर मे कही भी काटा आदि धसने तथा उसके न निकलने पर, उस स्थान पर पत्र की पुल्टिस बाधने से वह शल्य भीतर ही गलकर नष्ट हो जाता है। तथा कोई विकार भी नही होने पाता।

क्षुधा निवारणार्थ कई साधु सन्यासियो का कथन है कि बेलपत्री को भाग के समान पीस छानकर पीने से बहुत दिनो तक बिना अन्न के मनुष्य जीवित रह सकता है। पाचन शक्ति के अनुसार २० तोला से ४० तोला तक इसका सेवन कर लेने से मलमूत्र बहुत कम होता है, तथा शरीर भली भाति स्थिर रह सकता है।

हैजा के प्रतिकारार्थ बेल पत्र का रस १० तोला तक लेकर उसमे थोडा नीवू का रस और मिश्री या शक्कर मिला रोज १ या २ बार पीते रहने से हेजे का आक्रमण सहमा नही हो पाता। पक्वाशय का कार्य ठीक नियमित रूप से चलते रहता है। अग्निमाद्य नही होने पाता।

विशेष दृष्टव्य—बेल पत्र की गन्ध एव रस कसैला होने से यह पित्त के विकारो को दूर करता है। यह शीत वीर्य होने से दाह को शात करते हुए शोथ या सूजन को दूर करता है। जिस ग्रथि शोथ या व्रण मे दाह की विशेषता हो उस पर इसका उपयोग विशेष लाभप्रद होता है। यह कृमिनाशक है अत इसका महीन कल्क कर कृमियुक्त स्थान पर लेप करने से सब कृमि नष्ट होकर पुन वहा नहीं पैदा होते । किसी भी जख्म पर इसे बाधने से या लेप करने से मक्खिया, सूक्ष्मजन्तु आदि उसके पास नही आने पाते, तथा वह शीघ्र ठीक हो जाता है।

पत्र रस निकालने की विधि—बेलपत्र का रस केवल आषाढ व श्रावण मास मे ही, थोडा जल का छींटा देकर पीसकर निचोडने से सरलता से निकलता है। अन्य ऋतुओ मे रस निकालना हो, तो ताजे पत्तो को सिलपर पीसकर, गोला सा बना उस पर बड के पत्तो को लपेट कर, कपट मिट्टी कर आग की भूभल मे डाल दें। ऊपर की मिट्टी लाल हो जाने पर उसे निकाल कर, ठडा होने पर ऊपर की मिट्टी, व बड के पत्तो को दूर कर, उस गोले को कपडे मे रख बलपूर्वक दबाकर रस निकाल लेते है।

[१] मधुमेह पर—ताजे पत्तो को पीसकर इसके ५ तोला कल्क मे २½ तोला असली शहद मिला, वस्त्र मे रखकर अच्छी तरह निचोडने मे जो रस निकले उसे पिलावे। इस प्रकार दिन मे २ या ३ वार पिलाने से मूत्र मे मीठा आना बन्द होता तथा इस रोग के कारण शरीर पर होने वाले व्रण या फुमिया शीघ्र ही सूख जाती है।

पत्तो को जल के साथ पीसकर या उक्त पुटपाक विधि से निकाले हुये १ तोला से लगभग ५ तोला तक रस मे अर्ध भाग असली शहद मिला सेवन करावें।

रोगी को चना, गुड, शक्कर, आलू, दही और चावल नही खाना चाहिये। केवडा के इत्र की गध नही लेनी चाहिये। नीवू, सतरा आदि फल यथेष्ट सेवन करें, किन्तु बहुत मीठे फलो को नही। काले जामुनो का खाना विशेष हितकारी है। मक्खन निकाला हुआ दूध ले सकते है। उसे मीठा करना हो, तो शुद्ध मधु या शुगर का सत्व [सेक्रीन] मिला लेवे। चोकर समेत मोटे आटे की रोटी जौ के सत्तू, जौ की खीलें, आवले, अदरख की चटनी लेवे। भोजन की मात्रा थोडी व खूब चबाकर खावे। आगे विशिष्ट योगो मे बिल्व पत्रासव का भी योग उत्तम है। —स्वानुभूत।

कोई-कोई पत्र रस की मात्रा १ तोला [बिना शहद मिलाये] नित्य प्रात पिलाते हैं। कुछ दिनो मे मूत्र मे शक्कर आना धीरे-धीरे कम होकर अन्त मे बिल्कुल बन्द हो जाता है। जगलनी जडी बूटी के गुजराती लेखक का कथन है कि मधुमेह के एक भयकर केश मे प्रतिदिन प्रात साय दो बार पत्र रस के सेवन कराने से दो महीने में रोगी को बहुत उत्तम लाभ हुआ।

बबई के स्व वैद्य श्री अप्पा शास्त्री साठे [आयुर्वेद पत्र के सम्पादक] का कथन है कि मधुमेह के बहुत से रोगियो को उन्होंने बेलपत्र का रस सेवन करा आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। वे बेल के १५० पत्रो को पिसवाकर थोडा जल मिला रस निचोड कर प्रात साय पिलाते थे। अथवा १५० पत्तो को पिसवाकर गोली बना जल मे घोलवाकर प्रात पिलाते, तथा इसी प्रकार शाम को पिलाते थे। लघन, वमन, विरेचन करवाते तथा शमन दीपन औषधि देते। पथ्य मे पुराना अन्न, शाठी चावल, कगुनी के चावल, जौ, समा, मोठ, गेहू, कुलथी, मूग, तिल, पुराना मद्य, गधी व भैंस का मूत्र, परवल, करेला, ककोडा, लहसन, कच्चा केला, गोखरू पत्र का शाक, चूहाकानी, गिलोय, त्रिफला, कमलकन्द, कमलबीज खजूर, तथा कडवे पदार्थ, हाथी और घोडे पर बैठना, खूब भ्रमण करना एव व्यायाम करना आदि।

अपथ्य—मूत्र वेग को रोकना, धूम्रपान, पसीना निकालना, रक्तस्राव, बहुत समय तक उकडू बैठना, दिन मे सोना, नवीन अन्न, आनूप देशीय [जलसमीपवर्ती]

जीवो का मास, पिष्टान्न [पिट्ठी के पदार्थ] मैथुन, तैल, तक्र, दही, गुड, घृत, ईख, मिठाई, खटाई तथा समस्त कफकारक पदार्थ। इस प्रकार के पथ्यापथ्य का पालन रोगी से करवाते थे।

निम्नाङ्कित योग मधुमेह के नाशार्थ बहुत उत्तम सिद्ध हुए थे।

बेल पत्र, हल्दी, गिलोय, हरड, बहेडा और आमला ६-६ माशा सबको कूट कर १० तोला जल मे रात्रि के समय मिट्टी के पात्र मे भिगोकर प्रात खूब मसल छानकर इसकी आधी मात्रा प्रात तथा शेष अर्ध मात्रा शाम को बसतकुसुमाकर रस की मात्रा के साथ सेवन करावें।

—कविराज महेन्द्रनाथ पाडेय [मधुमेह उपचार]

बेल के कोमल पत्र २ तोला को पीसकर स्वरस निकाल आवश्यक ही समझा जाय तो उसमे २-३ नग मुनक्का व कालीमिर्च १ नग पीसकर मिला प्रात साय लगातार २-३ महीने तक सेवन से यह रोग नष्ट हो जाता है। आयुर्वेदी तथा एलोपैथी के समन्वयवादी चिकित्सक बिल्व पत्र स्वरस प्रयोग के साथ-साथ 'इन्सुलीन' के इन्जेक्शन भी देते रहना उत्तम समझते हैं। केवल इस इन्जेक्शन से पेशाब मे शक्कर की मात्रा तो घटजाती है किंतु रोग पुन घर दबाता है। अतएव दोनो को साथ साथ चलाने से स्थाई लाभ होते देखा गया है। कुछ चिकित्सक बिल्व पत्र स्वरस के साथ गुडमार स्वरस भी मिलाकर देना उत्तम समझते है।

—प्रोफेसर श्री राधाकृष्ण पाराशर आयुर्वेदाचार्य

बेल पत्र और नीमपत्र १०-१० नग तथा तुलसीपत्र ५ नग इनको पीस कर गोली बना प्रात नित्य जल के साथ लेते रहें।

नोट—उक्त किसी भी प्रयोग मे लाभ होता है, किंतु पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है।

[२] दाह, तृषा, अम्ल पित्त, अजीर्ण सिरदर्द, अर्शकृत शूलादि पर—दाहपर—बेल पत्र १ या २ तोला को २० तोला जल मे ३ घण्टे तक डुबोकर रखे। प्रति २ घण्टे पर २-२ तोला वही जल पिलावे। आन्तरिक दाह शात होता है।

बिशेष गरमी के कारण या पारद युक्त [कच्ची रसायन] औषधि के सेवन से दाह हो, कठ मे जलन हो, मुखपाक हो तो वेल पत्र का अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर मिश्री मिला प्रात साय सेवन करावे, तथा वेल पत्र पीस कर जल मिला दिन मे ३-४ वार कुल्ले करावे।

मस्तिष्क की दाह पर—पित्त की कुपितावस्था मे रक्त के उष्ण हो जाने से यदि यह दाह तो बेल पत्र पीसकर मोटा लेप करने से लाभ होता है। यह लेप वात की तीव्रता को भी दूर करता है। प्रसूति के वाद स्त्री के मस्तक मे जो वात की तीता होती है; अथवा जो स्त्री परिपूर्ण गर्भावस्था के पूर्व ही प्रसूत होती हैं उसके मस्तक में कभी२ वात की तीव्रता के कारण सिर भारी हो जाता है। आखो मे अधेरा छाजाना, चक्कर आजाना, दाह, प्रलाप, वेहोशी आदि लक्षण होते है। इसे नन्दा वायु का विकार कहते है। ऐसी अवस्था मे भी उक्त प्रकार के पत्र लेप से दोष शमन होकर रोगी को उत्तम निद्रा आती है।

पित्त की कुपितावस्था मे कोमल पत्र की चटनी बना कर खिलाने से भी शाति प्राप्ति होती है, पाचन क्रिया भी ठीक होती है। पत्तो की धनिया, जीरा तथा किंचित सेधा नमक मिला कर चटनी बनाते है। उक्त प्रकार से पत्रो को थोडे जल के साथ पीसकर कपाल पर मोटा लेप करने से प्रलापकी प्रवृति नही होती। तृषा की विशेपता हो तो पत्र स्वरस ३ माशा मे मधु ६ माशा मिला कर ३-३ घण्टे से चटावें।

अम्लपित्त के कारण गले मे, छाती मे जलन हो तो पत्रो को जल के साथ पीस छान कर मात्रा २ तोला तक थोडी मिश्री मिला, दिन मे ३-४ वार पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

अजीर्ण पर पत्र स्वरस १ तोला मे काली मिर्च सेधा नमक १-१ माशा का चूर्ण मिलाकर [यह १ मात्रा है] प्रतिदिन ३ वार सेवन करे।

सिर दर्द पर—पत्र स्वरस से कपड़े को तर कर उसकी

पट्टी सिर पर रखते हैं। सूखने पर पुन स्वरस से भिगो लेते है ।

अर्श पर—खूनी बवासीर पर तन्त्र प्रयोग—

शनिवार के दिन बेल पत्र की २-४ टहनी तोडकर उस समय कमर मे बाधे, जब खून गिर रहा हो। शीघ्र ही रक्तस्राव होना बन्द हो जायेगा। भविष्य मे कदापि न होगा। अर्थात् रोग निमूल हो जायगा।

—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी की गुप्त योग रत्नावली से।

शूल पर—यकृत शूल हो तो-पत्र स्वरस १ तोला मे सेंधा नमक १ माशा मिलाकर दिन मे ३ बार पिलावें।

उदर शूल हो तो पत्र १ तोला के साथ कालीमिर्च ७ नग पीसकर, मिश्री १ तोला मिला, शर्बत बनाकर दिन मे ३ बार पिलावें।

हृदय शूल हो तो-पत्र स्वरस १ तोला मे गोघृत आधा तोला मिला चटावें।

[३] पाडु, कामला, जलोदर, धातुदौर्बल्यादि वीर्य विकार तथा प्रवाहिका पर—ताजे कोमल पत्रो के ढाई से ५ तोला तक रस मे कालीमिर्च का चूर्ण १ माशा तक मिला प्रात साय सेवन करावें। इससे पाडु रोग व कामला मे लाभ होता है। रोगी को शोथ भी हो तो पत्र रस को गर्म कर लेप करे। या पत्रो को जल मे पका कर वफारा देने से पीडायुक्त शोथ दूर होती है। इस उपचार से कामला, त्रिदोषज शोथ, मलावरोध व अर्श मे भी लाभ होता है। —व से।

जलोदर पर—ताजे पत्रो के ढाई से ५ तोला तक रस मे छोटी पीपली का चूर्ण १ या डेढ माशा मिला पिलावे। इस प्रकार प्रात साय सेवन कराने से लाभ होता है।

धातु दौर्बल्य पर—पत्र चूर्ण ३ माशा की मात्रा मे थोडा शहद मिला प्रात साय प्रतिदिन चटावे।

अथवा—नित्य नियमित रूप से पत्र स्वरस मे अथवा पत्रो की चाय मे जीरा चूर्ण और दूध मिलाकर पीते रहने से धातु दुर्बलता दूर होकर शरीर सशक्त बना रहता है। पत्र स्वरस २ से ५ तोला तक लेकर उसमे श्वेत जीरा चूर्ण ६ माशा तथा मिश्री १ तोला और थोड़ा दूध पीवे। २१ दिन तक नित्य एक बार सेवन से लाभ होकर शारीरिक शैथिल्य, चित्त की व्यग्रता, स्मरण शक्ति की न्यूनता एव निद्रानाशादि विकृतिया दूर होती है।

ध्वजभग पर—बेल पत्र १५ नग के साथ बादाम की मीगी २ नग मिला कर पीस छानकर दूध और मिश्री मिला शर्बत बना प्रात साय पीवे।

वीर्य स्राव या स्वप्नदोष पर—बेल पत्र, धनिया और सौंफ सम भाग को कूट कर १ या २ तोला चूर्ण १० तो० जल मे भिगो कर प्रात मल छान कर पिलावें। अथवा उसके कोमल पत्र ११ नग और सौंफ ३ माशा दोनो को पीस छानकर प्रात नित्य पिलावें। अथवा केवल इसी के शुष्क पत्रो के चूर्ण मे समभाग खाड मिलाकर रखलेवें। मात्रा ६ माशा तक प्रात साय ताजे जल के साथ सेवन करावें। इससे प्रमेह एव प्रदर मे भी लाभ होता है।

प्रवाहिका मे—पत्र स्वरस १ तोला मे ३ माशा मधु मिलाकर प्रति ३ घण्टे के अन्तर से चटाते है।

[४]मूत्र, मूत्रकृच्छ्र, छोटी छोटी लडकियो का प्रदर, ज्वर, शोथादि पर—

कास पर—बेलपत्रो को आग पर तवे मे रख जला ले। फिर पीस छान कर १-२ माशा की मात्रा में शहद के साथ दिन मे ३ बार चटावें। इससे दुर्गन्धित कफयुक्त कास, वात पित्त जन्य कास एव कुक्कुर कास मे भी लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर—कोमल ताजे पत्र ६ माशे, श्वेत जीरा ३ माशा और मिश्री ६ माशे एकत्र पीस कर कल्क को खाकर ऊपर से जल पीने से ६ या ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। रोगी की अवस्थानुसार उक्त मात्रा मे न्यूनाधिकता कर सकते है। इससे मूत्र मे जलन होना, मूत्र अत्यल्प होना, तथा मूत्र के साथ वीर्य का जाना आदि विकार दूर होते हैं।

छोटी लडकियो का प्रदर—लडकियो को कृमिदोष के कारण कभी-कभी प्रदर जैसा विकार होता है, योनिमार्ग से लसिका स्राव होता है ऐसी अवस्था मे बेल पत्र रस को शहद के साथ दोनो समय सेवन कराने से शीघ्र लाभ



होता है ।

ज्वर पर—विशेषत कफवात ज्वर अथवा जिस ज्वर मे यकृत की दशा ठीक न हो, या विषम ज्वर की अवस्था मे बेल का अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर, उसमे मधु मिला प्रात साय पिलावे। आत्र ज्वर [टायफाईड] मे तथा सतत ज्वर मे भी इसमे लाभ होता है।

तीव्र ज्वर की प्रलापावस्था मे पत्तो की पुल्टिस बना रोगी के मस्तक पर रखते है। उक्त क्वाथ ग्रन्थिज्वर या प्लेग की हालत में पिलाने से प्लेग का विष दूर होकर आराम पहु चता है। गिल्टी पर इसकी पुल्टिस बाधते है।

कफ प्रकोप की अवस्था मे या तीव्र प्रतिश्याय [जुखाम] की दशा मे, जब छाती कफ से भरी हो, तो पत्तो को पीस, गरम कर छाती पर लेप करने या पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से लाभ होता है। साथ मे उक्त क्वाथ भी पिलावें। इससे सूखी खासी भी दूर होती है।

छोटे बालको के ज्वर में यदि कफ की विशेषता हो, दस्त साफ न होता हो तो पत्तो का अर्क या स्वरस निकाल कर शहद मिला बार-बार चटावें। ज्वर की साघातिक हालत मे या उन्माद की दशा मे रोगी को बेल पत्र से ढक देने से विशेष लाभ होता है।

शोथादि पर—बेल पत्र के रस को छानकर [२ से ३ या ४ तोला] कालीमिर्च चूर्ण [३ माशा तक] मिलाकर पिलाने से त्रिदोषज शोथ, मलावरोध, अर्श और कामला मे लाभ होता है। —व० से०

[५] व्रण, गलगण्ड, नारू, कर्ण विकार, नेत्र विकार, घृत शुद्धि आदि—व्रण पर पत्तो को बिना जल के पीसकर टिकिया बना बाधने से लाभ होता है। गहरे से गहरा घाव भी बिना पके ठीक होता है। दूषित व्रण भी शीघ्र ठीक होता है। अथवा–पत्तों को पीस गरम कर पुल्टिस जैसा बना व्रण या फोडो पर बाधने से वे शीघ्र दुरुस्त होते है। तथा पत्तो को पानी मे पकाकर उस पानी से उनको धोना चाहिए, वे शीघ्र ही शुद्ध होकर भर जाते हैं। मासार्बुद या कैंसर अथवा कार्बन्कल नामक भयकर जहरीले व्रणो के सुधार लिये उक्त प्रकार से पुल्टिस एव व्रण प्रक्षालन के साथ ही साथ नित्य दिन मे ३ बार पत्र रस मात्रा २½ तोला सेवन कराते रहने से भीतर की अशुद्धि दूर होकर कुछ दिनो मे पूर्ण लाभ होता है। ऊपर मधुमेह के विषय मे जो पथ्यापथ्य कहा गया है उसका पालन करना आवश्यक है। एक रोगी को इस प्रकार का दूषित व्रण गर्दन पर पीछे की ओर हुआ था, कई बार डाक्टरो ने आपरेशन एव मलहम पट्टी आदि किया किन्तु वह बार बार अशुद्ध पूय एव रक्त से पूय शोथ युक्त हो जाया करता था। अन्त मे उसे उक्त उपचार से ही ३२ दिन मे पूर्ण लाभ हुआ।

गलगण्ड या गण्डमाला या अपची पर भी उक्त प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है। उक्त प्रकार से पुल्टिस बना बाधना चाहिए। अथवा इसके कोमल पत्तो को पीस उसमे थोडा शुद्ध घी मिला आग पर गरम कर टिकिये बनाकर गडमाला की ग्रन्थियो पर बाधते रहे। इसको नित्य दिन मे दो बार बाधने से कुछ दिनो मे अवश्य लाभ होता है। श्लीपद मे पत्तो का लेप और उक्त उपचार लाभकारी है।

चोट, मोचादि पर–उक्त प्रकार से पुल्टिस बाधे अथवा पत्र रस मे थोडा गुड मिला गरम कर गाढा प्रलेप करे। यदि चोट के कारण जख्म हो तो पत्र रस मे कपास का फाया तर कर दिन मे २-३ बार रखा करें। तथा थोडा थोडा पत्र रस शहद मिलाकर पिलावे।

किसी कीडे के काटने से जलन एव शोथ हो तो दश स्थान पर पत्तो के ताजे रस को बार बार लगाने से शाति होती है। अग्निदग्ध पर भी इस पत्र रस के लगाने से शाति प्राप्त होती है।

शरीर के किसी स्थान मे सुई, कीलादि घुस गयी हो तो उस स्थान पर डठल निकाले हुए पत्तो को पीस पुल्टिस बनाकर कुछ दिन बाधते रहने से वह शल्य भीतर ही गल जाता है। नित्य २-३ बार उसे बाधें। एक बार बाधने के बाद लगभग २ घटे तक बधी रहे, फिर उसे हटाकर २ घण्टे बाद पुन बाधना चाहिये।

चेचक या माता की बीमारी मे जब शरीर मे अत्यन्त दाह एव बेचैनी हो तो पत्र रस मे मिश्री मिला पिलाने से तथा बेल पत्रो का पखा बना कर हवा करने से रोगी को विशेष शाति मिलती है।



नारु या नहरुआ पर—पत्तो को जल के साथ पीस, लगभग ३ तोला कल्क मे कपूर ६ माशा मिला अच्छी तरह घोटकर टिकिया सी वना नारु पर रख ऊपर से वस्त्र की पट्टी वाध देवे। प्रतिदिन ताजी टिकिया वनाकर वाधने से ३ या ४ दिन मे ही लाभ होता है।

नेत्र विकार पर—आखो मे पीडा, शोथ लाली हुये अधिक कीच निकलती हो तो पत्तो को पीस कुछ गरमकर पुल्टिस जैसी वना आखो पर वाधने से लाभ होता है। साथ ही साथ पत्तो के स्वच्छ रस को आख के अन्दर भी डालते रहना चाहिए।

माता [चेचक] के कारण नेत्र ज्योति नष्ट या कम होगई हो तो पत्र-स्वरस १-१ या २-२ बून्दे अन्दर टपकाते रहने से विशेष लाभ होता है।

नेत्र के शोथ, शूल, अभिष्यन्द [आखे आना], अधिमन्थ [अभिष्यन्दजन्य नेत्र रोग Acute orbital Cellulitis] अश्रुस्राव, लालिमा आदि विकारो पर—चक्रदत्त का निम्न योग उत्तम लाभदायक है—अच्छी तरह छना हुआ पत्र रस [४ माशा] मे सेंधा नमक [२ रत्ती] और गौघृत [४ बून्द] मिला, शुद्ध छोटे से ताम्र पात्र मे डालकर एक वडी कौडी मे तव तक मर्दन करे [घोटते रहे] जव तक वह गाढा न हो जावे। गाढा हो जाने पर उसी ताम्रपात्र के मध्य भाग मे उसे एकत्र कर गाय के गोवर के उपले की धूम्रयुक्त धीमी आग से धूपित करें। जव वह रस काला हो जाय तव उसे निकालकर डिविया मे भर रखें। इसे स्त्री के दूध [या गौ दुग्ध] मे मिला पतला कर आखो मे १-२ बून्द, नित्य दो वार डालना चाहिए।

अथवा—भैषज्यरत्नावली का निम्न प्रयोग भी उक्त विकारो पर उत्तम है—पत्र स्वरस के साथ समभाग काजी और सरसो का तेल तथा थोडा सेंधा नमक मिला ताम्र-पात्र मे तावे की मूसली से खूब घोटकर रख ले। इसे आखो मे लगाने से भी नेत्रस्रावादि विकारो मे लाभ होता है। —स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से

नेत्र पाक एव नेत्रशूल पर—वेल पत्र और तुलसी पत्र रस १-१ भाग तथा स्त्री का दूध दो भाग एकत्र कासे की थाली मे नागरवेल [ताम्बूल] के पान के साथ तावे की मूसली से [नीम या किसी अन्य लकड़ी के सोटे मे ताम्र पत्र लगवाकर उससे] घोटें। कज्जल जैसा हो जाने पर निकाल कर सुरक्षित रखें। इसके लगाने से लाभ होता है।
—भा मैं र

रतौंधी पर—ताजे वेल पत्र १ तोला को ७ दाने काली मिरच के साथ महीन पीस १० तोला जल मे छान कर उसमे २॥ तोला मिश्री या शक्कर मिला पीवें। प्रात साय तथा साथ ही वेल पत्रो को तोड मरोड कर [कुचल कर] रात्रि के समय किसी पत्थर या काच के प्याले मे जल डालकर भिगोकर रखें। प्रात इसमे आखो को धोते रहे। शीघ्र ही लाभ होगा, आखो की ज्योति भी बढेगी। गरमी के दिनो मे ठण्डे जल मे धोवे तथा शीतकाल मे जल को गरम कर धोना चाहिये। अथवा—

वेल पत्र रस १ तोला, गोघृत ६ माशा और कपूर १ माशा एकत्र ताम्र पात्र मे, तावे की कटोरी से खूब रगडे, काला अजन वन जावेगा। इसे आंखो मे लगाया करे। साथ ही नित्य प्रात साय गोमूत्र से आखो को धोया करे।
—भा गृ चि

कर्ण विकार पर—वेल के कोमल पत्तो को किसी निरोगी गाय के मूत्र मे पीस लेवे। जितना यह कल्क हो उससे ४ गुना तिल तेल तथा तेल से ४ गुना बकरी का दूध मिला कर मन्द आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले। इस तेल को नित्य कानो मे डालते रहने से वहरापन, सनसनाहट [कर्णनाद], कानो की खुश्की, खुजली आदि दूर होती है।

वधिरता विशेष हो तो उक्त प्रयोग के साथ ही साथ निम्न घृत का भी सेवन करें—

गोघृत १ सेर मे वेल पत्र रस तथा अनार पत्र रस १-१ सेर मिलाकर मंद आग पर पकावे। घी मात्र शेष रहने पर छान कर रखले। मात्रा—२ तोला तक गोदुग्ध व मिश्री मिलाकर सेवन करते रहे।

घृत शुद्धि—पुराने एव दुर्गन्धित घृत को सुधारने के लिये जितना घी का वजन हो उसका चौथाई हिस्सा उसमे दही तथा दही से चौथाई वजन के वेल के ताजे



पत्तो की पिसी हुई लुगदी मिला कर मन्द आच पर पकावे। जब घृत कडकडाने लगे तब नीचे उतार ठण्डा कर छानकर मिट्टी की बरनी मे भर लेवे। यह ताजे घी के समान सुगन्धित व स्वादिष्ट होजाता है।

अथवा—१ सेर पुराने दुर्गन्धित घृत मे ८-१० बेल पत्र मिलाकर आग पर गरम कर कडकडा लेने से भी उसका सुधार हो जाता है। —सकलित

मूल और छाल—बेल वृक्ष की जड भूमि मे बहुत गहरी जाती है तथा मजबूत भी अधिक होती है। जड के ऊपर की छाल पीताभ भूरे रङ्ग की तथा भीतर से श्वेत होती है। ताजी जड़ को चीरने से एक पतला रस निकलता है, जो थोडी देर मे गाढा व पीला हो जाता है।

गुण धर्म मे—यह लघु, मधुर, वमन, मूल, त्रिदोष, नाडी तन्तुओ के लिये शामक, कुछ नशा पैदा करने वाली तथा ज्वर, अग्निमाद्य, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, उदर शूल, मूत्रकृच्छ्र, वातव्याधि, आक्षेपक, उन्माद, हृद्दौर्बल्य, अनिद्रा आदि मे प्रयुक्त होती है।

मूल एव छाल मे जो एक तीव्र उद्वेजक सुगन्धित द्रव्य होता है उसका विशेष महत्वपूर्ण एव अनेक रोगो पर अत्यन्त उपयोगी गुण यह है कि वह दाह या किसी प्रकार के क्षोभ को उत्पन्न न करते हुए, शरीरान्तर्गत वातनाडियो एव स्नायुतन्तुओ को उचित उत्तेजना देता है, स्रोतसो को साफ करते हुए, उनकी शक्ति को बनाये रखता है तथा और भी एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि यदि शरीर के किसी भाग मे जहरीला या सडान पैदा करने वाला कोई द्रव्य उत्पन्न होगया हो तो उसे निकाल बाहर करता है, एव उस भाग को सडान से बचाता है। शास्त्रीय भाषा मे उक्त त्रिविध कार्यो को ही त्रिदोषनाशक कहा जाता है।

जिस द्रव्य मे, स्रोतसो का या शरीरान्तर्गत दूषित द्रव्यो का सशोधन करना, वेदना या किसी प्रकार का क्षोभ न करते हुए ठीक-ठीक उत्सर्जन कार्य को करना, तथा सडान क्रिया का प्रतिबन्ध करना ये तीन गुण मुख्यत. हो वह द्रव्य सर्व सामान्यत किसी भी रोग पर औषध रूप से उपयुक्त हो सकता है। कारण शरीर द्रव्यो के दूषित या विषयुक्त हो जाने, या स्रोतसो के अवरुद्ध हो जाने, या अभिसरण अथवा उत्सर्जन क्रिया ठीक योग्य प्रकार सें न होने से ही प्राय रोगोत्पत्ति हुआ करती है।

बेल मूल मे इन सब रोगोत्पत्तिकारक कारणो को नष्ट करने का गुण धर्म पाया जाता है। और विशेषत सन्निपातक स्वरूप के विकारो मे [उक्त सब लक्षणो का अस्तित्व होने से] बिल्व मूल विशेष लाभदायक होता है। यही कार्य करने वाले अन्यान्य औषधि द्रव्यो की अपेक्षा इसमे यह विशेषता है कि यह दाहक या क्षोभक न होते हुये अपना कार्य सुचारु रूप से करता है।

बिल्व मूल के गुणो के समान ही गुणयुक्त, या उसके गुणो के सहायभूत टेंटू [श्योनाक] मूलादि दशमूलो के मिश्रण मे त्रिदोषनाशक गुण इसी तत्वानुसार है। उनमे से बेल, अरणी [अग्निमथ] और टेंटू इन तीनो के मूलो मे यह गुण विशेष प्रमाण मे पाया जाता है। दशमूलान्तर्गत् इन तीन पौधो के मूल विशेष महत्व के है।

प्राय केवल बेल मूल के उपयोग करने का प्रचार नही है। इसके साथ, इसके ही समान गुणकारी अन्य द्रव्यो का एकत्र मिश्रण किया जाता है। दशमूल सेवन कराने का प्राय सर्वत्र विशेष प्रचार है। किन्तु खेद है कि वातविकार और सूतिका विकारो पर दशमूल का जितना व्यवहार किया जाता है, उतना क्षय रोग तथा सन्निपात ज्वर पर नही किया जाता। रूढि के गुलाम बनकर रहना हमे योग्य नही। इन विकारो पर भी चढल्ले के साथ इसका उपयोग अवश्य करना चाहिये।

हमारा अनुभव है, कि क्षय रोग, सन्निपात ज्वर तथा दाहरहित शोथ एव त्वग्रोगो पर बेल मूल या दशमूल का उपयोग उत्तम लाभदायक होता है। सन्निपात ज्वर मे ज्वर चिकित्सा के तत्वानुसार योग्य अवस्था होने पर दशमूल अथवा केवल बेल मूल के क्वाथ को उपयोग विशेष लाभप्रद है। तथा क्षय रोग मे प्रतिवन्ध या प्रतिकार की दृष्टि से दशमूल क्वाथ उत्तम लाभकारी है।

[६] वात विकार, कोष्ठवद्धता, धातुक्षीणता व शोथ पर—

मासपेशी तथा सधियो मे स्रोतसो का अवरोध होने

एव उत्सर्जन क्रिया के कम हो जाने से जो आमवात, सधिवात जैसे विकार पैदा हो जाते है। उन पर अपने उत्तेजक गुण के द्वारा स्रोत सशोधन एव उत्सर्जन कार्य को सपन्न कर विल्व मूल उत्तम लाभ पहुचाता है।

विल्व मूल २½ तोला को कूटकर, २० तोला जल मे विधिवत चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर प्रात साय सेवन कराने से, कोष्ठवद्धता दूर होकर वात विकार शमन हो जाता है।

धातुक्षीणता या वीर्यस्राव पर—मूल का या उस की छाल का रस, मात्रा २ तोला तक निकाल कर गोदुग्ध १० तोला तथा श्वेत जीरा चूर्ण २ माशा एकत्र मिला प्रात साय सेवन करावें। अथवा—मूल की छाल और जीरे को एकत्र महीन पीसकर गोदुग्ध के साथ शुक्रतारल्य एव शुक्रमेह मे सेवन कराते है।

शोथ पर—उक्त प्रकार से इसका चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर दोनो समय सेवन करावे, तथा मूल की छाल का कल्क कर सेक देने से पीडा कम होकर शोथ दूर होती है। इस कार्य के लिये छाल को पीस, गरम कर, वस्त्र मे लपेट कर सेकना चाहिये, फिर उसी गरमागरम कल्क को पुल्टिस जैसा शोथ स्थान पर वाध देवे, अथवा उसका लेप वना गाढा-गाढा लेप कर ऊपर से सेक देवे।

यदि उदर पर अफरा [आध्मान] शूल एव मलावरोध हो, तो मूल के क्वाथ की वस्ति देने से शीघ्र ही लाभ होता है।

[७] प्रसूत विकार, शूल, ज्वर, अतिसार—

स्त्रियो को प्रसव काल या प्रसव के पश्चात् होने वाले शोथ, शूलादि विकारो पर विल्व मूल का लाभदायक गुण स्पष्ट ही है। किन्तु गर्भाशय की अशुद्धि के कारण होने वाले सर्वाङ्ग शोथ, तीव्र ज्वर एव क्षयादि भयकर विकारो पर भी यह उत्कृष्ट गुणदायक है। स्त्रियो की आर्तव दुष्टि या गर्भाशय के शोथादि कारणो से उत्पन्न प्रदरादि विकारो पर भी इसका उक्त प्रकार से क्वाथ आदि का उपचार करने तथा इसके क्वाथ की उत्तर वस्ति देने से परम लाभ होता है। गर्भिणी स्त्री के वातजन्य विकारो पर इसकी छाल और अरणी मूल समभाग का विधियुक्त क्वाथ सेवन कराने से लाभ होता है।

शूल पर—प्रसूता के योनिशूल मे वेल मूल का चूर्ण २ माशा एकत्र मिश्रण कर उत्तम श्रेणी के मद्य के साथ [मद्य १½ तोला] सेवन कराते है।

उदरशूल हो तो, इसके मूल के साथ एरण्डमूल चित्रक मूल, और सोठ का एकत्र जौकुट मिश्रण कर, अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर उसमे २ रत्ती हीग [भूनी हुई तथा सेधव नमक [१ माशा] का प्रक्षेप देकर २½ तोला तक की मात्रा मे पिलाने से तत्काल ही विशेषत वात या कफ जन्य शूल शात होता है। विल्व मूल, एरण्ड मूल आदि उक्त द्रव्यो का कल्क गरम कर उदर पर लेप कर देने से अथवा विल्व मूल, एरण्ड मूल और तिल समभाग काजी के साथ पीस गरम कर लेप करने से भी शूल दूर होता है।

यदि क्वाथ मे अरणी मूल और अडूसा मूल समभाग लिया जाव तो कफजन्य शूल शीघ्र ही दूर होकर जठराग्नि दीप्त होती है। —हारीत

सिर के शूल पर इसकी सूखी हुई जड़ को थोड़े जल के साथ सिल पर घिस कर मस्तक पर गाढा लेप करने से लाभ होता है।

ज्वर और ज्वरातिसार पर—वेल मूल का विधियुक्त अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर दिन मे दो वार सेवन कराने विषम ज्वर मे जव ज्वर का वेग विशेष तीव्र हो तव यह क्वाथ उसे शात कर देता है। इस क्वाथ से हृत्कम्प [हृदय की अत्यधिक धडकन] एव हृद्दौर्बल्य तथा उन्माद मे भी लाभ होता है। यह कटु पौष्टिक है।

ज्वर के अत्यधिक वेग के कारण रोगी को प्यास वार वार लगती हो जीभ पर छाले हो गये हो, या कुनैन के अधिक सेवन से हानि पहुची हो तो उक्त क्वाथ मे मिश्री १ से ३ तोला तक मिलाकर थोडा-थोडा दिन मे चार पाच वार पिलावें।

ज्वरातिसार मे मूल और सौंफ ४-४ माशा एकत्र कूट कर २० तोला जल मे मन्द आग पर पकावे। चतुर्थांश [५ तोला] शेष रहने पर छान कर ठण्डा होजाने पर डेढ तोला मिश्री मिला सेवन करावे। इसमे आम और शूल भी दूर होता है।



[७] क्षय [राजयक्ष्मा], श्वास और वमन पर—क्षय एव श्वास रोग मे सामान्यत शरीर का पोषक रस धातु दूषित हो जाता है तथा रस वाहक स्रोतसों का अवरोध सा हो जाता है। इन कारणो को बेल मूल शीघ्र दूर कर सकता है, इसीसे यह क्षयनाशक माना जाता है। प्रयोग इस प्रकार करे—मूल ढाई तोला, अडूसा पत्र डेढ तोला तथा नागफनी थूहर के पके फल २ तोला, सोठ, कालीमिर्च व पिप्पली २-२ माशा सबको कूट कर आधा सेर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर प्रातः साय शहद मिला सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। श्वास या दमा मे भी इस क्वाथ से लाभ होता है। विशेषत श्वास नलिका के प्रदाह के कारण या छाती मे रक्ताधिक्य के कारण अथवा मानसिक दौर्बल्य से जो श्वास होता है; उस पर रामवाण जैसा कार्य करता है।

वमन पर—यदि उक्त कारणो से केवल वमन की शिकायत है तो विल्व मूल के चतुर्थांश क्वाथ मे शहद मिला प्रात· साय सेवन से लाभ होता है। यदि त्रिदोषज वमन हो तो इसकी मूल या छाल और गिलोय के क्वाथ मे शहद मिला सेवन करावे।

[८] बाल रोग, मेद विकार, मूत्र कृच्छ्र, अर्श, रक्त विकार, प्रमेह, नेत्र विकार आदि पर—

बालको के वमन व अतिसार पर—बेल की जड ढाई तोला जौकुट कर ½ सेर जल मे पकावे। १० तोला शेष रहने पर छानकर धान की खीलो का चूर्ण २ तोला और खाड यथावश्यक मिला अच्छी तरह आलोडित कर दिन मे इसकी ४ मात्रायें पिलावे। —व से.

बालक के डब्बा [उत्फुल्लिका, पसली चलना] पर—बेल जड की छाल, नागरमोथा, पाठा, त्रिफला, तथा छोटी व बडी कटेरी के क्वाथ मे पुराना गुड मिलावें। बालक के पेट पर सेक करे और उसके पेट व पीठ पर गरम सलाई से एक विन्दु के बराबर दाग देना चाहिये। —यो र।

मेद विकार पर—इसकी छाल, अरणी की छाल, अरलु, खभारी तथा पाढल की छाल के क्वाथ ४ तोला शहद ६ माशा मिला कर सेवन करामे से कुछ दिनो मे लाभ होता है। —शा ध

मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी जड को कूट कर रात्रि के समय जल मे भिगो, प्रात मसल छान कर मिश्री मिला पिलाने से कष्टपूर्वक पेशाब होना, मूत्र मे जलन, चिनग आदि शिकायतें दूर होती है। अथवा निम्न गद निग्रहोक्त क्वाथ का सेवन उत्तम लाभदायक है।

बेल की जड और अमलतास की जड प्रत्येक २½ तोला एकत्र कूट कर ½ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रतिदिन प्रात सेवन कराने से ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

उक्त दोनो प्रयोग सुजाक [पूयमेह गनोरिया] पर भी लाभकारी है। साथ ही साथ बिल्व मूल क्वाथ की उत्तर वस्ति भी देनी चाहिये।

अर्श पर—रोगी के मस्सो मे विशेष वेदना हो तो जड का क्वाथ तैयार कर, सुखोष्ण हो जाने पर उसमे रोगी को बैठालने से शीघ्र ही वेदना दूर होती है।

रक्त विकार व प्रमेह पर—अशुद्धि के कारण रक्त मे जो कृमि पैदा होकर नाना प्रकार के त्वक रोगो को उत्पन्न करते है। उन्हे विल्व मूल नष्ट कर रक्त को शुद्ध करता है। उदर के कृमि विकार को यह दूर नही कर सकता। इसकी जड २½ तोला और गोखुरू १ तोला दोनो को कूटकर उवलते हुये १० तोला गरम जल मे भिगो देवे। ठण्डा हो जाने पर उसमे थोडी मिश्री मिला पिलावे। दोनो समय इस प्रकार सेवन कराने से रक्त शुद्धि होती है। तथा इस प्रयोग से नवीन प्रमेह की शिकायत भी दूर होती है।

रक्त विकृति के कारण शरीर पर फुसिया, फोडे हो तो जड को पीस कर या इसकी शुष्क लकडी को जल मे घिस कर लेप करने से जलन, सूजन और लाली दूर होती है।

रक्त मे बाह्य विष के प्रविष्ट हो जाने पर इसकी जड के साथ कैथ की और चौलाई की जड एकत्र कूटकर रस निकाल बार-बार पिलाने से विष दूर होकर रक्त शुद्ध हो जाता है। सर्पदश पर भी यह इसी प्रकार

पिलाया जाता है। साधारण विष बाधा पर केवल इसकी ही जड को जल मे पीस, छानकर बार-बार पिलाने से लाभ होता है।

नेत्र विकार पर—नेत्र मे पटल या नीलिका [नेत्र दृष्टिगत रोग एक प्रकार का तिमिर या मोतिया बिंदु की प्रथमावस्था] विकार हो तो, इसकी जड के रस को बालक के मूत्र मे मिलाकर आजने से लाभ होता है।*

—स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से।

बेल के फूल, बीज और लकडी—फूलो मे तृष्णा[प्यास] अतिसार और वमननाशक गुण है। इनके सूघने से सर्दी, जुकाम, नजला मे लाभ होता है। इससे मृदुता [नरमाई] आती तथा मन प्रसन्न होता है। फूलों से मधुर गन्ध का इत्र बनता है।

[१०] तृष्णा, वमन तथा अतिसार पर—यदि केवल तृष्णा या वमन से रोगी पीडित हो तो ताजे या सूखे फूल ३ माशा लेकर १० तोला जल मे भिगो मसल छानकर उसमे मिश्री २ तोला तक मिला पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

यदि साथ मे अतिसार भी हो तो उक्त मिश्री मिले हुये पुष्प रस मे ईसबगोल की भूसी २ माशा तक मिला बार बार पिलावे।

बीज—उष्ण वीर्य, अत्यन्त वातनाशक तथा रेचक है आयु तथा शरीर की वृद्धि करने वाले है। ये सब गुण प्राय इसके तेल मे हैं।

डा० दत्त और डा० दीक्षित ने अन्वेषण कर इसके विषय मे लिखा है, कि बीजो को कुचल कर उनका पेट्रोलियम ईथर में एक्स्ट्रेक्ट बनाया गया। उसमे से एक पीले रग का तैल जैसा तत्व प्राप्त किया गया। इस तैल मे बहुत ही उत्तम विरेचक तत्व होते है। तथा १½ ग्राम की मात्रा मे लेने से यह बहुत ही उत्तम विरेचक असर बतलाता है।

[११] प्रमेह, सुजाक नाशार्थ, बुद्धि वर्धनार्थ एव हृदय मस्तिष्क व कर्ण विकारो पर तथा कल्प रूप मे तैल प्रयोग-पके या अधपके बेल के फलों को लेकर कुचल कर जल मे डालकर उबाल लेवे। गूदे से बीजो के अलग हो जाने पर उन्हे निकाल व शुष्क कर महीन चूर्ण कर त्रिफले के क्वाथ की ७ भावनायें देकर सुखाकर चूर्ण का कोल्हू द्वारा तैल निकलवा दे। पश्चात् तैल को ऐसे मृत्पात्र मे जिसमे घृत रखा जाता हो उसे अच्छी तरह साफ कर भर कर पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर एक महीने तक जमीन मे गाडकर रखे। इस विधि से प्रस्तुत किया हुआ वह तैल विशेष लाभकारी होता है।

वमन विरेचनादि से शरीर शुद्धि के पश्चात् प्रथम दिन उक्त तैल को ८ रत्ती [१ माशा] की मात्रा मे [२० तोला तक पकाकर ठडा किया हुआ गोदुग्ध या धारोष्ण गोदुग्ध मे मिलाकर] पिलावे। इसी प्रकार प्रति दिन ७-८ रत्ती तैल बढाते हुए, दसवे दिन १० माशा में पिलावे। दूध का प्रमाण बढाने की आवश्यकता नहीं। फिर उसी प्रमाण से तैल की मात्रा घटावें। सेवन काल मे तैल के पच जाने पर पथ्य रूप मे प्रतिदिन केवल चावल [शाली चावल हो तो उत्तम] का भात और गोदुग्ध का सेवन करे। इस प्रकार नियम एवं पथ्यापथ्य पूर्वक तैल के प्रयोग से प्रमेह एव पूयप्रमेह [सुजाक] का भयकर रोग नष्ट हो जाता है। शरीर मे शक्ति तथा नेत्रो की दृष्टि शक्ति मे विशेष वृद्धि होती, तथा कानो की बधिरता एव अन्य कतिपय वातरोग दूर होते है।

उक्त कल्प प्रयोग का प्रारम्भ शुभ दिन मे विशेषत शीतकाल मे किसी भी मास की कृष्णपक्ष अष्टमी या चतुर्दशी मे, पुष्प योग में, मकान के शुद्ध कमरे मे रहते हुए करने से और भी अधिक लाभ होता है।

अथवा—पके हुये बेल फलो के उक्त प्रकार से बीजो का चूर्ण कर [त्रिफला-क्वाथ की भावना न देकर] केवल तिल तैल मे १५ दिन भिगोकर पाताल यन्त्र द्वारा तैल निकाल रखें। यह भी बुद्धिवर्धक एवं हृदय और मस्तिष्क को लाभदायक है। इसकी कुछ बून्दे कान मे टपकाते रहने से कुछ दिनो मे बहरापन दूर होजाता है। कर्णपीडा भी दूर

*"बिल्वमूल रसो बाल मूत्र युक्तोऽक्षि वेगत । पटल नीलिका हन्ति कुभृत्क- स्वामित बचा ॥" —हि वैद्यक

होती है। सिर पर लगाते रहने से कफवात सम्बन्धी पीडा दूर होती है। शक्कर के साथ अथवा गोदुग्ध मे इसकी कुछ बूंदें नित्य सेवन करते रहने से बुद्धि बढती, तथा हृदय की कमजोरी दूर होती है।

[१] योनिशूल पर—निम्न योग-रत्नाकर का प्रयोग उत्तम है। इसके बीज [२ भाग] तथा भागरे के बीज [१ भाग] दोनो एकत्र पीस कर रखें। इसे उचित मात्रा मे मद्य [या मृत सजीवन सुरा] के साथ सेवन करने मे स्त्रियों के योनिशूल का विकार शीघ्र दूर होता है।

लकडी—वैज्ञानिको के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि बेल काष्ठ की राख में पीछे रासायनिक संगठन मे वर्णितानुसार अन्य द्रव्यों के अतिरिक्त फास्फेट आफ लाइम (phosphates of lime) और फास्फेट आफ आइरन (phosphates of iron) ये दोनों बलवर्धक पदार्थ थोडे परिणाम मे प्राप्त होते हैं। अत धातु क्षीणता मे बेल काष्ठ की भस्म लाभदायक है। इसे उचित मात्रा मे शहद के साथ चटाते है।

[१३] बधिरता नाशार्थ—बेल की साधारण मोटी लकडी एक या दो अगुल लम्बी लेकर उस पर तिल तेल से तर किया हुआ रेशमी वस्त्र लपेट कर उसके नीचे का सिरा जलावें जो तेल टपके उसे कलईदार या चीनी मिट्टी के प्याले मे या कटोरी मे ग्रहण कर शीशी मे भर रखें। इसकी दो तीन बूंदे नित्य कान मे टपकाने से कुछ दिनो मे बहिरापन दूर होजाता है। इससे कान की पीडा भी दूर होती है।

सूतिका ग्रह मे बाल ग्रह की शाति के लिये इसके काटो की या लकडी की धूनी दी जाती है।

कई जगह इसकी लकडी चन्दन की लकड़ी के समान मानी जाती है। इसे घिसकर चन्दन की तरह मस्तक पर लगाते हैं। यह यज्ञीय वृक्ष माना जाता है अत इसकी लकड़ी हवन की समिधा मे ली जाती है।

—स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से।

नोट—मात्रा-बेल गिरी का चूर्ण [ढक्कनदार शीशी में रखा हुआ] १½ से ३ माशा वा अधिक से अधिक २ तोला तक। पुष्टि के लिये तथा ज्वर एव रक्त विकार नाशार्थ यह चूर्ण १या २ माशा। फल का ताजा गूदा बडों के लिये एक दिन मे २ से ४ तोला तक। छोटो को अवस्थानुसार चूर्ण या गूदा कम प्रमाण मे देवें।

पत्र स्वरस २ तोला तक। क्वाथ के लिये इसकी शुष्क छाल का चर्ण २ तोले लेवे। फाण्ट के लिये ३-५ माशे लेवें। पान का शर्बत २-४ तोला प्रवाही सत्व ६० से १२० बूद तक।

ध्यान रहे पके बल के खाने को प्राय २ घण्टे बाद उसका उदर मे पाचन होता है।

इसको अधिक लम्बे समय तक निरन्तर किसी न किसी रुप मे अधिक प्रमाण मे सेवन से आन्त्र निर्बल होकर वात प्रकोप तथा अर्शादि रोग होने की सम्भावना है। यह अवरोधजनक [अभिष्यन्दी] एव मन्दाग्निकारक हो जाता है। एक साथ एक ही समय मे इसे अत्यधिक मात्रा मे नही लेना चाहिये।

इसके अधिक खाने से मन्दाग्नि, आध्मान आदि विकार होने पर खाड का शर्बत पिलावें। इसका दर्प नाशक, हानिनिवारक खाड है।

भूतकाल मे भारत आये हुये यूरोपियन डाक्टर औषधि रूप मे बेल का इतना अधिक उपयोग करते थे कि अन्तत ब्रिटिश फार्माकोपिया मे बेल से निर्माण की हुई औषधियो को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। किंतु अब गत लगभग ५०-६० वर्षो से वे सब निकाल दी गई हैं। इसके स्थान मे जिन औषधियो का समावेश किया गया गया है वे तत्क्षण लाभकारी तो हैं किंतु उनसे होने वाला लाभ चिरस्थायी नही होता।

आषाढ मास मे बेल का खाना निषिद्ध ही कहा है—"चैती गुड वैशाखे तेल। जेठे राह असाढे बेल॥" आषाढ मास यह वर्षा ऋतु का आरभ सूचक पूर्वरूप है। इसी मास से जठराग्नि का शनै शनै मन्द होना प्रारम्भ होता है अत बेल जैसे गुरुपाकी द्रव्यो का सेवन वर्जित किया गया है।

विशिष्ट योग —

[१] विल्वादि चूर्ण—वेलगिरी, मोचरस, सोठ, जल से धोकर सुखाई हुई भाग और धाय के पुष्प १-१ भाग, धनिया २ भाग तथा सौंफ ४ भाग लेकर प्रथम गिरी, सोठ व मोच रस को सरौते से छोटे छोटे टुकडे कर सब द्रव्यो को एकत्र मिला कर कडाही मे मन्द आच पर सौंफ की थोडी सुगन्ध आने लगे इतना सेक देने के पश्चात् कूटकर कपडछन चूर्ण कर रखे। मात्रा १-३ माशा ठडा जल अनार का रस या छाछ के साथ, दिन मे ४-५ वार ३ या ४ घटे के अन्तर से देवें।

यह योग उत्तम पाचन, दीपन एव ग्राही है। अतिसार मे केवल इसे ही या रस पर्पटी के साथ मिलाकर देवें। प्रवाहिका पेचिस[मरोड के साथ आव और रक्त मिला हुआ दस्त आना]पर थोडा घी और एरण्ड तेल लगाकर सेकी हुई छोटी हरड का चूर्ण सम भाग मिला कर उनके सौफ या ईसवगोल के लुआव के साथ देवे। प्रवाहिका के लक्षण जैसे२ कम होते जावें तैसे२ हरड़ चूर्ण का प्रमाण कम करना चाहिये। ग्रहणी रोग मे रसपर्पटी, पचामृत पर्पटी, सुवर्ण पर्पटी आदि र्पटी के योगो के साथ मिला कर देवे। अतिसार मे आरम्भ से रोग अच्छा होने तक किसी भी अवस्था मे इसका प्रयोग कर सकते है। —सिद्धयोग सग्रह

[२] विल्व पचक [क्वाथ]—वेलगिरी, सरिवन, [शालपर्णी], पिठवन [पृश्निपर्णी[, खरेटी और अनार का छिलका इनका क्वाथ अतिसार, ज्वर तथा वमन पर हितकर है। भै र।

विल्व पचक [चूर्ण]—वेलगिरी, मोचरस १०-१० भाग, आम की गुठली ७ भाग, जायफल दो भाग और अफीम १ भाग इनका चूर्ण २½ माशा से ५ माशा तक की मात्रा मे देने से चिरकालीन आमातिसार मे लाभ होता है। —नाडकर्णी।

]३] विल्वादि योग—वेल की जड की छाल, तुलसी की मञ्जरी[पुष्प],करञ्ज के फल, तगर, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी और दारुहल्दी सम भाग का महीन चूर्ण कर उसे बकरे के मूत्र मे अच्छी तरह घोट कर, छाया शुष्क कर रखें। यह विषो का नाशक उत्तम अगद है। इसका अञ्जन लगाने, उसकी नस्य देने तथा उसे जल के साथ पिलाने से सर्प, मकडी विच्छू आदि का विष तथा विसूचिका, अजीर्ण और ज्वर एव भूत बाधा नष्ट होती है। —वा भ उ अ ३६।

[४] विल्व फलासव—वेल गिरी का महीन चूर्ण ½ सेर को २० सेर जल मे पकावें। १० सेर जल शेष रहने पर छानकर सधान पात्र मे भर कर उसमे मिश्री ३ सेर धाय पुष्प चूर्ण १ सेर, सोंठ चूर्ण ५ तोला और अफीम १ तोला मिला, पात्र का मुख वन्द कर १५ दिन सुरक्षित रख, छान कर बोतलो मे भर रखें। १ से २ तोला तक रोगी के बलावलानुसार सेवन करावें। जल के साथ यह सर्व प्रकार के अतिसार के लिये परमोत्तम है।

फलासव न २—वमन दाह नाशक

वेल के पके फलो का गूदा ½ सेर लेकर ३ सेर ताजे शीतल जल मे घोल कर छान लेवें। उसे सधान पात्र मे भर उसमे मिश्री २ सेर, धाय पुष्प चूर्ण ½ सेर तथा इलायची, कालीमिर्च, लौंग, नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला और कपूर १ तोला मिला, मुख साधान कर ७ दिन के बाद छानकर काम मे लावें। १ से २½ तोला तक देने से तृषा, वमन, दाह, थकावट एव आमदोष दूर होता है। यह अग्नि प्रदीपक, व रुचिवर्धक है।

विल्व पत्रासव (मधुमेहादिनाशक)

वेल पत्रो को जल के साथ पीस कर वस्त्र मे छानकर निकाले हुये रस १ सेर मे कालीमिर्च चूर्ण ५ तोला और रेक्टीफाइड स्प्रिट १० तोला मिला, बोतलो मे भर मजबूत कार्क लगाकर रखे। ७ दिन बाद काम मे लावें। ३ माशा से १ तोला तक, समभाग जल के साथ प्रात-साय, कुछ नास्ता करने के बाद सेवन से मधुमेह शीघ्र नष्ट होता है। त्रिदोषजन्य शोथ, मलावरोध, अर्श और कामला रोग भी दूर होता है।

[६] विल्वादिघृत—वेलगिरी, चित्रक, चव्य, अदरख समभाग एकत्र जौकुट कर ८ सेर चूर्ण मे ४८ सेर जल मिला चतुर्थांश क्वाथ [१२ सेर] सिद्ध कर, इसमे उक्त चारो द्रव्यो का कल्क १ सेर, बकरी का दूध ४ सेर और

घृत २ सेर मिला पका कर घृत सिद्ध कर लेवें। मात्रा-६ माशा, सेवन से गृहणी एव तज्जन्य शोथ, मन्दाग्नि अरुचि आदि उपद्रव शीघ्र दूर होते हैं। —भै र.

[७] बिल्व तेल—बेलगिरी या कच्चे बेल का गूदा १ सेर को ५ सेर जल मे पकावें। १ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे तिल तेल और आवले का स्वरस प्रत्येक अधा सेर, बकरी का दूध १ सेर तथा कल्कार्थ बेलगिरी २ तोला, लाख, आवला, नागरमोथा, लालचन्दन, तेजपात, प्रियगु, अनन्तमूल, शतावर, बच, सोया, मजीठ, असगन्ध, छोटी इलायची, सरल काष्ठ, तगर, जटामासी, देवदारु, श्वेतचन्दन, व पुनर्नवा ६-६ माशा एकत्र पीसकर मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर एक माह तक बन्द कर रखने के बाद काम मे लावें। इसकी मालिश से दाह, शूल शीघ्र दूर होता है।

नोट—तेल के अन्य शास्त्रीय प्रयोगो को ग्रन्थो मे देखिये।

[८] बेल का मुरब्बा—तरुण या अधपके फलो की गिरी [गूदा] निकाल, स्वच्छ गजी के मोटे वस्त्र मे बाध दोला यत्र विधि से खूब वाष्पित करें [बफार दें]। गूदा खूब मुलायम होजाने पर चूने के पानी मे थोडी देर डाल रखें। पश्चात् निकाल कर अच्छी तरह पोंछ कर गिरी से चौगुनी मिश्री की एकतारी चाशनी मे उसे डाल देवें। साथ ही साथ उसमे जायफल, जायपत्री, इलायची, केशर की मात्रा अन्दाज से महीन चूर्ण कर मिला दे और काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर मुख बन्द कर लगभग दो मास तक सुरक्षित रखने के बाद काम मे लावें। सेवनीय मात्रा एक दिन मे २ से ४ तोला तक है। यह सर्व प्रकार के आमाशय सम्बन्धित विकारो पर लाभदायक है। प्रवाहिका अतिसार मे उत्तम है।

नोट—गिरी या गूदे को वाष्पित करने के लिये एक पात्र मे आधे भाग तक जल भर कर पात्र के मुख पर साफ व मोटा वस्त्र बाधकर उस वस्त्र पर गूदे के कतरे हुये गोल टुकडो को रख किसी ढक्कन से बन्द कर नीचे आग जलावें। जिसमे जलीय वाष्प से ही टुकडे नरम हो जावे। फिर उन्हे मिश्री या खाड की चाशनी मे डाल दें। यदि दूसरे दिन पाक पतला हो जावे तो टुकडो को अलग कर पुन चाशनी का पाक कर ले और टुकडो को उसमे डाल द। उसमे जायफल आदि न मिलाने पर भी उत्तम लाभकारी है।

[९] बेल का शर्बत—बेलगिरी २० तोला को १ सेर जल मे पकावे। ६० तोला तक जल शेष रहने पर छानकर उसमे मिश्री दो सेर मिला, एकतारी चाशनी तैयार कर ले। इसमे केशर, जायपत्री अन्दाज से मिला कर भर रखें। यह शर्बत पित्तातिसार या गरमी के दस्तो को दूर करता है। हैजा मे भी यह दिया जा सकता है। क्षय रोग मे जब कफ गाढा निकलता हो और ज्वर एक समान १०० डिग्री तक बना रहता है तथा बच्चो की कुकर खासी मे और सग्रहणी विकार मे भी यह परम लाभदायक है। ग्रीष्म काल मे सेवनीय है।

मसूढो के विकार मे ५ तोला इस शर्बत मे दूध मिला कर थोडा थोडा घूट घूट कर पीने से मसूढो के असाध्य रोग भी दूर होते है।

कोष्ठ मे मलबद्धता के कारण विशेष उष्णता रहती हो तो बेल का ताजा शर्बत इस प्रकार तैयार कर सेवन कर—बेलगिरी ४ तोला को २० तोला जल मे पीस छान कर उसमे ४ तोला मिश्री मिलाकर पीने से शीघ्र ही एक सौम्य रेचन होकर कोठा साफ होगा तथा उष्णता या दाह दूर हो जाती है।

नोट—कई नाजुक प्रकृति के लोगो को बेलगिरी का चूर्ण या चूर्ण युक्त अन्य औषधि का सेवन करना पसन्द नही आता। उनके लिये उक्त मुरब्बा या शर्बत की योजना करना ठीक होता है।

ग्रीष्म ऋतु मे इसका शर्बत या पानक इस प्रकार तैयार कर पीने से परम शाति प्राप्त होती है। अच्छी जाति के बागी सुपक्व एव मधुर बेल के गूदे को प्रात मिट्टी का हाडी मे रखकर उसमे जल डाल देवे। दिन के समय जब शीतल पेय की इच्छा होती है तब गूदे को अलग कर शेष जल मे खाड मिलाकर पीवे। यह शीतल मधुर सुगधित एव तृप्तिकर पेय हे। यह पेय शीघ्र पाकी एव दीपन हे। —स्वलिखित लेख से।

[१०] विल्व पेय सुजाक पर—बेल का प्रवाही सत्व १ ड्राम, टिंचर क्यूबेक [कबाब चीनी का सुरासार] २० बूंद और जल एक औंस का मिश्रण दिन में ३ बार देवें यह मूत्रल एवं संकोचक प्रभाव युक्त है। चिरकालीन सुजाक [गनोरिया] पर अति लाभकारी है।

—श्री वैद्य पं० माहवदास गौड़ विशारद
पो० बरहा [लहार] भिण्ड म० प्र०

बेलकामू—देखें-सारिवा में। बेलकुम—देखें-मूर्वा में।

बेलन्तर (Dichrostachys Cinerea)

शिम्बी कुल के बब्बुलादि उपकुल [Mimosaceae] के मध्यमाकार कटीले इसके वृक्ष छोकर [शमी] के वृक्ष जैसे ही होते हैं। पत्र भी तैसे ही होते हैं, किंतु पुष्प पचरंगी छोटे-छोटे होते हैं।

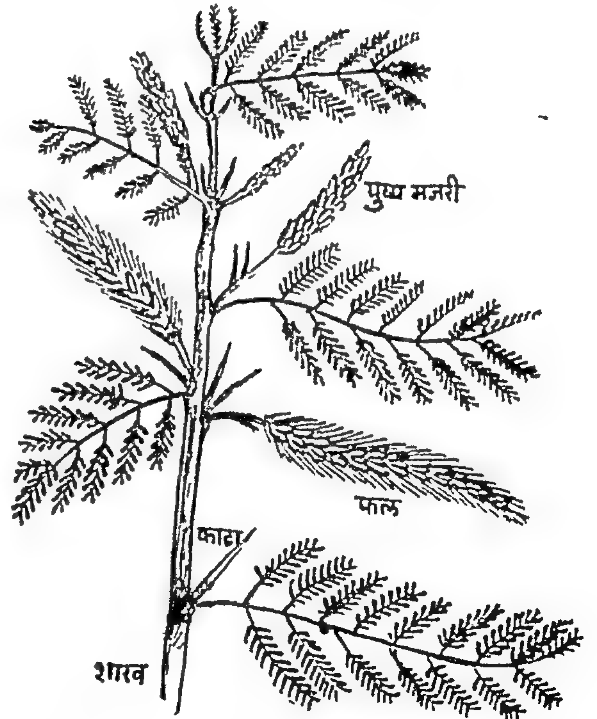
ये वृक्ष उत्तर प्रदेश, राजस्थान, विंध्य प्रदेश मे नर्मदा नदी या अन्य नदी नालो के तटो पर तथा दक्षिण के पश्चिमी घाट पर पाये जाते है।

नाम—

सं—वल्लतरु, दीर्घमूल, वीरवृक्ष आदि। हिंदी—बेलन्तर, वरबेल, खेरी, वरतुली, कानराय इत्यादि। म०—बेल्लतूर। ले०—डिक्रोस्टेचिस सिनेरिया, मिमोसा सिनेरिया [Mimosa cineris]।

तिक्त तीक्ष्ण [चरपरा], उष्ण, कटुविपाक, दीपन, मलरोधक, तथा वातविकार, संधिशूल, योनि रोग एवं मूत्र सम्बन्धी विकारो मे इसका प्रयोग किया जाता है।

नेत्राभिष्यन्द मे-इसके कोयलो को पीसकर नेत्रो पर इसकी लुगदी रखी जाती है।

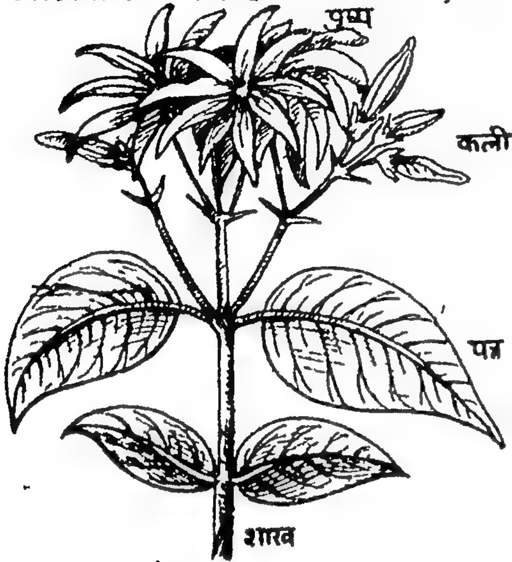


बेलन्तर (बीरतरू)
DICHROSTACHYS CINEREA W.&A.

बेला [मोगरा] (Jasminum Sambac)

पुष्पादि वर्ग एवं पारिजात कुल [Oleaceae] के इस २-४ फुट ऊंचे, खडे क्षुप की शाखायें हरित वर्ण की, लचीली, पत्र-अभिमुख क्रम से, सीधे, अखण्ड, अण्डाकृति किंचित हृदयाकृति, कई सिरा युक्त १½-३½ इंच लम्बे, १-१½ इंच चौडे, चमकीले, हरे, पत्र वृन्त-छोटा, रोमश पुष्प-शाखाओ के अग्र भाग मे पुष्प प्रथम कली के रूप मे कुछ लम्बे गोल, खिलने पर गोल, श्वेत वर्ण के सुगंधित ३-५ या ७ पुष्प गुच्छ के रूप मे, किंतु कभी२ एकाकी भी पुष्प बाह्य कोष लम्बा, हरिताभ, ७-१० दल युक्त, नुकीला ¼ इंच लम्बा, सूक्ष्म रोमश, आभ्यन्तर कोष-बाह्य कोष मे

बेला
JASMINUM ARBORESCENS, ROXB.









जितने दल होते हे उतने ही इसमे होते हे। पखुडिया कुछ तिरछी, फैली हुई कभी कभी दुगुने दल युक्त, पुष्प वृन्त-छोटा, रोमश, फल-गोल ½ इच व्यास के कुछ लम्बे से, पुष्प बाह्यकोष के आवरणयुक्त एव १-२ काले रङ्ग के बीज युक्त होते हैं। ग्रीष्म व वर्षा ऋतु मे पुष्प, पश्चात् फल आते है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र उष्णकटिबन्ध वाले प्रदेशोके बागो मे पुष्पो के लिये लगाया जाता है तथा वनो मे नैसर्गिक भी पैदा होता है। बर्मा, सीलोन मे भी प्रचुरता से होता है।

नोट—[१] इसके अनेक भेद उपभेद ह। उनमे से प्रमुख भेद इस प्रकार है—एक तो यही प्रस्तुत प्रसग का बेला हे। यह वाटिकाओ तथा वनो मे ही अधिकता से होता है। वाटिका मे काट छाट कर लगाये गये इसके पौधे अधिक ऊचे नही, वढते तथा उनके पुष्प प्राय दुगुनी [भीतर बाहर दो तह वाली[पखुडियो से युक्त होने से पखुडियो का गुच्छ सा एव बडा गोल दिखाई देता हे इसमे सुगन्ध अधिक मनोहर होती हे। इसे वटमोगरा सस्कृत मे नवमल्लिका, वार्पिकी, षटपदानन्दा इत्यादि। अग्रेजी मे डवल फ्लावर्ड अर्वेयिन जैस्मीन [Double flowered araben jasmine] लेटिन मे उक्त शीर्षोक्त नाम के अतिरिक्त जेसमिनम लोमोनाई (Jusminum Lomonli] भी कहते हे।

इसका ही एक भेद—

[ब] वासन्ती [नेवारी]—सस्कृत—मधुमाधवी, सप्तला, नेपाली,नवमल्लिका,वासन्ती। हि—नेवारी, बसती निवाडी, म०—नेवाली कुदी, रायनेवाली, कुसार, रोमाली, वीरवन्ती गु—वटमोगरा, वडकूद, नेपाली, ले०—जेसमिनम आर्बोरेसेन्स [Jasminum Arborescens]

इसके भाडदार ७-६ फुट ऊचे क्षुप [जगली नेवारी के वृक्ष इससे भी अधिक ऊचे होते हे] की शाखाये रोमश, पत्र खिरनी के पत्र जैसे, प्राय अभिमुख जोडे२ से, पृष्ठ भाग चिकना, नसो से पूर्ण, किनारो पर तरगायित, लम्बे नोकदार, ४ इच लम्बे, २½ इच चौड़े, पत्रोदर भाग हरा चिकना, पत्र वृन्त ½-¾ इची, पुप्प-प्रत्येक पुष्प दण्ड पर पुष्प ५-७ पखुडी वाले, सख्या मे १२ से २० तक, श्वेत रङ्ग के, मनोरम सुगन्धित स्वाद मे फीके, फल- नीम की निबोली जैसे, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर काले हो जाते है। इसमे प्राय फल बहुत कम आते हैं। ग्रीष्म काल मे पुष्प व वर्षा मे फल आते हे।

यह उत्तर-पश्चिम हिमाचल प्रदेशो मे तथा अवध कुमायू, बङ्गाल तथा दक्षिण के पर्वतीय प्रदेशो मे पाया जाता है।

गुण, धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त व शीतल, त्रिदोष व रक्तविकार नाशक हे। फुफ्फुसावरण की श्लेष्मक कला के कफजन्य अवरोध पर इसके ७ पत्रो को शीतल जल के साथ किंचित काली मिर्च, थोडा लहसुन तथा सहजना की छाल ६ माशा तक

मिला खूब महीन घोट छान कर पिलाने से प्राय वमन द्वारा कफ निकल कर अवरोध दूर हो जाता हे। छोटे वालक को इसके १ या आधे पत्ते को अगस्तिया के ४ पत्तो के साथ घोट छानकर उसमे काली मिर्च व सुहागे का फूला १-१ रत्ती चूर्ण मिला शहद के साथ चटावे। इसके पत्ते कुछ चरपरे, सकोचन, दीपन व पौष्टिक होते है।

योनि शैथिल्य पर—इसके पत्र, असगव व मोचरस के क्वाथ से धोने पर लाभ होता है। —भा भै र।

(C) इसका दूसरा भेद-वन मल्लिका, मदयन्ती भूपदी, अतिमुक्ता (मोतिया, वुटमोगरा, वेल मोगरा) है। पौधा—लता रूप, पत्र व पुष्प—अपेक्षाकृत छोटे, पुष्प एकाकी या इकहरी ५-७ पखडियो वाले, छोटे छोटे, अधिक गोलाकार, मोती जैसे अनेक गुच्छ रूप मे आते है। पुष्पो की कलिया गोल गोल, शोभायमान, मनोहर गन्ध युक्त होती हैं। इसे लेटिन मे जेसमिनम अगुष्टिफोलियम (Jasminum Angustifolium) कहते है। अग्रेजी मे वाइल्ड जेसमीन (Wild Jasmine) म०—रान मोगरा, कुसा, गु०—वट मोगरा, जगली डोलर, व—वनमल्लिका।

यह भारत मे विशेपत समुद्रतटवर्तीय प्रदेशो मे तथा वङ्गाल, मद्रास प्रान्त, दक्षिण प्रदेश, कोकण, महाराष्ट्र प्रान्त, सीलोन आदि मे अधिक पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, मधुर, कषाय, लघु, मदगधी, हृद्य, शीतवीर्य, तथा पित्त, कफ, व्रण, दाह, शोप, त्रिदोपशामक है। दाहशमनार्थ पुष्पो का रस दिया जाता हे। अजीर्णजन्य अतिसार मे पत्र रस पिलाते है। वालको के कफ प्रकोप मे वमनार्थ पत्र रस को शहद के साथ देते है। फुफ्फुस एव श्वासनलिका के शोथजन्य निमोनिया आदि पर इसके पाच पत्तो के रस के साथ सहजने की जड का रस ६ माशा मिलाकर उसमे ७ कालीमिर्च, २-३ लहशुन की कली एकत्र घोटकर मिलावें तथा २ तोला शहद के साथ सेवन कराने मे वडा लाभ होता है। यह तीव्र प्रयोग हे, इससे कफ पतला होकर दस्त व वमन के द्वारा निकल जाता हे। इसकी मात्रा रोगी के वलानुसार देनी चाहिये। छोटे वच्चो के निमोनिया मे—इसके पत्र का चौथाई भाग, कालीमिर्च के २-३ दाने व फुलाया हुआ सुहागा १ रत्ती एकत्र घोटकर शहद के साथ चटाते हैं। दाह पर तथा फफोलेदार फैलने वाली गुजनी (Herpes) पर इसकी जड को वच के साथ नीवू के रस मे घोट कर लगाते है।

विशेप दृष्टव्य—हीना (Jasminum Heyneana) इसी की एक जाति विशेप है। इसका इत्र हिना के इत्र नाम से प्रसिद्ध है।

वन मल्लिका (वन मोगरी)—Jasminum Rettlerianum इसी का एक भेद विशेप है। इसकी झाडीदार लता होती है। पत्र पुष्पादि उक्त मल्लिका के अनुसार ही होते हैं। फल चिकना व काला होता है। यह पश्चिम घाटी पर कोकण से ट्रावनकोर तक अधिक पाई जाती है। इसके पत्र छाजन (एग्झीमा) पर विशेप उपयोगी है।

(D) जिसे हिन्दी, पजावी मे—चम्वा, मोतिया, वनमू, जेहशिंग, म—रानमोगरी, गु—दोजार और लेटिन मे—जेसमिनम आफिसिनेल (Jasminum officinale) कहते हैं, वह इसका या चमेली का भेद विशेप है। यह एक झाडीदार पराश्रयी लतारूप मे होता है। पत्र-३ से ७-७ के गुच्छो मे लगते हैं। पुष्प-श्वेत, सुगन्धित उक्त वेला के जैसे ही होते हे। फल—कुछ लम्वा सा होता है।

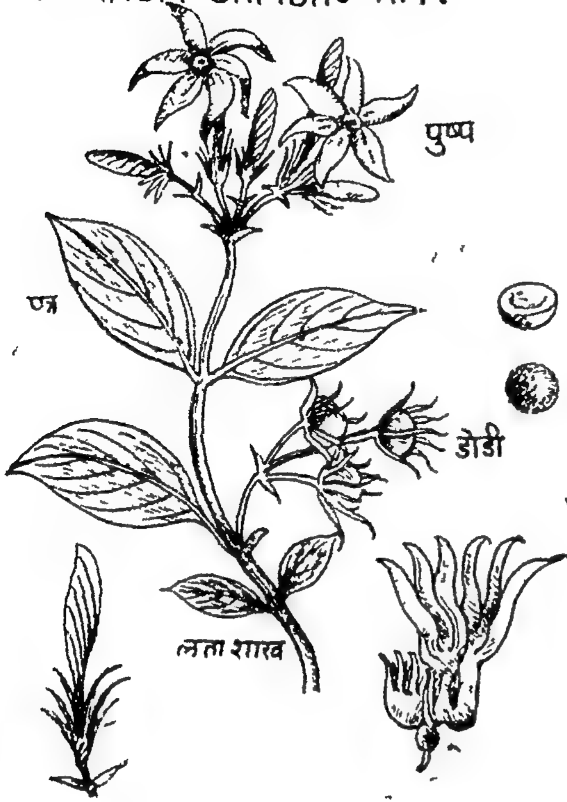
गुणधर्म व प्रयोग—पुष्प—तिक्त, कसैला, कुछ मधुर, शीतल, तथा कृमि, हृदय रोग, मधुमेह, पित्त प्रकोप, दाद, तृषा, चर्म रोग, मुख, दात एव नेत्र विकारो मे उपयोगी हैं। यह कफ और वातकारक है। इसकी जड को घिस कर दाद पर लगाते है।

यह स्नायुमडल को शातिदायक हे। फल-निद्राजनक है। इसमे जसमीन नामक उपक्षार तथा उडनशील तैल पाया जाता हे। इसके सुगन्धित तेल को तिल तेल मे मिलाकर सिर पर मलने मे स्नायुमडल शात होता है।

(E) हरेल चारा—Jasminum Scandens यह भी इसीका एक भेद हे। हरेलचारा यह इसका नेपाली

बेला (रायबेल)

JASMINUM SAMBAC AIT.



नाम है। यह सिक्किम, आसाम, खासिया, नेपाल, बंगाल तथा चितगाव के पहाडो मे पैदा होता है।

इसमे एक कडुवा तत्व पाया जाता है। इसकी जड दाद पर लगाने के काम मे ली जाती है।

(F) कस्तूरी मल्लिका—यह भी इसीका एक भेद है। इसके दो प्रकार हैं—एक लता सदृश तथा दूसरी एरण्ड वृक्ष जैसी। दोनो के पुष्प तथा फल के बीजो मे कस्तूरी जैसी मनोहर गन्ध आती है। गुणधर्म मे यह प्रस्तुत प्रसग के बेला के पुष्प आदि के समान होती है (रा नि) केश मलने के मसाले मे इसका बीज डाला जाता है।

(G) बेलाकुन्द भी इसकी एक जाति विशेष है। इसका सचित्र वर्णन कुन्द के प्रकरण (भाग २) मे देखिये।

(H) बिखमोगरा—Cynanchum odoratissima यह अर्क कुल (Asclepiadaceae) की लतारूप वनौषधि पहाडी देशो मे होती है। बेला (मोगरा) के जैसे ही इसके पुष्प होते हैं। पत्ते चौडे होते है। इसमे छोटे छोटे फल भी आते है। पत्तो का रस बहुत कडुवा होता है। मात्रा—३ से ५ रत्ती तक। अधिक मात्रा मे लेने से विष के समान असर होता हे। वास्तव मे यह विष नाशक है। सर्प विष तथा विषखपरा के विष मे पत्र रस पिलाते है। विष प्रभाव से शरीर मे कही क्षत होगया हो या घाव विषाक्त हो गया हो, या विषहारी फोडा हो तो इसके पत्ते या जड पीस कर उसके साथ कुचले के बीज को घिसकर लेप करते है। सर्दी गरमी से पैरो मे ऐंठन हो तो इसके पत्र रस मे काली मिर्च का चूर्ण मिला दिन मे ४-५ बार लेप करें। —अगद तत्र से

(I) एक एरण्डकुल का दूध मोगरा होता है। जिसका वर्णन हजारदाना मे देखिये।

नोट न २—चरक, सुश्रुतादि प्राचीन सहिता ग्रन्थो मे प्रस्तुत प्रसंग के बेला का विभिन्न पर्यायी नामो से चिकित्सा प्रयोगो मे उपयोग किया गया हे। वाग्भटादि सग्रह ग्रन्थो मे प्राय उन्ही सहिता ग्रन्थो के प्रयोगो को दुहराया गया हे। वाग्भट ने विशेषत इसका जो माल्यधारण के रूप मे प्रयोग दर्शाया है, उसीका पिष्टपेषण अन्य ग्रन्थो मे किया गया है। गदनिग्रहादि पश्चात् कालीन सग्रह ग्रन्थो मे इसका मदयन्ती नाम से विशेषत घृत तैलादि के प्रयोगो मे उपयोग किया गया है।

नाम—

स०—मल्लिका (मल्लयते मूर्ध्नि धार्यते इति, माला के रूप मे धारण किया जाने से, अथवा 'मल्लिर्हंस इव शुक्लत्वत्' हसके जैसा श्वेत होने से)। शीत भीरु (शीत काल मे नष्ट होजाने से) मदयन्ती (महक मदकारी होने से) सौम्या इ। हि—बेला, रायबेला, मोगरा, मोतिया, चम्बा, मुग्रा इ। म—मोगरा। गु—मोगरो, डोलर। ब—बेल, मतिया अ—अरेबियन जेसमाईन (Arabian Jasmine), लिली जेसमाईन (Lily Jasmine)। ले—जेस्मिनम सम्बक।

रासायनिक संगठन—

पुष्पो मे एक सुगधित तैल होता है। इसका इत्र भी बनाया जाता है, जिसे 'इत्र मोतिया' कहते है।

प्रयोज्याग—पुष्प, पत्र व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य (कईशीत वीर्य मानते है), कटु विपाक, वातपित्त (या त्रिदोष) शामक, मेध्य, स्वेदल, चक्षुष्य, विपघ्न स्तन्य शोपण, रोपण, स्तभन (ग्राही), हिक्का प्रशमन, रक्तशोधक, रक्त प्रसादन, वृष्य, गर्भाशयोत्तेजक, तथा शोथ, नेत्र विकार, व्रण, रक्तपित्त, विस्फोट, कण्डु, हृद्रोग, मुखरोग, वेदना, आमदोष, दाह, शोष आदि मे प्रयुक्त होता है। इसके गुणधर्म प्राय चमेली जैसे हैं।

गरमी के दिनो मे इसके ताजे सुविकसित पुष्पो को थोडी देर के लिये, ठडे जल के मटके मे डालकर उस सुगधित जल के पीने से तृषा शात होकर मन प्रसन्न होता है।

पाश्चात्यमतानुसार—यह शोणितस्थापन, शोथ नाशन, स्तन्यनाशन, आर्त्तवजनन, तथा रक्त प्रवाहिका, उन्माद, दृष्टिमाद्य, मुखपाक, फोडे फुसी, रक्तातिसार, दुष्टव्रण, निद्रानाश, अर्श, चर्मरोग, कुष्ठ, ज्वर, वमन, हिक्का, कृमि, कर्णरोग, नेत्ररोग नाशक है। साथ ही मूत्रल, मस्तिष्क बल्य, निद्राजनन भी है। मुख्यत इसका प्रभाव स्त्री की आभ्यन्तर जननेन्द्रियो विशेपत गर्भाशय पर तथा स्तन्य एव रक्तसस्थान पर होता है।

पुष्प—शोथघ्न, स्तन्यशोपण, पित्त नाशक है। पुष्पो की मनोहर सुगन्ध से कामवासना जागृत होती है, अत स्त्री सहवास के समय इनकी माला धारण की जाती है। चीन देश मे चाय को सुगधित करने के लिए पुष्पो का प्रयोग करते है। ध्वजभङ्ग, शिश्नशैथिल्य मे पुष्पो का कल्क वस्ति प्रदेश पर रखते है। सामान्य नपुन्सकता मे पुष्पो की माला धारण की जाती है।

(१) स्तन शोथ तथा उन्माद पर—स्तनशोथहर स्तन्य (दुग्ध) शोपणार्थ—प्रसव के पश्चात् कभी-कभी दुग्ध वाहिनियो मे दूध का सग्रह होकर उसकी गाठ सी जमकर स्तन मे सूजन हो जाती है जो पककर स्तन विद्रधि का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार की सूजन प्रसव के बाद सतान के काल कवलित हो जाने से या माता के रुग्ण हो जाने मे या अन्य कारणो से भी होती है। ऐसी दशा मे इसके २-३ तोला ताजे फूलो को स्वच्छ सिलपर बिना जल मिलाये पीसकर स्तन पर मोटा या गाढा लेप लगाकर या पुल्टिस बनाकर बाधते हैं। दिन मे २-३ बार अर्थात् ४-४ घण्टे से पुराने कल्क को साफकर नये फूलो का लेप या पुल्टिस बाधी जाती है। इससे दूध शोपित हो जाता है, सूजन उतर जाती है, पुन पाक नही हो पाता। स्तन पर शोथ आदि न हो, तथा दूध कम करना हो, तो भी इस प्रयोग से लाभ होता है।

डा० वूड का कथन है, कि उक्त लेप दिन मे दो बार बदलते हुए केवल दो दिन के व्यवहार से ही दूध कम हो जाता है। कभी-कभी २४ घण्टो मे ही दूध अदृश्य हो जाता है। किंतु साधारणत दो या तीन दिनो मे यह बन्द होता है। इससे शोथ नष्ट होकर स्तन पाक का कोई भय नही रहता, तथा पूय निर्माण की प्रक्रिया भी रुक जाती है। केवल दो-तीन फूलो के गाढे रस का लेप करने से भी यही क्रिया होते देखी जाती है। पुष्पो के अभाव मे पत्रो का और जड का भी उपयोग किया जाता है।

उन्माद पर—इसके पुष्प एव पत्र के कल्क तथा उनके स्वरस से सिद्ध किये हुये घृत के प्रयोग से शीघ्र यथेष्ट लाभ होता है।

(२) पुष्पो का तैल—इस तैल मे भी उपरोक्त सब गुण धर्म पाये जाते हैं। इसके पुष्पो से तिल आदि किसी भी उपयुक्त तैलीय द्रव्यो के बीजो को सुवासित कर निम्न विधि से उनका तैल निकाल लिया जाता है। इस तैल मे इसके पुष्पो की सुगन्ध तथा उसके किंचित् गुण भी आ जाते है। किंतु विशिष्ट यत्र द्वारा इसके पुष्पो का जो अर्क निकाला जाता है उसमे इसके सब गुण विद्यमान रहते है। इसके इत्र से सिर दर्द एव मन की उद्विग्नता दूर होती है।

तिल आदि को सुवासित करने की विधि—तिलो को

पानी के छीटे देकर कुछ नरम हो जाने पर किसी कलई-दार पात्र मे प्रथम पुष्पो की एक तह बिछाकर उस पर तिलो को फैला देते है, उस पर पुन पुष्पो की तह दी जाती है। इस प्रकार क्रमश कई तहे देकर उसे मोटे वस्त्र से ढाक कर रखते है। १२ या १८ घण्टो बाद तिलो को एकत्र कर कोल्हू मे पेरवा लेते है।

नाक या कान से दुर्गन्ध स्राव निकलने पर उक्त तैल की कुछ बूदे डालने से शीघ्र ही उत्तम लाभ होता है।

नासार्श पर चक्रदत्त ने जो 'करवीरादि तैल' का प्रयोग दिया है उसमे करवीर (विशेषत. लाल कनेर), चमेली आदि के पुष्पो के साथ इसके पुष्पो की भी योजना की गई है। —सकलित

पत्र—

बेला के पत्र—ग्राही, सकोचक है तथा चर्मरोग, व्रण रक्तातिसार, नेत्र विकार आदि मे उपयोगी है।

(३) व्रण, मुखपाक तथा नेत्र विकारो पर—

व्रण पर—इसके शुष्क पत्तो को जल मे पीसकर पुल्टिस बनाकर बाधने से उत्तम लाभ होता है। दुष्ट व्रण भी दूर होते है।

व्रण के पाक काल मे तीव्र वेदना हो तो इसके ताजे पत्तो को जल से पीस पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने या इसका गाढा लेप करने से वेदना शमन होती है। लेप या पुल्टिस को दो-दो घण्टे से बदलते रहे। अन्य चर्म रोगो पर पत्तो का लेप करते हैं।

मुखपाक पर—पत्तो के क्वाथ से कुल्ले कराने से, या पत्तो को चबाने से मुख के छाले दूर होते है।

नेत्र विकारो पर—पत्तो को पीसकर नेत्रो पर प्रलेप करने से या तिल तैल मे पत्तो की लुगदी तथा पत्तो का रस मिलाकर मन्द आग पर पका, तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखे। इसे आखो मे लगाते रहने से दृष्टिमाद्यादि नेत्र विकारो मे लाभ होता है। विशेषत इस तैल का सिर पर मर्दन करने से उक्त नेत्र विकारो मे लाभ होता है। आखों मे लगाने की आवश्यकता नही।

(४) स्तन्यनाशार्थ तथा रक्तातिसारतथा नाभी के टलने पर—

स्तन्यनाशार्थ इसके पुष्प के प्रलेप का प्रयोग ऊपर दिया गया है। यहा अन्त प्रयोग दिया जाता है—इसके शुष्क पत्तो के साथ, भौंरी के घर की मिट्टी (भृंग कीट जो मिट्टी का घर बनाता है, वह मिट्टी), लज्जालू के बीज, धाय के पुष्प, गेरू, रसाजन और राल इनमे से यथा लब्ध द्रव्यो को लेकर चूर्ण बना दो-चार माशे की मात्रा मे, दिन मे दो बार शहद से चटाते है। यह प्रयोग गर्भिणी स्त्री के योनि मार्ग से श्वेत या रक्तस्राव होने पर विशेष उपयोगी है। —व. गु.।

अनियमित ऋतुस्राव की दशा मे पत्तो का स्वरस १-२ तोला की मात्रा मे थोडा शहद मिलाकर सेवन कराने से लाभ होता है।

रक्तातिसार या रक्त प्रवाहिका पर—

इसकी २-३ तोला कोमल एव ताजी पत्तियो को, जल के साथ पीस छानकर उसमे मिश्री या शक्कर यथा योग्य मात्रा मे मिला पिलाते है। दिन मे २ से ४ बार तक देने से मल के साथ रक्त स्राव या बार-बार मल की प्रवृत्ति कम हो जाती है। —संकलित

नाभी टलने पर—नाभी के स्थानच्युत होने पर उदर वेदना एवं बार-बार मल प्रवृत्ति होती है। ऐसी दशा मे इसके पत्तो का रस गोदुग्ध मे मिलाकर पिलाने से वमन होकर नाभी यथास्थान आजाती है। पीडा तथा मल प्रवृत्ति भी दूर होती है। वमन होने पर दूध भात (चावल) या दूध दलिया खिलावें। —व गु और गा. औ र.

मूल—वेला की जड रक्त शोधक, गर्भाशयोत्तजक, आर्त्तवजनन तथा वृष्य है। रक्त विकारो मे यह उपयोगी है।

(५) रजोरोध या कष्टार्त्तव तथा ध्वजभग और रक्त पित्त पर—इसकी जड का मोटा चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे २२ तोला जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे २-३ बार सेवन कराने से शीघ्र ही ३ दिन मे मासिक धर्म की शुद्धि होकर रज. स्राव कम होना, कष्ट के साथ होना, गर्भाशय मे दर्द होना आदि विकार दूर होते हैं। आर्तव की प्रवृत्ति नियमित हो जाती है।

प्रसूतिस्राव—प्रसव काल मे होने वाले अनियमित रक्त स्राव (Lochia) पर उक्त क्वाथ को या मूल के स्वरस को योग्य मात्रा मे शहद मिलाकर सेवन कराने से प्रसूति स्राव यथायोग्य होकर अपत्यपथ साफ हो जाता है।

ध्वजभग या नपुन्सकता की स्थिति मे जड को जल के साथ पीस छानकर पिलाते हैं। तथा वस्ति प्रदेश पर इसके पुष्पो का कल्क लगाते हैं। —सकलित

रक्तपित्त पर—जड के क्वाथ को छानकर, ठण्डा कर उसमे खाड व शहद मिला पीने मे लाभ होता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण १ से ४ माशा। क्वाथ ५ से १० तोला।

बेलाडोना‡ (Atropa Belladona)

धतूरा या कण्टकारी कुल (Solanaceae) की इस बूटी का सचित्र परिचयात्मक विवरण इस ग्रन्थ के प्रथम भाग के 'अङ्गूर शेफा' के प्रकरण मे दे दिया गया है। यहा उसका प्रयोगात्मक शेषाश दिया जाता है।

इसके पत्र का प्रयोग-चूर्ण, टिंक्चर, घन सत्व तथा द्रव सत्व निर्माण के लिए किया जाता है। मूल का प्रयोग—मलहम, प्लास्टर, लिनिमेंट, गुदवर्ति (Suppository) आदि बनाने के कार्य मे होता है। एट्रोपीन इसका ही क्रियाशील प्रधान सत्व है। यह एट्रोपीन गन्ध एव रग हीन कणो के रूप मे मिलता है। इसके जलीय घोल का प्रयोग इन्जेक्शन द्वारा भी किया जाता है। धतूरे मे भी एट्रोपीन पाया जाता है।

बाह्य प्रयोग—बेलाडोना एव एट्रोपीन का शोषण त्वचा के द्वारा भलीभांति होने के कारण इसका प्रयोग लिनिमेंट [लेप] प्लास्टर आदि रूपो मे किया जाता है। अलकोहल, ग्लिसरीन, क्लोरोफार्म तथा वसा के साथ मिलाकर इसका बाह्य प्रयोग करने से इसके क्षाराभ त्वचा द्वारा चूस लिये जाते है। यदि त्वचा क्षारयुक्त या छिली हुई हो तो यह चूसण क्रिया और भी शीघ्रता से होती है। इसका प्रमुख कार्य त्वचा स्थित सज्ञावह नाडियो के अग्र तन्तुओ पर होता है। जिससे उनका अवसादन होता है। इसीलिये वेदनाहर एवं स्थानीय सज्ञाहर (Local aneasthetic) औषधि के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है। इसके योग से तैयार किया हुआ प्लास्टर फोडे, फुन्सी, गठान, कठमाला की ग्रथिया, दूध के जमाव से हुई स्तनो की सूजन, सधि शोथ आदि रोगो पर लगाने से उनका पकाव नही हो पाता, पूय पैदा नही होना, पूय और दूषित रक्त का प्रतिवन्धकारी धर्म इसका बहुत उत्तम है। आमवात, वातरक्त, सिराओ की सूजन आदि विकारो मे भी इसका प्लास्टर लगाने से शोथ और वेदना कम होजाती है। योनिस्राव मे इसकी फलवर्ती योनि मे रखते हैं।

आतरिक प्रयोग—अत्यल्पमात्रा मे इसका यथायोग्य उत्तम अल्प उत्तेजनात्मक प्रभाव मस्तिष्क केन्द्रो पर या

‡ इस इटालियन भाषा के शब्द का अर्थ है "सुन्दरी स्त्री"। इटली की स्त्रिया अपनी आखो की सुन्दरता वढाने के लिये इसके फल का कुछ मात्रा मे व्यवहार किया करती थी। इस बूटी मे विद्यमान एट्रोपीन नामक तत्व आखो की पुतली का विस्तारक होने से मालूम होता है कि इसका व्यवहार करने वाली सुन्दर स्त्री की आखो की पुतलिया कुछ विस्तृत हो जाने से उसकी आखें नूतन आभायुक्त सुन्दर हो जाती होगी तथा मुखमण्डल की शोभा अधिक वढ जाती होगी। अत इसके पौधे का नाम ही बेलाडोना (सुन्दरी स्त्री) इटली के टर्नफोर्ट (Tournefort) नामक वैज्ञानिक ने रख दिया है।

—Beautiful flowers of Kashmir तथा Chambers Dictionary के आधार से।

इसके प्रभावशाली तत्व का नाम 'एट्रोपीन' यह ग्रीक भाषा के एट्रोपास (Atropos) शब्द से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ है जीवन को समाप्त करने वाला मारक। बेलाडोना विषजनक एव मारक होने से इसे एट्रोपा बेलाडोना कहते हैं।



केन्द्रीय वातनाडी मण्डल पर होता है। किंतु अधिक मात्रा मे प्रयोग करने से यह केन्द्रीय वाताधिष्ठान (Motor Nervous System) को अत्यधिक उत्तेजित कर देता है। जिससे प्रलाप, वाचालता, मानसिक भ्रम, चाल मे लटखडाहट, दृष्टिशक्ति धुधली, कनीनिका का विस्फार होना, नेत्र व चेहरा लाल हो जाना, नाडी तेज एव श्वासोच्छ्वास अपेक्षाकृत शीघ्र होने लगना आदि लक्षण होते है। यदि इसकी मात्रा और भी अधिक हो तो इन लक्षणो मे उग्रता की वृद्धि होकर चित्त भ्रम, ज्ञान शून्यता (Delirium), आक्षेप (Convulsion) मूर्छा या संन्यास (Stupor) की स्थिति हो जाती है। मारफीन (Morphine) या अफीम के सत्व की तरह एट्रोपीन का प्रयोग वेदनाहर औषधि के रूप मे भी होता है।

हृद्रोग एव फुफ्फुस सम्बन्धी विकारो पर—बेलाडोने का प्रयोग बहुत उत्तम होता है। हृदय के बाये अधर पुट की गति को धीमी करने तथा नाडी की तीव्र गति को शिथिल करने के लिये यह विशेष उपयोगी है। इसे हृद्य औषधियो के साथ भी दिया जाता है। इससे हृदय का फूलना भी बन्द होजाता है। हृद रोगो मे इसके आन्तरिक प्रयोग के साथ ही साथ इसकी जड को उबालकर या उसके घन सत्व को जल मे घोलकर हृदय पर लेप भी किया जाता है या इसका प्लास्टर लगाया जाता है। हृत्पीडा, तेज धडकन आदि विकार को दूर करने लिये इसका प्रयोग अफीम की अपेक्षा श्रेष्ठ है। पीडा यदि अत्यधिक हो तो इसे अफीम मे मिलाकर दिया जा सकता है।

इसके सत्व एट्रोपीन का प्रयोग कम मात्रा ($\frac{१}{१५०}$ ग्रेन) मे किया जाय तो वह हृदय की गति को कम कर देता है। किंतु अधिक मात्रा मे या थोडी मात्रा को ही कई बार देने से यह हृद्गति को बढा देता है। किसी कारण हृद्गति अत्यन्त कम (४०-५० प्रति मि) हो जाती हो तो इसका प्रयोग सावधानी से कुछ अधिक मात्रा मे कर रोगी को बचाया जा सकता है। बेलाडोना श्वासनलिका की मासपेशियो के आक्षेप को दूर करता है। साथ ही कफस्राव [Bronchial secretion] को भी कम करता है इसलिये फुफ्फुस शोफ मे (oedema of the lungs) जो कि प्राय सद्य हृदयातिपात मे हुआ करता है एट्रोपिन $\frac{१}{१००}$ ग्रेन का इजेक्शन अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुआ है। श्वास रोग [दमा], श्वास नलिका की सूजन तथा विशेषकर कुकर खासी मे बेलाडोने का उपयोग किया जाता है। इस कार्य मे यह अफीम की अपेक्षा श्रेष्ठ है। अफीम से भी खासी का कष्ट कम हो जाता है। किंतु उसमे श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान मे बहुत अशक्ति आजाती है। कफ पडना कम हो जाता है किंतु इससे उक्त केन्द्रस्थान को उत्तेजना प्राप्त होती हैं उसकी शक्ति बढती है, तथा कास कष्ट होने पर भी कफ पडने मे कमी नही होती। कफ रोगो मे कफ अधिक बढ गया हो तथा खासने की शक्ति कम हो गई हो एव हृदय अशक्त हो गया हो उस समय इसका प्रयोग विशेष लाभदायक होता है।

ग्रथियो पर प्रभाव—शरीर की सभी ग्रथियो के स्रावो को (जो कि विभिन्न कार्यो के सम्पादनार्थ विभिन्न अवयवो से उत्सृष्ट होते है) यह (बेलाडोना एव एट्रोपीन) कम कर देता है या बन्द कर देता है। इसीलिये इसका प्रयोग आमाशयिक व्रण (Gastric ulcer) मे आमाशय स्राव कोबन्द करने के लिये किया जाता है। वस्तुत आमाशय व्रण एव परिणाम शूल की यह एक प्रधान औषधि मानी जाती है। स्वेद ग्रथियो से उत्सृष्ट होने वाले स्वेद को भी यह रोक देता है। अत स्वेदाधिक्य मे इसका प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है। ज्वर मे अथवा क्षय रोग मे अत्यधिक पसीने को रोकने के लिये अकेले बेलाडोने को या यशद भस्म के साथ दिया जाता है। दुग्धस्राव पर इसका विशेष प्रभाव नही होता, किन्तु प्रसवोत्तर काल मे शिशु के मर जाने पर स्तनो मे दुग्ध भार को कम करने के लिये इसके लेप का प्रयोग किया जाता है और उपयोगी भी सिद्ध हुआ है। इससे स्तनो की सूजन दूर होती है। यह मूत्रस्राव को नही बन्द कर सकता। अधिक मात्रा मे इसका प्रयोग करने पर मूत्राशयघात (Bladder paralysis) होकर मूत्राघात की दशा पैदा हो जाती है।

फिर भी यथोचित मात्रा मे प्रयोग करने से यह मूत्र

सम्बन्धी कई शिकायतो को दूर करता है। इसके तत्त्व मूत्र मार्ग से ही बाहर निकलने के कारण मूत्र मार्ग की वेदना, सकोच विकास की कमी, स्वप्न दोष, नीद मे मूत्र होना, आदि विकार दूर हो जाते है। अश्मरी मे भी यह कुछ अश मे लाभ पहुचाता है। गर्भाशय की पीडा को भी यह दूर करता है। इन विकारो मे इसका भीतरी व बाहरी दोनो प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

नेत्र रोग—एट्रोपीन का प्रयोग नेत्र विकारो मे कम किया जाता है। प्राय होमेट्रोपीन (जो इसकी अपेक्षा कम विषैली होती है) उपयुक्त होती है। एट्रोपीन का प्रयोग गुटिका, वटी या द्रव (घोल) के रूप मे किया जा सकता है।

विशेष दृष्टव्य—वेलाडोना को अधिक मात्रा मे छोटे बच्चे सहज ही मे सहन कर लेते है, किन्तु वृद्धो पर इसका प्रयोग क्रमश अल्प मात्रा मे ही करना ठीक होता है। प्राय वे इसे विशेष सहन नही कर पाते। अत सावधानी से क्रमिक मात्राओ के उत्तरोत्तर अभ्यास से इसके प्रति थोडी सात्म्यता उनमे पैदा की जा सकती हे। कुछ लोगो को यह प्रकृत्या असात्म्य होता है। उन्हे अल्प मात्रा मे भी इसके प्रयोग से कुछ न कुछ उपद्रव (यथा त्वचा पर चकत्ते, त्वचा रक्त वर्ण की होना, ताप का वढना, हृत्स्पन्द, मुख व गले मे रूक्षता आदि) पैदा हो जाते है। इस प्रकार की असात्म्य रुपी प्रवृत्ति किसी विशिष्ट कुटुम्ब के सभी जनो मे पाई जाती हे। ऐसे लोगो को या पित्तप्रकृति वालो को इसका प्रयोग नही करना चाहिये। या अत्यन्त सावधानी से करना चाहिये। कई विषो के लिये एट्रोपीन एक अत्यन्त उपयोगी औषधि है। यह स्वय विष होते हुये भी "विषस्य विषमौषधम्" इस उक्ति के अनुसार दूसरे महान विषो का प्रतिविष हे। अफीम, मारफीन, पिलोकारपीन, वछनाग, क्लोरोफार्म, हाइड्रोसायनिक एसिड इत्यादि कई विषो के मारक उपद्रवो मे इसका प्रयोग रासायनिक प्रतिविष (Chemical antidote) के रूप मे किया जाता है। एट्रोपीन का इजेक्शन प्राय मारफीन के साथ मिलाकर दिया जाता है। इसमे दो लाभ होते है—१-शामक प्रभाव की वृद्धि होती है। २-एक दूसरे का प्रतिविष होने से विषप्रकोप या विषमयता की सभावना विल्कुल नही रहती।

वेलाडोने का विषाक्त प्रभाव एव उपचार—अधिक मात्रा मे इसके सेवन से इसके विषाक्त प्रभाव के रूप मे मुख मण्डल लाल हो जाना, मुह सूख जाना, स्वरभेद, अधिक तृषा, आखे लाल होना, पुतलिया प्रसारित होना, त्वचा शुष्क व उष्ण होना, शरीर का तापक्रम वढ जाना, नाडी का पहिले मन्द होना, पश्चात् तीव्र व दुर्बल होना, श्वास क्रिया का पहले मन्द होना बाद मे गहरी एव शीघ्रता से होना, चलने मे लडखडाना, शिरोभ्रम, प्रलाप, पश्चात् तन्द्रा, अन्त मे मूर्च्छा होकर मृत्यु होना, कभी-कभी मृत्यु के पूर्व आक्षेप होना आदि लक्षण होते हे।

वेलाडोने की घातक मात्रा ६० बूद तथा एट्रोपीन सल्फेट की $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक हे। घातक काल २४ घण्टे। मृत्यूत्तर रूप मे समस्त आभ्यतरिक अगो मे रक्ताधिक्य तथा श्वासावरोध के चिह्न मिलते है।

चिकित्सा—इसकी सम्पूर्ण चिकित्सा धतूरे के विष जैसी ही की जाती है विशेषत मैनफल, रीठा, राई आदि किसी भी एक वामक द्रव्य को जल मे घोलकर पिलावे तथा उगली की सहायता से वमन करावे। उदर पम्प के द्वारा आमाशय द्रव्यो को बाहर निकाले, आक्सीजन देवे प्रलाप दूर करने के लिये सिर पर बर्फ की थैली रखे उत्तेजक औषधि देवें। कृत्रिम श्वसन क्रिया करावे, टैनिन चाय, चारकोल या मारफिन $\frac{1}{3}$ ग्रेन दे। इसके विष का नि सरण मूत्र मार्ग द्वारा होता है। अत मूत्राशय को शलाका द्वारा खाली करते रहे। —सकलित

सामयिक विशिष्ट प्रयोग—

[१] वातज वेदना पर—(लिनिमेट) लिक्विड एक्स्ट्रेक्ट वेलाडोना दस औस, कपूर १ औंस, बाष्प जल २ औस और आल्कोहल २० औंस तक लेकर प्रथम कपूर को आल्कोहल ६ औस मे मिलो द्रव करे। फिर सव को मिलाकर २० औस लिनिमेट [मर्दन] तैयार करे। इसे २४ घण्टे रखकर छान लेवे। इसका उपयोग वेदना निवारण के लिये मर्दन रूप मे किया जाता है। वातज शूल

एव वेदनायुक्त रोगो मे यह विशेष उपयोगी है। गृध्रसी आदि वात रोगो पर मर्दन करने से वेदना दूर होती है। हृदय शूल मे हृदय पर भी मर्दन किया जाता है। राजयक्ष्मा मे वक्ष प्रदेश की मासपेशियो से उग्रता तथा त्वचा मे स्पर्श शक्ति की अधिकता होने पर इसका उपयोग किया जाता है। एव प्लास्टर भी लगाया जाता है। स्तनो मे वेदना होने पर इसकी मालिश सत्वर लाभ पहुचाती है।

[२] कर्णशूल पर—इसका अर्क [टिंक्चर वेलाडोना] १ भाग मे ग्लिसरीन ४ भाग मिलाकर रखे। इसकी २-४ बूदे दिन मे दो बार कान मे डालने से शीघ्र लाभ होता है। —रसतंत्रसार।

[३] गुदभ्रंश पर—वेलाडोना ४ तोला, ग्लिसरीन २ तोला और गेरू का महीन चूर्ण १ तोला इनको एकत्र खरल में खूब घोट कर रख लो। प्रथम गुदा को गरम पानी से अच्छी तरह धो पोछ कर तथा थोडा सा घृत चुपडकर गुदा को भीतर कर, ऊपर से यह लेप एक साफ कपडे पर लगाकर गुदा पर रख देवे। ऊपर से लगोट कस दे। इस प्रकार २४ घण्टे मे दो वार करे। पथ्य मे सादा ताजा तरल भोजन दाल दलिया आदि देवे। यह प्रयोग योनिकन्द [योनि बाहर की ओर निकल आना] पर भी लाभकारी है। —आ चिकित्सक

(४) अर्श पर—एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना, वेसलीन, कपूर, नीम का तैल लेकर प्रथम नीम तैल मे वेसलीन मिलाकर कुछ गरम करें। पिघलकर एक दिल हो जाने पर उसमे शेष द्रव्यो को मिला एक जीव करले। इसे अर्श के मस्सो पर लगाकर सेंक देने से विशेष लाभ होता है, शोथ तथा पीडा दूर होती है। शरीर के किसी भी भाग मे शोथ तथा पीडा हो तो इसके मर्दन से दूर होती है। इसे यूनानी मे मरहम नायाव कहते हैं।

प्रमेह पर—एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना और अफीम ३-३ माशा, मेथीलेटिड स्प्रिट ५ तोला सबको एकत्र खरल कर २-३ दिन धूप मे रखे। आवश्यकतानुसार रुई से शिश्न पर लगाने मे यह तिला शिश्न की त्वचा मे बेहोमी पैदा कर प्रमेह को लाभ पहुचाता है, उत्तेजना को कम करता है। इसे यूनानी मे 'मुखदर' [सुप्ति तिला] कहते हैं।

—यूनानी चि० सा०।

नोट—यूनानी के 'दवाये मनूम' मे इसकी जड का चूर्ण मिलाया जाता है।

(६) वेदनाशामक वेलाडोनासव—इसके पत्तो का जौकुट चूर्ण २½ तोला मे मद्य (रेक्टिफाइड स्प्रिट) २½ रत्तल (पौंड) मिलाकर काच की बोतल मे दृढ काग लगाकर रख देवे। ७ दिन वाद छान लेवे।

मात्रा—५-१५ बूद तक जल के साथ सेवन से श्वास विकार एव अन्य वात कफ जन्य वेदना शमन होती है। कम्प, अपस्मार, योषापस्मार (हिस्टीरिया), कुक्कर कास आदि रोगो को भी यह दूर करता है।

—स्वकृत (वृहदासवारिष्ट संग्रह)

नोट—मात्रा—शुष्क पत्र चूर्ण ¼ से ½ रत्ती तक। एट्रोपीन सत्व वेलाडोना [यह रङ्ग एव गधहीन कणो के रूप मे होता है। इसके जलीय घोल का प्रयोग इन्जेक्शन मे भी किया जाता है।] मात्रा $\frac{1}{240}$ से $\frac{1}{60}$ ग्रेन तक।

टिंक्चर वेलाडोना ५-३० बूद। एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना लिक्विड ¼-१ बूद।

नोट न० २—

लक्ष्मणाकन्द—यह भी वेलाडोना का एक भेद है।

इसे भारतीय वाजार मे लछमना, लछमनी, म० गु० संस्कृत और बगला मे लक्ष्मण, अंग्रेजी मे मेण्ड्रागोरा (Mandragora) लेटिन—एट्रोपा मेड्रागोर (Atropa mandragoro) कहते है। यह एक बहुवर्षायु क्षुप का कन्द है। पत्र—चौडे, नोकदार, डठलदार, फल आवले के समान पीतवर्ण के तथा कन्द या जड गाजर के जैसा होता है।

यह उत्तरी भारत, नेपाल तथा चम्पारन, दरभगा आदि मे पाया जाता है। चम्पारण की ओर जो कन्द पाया जाता है वह गर्भाशय के बच्चे के आकार जैसा होता है। कन्द मे एक प्रकार की तिक्त गध आती है। कन्द

एव कन्द की छाल व पत्र औषधि कार्य मे आते है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

वेलाडोना मे जो विष होता है, उसका रूपान्तर हल्का विष इसमे होता है। शेष इसके गुणधर्म वेलाडोना के समान है । किन्तु यह उसकी अपेक्षा मृदुस्वभावी औषधि है। इसके सूखे कन्द मे और भी हलका प्रभाव रहता है। इसे त्वचा मे लगाने से त्वचा मे स्पर्श शून्यता आ जाती है। इससे स्थानिक पीडा का कष्ट भी होता दूर है। अल्प प्रमाण मे यह कुछ नशा लाने वाला एव वाजीकरण है । इसका विषाक्त द्रव्य वेलाडोना के एट्रोपीन या खुराशानी अजवायन के सत्व हायोसायमीन Hyoscyamine के समान गुणधर्म युक्त होता है। किन्तु त्वचा मे शून्यता लाने का गुण धतूरे के समान होता है।

किसी प्रकार की शस्त्र क्रिया करने के पूर्व स्थानिक शून्यता लाने के लिए इसके कन्द की छाल घिसकर या पीसकर लगानी चाहिये। इसके पत्ते पीसकर शोथ पर बाधने से लाभ होता है।

गर्भधारणार्थ—हमारा अनुभव है, कि इस कन्द को मासिक धर्म के चौथे दिन दूध मे पीसकर पिलाने से गर्भाशय दोष के कारण जिन स्त्रियों मे गर्भ धारण नही होता उन्हे गर्भ रहता और उचित सभाल रखने से सन्तान उत्पन्न होती है।

इसके कन्द मे स्त्रीलिंगी और पुल्लिङ्गी भेद होता है। स्त्रीलिंगी कन्द के व्यवहार से कन्या तथा पुल्लिंगी कन्द के व्यवहार से पुत्र की उत्पत्ति होती है।

—श्री आयुर्वेद वृहस्पति श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल रचित अगदतत्र से साभार।

ध्यान रहे—पुत्रदा, पुत्रकदा, प्रसिद्ध लक्ष्मणा बूटी इससे भिन्न है। आगे यथास्थान 'लक्ष्मणा' का प्रकरण देखिये।

—सपादक

बेलि (Limonia Monophilla)

निम्बुक कुल (Rutaceae) के इस कटीले छोटे वृक्ष या क्षुप के पत्र—३-६ इन्च लम्बे अयुग्म पक्षाकार (विषम सख्यक पत्रक युक्त पख के आकार के) प्रत्येक युग्म (जोडे) पत्रको के मध्य का पत्र दण्ड पखाकार फैला हुआ, पत्रक सख्या मे ५-६ तक पुष्प—प्रत्येक सलाका पर गुच्छो मे रक्ताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे, फल—छोटे-छोटे गोल मासल (लाल लुआव युक्त गूदेदार) पकने पर काले तथा अत्यन्त खट्टे होते हैं।

यह बनौषधि पश्चिमी एव दक्षिणी भारत के शुष्क पहाडी स्थानो मे तथा शिमला, कुमाऊ, विहार, वगाल एव आसाम आदि मे विशेष पाई जाती है ।

नाम—

हि०—वेलि, वेली, वेलसियान, काटाकेरी इ । म—रानलिंबू, कावट, टाडशा, नाडवेल इ । ले—लिमोनिया मोनोफिला, लि क्रेनुलाटा (Limonia Cranulata), लि एसिडिसिमा (L Acidicimma)।

गुणधर्म व प्रयोग—

पत्र—आक्षेपहर हैं। अपस्मार पर—पत्रो का फाट या क्वाथ विशेष लाभकारी माना जाता है।

मूल—रेचक व स्वेदल है। उदरशूल तथा हृद्रोग मे उपयोगी है।

फल—शुष्क फल—पौष्टिक हैं। आत्र सम्बन्धी विक्षोभ आदि विकारो पर लाभकारी है। चेचक तथा तीव्र हठीले एव विनाशक ज्वर के सक्रमण का निरोधक हे।

पके फल का लाल रग का लुआवयुक्त गूदा कई जगम विषो का उत्तम प्रतिवन्धक माना जाता है।

वेलिया पीपल—देखें—पाकर मे नोट।



बेलीपाता (Hibiscus Tillaceus)

कर्पास कुल (Malvaceae) के इस मध्यम प्रमाण के वृक्ष के पत्र—कपास के पत्र जैसे ४-५ इंच लम्वे ३-५ इच चौड़े कुछ गोल, हृदयाकृति के रोमश। पुष्प—गुच्छोमे श्वेत, गुलावी रग के छोटे छोटे वर्षाकाल मे आते हैं।

यह वनौषधि दक्षिण के पूर्वी एव पश्चिमी घाटो मे, तथा वगाल एव उत्तर पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो मे पैदा होती है।

नाम—

हिन्दी मे—वम्बई की ओर वेली पाता, वेलपाता, पोला, पुला, वारगा, पोटारी। व०—वोला, चेलवा। गु०—म्होटी हिरवनी। अ—कार्कवुड (Cork wood) ले—हिविस्कसटिलियासेस, कायडिया केलिसिना (Kydia Calycina)

गुणधर्म व प्रयोग—

जड—ज्वर एवं वातनाशक है। मूत्र-दाह पर—जड की छाल का क्वाथ देते हैं।

आमवात, सधिवात, कटिशूल आदि विकारो मे लेप करने की औपधियों मे यह मिलाई जाती है तथा इसके क्वाथ का वफारा दिया जाता है।

छाल का चूर्ण वामक है। पत्र—मृदु विरेचक तथा व्रण पूरक हैं। पत्रो का क्वाथ व्रणों, जख्मों के प्रक्षालन के काम मे आता है।

पुष्प—पुष्पो को दूध मे उवालकर कान मे डालने से कर्णशूल मे लाभ होता है।

फल—त्वचा की शिथिलता दूर करने के लिये फलो का पीला रस त्वचा पर रगडा जाता है।

नोट—पीछे 'पूली' का प्रकरण देखिये।

बैंगन (Solanum Melongena)

शाक वर्ग एव कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल-शाक के वर्षायु या द्विवर्षायु कण्टकित २-४ फुट ऊचे क्षुप के पत्र कटीले ३-६ इच लम्वे (किसी मे काटे नही होते) अण्डाकार, विस्तृत अनेक भागों मे विभक्त, पत्र वृन्त—१ इच या अधिक लम्वा, पुष्प—कटेरी के पुष्प जैसे, नीलाभ, वैंगनी रग के, फल—२-६ इच लम्वे गोल, रक्ताभ नीले, काले, श्वेतहरिताभ, श्वेतादि रग के होते है। फलो का व्यवहार शाकार्थ विशेप होता है। वृक्ष पर फूल व फल वर्प मे कई वार आते रहते है।

यह भारत मे—सर्वत्र शाक के लिये वोया जाता है।

नोट—फल के आकार तथा रग भेद से यह कई प्रकार का होता है। साधारणत लम्वगोल जाति को वैंगन तथा गोल जाति को भाटा कहते है। नीलाभ कृष्णवर्ण का (वैंगनी रग) का अधिक पाया जाता है, इसीके कारण इसे बैंगन की तथा रङ्ग को बैंगनी रङ्ग की सज्ञा प्राप्त हुई हे। श्वेत वर्ण का गोल एव लम्वा वैंगन उक्त बैंगन की अपेक्षा कम पाया जाता हे, गोलाकार श्वेत वर्ण का कोमल भाटा प्रशस्त माना गया हे। हरिताभ पीतवर्ण का या श्वेत रङ्ग मिश्रित वैंगन भी अल्प परिमाण मे मिलता है, गुणधर्म मे यह प्राय श्वेत के जैसा ही होता है। इन सवके गुणधर्म व प्रयोग आगे देखिये।

महाराष्ट्र मे तथा अन्यत्र भी एक 'वेली-वैंगन (वेलीवागी) होती है। इसके वृक्ष प्राय वहुवर्षायु होते है तथा वर्ष मे ३-४ वार फल देते हैं जो खूव लम्वे, पतले, वेलनाकार, बैंगनी रङ्ग के या श्वेत वर्ण के भी होते है। यह भी गुणदायक है।

एक कुली वैंगन (Solanum Esculentum) इसीका ... । इसके वृक्ष प्रस्तुत प्रसग के वैंगन के वृक्ष ... । यह उक्त 'वेंली वैंगन' का ही ... फल लम्वे, रक्ताभ श्वेत वर्ण के



एव कन्द की छाल व पत्र औपधि कार्य मे आते है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

बेलाडोना मे जो विप होता है, उसका रूपान्तर हल्का विप इसमे होता है। शेप इसके गुणधर्म बेलाडोना के समान है । किन्तु यह उसकी अपेक्षा मृदुस्वभावी औपधि है। इसके सूखे कन्द मे और भी हलका प्रभाव रहता है। इसे त्वचा मे लगाने से त्वचा मे स्पर्श शून्यता आ जाती है। इससे स्थानिक पीडा का कष्ट भी होता दूर है। अल्प प्रमाण मे यह कुछ नशा लाने वाला एव वाजीकरण है । इसका विपाक्त द्रव्य बेलाडोना के एट्रोपीन या खुराशानी अजवायन के सत्व हायोसायमीन Hyoscyamine के समान गुणधर्म युक्त होता हे। किन्तु त्वचा मे शून्यता लाने का गुण धतूरे के समान होता है।

किसी प्रकार की शस्त्र क्रिया करने के पूर्व स्थानिक शून्यता लाने के लिए इसके कन्द की छाल घिसकर या पीसकर लगानी चाहिये। इसके पत्ते पीसकर शोथ पर वाधने से लाभ होता है।

गर्भधारणार्थ—हमारा अनुभव है, कि इस कन्द को मासिक धर्म के चौथे दिन दूध मे पीसकर पिलाने से गर्भाशय दोप के कारण जिन स्त्रियो मे गर्भ धारण नही होता उन्हे गर्भ रहता और उचित सभाल रखने से सन्तान उत्पन्न होती है।

इसके कन्द मे स्त्रीलिंगी और पुल्लिङ्गी भेद होता है। स्त्रीलिंगी कन्द के व्यवहार से कन्या तथा पुल्लिंगी कन्द के व्यवहार से पुत्र की उत्पत्ति होती है।

—श्री आयुर्वेद वृहस्पति श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल रचित अगदतंत्र से साभार।

ध्यान रहे-पुत्रदा, पुत्रकदा, प्रसिद्ध लक्ष्मणा बूटी इससे भिन्न है। आगे यथास्थान 'लक्ष्मणा' का प्रकरण देखिये।

—सपादक

बेलि (Limonia Monophilla)

निम्बुक कुल (Rutaceae) के इस कटीले छोटे वृक्ष या क्षुप के पत्र—३-६ इन्च लम्बे अयुग्म पक्षाकार (विपम सख्यक पत्रक युक्त पख के आकार के) प्रत्येक युग्म (जोडे) पत्रको के मध्य का पत्र दण्ड पखाकार फैला हुआ, पत्रक सख्या मे ५-६ तक पुष्प—प्रत्येक सलाका पर गुच्छो मे रक्ताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे, फल—छोटे-छोटे गोल मासल (लाल लुआव युक्त गूदेदार) पकने पर काले तथा अत्यन्त खट्टे होते हैं।

यह वनौपधि पश्चिमी एव दक्षिणी भारत के शुष्क पहाडी स्थानो में तथा शिमला, कुमाऊ, विहार, वगाल एव आसाम आदि में विशेप पाई जाती है ।

नाम—

हि०—वेलि, वेली, वेलसियान, काटाकेरी इ । म —रानलिंवू, कावट, टाडशा, नाड्वैल इ । ले —लिमोनिया मोनोफिला, लि क्रेनुलाटा (Limonia Cranulata), लि एसिडिसिमा (L Acidicimma)।

गुणधर्म व प्रयोग—

पत्र—आक्षेपहर हैं। अपस्मार पर—पत्रो का फाट या क्वाथ विशेप लाभकारी माना जाता है।

मूल—रेचक व स्वेदल है। उदरशूल तथा हृद्रोग मे उपयोगी है।

फल—शुष्क फल—पौष्टिक हैं। आत्र सम्बन्धी विक्षोभ आदि विकारो पर लाभकारी है। चेचक तथा तीव्र हठीले एव विनाशक ज्वर के सक्रमण का निरोधक है।

पके फल का लाल रग का लुआवयुक्त गूदा कई जगम विपो का उत्तम प्रतिवन्धक माना जाता है।

वेलिया पीपल—देखे—पाकर मे नोट।

बेलीपाता (Hibiscus Tillaceus)

कर्पास कुल (Malvaceae) के इस मध्यम प्रमाण के वृक्ष के पत्र—कपास के पत्र जैसे ४-५ इंच लम्बे ३-५ इच चौडे कुछ गोल, हृदयाकृति के रोमश। पुष्प—गुच्छोमे श्वेत, गुलाबी रग के छोटे छोटे वर्षाकाल मे आते हैं।

यह वनौषधि दक्षिण के पूर्वी एवं पश्चिमी घाटों मे, तथा बगाल एव उत्तर पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो मे पैदा होती है।

नाम–

हिन्दी मे—बम्बई की ओर बेली पाता, वेलपाता, पोला, पुला, बारगा, पोटारी। ब०—बोला, चेलवा। गु०—म्होटी हिरवनी। अ—कार्कवुड (Cork wood) ले—हिबिस्कसटिलियासेस, कायडिया केलिसिना (Kydia Calycina)

गुणधर्म व प्रयोग–

जड—ज्वर एवं वातनाशक है। मूत्र-दाह पर—जड की छाल का क्वाथ देते हैं।

आमवात, सधिवात, कटिशूल आदि विकारो में लेप करने की औषधियो मे यह मिलाई जाती है तथा इसके क्वाथ का वफारा दिया जाता है।

छाल का चूर्ण वामक है। पत्र—मृदु विरेचक तथा व्रण पूरक है। पत्रो का क्वाथ व्रणो, जख्मों के प्रक्षालन के काम मे आता है।

पुष्प—पुष्पो को दूध मे उबालकर कान मे डालने से कर्णशूल मे लाभ होता है।

फल—त्वचा की शिथिलता दूर करने के लिये फलो का पीला रस त्वचा पर रगडा जाता है।

नोट—पीछे 'पूली' का प्रकरण देखिये।

बैंगन (Solanum Melongena)

शाक वर्ग एव कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल-शाक के वर्षायु या द्विवर्षायु कण्टकित २-४ फुट ऊचे क्षुप के पत्र कटीले ३-६ इच लम्बे (किसी मे काटे नही होते) अण्डाकार, विस्तृत अनेक भागो मे विभक्त, पत्र वृन्त—१ इच या अधिक लम्वा, पुष्प—कटेरी के पुष्प जैसे, नीलाभ, बैंगनी रग के, फल—२-६ इच लम्बे गोल, रक्ताभ नीले, काले, श्वेतहरिताभ, श्वेतादि रग के होते है। फलो का व्यवहार शाकार्थ विशेष होता है। वृक्ष पर फूल व फल वर्ष मे कई बार आते रहते हैं।

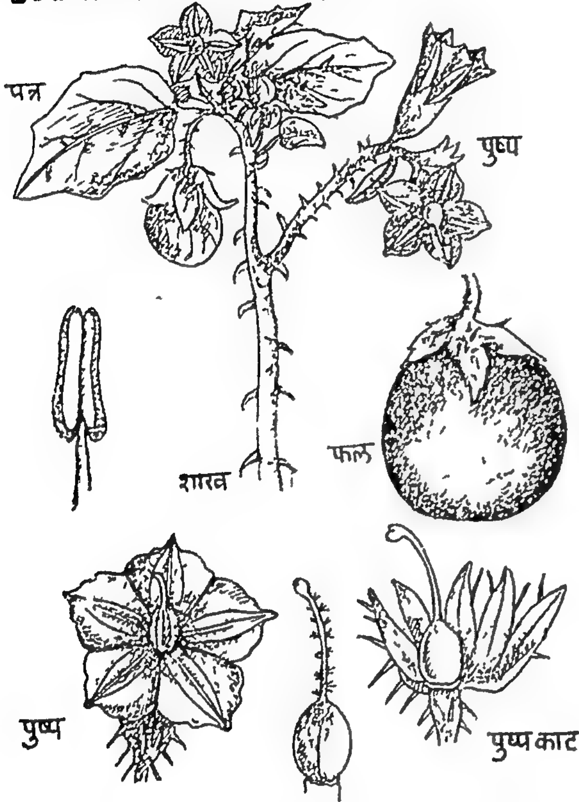
यह भारत मे—सर्वत्र शाक के लिये बोया जाता है।

नोट—फल के आकार तथा रग भेद से यह कई प्रकार का होता है। साधारणत लम्बगोल जाति को बैंगन तथा गोल जाति को भाटा कहते है। नीलाभ कृष्णवर्ण का (बैंगनी रग) का अधिक पाया जाता है, इसीके कारण इसे बैंगन की तथा रङ्ग को बैंगनी रङ्ग की सज्ञा प्राप्त हुई है। श्वेत वर्ण का गोल एव लम्बा बैंगन उक्त बैंगन की अपेक्षा कम पाया जाता है, गोलाकार श्वेत वर्ण का कोमल भाटा प्रशस्त माना गया है। हरिताभ पीतवर्ण का या श्वेत रङ्ग मिश्रित बैंगन भी अल्प परिमाण मे मिलता हे, गुणधर्म मे यह प्राय श्वेत के जैसा ही होता है। इन सवके गुणधर्म व प्रयोग आगे देखिये।

महाराष्ट्र मे तथा अन्यत्र भी एक 'बेली-बैंगन (वेलीवागी) होती है। इसके वृक्ष प्राय बहुवर्षायु होते है तथा वर्ष मे ३-४ बार फल देते हैं जो खूब लम्बे, पतले, बेलनाकार, वैगनी रङ्ग के या श्वेत वर्ण के भी होते है। यह भी गुणदायक है।

एक कुली वैंगन (Solanum Esculentum) इसीका एक भेद है। इसके वृक्ष प्रस्तुत प्रसग के बैंगन के वृक्ष जैसे ही होते है। यह उक्त 'बेली बैंगन' का ही एक भेद है। इसके फल लम्बे, रक्ताभ श्वेत वर्ण के

बेगन (रिंगणा)
SOLANUM MELONGENA LINN.



बिल्कुल श्वेत वर्ण के होते है। गुणधर्म आगे देखिये। इसे बगला मे 'कूलिवैगुन' कहते हैं।

वन भाटा या वैंगन के जगली भेद का सक्षिप्त वर्णन 'कटेरी बडी' के प्रकरण मे (भाग २ मे) देखें।

'राय वैंगन' (S Ferox)' इसीके कुल का होने पर भी इसके स्वरूप मे विशेष भेद होने से इसका वर्णन यथास्थान 'राय वैंगन' के प्रकरण मे आगे देखिए।

नोट न० २—यह भारत का वहुत प्राचीन फल है। चरक मे इसका उल्लेख है तथा सुश्रुत मे (सू अ ४६) इसके गुणधर्म दिये गये हैं।

नाम—

म—वृन्ताक (वडावृन्तयुक्त होने से), वार्ताक (वृत्ताकार या गोलाकार होने मे या 'वार्तं स्वास्थ्यमाकयति' —स्वास्थ्य को विकृत करने से), भण्टाक (वृत्ताकार फल); हि—वैंगन, बेगुन, भटा, भाटा, वताऊ। म—वांगी, वांगे। गु—वेंगनी, रीगणा। व—वेगुन, वांग वानकि। अ—ब्रिजाल (Brinjal) एगप्लाट (Eggplant), ले—मोलेनम मेलोगिना।

रासायनिक संगठन—

ताजे फल मे ८८ से ९१ ५ % जल, खनिज पदार्थ ० ५%, प्रोटीन १ ३%। वसा ० ३%, कार्वोहाइड्रेट ६ ४%, कैलशियम ० ०२%, फासफोरस ० ०६%; लोहा १ ३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम, विटामिन 'ए' ५ इ यू प्रति सौग्राम, विटामिन 'वी१' १५ इ यू प्रति सौ ग्राम, विटामिन 'वी२' काफी प्रमाण मे तथा विटामिन 'सी' २३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम पाया जाता है।

शुष्क फल मे ईथर एक्स्ट्रैक्ट ४ २०%, अलव्युमिनाईड १६ ३७%, विलेय कार्वोहाइड्रेट ५५ २३%; काण्डसूत्र (तन्तू) १७% और राख या क्षार ७ २०% पाया जाता है। हरी पत्तियो मे रक्तविकार नाशक विटामिन 'सी' होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, वीज, पत्र व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, मधुर, उष्णवीर्य, विपाक मे मधुर (कई कटु मानते हैं), किंचित पित्तजनक, रोचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, यकृद्विकार नाशक, हृद्य, अनुलोमन, मूत्रल, वेदनास्थापन, वल्य, वृंहण, तथा अर्श, कफ पित्त विकार, अनिद्रा, शोथ, प्लीहा, अपची, अर्दित, गृध्रसी आदि वात विकारो मे प्रयुक्त होता है। सर्वसामान्यत वैंगन कफ व पित्तको वढाने वाला होता है। कफ पित्तकारक द्रव्य चतुष्टय मे इसकी गणना है (उडद, दही, मछली व वैंगन)।●

कोमल फल—जिसमे वीज न पडे हो, ऐसे कोमल 'वतिया वेंगन' लघु, मधुर, चक्षुष्य, कफनाशक तथा अरुचि, ज्वर, अग्निमाद्य, त्रिदोष, यकृद्विकार, विवन्ध, पित्तार्श मे पथ्यकर होते हैं। यह कच्चा भी खाया जाता है, छिलका नही उतारना चाहिए।

● कफपित्तकरा माषा कफपित्तकरं दधि।
कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत ॥

—भा प्र.

कोमल बैंगन—कफ पित्तहर हे ।

मध्यम कोमल बैंगन—लघु, पित्तकारी होता हे ।

बडे बैंगन—गुरु, शीतवीर्य, मूत्रल, वृष्य, धातुवर्धक, सारक, किंतु त्रिदोष विशेपत कफकारी होते हैं ।

पक्व (डाल का पका हुआ)—लघु-किंतु वात एव त्रिदोष प्रकोपक होता है ।

अंगारे पर भुना हुआ वैंगन—अत्यन्त लघु, किंचित पित्तकर, दीपन, पाचन तथा कफ, मेद व वातनाशक हैं। इसमे तेल और नमक मिलाने पर यह गुरु व स्निग्ध होता है ।

रंगानुसार बैंगन के गुणधर्म—

श्वेत बैंगन—जो आकार मे मुर्गी के अण्डे के जैसा होता है । अर्श रोग मे इसका भर्ता विशेप हितकारी है। गुणधर्म मे साधारण बैंगन जैसा ही किन्तु अपेक्षाकृत हीन गुण युक्त होता है । बनौपधि विज्ञान के विशेपज्ञ आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी का कथन हे कि—"श्वेतवर्ण मे सब रङ्ग मिश्रित होते है, किंतु इसमे अग्नियाश का तत्व अधिक होता है । इस पर सूर्य की किरणो का प्रकाश पडने से विशेप गुणयुक्त द्रव्य पृथ्वी से शोपित होते है, जिनमे अग्नियाश अधिक होता है। यह विशेष रूप से यकृत का कार्य जो पित्त निर्माण व शर्करा का द्राक्षौज मे परिवर्तन करने का होता है, उसमे यह सहायक होता है । इसको अधिक मात्रा मे खाने से विरेचन अधिक होता है; तथा पित्त, पक्वाशय मे अधिक आकर अपने विस्र, उष्ण, तर गुणो से मल को पतला कर देता है, शरीर मे उष्णता पैदा करता तथा और भी अधिक खाने से अरुचि, विरसता, अग्निमाद्य, अरति पैदा करता है । बच्चो को बाल यकृत रोग होने पर इसका उपयोग पूर्ण लाभ देता है । यह कम मात्रा मे सेवन से पाचक सस्थान के लिये बलदायक, तथा अधिक मात्रा में मल को पतला करने वाला होता है । यह उदर मे पहुच कर समान वायु के केन्द्र को प्रेरणा देकर पाचन व शोषण मे अधिक सहायता देता है ।

बैंगनी रंग का—यह अग्नि व वायु तत्व की प्रधानता से बनता है । पुष्पोगद्म के बाद जैसे ही इसमें फल आते है, तैसे ही यह सूर्य किरणो के सप्त वर्णो से अधिक रूप मे बैंगनी वर्ण ग्रहण करने लगता हे । फल मे इस तत्व के अधिक सग्रह होने से लोहाश अधिक मात्रा मे पृथ्वी से शोपित होता है । फल का वर्ण ऊपर से गाढे बैंगनी रग का व नीचे श्वेत वर्ण से भर जाता है। (यदि इसे बीच से काटकर धूप मे प्रकाश या हवा मे रख दे। तो यह किंचित पीतवर्ण का हो जाता है । इसमे से रस निचोडना चाहे तो अत्यल्प मात्रा मे मिलेगा ।) यह कम मात्रा मे यकृत कार्यावरोध को कम करता है । किन्तु श्वेत की तरह लाभदायक नही होता । अधिक मात्रा मे यह आत्रो की शोपण क्रिया को वढा कर मल को गाढा करता हे, तथा अपान वायु के क्षेत्रो का कार्य अव्यवस्थित कर देता है । यही कारण है कि बैंगनी बैंगन कभी-कभी विवन्ध, आध्मानादि वढाकर मल को शुष्क कर उदर की स्वाभाविक दशा मे परिवर्तन कर देता है । अत यह कम मात्रा मे वात दोपशामक अधिक मात्रा मे सेवन से वात प्रकोपक हो जाता है । इस प्रकार के गुणो के कारण ही यह कहावत (किंवदन्ती) प्रचलित हो गई कि—

"भटा एक को पित करे, करे एक को वात" यद्यपि यह सत्य है, तथापि इसने भटा के ऊपर साधारण जनता की अरुचि उत्पन्न करदी और मनुष्य जाति के लिये विशेष लाभप्रद इस वस्तु के प्रति एक घृणात्मक प्रचार होगया । वास्तव मे यह पृथ्वी तल पर यकृत के कार्य को सुधारने वाली अमृत की तरह लाभदायक वस्तु है ।

ईषत बैंगनी व हरित वर्ण मिश्रित बैंगन तथा इसी प्रकार कम या अधिक वर्ण मिश्रित इसके कई प्रकार के भेद होते है। इन सब मे एक ही सा गुण दोप होता है । इसका उपयोग दुर्बलता, रक्ताल्पता, यकृत की क्रियाहीनता, विवन्ध व पाडु रोग मे विशेष लाभदायक है।

हरित, पीत या श्वेत रग मिश्रित बैंगन के भी गुण श्वेत बैंगन से मिलते जुलते है ।

(रसायन के फलाक से साभार)

[१] हिक्का, श्वास, यकृद्विकृति, रक्तगुल्म तथा अर्श पर—

हिक्का और श्वास के रोगियो के लिये—बैंगन का

यूष, जिसमे दही त्रिकटु चूर्ण और घृत डाला गया हो, विशेष हितकर होता है। रोगी को पुराने शालिचावल या साठी के चावल, गेंहू तथा जौ का भोजन हितकर है। —च चि अ १७

यकृद्विकृति पर—असली नौसादर ५-६ तोला लेकर श्वेत बैगन के रस मे खरल कर टिकिया बना हाडी मे डमरू यत्र की विधि से जौहर उडाओ। फिर उस जौहर (सत) को निकाल एक बैगन को बीच से चीर कर उसमे भर दो और एक बोतल मे अन्दर कर दो तथा उस बोतल का मुह दूसरी बोतल के मुख पर फिट कर दो ताकि तेल नौसादर निकल कर इसमे टपके। इसका रग ब्राडी के समान होगा। जिस रोगी को यकृत की खराबी हो, चाहे कैसा ही परेशान क्यो न हो, इसकी ५-६ बूदें बतासे मे या जल से प्रातःकाल ३ दिन देवे। इसके बाद मात्रा कम करते जावें। रोगी सदैव के लिये इस रोग मे छूट जायेगा। सैकडो बार का अनुभूत है।

—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी के गुप्त रोग रत्नावली से साभार।

रक्त गुल्म पर—बैगन को आग मे भून कर भरता बनालो। उसे रेंडी के तेल मे छौंक कर भून लो (यदि भरता ५ तोला हो तो रेडी तेल १ तोला मे भूने) उसमे कच्ची हीग १ माशा तथा सेधा नमक १ तोला मिला, कुछ गरम रहते ही गुल्म के स्थान पर लेपकर ऊपर से रेंडी का पत्र रख कपडे से बाध देवे। ऐसा करने से गुल्म मुलायम पड कर कम होने लगेगा तथा २०-२५ दिनो मे पूर्ण लाभ होगा। रोगी को साथ ही निम्न प्रकार से बना हुआ हरड चूर्ण का सेवन करावें—

छोटी हरें १० तोला को ५ तोला रेडी तेल मे भून ल। फिर भुनी हीग, जवाखार, काला नमक और सैंधा नमक १-१तोला तथा कबीला २तोला मिलाकर पीस छान ले। प्रात साय ६-६ माशा गरम जल के साथ लिया करे। इससे दस्त साफ होकर रक्त गुल्म दूर हो जावेगा। —भा गृ चि

अर्श पर—बैंगन को सोये के क्षार के जल मे सिजा कर घृत मे भन लेवें। इसे गुड मे मिलाकर भर पेट खाने के बाद तक्र पीने से ७ दिन मे अत्यन्त प्रवृद्ध सहजार्श के मस्से भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

—वृ भा [भा. भै र]

(२) पक्षाघात, गृध्रसी, आध्मान, प्लीहा, तथा अनियमित मासिक धर्म पर—

पक्षाघात पर (हलवा)—बैंगन को धोकर छोटे२ टुकडे कर १० तोला टुकडो को थोडा जल तथा बराबर का घृत मिलाकर पकावें। फिर श्वेत जीरा (घृत मे सेंका हुआ) ४ रत्ती तथा शक्कर १० तोला मिला ठण्डा कर प्रात साय सेवन करें। मासाहारी कबूतर का मास रस लेवें तो ठीक है। इस प्रकार ७ दिन के सेवन मे शरीर का दर्द, सन्धिवात, कब्जी का रोग मिट जाता है। पथ्य मे—दूध गेंहू की रोटी खायें। गरम पानी से स्नान करें व गरम जल पीवें। यह प्रयोग ३५ वर्ष से ऊपर की आयु वालो को विशेष हितकर है। लम्बे प्रयोग से पुराना लकवा भी दूर हो जाता है।

—वैद्य सीतारामजी जोगी भिषगाचार्य,
लोहार्गल तीर्थ—शेखावाटी

गृध्रसी पर—बैंगन को रेंडीतेल मे तल कर उसमे यथोचित हीग व नमक मिलाकर सेवन से लाभ होता है। —चक्रदत्त।

आध्मान—जिसके उदर मे वात के कारण गुब्बारा सा होता है, गैसेस का सचय हुआ करता है, उसके लिये बैगन का साग [बैगन ताजे, लम्बे व काले या बैगनी रग के लेवे] सेवन करना हितकर है। साग मे ताजा हरा लहसुन, या शुष्क लहसुन की फली मिला कर हीग की छौक देनी चाहिये। यह साग थोडी मात्रा मे खाते रहने से कोई अपाय नही होता, उदर मे गैस सचय का प्रमाण कम होता है। —आरोग्य मदिर।

प्लीहा वृद्धि पर—बार- बार मलेरिया ज्वर से आक्रान्त होने के कारण बढी हुई प्लीहाग्रस्त रोगी यदि कुछ बैगन का साग विधिवत् बनाकर खाया करे तो प्लीहा पूर्ववत् यथायोग्य ठीक हो जाती है।

—आरोग्य मदिर।



अनियमित, मासिक धर्म पर—जिस स्त्री को समय पर यथायोग्य प्रमाण मे मासिक स्राव [ऋतु स्राव] नही होता अनियमित कभी भी हो जाया करता है । या मासिक धर्म के समय अतिशय स्राव होता है पीडा होती है इत्यादि विकार होते हैं उसे इसकी साग के सेवन से उन विकारो मे बहुत कुछ लाभ होता है । पथ्य मे ज्वार की रोटी, वैगन का साग या भरता तथा अल्प प्रमाण मे गुड [१ तोला] प्रति २-३ दिन के अन्तर से लिया करें । कब्जी न होने पावे इसका ध्यान रखे ।

आरोग्य मदिर ।

(३) बालको की पसली चलना (डिब्बा), अनिद्रा, आघात या चोटजन्य पीडा, गाठ की पीडा, शोथ, नारु, प्रस्वेद और धतूरे के विष पर—

बालक की पसली चलना या डिब्बा रोग पर—बैंगन को भूनकर उसमे सज्जीखार मिला उदर प्रदेश पर बाधते रहने से अति छोटे छोटे बैंगनो के डठलो को दूर कर छिद्रकर उनमे डोरा पिरो कर माला सी बना गले मे लटका देने से लाभ होता है । —व गु ।

अनिद्रा पर—सायकाल के समय बैंगन के भरते मे या भरते के रस मे शहद मिलाकर सेवन से शीघ्र निद्रा आती है ।

अथवा—इसके भरते मे श्वेत प्याज (१० तोला मे ३–४ माशा प्याज) मिलाकर खाने से उत्तम निद्रा आती है । —व गु ।

आघात या चोटजन्य पीडा पर—वैंगन को भूनकर उसमे हल्दी व प्याज मिलाकर बाधते है । तथा भुने हुये बैंगन के रस ५–७ तोला मे थोडा गुड मिलाकर खिलाते हैं ।

गाठ की पीडा पर—वैंगन को भूनकर गरम-गरम सुहाता हुआ बाधने से लाभ होता है ।

शोथ पर—वेदनायुक्त शोथ के स्थान पर बैंगन को पकाकर उसकी पुल्टिस बनाकर बाधते हैं ।

नारू पर—वैंगन को भूनकर दही के साथ मिलाकर नारू के स्थान पर बाधते रहने से ७ दिन मे नारू का कीड़ा निकल जाता है । —यो र ।

प्रस्वेद पर—वैंगन को कुचलकर उसका रस लगाने या पीसकर लेप करने से अधिक पसीना निकलना बन्द हो होता है ।

हाथ पैरो मे शीतजन्य अधिक स्वेद आता हो तो वैंगन और पोस्त (अफीम का डोडा) दोनो को कुचलकर पानी मे औटाकर इस पानी से हाथ पैरो को धोते रहने से लाभ होता है ।

शीतल व्यक्ति के पैरो के तलुवो से कभी-कभी अत्यधिक स्वेद स्राव हुआ करता है । उसे चाहिये कि लम्बे बैंगनो को भूनकर या बफार कर उन्हे डेठ से लेकर अग्र भाग तक चीरा देकर रात्रि मे निद्रा के पूर्व पैरो के तलुवो पर रख कपड़े से रात भर बाध रखे । यह प्रयोग ३-४ दिन करने से लाभ होता है । —आरोग्य मन्दिर

धतूरे के विष पर—वैंगन २० तोला को चाकू से बारीक कतर कर १ सेर जल मे खूब मसल कर छानले । ४-४ घण्टे से चार बार मे पिला देने से लाभ होता है ।

—भा गृ चि. ।

बीज—वैंगन के बीज हृदयोत्तेजक, अग्निमाद्य नाशक हृदयदौर्बल्यहर, विष्टम्भी तथा कास श्वास मे उपयोगी है ।

(४) बच्चो के रोमान्तिका (खसरा, छोटी चेचक Measles) पर—

बीजों के महीन चूर्ण को जल के साथ मिलाकर पिलाने से कम से कम १ वर्ष के लिये बच्चा खसरे से सुरक्षित रहता हे । उसे यह रोग नही होने पाता । इसके लिये लम्बी किस्म के वैंगनो के बीज लेना ठीक होता हे । जिस घर मे खसरे का रोगी हो उस घर के अन्य लोग इस चूर्ण के सेवन से इसकी छूत से बच गये है ।

—डा० सन्याल कलकत्ता ।

(५) दन्तशूल मे—बीजो को आग मे जलाकर नलिका द्वारा उस शूल स्थान मे उसके धुये की धूनी देते हैं ।

पत्र—वैंगन के पत्ते-मादक, कास श्वास हर तथा विषघ्न है ।

(६) रक्तार्श, अनिद्रा, वमन तथा खुजली पर—

रक्तार्श के रोगी को पत्तो को महीन पीसकर उसमे जीरा और शक्कर मिलाकर देते हैं। रक्तस्राव वन्द होता है तथा पीडा भी दूर होती है।

अनिद्रा पर—पत्तो का रस २ तोला, श्वेत प्याज का रस २ तोला और उत्तम शहद १½ तोला एकत्र मिला रात्रि के समय सोने के एक घण्टे पहले देकर ऊपर से थोडा दूध पिला देवे। प्रगाढ निद्रा आयेगी तथा स्नायु मडल का तनाव कम होगा। तनाव व क्षुब्धता अधिक बढी हुई हो, तो यह स्वरस मिश्रण प्रात काल भी दिया जा सकता है।

—श्री भवानीशकर जी वैद्य, तपोवन (उदयपुर)

वमन निवारणार्थ—पत्र रस को अदरख के ताजे रस के साथ देते है।

खुजली पर—पत्तो को और फलो को कुचल कर उसमे शक्कर मिलाकर मर्दन करते है या लेप सा लगा कर थोडी देर वाद गरम पानी से धो डालते है।

मूल—कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, आत्र सकोचक, कृमि नाशक, उत्तेजक, हृद्य, तथा कास श्वास, ज्वर, ग्रोकाड-टीस, वमन, श्वेत कुष्ठ तथा खुजली (Pruritis) आदि मे उपयोगी है। कष्ट प्रसूती, दतशूल, कालिक उदरशूल मे भी इसका उपयोग होता है। कास व प्रतिश्याय मे इसके उपयोग से कफ ढीला होकर शीघ्र निकल जाता है। मूत्र के समय होने वाली पीडा के निवारणार्थ इसके रस या निर्यास को दिन मे दो वार देते हैं।

(७) नेत्र विकार पर—

आख के जाले पर जड को जल के साथ घिस कर आजते हैं।

फूले पर—जड को गुलाव अर्क मे घोटकर गोली वना, शुष्क कर अपेक्षानुसार अर्क गुलाव मे या जल मे घिसकर लगाते रहने से लाभ होता है। अथवा जगली वैगन की जड को नीवू के रस मे घिसकर दिन मे ३–४ वार नित्य लगाने से भी शीघ्र लाभ होता है।

(८) नारू तथा अण्डवृद्धि पर—

नारू पर—उसकी जड को मनुष्य के मूत्र मे पीसकर गरम कर नारू पर रख ऊपर से पीपल का पत्ता रख वाघ देने से वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। —यो र

अण्डवृद्धि पर—जड को जल मे महीन पीसकर लेप करे। —व गु

नोट—मात्रा-पत्र स्वरस ३-६ माशा। वीज चूर्ण ५–१० रत्ती। मूल चूर्ण ५-१२ रत्ती।

वैंगन का फल अधिक मात्रा मे भारी [गुरु] एव अपाचक होने से निर्वल एव रोगी के लिये हानिकर है यह वातकारक तथा अर्शजनक होता है। हानि निवारणार्थ घृत, दुग्धादि स्निग्ध पदार्थ, सिरका और मार देते हैं।

किंतु वैंगन का विधिवत् उपयोग करने से धमनियो मे उभरे हुये दोष शात होते, नाडियो की जडता दूर होती पाचन शक्ति वढती, वात कफ के विकार दूर होते, हृदय का दवाव कम होता तथा शरीर मे शक्ति व स्फूर्ति वढती है। मदाग्नि, जुखाम, अजीर्ण, पाडु, वात व्याधि, कान एव कानो के विकारो मे पथ्य है।

—श्री भवानीशकर जी वैद्य तपोवन (उदयपुर)

निम्न विकारग्रस्त व्यक्ति को वैंगन का खाना ठीक नही होता, प्रत्युत् हानिकर होता है। जिसके नेत्रो मे सदैव दाह जलन होती हो, नेत्र लाल रहते हो, इस प्रकार के नेत्र विकार ग्रस्त व्यक्ति को, जिसकी पित्त प्रकृति हो उवकाई, जी मिचलना, मुख मे लाला स्राव विशेष हो पित्ताधिक्य से वमन होती हो, शरीर मे दाह बना रहता हो, शरीर का तापक्रम वढा हुआ रहता हो, जिसे विवन्ध या कोष्ठवद्धता सदैव रहती हो, जिसे नकसीर [नाक से रक्तस्राव] होता रहता हो, जो जीर्ण अर्श रोग से ग्रस्त हो, रक्तस्रावहहोता हो, शोथ हो, जिस स्त्री को प्रदर हो या मासिक धर्म के वाद भी कई दिनो तक रक्तस्राव होता हो, ऐसे व्यक्तियो को वैंगन का साग, भरता या वैंगन मिश्रित कोई भी पदार्थ नही खाना चाहिये।

सर्व साधारणत. स्वस्थ व्यक्ति को ऐसे वैंगन नही खाने चाहिए—जिनमे वीज वहुत हो, जो पककर पीले पड गये हो, तथा जो वहुत वासी कई दिनो के रखे हो और शुष्क हो गये हो।



बैंगन का खाना शीतकाल मे हितकारी है । अन्य ऋतुओ मे स्वास्थ्य एव आरोग्य की दृष्टि से बैंगन सेवन ठीक नही होता । बैंगन खाने वालो को दही व ताजे तक्र का उपयोग आहार मे करते रहना चाहिये । इससे बैंगन से होने वाली हानि का बहुत कुछ निवारण हो जाया करता है ।

सक्षेप मे ध्यान रहे यद्यपि बैंगन गुणकारी है तथापि जिसकी प्रकृति के प्रतिकूल हो उसे इसका नही खाना ही उत्तम है ।

विशिष्ट योग–

(१) वार्त्ताकु गुटिका—बैंगन (सुखाये हुये), सेहुण्ड [थूहर का शुष्क काण्ड] १६–१६ तोला, सैंधा, सचल व विडनमक १५–१५ तोला, आक की जड की छाल, ३२ तोला और चित्रक मूल ८ तोला इनको एकत्र कूटकर सम्पुट मे बन्दकर अन्तर्धूम दग्ध करके, भस्म को बैंगन के रस मे खरलकर ४ रत्ती से ८ रत्ती तक की गोलिया बना लेवे ।

भोजन के पश्चात् इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचता है । ये गोलिया जितने बार भी भोजन किया जाय उसे पचा देती है । कास, श्वास एव अर्श के रोगियों को हितकारी हैं । विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग को शात करती है । यह गुटिका कफ के ग्रहणी विकार मे लाभकारी है । —भै र । यह योग चरक चि स्था अ १५ मे क्षार गुडिका नाम से कहा गया है ।

(२) बैंगन कल्प—(बालको के यकृद्विकार पर)—प श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी, आयुर्वेद शास्त्राचार्य, भूतपूर्व प्रिंसीपल ललित हरि आयुर्वेदिक कालेज के मतानुसार "यह कल्प तब तक उपयोगी होता हे, जब तक यकृत की रचनावस्तु मे अन्तर नही आता तथा वह बढा हुआ होता हे । अर्थात् स्पर्श मे यकृत मृदु हो, बहुत कडा न हो, जैसा कि सौत्रिक तन्तु भरण से वात यकृत (सिरोसिस) मे हो जाता है । यकृत मे जब तक ये तन्तु (Fibric tissue) पूर्णरूप से न भर जाये तब तक बच्चे का मल हरा, फटा हुआ, अम्लगन्धी द्रवयुक्त होता है, मूत्र हल्के पीतवर्ण का रहता हे । सौत्रिक वृद्धि मे रजक वस्तु की वृद्धि, यकृत की विकृत क्रिया, ज्वराधिक्य, त्वचा का वर्ण स्वाभाविक रहता है । बल भी बच्चे मे बना रहता है । इस समय तक कल्प लाभदायक होता है । कल्प मे श्वेत भाटा ही लाभप्रद होता है ।

निम्न असाध्यावस्था मे यह उपयोगी नही—ज्वर लगातार अधिक रहे, शरीर की त्वचा का वर्ण काला होने लगे, मूत्र मे गाढापन हो, रंग पीत-रक्त वर्ण या लाल वर्ण का हो जाय । मूत्र से वस्त्र पर पीला रङ्ग जैसा लग जावे, अतिसार, शोथ, शुष्कता आदि अन्य उपद्रव हो, तो रोग असाध्य जाने ।।

अत साध्यावस्था मे दुग्ध व अन्न खाने वाले बच्चो को या केवल अन्न खाने वाले बच्चो को यह लाभदायक हैं।

विधि—बल युक्त बच्चो को जिन्हे यकृत वृद्धि हुए बहुत दिन हुए हो पथ्य मे बैंगन का भर्ता व रोटी केवल खाने को देना चाहिये । साथ ही साथ पुनर्नवा मडूर या १ रत्ती की मात्रा मे दिन मे ३ बार मृताक या वृहत् कटकारी क्वाथ देवे । बलयुक्त बच्चो को केवल मडूर भस्म की आधी रत्ती देने व केवल बैंगन का भर्ता देने से पर्याप्त लाभ होता है । १७, २१ या ४१ दिन लगातार देना चाहिये ।

वर्धन—क्रमश भर्ता की मात्रा ७ दिन तक धीरे-धीरे बढावे, फिर घटाकर स्वाभाविक मात्रा मे लावे । दिन भर मे ३-४ बार मे प्रथम दिन १० तोला तक भर्ता, फिर २॥ तोला की वृद्धि कर के ७ वें दिन २५ तोला तक भर्ता कम से कम देवे । बलिष्ठ बच्चे को अधिक भी दे सकते है ।

लाभ का उचित क्रम—२-३ दिन के बाद पतला हरा मल निकलने लगता है, फिर पीला मल पतला ही आता है । ७ दिन बाद क्षुधा बढने लगती है । वह इच्छापूर्वक खाने की चेष्टा करता है । पित्त अधिक बनकर व समस्त आत्र का कार्य सचालन कर उनकी दशा सुधारता हे । यकृत छोटा होने लगता है, इसके बाद आहार मे इसे कम देते है । साधारण यकृत इतने ही से सभल जाता हे । एक बार मे दशा न सुधरने पर पुन यही क्रम दुहराना चाहिये । दो बार मे बहुत सुधार हो जाता हे ।



अधिक विकृत—यकृत मे प्रथम ७ दिन के वाद मात्रा कम न करते हुए, और ७ दिन लगातार एक सी मात्रा इसकी देते है। फिर द्वितीय सप्ताहान्त पर धीरे धीरे कम कर देते हैं। दशा न सुधरने पर पुन इसे दुहराते हैं।

अधिकतर दुर्वल वच्चो को इसके साथ दुग्ध का भी सहयोग देते है। अधिक वैंगन के पहु चने पर पतला दस्त होने लगता हे तव चतुर वैद्य का कार्य हे कि मात्रा कम कर देवे। कई वच्चो को जोर के दस्त आते हैं। इससे न घवराते हुए मात्रा कम करके दशा सुधरने पर पुन क्रम वर्धन करना चाहिये।

केवल वैंगन का भर्ता व रोटी मात्र देने से ही देहाती पुष्ट वच्चे शीघ्र स्वस्थ होते पाये गये है। कितनो को मडूर भस्म भी देनी पडी, किंतु उचित यही हे कि औषधि युक्त ही यह प्रयोग हो।

यदि ज्वर अधिक रहे तो वाल-रस (भै र. आदि ग्रन्थो मे प्रयोग है) १ रत्ती और मिलाना चाहिये। इससे ज्वर कम होता तथा वल आता हे। मूत्र का वर्ण सुधरता है। यदि विवध हो जाय तो आधी रत्ती 'यकृत-प्लीहादि लौह' प्रात साय इसके साथ देने से मल आने लगता है।

भर्ता—वैंगन को कडे की आग मे जो वहुत तेज न हो भून कर ऊपर का छिलका हटाकर, भर्ते मे सैधा-नमक, कालीमिर्च मिलाकर तैयार करे, स्वस्थ मनुष्य इसमे हरी, लाल मिर्च व शुद्ध सरसो तेल भी डाल लें तो उत्तम स्वादिष्ट हो जाता है। भर्ते को तेल या घी मे तलने से उसका साराश जलकर नष्ट होजाता हे, लाभ प्रद नही होता।

इस प्रकार वैंगन का सेवन लाभप्रद व विशेषकर यकृत के लिये विशेष उपयोगी है। यह अनुभव स्वत कई रोगियो पर किये गये है। अत. ठीक प्रकार से किसी सुयोग्य चिकित्सक की सलाह लेकर इसे प्रारम्भ करना चाहिये।

स्वस्थ व्यक्तियो के लिये स्वास्थ्य रक्षार्थ—शीत ऋतु मे वैंगन का शाक, विना मसाले का (या वहुत कम मसाले का) १५ दिन कम से कम खा लेने पर एक वार यकृत का सशोधन हो जाता है। इसी ऋतु मे वैंगन अधिक पैदा होते है तथा इसी ऋतु मे सचित पित्त का प्रकोप होता है। वैंगन खाने से पित्त की वृद्धि होकर प्रणालिया, आत्र आदि की स्थिति ठीक हो जाती है। मल मे पित्त निकल जाता हे, प्रकोप का हेतु नही वनता। अत इस ऋतु मे इसका सेवन विशेष लाभप्रद होता है।

वैंगन की दूसरी फसल ग्रीष्म के प्रारम्भ मे होती है। इसमे सिंचाई अधिक होती है, ग्रीष्मातप से यह अधिक आग्नेय गुण लेता हे। अत गरम होता है। इसी समय वसत ऋतु होने से यह कफ की प्रकोपावस्था का काल होता है। अत अल्प मात्रा मे—इसका शाक सेवन लाभ-दायक होता है। अधिक मात्रा मे यह उष्णताकारक, दस्ता-वर एव हानिकर हो जाता है। पतले दस्तो मे वैंगनी रग के भटा का उपयोग लाभप्रद है।

मात्रा—स्वस्थ व्यक्ति एक वार मे १ पाव तक वैंगन का शाक या भर्ता खा सकता है तथा शरीर पर कोई हानि नही होती। मृदुकोष्ठ वाले को पतला मल आता है। साधारण व्यक्ति इसका ५ से १० तोला तक भर्ता सरलता से पचा सकता हे।

हरा कोमल वैंगन कच्चा ही खाने से क्षुधा वृद्धि होती है। किन्तु रोगी को नही खाना चाहिये।

—फलाक (रसायन) से साभार

वोकड़ी (Convolvulus Argentens)

त्रिवृत्त कुल (Convolvulaceae) की यह लता वागो या खेतो की मेडो या कूपनो पर वहुत फैली हुई होती है। पत्र व पुष्प गुलवास के पत्र, पुष्पो जैसे होते है। यह महा राष्ट्र की ओर कोकण, वम्बई आदि तथा वगाल मे अधिक पाई जाती है।

नोट—यह समुद्रशोष (विधारा न २) Argyreia Speciosa का ही एक भेद विशेष हे।

नाम—

स.—वृषपत्रिका, अजात्री, इ। हि—वोकडी (यह वास्तव मे मरेठी नाम है) म—पुङ्गली, पुङ्गल वेल,



बोकडी । गु –पुङ्गडी । ब –छागलवेटे । ले –कनवोलवलस अर्जेन्टेन्स, कन नर्वीसस (Con Nervosus), कन स्पेसीओसा (Con Speciosa) ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, कटु, तिक्त, कसैली, मधुर, कटु विपाक, स्रसन, शीतवीर्य, रोचक, वीर्यवर्धक, वातकारक, गर्भोत्पत्तिकारक, कास, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, कफ, पित्त, हृद्रोग तथा विष निवारक है ।

वेदनाकारक शोथ युक्त फोडे को फोडने के लिए इसके पत्तो को पीसकर पुल्टिस बना बाधते है । भयकर दूपित व्रणो पर पत्तो का लेप या पुल्टिस लगाने से जलन, वेदना शात होकर शीघ्र लाभ होता है ।

शेप गुणधर्म व प्रयोग समुद्रशोष जैसे ही है ।

बोजीदान—देखिये–अकरकरा । बोडा—देखिये–लोविया । बोतसुर (वुतसुर)—देखिये–अमसानिया ।

बोंदरी (Bondari)

हमारे जिले (बालाघाट म प्र) मे यह बूटी होती है, जो अक्षय तृतीया के वाद धूप की तेजी वढ जाने पर खेतो मे पैदा होती है ।

पौधा जमीन से लगा हुआ, छछलता रहता है । पत्ते खुरदरे रेखादार, कट किनारी के होते हैं । यहा के देहाती लोग वोदरी कहते है ।

प्रयोग—

लू लगने पर इसे सिलपर पीस कर लगुदी वना लेवे । पीसते समय सिर धोने की चिकनी मिट्टी थोड़ी डालकर ठंडा पानी सीचते जायें । जब अच्छी तरह पिस जाय, तब कपड़े मे रख निचोड लें, और काच की कटोरी मे २½ तोला यह रस लू लगने वाले रोगी को पिलादें । ज्वर की तेजी, घवराहट, वेचैनी, वमन आदि शान्त होकर एक दम नीद आ जाती है । प्रात साय या दिन मे ३ वार ३ खुराक पिलाने से रोग निर्मूल हो जाता है । यह स्वाद मे कड़ुआ, कसैला एव अति शीतल हे ।

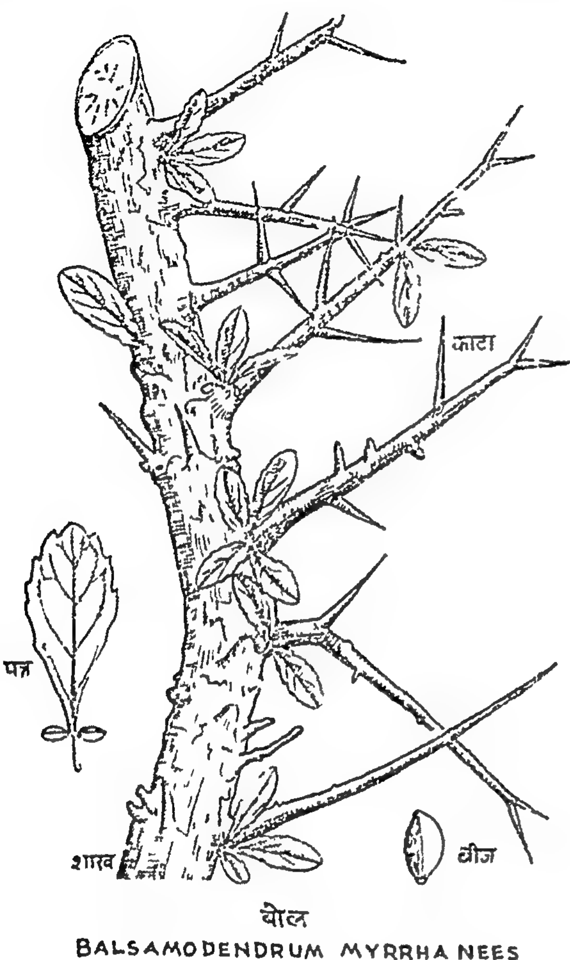
मैंने इस बूटी का प्रयोग भवके से अर्क खीचकर उन्माद के रोगियो पर भी किया है । एक पुरुष जो क्लर्की करता था उन्माद रोग से पीडित हो गया था, नीद नही आती थी, रात दिन प्रलाप करता था । उसे दिन रात मे ६-६ घण्टे के वाद ४–४ मात्रा पिलायी । पहिले ही दिन नीद आ गई । १४ दिन के सेवन से दुरुस्त हो गया । इसी तरह एक २९ वर्ष की स्त्री को उन्माद हो गया । वह भी इसके सेवन से अच्छी हो गई ।

बोल (हीराबोल) [Bolsamodendron myrrha]

गुग्गुल कुल (Burseraceae) का यह वृक्ष गूगल के वृक्ष से मिलता जुलता सा होता है, किन्तु इसमे काटे होते हैं । इसके काण्ड मे क्षत करने से जो एक गाढा निर्यास निकलता है, उसे ही बोल कहते है । इस निर्यास (गोद) मे जो गोल, बेडौल छोटे बड़े दाने से होते है, वे परस्पर मे चिपककर वडे वडे पिंडो के रूप मे परिणित हो जाते है । ये रक्ताभ, पीले या धूसर वर्ण के तेलिया बहुत कुछ गूगल जैसे भगुर, सुगधित, तथा स्वाद मे कुछ कडुवे खरासदार होते हैं ।

यह वृक्ष पूर्वोत्तरो अमेरिका, सोमालीलैंड का आदि-

● इसके लेटिन नाम तथा कुल का पता हमे नही मिला । इसके विषय मे श्री वैद्य नान्हूलाल जी गुप्ता, आयुर्वेद विशारद, गाधी चौक, जिला बालाघाट (म प्र) ने जो कुछ धन्वन्तरि वर्ष ३६ अङ्क ८ मे प्रकाशित किया उसे ही यहा उद्धृत किया है—सम्पादक ।



बोल
BALSAMODENDRUM MYRRHA NEES

वासी है । तथा अरब, पर्शिया, अबीसिनीया, श्यामादि देशो मे भी होता है । इसके निर्यास (बोल) का प्रधानत सग्रह उक्त सोमालीलैंड नामक प्रान्त मे होता है । वही से इसका आयात अरब के अदन नामक बन्दरगाह पर होता है, जहा से यह सीधे यूरोप में भेजा जाता है, अथवा प्रथम भारत के बम्बई मे जाता तथा यहा से इसका निर्यात यूरोपीय देशो को होता है। इसके अतिरिक्त इसका न्यूनाधिक सग्रह अफ्रीका के अबीसीनिया प्रान्त, दक्षिण अरब, पर्शिया (फारस) एव श्याम आदि देशो मे होने वाले इसके वृक्षो से भी होता है । मक्का का बोल (मुरमक्की) सर्वोत्तम माना जाता है ।

नोट न० १—बोल के प्रकार—एक तो प्रस्तुत प्रसग का रक्ताभ, लाल बोल (हीराबोल) है । इसके वृक्ष कुछ प्रमाण भी कहीं-कहीं भारत के पश्चिम भाग मे भी पाये जाते हे । किन्तु इनका निर्यास (बोल) उतना श्रेष्ठ, विदेशी बोल जैसा नही होता कुछ हीन प्रकृति का होता है । बम्बई की ओर इसकी उत्तम जाति को करमू और हलकी जाति को म्हैसा बोल कहते है । बाजारो मे व्यापारी लोग इसमे गूगल आदि अन्य जाति की गोदो का मिश्रण कर देते हैं। परीक्षार्थ इसे तेजाब मे डालकर देखें, यदि तेजाब का रङ्ग बैंगनी या किरमिची हो जाय तो उत्तम असली जानना चाहिए ।

दूसरा श्वेत बोल है । यह श्वेताभ कृष्ण वर्ण का होता है । यह विशेषत प्रसूता स्त्री या गाय भैंस को कत्थे के साथ खिलाया जाता है जिससे गर्भाशय की शुद्धि एव दुग्ध की वृद्धि होती है । मरेठी मे इसे बालत बोल कहते हैं ।

तीसरा कृष्ण बोल (काला बोल) है । यह प्रस्तुत प्रसग के बोल से भिन्न रसोन कुल् (Liliaceae) के ग्वारपाठे का घन सत्त्व है । इसे एलुवा या मुसब्बर कहते है । इस ग्रन्थ के भाग १ मे एलुवा तथा भाग २ मे ग्वारपाठे के प्रकरणो मे इसका सचित्र वर्णन देखिये ।

चौथा मोमियाई बोल है । मनुष्य के रक्त से जो प्राचीन काल मे मोमियाई बनाई जाती थी, तथा अभी भी कही-कही बनायी जाती हे । उसे भी एक प्रकार का बोल माना जाता है । यह काला मोम जैसा होता हे, इसके लगाने से बडे-बडे जखम शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं। प्रस्तुत प्रसग का बोल भी जख्मो को एव दुष्ट व्रणो को अच्छा कर देता है, किंतु मोमियाई जैसा यह शीघ्र अच्छा नही करता ।

मोमियाई—यूनानी मे जिस शिलाजीत विशेष को मोमियाई कहते हे । वह शिलाजीत जैसा ही एक द्रव्य है, जो अरब और फारस के पहाडो से प्राप्त होता था। आजकल वह अप्राप्य होने से इसके स्थान मे शुद्ध शिलाजीत (सत शिलाजीत ही) लिया जाता है । किन्तु यह असली मोमियाई (मोमिया) जैसे व्रण जखमादि मे बाह्य प्रयोगार्थ विशेष काम मे नही आता ।

नोट २—बोल का उपयोग प्राचीन काल मे नही होता था । अत चरकादि प्राचीन ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता । मुसलिम शासन काल से इसका उपयोग

आयुर्वेद मे हो रहा है। कई विद्वानो का अनुमान हैं, कि बहुत प्राचीन काल मे बोल के स्थान पर प्राय बोल जैसा उपयोगी 'जिगनी' वृक्ष के निर्यास (गोंद) को काम मे लाया जाता था। इस ग्रन्थ के भाग ३ या ७ मे जिगनी का प्रकरण देखिये।

नोट ३—कही-कही बोल को हीरादोखी (खून-खराबा) कहा जाता है। किन्तु, वास्तव मे हीरादोखी इससे भिन्न है। आगे यथास्थान भाग ६ या ७मे हीरादोखी का प्रकरण देखिये।

नाम—

स०—बोल, गन्धरस, पिण्ड, गोपरस इ०। हि० बोल, हीराबोल, बीजाबोल। म०—बोल, रकत्या बोल, बालत बोल,हिराबोल, करम, बन्दर करम। गु०—हीराबोल। ब—गन्धरस, गन्ध बोल। अ०—मिर्र (Myrrh) ले०—बालसमोडेण्ड्रोन मिर्रा, कोमिफोरा मिर्रा (Commiphora Myrrha)।

रासायनिक संगठन—

इसमे एक उड़नशील मिर्रोल (*myrrhol*) नामक तैल ५-१० % तथा गोंद ३० से ६०%, राल ३५%, मिर्रीन [myrrhin] नामक एक तिक्त सत्व और कैल्सियम, फास्फेट, कार्बोनेट आदि पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु, कषाय, उष्ण (मतान्तर से शीत) वीर्य, कटु विपाक, त्रिदोषहर विशेषत वातशामक दीपन, पाचन, उत्तेजक, वातानुलोमन, मेधाजनक, रक्तशोधक, रक्तगत श्वेत कणवर्धक, श्लेष्महर, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रल, आर्त्तवजनक, स्वेदल, गर्भाशय शोधक, लेखन तथा कृमि, वातकफजन्य विकार, अग्निमाद्य, विबन्ध, आनाह, उदर रोग, पाण्डु, वातरक्तादि रक्तविकार, कास, श्वास, पार्श्वशूल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, कष्टार्त्तव, प्रदर, योनिशूल, चर्मरोग, नेत्राभिष्यन्द, ज्वर, कुष्ठ, अपस्मार, रक्तातिसार, ग्रहबाधा आदि पर प्रयुक्त होता है, पुरुषत्व नाशक है।

मुख से लेकर गुदापर्यन्त इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। अत अजीर्ण, विबन्ध व पाडु रोग मे इसका विशेष उपयोग होता है। यह रक्त के श्वेत्त कणो (Leucocytes) को बढाकर पाडु एव युवा लडकी के हलीमक (रक्ताल्पता chlorosis) मे विशेष लाभ करता है। उसमे इसका टिंचर (आसव आगे विशिष्ट योग देखे) दिया जाता है। स्थानिक क्रिया के लिये गण्डूस (mouth wash))के रूप मे इसका प्रयोग अनेक मुख रोगो मे उपयोगी होता है। एतदर्थ १ औंस जल मे इस का टिंचर २ ड्राम मिलाकर प्रयुक्त करते है। इस मिश्रण मे थोडा सुहागा मिला देने से इसकी क्रियाशीलता और भी बढ जाती है। इस रूप मे इसका प्रयोग मुखपाक, मुख के निनावा रोग (Aphthous), जिह्वा व्रण, गलशैथिल्य (Relaxed throat) एव मसूढो के रोग [Spongy gums] आदि मे किया जाता है। जीवाणु नाशक एव कफ नि सारक (disinfecting expectorant] के रूप मे इनका प्रयोग चिरकालिक ब्राकाइटिस तथा श्वास नलिका विस्फार (Bronchiectasis) रोग मे तथा आर्त्तव प्रवर्त्तक होने के कारण इसे एलुका एव लौह भस्म के साथ नष्टार्त्तव, कष्टार्त्तव आदि रोगो मे किया जाता है। दीपन, पाचन तथा वातानुलोमन क्रिया के लिए रेचक औषधियो में सहायक रूप से योजना की जाती है।

यह शरीर के भीतर जाकर श्वास मार्ग, फुफ्फुस, प्रजनन मार्ग मूत्रेन्द्रिय, तथा श्लेष्मल त्वचा के द्वारा बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिन जिन मार्गो से यह निकलता है उन मार्गो की विनमय क्रिया को सुधारते हुए उनको उत्तेजित करते हुए अन्दर के दूषित विकार या विष को स्वेदन, मूत्र एव कफ के साथ बाहर निकाल देता है। त्वचा मार्ग से बाहर निकलते समय स्वेद को बढाकर, मूत्रेन्द्रिय से निकलते समय मूत्र के प्रमाण को बढाकर अन्दर के विषो को बाहर निकालता है, फुफ्फुस एव श्वास नष्ट करते हुए उसे निकाल बाहर करता है। इससे श्लेष्मक त्वचा की शिथिलता कफ का निस्सरण एव उसमे रहने वाले दूषित जन्तुओ का नाशक होता है। अत चिरकालीन कफ रोगो मे इस का उपयोग किया जाता है। तरुण मनुष्यो की खासीमे

बहुत लाभप्रद है। प्रजनन मार्ग से निकलते समय यह गर्भाशय का सकोचन करने वाला, उत्तेजक एव आर्त्तव प्रवर्त्तक होता है। इससे गर्भाशय का शैथिल्य, जीर्ण वस्ति शोथ और श्वेत प्रदर मे भी लाभ होता है। सन्धिवात, वातरक्त, गृध्रसी आदि पर इसका लेप करते है। यह शोथ प्रतिवन्धक (सडान को दूर करने वाला) होने से अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ मिला गोलिया वना, महामारी (हैजा) के समय प्रकोपनिवारणार्थ देते हैं।

(१) मुख पाक, दन्तवेष्ट, कठ शोथ, कठ रोहिणी दतशूल तथा दद्रु पर—

मुखपाक, दन्तवेष्ट (पायरिया) कण्ठशोथ पर—इसे अर्क गुलाव मे मिलाकर कुल्ले कराते है या इसे अन्य द्रव्यो के साथ चूर्ण कर भीतर वुरकते है। अथवा इसके चूर्ण मे समभाग शहद और रेक्टिफाइड स्प्रिट मिलाकर इस मिश्रण को अर्क गुलाव या [गुलाव के पुष्पो का फाण्ट] ५० भाग मे घोलकर गण्डूप करायें। अथवा इसके टिंचर २ ड्राम मे १ ड्राम सुहागे का फूला और २ औंस जल मिलाकर कुल्ले कराने से कठ मुख और जिह्वा के क्षत [छाले आदि] मे लाभ होता है। मसूढे वलवान वनते हैं। मसूढो मे क्षत हो तो उस पर इसका टिंचर लगाया जाता है।

दन्त शूल पर—इसके टिंचर १ भाग मे २ भाग जल मिला दिन मे २,३ वार कुल्ले कराने से शूल दूर होता है एव मसूढे सशक्त होते हैं।

दन्त शूल मे—दातो के गड्ढे मे इसके चूर्ण को भर देने से भी लाभ होता है। या इसके चूर्ण मे गूगल को पीसकर डाढ पर लगाते है।

कण्ठ के सक्रामक रोग कठ-रोहिणी (diphtheria पर—इसके टिंचर मे ग्लिसरीन मिलाकर १ या २ घटे अन्तर से लगाते है तथा टिंचर के कुल्ले कराते है।

(२) उदर विकार, मासिक धर्म विकृति तथा कफ प्रकोप पर—

उदर सम्वन्धी विकारो पर—इसके १½ रत्ती चूर्ण मे रेवन्द चीनी समभाग और कालादाना चूर्ण २½ रत्ती एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) खरल कर जल के साथ सेवन से उदर विकार, क्षुधामाद्य तथा विवन्ध (कब्जी) दूर होता है।

मासिक धर्म की विकृति पर—वोलादि वटी—उत्तम वोल १० तोला, सुहागे का फूला, विलायती कसीस, एलुवा ५-५ तोला, भुनी हीग २½ तोला सवको एकत्र जटामासी के फाण्ट मे १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलिया वना लेवें। प्रात साय (या रात्रि को) भोजन के आध घण्टे वाद जल से सेवन कराने मे स्त्रियो की मासिक धर्म की विकृति दूर होती है। अनेक वालक होने या अन्य कारणो से गर्भाशय शिथिल हो जाने से मासिक धर्म मे थोडा और काला रक्त गिरता हो व मासिक धर्म शुद्ध न होता हो, कमर मे वेदना हो तथा नेत्रो मे निर्वलता हो तो यह वटी अति हितकर है। १-२ मास सेवन से रजोदर्शन नियमित वन जाता है—रसतत्रसार। यह योग स्व श्री प० यादव जी त्रिकम जी आचार्य का है।

अथवा—वोल, एलुवा और विलायती कसीस तीनो को समभाग मिला, ग्वारपाठे के रस मे ६ घण्टे तक खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया वना लें। एक या दो गोली दिन मे तीन वार जल के साथ सेवन से मासिक धर्म की शुद्धि एव वेदना की निवृत्ति होती है।

—गा औ र।

मासिक धर्म की प्रवृत्तियो के लिये वोल के साथ समभाग एलुवा मिला, जल मे पीस, वेर जैसी गोली या लम्वी मोटी वर्त्ति वनाकर योनि मे धारण करने से मासिक धर्म आने लगता है। आवश्यकतानुसार दूसरे दिन पुन इसका प्रयोग करें। ध्यान रहे गर्भाशय या उसके मुख पर शोथ हो, तो इसका प्रयोग न करे, तथा अधिक निर्वल एव नाजुक प्रकृति की रुग्णा हो तो भी विचार पूर्वक सौम्य उपचार करें। —रसतत्र सार

कफ प्रकोप पर—श्वास एव कफ कास की दशा मे, छाती मे अति कफ के सग्रहीत हो जाने पर छाती मे भारीपन, वेचैनी, घवराहट, मद ज्वर, हाथ पैर मे हड़कल, आलस्य, क्षुधानाश आदि लक्षण होने पर, वोल की ४-४ रत्ती की मात्रा जल के साथ दिन मे तीन वार देते रहने

से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है ।

—गा० औ० र० ।

(३) रक्तमेह, प्रदर, शीत प्रमेह, नेत्र विकार, व्रण, रक्त स्राव और दाह पर—

रक्तमेह पर—बोल १-१ माशा दिन मे दो बार ५-७ दिन तक जल के साथ देने मे मूत्र मे रक्त आना बन्द होता है ।

श्वेत प्रदर पर—४-४ रत्ती बोल को १-१ तोला चावलो के धोवन मे ६ माशा शहद मिलाकर दिन मे दो बार देते रहने से थोडे ही दिनो मे लाभ होता है ।

शीत प्रमेह पर—श्वेत बोल ३ माशा तथा पुराना गुड ६ माशा एकत्र खरल कर ३ गोलिया बना, प्रात, दोपहर भोजनोत्तर व रात्रि मे सोते समय १-१ गोली जल मे घोलकर ७-१४ या २१ दिन तक नित्य गोलिया तैयार कर देते रहने से कफज प्रमेह मे लाभ होता है ।

—व गु

नेत्र विकार पर—नेत्राभिष्यन्द मे इसे स्त्री के या गधी के दूध मे घोलकर नेत्रो मे डालते है । नेत्रव्रण या दृष्टिमाद्य मे उपयुक्त द्रव्यो के साथ अजन मे डाल कर लगाते हैं । या इसे दूध मे घोलकर नेत्र प्रक्षालन करते है ।

व्रणो पर—इसका लेप करने से शोथ प्रशमन एव रक्त स्तभन होता है ।

दुष्ट व्रण—जिसका दीर्घकाल से रोपण नही होता, दुर्गन्धित पूयस्राव होता है उसे इसके टिचर से धोते रहने से व्रण शोधन होकर शीघ्र भर जाता है ।

नाडी व्रण या भगदर आदि मे बोल धोये हुये घृत मे मिलाकर लगाया जाता है । या तैल मे मिला पिचकारी द्वारा प्रवेश कराया जाता है । तथा त्रिफला के साथ इसका सेवन भी कराया जाता है ।

रक्तस्राव पर—किसी शस्त्र के लग जाने से रक्तस्राव होता हो, तो उस पर इसका चूर्ण लगाने से तुरन्त बन्द हो जाता है । केशिकाये एव फटी हुई त्वचा जुड जाती है तथा पाक भी नही होता । [ऐसी दशा मे यह मोमियाई जैसा कार्य करता है ।] —गा औ र

दाद पर—बोल ४, कुलिजन २, रुमस्तगी व अजवायन १-१ भाग लेकर सबको पोटली मे बाध मटकी मे ४ गुने जल मे डालकर धूप मे रख दे । ३ दिन बाद इस जल के लेप करने से दाद अवश्य नष्ट हो जाता है ।

—भा भै र ।

नोट—मात्रा-साधारण मात्रा ५-१० रत्ती तक चूर्ण या गोली के रूप मे देवे । यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकर है । हानि निवारक शहद तथा सर्द एव तर द्रव्य है । प्रतिनिधि—कूट, जुदबेदस्तर, या मोमियाई [पीछे नोट देखें] हैं ।

विशिष्ट योग—

टिंचर [आसव] बोल के १ भागचूर्ण मे १० गुना मद्य [९० प्रतिशत वाला] मिला बोतल मे भर दृढ काग लगाकर रखे । ३ या ७ दिन बाद मोटे फलालैन के वस्त्र से छान, शीशियो मे भर ले ।

मात्रा—१० से ६० बूद तक जल के साथ देवे । यह आमाशय के लिये दीपक, वेदना नाशक श्वास, मार्ग के लिये कफस्रसक, गर्भाशय के लिये आर्त्तव प्रवर्त्तक तथा शोधक है । मुखरोग पर ऊपर से इसका लेप तथा जल मे मिलाकर कुल्ले करे ।

नोट—बोल पर्पटी रस, बोल बद्ध रस आदि के प्रयोग रस ग्रन्थो मे देखिये । विस्तार भय से यहा नही दिये जा सकते ।

ब्रह्म कमल (Saussurea obvallata)

भृगराजकुल [Compositae] के इस २-३ फुट तक लम्बे क्षुप के पत्र लम्बे, सुगधित, पुष्प—बड़े, श्वेत वर्ण के, उग्रसुगधयुक्त, विकसित होने पर अति सुन्दर लगते है । अगस्त सितम्बर मे पुष्प आते है ।



ब्रह्मकमल (सूरजकौल)

इसके क्षुप हिमालय मे काश्मीर से सिक्कम तक १० से १५ हजार फुट की ऊचाई पर पाये जाते हे।

नाम--

म हि—ब्रह्मकमल, पहाडी नाम—सर्जकौल, पजावी नाम—विर्म कवल, कवल, ले—सौसुरिया आववेलेटा।

प्रयोग—

गढवाल की ओर इसके पुष्पो की भस्म-प्लीहावृद्धि मे शहद के साथ देते है।

अपस्मार तथा मानसिक विकृति जन्य रोगो मे इसके पुष्पो से सिद्ध किये हुये तैल की सिर पर मालिश करते है।

इसकी जड कटे एव कुचले हुये शरीर के स्थान पर लगाते है।

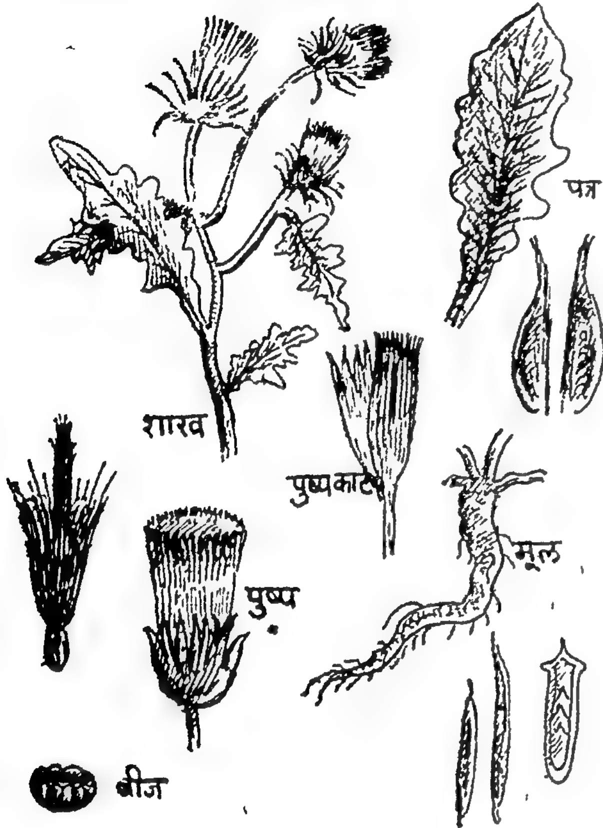
ब्रह्मदंडी (Tricholepsis Glaberrima)*

भृङ्गराज कुल [composi tae] के इस २–४ फुट ऊँचे, वर्षायु, चिकने क्षुप के काण्ड सीधे, कोमल कुछ श्वेत रग की शाखायें बारीक कोन युक्त धारीदार, पत्र बरछी के आकार के १-४ इच लम्बे, आधे इच से १ इच चौडे तीक्ष्ण कण्टक युक्त, अस्पष्ट नोकदार, किनारे दातेदार, ऊपरी भाग कुछ नाने वर्णो से युक्त, पत्र- वृन्तहीन होते है। पुष्प-पत्र युक्त गुच्छो मे बैंगनी, गुलाबी, नारगी या भूरे रग के, बाबूना के पुष्प जैसे तथा वैसी ही गन्ध वाले होते है। ये पुष्प शाखा के अग्र भाग पर प्रथम गोल निकलते, खिलने पर कटोरी की आकृति के लालिमायुक्त नीले हो जाते है। इनके चारो ओर बारीक एव कोमल काटे होते हैं। फल क्षुप के मध्य भाग से एक लम्बी डण्डी निकलती है जिसके अग्रभाग पर घुण्डी के आकारके लम्बे गोल, चिकने, बहुत कुछ ऊटकटारे के फल जैसे काटेदार होते हैं।

इसके क्षुप पश्चिमी राजस्थान, आबू पहाड, मध्य भारत, सौराष्ट्र तथा दक्षिण मे कोकण तथा दक्षिणी घाट, बम्बई प्रात तथा मैसूर, हेदराबाद आदि मे प्राय

* जिस प्रकार विष्णु भगवान की नाभि से कमल निकल कर ऊपर कमल दण्ड होता है जिस पर ब्रह्माजी बैठते हैं उसी प्रकार यह दण्डाकार निकल कर गुलाबी कण्टकयुक्त कमल के समान पुष्पयुक्त होती है। इसी लिये इसे ब्रह्मदंडी [दण्डी] कहते हैं।
—स्वर्गीय प० भागीरथ जी स्वामी

ब्रह्मदण्डी
TRICHOLEPIS GLABERRIMA D.C.



झाडियो मैदानो एव ज्वार आदि के खेतो की मेडो पर विशेष पाये जाते है।

नोट न० १—इसकी ही एक जाति जिसे लेटिन मे लेम्प्राचीनियम माइक्रोसिफेलम (Lamprachaenium Microcephalum Benth) कहते है। हिंदी, मराठी, सस्कृत मे इसे भी ब्रह्मदण्डी, अजदण्डी कहते है। इसका सीधा खडा क्षुप १-२ फुट तक ऊचा, काण्ड सादा, अल्प शाखा युक्त, चिकना, रोमश, गाठदार (ग्रन्थियो से युक्त) प्राय बेगनी आभायुक्त, पत्र २-३ इन्च लम्बे, १ से १½ इन्च चौडे, अण्डाकार, नोकदार, लम्बे पतले ऊपरी भाग छोटे-छोटे काटे जैसे रोमयुक्त, निम्न भाग सघन ऊन जैसे रोमो से आच्छादित, दूर दूर आरी जैसे किनारीदार, पत्र वृन्त ½-¾ इन्च लम्बा, पुष्प की घुण्डी छोटी वन्द काटेदार सी ¼/५ इन्च मे कम व्यास की, कोमल रोमश वृन्तयुक्त, फल या डोडी बहुत छोटी लम्बी गोल कुछ दबी हुई, कोमल उज्ज्वल होती है।

इसके क्षुप महाराष्ट्र प्रात, बरार, महाबलेश्वर, मद्रास, मैसूर आदि प्रान्तो मे पाये जाते है।

यह सुगन्धित कडवी है तथा चर्म रोग, श्वेत कुष्ठ, वात कफ के विकार तथा प्रदाह पर विशेष प्रकार से इसका घरेलू उपयोग किया जाता है। इसके पचाग को हिम, फाण्ट या क्वाथ के रूप मे सेवन कराया जाता है। शेष गुण धर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसग के ब्रह्मदडी जैसे ही है।

नोट न० २—प्रस्तुत प्रसग की ब्रह्मदडी का ही एक भेद वादावर्द है जिसे सस्कृत मे 'भूदण्डी' तथा लेटिन मे—Volutarella Divaricata or Tricholepsis Procumbens कहते है। इसका सचित्र वर्णन पीछे 'वादावर्द' के प्रकरण मे देखिये।

नोट न० ३—कही-कही भ्रमवश 'ऊटकटारा' ही ब्रह्मदडी माना जाता है। इस ग्रथ के भाग १ मे ऊटकटारे का सचित्र वर्णन देखिये।

नोट न० ४—आयुर्वेद के प्राचीन आर्ष ग्रन्थो मे ब्रह्मदडी का स्पष्ट उल्लेख या विशेष प्रयोग नही मिलता। मालूम होता है कि इसका विशेष प्रचार निघण्टुओ की रचना के समय से होने लगा है। तथापि इसका अधिक प्रचार एव घरेलू उपयोग भारत के दक्षिणी प्रान्तो मे प्राचीन काल से हो रहा है।

नाम—

स—ब्रह्मदडी, अजादण्डी, कटपत्र कला, हि—ब्रह्मदडी, म—ब्रह्म दडी, बोठामोर; गु—ब्रह्मदडी, फुसयाई, ब—छागलदडी, वामनदडी, अ—थिसल (Thistle), ले—ट्रायकोलेपसिस ग्लेबेरिया।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्ण वीर्य (मूल अति उष्ण), कामोद्दीपक, मज्जातन्तुओ को बलदायक, रक्तशोधक, स्मरणशक्ति वर्धक, व्रण पूरक तथा कफ, वात, शोथ, उन्माद, प्रदाह,

प्रसूत रोग, कृमि, वीर्यविकार, जीर्ण ज्वर, श्वेतकुष्ठादि चर्म रोग नाशक है।

(१) रक्त विकार, कुष्ठ, प्रमेह, रक्तमेह तथा गण्ड-माला पर—

रक्त विकार पर—छायाशुष्क किये हुये इसके पत्तो के चूर्ण की मात्रा बडो के लिये ३ माशा तक तथा बालको को ४ रत्ती से १ माशा तक आयु एव बलाबलानुसार २ से ७ कालीमिर्च के दानो के साथ खरल मे जल के साथ पीस छानकर नित्य सेवन से शीघ्र ही रक्त शुद्ध हो कर छोटे बडे फोडे फुसी, गुमडे ७ दिन मे दूर हो जाते है। बालको की मात्रा मे कालीमिर्च १–३ दाने मिला १ या २ चम्मच जल मे पीसकर बच्चे की नाक पकड कर पिलावें अन्यथा वमन हो जाती है, क्योंकि यह बहुत कडवी होती है। इस बूटी का अर्क निकाल कर पिलाने से भी यही लाभ होता है। —भा ज बू।

नोट—इसके पचाङ्ग का हिम या फाण्ट बनाकर सेवन से भी रक्त शुद्धि होती है। आगे विशिष्ट योगो मे इसके आसव का प्रयोग देखे।

कुष्ठ पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण एक तोला के साथ सात कालीमिर्च के दानो को जल मे पीस छान कर नित्य ४० दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन कराने से बहुत लाभ होता है। पथ्य मे केवल चने की रोटी देवे।

प्रमेह पर—उक्त कुष्ठ के प्रयोग से प्रमेह रोग मे भी लाभ होता है। अथवा चूर्ण की मात्रा १ से ३ माशा तक दूध के साथ सेवन से भी प्रमेह मे लाभ होता है।

रक्तमेह पर—पचाङ्ग का जौकुट चूर्ण २ तोला को २० तोला जल मे रात्रि के समय भिगो, प्रात छानकर पिलाने से मूत्र मे रक्त आना बन्द हो जाता हे, जलन भी दूर होती है। नेत्र रोगो मे भी यह हिम लाभदायक है। प्रसूति के बाद होने वाली गर्भाशय की पीडा भी इसके सेवन से दूर होती है। —स्व प भागीरथ जी स्वामी।

गण्डमाला पर—इसकी जड को चावल के धोवन के साथ पीसकर लेप करने से तथा चावलो के धोवन के साथ महीन पीस छानकर पिलाते रहने से फूटी हुई गण्डमाला नष्ट हो जाती है। —यो र.।

(२) बुद्धिवर्धनार्थ तथा नपुंसकता, वाजीकरणार्थ, जीर्ण ज्वर, रक्त प्रदर और व्रणो पर—

बुद्धि वर्धनार्थ पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण तीन से छ माशा तक की मात्रा मे गोदुग्ध या जल के साथ सेवन से स्मृति बढती, स्वर शुद्धि होती, रक्त शुद्धि, वीर्य शुद्धि होती, कामशक्ति, स्तभन शक्ति बढती, शरीर का शैथिल्य, शुक्र मेह दूर होना, कमर की कमजोरी व मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

नपुंसकता पर—इसकी जड को छायाशुष्क कर, उसके साथ उसकी छाल को भी समभाग लेकर चूर्ण कर लेवें। उसमे समभाग मिश्री या शक्कर मिला, प्रात साय १–१½ माशा की मात्रा मे, मिश्री मिला और केशर मिले हुये दूध के साथ सेवन से वीर्य शुद्धि होकर, पुष्टि होती है तथा नपुसकता दूर होती है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके पचाङ्ग को अन्य ज्वर नाशक द्रव्यो के साथ फाण्ट या क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं। ऐकाहिक विषम ज्वर मे इसके रस का नस्य देते हैं।

—सकलित।

वाजीकरण—इसके स्वरस से गेहू का आटा माडकर बाटी बना, खूब सेंक कर, घृतयुक्त चूरमा बनाकर, नित्य ११ दिन तक खाने से खूब वाजीकरण होकर शक्ति बढती तथा मज्जा तन्तुओ के रोग भी नष्ट होते है।

—स्व प भागीरथ जी स्वामी।

रक्त प्रदर पर—इसका पचाङ्ग का चूर्ण १ तोला और रसौत ½ तोला को दस तोला जल के साथ पीस छानकर उसमे ३ तोला मिश्री मिला, दिन मे ४ बार पिलाने से लाभ होता है।

व्रणो पर—इसके पचाङ्ग की भस्म को घृत मे घोट कर लगाने से लाभ होता है। केवल इसकी राख को शोथ पर मलने से सूजन दूर होती है। —सकलित।

(३) कविराज श्री कर्णराय जी "आत्माराम बाबा" (निजामपेठ हैदराबाद) के कृपाकर प्रेषित स्वानुभूत अमूल्य प्रयोग—

साधारण मासिकस्रावावरोध पर—ब्रह्मदडी मूल (जौकुटकर) दो तोला पुराना (कम से कम दो वर्ष



का) गुड (लगभग ३–४ तोला) और जल ३० तोला एकत्र पकावे। दस तोला तक शेष रहने पर छानकर प्रात सूर्योदय के पूर्व पिलावे। भोजन मे मूग की दाल की अलूनी (बिना नमक की) खीचडी, घृत मिलाकर खिलावें। यह प्रयोग हमने मासिक होने से ७ दिन पूर्व चालू कराया मासिक खुलकर आया। कुल १२ दिन तक प्रयोग कराया गया। वेदनाये शान्त हो गयी। पश्चात् रुग्णा को ब्रह्मदडी चूर्ण १½ माशा और हरताल (पत्र हरताल, तबकिया हडताल) भस्म ½ चावल, एकत्र खरल कर दूध के साथ प्रात साय सेवन कराया। ईश कृपा से रुग्णा के सारे उपद्रव दूर हो गये। किंचित् प्रदर रोग रहा, जो कि मार्त्तण्ड फार्मेसी के प्रदरान्तक ६ इजेक्शन हर चौथे दिन लगाने से दूर होकर रुग्णा को एक वर्ष बाद लडका हुआ।

उक्त हरताल भस्म की विधि—पत्र हरताल [उत्तम पीला आवदार] ५ तोला लें चाहे तो इसे शुद्ध कर पीपल छाल की श्वेत राख १½ सेर और मजीठ की राख १½ सेर दोनो को मिला, एक शराव मे आधी राख भरें तथा बीच मे हरताल की डली रख ऊपर से शेप राख दबाकर भर दे। नीचे कीकर [बबूल] की मद आच देवें। ३ प्रहर मे श्वेत भस्म हो जाती है। आच देते समय राख से जब धुआ निकले अन्य राख डालकर उसे दबाते जावें। हाडी या शराब को आग पर चढाते समय अपने इष्ट देव का, ईश्वर का नाम लेकर या सत श्री अकाल कहकर नीचे आच देना प्रारभ करे। ३ प्रहर बाद, धीरे से शराब को नीचे उतार स्वाग शीतल हो जाने पर ऊपर की राख धीरे-धीरे दूर कर बीच की श्वेत भस्म चम्मच से निकाल लेवें। राख जो आस पास हो, उसे ज्वर पीडित पर प्रयोग करें। यह हरताल भस्म क्षय के सिवा अन्य सब ज्वरो पर लाभकारी है। कुष्ठ मे इसे १ सुई के नोक बराबर मुनक्का मे दें ऊपर से त्रिफला कषाय अनुपान मे दें। नमक न दे। ४० दिन मे लाभ हुआ है। उपदश तथा वात रोगो मे, धनुर्वात आदि रोगो में यह यथोचित अनुपान से देवें।

रक्त शुद्धि और रजप्रवृत्ति के लिये—एक लडकी १६ वर्ष की, शरीर मे फोड़े फुसी बहुत हो गये थे उसे ब्रह्मदडी चूर्ण १-१ माशा दिन मे ३ बार दिया। अनुपान मे मेहदी पत्र ७ नग, गोरख मुण्डी फल ५ नग मोटा चूर्ण कर १५ तोला गरम जल मे रात्रि के समय भिगो प्रात मल छान कर तीन बार दिया गया ३ सप्ताह मे लडकी स्वस्थ हो गयी। उसकी माता ने कहा कि लडकी अभी तक बालिग नही हुई है, मैने उपरोक्त ब्रम्हदडी वाला गुड योग कपाय १५ दिन तक प्रयोग कराया, जिससे उसके शरीर मे स्फुरण पैदा हुआ और वह लडकी २८ दिन औषध प्रयोग करने के पश्चात् दूसरे मास मे प्रथम वार रजस्वला हो गयी। लोहमण्डूर कल्प भी साथ मे प्रयोग कराये गये। दूसरी बार मासिक होने के पश्चात् वह अच्छी खासी युवती मालूम होने लगी।

श्वास कास के वेग पर—हमने ब्राम्हदण्डी का स्वरस आग पर थोडा गरम कर गुन-गुना कर थोडा-थोडा १ तोला तक चटाया है। आशातीत लाभ हुआ है। दौरा आसान हो जाता है, कफष्ठीवन आसानी से होता है।

वशीकरणार्थ तात्रिक प्रयोग—ब्रम्हदण्डी, वच, कुष्ठ [कूठ] मीठी सबको समभाग चूर्णकर रखें। इसकी १ चुटकी पान मे रख कर रविवार के दिन खिला देने से कैसा भी हठीला हो अवश्य वश हो जायगा। ४ बार करके देखे। प्रत्येक बार भगवती कामदा को याद कर लिया करें। इससे दुष्ट स्त्री पुरुपो को सुमार्ग पर लगाया जा सकता है। अपनी मान मर्यादा वढाने के लिये प्रयोग करे। दुष्टता व लपटतावश प्रयोग करेगा तो भगवान का काल सर पर है। इसका ध्यान रखे।

नोट—इसके पचाग का स्वरस १ तोला की मात्रा मे प्रयोग करने से तथा अलूना पथ्य देने से शरीर जडता एव फोडे फुसी आदि दूर होते हैं। नाडी जाल को पुष्ट करता है। फिरङ्ग व सोजाक मे इसका प्रयोग करने पर रोग शाति होती हे। पचाग का चूर्ण १ से ३ माशा जल या दूध से प्रयोग कराने पर रक्तशोधक तथा वीर्यशोधक गुण दर्शाता है। उबालकर क्वाथ रूप मे पानी से वात नाडी जाल की पुष्टी करता है। वृद्ध मनुष्यो के कटिशूल को यह क्वाथ अत्यन्त लाभप्रद है। भोजन मे नमक कम खावे या छोड देवे (सेंधा नमक खावें) प्रमेह रोग मे भी मेरे अनुभव मे ब्रम्हदडी अच्छा काम देती है। प्रमेह

व्याधि मे इसका चूर्ण १ से ३ माशा दूध के साथ प्रयोग कराता हू ।

—कविराज श्री कर्णराय जी 'आत्माराम बाबा
निजामपेठ हैद्राबाद

नोट—मात्रा शुष्क चूर्ण २ से ७ माशा तक, ताजी हरी १ तोला तक । स्वरस १ से २½ तोला तक । क्वाथ के लिये ½ से २ तोला तक । मूल—१ से २ तोला ।

यह पारे को बांधने वाली मानी जाती है । इसके पत्र स्वरस मे शहद मिलाकर योनि मे लेप कर, सभोग करने से स्त्री पुरुष दोनो को अति प्रसन्नता होती है ।

—वैद्य मनोरमा ।

इसकी मात्रा अधिक सेवन से यह रूक्षता पैदा करती है । हानि निवारणार्थ शहद देते है । इसकी प्रतिनिधि गोरखमुडी,नीलकठी है ।

विशिष्ट योग—

ब्राम्हदण्डयासव (रक्तदोपहारक)

ब्रहमदडी की जड ४ सेर और गोरखमुण्डी का पचाग १ सेर दोनो को जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावे । ५ ६ सेर तक शेप रहने पर छानकर ठडा होने पर सधान पात्र मे भर उसमे शहद ३ सेर मिश्री २½ सेर, धाय पुष्प का चूर्ण १ सेर तथा कालीमिर्च चूर्ण ५ तोला मिला अच्छी तरह मुख मुद्राकर २१ दिन सुरक्षित रखने के बाद छानकर बोतलो मे भर लें । मात्रा १ से ४ तोला तक । यह रक्तदोप, उपदश जन्य व्रण, कुष्ठादि नाशक हैं । रक्त को शुद्ध करता है ।

—स्वकृत ।

ब्रम्ह वृक्ष—देखे—ढाक । ब्रम्हमण्डूकी—देखे—ब्राम्ह । ब्रम्ह सीचली—देखें—हुरहुर ।

ब्राह्मी (Hydrocotyle Asiatica)

गुडूच्यादि वर्ग एव शतपुष्पाकुल (umbelliferae) की इस क्षुप रूपलता के प्रसरणशील काण्ड के प्रत्येक पर्व से मूल, पत्र, पुष्प व फलो का उद्गम होता है । पत्र एकान्तर गोल, वृक्काकार, अखड, किन्तु किनारे प्राय गोल दन्तुर, ½–२½ इन्च लम्बे चौडे ७ शिराओ से युक्त स्वाद मे तिक्त, कटु, किंचित् सुगधित, किन्तु शुष्क पत्तो मे स्वाद तथा गन्ध अत्यल्प, पुष्प—वसन्तऋतु मे काण्ड के पर्व से निकले हुये कई रोमश चिकने पुष्प दण्डा (सलाकाओ) पर छोटे छोटे नीलाभ श्वेत या लाल वर्ण के सख्या मे ३-५ सवृन्त पुष्प, फल–ग्रीष्म मे लम्बजगोल कडे चिपटे ½–⅙ इन्च के एक साथ प्राय २ से ७ तक हैं । मूल–सूक्ष्म सूत्रवत् ।

यह प्राय भारत मे ही और सोलन मे भी कही-कही ४ हजार फुट की ऊचाई तक जलाशयो के किनारे (रुके हुए या दूपित जलाशयो के किनारे नही) पायी जाती है । अन्यत्र होने वाली ब्राम्ही भारत की जैसी शुद्ध गुणदायक नही होती । किन्तु भारत की भी विशेप प्रभावशाली वही होती है जो गगादि पवित्र नदियो के या उनकी नहरो के किनारे पायी जाती है । इन स्थानो पर यह आसानी से प्राप्त होती है । जहा तक हरी मिले इसे ताजी ही लेना ठीक होता है, अथवा इसे छायाशुष्क कर सुरक्षित रखना चाहिये । धूप मे सुखाने से यह वेकार हो जाती है । इसका तैलीय द्रव्य 'अलकोहल ईथर' उड जाता है ।

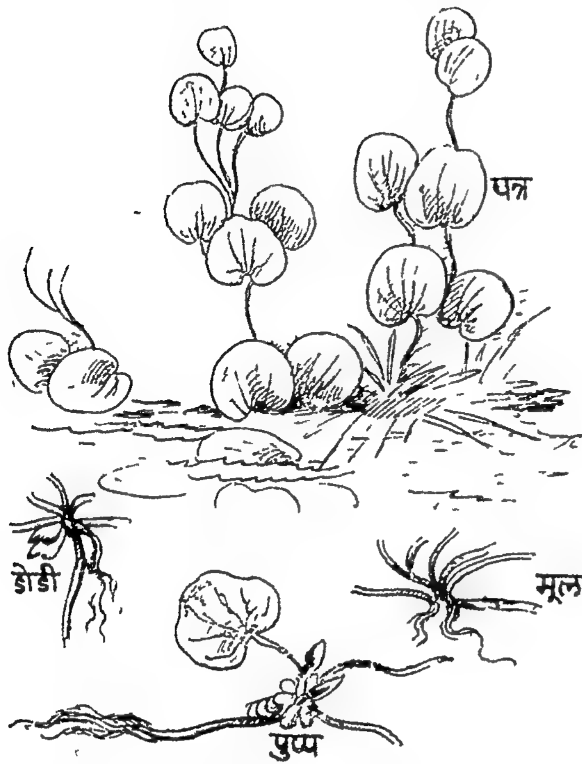
नोट न १ ब्राह्मी ओर मडूकपर्णी—प्रस्तुत प्रसग की ब्राह्मी तथा मडूकपर्णी ये दोनो दिव्य बूटिया एक ही जाति की भारत मे अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध है । यजुर्वेद मे ब्राह्मी के सन्तानोत्पादक गुण का सप्रयोग वर्णन आया हुआ है ⊛ । मडूकपर्णी की प्रसिद्धि विशेपत चरका

⊛ "तनूपा भिपजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजासीन्द्रियमिद्रायपथिभिर्वहान ।" यजु अ २० म ५६" –विद्वान वैद्य सतानोत्पत्ति के लिये सरस्वती (ब्राह्मी बूटी) को मधु के साथ सेवन करावे । इस प्रकार इसके सेवन से वीर्य और रज ठीक स्थान मे जाकर स्थिर होकर गर्भ का धारण करता है ।

"अश्विना भेपज मधु भेपज न सरस्वती । इन्द्रेत्वष्ठायश श्रियरूप मधु सुते ॥"–यजु २० मन्त्र ६४ ॥ अर्थात् प्रजोत्पत्ति के लिये वैद्य हमे मधु और ब्राह्मी बूटी देते हैं । इससे सारे ससार का रचियता उत्पन्न हुए पुत्र को यश, श्री

ब्राह्मी (मंडूकपर्णी)

HYDROCOTYLE ASIATICA LINN.



दि संहिता काल से हुई। तथा प्राय तबसे ही इन दोनो का मिश्रण सा होगया। और आगे के कुछ निघण्टुकारो ने दोनो को एक ही मान कर दोनो का एक साथ घालमेल कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भिन्न-भिन्न स्थानो मे भिन्न-भिन्न बूटिया ब्राह्मी मानी जाने लगी। बगाल के कविराजो ने जलब्राह्मी (जलनीम) को ही (इस ग्रन्थ के भाग ३ मे जलनीम देखें) असली ब्राह्मी मान लिया। कई स्थानो मे मडूकपर्णी ही ब्राह्मी माने जाने लगी। कही-कही मूसाकानी को ही ब्राम्ही मानने लगे (आगे मूसाकानी का प्रकरण देखे)।

चरक और सुश्रुत ने ब्राह्मी व मडूकपर्णी को भिन्न भिन्न दर्शाया है। चरक चि स्था अ १० मे अपस्मारपर ब्राम्ही की योजना ब्राम्ही घृत मे तथा ब्राम्ही रसायन मे तथा सूत्र स्थान के शाकवर्गमे मडूकपर्णी का उल्लेख है। और उदर रोग एव विष पीडित रोगी की चिकित्सा मे इसका शाक खाने का विधान है। वय स्थापन दशेमानि मे और विमान स्थानके तिक्तस्कन्ध मे भी मडूकपर्णी का उल्लेख है।

सुश्रुत ने भी मडूकपर्णी को शाक वर्ग और तिक्तस्कन्ध मे लिया है, तथा चि स्था अ २८ मे ब्राह्मी और मडूकपर्णी के भिन्न २ योग दिये है यथा ब्राह्मी स्वरस रसायन कल्प योग, ब्राह्मी घृत रसायन एव मडूकपर्णी स्वरस रसायन कल्क योग। तथा इस तथ्य की ओर सकेत किया गया है कि ब्राह्मी मे वामक गुण होने से उसका पचन हो जाने पर ही दोपहर को दुग्धादि सेवन कराना हितकर होता है। उसके साथ दुग्ध का सेवन नही करावे। इसके विपरीत मडूकपर्णी मे उग्र मादक एव दाहक गुण होने से इसका सेवन दूध मे मिलाकर कराना श्रेयस्कर होता है। वाग्भट का भी कथन है कि जो मनुष्य मडूकपर्णी को घृत मे भूनकर दूध के साथ एक मास तक सेवन करते हुए कोई अन्न का भोजन नही करता, वह चिरकाल तक जीवित रहता, शास्त्र विजयी होता तथा यौवन एव सुन्दरता को प्राप्त करता है।

गुणधर्म की दृष्टि से भी सुश्रुत ने मडूकपर्णी को अति लघु एव रक्त विकार, पित्त प्रकोप, हृदय दौर्बल्य, प्रमेह, कुष्ठ* ज्वर, श्वास कास, अरुचिनाशक, रस व विपाक मे

(ऐश्वर्य) और रूप देता है।

"गोभिर्नसोममश्विना मासरेण परिसुता। समधातसरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुत मधु" यजु २० से ६६। अर्थात् ब्राह्मी को ताजे मधु के साथ बलवान पुत्र के लिये श्रेष्ठ क्रिया द्वारा दो। इससे जैसे सूर्य की किरणो से चन्द्र प्रकाशित होता है तथा शीतल स्वभाव का होता है वैसे ही ब्राह्मी के गुणो से मधु दीप्त होकर श्रेष्ठ पुत्रोत्पत्ति होती है।

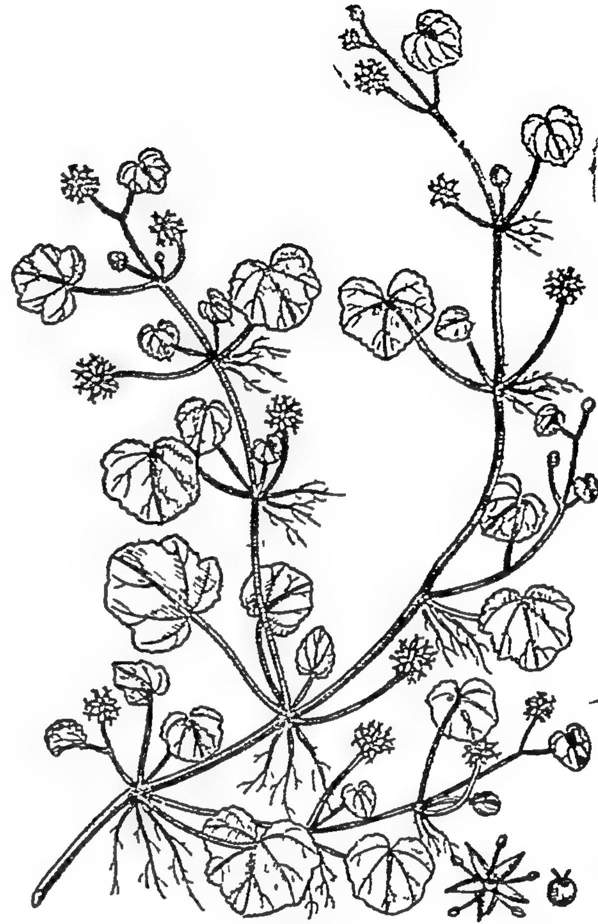
* सुश्रुत ने कुष्ठ चिकित्सा मे महाकुष्ठ पर कही हुई सुरा के विधान मे ब्राम्ही की योजना की है। इससे सिद्ध होता है कि ब्राम्ही भी रक्तशोधक एव रक्त विकार नाशक है।

मधुर,शीतल कहा है (सूत्र स्थान अ ४६)। इस सूची मे मस्तिष्क विकृति का उल्लेख नही है ।अत समझना चाहिए कि ब्राह्मी का उपयोग विशेपत मस्तिष्क विकृति, वात नाडी विकृति, अपस्मार, उन्माद, स्मृति-नाश आदि पर होता है। किन्तु रसायन रूप में इन दोनो की वहुत कुछ साम्यता है।

नव्य मतानुसार भी ब्राह्मी का प्रभाव विशेपत मस्तिष्क विकार और मडूकपर्णी का रक्त विकार एव चर्म रोगो पर माना गया है।

मडूकपर्णी व ब्राम्ही के स्वरूपादि का भेद इस प्रकार है—ये दोनो प्राय लतारूप है । किंतु ब्राह्मी की लता विशेप विस्तरणशील होती है । मडूकपर्णी की लता प्राय रक्ताभ, लता के अग्र भाग के पत्र क्रमश छोटे, पतले एव रक्ताभ तथा फूल पीले होते है। ब्राह्मी के पत्र चिकने, दलदार तथा शाखा की प्रत्येक जोड पर एक से अधिक आते है । मडूकपर्णी के पत्र कुछ खुरदरे, ब्राह्मी पत्र से वडे तथा स्वाद मे कुछ मधुर होते हैं।

मडूक पर्णी को सस्कृत-मे—ब्रह्म माडुकी, हि—खुलखुरा, बगला मे—थौलकुटी,जिमशाक,गु—खडब्रह्मी म—कारिवणा लेटिन मे—हायड्रोकोटायल रोटडीफोलिया (Hydrocotyle Rotundifolia) कहते हैं। यह भारत मे प्राय सर्वत्र आर्द्र स्थानो मे २ हजार फुट की ऊचाई तक पाई जाती है तथा विदेशो मे भी पैदा होती है। (किन्तु ब्राम्ही सर्वत्र नही पाई जाती) इसकी अन्य जातिया भी हैं। जिनमें कुछ के पत्र विशेष वडे, फल श्वेत होते हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिनके फल लाल होते हैं।



मडूक पर्णी
HYDROCOTYLE ROTUNDIFOLIA ROXB

गुणधर्म व प्रयोग—

यह रसायन, वल्य, मूत्रल, वय स्थापन, मेध्य, रक्त-शोधक, कुष्ठघ्न, व्रणशोधक एव रोपक है। अधिक मात्रा में यह मादक होने से इससे शिर शूल, चक्कर आना एव कभी कभी सन्यास (Coma) भी हो जाता है। इससे त्वचा की रक्तवाहिनियो का विस्फार होता है।

इसका प्रयोग विशेपत चर्म रोग, रक्त विकार तथा वात जन्य विकारों पर किया जाता है। त्वचा के विकारो मे यह उत्तम लाभकारी है। कुष्ठ मे इससे कुछ लाक्षणिक लाभ एव साधारण स्वास्थ्य ठीक होता है। फिरग-उपदश की द्वितीयावस्था एव तृतीयावस्था और जीर्ण आमवात मे इसे देते हैं। इसका चूर्ण व्रण पर लगाते व खिलाते भी हैं। इसके प्रयोग से यदि खुजली अधिक वढे तो कुछ दिन-इसका सेवन वन्द कर रेचक औपधि दी जाती है। वच्चो के आमातिसार मे इसके २ से ४ पत्रो का रस जीरा और मिश्री चूर्ण के साथ दिया जाता है तथा नाभी के नीचे पत्र-स्वरस का लेप करते हैं। वच्चो की हकलाहट दूर करने के लिये इसके पत्ते चवाने को देते है। स्मरण शक्ति की वृद्धि के लिये इसका चूर्ण दूध के साथ देते हैं।

विशेष गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसंग की ब्राम्ही औष



जलनीम के जैसे ही है। इसके चूर्ण की मात्रा २ से ४ रत्ती, ताजे पत्र सख्या मे बडो के लिये-८ से १२ तक, बच्चो के लिये-२ या ४ तक देते है।

इसके कुछ प्रयोग इसी प्रकरण मे आगे देखिये।

प्रस्तुत प्रसग की ब्राह्मी के नाम, गुणधर्म आदि—

नाम–

स —ब्राह्मी (ब्रह्मण इदतेन प्रोक्त वा, ब्रह्मत्वसिद्धये सहायी भूतत्वात्-ब्रह्म) की प्राप्ति के लिये सहायक होने से सरस्वती, सुरमा, सौम्यलता, ब्रमह्चारिणी इ। हि –ब्राह्मी, ब्रह्मी, कोटयाली, विरहमी। म –ब्राह्मी। गु –विधाब्राह्मी, बरमी। व –ब्राह्मीशाक, ऊधाबिर्नी। अ –इडियन पेनीवर्ट (Indian penny wort) ले –हाइड्रोकोटाईल एशियाटिका। सेन्टेला एसियाटिका (Centella Asiatica)

रासायनिक संगठन–

जलनीम के रासायनिक सगठन जैसा ही है। भेद इतना है कि इसका क्षाराभतत्व ब्राह्मीन (Bramhine) को वेलेराईन (Vallarine) कहते है जो जलनीम के तत्व जैसा विषैला नही होता, वह हृदय के लिये प्रत्यक्ष बल्य है। इसके अतिरिक्त इसमे और मडूकपर्णी मे भी हाइड्रोकोटिलिन (Hydrocotylin) एक ग्लुकोसाईड, एशियाटिकोसाइड (Asiaticoside) अल्प उडनशील तेल, स्थिर तेल, कुछ शास्त्रीय द्रव्य, पेक्टिक एसिड (Pectic acid) तथा विटामिन 'सी' पाये जाते हैं। शुष्क होजाने पर इसमे सेन्टोइक एसिड (Centoic acid) तथा सेन्टेलिक एसिड (Centellic acid) पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पचाग।

गुणधर्म व प्रयोग––

लघु, सर, तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, मेध्य, रसायन, रक्तशोधक, त्रिदोष (विशेषतः कफ पित्त-शामक), दीपन, स्तम्भन, हृद्य, स्मरणशक्तिवर्धक, स्वर शुद्ध कारक, मूत्रल, स्तन्यजनन, बल्य, वयस्थापन तथा मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद, अपस्मार, अग्निमाद्य, अतिसार, ग्रहणी, कास, श्वास, स्वर भेद, मूत्रकृच्छ्र, पैत्तिक प्रमेह, शोष आदि पर उपयोगी है। ये ही गुणधर्म न्यूनाधिक मडूकपर्णी मे भी पाये जाते है, विशेपत यह विविध चर्म रोग नाशक, शोथघ्न, तथा व्रण शोधक एवं रोपक है। इससे प्राय शरीर के सभी अङ्गो की क्रिया उत्तेजित होती तथा बल व आयु की वृद्धि होती है तथापि ब्राह्मी के अभाव मे मडूकपर्णी का प्रयोग करना विशेप हितकर नही होता।

ब्राह्मी अन्य उत्तेजक द्रव्यो की भाति वातनाडियो को व मस्तिष्क को केवल उत्तेजित नही करती, प्रत्युत उनमे पौष्टिक तत्वो को पहु चाकर शाति पैदा करती है। मस्तिष्क दौर्बल्य की दशा मे अत्यधिक मानसिक परिश्रम के कारण वातनाडिया प्रक्षुब्ध होकर, मस्तिष्क की सतुलन शक्ति नष्ट होती है, एव अर्ध विक्षिप्त के जैसे जैसे अण्ट-सण्ट भापण एव असम्बद्ध कार्य होने लगते है, स्मरणशक्ति लुप्त हो जाती है तथा उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक विकार होने लगते हे। ऐसी हालत मे ब्राह्मी के साथ चतुर्थांश मात्रा मे शखपुष्पी मिलाकर सेवन से विशेष लाभ होता है।

केवल हृदय या मस्तिष्क ही नही, प्रत्युत प्राय समस्त धातुओ की दुर्बलता दूर कर उन्हे सशक्त बनाने मे एव शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को सदृढ करने मे ब्राह्मी उत्तम प्रभावशाली सिद्ध हुई है। शारीरिक तथा मानसिक उत्तेजना को शात कर सात्विक वृत्ति पैदा करना ब्राह्मी का एक अप्रतिम विशेप गुण होने से ही अध्यात्म चिन्तन करने वाले इसका प्रचुर रूप मे सेवन करते हे, और ब्रह्मी की प्राप्ति मे ब्राह्मी को एक विश्वसनीय सहायक मानते है। इसीलिए यह ब्राह्मी कही जाती है। इसके नियमित सेवन से शरीर मे रोगाक्रमण निवारक शक्ति का विकास एव दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

प्रखर ग्रीष्म ऋतु मे जब स्वभाव मे कुछ उदासी एव चिड-चिडापन आने लगता है, तथा विचार शक्ति कुण्ठित सी होने लगती है, तब प्रात काल इसे ठडाई के रूप मे या शर्बत बनाकर पीने से दिन भर चित्त सुव्यवस्थित रहता एव शरीर मे उत्साह, स्फूर्ति पर्याप्त बनी रहती हैं।

उन्माद तथा अपस्मार मे यह अत्यन्त प्रभावशाली

औषधि है। किन्तु नवीन तीक्ष्ण (acute) उन्माद की दशा मे यह लाभकारी नही प्रत्युत् हानिकारक है। जीर्ण (chronic) या पुरातन उन्माद मे ही जब उन्मत्तावस्था शात हो जाय, उसे पकडकर कैद करने की आवश्यकता न हो उसमे किसी प्रकार का जोश न दिखायी देवे, केवल ज्ञान न हो, कोई भी काम ठीक न कर सके तथा शात बैठा हुआ बडबडाया करे ऐसी दशा मे ब्राम्ही घृत लगभग दो मास तक सेवन कराने से उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाती है। नवीन या उन्माद की उग्रावस्था मे ब्राह्मी के स्थान मे प्रथम रोगी को उग्र प्रभाव वाली कोई रेचक औषध देने के पश्चात् खुरासानी अजवायन जैसी कोई भी शामक निद्राकारक औषधि देना हितकारी होता है।

अपस्मार, हिस्टीरिया आदि रोगो पर ब्राह्मी द्वारा सिद्ध घृत उत्तम लाभकारी है। ब्राह्मी के सेवन काल मे यदि कोष्ठबद्धता हो जाय तो साथ मे कोई हल्की रेचक औषधि मिला लेनी चाहिये। प्राचीन आचार्यो ने इसी लिये इसके साथ शखपुष्पी मिलाने का निर्देश किया है। इसके सयोग से ब्राह्मी का विष्टभकारक दोष अधिकाश मे दूर हो जाता है। अपस्मार रोग या किसी भी रोग मे रोगी की नाडी शिथिल हो गई हो,तो ब्राम्ही के साथ कूठ के प्रयोग का विधान है। ब्राम्ही मे क्षुधा को मन्द करने का भी दोष है। इसके निवारणार्थ ब्राम्ही के साथ वच को देने का विधान दिया गया है,जो वास्तव मे बहुत उपयोगी है।

(१) उन्माद तथा अपस्मार पर—ब्राम्ही के स्वरस २½ तोला से ५ तोला तक लेकर उसमे कूट का चूर्ण २ माशा तक और शहद २ तोला मिलाकर पिलाते रहने से लाभ होता है। —यो र।

अथवा—वच, कूठ और शखपुष्पी को पीस कर १० तोला कल्क के साथ ब्राम्ही स्वरस ४ सेर और गोघृत १ सेर एकत्र कर लगभग ४ सेर जल मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर--१ से २ तोला की मात्रा मे सेवन कराने से जीर्ण उन्माद, अपस्मार व ग्रह विकार दूर होते हैं। —व० सेन

अथवा—ब्राम्ही के ६ माशे स्वरस मे कूठ का चूर्ण १½ माशा तथा शहद ६ माशा मिलाकर पिलाने से जीर्ण उन्माद मे लाभ होता है। दिन मे दो बार पिलावें।

अथवा—ब्राम्ही, बादामगिरी, चारो मग्ज (खीरा, तरबूज, खरबूजा व ककडी के बीजो की गिरी) प्रत्येक ३-३ माशा, कालीमिर्च २ नग तथा मिश्री २ तोला इनको मे घोट छानकर पिलावे, दिन मे दो बार। यह पित्तज जीर्ण उन्माद मे विशेष लाभकारी है।

केवल ब्राम्ही ३ माशा को ही, कुछ दाने कालीमिर्च के साथ जल मे घोट छानकर पिलाते रहने से भी लाभ होता है।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी ३-३ माशा, बादामगिरी, छोटी इलायची के दाने ६-६ माशा तथा चारो मग्ज १ तोला सबको जल मे घोट छानकर मिश्री मिला दिन मे २ बार पिलावे। जीर्ण उन्माद तथा काम, पैत्तिक ज्वर को दूर करता है। यह कठ को भी साफ करता है, स्मरणशक्ति को बढाता है। —सकलित

अथवा—ब्राम्ही स्वरस ताजा (ताजी ब्राम्ही के अभाव मे सूखी का अष्टमाश क्वाथ) १ तोला मे कूठ का महीन चूर्ण २ से ५ माशा तक, वच का चूर्ण २ माशा, मधु ३ माशा व घृत ६ माशा एकत्र मिलाकर चटावे। यह बडो की १ मात्रा है, बालको को चौथाई मात्रा देवें। दिन मे २ या ३ बार चटाते रहने से ८-१० दिन मे अवश्य लाभ होता है। —स्वपरीक्षित

उन्माद मे नस्य प्रयोग—वच, कूठ, शखपुष्पी व धत्तूरे की जड का महीन चूर्ण कर ब्राम्ही रस की ७ भावनाये तथा धतूर बीजो के तैल की ५ भावनाये देकर रखे। इसका नस्य देवे। —वैद्य रहस्य।

जीर्ण अपस्मार पर—ब्राम्ही, ब्रम्हदडी ३-३ माशा पेठा (भूरा कुम्हडा या कद्दू) के बीजो की गिरी ६ मा, कालीमिर्च १ मा तथा ३ नग छोटी इलायची एकत्र जल के साथ ठडाई की तरह घोट छानकर उसमे थोडा गोदुग्ध व शक्कर मिला प्रातःसाय पिलावे। शीतल काल मे उक्त द्रव्यो का क्वाथ बनाकर कई दिनो तक सुखोष्ण पिलावे। इस प्रकार पिलाते रहने से लाभ होता है।

अथवा—ब्राम्ही ३ माशा, उक्त पेठे की गिरी ६ माशा, मीठी वच ३ माशा, कालीमिर्च ११ नग और छोटी इलायची ३ नग सबको जल मे पीस गरमियो मे ठडाई बनाकर, वर्षा व शीतकाल मे क्वाथ बना दूध शक्कर



मिला प्रातःसाय पिलाते रहे।

ध्यान रहे इस रोग मे ८-८ दिन के बाद जलापा चूर्ण और शक्कर ३-३ माशा एकत्र मिला रात्रि के समय खिलाकर ऊपर से २० तोला गरम दूध पिला दिया करे। अथवा शुद्ध रेडी तेल २½ तोला को २० तोला गरम दूध मे मिला थोडी शक्कर मिला, रात मे सोते समय पिलाया करे। तो उदर शुद्धि होकर औषधि का विशेष लाभ होगा रोगी को सदाचारपूर्वक रहते हुये बाकी चीजो से बचते रहना परमावश्यक है। दूध, मलाई, मक्खन का सेवन करावे तथा श्रद्धापूर्वक अधिक दिनो तक दवा का सेवन करावे तभी रोग की निवृत्ति होगी। —भा गृ चि

अथवा—ब्राम्ही की ताजी पत्ती का रस ६ माशा मे बच और कुलिंजन का महीन चूर्ण १-१ माशा तथा शहद ३ माशा व घृत ६ माशा एकत्र मिलाकर चटावें (यह १ मात्रा है) दिन मे २ बार चटाते रहने से अपस्मार, मूर्च्छा, चित्तभ्रम एव मस्तिष्क दौर्बल्य मे लाभ होता है।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी, वच, कूठ और छोटी इलायची समभाग चूर्ण कर रखे। १-२ माशा की मात्रा मे रस सिन्दूर ½ रत्ती मिला मधु व घृत के साथ सेवन करावे। प्राय १ मास मे लाभ प्रतीत होता है।

—सकलित

अथवा—१ तोला ब्राम्ही के स्वरस या क्वाथ मे रस पर्पटी की २ रत्ती की मात्रा सेवन कराने से लाभ होता है।

अथवा—शर्बत ब्राम्ही १ सेर, छोटी पिप्पली, मुलैठी, मीठी बच, सोंठ, छोटी इलायची ५-५ तोला इनको जौकुट कर ७ सेर जल मे पकावे। १ सेर शेष रहने पर अच्छी तरह छानकर उसमे उत्तम शर्करा २½ सेर मिला एक तार की चाशनी पका कर उसमे शहद ४० तोला, केशर ६ माशा और कस्तूरी १½ माशा को एक जीवकर मिला देवे। मात्रा ३ माशा से १ तोला तक दिन मे ३ बार चटावे। पथ्य मे केवल दूध भात देवे। —बूटी दर्पण।

योषापस्मार (हिस्टीरिया) मे भी उक्त प्रयोग लाभकारी है।

विशेष प्रयोग—ब्राह्मी, जटामासी, पीपल वृक्ष की छाल और शख पुष्पी इनको समभाग लेकर जौकुट कर जल मे पकाकर, छानकर, पुन पकाकर घनसत्व बना ले। प्रतिदिन १ या २ बार १ माशा घनसत्व मे मोती और लोह भस्म १-१ रत्ती तथा प्रवाल ४ रत्ती मिला, २ गोलिया बना प्रात साय १-१ गोली खिलाने से बडा लाभ होता है। केवल रजोदोष की अवस्था को छोडकर शेष सर्व प्रकार की हिस्टीरिया मे यह लाभदायक है। किन्तु रोगी को दाल, शाक आदि मे हीग का प्रयोग आवश्यक है। —नारीरोगाङ्क (धन्वन्तरि)

अपस्मार मे नस्य प्रयोग—

ब्राम्ही, सोंठ, वच, कूठ, पिप्पली, नीलोफर व मेधा-नमक समभाग चूर्णकर ब्राम्ही स्वरस की ७ भावनायें देकर ब्राम्ही के रस मे उसका कल्क करे। इस कल्क और ब्राम्ही के रस के साथ गोघृत को सिद्धकर रोगी को दिन मे ३ ४ बार नस्य देवे।

अथवा ब्राम्ही के रस द्वारा सिद्ध किये हुये घृत मे वाझ ककोडे का रस मिलाकर नस्य देवे।

—बूटी दर्पण।

(२) मस्तिष्क व हृदय की बल वृद्धि तथा स्वर शुद्धि के लिये—

ब्राम्ही के १० तोला चूर्ण मे समभाग बादाम का तैल, मिलावे। फिर उसमे खीरा, खरबूजा, तरबूजा व ककडी के बीजो की गिरी २½-२½ तोला छोटी इलायची के बीज ५ तोला और कालीमिर्च १ तोला इन सबका चूर्ण मिला सुरक्षित रख ले। ३ माशा की मात्रा, नित्य गोदुग्ध के साथ सेवन मे हृदय व मस्तिष्क की शक्ति एव स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। तथा वाणी कोमल व मधुर होती है।

अथवा—हरी ब्राह्मी ४ माशा या सूखी २ माशा, बादाम गिरी १० नग, छोटी इलायची बीज १½ माशा तथा उक्त चारो मगज १½-१½ माशा तथा कालीमिर्च सात दाने इनको जल के साथ खूब महीन पीस, छानकर मिश्री मिला सेवन करने से तथा सयमपूर्वक रहने मे भी उक्त लाभ होता है। यह ठडाई का प्रयोग उष्ण काल ही मे ठीक होता है।

ताजी ब्राम्ही के २ तोला स्वरस मे थोडा शहद मिला कर पान करने से हृदय की शक्ति वढती हे।

—वूटी दर्पण।

अथवा—ब्राम्ही शुष्क, आवला, वहेडा व हरड २-२ तोला और कालीमिर्च ६ माशा सवको महीन पीस छान कर सवके वरावर मिश्री मिलाकर रखे। ६ माशा से १ तोला तक नित्य प्रात साय गौदुग्ध या ताजे जल के साथ सेवन से मस्तिष्क दौर्वल्य, उन्माद, दिल की धडकन आदि मे लाभ होता है। —स्व परीक्षित।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी, शतावरी, गिलोय १-१ भाग, श्वेत चदन व गुलाव पुष्प आधा-आधा भाग इनको जौकुट कर २० भाग जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे मिश्री २½ भाग मिला एक तारी चाशनी वना रखे। २ से ५ तोला तक दूध या जल मे मिला कर प्रात साय सेवन से मस्तिष्क दौर्वल्य दूर होकर वुद्धि एव स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। —सकलित।

अथवा—वाम्ही के ताजे पत्र २० तोला कुचल कर १ सेर घृत मे मन्द आच पर पका, घृत को छानकर रखें। २½ तोला तक इस घृत के नित्य सेवन से वुद्धि वढती, दिमाग की गरमी, खुश्की दूर होती, स्मरण शक्ति वढती है।

वच्चो के लिये मधुर प्रयोग—आधा सेर ताजी या २० तोला सूखी ब्राम्ही का क्वाथ यदि १ सेर हो तो उसमे १ सेर खाड मिलाकर पकावें। पक्की चाशनी आने पर वर्फी की तरह जमा लेवे। १ तोला तक वच्चो को खिलाते रहने से उनकी वुद्धि वढती, सीतलापन दूर होता व खासी मे भी लाभ होता है। —वूटी दर्पण।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे 'ब्राम्ही घृत' और ब्राम्ही कल्प योग देखिये।

स्वर शुद्धि के लिये—ब्राम्ही, वच मीठी, सौफ, अकरकरा, छोटी पिप्पली, मुलैठी और सोठ समभाग लेकर, महीन चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे, प्रात साय शहद के साथ धीरे-धीरे चाटने से शीघ्र ही (२-४ दिनो मे) कठ विकार दूर होकर स्वर मधुर एव शुद्ध हो जाता है।

अथवा—ब्राम्ही, वच, हरड छोटी, अडूसा मूल तथा पिप्पली के समभाग चूर्ण को २ से ४ माशा तक शहद के साथ चाटने से सात दिन के अन्दर ही स्वर अत्यन्त मधुर होता स्वरभग दूर होता, एव गला खुल जाता हे।

—वगसेन।

अथवा—ब्राम्ही, गोरखमुडी, वच, सोठ व पिप्पली के चूर्ण को शहद के साथ चाटने मे भी उक्त लाभ होता है। —नि र।

(३) वीर्य वृद्धि के लिये तथा प्रमेह, स्वप्नदोष, निद्रानाश, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, कास, सन्निपात, दाह और रक्तचाप पर—

वीर्य वृद्धि के लिये—हरी ब्राम्ही के १० तोला स्वरस मे, घृत मे भूने हुये जमीकन्द के टुकडे ५ तोला छिलका सहित छोटी इलायची का चूर्ण सफेद, मूसली का चूर्ण और लोहभस्म २-२ तोला तथा भेड़ का दही ५ तोला एकत्र मिलाकर, लोहे की कडाही मे भूनकर रख लेवे। वलानुसार २ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा मे सेवन से वल व वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है। यह योग प्रमेह, धातुक्षीणता, वीर्यपात को नष्ट करता, वीर्य को पुष्ट कर मस्तिष्क दौर्वल्य तथा पाण्डु कामला मे भी लाभकारी है। इससे शरीर मे रुधिर वहुत वनता है।

प्रमेह, स्वप्न दोष पर—केवल ब्राम्ही के चूर्ण मे मिश्री मिलाकर नित्य दूध के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

निद्रानाश पर—ताजी ब्राम्ही और शखपुष्पी के १½ तोला रस को, १०-१५ तोला कच्चे गोदुग्ध मे मिला पीते रहने से, ताजी ब्राम्ही व शखपुष्पी के अभाव मे इन दोनो का चूर्ण आधा तोला तक दुग्ध के साथ लेने से अथवा—

केवल ब्राम्ही का ही चूर्ण ३ माशा गाय के कच्चे दूध आधा सेर तक मे, अच्छीतरह घोट छानकर अथवा ब्राम्ही के ताजे २०-२४ पत्तो को साफकर गाय के आधा सेर कच्चे दूध मे घोट छानकर लगभग ७ दिन सेवन कराने से पुराना अनिद्रा रोग दूर हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र पर—ब्राम्ही का रस अथवा क्वाथ थोड़ी

मिश्री या शक्कर मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

श्वास कास पर——ब्राम्ही, अडूसा, पिप्पली, ग्वारपाठा की जड, गिलोय और आक के क्वाथ तथा कल्क से सिद्ध किया हुआ घृत श्वास, कास को नष्ट करता है। (उक्त द्रव्यो का क्वाथ ४ सेर, कल्क सात तोला और घृत १ सेर एकत्र मिला यथाविधि घृत सिद्ध कर लेवे)।
—भा भै र

सन्निपात (विशेषत चित्तभ्रम तथा रुग्दाह सन्निपात) पर——ब्राम्ही, बच, खश, नागरमोथा, त्रिफला, कुटकी, खरैंटी, अमलतास, चिरायता, नीम की छाल, कडवी तोरई, मुनक्का और दशमूल का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।
—यो र.

दाह पर—ब्राम्ही के साथ धनिया मिला, रात को जल मे भिगो प्रात पीस छानकर मिश्री मिला पिलावे।

रक्तचाप पर——ब्राम्ही, अर्जुन की छाल, सर्पगन्धा, गिलोय, आमला व असगध समभाग महीन चूर्ण कर, ३ माशा की मात्रा प्रात साय १० तोला गौदुग्ध मे मिला कर सेवन से उच्च रक्तचाप, हृदय की धडकन एव स्वभाव का चिडचिडापन दूर होता है।

अथवा——ब्राम्ही, कूठ, सर्पगधा, अर्जुन छाल व शखपुष्पी १-१ तोला तथा वच आधा तोला एकत्र महीन चूर्ण कर बीजरहित मुनक्को के साथ खूब घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। दूध के साथ २-२ या ४-४ गोलिया दिन मे २ वार नियमित लेने से उच्च रक्तचाप मे लाभ होता एव मस्तिष्क दौर्बल्य दूर होता है।
——सकलित

नोट—मडूकपर्णी——ब्राह्मी और मडूक पर्णी का घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण, प्रसगानुसार मडूकपर्णी के विषय मे यद्यपि बहुत कुछ उक्त प्रारभ के नोट न १ मे दिया जा चुका है तथापि कुछ महत्व की बाते जो वहा नही देने मे आई वे यहा दी जाती है—

यह भारत तथा विदेशो मे भी उष्ण प्रदेशो मे सर्वत्र वर्षा ऋतु मे पैदा होती है। इसे जल मिलता रहे तो वर्ष भर हरी बनी रहती है। इसके पत्तो को मसल कर सूघने से कुछ तीव्र गध आती है। कई स्थानो पर यह ब्राम्ही के नाम से प्रचलित है, किंतु यह वास्तव मे ब्राम्ही नही है।

डा० देसाई के मतानुसार मडूकपर्णी-कुष्ठहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्र जनन, स्तन्य शोधन, ग्राही, बल्य और रसायन है। ताजी दशा मे इसे वडी मात्रा मे देने से नशा लाती है, फिर सिर मे दर्द व चक्कर आता है। इसका प्रभावशाली तेल त्वचा द्वारा वाहर निकलता है, जिससे त्वचा उष्ण प्रतीत होती तथा कुछ पीडा भी होती है। यह पीडा प्रारम्भ मे हाथो से शुरू होकर सारे शरीर मे जाती है। कभी-कभी शारीरिक उष्णता असह्य हो जाती है। कैशिकाओ मे रक्त की गति बढ कर त्वचा लाल होती एव खुजली चलती है। लगभग ७ दिन के वाद क्षुधा बढती है। इसका तेल वृक्को द्वारा वाहर निकलने से मूत्र का परिमाण वढ जाता है।

डा खोरी का कथन है कि ज्वरातिसार तथा रक्तातिसार मे इसका सेवन मुलैठी के साथ किया जाता है। यह उष्ण एव रसायन होने से विविध त्वचारोग, फिरङ्ग (उपदश) जन्य रक्तविकार के ददोरे, शून्य कुष्ठ (Anaestheticl ep-osy), श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमालादि रोगो मे यह व्यवहृत होती है। पीनस रोग मे इसकी मूल का नस्य कराया जाता हे। फिरङ्गज व्रण एव अन्य प्रकार के क्षतो पर इसका लेप करते या पुल्टिस बाधी जाती है। तथा जलस्रावी व्रणो पर इसके पत्तो का चूर्ण बुरका जाता है। इसकी जड तथा ताजे पत्तो मे एक उडनशील तेल और एमीलिन (Amylene) नामक भयकर बेहोशी लाने वाला दाहक (हाड्रोजन व कार्वन प्रधान) द्रव्य पाया जाता है। इनके अनुरूप ही ताजी मडूकपर्णी का गुण माना जाता है।

डा० बोइलू का अनुभव——कुष्ठग्रस्त रोगी पर इसका प्रयोग करने से प्रथम हाथ पैर की त्वचा मे उष्णता होती तथा खुजली चलती है फिर थोडे दिन बाद सारी देह मे उष्णता व अति खुजली होती, त्वचा लाल हो जाती, रक्त की गति तेज होती, नाडी अति तीव्र एव पूर्ण चलती है। ७ दिन वाद क्षुधा वढकर पचन क्रिया बहुत ठीक होने लगती है। कुछ दिनो वाद त्वचा मुलायम एव एक समान हो जाती है। उपत्वचा के छिल्टे निकल जाते

स्वेद आने लगता, तथा त्वचा का कार्य यथास्थिति होने लगता है।

यदि इसे अल्पमात्रा मे स्वस्थ मनुष्य को दिया जाय तो शीघ्र ही मूत्रल गुण दर्शाती हे। इसके चूर्ण की मात्रा १ से २ माशा तक दी जाय तो तन्द्रा आने लगती और मस्तिष्क मे वेदना (Cephalgia) होने लगती हे। फिर इसका सेवन वन्द करने पर भी यह असर एक मास तक वना रहता है। कभी कभी इससे भयकर प्रवाहिका भी हो जाती है। मै अपने स्वानुभव से कहता हू कि मैने इसका स्वय सेवन किया और मात्रा वढाते गया। मुझे ज्ञान हुआ कि इसका विषैला सत्व शरीर मे सग्रहीत होकर विष प्रकोप दर्शाता है। इसके विष प्रभाव से मुझे इतनी ठडक (शीत) लगने लगी कि अनेक रजाई ओढने पर एक घण्टे के वाद देह मे उष्णता आई। इसके वाद स्वरयत्र मे खिचाव होने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इसी समय हृदय की गति वन्द हो जायगी। फिर आक्षेप के चिह्न प्रारम्भ हुए तथा शाम को वमन और रक्तातिसार होगया। ये तो शीघ्र ही मिट गये। दूसरे दिन प्रात विष का प्रभाव तो नही रहा, किन्तु निर्बलता तथा गले मे वेदना का अनुभव होता था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि मडूकपर्णी योग्य मात्रा मे दी जाय तो रुधिराभिसरण क्रिया के लिये उत्तम उत्तेजक हे। तथा इसका असर विशेषत त्वचा पर होता है। मात्रा अधिक देने पर तन्द्रा लाती है और कभी मूर्च्छा भी होती है।

त्वचा के सर्व प्रकार के रोगो मे रुधिराभिशरण को सवल करने की इसमे अधिक शक्ति है। यद्यपि यह वातरक्त और फिरग रोग पर पूरा लाभ नही पहुचा सकती तथापि उक्त शक्ति के कारण इससे कुछ लाभ तो होता ही हे। यह पुरानी दृढ व्यूची (छाजन, एग्झीमा) पर अतिप्रशसनीय लाभकारी हे। क्षत, मुजाक के साथ उत्पन्न फिरङ्ग की द्वितीय व तृतीय अवस्था मे भी यह उत्तम लाभदायक हे। एव पुराने, सडे हुए व्रण, वालको के अतिसार तथा पीनस आदि रोग मे निकलने वाले पूय, आम, कफादि का सुधार कर शक्ति देने मे यह चमत्कारक लाभ पहुचाती है। —गा औ र

मंडूकपर्णी के प्रयोग—

(१) रक्त विकार, त्वचा के विकार, जलोदर, कामला तथा पीनस पर—इसके पत्र या पञ्चाग का चूर्ण १½ तोला, कुलिजन, अजवायन व पिप्पली १-१ माशा सवका चूर्ण एकत्र कर, पान के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया वना ले। दिन मे ३ वार (१-१या२ २) गोली ४० दिन तक इन रक्त विकारहर गोलियो का सेवन करे। पथ्य मे घृतयुक्त विना नमक की चने की रोटी खाना चाहिये। —स्वर्गीय प० भागीरथ स्वामी

त्वचा के रोगो पर मलहम—इसके १ भाग पत्रचूर्ण मे ७½ भाग वैसलीन मिला कर मलहम वना लेवे। सब प्रकार के त्वचा विकारो पर इसके लगाने से लाभ होता हे। —गा औ र।

जलोदर पर—इसके लगभग १ तोला पत्तो के साथ निशोथ के पत्र मिला कर दोनो को निशोथ के ही स्वरस मे या जल मे साग के समान पकाकर उसमे खटाई, नमक या घृतादि मिलाये विना सेवन करें। भोजन बिल्कुल न करे। इस प्रकार एक मास (उदर्य्याकला से दूषित जल निकल जाय उदर नरम पडे और क्षुधा की प्रतीति होने तक) प्रयोग करे। फिर दुर्वल रोगी के प्राणो की रक्षा या पुष्टी के लिये ऊटनी के दूध का सेवन कराने पर वढा हुआ, प्रवल जलोदर भी नष्ट होकर देह निरोगी एव सवल वन जाती है।

इस चरक सहिता के प्रयोग से विरेचन होकर पतले जल सदृश दस्त लगते है। वर्तमान मे ३से५ दिन प्रयोग करने पर उदर नरम हो जायगा ऐसा अनुमान है। जिस रोगी को उदर से जल निकालने की सुविधा न हो ऐसे वढे हुये रोग वाले रोगी को यह प्रयोग करा सकते है। —गा औ र

नोट—हमारे विचार से केवल मडूकपर्णी को ही उचित मात्रा मे लेकर उसे उसके रस या थोडे जल के साथ उवालकर या विना उवाले चटनी जैसा पीसकर सेवन कराने और प्यास लगने पर उसी का रस पिलाने से भी लाभ होता है तथा यही अभिप्राय चरक जी का प्रतीत होता है। [देखो चरक चि अ १३]—सम्पादक



कामला—मडूक पर्णी के स्वरस मे शहद या हल्दी का चूर्ण अथवा आमला या दूध मिलाकर प्रात काल पीने से लाभ होता है —भा भ र।

पीनस पर—मडूकपर्णी, काली मिर्च और कुलथी का मन्दोष्ण क्वाथ पीने से लाभ होता है —भा भै र।

[२] उपदश, कुष्ठादि चर्म रोग, श्लीपद, रक्तस्राव दुष्ट व्रण, मुखपाक, श्वेतप्रदर, हकलाहट और अर्श पर—

उपदश, फिरग उपदश पर—इस व्याधि की द्वितीय अवस्था मे जब विकार त्वचा एव श्लेष्मिक कला मे अधिष्ठित होता है तब इसके प्रयोग से लाभ होता है। इस व्याधि की गर्मी के कारण रक्त विकृत होकर, शरीर पर छोटी छोटी फुसिया उठ आई हो, सधियो मे जकडन हो, शरीर मे रह-रह कर पीडा उठती हो, तो इसके १ तोला स्वरस मे गोघृत आधा तोला और शहद ३ माशा मिश्रण कर पिलावे [यह एक मात्रा है] इसी प्रकार प्रात साय सेवन से लगभग १ या २ मास मे पूर्ण लाभ होता है। स्त्रियो को भी उपदशजन्य गुप्त रोगो पर इस प्रयोग का सेवन लाभदायक है।

अथवा इसके पचाग के जौकुट चूर्ण २ तोला को जल और दूध १०-१० तोला मे मिला, थोडा उबालकर मिश्री या शक्कर मिला छानकर नित्य २ वार ३ मास तक पिलावे।

नोट—इस प्रयोगार्थ ब्राह्मी भी ली जा सकती है तथा उत्तम कार्य करती है।

श्लीपद पर—इसका पचाग १ तोला कालीमिर्च ७ नग एकत्र पीस कर १० तोला जल मे घोल छानकर प्रात साय पिलाते है तथा नीचे कुष्ठादि चर्म रोग देखिये।

रक्तस्राव पर—इसके पत्र आधा तोला को ५ तो जल मे पीस १ तोला मिश्री मिला पिलावे। दिन मे २ या ३ बार।

इस प्रयोगार्थ ब्राह्मी पत्र लेना और भी अच्छा है।

कुष्ठादि चर्म रोगतथा व्रणो पर—आभ्यतर प्रयोगार्थ चूर्ण स्वरस या शर्वत आदि काम मे लाया जाता है। इसका स्वरस यथोचित मात्रा मे अथवा इसका चूर्ण ३ रत्ती से ८ रत्ती तक शहद के साथ दिन मे ३ बार चटाते है।

बाह्य प्रयोगार्थ—इसके चूर्ण की पुल्टिस, मलहम आदि बनाते है। शतधौत घृत २ तोला मे इसके स्वरस की ६० बून्दे डालकर खूब फेट डालने से उत्तम मलहम तैयार हो जाता है। अथवा एक औस वेसलीन मे इसका स्वरस १ ड्राम मिलाकर मलहम बना लेते है। इस मलहम को लगाते रहने से तथा उक्त प्रकार से इसके आभ्यन्तर सेवन से श्लीपद, अण्डवृद्धि, त्वचा के चट्टे, कुष्ठ, पामा, उकवत [एक्झीमा], फोडा, व्रण, गड या ग्रन्थि वृद्धि (Enlargement of glands) सधिवात आदि पर लाभ होता है।

साधारण कुष्ठ रोगी को उक्त प्रकार से इसके बाह्य एव आभ्यन्तरिक प्रयोग से रोग मे शीघ्र ही लाभ होने लगता है। किंतु बीच मे रोगी के शरीर मे खुजली का दौरा होने लगता है। ऐसी दशा मे ७-८ दिन के लिये उक्त उपचार को बन्द कर उसे अमलतास निशोथ आदि सौम्य रेचक देना चाहिये। सौम्य रेचन कराने के २-३ दिन पहले से ही रोगी को घृत से तर की हुई चावल व मूग की खिचडी दोनो समय खिलावे। ऐसी कोई मुजिस कराये विना सौम्य जुलाब का कुछ भी असर नही होता। फिर वैसा ही उपचार प्रारभ करे। बीच बीच मे जब जब खाज का उपद्रव हो तो उपचार को बन्द कर रेचन क्रिया का सहारा लेता रहे। १-२ मास मे अवश्य लाभ होता है।

दुष्ट व्रण या नाडी व्रण पर—इसके पत्रो को पीस कर पुल्टिस जैसा बना कर बाधते या लेप करते है। दिन मे १ या २ बार।

मुख पाक या मुख के छालो पर—इसके पत्तो को बार बार चबाकर थूकने से [दिन मे ३ बार] लाभ होता है।

श्वेत या रक्त प्रदर पर—इसके पचाग का चूर्ण १ से २ माशा तक शहद के प्रात साय साय चटाते हैं।

—सकलित

हकलाहट या तुतलाने के विकार पर—इसके

[या ब्राह्मी के] छायाशुष्क पत्रो के साथ तुलसी या अडूसे के शुष्क पत्र तथा मुलेठी, कुलिजन, छोटी पिप्पली और श्वेत मिर्च इन सवका महीन चूर्ण १ से ३ माशा तक प्रात साय शहद के साथ चटावे तथा भोजन के बाद सारस्वतारिष्ट [आगे विशिष्ट योगो मे देखें] २ से ३ तोला समभाग जल मिलाकर पिलावे। शीघ्र लाभ होता है —आ विकास

अर्श पर—इसका पन्चाग शुष्क किया हुआ, सनाय, गुलाव पुष्प १-१ तोला, पिप्पली १½ तथा नीम की निवौली, रसौत, हरड, मुनक्का २-२ तोला इन सवका चूर्ण कर उसमे शुद्ध गूगल २ तोला मिला, त्रिफला के क्वाथ से घोटकर छोटी-छोटी वेर जैसी गोलिया वना लेवे। प्रात. साय जल से ३ या ४ गोली तक सेवन करें। कव्जी विशेप हो तो इसे गरम जल के साथ लेवे। इससे दोनो प्रकार अर्श पर लाभ होता है ।

मस्सो पर—इसके पत्र, नीम पत्र, कनेर पत्र, कडवी तुरई की जड और गुड इनको काजी मे पीसकर लेप करते रहने से मस्से गिर जाते है। —अ योगमाला।

नोट—मात्रा-स्वरस [ब्राह्मी] १-२ तोला मडूक पर्णी की मात्रा इससे कम देनी चाहिये। पत्र [ब्राह्मी] वडो को ८ से १२ तक वालको को २-४ कीसख्या मे। मूल चूर्ण ३-१२ रत्ती तक। पचाग चूर्ण १ से ५ माशा तक [किंतु मडूक पर्णी वहुत कम] छायाशुष्क पचाग चूर्ण [मडूकप] २ से ४ रत्ती। कुष्ठ एव वात के रोगी को कल्प कराने के लिये प्रथम सप्ताह मे ५-५ रत्ती। फिर प्रति सप्ताह ढाई रत्ती वढाकर ४ मा तक वढावे। फिर ढाई-ढाई रत्ती कम करके छोड देवे। एक मास तक विल्कुल वद रखे। पुन आवश्यकतानुसार क्रमश ४ माशा तक वढावे, प्रारभ से यह चूर्ण रात्रि को शयन के पूर्व निवाये जल के साथ दिन मे १ वार लेवे। फिर उसके दो विभाग कर प्रात और रात्रि को लेवें। [डा० वोइल]

ध्यान रहे ब्राह्मी या मंडूक पर्णी के पत्तो को धूप या उष्णता मे कदापि न सुखावे। उन्हे चटाई पर जहा स्वच्छ हवा वहती हो, अच्छी तरह फैला देना चाहिये। १-२-दिन मे सब पत्र भलीभाति शुष्क हो जावे पर कूट पीस चूर्ण कर या वैसे ही शीशियो मे भर, मुख अच्छीतरह वन्द कर रखे। ऐसे ही शुष्क पत्रो का उपयोग करने मे पूर्ण लाभ होता है। अन्यथा रोगी को केवल भूसा खिलाना ।

ब्राह्मी के कुछ दोप—आचार्य नित्यानन्द जी का कथन है कि ब्राम्ही के दो दोप उल्लेखनीय है। एक तो यह शरीर मे रूखापन पैदा करती है दूसरे यह कुछ मलावरोधक भी है। किंतु इन दोपो को हम आसानी से दूर कर सकते है। यही नही इन दोपो को दूर करने मे जिन पदार्थो का सेवन करना चाहिये उनमे हमारा ब्राम्ही के प्रति आकर्पण वढता ही है घटता नही। रूक्षता मिटाने के लिये किसी स्निग्ध चीज के साथ और मलावरोध शक्ति को नष्ट करने के लिये हलका सा रेचक द्रव्य साथ मे लेना चाहिये। इसलिये ब्राम्ही का मनमाने ढग पर प्रयोग करने की सलाह मैं नही देता हू। किंतु उचित तरीके से इसका सेवन बुद्धि जीवियो के लिये एक वरदान सिद्ध होगा —स्वास्थ्य से साभार

मण्डूकपर्णी का अतियोग होने से शीतजन्य वातवृद्धि के कारण मद, शिर शूल, भ्रम व अवसाद उत्पन्न होते है। त्वचा मे लालिमा और कण्डू होती है। ऐसी अवस्था मे मात्रा कम दें या प्रयोग ही वन्द कर देना चाहिये। उष्ण प्रकृति के लिए भी यह हानिकर है ।

अहितकर हानि निवारणार्थ विरेचन, तथा अन्य वात शामक औपध विशेपत सूखी धनिया का फाण्ट, या खुरासानी अजवायन का प्रयोग करें ।

प्रतिनिधि—दाल चीनी, कवाव चीनी और तज है।

विशिष्ट योग—

(१) ब्राह्मी कल्प—वमन विरेचनादि द्वारा शरीर को शुद्ध कर (कुटीप्रवेश विधि से) प्रथम सहस्रसपात* मत्रो से आहुति देकर, शक्ति के अनुसार ब्राह्मी स्वरस का सेवन करें। जव यह पच जावे, तव तीसरे प्रहर मे,

*मत्र—"ॐ अमृतोद्भवाय अमृत कुरु ॐ" इस मत्र से सहस्रवार अग्नि में आहुति देकर; अथवा—ऋग्वेद के सहस्रसम्पाताध्याय में कहे हुए सहस्र मंत्रो से आहुति देकर कल्प सेवन प्रारभ करें।



लवणरहित यवागू लेवे, अथवा दूध के साथ यवागू का सेवन करे। इस प्रकार ७ दिन सेवन से मनुष्य तेजस्वी व मेधावी होता है। दूसरी बार ७ दिन सेवन से अभिलषित ग्रन्थ रचना मे समर्थ होकर विस्मृत रचना स्मरण हो जाती है। तीसरी बार ७ दिन के सेवन से दो बार कही गई सौ (१००) वाणी भी एक साथ स्मरण रखता है। इस प्रकार २१ दिन सेवन से दु ख दारिद्रय नष्ट होता, सरस्वती देवी प्रत्यक्ष शरीर मे प्रवेश करती है। स्मरण एव धारणा शक्ति विशेष बढ जाती है। तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। —सुश्रुत चि अ २८।

कल्प न २—सुश्रुत के उक्त चि अ २८ मे ही 'ब्राम्ही घृत रसायन कल्प' इस प्रकार है—ब्राम्ही स्वरस २ प्रस्थ (१२८ तोला) और घृत १ प्रस्थ (६४ तोला), विडगतडूल (वायविडग के तुपरहित चावल) १६ तोला, बच व गिलोय का चूर्ण ८-८ तोला तथा त्रिफला चूर्ण ४८ तोला इनको जल के साथ पीस, कल्प बना उक्त स्वरस और घृत मे मिला, धीमी आंच पर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर सुरक्षित रखे। पश्चात् उक्त कुटी प्रवेश विधि से हवनादि कर, शक्ति के अनुसार उचित मात्रा मे (१ से २ तोला तक) इसे सेवन करे। औषधि के पच जाने पर दूध, घी और भात खावे। नमक आदि का त्याग करे। इसके सेवन से वमन, दस्त व पसीने द्वारा शरीर के दूषित कृमि निकल जाते है। दारिद्रय नष्ट होता, शरीर की काति निखरती हे। आयु स्थिर रहती, कुष्ठ, विपमज्वर, उन्माद, अपस्मार, विप, भूतवाधा आदि रोगो का नाश होता है।

कल्प न ३—'ब्राम्हीसिद्ध कल्प'—ब्राहमी २० तोला, बच, गोरखमुंडी की गुडिया ५-५ तोला, पिपल्ली व सुवर्णभस्म १-१ तोला, कालीमिर्च १ माशा और वादामगिरी का मोटा चूर्ण मशीन से कर, शेप द्रव्यो का महीन चूर्ण कर सबको मिला, शहद के साथ ३ घण्टे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवे। १-१ गोली दिन मे दो बार प्रात और रात्रि को पकाकर सुखोष्ण दूध के साथ सेवन करे।

इस कल्प का प्रयोग पथ्यपालनपूर्वक १ वर्ष तक करे। यह मस्तिष्कशोधक, रसायन, धारणाशक्तिवर्धक तथा दीपन पाचन है। इसका प्रयोग मस्तिष्क मे कफ आम या विप का सग्रह, जीर्ण अपस्मार, स्मृतिनाश, जीर्ण सिरदर्द, जीर्ण प्रतिश्याय, पीनस, नेत्रविकार, दृष्टिमांद्य एवं वात प्रकोप आदि रोगो पर होता हे। इसके सेवन काल मे गोघृत का नस्य भी कराते रहना चाहिए। जिससे नासा मार्ग से श्लेष्मस्राव होकर मल निकलता रहे। —रसतत्रसार से साभार।

कल्प न ४—मडूकपर्णी कल्प—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एव वस्ति (पचकर्मो से) शुद्ध किये हुए व्यक्ति को अन्नादि भोजन का परित्याग करा विधिवत् उसके द्वारा उक्त ब्राहमी कल्प न १ मे कही गयी आहुती आदि एव कुटी मे प्रवेश करा, उसकी शक्ति के अनुसार (प्रथम दिन ३ माशा तक) मडूकपर्णी को महीन पीसकर १ ऽ स्वरस को दूध मे मिला (या प्रथम कल्क को खिला या स्वरस को पिला) ऊपर से दूध पिलावे। इसके पच जाने पर दोपहर को दूध के साथ जौ की थूली या दलिया का ३ मास तक सेवन करावे। अथवा तिलो के साथ मडूकपर्णी को पीस, कल्क कर दूध के अनुपान से इस कल्प का प्रारभ करें। पच जाने पर दोपहर को दूध और घृत के साथ भात का सेवन करावे। शक्ति के अनुसार औषधि की मात्रा ७ दिन के बाद बढावे। अथवा ३ दिन उपवास करा, ३ दिन मडूकपर्णी का सेवन करावे और ३ दिन के पश्चात् दूध और घृत का पथ्य देवे इस प्रकार १२ दिन सेवन करने वाला व्यक्ति बुद्धिमान व शतायु होता है। ३ मास तक सेवन करने वाला तेजस्वी एव अति धारणाशक्ति युक्त होकर दीर्घायु होता है।

—सुश्रुत चि' स्था अ २८

(२) ब्राहमीरसायन—छायाशुष्क ब्राहमी, शखपुष्पी, गिलोय, व मुलैठी ५-५ तोला सूक्ष्म चूर्ण कर, उसमे स्वर्ण भस्म ½ तोला अच्छी तरह मिला, खरल कर, शीशी मे सुरक्षित रख लेवे। १ से ३ माशा तक मात्रा मे, शुद्ध घृत ३ माशा और शहद १ तोला मिला सेवन करें। ऊपर से इच्छानुसार दूध पीवे। इस प्रकार प्रात साय सेवन से, शीघ्र ही स्मरणशक्ति, हृदय शक्ति एव शारीरिक

शक्ति की वृद्धि होती है।

अथवा—साधारण सर्व प्रकार की शक्ति वृद्धि एव रसायन सिद्धि के लिये ब्रह्मी २ तोला तक लेकर गोदुग्ध २० तोला और जल १ सेर तक एकत्र मिला क्षीर पाक करे। दूध मात्र शेष रहने पर, छानकर उसमे मिला सेवन करते रहे।

(३) ब्राह्मी चूर्ण–(सारस्वत चूर्ण) कूठ, असगध, सेंधानमक, कालीमिर्च, पिप्पली, शखपुष्पी, अजमोद, सोंठ, श्वेतजीरा और स्याह जीरा इनके समभाग चूर्ण मे उतना ही मीठी वच का चूर्ण मिला, उसमे ब्राह्मी स्वरस की २१ भावनाये देकर शुष्क कर चूर्ण को सुरक्षित रखें। ६ माशा तक की मात्रा मे प्रात साय गोघृत या उत्तम शहद के साथ सेवन से तथा ऊपर से गोदुग्ध का पान करने से बुद्धि तीव्र होती, स्मरण शक्ति, शारीरिक शक्ति बढती है।

चूर्ण न० २—ब्राह्मी त्रिकुटा, त्रिफला, धनिया अजवायन, शतावरी, वच व भारगी सबके समभाग चूर्ण को कागदार शीशी मे भर रखें। शक्ति अनुसार उचित मात्रा मे सेवन करने से स्मरणशक्ति बढ ती, स्वरशुद्धि होती, सेवन काल मे तैल, मिर्च रूखी, खट्टी एव वातज चीजो से परहेज करें।

चूर्ण न०३—ब्राह्मी १० तोला, मीठी वच, मुलैठी, असगध, विधारा व शतावर ५-५ तोला तथा मिश्री ३५ तोला सबका महीन चूर्ण बना रखें। बलाबल के विचार से इसकी मात्रा (१ तोला तक) प्रात साय गोदुग्ध यथेच्छ ½ सेर तक के साथ सेवन करें। प्रथम इसकी मात्रा ३ से ६ मात्रा तक गोदुग्ध २० तोला के साथ सेवन करे। फिर धीरे-धीरे बढावें। दूध को अच्छी तरह पकाकर शीतल होने पर मिश्री मिलाकर पीवें। धारोष्ण दूध हो तो सर्वोत्तम। इसके सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोषादि सपूर्ण धातु विकार नष्ट होते हैं। —बूटीदर्पण

चूर्ण न ४–ब्राह्मी १ तोला, शखपुष्पी ३ माशा, बादाम गिरी २ तोला, चारो मग्ज ४ तोला' बनिये की गिरी (या धनिया) व गोखरू १-१ तोला तथा त्रिफला ३ तोला, कूट पीस कर चूर्ण कर रखे। मात्रा ३ माशा दूध के साथ १ माशा तक लेवें। घृत सेवन जारी रखे। दिमाग को शक्ति देने एव दृष्टिमाद्य पर लाभकारी है। —सचित्रायुर्वेद।

(१) ब्राम्ही वटी—ब्राम्ही २० तोला, मुलैठी ६ माशा, छोटी इलायची बीज दो तोला, केसर १ तोला, चादी, वर्क २० नग, स्वर्ण वर्क १० नग, कस्तूरी २ माशा, मीठी बादाम गिरी ५ तोला, अभ्रक भस्म ६ माशा सबको महीन पीस, यथाविधि खरल कर धनिया और सौंफ के क्वाथ से ३ दिन भावित करें। २-२ रत्ती की गोलिया शहद की सहायता से बनावें। १ से ४ गोली, प्रात साय दूध से लेवे। स्मृतिदोष, उन्माद, प्रतिश्याय, मस्तिष्क की दुर्बलता मे अत्यन्त परीक्षित है। —यू चि सा।

वटी न० २—रस सिन्दूर ५ तोला, अभ्रक भस्म, वगभस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पिप्पली, वायविडग १-१ तोला एकत्र महीन चूर्ण कर ब्राम्ही के क्वाथ मे घोटकर चना जैसी गोलिया बना ले। १-२ गोली दिन मे २ या ३ वार आवश्यकतानुसार मक्खन, मलाई, दूध आदि के साथ देने से स्मरणशक्ति की वृद्धि और कमजोरी दूर होती है। —अ यो मा

वटी न० ३—ब्राहमी ५ तोला, अभ्रक, पारद भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, लोह भस्म, शिलाजीत, वायविडग १-१ तोला एकत्र खूब खरल कर शहद और घृत की सहायता से १ माशा तक की गोलिया बना ले। सेवन से स्वप्नदोष, मस्तिष्क दौर्बल्य, धातुस्राव, निर्बलता, कृशता दूर होती है। —धन्वन्तरि।

(५) ब्राम्ही नवनीत (मक्खन)—रात्रि मे २½ सेर गोदुग्ध को अच्छी तरह पकाकर उसमे ब्राम्ही के शुष्क पत्र १½ तोला और छोटी इलायची समभाग दोनो का महीन चूर्ण मिला दूध को जमा देवे। प्रात मथकर मक्खन निकाल, उसे थोडा गरम कर उसका मट्ठा अलग कर, मक्खन को काच के पात्र मे भर उसमे वशलोचन, रूमीमस्तगी और काली मिर्च का महीन चूर्ण प्रत्येक १½ तो० मिलाकर रख दे। मात्रा–३ माशा से १ तोला तक छोटे बच्चो को १ से १½ माशा बडे बच्चो को १½ से ६ मा० तक उम्र के अनुसार गाय के दूध के साथ या वैसे ही मिश्री मिलाकर चटायें। निरतर ४० दिन के सेवन से बुद्धि, बल एव वीर्य की विशेष वृद्धि होती है। प्रमेह,

स्वप्न दोष, कब्ज आदि विकार दूर होते हैं। यह दिल व दिमाग को बलकारक तथा वर्ण को निखारता है।

—घर का डाक्टर मे साभार

(६) ब्राम्ही पानकया ठडाई—ब्राम्ही ३ माशा, गुलाब पुष्प १ नग, बादाम गिरी (जल मे भीगी हुई) २ नग, इलायची २ नग, कालीमिर्च २४ नग, सौंफ १५ नग, खस-खस १ माशा, शुद्ध भाग (४ बार जल मे धुली हुई) ८ रत्ती, तथा पिस्ता (या कोई एक मगज) ६ माशा इन सबको एक साथ सिल पर बलवान हाथों से बीच-बीच मे जल के छींटे देते हुए खूब महीन पीसे। आवश्यक जल ५ तोला तक मिला छानकर १० तोला दूध और शक्कर २ तोला मिलाकर १-१½ गिलास ठडाई तैयार कर सेवन करने से (१½ महीने के प्रयोग मे) हृदय व मस्तिष्क बलिष्ठ होता है। उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार, मानसिक विकृति मे यह सतत लाभप्रद प्रयोग है। —धन्वन्तरि।

ठडाई न० २—ब्राम्ही पत्र हरे या शुष्क लगभग १ तोला रात को भिगोकर, प्रात साय उसके साथ भीगे बादाम १० नग, पोस्तदाना (खसखस) ३ माशा, इला-यची के दाने और थोडी कालीमिर्च मिला सिल पर खूब रगडकर पीस ले। तथा उसमे शक्कर और जल इच्छा-नुसार मिला छानकर प्रात पीने से दिन भर तरी रहती है। उष्णकाल के लिये यह उत्तम ठडाई है। अधिक मानसिक श्रम से भी दिमाग मे कोई थकावट नही होती, पाचन शक्ति बढती, मलावरोध दूर होता है। चाहे तो इसमे दूध भी मिलाया जाता है, बरफ भी डाली जा सकती है।

जिसे ठडाई पीसने की सुविधा न हो वे ब्राम्ही का अर्क निकालकर रख ले। तथा उसमे शक्कर मिला और ऊपर से जल मिला पीवे। ब्राम्ही को चौगुने जल मे २४ घण्टे भिगोकर भबके से अर्क खीच लिया जाता है। —स्वास्थ्य मे।

(७) ब्राह्मी अर्क—ब्राम्ही शखपुष्पी, वच व गिलोय प्रत्येक २० तोला लेकर जौकुट कर ८ सेर जल मे २४ घण्टे भिगोकर भबके से अर्क खीच लेवे। मात्रा १ तो अनुपान दूध। इसके सेवन से मेधा तेज होती, हृदय और मस्तिष्क बलवान होता, स्मरण शक्ति बढती तथा ज्वर दूर होता है।

अर्क न० २—ब्राम्ही, नीलकठी नीम की छाल, पित्त पापडा १०-१० तोला, शीशम की छाल, चिरायता, उशवा, निशोथ व गिलोय ५-५ तोला जौकुट कर ८ गुने जल मे २४ घण्टे भिगोकर अर्क खीच लेवे। मात्रा २ तोला मे शहद मिलाकर सेवन से उपदश आतशक का गन्दा रक्त शुद्ध हो जाता, दाद, खाज व चर्मरोग दूर हो जाते है।

नोट—इस प्रयोग के लिये ब्राम्ही के स्थान मे मडू-कपर्णी लेना उचित है। —बूटी दर्पण।

अर्क न० ३—ब्राम्ही, मुनक्का तुलसी पत्र, इलायची व लौंग १०-१० तोला, शख पुष्पी ५ तोला सबको जौ कुटकर ८ गुने जल मे मिलाकर अर्क खीच लेवे। मात्रा ५ तोले तक, थोडा जल मिला सेवन से शरीर निरोगी तथा कठ साफ होता है। कास, श्वास, हिक्का दूर होती, मस्तिष्क शक्ति बढती, क्षुधा तीव्र होती है।

(८) ब्राह्मी अरिष्ट—

ब्राह्मी अरिष्ट (सारस्वतारिष्ट या दिव्यारिष्ट)—शुद्ध होकर शुभ दिन, प्रात ब्रह्म मुहुर्त मे मूल, पत्र, शाखा युक्त ब्राह्मी १ सेर तथा पुष्य नक्षत्र मे उखाडी मे हुई या सग्रह की गई शतावर, बिदारी कन्द, हरड, खस, अदरख सौंफ प्रत्येक २० तोला लेकर सबको जौकुट कर १६ सेर जल मे पकावे। ४ सेर शेष रहने पर, छानकर ठडा होने पर उसे सुवर्ण कलश या मिट्टी के शुद्ध चिकने मटके मे भर उसमे आधा सेर शुद्ध शहद, १ सेर मिश्री या खाड तथा धाय के फूलो का चूर्ण २० तोला, निर्गुण्डी के बीज (ये न भी मिलें तो चल सकता है), निशोथ, पिप्पली, लौंग, वच, कूठ, असगध, बहेडा, गिलोय, छोटी इलायची बीज, बायविडग व दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला मिला (यदि मिट्टी के पात्र मे भरा हो, तो उसमे स्वर्ण पत्र का सूक्ष्म चूर्ण भी १ तोला मिलावे)। पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर एक मास तक सुरक्षित रखे। पश्चात् खोलकर देखे, यदि स्वर्ण

पत्र विलीन हो गये हो, तो कपडे छानकर बोतलो मे भर रखे।× मात्रा ३ से माशा १ तोला तक, गौदुग्धके अनुपान से लेवे। यह आयु, वीर्य धारणाशक्ति, बुद्धि, बल एव कांतिवर्धक, हृद्य, रसायन हे। स्वरभग, स्वर का भारी होना एव हकलाना नाशक, मज्जातन्तु, मस्तिष्क के लिये अत्यन्त गुणकारी हे। शिशु, बालक, तरुण, वृद्ध पुरुष या स्त्री को किसी भी ऋतु मे समान गुणदायक है। पुरुषो के वीर्य दोषो को एव स्त्रियो के ऋतु दोषो को नष्ट करने मे यह अपूर्व गुणशाली है, ओजवर्धक हे। उन्माद, अपस्मार एव मूर्च्छा रोग को भी यह दूर करता हे। जिस बालक को लालास्राव अधिक होता हो, तोतलापन हो, बुद्धिमन्द हो, बीच-बीच मे मूर्च्छा आती हो या अपस्मार होतोप्रात साय इसअरिष्टकी ३ माशा की मात्रा, २तो जल या दूध मे मिलाकर पिलावे। तथा रात्रि मे मकरध्वज का सेवन करावें। कफकारक पदार्थो से परहेज रखे। —भैं र

नोट—इसे सुवर्णारिष्ट, दिव्यारिष्ट भी कहते है।

यदि ब्राह्मी के स्थान मे मडूकपर्णी के योग से यह अरिष्ट बनाया गया हो तो इसे सारस्वतारिष्ट नही कहा जा सकता। यह स्वर्ण मिश्रित या स्वर्ण रहितभी बनाया जाता है। स्वर्ण मिश्रित की मात्रा ३ से ६ मा तक जल के साथ दिन मे दो बार, स्वर्ण रहित की मात्रा—६ माशा से १ तोला तक। यह कुष्ठ, उपदश, चर्म रोग, अस्थिक्षय, राजयक्ष्मा, जीर्ण ज्वर आदि पर विशेष हितकारी है। तथा रक्तप्रसादक बुद्धि प्रद, बल्य, वातनाडी पोषक एव हृद्य है।

(९) ब्राह्मी आसव (सारस्वतासव)—

ब्राह्मी पचाग ५ सेर, शतावर, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, देवदारु, श्वेत चन्दन, हरड, खस, सोठ, सौफ, शीतलचीनी, वच मीठी, बायविडग, कपूर, खरैटी के बीज व गोखरु प्रत्येक ४० तोला, धाय के फूल २½ सेर सबको कूट पीसकर चीनी की बडी बरणी मे भरें। उसमे शक्कर १० सेर, जल १ मन तथा स्वर्ण पत्र २ तोला मिला, मुख अच्छी तरह बन्द कर छाया मे रखें। प्रति सप्ताह इसे एक बार हिला दिया करे। ३५ दिन के बाद छानकर बोतलो में भर रखें। १ से ४ तो तक दूने जल मे मिलाकर सेवन करे। १ वर्ष सेवन से बल, वीर्य, आयु, कांति, स्मृति, मेधा, वाणी की शुद्धता आदि की वृद्धि होती है। यह पौष्टिक, शक्ति वर्धक एव अनेक रोगो का नाशक है। इसे 'महासरस्वतीसुरा' भी कहते हैं। —रसतरगिणी।

नोट—ब्राह्मी स्वरस आदि से निर्मित देखिये 'रक्ताल्पताहरात्मक' हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे।

(१०) ब्राह्मी शर्बत—ब्राह्मी शुष्क, बादाम गिरी, कद्दू के बीज ४-४ तोला, इलायचीछोटी ३ माशा काली मिर्च १ मा सबको खूब महीन पीस गुलाब अर्क १ सेर मे अच्छी तरह मिलाकर उसमे खाड या मिश्री १¼ सेर मिला पकावें। शर्बत की चाशनी आ जाने पर ठडा कर बोतल मे भर रखें। २ से ४ तोला तक शर्बत एक गिलास जल मे मिलाकर पीने से दिमाग की गरमी दूर होती हे। यह बुद्धिवर्धक एव हृदय के लिये बल्य है। गरमी के दिनो मे विशेष लाभकारी हे।

शर्बत न० २—बादाम गिरी छिली हुई ५ तोला कद्दू, ककडी, तरबूज व खरबूजे की गिरी प्रत्येक छिली हुई १-१ तोला, सौफ २ तोला, काली मिर्च १½ तोला और छोटी इलायची बीज १¼ तोला सबको जल के साथ खूब महीन पीसकर ब्राह्मी स्वरस ४५ तोला तथा खाड या मिश्री २½ सेर मिला, छानकर, कलईदार पात्र मे पकावे। शर्बत की चाशनी आ जाने पर बोतल मे

× प्राय' स्वर्णपत्र विलीन नही होते। अत उनका स्वर्ण लवण बनाकर डालना ही ठीक होता हे, विधि—एक नतकी (आतसी) शीशी मे १ तोला स्वर्ण डालकर, स्प्रिट लैंप पर गरम करें और १-१ मात्रा नमक व शोरे का तेजाब एकत्र मिला, उसमे से थोडा-शीशी मे छोडते रहे जब तक कि स्वर्ण पिघल न जाय। पश्चात उसमे १ तोला तक सेंधानमक का चूर्ण मिला दें। जब जलीय अश शुष्क हो जाय और स्वर्ण का रग नारगी हो जाय, तब शीशी को ठडा कर उसमे से स्वर्ण लवण को निकाल लेवे। —भा. भैं. र.।

रखें। २ से ३ तोला शर्बत एक गिलास जल मे मिला पीने से हृदय, मस्तिष्क एव नेत्रों की शक्ति स्मरणशक्ति बढती है। भ्रम चक्कर आदि आना दूर होता है। तथा धातु विकार मूत्र विकार आदि नष्ट होकर शरीर मे बलवृद्धि होती है।

शर्बत न० ३—ब्राह्मी के ताजे सूखे पत्र १ सेर असगध व शखपुष्पी १०–२० तोला इनका जौकुट चूर्ण कर ४ सेर जल मे पकावे। ३ सेर जल शेष रहने पर मसल कर छान लेवें। उसमे ३ सेर शक्कर मिला, शर्बत की चाशनी पकाले। १ से २ तोला शर्बत को १० तोला दूध या जल मे मिला सेवन से मस्तिष्कशक्ति बढती है। उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, चित्तभ्रम, मूर्च्छा युक्तमेह आदि दूर होते हैं।

शर्बत न ४—ब्राम्ही का स्वरस ½ सेर, बादाम गिरी छिलका रहित १० तोला, कालीमिर्च और सौफ १-१तोला लेकर प्रथम तीनो चीजो को खूब महीन थोडे जल के साथ सिल पर पीस कर स्वरस मे मिला तथा थोडा और जल मिला,अच्छी तरह मसलते हुए छानकर उसमे दो सेर खाड मिला पकावें जलाश निकल कर शर्बत की कुछ गाढी सी चाशनी आजाने पर, बोतल मे भर लेवें। ३ तोला शर्बत को १० तोला तक जल मिला, सेवन से मस्तिष्क दौर्बल्य दूर होकर बुद्धि की वृद्धि होती है।

शर्बत न ५—केवल ब्राम्ही रस मे ढाई गुना मिश्री मिला, शर्बत की चाशनी बना लें। मात्रा २½ तोला तक दो गुने जल मे मिलाकर सेवन से भी मस्तिष्क दौर्बल्य मे लाभ होता है, रक्तचाप (रक्त का दबाव), जीर्ण उन्माद आदि मे लाभकारी है।

नोट—मडूकपर्णी का भी शर्बत बनाया जाता है। मडूक पर्णी के २ तोला चूर्ण मे २५ या ३० तोला जल मिला, कलईदार पात्र मे मद आच पर पका आधा जल शेष रहने पर छानकर, इसमे २५ तोला शक्कर मिला पकावें। शर्बत की चाशनी होते ही उतार कर, ठडा होने पर बोतल मे भर ले। मात्रा १ तोला तक, जल के साथ सेवन से पित्त शात, होता उपदश की दाह दूर होती, मेधा शक्ति बढती है तथा कुष्ठादि चर्म रोगो मे भी विशेष लाभकारी है। मडूक पर्णी के स्वरस मे भी ढाई गुना शक्कर मिला कर यह शर्बत बनाया जाता है।

(११) ब्राम्ही पाक—ब्राम्ही स्वरस लगभग ४ सेर तक लेकर उसे १ सेर गौ के घी मे डालकर मद आग पर पकावे। घी मात्र शेष रहने पर छानकर, उस घी मे १½ सेर उत्तम खोया को भून ले। भूनने पर जब खोवा बादामी रङ्ग का हो जाय, तब नीचे उतार उसमे किशमिश, नारियल की गिरी, मुनक्का १०-१० तोला, बादाम गिरी की पिट्ठी, पिस्ता, चिलगोजा की मीगी, अखरोट की मीगी ये सब खूब महीन की हुई, प्रत्येक ५-५ तोला मिलाकर २॥ सेर मिश्री की चाशनी मे पाक जमा देवे।

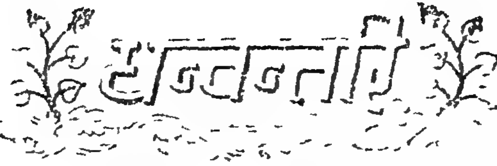
मात्रा—अग्निबलानुसार १ से ५ तोला तक, नित्य प्रात सेवन कर गौदुग्ध पीवे। इससे मस्तिष्क शक्ति खूब बढती है, बल वीर्य की वृद्धि भी होती है।

नोट—इस प्रकार के कई अन्यान्य उत्तम पाक हमारे 'बृहत् पाकसग्रह' ग्रथ मे देखिये।

(१२) ब्राम्ही घृत—(सारस्वत घृत)–जड तथा पत्र सहित ताजी हरी ब्राम्ही को जल से अच्छी तरह धोकर ऊखल मे कूट कर, वस्त्र द्वारा निष्पीडन कर स्वरस निकाले। यह रस यदि ६ सेर ३२ तो।। हो तो गौघृत १ सेर ४८ तोला, कल्क द्रव्य हल्दी, आवला, (अन्य ग्रन्थ मे पाठ मलती है) कूठ, निसोथ व हरड ४-४ तोला तथा पिप्पली, वाय विडङ्ग, सेंधा नमक, खाड, वच १-१ तोला सबको जल के साथ पीसकर बनाया हुआ कल्क और जल १ सेर ४८ तोला सबको एकत्र मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवें।

मात्रा—आधा तोला से २ तोला तक, गौदुग्ध मे मिला प्रात साय सेवन से, कठ स्वर विशुद्ध होता है। १५ दिन सेवन से शरीर अदभुत कातियुक्त होता है। एक महीने के प्रयोग से स्मृतिशक्ति अत्यन्त बढ जाती है। इसके अतिरिक्त यह सर्व प्रकार के कुष्ठ, अर्श, गुल्म, प्रमेह, कासादि रोगो का भी नाशक है। यह घी बल, वर्ण एव अग्नि की वृद्धि करने वाला, तथा वन्ध्या स्त्रियो एव क्षीणवीर्य मनुष्यो के लिये भी हितकारी है। —भै. र.

घृत न २—ब्राम्ही स्वरस १ सेर, गौघृत २ सेर, हरड़,



मीठी वच १०-१० तोला, शुद्ध गूगल १॥ तोला, कूठ, विष्णुकाता (अपराजिता, कोयल), गिलोय, जवासामूल, त्रायमाणा, अरणीमूल, ककोल, मालकागनी, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, आकाशवेल (अमरवेल), शालपर्णी (सरिवन), असगध, पिप्पली, पाढ, सखौली (शखपुष्पी), बावची, अद्रक व हल्दी प्रत्येक ४ तोला लेकर, प्रथम उक्त हरडादि द्रव्यो को जौकुटकर ६ सेर जल मे मन्द आग पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें। फिर जटामासी ५ तोला, खस, छोटी इलायची, जावित्री २॥-२॥ तोला और नागकेशर असली १ तोला इनको जल के साथ पीस, कल्क करे। पश्चात कलईदार कढाही मे उक्त स्वरस क्वाथ, घी व कल्क एकत्र मिला, मन्द आच पर घी सिद्ध कर लें।

मात्रा—बलानुसार ३ से ६ माशा तक, प्रात साय आध सेर गोदुग्ध मे मिला सेवन करें। स्मृति, बुद्धि, बल की वृद्धि,उदर विकार, मस्तिष्क सम्बन्धी विकार, स्वरभग आदि दूर होते हे। विद्यार्थी तथा दिमागी काम करने वालो के लिये यह योग अद्वितीय है। —बूटी दर्पण

घी न ३—ब्राम्ही, वच, शखपुष्पी, व्रच मीठी, और शतावर प्रत्येक २० तोला सबको जौकुट कर रात्रि के समय ८ सेर जल मे भिगो दे। प्रात मथानी मे मथकर छानकर उत्तम गौ घी २॥ सेर मिला पकावें। घी मात्र शेष रहने पर पुन छानकर रख लेवें। मात्रा आधा तोला को पकाये हुए दूध के प्रात साय सेवन से भ्रम, स्मृतिह्रास दूर होते है। —सकलित

नोट—सुश्रुत का 'ब्राम्ही घी' पीछे विशिष्ट प्रयोग न० १ मे ब्राम्हीकल्प न० २ देखिये।

(१३) ब्राम्ही-तेल—शुष्क ब्राम्ही १०तोला, लालचन्दन का बुरादा, शुष्क शख पुष्पी २-२तोला, श्वेत चदन बुरादा, सुगन्ध वाला ४-४ तोला और खस १ तोला सबको जल के साथ खूब महीन पीसकर १ सेर जल मे घोलकर १ सेर तिल तेल व १० तोला बादाम तेल मे पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रखे। इसके लगाने से मस्तिष्क निर्बलता, उष्णता, खुश्की दूर होती, बुद्धि बढती है। बच्चो को परमोपयोगी है। —बूटी दर्पण

तैल न २—ब्राम्ही का स्वरस या क्वाथ १५ तोला को १ सेर नारियल के तेल मे मिला थोडी देर आग पर चढावें, इस प्रकार ३—४ दिन जरा जरा सी आच देवें। जलाश निकल जाने पर (ध्यान रहे कि तेल न जलने पावे) छान कर रख लें। इसमे इच्छित रग व सुगन्ध मिलायी जा सकती है। —स्वास्थ्य से

भग—देखिये भाग। भटा [भाटा]—देखिये-बेगन।

भंड़ा (Geranium Nepalense)

चागेरी कुल [Geraniaceae] की इस वर्षजीवी एव रोमश बूटी के छोटे क्षुप प्राय खटकल या तिनपतिया बूटी के जैसे जमीन पर फैलने वाले होते हे। पुष्प जामुनी रग के होते है। इसकी जडे गहरे लाल रग की होती है। औषधि प्रयोग मे प्राय जड ही ली जाती है। यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा बिहार, नीलगिरी और सीलोन मे पैदा होती है।

नाम —

हिंदी मे पजाब की ओर भड, भाड, भडा। लेटिन जिरेनियम नेपालेस, जि० आसोलेटम (Gerunium occilatum) जि० राबर्टीयानम् (Ger Robertianum) इसमे जिरेनिन [Geranin] नामक एक कडुआ तत्व पाया जाता है।

गुण धर्म—

सकोचक, मूत्रल है गुर्दे के विशेष विकारो मे अश्मरी आदि मे इसका उपयोग किया जाता है। ग्रन्थि व्रणादि पर इसका लेप करते हैं। अश्मरी, ज्वर और पाडु रोग मे इसका रस या फाट पिलाया जाता है।

भकुर—देखिये-कचरी । भटकटैया—देखिये—कटेरी । भटकोवा—देखिये मकोय । भटेउर—गठिवन मे ।
भटनील—देखिये नील जगली मे नोट ।

भगलिङ्गी (Etenolepis Cerasiformis)

कोगातकी कुल [cucurbitaceae] की वर्षा ऋतु मे पैदा होने वाली इस आरोही लता की शाखाये सुतली से पेंसिल जितनी मोटी, सीधी पाच रेखा एव कडे रोम युक्त, खुरदरी सी, फीके हरे रग की तथा सूक्ष्म लम्बे ततुओ से युक्त, पत्र- एकातर, १ से ५ इच लम्बे, १-४ इच चौडे, किनारो पर आरे जैसे दतुर, दोनो ओर से खुरदरे, पृष्ठ भाग गहरे हरित वर्ण का, कोने नीचे से ऊपर की ओर क्रमश अधिक चौडे व लम्बे, बीच का कोना सबसे लम्बा, ऐसे ३–५ तथा ७ कोने वाले, करेले के पत्ते जैसे, गन्ध उग्र, स्वाद मे कडवे, पुष्प-पत्र कोण के पास उपपत्र जैसे पुष्प पत्र एक ही थान मे नर व मादा, नर पुष्प धारण करने वाली सीक बहुत पतली ½-१ इच लम्बी क्रमश ४-८ पुष्पो से युक्त। मादा पुष्प धारण करने वाली सीक ½ इच लम्बी एव अपेक्षाकृत मोटी, पुकेसर पुष्प मे नही होता, स्त्रीकेशर गर्भाशय मे हरे रग का होता है। फल—शिवलिगी से छोटे कच्ची दशा मे हरे व कडवे जड पर श्वेत दागो से युक्त, पकने पर नीले व लाल रङ्ग के, बीज—प्रत्येक फल मे १ या २ बीज चिकने गूदे मे लिपटे हुये श्वेत रङ्ग के भगाकार होने से इसे भगलिगी कहते है। मूल-४ से ८ इच कही कही १½ फुट तक लम्बी सुतली या पेंसिल जैसी मोटी श्वेत वर्ण की २-३ उपमूलो से युक्त एव गन्ध मे कडवास युक्त होती है।

इसके सूक्ष्म फूल व फल चणवोर जैसे गोल होते है। पत्तो की सुन्दरता के कारण इसकी लता बहुत सुन्दर दिखाई देती है। इसमे उपपत्र जैसा पुष्प पत्रो का विलक्षण आकार के कारण इसकी लता शिवलिगी की लता से शीघ्र ही भिन्न पहिचानी जा सकती है।

कच्छ, सिंध, काठियावाड, राजस्थान आदि स्थानो मे कच्चे रास्ते के दोनो ओर तथा खेतो की बाढो पर इसकी लतायें बहुत देखने मे आती हैं।



नाम—

स०—अक्षिपीडक, भगलिगी। हि०—भगलिगी। गु०—आख फुठामणि। ले०—एटनोलेपिस सेरासिफोमिस।

प्रयोज्यांग—

मूल, पत्र व फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

उपलेपक, शोथघ्न तथा चिरगुणकारी पौष्टिक है।

ज्वर मे—इसके और सरफोका की जडो का क्वाथ

दिया जाता है। अजीर्ण व अरुचि मे इसकी जड काली मिर्च के साथ ही दी जाती है। सधिवात की सूजन पर मूल का लेप किया जाता है। फोडे तथा विद्रधियो को पकाने के लिये पत्तो की पुल्टिस वाधी जाती है।

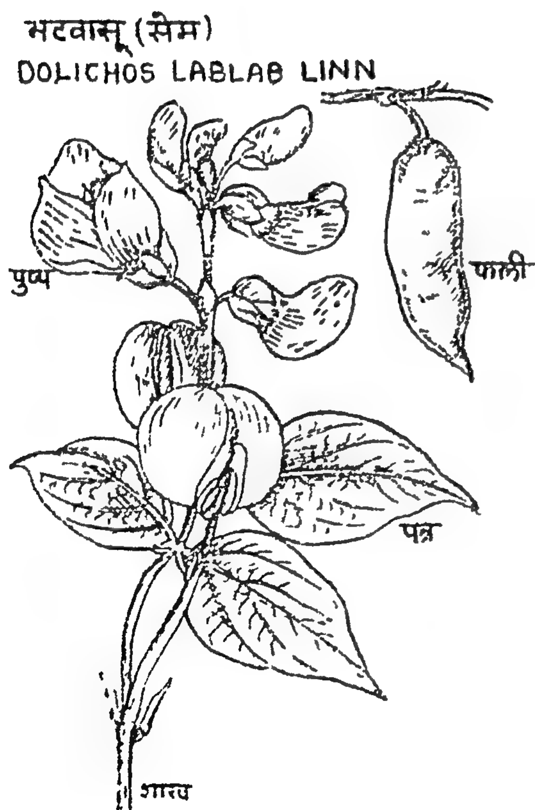
इस वूटी के सम्वन्ध मे शोध की आवश्यकता है कि यह स्त्री जननेन्द्रिय के रोगो पर कितनी लाभप्रद हो सकती है—

—श्री वैद्यराज उदयलाल जी महात्मा

भटवांस (Dolichos Lablab)

शिम्बी कुल के उपकुल [Papilionaceae] की इस लता के पत्र, पुष्प, फली आदि सेम लता के जैसे ही, किंतु कुछ वडे होते है।

यह भारत मे विशेषत दक्षिण की ओर के प्रान्तो मे कोकण, वम्बई आदि मे अधिक पाया जाता है।



नोट—सेम की कई जातिया है, उनमे से यह एक कडवी सेम या काली सेम है।

नाम—

स०—निष्पाव, राजशिम्वी, वलूक इ०। हिन्दी मे—भटवास, भेटवास, कालालोविया, कटजग। म —परवटे, कडवे वाल, वालपापडा। गु०—ओलियो। वङ्गला मे—भटरासु, राजशिम्वी वीज। ले०—डोलिकोस लवलव, हियासिथ वीन [Hyacinth bean] लवलव व्हलेगेरिस [Lablab vulgaris]

रासायनिक संगठन—

इसमे मासवर्धक द्रव्य २४%, स्टार्च ५.७%, स्थिरतैल ६३% और राख ३% पाये है।

गुण धर्म—

गुरु, रुक्ष, मधुर, तिक्त कषाय, उष्ण वीर्य, कटु या अम्ल विपाक, सारक, विदाही, स्तन्य [दुग्धवर्धक], पित्त व रक्तवर्धक, मलमूत्ररोधक तथा कफविकार, शोथ, विष एव शुक्रनाशक है।

पत्र—विषनाशक, धातुस्राव नियामक उदरशूलनाशक है। कोमल ताजे हरे पत्तो की साग खाई जाती है। वीज—पौष्टिक, ज्वरघ्न, दीपन, आक्षेप निवारक तथा नकसीर नाशक माने जाते हैं। इसकी जड विषाक्त है।

भटा—देखिये-बेंगन। भडभाड—देखिये-सत्यानाशी। भतुआ—देखिये-सेठा [कद्दू]

भद्रक (Scaevela koenigii vahl)

रवकुल [Goodeniaceae] के इस १से ३ मीटर तक ऊचे क्षुपरूप पौधे के पत्र ११.५ से २० सेण्टी मीटर तक लम्वे व ३ ८-९ सें० मी० तक चौडे, पृष्ठ भाग पर श्वेत रोमश, पुष्प छोटे श्वेत वर्ण के फल-गोल, छोटे छोटे



वेर जेसे होते है ।

यह वूटी भारत के समुद्र तट वर्ती स्थानो मे पैदा होती है ।

नाम–

हिंदी मे वम्बई की ओर भद्रक । म०-भद्रक,भद्राक्ष ले०—स्कीवोला कोहनिगी, स्कीवोला फ्रुटेसेन्स (Scaevola Frutescens) इसमे एक कडुवातत्व तथा ग्लुकोसाईड पाया जाता है ।

गुण धर्म—

यह वेरी–वेरी नामक सक्रामक रोग का प्रतिरोधक है। इसके फलो का रस नेत्रो के धुंधलेपन को दूर करता है ।

भद्रदन्ती (Jatropha Multifida)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके अतिसुन्दर क्षुपरूप पौधे दन्ती (वडी) के जैसे ही, किन्तु उनमे कुछ छोटे होते हैं । इसके पौधे शोभा के लिये वाग वगीचो मे लगाये जाते हैं । यह दक्षिण अमेरिका का पौधा है।

नाम--

म. हि०–भद्रदती, विपभद्र, तेज जमालगोटा । अ०–कोरल ट्री (Cora tree) स्माल फिजिक नट (Smell physic nut) ले०—जेट्रोफा मल्टिफिडा ।

इसके बीजो मे स्थिर वसायुक्त तैल तथा एक तिक्त तत्व पाया जाता है ।

गुणधर्म व प्रयोग—–

इसका फल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य एव विरेचक है। यह अर्श, व्रण, प्लीहावृद्धि तथा चर्मरोगो मे वाह्य प्रयोगार्थ उपयोगी है ।

वीज—किंचित मधुर, अतिविरेचक एव वामक, मेदा निवारक, पित्तवर्धक, दाहकारक तथा विपाक्त हे । इसके विप निवारणार्थ नीबू का रस तथा उत्तेजक औपधिया दी जाती है।

वीजो का तैल गर्भस्रावक हे । इसका भीतरी तथा वाह्य प्रयोग किया जाता हे ।

इसके पत्तो का दूधिया रस गीली खुजली पर लगाया जाता है । तथा यह रस जख्म व्रण आदि पर भी लगाते है ।

भद्रमूज तथा भद्रवल्ली—देखें—रामसर । भव्य—देखे—चालटा । भरभड—देखे—सत्यानाशी ।

भसमकन्द (Sauromatum Guttatum Schott)

सूरणकुल (Araceae) का यह पौधा सूरण या जिमीकन्द के पौधे जैसा होता है । इसके मूल मे सूरण से भी वडा कन्द होता है ।

यह भारत के मध्य प्रदेश, पजाव, पश्चिमी हिमालय, छोटा नागपुर, बम्बई प्रान्त, कोकण तथा उत्तर प्रदेश के गगा के उत्तरी मैदानो मे पाया जाता हे।

नाम—

हि०—मध्य प्रदेश की जगली भाषा मे 'भसमकद' । म०–लोथ । ले०—सारोमेटम गुट्टाटुम ।

गुणधर्म—–

यह उष्ण हे । त्वचा के लिये उत्तेजक हे । त्वचा के उत्तेजनार्थ कन्द का पुल्टिस बनाकर बाधते है । जिससे भीतर को दवा हुआ विपेला व्रण आदि ऊपर को उभर आता है ।

भसींड—देखे—कमल मे कमल नाल ।

भांग (Cannabis Indica)

हरीतक्यादि वर्ग एव भगाकुल ● (Gannabinaceae) के इस वर्षायु ८ फुट तक ऊचे क्षुप की शाखाये पतली, भीतर कुछ पोलीसी, कोमल; पत्र–नीम के पत्र जैसे, कगूरेदार, किंतु लम्बाई चौडाई मे नीम पत्र से छोटे एकान्तर, प्रत्येक दल पर ३-७ उप पत्र युक्त, ऊर्ध्व पृष्ठ गहरे हरे रग का खुरदरा, अधोपृष्ठ हलके रग का मृदुरोमश, पुष्प—नरक्षुप मे पत्रकोण से निकले हुए तुर्रे जैसी रचना युक्त छोटे-छोटे हरितवर्ण के पुष्प आते है। जिसके वाह्यकोप के दल ऐंठे हुए से सख्या मे ५ ऊपर-ऊपर स्थित तथा पुकेसर ५ होते है। मादाक्षुप मे पत्रकोण मे कलसी जैसी रचना मे हरित उज्ज्वल वाह्य अभ्यन्तर कोपयुक्त पुष्प छोटे-छोटे आते ह। बीजकोप या फल—मादाक्षुप के पुष्पो मे ही छोटे-छोटे कुछ दवे हुए से गोल दानेदार एक कोषयुक्त बीजकोप होते है। मूल—जड का घेरा ६-७ इन्च तक, अनेक रेशायुक्त होता है, निचले भाग मे जडे फैली रहती है, जो श्वेत वर्ण की, बीच मे मोटी तथा ऊपर नीचे पतली होती हे।

ईरान, ईराक, मिश्र, अफ्रिका आदि मध्य एशिया के प्रदेशो मे तथा हिमालय के निम्नभागो के प्रदेशो मे प्राय नैसर्गिक पैदा हुए इसके क्षुप अधिक पाये जाते है। पजाव के पूर्व की ओर बगाल, बिहार एव उत्तर प्रदेश (अलमोडा, गढवाल,नैनीताल आदि जिलो मे)तक फिर दक्षिण की ओर की शीत रुक्ष या उष्ण रुक्ष स्थानो की (जैसे अहमदनगर सातारा, सोलापुर आदि) काली, कोमल परती भूमि मे जहा वर्षा कम होती है इसकी उपज की जाती (वोई जाती) है। तथा कही २ नैसगिक भी होती है। मुगेर, वहराइच आदि जिलो की भाग अच्छी मानी जाती है। भारतवर्ष के अतिरिक्त अमेरिका तथा दक्षिण यूरोप मे भी यह पैदा होती है।

नोट न १—यूरोपादि देशो मे पैदा होने वाली भाग गुणो मे अत्यधिक श्रेष्ठ एव भारतीय भाग से भिन्न ही मानी जाती थी। अत भारतीन भाग को 'केनिविस इडिका' तथा विदेशी को 'केनिविस सेटिवा (नोर्ड हुई), कहा जाता था। किंतु वाद मे विशेष अन्वेषणो द्वारा उक्त दोनो के पौधो मे कोई वानस्पतिक विशेषता या भेद न पाये जाने से दोनो को एक ही नाम से पुकारा जाने लगा। हिमालय प्रदेश के प्राय सब जगलो मे यह पाई जाती है। इसके जिन पौधो से रेशे प्राप्त किये जाते हैं तथा जिनसे नशे के लिये या औषधि कार्यार्थ पत्र तोडे जाते है उन दोनो प्रकार के पौधो मे कोई अन्तर नही है। तथापि कुछ विद्वानो ने इसके वीजो मे कुछ भेद प्रदर्शित किया है इसमे कोई सदेह नहीं कि भाग के मादा पौधो मे, जिसकी कुमायु एव अन्य स्थानो मे रेशे के लिये खेती की जाती है चरस की पर्याप्त मात्रा होती है और कभी-कभी यह गाजे के रूप मे भी पाया जाता है। मादा भाग के पुष्पित या फलित शिखर (अग्रभाग) शुष्क किये हुए चिकित्सा मे प्रयुक्त होते हैं। यूरोप के वाजारो मे मिलने वाले इस द्रव्य मे वहुत अधिक नमी होती है।

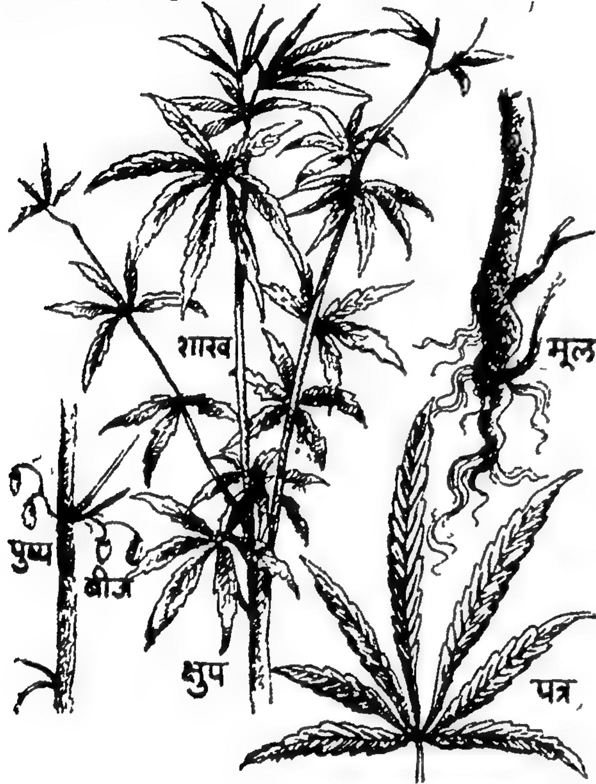
नोट न २—यद्यपि चरक सुश्रुतादि प्राचीन सहिता ग्रन्थो मे भाग का कोई स्पष्ट उल्लेख नही है, तथापि इसकी उत्पत्ति और गुणो के सम्वन्ध मे 'वनौषधि चन्द्रोदय' कार ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से निम्न श्लोक* उद्धृत किया है। जिसका तात्पर्य है कि पुरातन काल मे जव मन्दराचल पर्वत से समुद्र मथन हुआ था, तव अमृत रूप से इसकी उत्पत्ति हुई। तीनो लोक मे विजय देने वाली होने से इसका नाम विजया हुआ यह देवराज इन्द्र को प्यारी हे लोगो के कल्याणार्थ कामनाओ को पूर्ण करने वाली यह वूटी पृथ्वी पर आयी हे। इसके सेवन से सर्व

● इस कुल के क्षुप पुष्पवाहक, द्विवीजपर्ण, एकोपागी (एक जातीय), पुष्पदल ५ रोमश, नरकेसर ४, अण्डकोष वडे लटके हुए वीजकोष एक फाक वाले, उपरिस्थ, वीजो मे मासल पदार्थ नही रहता।

*जाता मन्दर मन्थनाज्जलनिधौ पीयूष रूपा पुरा। त्रैलोक्ये विजय प्रदेति विजया श्री देवराज प्रिया ॥
लोकाना हितकाम्यया क्षितितले प्राप्ता नरै कामदा। सर्वातक-विनाश-हर्ष जननी यैसेविता सर्वदा ॥

भांग व गांजा

CANNABIS SATIVA LINN.



प्रकार के रोग दूर होते है। कामशक्ति की वृद्धि होती तथा तन प्रसन्न रहता, हर्ष प्राप्त होता है।

प्राचीन सहिता काल मे सभवत औषधि कार्यार्थ ही इसका विशेष प्रचार न हो, किन्तु पेयादि अन्य रूप से इसका व्यवहार अवश्य ही किया जाता था। इसी से अब भी अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है। औषधि कार्य के अतिरिक्त ठडाई की तरह इसका विशेष उपयोग किया जाता है। तथा विवाह आदि मागलिक कार्यो मे भी इसका व्यवहार होता है। मुगल शासन काल मे यूनानियो ने इसके उपाङ्गभूत गाजा, चरस आदि का खूब प्रचार किया। १९ वी शताब्दी मे पाश्चात्य चिकित्सको ने इसके गुणो का परिचय प्राप्त कर इसके निद्राप्रद एव वेदनाशून्यताकारक गुणो की विशेष प्रसशा की और ब्रिटिश तथा अमेरिका की फारमाकोपिया मे इसे स्थान दिया गया। किंतु अब उसका स्थान कुछ गौण कर दिया हे।

नोट न ३—भाग, गाजा और चरस—इसके क्षुप नर और मादा भेद से दो प्रकार के है। मादा जाति के क्षुप अपेक्षाकृत कुछ अधिक ऊचे, कुछ अधिक काल के बाद परिपुष्ट होने वाले, तथा पत्र भी अधिक गहरे हरित वर्ण के होते हे। नैसर्गिक उत्पन्न हुये या बोये हुये नर तथा मादा जाति के वृक्षो के पत्तो का यथोचित सग्रह ही भाग कहाता हे। उसमे नर जाति के पुष्पो तथा स्त्री जाति के बीजो का भी मिश्रण रहता हे। नर जाति के पुष्प, पत्रो की अपेक्षा अधिक मादक नही होते, किन्तु स्त्री जाति के पुष्प अधिक मादक होते हे। अधिक ऊचाई पर पैदा होने वाले क्षुपो को जून व जुलाई मास मे तथा निचले स्थानो के क्षुपो को मई व जून मे काट कर, ओस तथा धूप मे बार-बार रखने के बाद, शुष्क हो जाने पर दबाकर रख दिये जाते हे। इस प्रकार भाग का सग्रह किया जाता है। इसमे प्रभावशाली तत्व या चरस का अश लगभग १०% होता हे। इस प्रभावशाली तत्व की दृष्टि से उत्तर प्रदेश, पजाब, सीमान्त प्रदेश तथा मद्रास प्रान्त की नीची पर्वत श्रेणियो के आस पास पैदा होने वाले क्षुपो से सग्रहीत की हुई भाग श्रेष्ठ मानी जाती है।

गाजा—विशेषत बोये हुये मादा जाति के क्षुपो की पुष्प मजरिया (पुष्पाकुर) फलित होने के पूर्व ही तोड ली जाती है। क्योकि फलित या बीजोत्पत्ति हो जाने पर इसकी मादक शक्ति का ह्रास हो जाता है। फिर इन तोडी हुई रालदार मजरियो को सुखा लेते हे। इसे ही गाजा कहते है। यह रङ्ग मे मटमैला, कुछ हरा, स्वाद मे कुछ कटु या चरपरासा तथा गध मे विशिष्ट प्रकार की मादकतायुक्त होता हे। इसमे प्रभावशाली तत्व २६% होता है। इस तत्व की दृष्टि से पूर्वी बगाल, मध्यप्रदेश तथा बम्बई प्रान्त के बोये हुए क्षुपो से प्राप्त किया गया गाजा श्रेष्ठ माना जाता है। भारत के दक्षिण तथा पश्चिम मे प्राय गाजा नाम से भाग और गाजा दोनो का व्यवहार होता हे। उडीसा मे प्राय गाजे को ही पीसकर बनाये गए पेय को भाग कहते हैं।

चरस—उक्त मादा क्षुपो की शाखाओ की दरारे,

पत्र, डठल एव पुष्पो पर जो एक प्रकार का लसदार, रालसदृश रस निकलकर जम जाता हे, उसे ही चरस कहते है। इसमे उक्त प्रभावशाली तत्व ४०% तक पाया जाता है। इस तत्व की दृष्टि से नेपाल, काश्मीर तथा लद्दाख के पहाडी भागो पर बोये हुये क्षुपो से इसका सग्रह किया जाता है। शीतकाल मे रात्रि मे ओस पडने के पश्चात् प्रात चमडे का कपडा पहनकर इसके क्षुपो मे इतस्तत फिरने से, क्षुपो की रगड से उक्त लसदार चरस कपडे पर चिपट जाता हे, उसे खुरचकर चमडे से पृथककर गोले या ढेले के रूप मे बना लेते हैं। अथवा हाथ और पैरो से पुष्प मजरियो को रगडकर हाथ पैरो मे चिपके हुये इस लसदार द्रव्य को खुरचकर जमा कर लेते हे।

प्राय भारत मे उत्पन्न हुये क्षुपो से चरस पृथक नही की जाती, अत यहा गाजा ही तैयार किया जाता है। यहा चरस यारकद से, काश्मीर के लेह के मार्ग से लाया जाता है।

नाम–

स —भगा (भज्यते बुद्धिरनया, जिससे बुद्धि भ्रश हो), मातुलानी (जो मातुल-लक्ष्मीवाहन-उलूक की भाति अन्धा बना देवे), मादनी, विजया (जो बुद्धि को जीत ले), गजा (इसकीएक जाति से गाजा पैदा होने से) आदि। हि —भाग, भग, विजया, सिद्धि, बूटी इ । म गु —भाग । व —भाग, सिद्धि । अ —इडियन हेम्प (Indian hemp) । ले —केनाबिस इडिका, केनाबिस सेटिवा (cannabis sativa)।

गाजा के नाम—स-—गजा, मातुल पुत्रक, सम्विदा-मजरी, उग्रा इ । हि —गाजा, गाभा । म —गाजा । गु —गाजो । व —गाजा । अ ले —केनाबिस सेटिवा ।

रासायनिक संगठन–

भाग और गाजे मे एक ही प्रकार का सत्व है । उसके सारभाग चरस मे केनोबिनोन (Cannabinone) नामक एक मुलायम बादामी रग की राल होती हे। यही इसका मुख्य प्रभावशाली सत्व है। इसके अतिरिक्त भाग गाजे मे गोंद, शर्करा, कैल्शियम फास्फेट (Calcium phosphate), अत्यल्प मात्रा मे उडनशील तैल, मेन्द्रिय अम्ल, कलमीशोरा, नौसादर आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—भाग, गाजा व चरस। ये यदि सुरक्षित न रखे जाये तो पुराने हो जाने पर गुणहीन हो जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाक, वातकफहर, पित्त वर्धक, मदकारी (प्रारभ मे हृदयोत्तेजक, हर्षजनक पश्चात् प्रलापजनक) दीपन, पाचन, रोचक, ग्राही, पित्तसारक, शूल प्रशमन, निद्राजन्य वेदना आक्षेप-हर, मूत्रल, शुक्रस्तभक, गर्भाशय सकोचक, त्वचा शून्य-कारक, रक्तस्रावरोधक, धातु एव ओजशोषक, तथा–शिर शूल, अनिद्रा, अपतानक, धनु स्तभ, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, उदरशूल, यकृच्छूल, अर्श, रक्तस्राव, कुक्कुर कास, श्वास, विसूचिका, योषापस्मार, रक्तप्रदर, रज शूल, विसर्प, पूयमेह [सुजाक], वृक्कशूल, मूत्राशय स्तभ जन्य मूत्राघात, क्लैब्य, शीघ्र पतन, कष्ट प्रसव आदि विकारो पर प्रयुक्त होता है।

नोट—भाग और गाजे के गुण लगभग समान ही हैं किंतु भाग की क्रिया विशेषत आमाशय एव आन्त्र पर अधिक होती है। तथा यह गाजे की अपेक्षा अधिक ग्राही है। गाजे की प्रधान क्रिया मस्तिष्क पर होती है, वैसे तो भाग की भी क्रिया मस्तिष्क पर होती है, किन्तु उतनी नही। भाग से बनी हुई ठडाई या पेय से मूत्र की मात्रा बढ़ती हे।

भाग और गाजा दोनो से आखो की पुतली विकसित होती, तथा नाडी की गति भी बढती है। दोनो मे कामोद्दीपक और गर्भाशय सकोचक शक्ति है। गर्भाशय सकोचक का प्रभाव प्रत्यक्ष मासपेशी के सकोच एव अप्रत्यक्षतया नाडी सस्थान के द्वारा होता है। दोनो उत्तेजना जनक हैं। उत्तेजना की अवस्था मे कभी-कभी प्रलाप भी होता है। किंतु रक्त सचालन क्रिया मे विशेष प्रभाव नहीं पडता । उत्तेजना का अधिक असर मस्तिष्क पर होता है। अल्प मात्रा मे भाग के सेवन से मस्तिष्क पर जो असर होता है, उसके कारण बोलने एव अधिक बाते

करने की प्रवृत्ति बढ जाती, विचार शक्ति भी बढती है। मनकी प्रफुल्लता एव हर्ष की वृद्धि होती, चिंता दूर होती क्षुधा भी अच्छी लगती है। इसके पश्चात् मस्तिष्क पर दूसरा प्रभाव निद्रा का होता है। पेशियो की सचालन शक्ति बढ जाती है। इसके द्वारा होने वाली विचार शक्ति की वृद्धि सेवन कर्त्ता की प्रकृति के अनुसार होती है। स्पर्शशक्ति का ज्ञान कुछ कम पड जाता है, कभी-कभी शरीर मे चुनचुनी सी भी प्रतीत होती हे। गाजा के भी अल्प मात्रा मे सेवन से यही लक्षण होते है।

निद्रा तो अफीम से भी आती है, किंतु अफीम के नशे से जागने के बाद आलस्य मालूम होता है। इस प्रकार का आलस्य शिरोवेदना, ग्लानि, अग्नि माद्य आदि शिकायतें इसमे नही होती। और न अफीम के समान कब्जियत होती है। भाग सेवन करने वाले प्राय भाग पीने के बाद शौच को जाते है तथा उन्हे खुलकर दस्त होता है। किंतु भांग व गाजा के नशे मे निद्राभग के पश्चात् जीभ सूखती हुई मालूम पडती है, तथा शरीर मे रूक्षता प्रतीत होती है।

भाग व गाजे मे जो वेदना स्थापक शक्ति है वह अफीम से कम है। किन्तु शाति कारक धर्म विशेष है। इनके व्यवहार से पेशाब अधिक आता है। उनके पेशाव मे एक प्रकार की विशेष गन्ध रहती है। पेशाव लाने के लिये [मूत्रावरोध मे] भाग का अरिष्ट १० बूद तक दिया जाता है। इनमे वाजीकरण की भी शक्ति है, किन्तु इससे तन्मयता बढ जाती है। श्वास प्रश्वास और नाडी की गति के सम्बन्ध मे निश्चित स्थिति नही रहती कभी-कभी श्वास प्रश्वास की गति बढ जाती है। फिर शीघ्र ही मन्द भी हो जाती है। जब पेशियो की सचालन शक्ति बढ जाती है, तब शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। किन्तु निद्रितावस्था मे उत्ताप घट जाता है। अपतत्रक या अपस्मार और हिस्टीरिया के दौरे एव आक्षेप इनके प्रयोग से अवश्य रुकते है, तथा एक प्रकार की अवसाद की स्थिति आती है। इनके सेवन से पित्त का सचार अच्छा होता है, अत भूख भी अच्छी लगती है, तथा आहार का पाचन भी अच्छा होता है। साथ ही मल का पतलापन भी घटता है। आतो का श्लेष्मा कम होता है। अधिक मात्रा के कारण त्वचा की ज्ञानग्राहक शक्ति इतनी घट जाती है कि दात उखाडा जाय तो भी उसका दु ख नही प्रतीत होता। चीरफाड करने पर शस्त्र चालन का कष्ट बोध नही होता।

भाग का उपयोग मादक रूप मे तथा औषधि रूप मे किया जाताहै। जो मादक रूप मे इसका सेवन करते है,उनको सिवाय हानि के और कोई लाभ नही होता। यद्यपि औषधि रूप से सेवन की जाने पर यह वाक्शक्ति एव विचारशक्ति को बढाती है, तथापि मादक रूप से इसका सेवन विरुद्ध परिणाम भी करता है। नशेबाजो को अनेक प्रकार के मस्तिष्क रोग तथा स्नायविक विकार उत्पन्न हो जाते है स्वास्थ्य नष्ट होता है। इसका औषधि रूप से सेवन अनेक रोगो को समूल नष्ट करता है। आत्रशूल व वृक्क शूल मे यह लाभकारी है पित्तशोष के कारण उत्पन्न शूल को नष्ट करती है। आमाशय के बल को बढाती, अजीर्ण जन्य अतिसार एव अजीर्ण को नष्ट करती हे। इसके योगो को उन्माद रोग मे दिया जाता हे, तथा इससे वृक्क-शोथ जन्य पीडा (Nephritis) भी शान्त होती है। यह रक्त मिश्रित मूत्रस्राव को रोकती हे। वाह्य प्रयोग मे अर्श के मस्सो पर लगाने से पीडा दूर होती है। यह साधारण ज्वर निवारक भी है। सुजाक मे होने वाली शिश्नेन्द्रिय की पीडा, इसके लेप से शान्त होती हे। इसके सेवन से नाडी दौर्बल्य जन्य आक्षेपयुक्त मासिक धर्म की पीडा शीघ्र ही दूर होती है।

आमाशय शोथजन्यशूल तथा क्षय रोग के कास मे यह शीघ्र लाभकारी है। तैसे ही किसी कारण से वस्ति मे आक्षेप हो या आक्षेपजन्य तमक श्वास हो, तो इसके योगो से लाभ होता है। अत्यन्त कष्टदायक तीव्र तथा आक्षेपयुक्त सक्रामक कास (कुकर खासी) मे इससे विशेष लाभ होता हे। स्त्री की प्रौढावस्था के अन्त मे मासिकस्राव के वन्द हो जाने के कारण होने वाले तीव्र शिर शूल मे भाग का योग सेवन करने से लाभ होता है। तैसे ही गर्भस्राव या गर्भपातजन्य अधिक रक्त प्रवृत्ति, अथवा मासिकस्राव के समय होने वाली अधिक रक्त प्रवृत्ति मे भी इसके योगो से लाभ होता है।

भाग के योगो के सेवन मे शुक्राशय एव तत्सम्बधित अवयवो के ध्वजभगादि विकार दूर होकर उनकी शक्ति बढती है। स्वप्नदोष दूर होता, वीर्य की स्तभन शक्ति बढती है। एतदर्थ तथा अन्यान्य विकारो के नाशार्थ प्राचीन काल मे बाजीकर औषधियो मे यथा महाकामेश्वर, कामेश्वर, महामदन मोदक, रतिवल्लभ रसायन, क्रौचपाक आदि रति शक्तिवर्धक, उत्तेजक, स्तभक, नपुंसकत्व हर प्रयोगो मे तथा त्रैलोक्य समोहन रस आदि मे इसका उपयोग किया गया है।

भाग-पत्र के चूर्ण का प्रयोग व्रणो मे मासाकुरोत्पत्ति को बढाता है। पत्तो की गरम पुल्टिस स्थानिक शोथ, विसर्प, वातनाडीशूल, रक्तार्श के मस्से आदि पर शूलहर एव शामक रूप मे लगाने से लाभ होता है। भाग और खुरासानी अजवाइन का धुआ भी लाभ करता है। नेत्रशोथ पर भाग का गरम कल्क बाधते है। अण्डशोथ मे भी शोथ तथा वेदना शमनार्थ भाग का प्रयोग करते है।

यूनानी मतानुसार—भाग तीसरे दर्जे मे शीत व रूक्ष है। यह प्रथम आराम और नशा पैदा करती, गालो की लाली को निखारती है। चिन्ता को मिटाती है, भूख-प्यास को तेज करती है अन्त मे इसके सेवन से दिमाग विकृत हो जाता है। दृष्टि मे भी विकृति आती है, आखो के नीचे अधेरा आने लगता है। जनून और मालीखोलिया हो जाता है, नामर्दी आ जाती है। वीर्य खुश्क होता तथा कामवासना कम होती है। मिठाई से नशा बढ जाता है, तथा खटायी से कम हो जाता है। कभी-कभी उचित मात्रा मे इसके सेवन से एव इसकी आदत न डालने से इससे कोई नुकसान नही होता। खाली पेट इसे लेने मे नुकसान पहुचाती है। जो इसका सेवन दिन मे दो बार करते है, वे खासी से पीडित होकर शीघ्र मरणासन्न हो जाते है। इसमे काली मिर्च डालकर सेवन से इसकी खुश्की बढ जाती है। उत्तम तो यह है कि बादाम गिरी, ककडी, तरबूज व कद्दू के बीजो की गिरी, छोटी इलायची के दाने और सौंफ के साथ इसे घोट छानकर पीवे। ये चीजे कालीमिर्च से उत्तम है। इसके ताजे पत्तो का मदोष्ण लेप आख का दर्द तथा प्रकाश का नही सहना दूर कर देता है। इससे पेशाब की मिकदार बढ जाती है। यदि पेशाब लाने वाली दवाओ के साथ मिलाया जाय तो पेशाब बहुत ज्यादा आती है, तथा गुर्दो की जलन बन्द होती और गुर्दे का दर्द दूर होता है।

आधुनिक मतानुसार—पाश्चात्य वैज्ञानिको ने भाग के विषय मे बहुत कुछ अनुसधान किया है। इनका कथन है कि कई रोगो मे विशेषत धनुस्तभ, जलातक (पागल कुत्ते का विष), वातरोग, बच्चो के आक्षेप तथा हैजा मे इसका प्रयोग अच्छा लाभकारी है। अनुसधानो से सिद्ध हुआ है कि धनुस्तम्भ (टिटॅनिस) और हैजा की यह अच्छी दवा है। धनुस्तभ मे क्रमश इसकी मात्रा बढानी पडती है तथा रोगी को कई दिनो तक इसके नशे मे मस्त रखना पडता है। हैजा मे यह अफीम की तरह काम करती है। हैजा के प्रारभ मे ही इसे देने से विशेष लाभ होता है। इसे विरेचक औषधो के साथ प्रयोग करने से मरोड नही होती। अतिसार के पश्चात् रोग निवृत्ति की अवस्था मे इसका पानक शातिदायक होता है।

गाजा, चरस तथा भाग के बीजो के गुणधर्म व प्रयोग तथा एलोपैथी के प्रयोग आगे देखिये।

भांग का शोधन—

सर्व साधारणत सेवनार्थ भांग को ठण्डे ताजे जल मे कम से कम २-३ घण्टे भिगो रखने के बाद अच्छी तरह मसलकर निचोडकर जल को बहा देते, साथ ही साथ उसमे जो बीज हो उन्हे भी बहा देवे। क्योकि बीजो मे उष्णता अधिक होती है। इस प्रकार भाग को धो लेने से उसका खुश्की लाने का दुर्गुण दूर हो जाता है। तथा यह घोट पीसकर पीने के योग्य हो जाती है।

औषधि प्रयोगार्थ उक्त धोई हुई भाग को सुखाकर गोघृत मे भूनकर प्रयोग करे।

अथवा—भाग को ३ बार जल से धोकर मिट्टी के पात्र मे डालकर सुखा ले, फिर उसे मद आच पर थोडा सेक कर, चूर्णकर, छानकर ४ भाग पोस्त के डोडे के पानी [या क्वाथ] और ८ भाग गाय के दूध मे पकाकर शुष्ककर रख ले। इस विधि से भाग दोष रहित एव विशेषत बाजीकरण के प्रयोगो के लिये हितकारी हो जाती है —भा भै र।



अथवा—बबूल की छाल के क्वाथ मे दोलायन्त्र विधि से भाग को २५-३० मिनट तक मध्यम अग्नि पर स्वेदन कर शुष्क कर ले या गोदुग्ध की भावना देकर सुखाकर रख लेवें। यह भी औषधि प्रयोगार्थ उत्तम लाभदायक होती है।

अथवा—भांग को गौदुग्ध मे दोलायंत्र से २-३ घटे स्वेदन कर, जल से धोकर शुष्क कर हल्की आच पर गौ-घृत मे भूनकर काम मे लावे। या गोदुग्ध मे उबालकर सुखाकर साधारण प्रयोग के कार्य मे लावे।

नोट—गाजे की शुद्धि भी इसी प्रकार की जाती है। डा० देसाई का कथन है कि शुद्धि भाग या गाजा आमाशय की पीडा, कुपचन, संग्रहणी, अतिसार तथा नये व पुराने आमविकार दूर करने के लिये किसी प्रयोजक औषधि के साथ देना चाहिये। भाग से इन विकारो मे होने वाली पीडा कम होती है। यदि मल के साथ रक्त हो तो वह बन्द होता है। क्षुधावृद्धि होती, पित्त का सवहन अच्छी तरह होता तथा आहार का पचन ठीक प्रकार से होता है। इसका सेवन अधिक दिनो तक किया जाय तो भी पचन क्रिया बिगडती नही। अतिसार मे शुद्ध भाग या गाजे का चूर्ण गुड या चीनी मिलाकर देना चाहिये।

(१) अजीर्ण, आमातिसार तथा विसूचिका पर—

आमाशय के शूल सहित अजीर्ण, शूल रहित सामान्य अजीर्ण तथा पुराने अजीर्ण विकार या ग्रीष्म काल मे होने वाले अजीर्ण एव अतिसार पर भाग का सेवन काली मिर्च व छोटी इलायची के साथ दिन मे ३-४ बार करने से मल बधकर होता, वेदना व प्रदाह दूर होता तथा पचन क्रिया सबल होकर लाभ होता है।

अथवा—रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, यवक्षार, सुहागा, सज्जीखार, पाचो नमक ये दस चीजे समभाग भुनी हुई भाग सबके बराबर तथा सहजने की जड की छाल भाग से आधी, सब के महीन चूर्ण को भाग, सहेजना, चित्रक व भागरे के रस मे २-२ दिन खरलकर, सम्पुट मे रख एक प्रहर तक तीव्र अग्नि मे पकावे। फिर निकाल अदरख व चित्रक के रस की सात-सात भावनाये देकर, शुष्ककर खरलकर रक्खे। २ से ८ रत्ती तक की मात्रा मे शहद के साथ सेवन करने तथा ऊपर से गुड व सोठ १-१ माशा एकत्र मिलाकर खाने से अग्नि प्रदीप्त होती है। यह रस रत्नाकर का 'अग्निकुमार रस' है।

आगे विशिष्ट योगो मे 'ज्वालानल रस' देखिये।

अतिसार पर—भाग और जायफल का चूर्ण १-१ भाग तथा इन्द्र जौ का चूर्ण २ भाग एकत्र मिला (१ या १½ माशा की मात्रा मे) शहद के साथ चटाने से सर्व प्रकार का अतिसार नष्ट होता है। —भा प्र

आमातिसार हो तो भाग (या गाजे) का चूर्ण सौफ के अर्क के साथ दिन मे ३ बार देने से अपचन तथा दुर्गन्धमय दस्त, कच्चा आम जाना ये सब दूर होते है।

—गा औ र

विसूचिका (हैजा) पर—हमारा अनुभव है कि शुद्ध भाग को सजीवनी वटी या अग्निकुमार रस के साथ मिला कर देने से वमन बन्द होता, पैरो मे गोला सा उठकर ऐंठन होने का उपद्रव नही होता, दस्त भी रुकते तथा नाडी की गति मे भी सुधार हो जाता है। विसूचिका मे शरीर ठडा पड जाया करता है, किंतु भाग का योग होने से शरीर मे गरमी बनी रहती है। नाडी की उत्तेजना घटती नही है। अच्छा तो यह है कि इसे रोग के आरभ मे ही दिया जाय। —श्री स्व प० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आ वृहस्पति, प्रयाग (अगद तत्र से)।

अपचनजन्य या कीटाणुजन्य हैजा होकर वमन व दस्त होने लगे हो तो प्रारभावस्था मे भाग (या गाजा), छोटी इलायची व कालीमिर्च दो-दो रत्ती तथा कपूर १ रत्ती एकत्र घोटकर आधा-आधा घण्टे या एक एक घण्टे पर, उबालकर शीतल किये हुये जल के साथ देते रहने से, थोडे ही समय मे वमन, दस्त दूर होते हैं। नाडी सुधरती, देह मे उष्णता एव उत्तेजना आती है। विसूचिका के लिये यह उत्तम उत्तेजक औषधि प्रयोग है।

—गा औ र

(२) अर्श, शूल, निद्रानाश, प्रमेह, पूयमेह, मूत्रावरोध और रक्त मूत्रता पर—

अर्श पर—अशुद्ध भाग [या गाजे] के साथ, हल्दी,



प्याज व तिल मिला पीसकर लेप करने, या इस मिश्रण को पीस टिकिया बना, बाधकर लगोट कस लेने से अर्श की सूजन एव रक्तस्राव दूर होता है, जिसके कारण रोगी के दस्त मे रुकावट होती है। वनौषधि गुणादर्शकार श्री शकरदत्त जी शास्त्री पदेजी ऐसी अवस्था मे भाग के साथ पशुओ के सीग को कुचलकर गुदा पर धूनी दिलाते थे। इससे चमत्कारिक लाभ होता है। अथवा अलसी पुल्टिस मे थोडा गाजा डालकर लगावें और भाग या गाजा मिलाकर सेक करे तो लाभ होता है।

—अ नत्र गे

नोट—उक्त अलसी की पुल्टिस वाले प्रयोग मे अशुद्ध हरी या सूखी भाग १ तोला को अलसी ३ तोला के साथ पीसकर पुल्टिस बनाकर बाधें। इससे फूली हुई पीडा एव खुजलीयुक्त बवासीर मे विशेष लाभ होता है।

अथवा—अशुद्ध भाग के पत्तो को ५ तोला लेकर थोडे पानी मे इतना पकावें कि पत्ते जल जावें। फिर उसमे १ माशा अफीम मिलाकर खूब घोटकर ५ तोला गोघृत मिला मलहम सा बनाकर रखें। इसे अर्श के मस्सो पर लगाने से पीडा, जलन एव सूजन दूर होकर मस्से नष्ट होते हैं।

अथवा—केवल भाग को ही जल मे पीस, कुछ गरम कर मोटा-मोटा लेप करने या इसकी टिकिया बनाकर बाधने से भी अर्श की पीडा दूर होती है।

—सकलित

शूल पर—अपचन या प्रवाहिकाजन्य उदरशूल हो, तो भाग के सेवन से दूर हो जाता है। भाग १ माशा तक जल मे ३ बार धोकर घी मे भून कर, समभाग शक्कर मिला, ३-३ घण्टे से सेवन करें, अथवा भाग और कालीमिर्च का चूर्ण गुड मे मिलाकर गोली बना कर सेवन करें।

शिर शूल पर—भाग ४ माशा तक जल ४ तोला मे भिगोकर छान लेवें, उसमे बकरी का दूध ३ तोला मिला कर नासिका मे इसकी १० बूदें, डाल नस्य देवें।

निद्रा नाश पर—भाग ५ तोला तथा गुलाब पुष्प की पखुडी १६ तोला एकत्र कूटकर ६० तोला मिश्री चूर्ण में मिला ४० दिन तक धूप में रख, काच के पात्र में भर रखें। मात्रा—२ तोला तक गोदुग्ध के साथ रात्रि मे सोते समय सेवन करने तथा भाग को बकरी के दूध मे पीसकर पैरो के तलुवो पर मालिश या लेप करने से उत्तम निद्रा आती है। अनिद्रा रोग दूर होता है।

अथवा—घी मे भुनी हुई भाग का चूर्ण १ माशे मे शहद या गुड के साथ सेवन से अच्छी नींद आती है। यह योग वातज्वर तथा विषम ज्वर मे, अतिसार मे भी लाभकारी है। वृद्ध मनुष्यो के निद्रानाश मे भी यह योग विशेष व्यवहृत होता है।

अथवा—भाग, कमलपुष्प, अफीम, जायफल, अजवायन और पीपलामूल समभाग घोटकर तथा उसमे भाग के क्वाथ की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलिया बनावें। शयन के समय १ या २ गोली जल के साथ लेने से उत्तम निद्रा आती है।

—सकलित

अथवा—निद्राकरासव—भाग ५ तोला, बबूल और आक की छाल प्रत्येक ४० तोला सबको पीस कर, सुदृढ चिकने मटके मे भर उसमे १ सेर गुड को ५ सेर जल मे घोलकर डाल, मुख मुद्राकर १ मास तक सुरक्षित रखने के बाद भबके द्वारा अर्क खीचकर बोतलों मे भर रखें। मात्रा—१ से २॥ तोला तक, थोडा जल मिला सेवन करने से खूब अच्छी निद्रा आती है, रोगी को शाति प्राप्त होती है। वात रोग शमन होते तथा क्षुधा वृद्धि होती है।

—वृ आसवारिष्ट सग्रह

प्रमेह पर—भाग का महीन चूर्ण, बगभस्म और गिलोयसत्व १-१ रत्ती एकत्र कर (यह १ मात्रा) शहद मे दिन मे २-३ बार सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

पूयमेह (सुजाक) मे—भाग (या गाजा) की ठंडाई पिलाने मे मूत्र विरेचन होकर पूय निकल जाता है। मूत्र त्याग के समय होने वाला दाह शमन होता है। वृक्क या मूत्राशय मे से रक्तस्राव होता हो तो बन्द होता है तथा प्रदाह का दमन होता है। फिर आवश्यकता रहे तो सुजाक नाशक उपयुक्त औषधि सेवन करावें। —गा औ र

सुजाक मे भाग के क्वाथ की पिचकारी लगाने से भी अति लाभ होता है।

मूत्रावरोध पर—उग्र पदार्थों का सेवन, सुजाक, सुषुम्नाकाण्ड की वेदना, कुनाईन का अधिक सेवन आदि

कारणो से होने वाले मूत्रावरोध मे ककडी के बीजो की गिरी और भाग की ठडाई बनाकर पिलाई जाती है। यदि अश्मरी कण मूत्रमार्ग मे आगया हो, तो पुनर्नवाक्षार, यवक्षार, अपामार्ग क्षार, कबूतर की शुष्क विष्ठा या अन्य अश्मरी भेदक औषधि के साथ भाग की ठडाई दी जाती है। —गा औ र.

रक्तमूत्रता पर—भाग, सौफ और इलायची पीसकर पिलाने से अथवा केवल भाग के ही पिलाने से मनुष्य, पशुओं (बैल, भैस आदि) के पेशाब या पखाने से रक्त का जाना बन्द होजाता है। पशुओ के लिये मात्रा १माशा रखनी चाहिये। —अ तत्र

(३) बाजी करणार्थ तथा दुर्बलता, थकावट, कातिहीनता और त्वचा के विकारो पर—

वाजीकरणार्थ—भाग मे वाजीकरणार्थ शक्ति की विशेषता है।

घी मे भुनी हुई भाग का चूर्ण ५ तोला को १ सेर खोया मे मिलाकर शक्कर १ सेर की चाशनी मे डालकर १-१ तोला के मोदक बना लेवे। सायकाल या रात्रि के समय १ मोदक खाकर ऊपर से १० से २० तोला तक दूध पीवे। घी का सेवन विशेष करें।

शास्त्रोक्त मदनानन्द मोदक (आगे विशिष्ट योगो मे देखें) इस कार्य के लिये विशेष उपयोगी है। इससे शिश्नेन्द्रिय की उत्तेजना बढती है। मस्तिष्क मे जो स्फूर्ति की क्रिया सम्पादित होती है, उससे रक्ताभिसरण उत्तेजित होता तथा शिश्न मे रक्त प्रवाह बढकर उत्तेजना एव काठिन्य आता है। ज्ञानग्राहक शक्ति कम हो जाने से अधिक समय तक घर्षण होने पर भी शुक्रपात नही होता। २ रत्ती भाग मलाई के साथ लेने से या माजूम के रस मे (विशिष्ट योगो मे माजून के प्रयोग देखे) इसे लेने से इस उद्देश्य की सिद्धि होती है। शिश्न की सुपारी मे गाजा पीसकर लेप करने से भी शीघ्र वीर्यपात नही होता। —अ तन्त्र

अथवा—हरी भाग ७॥ तोला, सोठ, जावित्री, बालछड, तमालपत्र प्रत्येक ४॥ तोला, कालीमिर्च, मस्तगी, केशर ३-३ तोला लेकर प्रथम भाग को वादाम तेल मे १४ दिन तक तर रखे, फिर हलका सा भूनकर बारीक चूर्ण करले। उसमे शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, त्रिगुणा मधु मे मिला सुरक्षित रखे। यदि इसमे ३ तोला कस्तूरी, १॥ तोला चादी वर्क, ९ माशा अम्बर, शहद और स्वर्ण वर्क ४॥ माशा मिला ले तो अति उत्तम माजून (मफरह) तैयार होगा। मात्रा—७ माशा। यह वाजीकर स्तभक, उत्तेजक एव हृद्य है। इसे 'मफरह बगयान' कहते है। —यू चि सा

दुर्बलता (कृशता) पर—भाग, असगध, (नागौरी), विदारीकन्द, ईसबगोल. की भुसी और मिश्री समभाग कूट पीस कर रख लेवें। मात्रा—३ माशा तक। ग्रीष्मकाल मे आवले के मुरब्बे के साथ या घी शक्कर व कालीमिर्च चूर्ण के साथ लेकर ऊपर से दूध पीवे। शीतकाल मे शहद या मक्खन के साथ लेकर दूध पीवे। भोजन मे दूध भात या हलुवा लिया करे। शरीर हृष्ट-पुष्ट एव बलवान होता है। यह प्रयोग पुरुष तथा स्त्री दोनो के लिये उपयोगी है।

थकावट—काम करने पर शीघ्र ही थकावट आजाती हो तो भाग १ माशा तक, बादामगिरी २ से ४ माशा कालीमिर्च १ माशा तथा मिश्री ३ तोला इनको १५-२० तोला जल मे घोट छानकर आवश्यकतानुसार पीने से लाभ होता है।

कातिहीनता पर—भाग स्वरस (या क्वाथ) ४० तो. मे तिल तेल २० तोला मिला पकावे। तेल मात्र शेप रहने पर रखले। इसे चेहरे पर प्रतिदिन १ बार लगाते रहने से काति निखरती है। —सकलित

त्वचा के विकारो पर—छाजन (उकौत, व्यूची या एग्झीमा) पर—भाग ८ तोला, सिंदूर ४ तोला तथा बावची २ तोला लेकर प्रथम तिल तेल ४० तोला को आग पर जोश देवे। झागो के शात होने पर उसमे सिन्दूर डालें—फिर १ घण्टा बाद बावची चूर्ण डाले, फिर—१ घटा बाद भाग चूर्ण मिलाकर नीचे उतार ले।

इसे सोते समय हाथ, पैर की छाजन पर लगाये, किंतु पानी न लगने दे, थोडी देर बाद छाजन के स्थान को आग पर २-३ घड़ी [लगभग १ घण्टे तक] सेकने से छाजन नष्ट हो जाती है। —यू चि सा

गावो मे औषधिरत्नकार का कथन है कि व्यूची



आदि त्वचा विकारो मे जब अधिक खुजली चलती है, त्वचा शुष्क हो जाती तथा वारवार निद्रा भग होती रहती है तब शाम को भाग बडी मात्रा मे थोडे दिनो तक देते रहने और शरीर पर तेल का मर्दन करते रहने से त्वचा मुलायम हो जाती है कीटाणु नष्ट हो जाने, तथा खुजली दूर हो जाती है।

नोट—भाग के क्वाथ का विसर्प तथा वातशूल की वेदना [न्यूरल्जिक पेन] पर सिंचन करते हैं। इसका लेप सिर पर करने मे रूक्षिका को दूर करता है।

[४] ज्वर, वातरक्त, उन्माद, धनुस्तभ, नेत्रविकार व्रण तथा अण्डकोष के शोथ पर—

ज्वर पर—विषम ज्वर या वारी से आने वाले अन्तरा, तिजारी, चौथया आदि ज्वरो मे तथा जीर्ण ज्वर मे भाग या गाजा को किसी प्रयोजक औषधि के साथ देने से बहुत लाभ होता है। ज्वरजन्य शीत का जोर घटता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है। तथा ज्वर उतर जाने पर थकावट या क्लान्ति नही मालूम पडती, मानसिक प्रसन्नता रहती एव रक्ताभिसरण क्रिया नियमित होती है। एतदर्थ १ या डेढ रत्ती धुली हुई भाग को थोडे गुड मे मिला बेर जैसी ३ गोलिया बना लेवें। ज्वर चढने के ३-४ घण्टे पहले १-१ गोली यो ही या मीठे दही के साथ लेवें। इस प्रकार १-१ घण्टे से तीनो गोली लेवें। उसी दिन ज्वर नही आयेगा यदि आयेगा भी तो बहुत कम आवेगा। दूसरी पाली मे इसी प्रकार लेने से विल्कुल नही आयेगा। रोगी को ज्वर के दिन केवल दूध ही लेना चाहिये।

भूत ज्वर मे—रविवार या मगलवार को भाग के पौधे की जड को खोदकर सिर पर बाधने से उपद्रव शात हो जाता है —अ तत्र

अथवा शुद्ध भाग ४ रत्ती, भुना हुआ चना १ माशा और गुड २ माशा एकत्र पीसकर गोली बना ज्वर से पूर्व देने से भी लाभ होता है।

अथवा—भाग १ माशा पीसकर ३ माशा गुड मे मिलाकर खावें, ऊपर से गर्म दूध या गरम जल पीवें। जूडी आने के दो घण्टे पूर्व घटे-घटे पर २ बार यदि नशा मालूम पडे तो इमली का पना बनाकर पीवें। शान्ति मिलेगी। जो रोग भाग खाने वाले हैं उनके लिये भाग व गुड के प्रयोग लाभदायक नहीं है। ध्यान रहे कमजोरी वालों को २-४ रत्ती भाग की मात्रा देवें तथा दो घण्टे से अधिक न देवें। —भा गृ चिकित्सा

अथवा—भाग १ माशा नमक, काली मिर्च ४ माशा और हींग भुनी हुई १ रत्ती मिला चूर्ण ज्वर चढने के पूर्व २-३ बार देवें।

वातरक्त—यह अति गम्भीर व दुस्साध्य रोग है। प्रारम्भ मे हाथ पैरो मे प्रबल दाह होना, हाथ पैरो की उङ्गलिया, नाक, कान पर विकृति होती है। फिर किसी को ज्वर, स्थान-स्थान पर रक्त विकार के ददोरे तथा असह्य पीडा होती है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे दाह के शमनार्थ भाग श्रेष्ठ औषधि है। मात्रा बडी देनी चाहिये। —गा औ र।

उन्माद पर—भाग, गाजा और हीग १-१ भाग एकत्र पीसकर, अजवायन क्वाथ की ४ भावनायें देकर शुष्क कर शहद के साथ घोटकर १ से ४ रत्ती तक की गोलिया बना लेवें। इसे जटामासी के फाण्ट के अनुपान से २-२ या ३-३ घण्टे मे देवें। उन्माद, अपस्मार, आक्षेपादि मानसिक विकार दूर होते हैं।

—आ पत्रिका

धनुस्तभ (**Tetanus**)—डा कास्टगिर ने भाग का धूआ पिलाकर इस रोग के कई रोगियो को आराम किया था। ७ रत्ती भाग को थोडी सी तमाखू के साथ हुक्के मे भरकर रोगी को पिलाया जिससे आक्षेप की गति कम होने लगी। कई वार इसका धूम्रपान कराने से रोगी ठीक होगये।

बम्बई के डा० जी० सी० लुकास ने परीक्षा करके देखा कि इस रोग मे भग के धूम्रपान से आक्षेप क्रमश धीरे धीरे बहुत समय के बाद हुआ करता है तथा उसका जोर भी धीरे धीरे कम हो जाता है। रोगी को अधिक कमजोरी नही आती और बारबार व्यवहार करने मे रोग एकदम दूर हो जाता है।

डा० डायमाक ने भी कई रोगियो को केवल भाग के धूम्रपान मे लाभ पहुचाया है तथा उन्होने निर्णय



किया कि यह धनुस्तभ के लिये यह एक उत्तम औषधि है ।
—व च

नेत्रविकार पर—भाग को जल के साथ पीस, थोडी गरम कर पुल्टिस बना, रात्रि के समय नेत्रो पर बाधने मे भारीपन, वेदना, खुजली और लाली आदि दूर होते है ।

व्रण पर—सद्यो व्रण मे भाग का चूर्ण भर देने से धनुस्तभ का भय नही रहता, शोथ नही होता, वेदना बन्द होकर व्रण शीघ्र पूर्ण हो जाता है ।

अण्डकोष के शोथ पर—इसके गीले पत्तो की पुल्टिस बाधने से तथा इसके क्वाथ का बफारा देने से शीघ्र लाभ होता है
—सकलित

[५] कफ विकार [प्रतिश्याय, कास, श्वास], छीक के लिये कर्ण या गर्भाशय के विकार, गर्भस्थापनार्थ, पुत्रोत्पत्ति के लिये, योनिशैथिल्य, चूहे के विष और हरताल के विष पर—

कफ विकार पर—भाग २ रत्ती, काली मिर्च ७ नग एकत्र जल मे पीसकर ऊपर से सुखोष्ण जल पीवे दिन मे दो बार ।

प्रतिश्याय पर—भाग के ताजे पत्तो को पीस बड या पीपल के पत्तो मे लपेट कर डोरे से बाध कर उसपर १ अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर आग मे दवा दे । मिट्टी का रग लाल हो जाने पर ठडा कर भाग को निकाल चूर्ण कर उसमे सेधानमक और तेल मिलाकर १माशा तक की मात्रा मे सेवन से सर्व प्रकार के जुकाम नष्ट होते है । यह प्रतिश्याय की परमौषधि है । —ग नि

कास पर—भाग पत्र रस २ माशा तक मे शहद ३ माशा मिला दिन मे ३ बार पीवे ।

श्वास पर—घृत मे सेकी हुई भाग १ रत्ती, काली-मिर्च और मिश्री मिलाकर दिन मे ३ बार देवे । इससे धनुर्वात मे भी लाभ होता है ।

छीक लाने के लिये—भाग के शुष्क पत्तो का चूर्ण सु घाते है ।

कर्ण पीडा पर—भाग के हरे पत्तो का स्वरस कान मे डालने से शूल दूर होता है, कानो के कृमि नष्ट होते है ।

गर्भाशय के विकारो पर—भाग (या गाजे) का प्रभाव गर्भाशय मे सकोचन क्रिया सम्पादन मे होता है । इसकी सकोचन क्रिया मे वेदना नही होती । अत जरायु के शैथिल्य के कारण अथवा गर्भवती के क्षीण होने के कारण गर्भाशय मे प्रसव वेदना न होकर प्रसव विलम्ब से होता हो तो भाग पिलाना प्रारभ किया जावे । इससे गर्भाशय मे उत्तेजना होकर प्रसव वेदना होने लगती है । जिन स्त्रियो को गर्भपात हो जाया करता है उन्हे भाग दी जाया करे तो गर्भाशय मे सकोच होकर गर्भपात की घटना सभवत नही होती । यदि गर्भपात के बाद या प्रसव के पश्चात रक्त अधिक जा रहा हो, तो भाग (या गाजा) पिलाने से जरायु का सकोच होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है । एलोपैथी वाले ऐसी दशा मे अर्गट दिया करते हैं । किन्तु उनकी अपेक्षा भाग या गाजे का प्रभाव शीघ्र प्रगट होता है । अर्गट का प्रयोग अधिक समय तक करने से, उसका प्रभाव सन्तान पर हानिकारी होता है, किंतु भाग या गाजे का परिणाम हानि-कर नही होता । इनकी क्रिया बलवती होती है,तथा निश्चय होती हैं । अत्यार्त्तव एव पीडितार्तव की अवस्था मे भाग और गाजा अधिक गुणकारी है । इससे बीजकोष का कष्ट निवारण होता है ।
—अ तत्र ।

गर्भस्थापनार्थ—भाग २ माशा, अफीम १ रत्ती, कस्तूरी २ रत्ती, जायफल १ नग, केशर १ माशा, सुपारी ३ नग, लौंग ४ नग सबको महीन कूट पीसकर पुराने गुड ६ माशा मे मिला, चना जैसी गोलिया बना लेवे । मासिक धर्म के पश्चात् प्रतिदिन ३ या ७ दिन तक १-१ गोली प्रात साय या एक ही बार माजून मोचरस ७ मा० मे मिलाकर दूध के साथ देवें । चौथे या ८ वें दिन सम्भोग करे । इस वटी के प्रयोग से गर्भाशय के विकार नष्ट होकर गर्भाधान होता है । यदि मासिक धर्म मे कोई विशेष विकृति न हो, तो अवश्य ही गर्भ स्थापन होता है ।
—यू० चि० मा० ।

(माजून मोचरस—मोचरस, सुपारी, तवाशीर,

निशास्ता, गुलाब पुष्प, निकरा, श्वेत व काली मूसली ६-६ माशा अनार का छिलका ६ माशा, बीही का रस तथा अम्ल अनार का रस प्रत्येक २½ तोला, खांड और शहद त्रिगुण, यथा विधि पाककर औषध चूर्ण मिला माजून तैयार करे। मात्रा १ तोला)

पुत्रोत्पत्ति के लिये—नीचे भाग के बीजों का प्रयोग देखें।

योनिशैथिल्य पर—भाग की पोटली ३ घंटे तक योनि-मार्ग मे रखने से अनेक बार प्रसूता स्त्री का भी योनि-शैथिल्य दूर हो जाता है। योनि कडी हो जाती है।

चूहे के विष पर—चूहे के काटने के पश्चात तुरत योग्य उपचार न करने से विष अधिक प्रकुपित होकर ज्वर, सारे शरीर मे दाह, सिर दर्द, रक्त विकार, शीत पित्त के समान ददोरे, उंगलियों मे शोथ आदि लक्षण होते है। उसपर भाग या गाजा उत्तम औषधि है। भाग को मजीठ, काली अनन्तमूल, चोपचीनी, उन्नाव, सत्यानाशी या अन्य सारक एव रक्तशोधक औषधि के साथ सेवन कराने मे तुरन्त लाभ होता है। —गा० और र०

हरताल के विष मे—भाग देने से लाभ होता है।

गांजा

चपटा, गोल तथा चूर्ण तीन रूपों मे पाया जाता है। मादा जाति के भाग के पुष्पाकुरों को एकत्र (एक पर एक) जमाकर रख कर, पैरो से या अन्य साधनों से खूब दबाने या कुचलने पर जो उसकी खली सी (गट्टा सी) बन जाती है उसे ही सुखाने से चपटा गाजा तैयार हो जाता है।

अथवा—इसकी पुष्पाकुर युक्त टहनियो को तोड-कर कुछ थोडी खुली जगह रखकर साधारण सूख जाने पर इन्हे पैरो से रौंदते है तथा थैलो मे ठूस कर भरते है कुछ दिन बाद नमी से कुछ ताप पैदा हो जाती है। अन्दर हाथ डाल इच्छानुसार गरमी पाने पर फिर रौंदा व पीटा जाता है। पुन बोरियो मे बन्द कर देते है। फिर उनमे गरमी आने पर पूर्णतया शुष्क होने के लिए रख देते है। वह कुछ चिपचिपासा भूरा चिपटा पपटी के रूप मे हो जाता है।

उक्त पुष्पाकुरों को अलग-अलग शुष्क करने पर, वह सिकुडकर गोलाकार सा बन जाता है। वही गोल गाजा कहाता है। तथा पुष्पाकुरों को डंडी एव पत्तो सहित एकत्र मिलाकर शुष्क किये हुये चूर्ण को चूर्ण या चूरा गाजा कहते है। इनमे चपटा गाजा श्रेष्ठ माना जाता है।

नाम—

गाजे के भिन्न-भिन्न नाम इस प्रकार है—कानाह्वादी, अजनपत्री, कच, गजिका, आनदा, गाज, गाजालाई, भागजा, मधुक, सिद्धि आदि। अंग्रेजी और लैटिन मे केनाबिस सेटिवा (cannabis sativa)।

गुणधर्म व प्रयोग—

उत्तेजक, आह्लादक, मग्राहक, कफनाशक, वल्य, शोणित स्थापन, क्षुधाजनन, वेदनास्थापन, मूत्रल, कामोद्दीपन, निद्राजनक, शातिजनन, त्वक्मनाहरन है। सकोच विकास प्रतिवधक, गर्भाशय सकोचक, अग्निप्रदीपक, तृप्तिकारक, आक्षेपहर व मादक है। तथा बाह्यायाम, अन्तरायाम —एक प्रकार का अपतानक आक्षेपक वातरोग जिसमे शरीर पीछे की ओर या सामने की ओर अकड जाता या झुक जाता है (Emprosthotonos or opisthotonos) मदात्यय, शूल, अम्लपित्त, अग्निमांद्य, रक्तप्रदर, प्रसववेदना, सिरदर्द, कालीखासी, क्षयकास, शुष्ककास, कम्प, हिस्टीरिया, उन्माद आदि रोगो पर प्रयुक्त होता है।

डा० देसाई का कथन है—"गाजे की क्रिया विशेषत मस्तिष्क पर होती है। प्रारम्भ मे न्यूनाधिक उत्तेजना मिलती है किंतु भरपूर मात्रा लेने से ज्ञानग्राहक शक्ति कम होती, नशा आता, त्वचाशून्य होती, पैरो मे शिथिलता आती, नेत्र की कनीनिका विकसित होती, नाडी तेज होती तथा गाढ सुषुप्ति की अवस्था प्राप्त होती है। जागृत होने पर अति क्षुधा लगती है। अफीम की निद्रा से जागने पर जैसा आलस्य पैदा होता है, वैसा इससे नही होता तथा अफीम के समान इससे कब्जियत भी नही होती।



"गाजा मे वेदनाशामक धर्म अफीम से कनिष्ट कोटि का है। शातिकारक धर्म अति प्रबल है। इससे मूत्र का परिमाण बढ जाता है। बाजीकर एव कामोत्तेजक धर्म अनेक बार स्पष्ट प्रतीत होता है। नाडी की क्रिया निश्चित नही होती, विशेषत तेज होती है, तथापि कभी मन्द भी हो जाती है। आक्षेप आना और मासपेशियो मे ऐठन आना इन दोनो का प्रतिबन्ध एव शमन करने का गुण दृष्टिगोचर होता है फिर भी अफीम से कम। इससे क्षुधा प्रदीप्त होती, तथा पित्तोत्पत्ति अधिक होती है। अधिक दिनो तक इसका सेवन कराया जाय तो भी पाचन क्रिया नही विगडती। आत्र के भीतर श्लेष्मा (आम) कम होना, पितस्राव बढना एव आहार का पचन अच्छा होना, इन तीन गुणो के कारण मल का पतलापन कम होता है, फिर भी अफीम के सदृश मलावरोध नही होता।

"गाजा से वृत्ति आनन्दमय बनती, तथा सब क्रिया नियमित होती हे ऐसा रोगी को भासता है। त्वचा की ज्ञानवाहक शक्ति अति कम होती है। बडी मात्रा देने पर इतनी शून्यता आ जाती है कि दात बिना पीडा हुए निकाल सकते है या साधारण अस्त्र चिकित्सा चीर-फाड कर सकते है। शरीर के किसी भाग मे वेदना होती हो शूल हो, या मासपेशियो मे ऐठन आती हो, तो उनको कम करने तथा निद्रा लाने के लिये गाजा दिया जाता है यथार्थ मे इन कार्यो के लिये इसकी अपेक्षा अफीम उत्तम औषधि है किन्तु जिनको अफीम नही दे सकते उनको गाजा ही देना पड़ता है। अफीम मे हानि होने का जैसा भय हे तैसा इसमे नही हे। पित्ताश्मरी शूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल, शिर शूलादि मे शूल शमनार्थ गाजा दिया जाता है। यदि कर्णशूल हो, तो इसके रस की बूदे डालने मे लाभ होता है।

"गाजा गर्भाशय को उत्तेजित व आकुचित करता है अर्गट [Ergot] * से जिस तरह गर्भाशय को शक्ति मिलती हे, उसी तरह गाजे से मिलती हे। किंतु इसकी क्रिया अर्गट के समान अधिक समय तक नही टिकती। गाजे की गर्भाशय पर प्रत्यक्ष क्रिया होती हे तथा मस्तिष्क केन्द्र पर क्रिया होकर परम्परा क्रिया भी होती है। गाजे से किसी भी प्रकार की हानि नही होती। इससे मृत्यु होने का उदाहरण नही मिला।

मस्तिष्क को किसी मे आघात पहुचकर होने वाले धनुर्वात [आक्षेप], प्रसूता का धनुर्वात, अपस्मार, कम्पवात, दात आने के समय बालको के आक्षेप, वृक्कप्रदाह, सगर्भा को होने वाला अपस्मार, हिस्टीरिया इन सब रोगो पर गाजे की श्रेष्ठता निर्णीत हुई हे। धनुर्वात मे यह निर्भय औषधि है किसी को भी दे सकते है। मेदे की खराबी से पैदा हुये रोगो मे इसका अच्छा प्रयोग होता है। निद्रानाश, स्वेदप्रवृत्ति आदि विकारो मे यह अच्छा काम करता हे। यह वेदना को कम कर देता है। किंतु रोग की जड को नष्ट नही करता। रोग की जड को नष्ट करने के लिये इसके साथ दूसरी प्रयोजक औषधिया देनी चाहिये। मज्जातन्तु की सूजन मे गाजे को पारद के साथ

*** अर्गट क्लोविसेप्सी परपूरिया (Claviceps Purpurea) नामक फगस (Fungus) के शुष्क किये हुये स्क्लोरोशियम (Sclerotium) होते हैं, जो तृण कुल की राई (Rye) नामक पौधे से प्राप्त किये जाते हे। इस पौधे का लेटिन नाम सिकेल सिरिआले (Secale cereale) हे। ये पौधे स्पेन, पुर्तगाल, पोलेंड तथा रूस आदि यूरोपीय देशो में विशेष होते हैं। आजकल दक्षिण भारत मे नीलगिरी में अर्गट प्राप्त करने के लिये उक्त राई वनस्पति की खेती की जाती है तथा उनसे अर्गट प्राप्त करने में सफलता भी प्राप्त हुई है। यह राई अपने यहा की राई (राजिका Black mustard) से भिन्न है। अर्गट गाढे बैंगनी एवं काले रग का १ से ३ से मी लम्बा एवं १ से ५ मि मी चौडा गोपुच्छाकार तथा बहुत कुछ त्रिपार्श्विक होता है। यह तोडने से खट से टूट जाता है। इसमें अरुचिकारक गन्ध तथा स्वाद में भी अरुचिकारक होता है। चिकित्सा मे इसका प्रधान उपयोग गर्भाशयिक क्रिया के लिये किया जाता है। गर्भाशय की सकोच क्रिया दुर्बल होने से पुरस्सरण गति में बिलम्ब होता है। ऐसी अवस्था में इसका प्रयोग किया जाता है। इसका विशेष विवरण पाश्चात्य मटेरिया मेडिका में देखिये।**

देवे। मज्जातन्तु की वेदना मे इसे सज्जिया के साथ देने से चमत्कारिक लाभ होता है"।

गाजा और अफीम की तुलना सक्षेप में—

गाजा	अफीम
नवीन ही वीर्यवान होता है।	पुरानी भी काम देती है।
शीघ्र परिणामकारी है।	मन्द परिणामकारी है।
वेदनाशामक धर्म साधारण।	वेदनाशामक धर्म विशेष।
शान्तिकारक धर्म अतिप्रबल।	यह धर्म प्रबल।
आक्षेप, ऐठन प्रतिबन्धक धर्म साधारण किंतु निश्चित।	यह धर्म कुछ अधिक किन्तु अनिश्चित है।
क्षुधावर्धक।	अग्निमाद्यकारक।
मूत्रपिण्ड विकृति मे दे सकते हैं	इस विकृति मे नही दे सकते
वातनाशक है।	आध्मानकारक है।

गांजा शुद्धि—

गाजे को दोलायत्र विधि से ३ घण्टे तक गौदुग्ध मे पकाने या वाष्पिन करने से शुद्ध हो जाता है। विशेष हानिकर नही होता। औषधि कार्यार्थ इसे शुद्धि कर लेना आवश्यक है। गाजा पान करने वाले नशेबाज अशुद्ध ही का धूम्रपान करते है। जो जानकार होता है, वह इसे खूब जल मे धो लेता है।

गाजा पान—नशेबाज प्राय इसका धूम्रपान ही करते हैं। १ तोला गाजे के साथ तम्माखू ३ माशा के प्रमाण मे लेकर दोनो को एकत्र मसलकर वस्त्र मे बाधकर जल मे डुबो डुबोकर, तदन्तर्गत चरस का अश दूर हो जाने तक खूब मसलते हुये धोते हैं। पश्चात् चिलम मे थोडी तमाखू डालकर उस पर उक्त लुगदी को यथा प्रमाण (जितने पीने वाले हो तदनुसार) रख उस पर पुन थोडी तमाखू डालकर आग से जलाकर धूम्रपान करते हैं। इसका आदी या नशेबाज नही है वह तो इसके एक ही दम लगाने (कश लगाने) से गूग जाता है। तद्रा सी आ जाती है। नशेबाज को ४--५ दम लगाने पर भी कुछ नही होता, वह सावधान रहकर सब कार्य करता है। किंतु अत्यधिक बार कश लगाने पर उसे भी इसका नशा चढता है। वह भी गुमसुम सा हो जाता है। जो उसके विशेष आदी हो जाते हैं, उनके बल, वीर्य तथा ओज का शीघ्र ही नाश होता है। फिर [illegible] के, वह अपना या समाज का कोई भी कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर सकता।

गांजे के प्रयोग—

(१) हिक्का, शुष्क कास, प्रतिश्याय, श्वास, फुफ्फुसावरण प्रदाह, वातनाडी प्रदाह, तथा शूल पर—

हिक्का पर—गाजे को समभाग गुड के साथ मिला मटर के समान गोली बनाकर देने पर हिक्का शमन हो जाती है। आवश्यकता रहे तो एक घण्टे बाद पुन एक गोली देवें। इससे कुछ नशा आता है। किन्तु किसी प्रकार की हानि नही होती। —गा औ र।

अथवा—गाजा को ५—१० बार गरम जल से जब तक हरा जल निकले तब तक धोकर शुष्ककर, पीसकर, शहद मे २—२ रत्ती की गोलिया बना लें और कालीमिर्च के चूर्ण मे डालते जावें। १ गोली सुखोष्ण जल मे देवें। आवश्यकता पर २ घण्टे बाद और १ गोली दे सकते हैं। इससे कुछ नशा आ जाता है, किन्तु हिक्का शमन हो जाती है। —रस तन्त्रसार।

अथवा—गाजा १ रत्ती, चिरयारी गिरी १ माशा दोनो को तमाखू मे मिला, चिलम मे भर कश लगावें। तेज से तेज हिचकी भी रुक जाती है।

—शेख फय्याज खा, विशारद एम डी एम भीनमाल (जालोर)

शुष्क कास पर—गाजे का सेवन (धूम्रपान या उदर सेवन) हितावह माना गया है। इससे घबराहट दूर होती तथा श्वसनयत्र पर शामक असर पहुचता है।

—गा औ र

अथवा—गाजा को जलाकर उसकी राख शहद के साथ चाटने से अथवा मलाई के साथ १ रत्ती घुली हुई भाग के सेवन से शुष्क कास तथा श्वास मे दम का चढना रुकता है, श्वासोच्छ्वास ठीक प्रकार से होता है।

प्रतिश्याय (जुकाम), नजला पर—गाजा ७ माशा, मुलैठी ५ माशा, सोठ ३ माशा और ताम्बूल पत्र को कूटकर, मिश्री के शीरा मे मिलाकर ५० गोलिया बनाइ

१ गोली प्रात साय गोजिह्वादि क्वाथ अथवा अर्क गाजवा के साथ सेवन करावे ।

काली खासी मे—उक्त गोली ½ या ¼ भाग तक शर्बत बनफसा से या माता के दूध से देवे ।

कफ युक्त अतिसार और प्यास मे उक्त गोली दालचीनी के क्वाथ से प्रयोग करे ।

श्वास तथा प्यास की खुश्की मे—गाजा १ तोला, तमाखू १½ तोला, सोरा १ तोला, अनीसून (सौफ) १० माशा, लोबान कौडिया ४ माशा सबको कूटकर चूर्ण कर ले । १ माशा चूर्ण चिलम मे रखकर या आग पर रख कर धूनी देते है । प्यास मिटाकर श्वास को रोकता है । खासी मे भी ठीक है । किंतु खास मौके पर ही काम मे लाना चाहिये । इसका व्यसन हानिकर है ।

—शेख फय्याज खा विशारद ।

फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy) की प्रथमावस्था मे फुफ्फुसो की झिल्ली मे शूल (पार्श्वशूल) चलता है, उसे दूर करने मे अफीम की अपेक्षा गाजा विशेष हितावह माना गया है ।

वातनाडी प्रदाह—(Neuritis) अधिक मद्यपान, शीत लग जाना, आम वात, चोट लगना, वृद्धावस्था, विषमज्वर, कठरोहिणी, नेत्रपाक, गृध्रसी, मधुमेह आदि कारणों से उत्पन्न होता है । इसमे प्रदाह स्थान मे वेदना होती है । इसे दूर करने के लिए गाजे का सेवन रसकपूर, मल्ल भस्म (या मल्लसिंदूर), लोह भस्म या अन्य औषधि के साथ कराया जाता है ।

इसी प्रकार वृक्क प्रदाह (Bright disease) जिसमे दर्द, शोथ, लसीका मेह या जलोदर के लक्षण होते है । यह आशुकारी और चिरकारी दो प्रकार का होता है । इन दोनो प्रकारो मे मूत्र मे जाने वाली प्रथिन को रोकने, रक्तस्राव बन्द करने एव वेदना शमनार्थ गाजा अमोघ औषधि है । ऐसी दशा मे गाजा को पीमकर पिलावें ।

शूल (शिर शूल)—अतिश्रम, मानसिक उद्वेग, वृद्धावस्था, वातनाडी प्रदाह तथा मानसिकधर्म के कारण उत्पन्न शिरदर्द पर गाजे का सेवन २-३ मास तक कराने पर रोग का प्रतिकार हो जाता है । आधाशीशी हो तो वह भी दूर हो जाती है । यदि गाजे के साथ मल्ल मिलाया जाय तो लाभ सत्वर हो जाता है ।

—गा. औ र

फिरङ्ग (उपदश) जन्य टेबीज डोर्सेलिस (Tabes Dorsalis) नामक रोग जिसमे एक प्रकार की विद्युत के समान चपल एव तीव्र पीडा (Lightning pains) होती है, उसमे गाजे से लाभ होता है ।

—सकलित

(१) मस्तिष्क की कोमलता, पक्षाघात जन्य कम्प, मदात्यय, उन्माद, उपदश, प्रमेह तथा स्वप्नदोष और बहुमूत्र स्तभनार्थ—

मस्तिष्क की कोमलता के कारण होने वाले कोमलीभूति (साफ्टनिग Softning) रोग मे मस्तिष्क की ऊपर की हड्डी नरम होजाती है । रात्रि मे प्रलाप करना, सिरदर्द, वमन, उबाक, बेचैनी, ग्लानि, भयप्रद दर्शन आदि लक्षण होते है । इस विकार मे १-२ मास तक गाजा या गाजे का सत्व या चरस इनमे से किसी का भी धूम्रपान कराने से लाभ होता है ।

पक्षाघात जन्य कम्प पर—गरमी के आघात से जो पक्षाघात होता है, उसमे रह रह कर कुछ कुछ समय बाद कम्प (आक्षेप या झटका) आते रहते है उसके निवारणार्थ मल्ल आदि प्रयोजक औषधि के साथ गाजा दिया जाता है ।

—गा औ र

मदात्यय (Alcoholism) पर—शराब के अत्यधिक सेवन से पैदा होने वाला रोग, जिसमे शरीर काला पड जाता है । मन अतिचचल होकर व्यर्थ विचार आते रहते है, निद्रा नही आती आदि लक्षण होते हैं । इस दशा मे गाजा या चरस का प्रयोग अच्छा लाभकारी होता है । अन्त करण मे स्फूर्ति उत्पन्न होती, मन प्रफुल्लित रहता, दाह शात होती, निद्रा आती है । धीरे धीरे रोग पूर्णत दूर हो जाता है ।

उन्माद रोगियो को भी निद्रा नही आती, अत किसी भी कारण से हुए अनिद्रा मे डाक्टर लोग ब्रोमाईड दिया करते हैं, किन्तु उसका प्रभाव मस्तिष्क व हृदय को शिथिल कर देता है । ऐसी दशा मे गाजे को खुरासानी अजवायन के साथ मिलाकर सेवन कराया जाय अथवा ब्रोमाइड आफ पोटासियम के साथ गाजा या भाग क

अरिष्ट मिलाकर दिया जाय तो नींद भी अच्छी आवेगी तथा ब्रोमाइड का बुरा प्रभाव असर नहीं करेगा।

—अ. तत्र

उपदंश—तीव्र उपदंश के विकार मे एक प्रकार का पक्षाघात (लकवा) सा होता है, उसमे गाजा उपयोगी माना जाता है।

प्रमेह व स्वप्नदोष पर—गाजा १½ तोला, ककनार (अफीम का फल या डोडा) भावित ६ माशा, काली व श्वेत मूसली, बोदरी (लाल व श्वेत), बहमन सुर्ख व सफेद, धनिया की गिरी बीजबन्द, तालमखाना प्रत्येक २½ माशा तथा मिश्री १० तोला सबको कूटकर बादाम रोगन १½ तोले मे मिलावें और सबकी दो गुनी शहद मिलाकर अवलेह बनावे। ७ दिन तक अनाज के ढेर मे रखकर प्रयोग करे। मात्रा ३ माशा घृत व दुग्ध का सेवन विशेष प्रमाण मे करें।

बहुमूत्र पर—गाजा ६ माशा, मस्तगी, गोंद पलाश का ६–६ माशा, जुफ्त बलूत (बलूत के वाह्य आवरण के नीचे चिपटा हुआ एक बारीक छिलका) ८ माशा, सोठ घृत मे भुनी हुई ४ माशा, तिल श्वेत सबके समभाग तथा शक्कर भी सबके बराबर लेकर चूर्ण कर रखे। बडो को मात्रा ५ माशा बच्चो को १ से २ माशा दोनों समय दूध से देवे।

स्तम्भनार्थ—गाजा ५ माशा, अफीम १ माशा, गूगल भैंसिया १½ तोला, मोचरस, कमरकस, रुबसूस (मुलैठी का शुष्क घन सत्व) प्रत्येक ६ माशा सबका चूर्ण कर घृत ११ माशा तथा शहद सबके समान लेकर एकत्र खरल कर ५० गोलियां बनावें। स्त्री प्रसग के १½ घंटा पूर्व १ या २ गोली खावें। दूध व घृत का सेवन विशेष करें खटाई आदि से इसका प्रभाव दूर होता है।

—शेख फय्याज खां।

नोट—नपुंसकता पर आगे विजयापुष्पाद्यवलेह देखें।

(३) गर्भाशय के विकार, कष्टार्त्तव, प्रसव वेदना तथा पागल कुत्ते के दंश पर और गाजे के लेप विषय मे—

स्त्रियो के गर्भाशय के कष्टार्त्तव आदि विकारो पर—मासिक धर्म जाने पर या मासिक धर्म के समय यदि कटिशूल, शिरदर्द, अतिकष्ट आदि लक्षण हो, तो प्रथम मृदु विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि होने पर गाजा (या चरस) यथोचित मात्रा मे भूनी हुई हीग के साथ दिन मे २-३ वार देते रहने से वेदना कम होती है। इससे गर्भाशय मे आकुंचन क्रिया होती है। बीजाशय या डिंबकोष तथा बीजाशय नलिका मे होने वाली वेदना और सूजन दूर होती है एव रज स्राव यथास्थिति उचित प्रमाण मे सरलता पूर्वक होता है। रोग जडमूल से नष्ट न हो, तो भी बहुत लाभ पहुचता है।

निर्बल तथा रुग्णा स्त्रियो को और जिनका गर्भाशय शिथिल हो उनको प्रसव सरलतापूर्वक नही होता। अतिवेदना होती है। ऐसी दशा मे प्रसूता को शीघ्र प्रसव कराने के लिये गाजा १ से ५ रत्ती तक की मात्रा मे १-१ घण्टे के अन्तर पर या २-३ वार ताम्बूल (पान) के साथ देवे। रक्तस्राव के निवारणार्थ २ से ५ रत्ती तक दिन मे ३ वार देवे।

पागल कुत्ते के दंश पर—जल सन्त्रास रोग होता है, वह पानी नहीं पी सकता, पानी सामने आते ही चिल्लाता है, आक्षेप आते हैं। अत पागल कुत्ते के काटने पर १०-२० दिन के भीतर यदि कुछ बडी मात्रा मे कुछ दिनो तक नियमित गाजे का सेवन कराया जाय तो उसके कीटाणु एव विष नष्ट होकर सदा के लिये रोग दूर हो जाता है। रोग की जीर्णावस्था मे जलभीति, वेदना एव आक्षेपो को दूर करने के लिये भी गाजा सफलतापूर्वक दिया जाता है। लम्बे समय तक देते रहने पर रोग दूर हो जाने के अनेक उदाहरण मिलते है। —गा० औ० र०।

गाजे के लेप—श्लेष्मल त्वचा पर गाजे का लेप करने से वहा शून्यता आ जाती है। मसूढो पर गाजे की कली पीसकर मलने से विना कष्ट के दात उखाडा जा सकता है। गाजे को स्पिरिट मे डालकर उसका तरल सत्व तैयार करलें, इसे दातो के दर्द मे लगाने से वेदना कम होती एव विना कष्ट के दात उखड आता है। चर्म विकारो में खुजली उठती हो, पीडा या आग सी जलन होती हो, तो गाजे के लेप से आराम होता है। —अ. तत्र

विशिष्ट योग—

विजया पुष्पाद्यवलेह—जल से धोया हुआ गाजा १४ तोला, जायफल, जावित्री, लौग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, अकरकरा व केशर २-२ तोला तथा बादाम गिरी ४ तोला, सबको कूट पीसकर महीन चूर्ण कर १ सेर मिश्री की घनी चाशनी कर आधी गरमी कम होने पर उसमे मिलादे, तथा साथ ही कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशा मिला लेवे। मात्रा–१ से ३ मासा तक, दिन मे दो बार चाटकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीने से थोडे ही दिनो मे नपुसकता, शीघ्रपतन, शारीरिक निर्बलता व अनिद्रा रोग दूर होता है। उत्साह की वृद्धि होती है। मन प्रफुल्लित, पचन क्रिया सबल बनती और शरीर पुष्ट होता हे। ब्रम्हचर्य के पालनपूर्वक इस अवलेह के सेवन से अतिस्त्री सेवन, मानसिक चिन्ता, शारीरिक निर्बलता आदि कारणो से उत्पन्न नपुँसकता दूर होती हे। गाजे मे प्रबल वाजीकर गुण होने से इसकी सुषुम्ना काडस्थ कामोत्तेजक केन्द्र पर क्रिया होकर शिश्न मे उत्तेजना आती हे। मन मे आनन्द की वृद्धि होने से भी वासना अनुरूप कामोत्तेजना होती हे और त्वचा की सवेदना शक्ति मन्द होने से शुक्रपतन देर से होता हे। अत स्तभन शक्ति जिनकी कम हुई हो, उनको भी इसके सेवन से लाभ हो जाता है। —गा० औ० र०।

(२) विद्युत तिला—गाजा अशुद्ध १ भाग लेकर जल के साथ सिल पर पीसकर लुगदी बनाले। फिर ४ भाग तिल तैल को कढ़ाई मे डालकर आग पर गरम करे, पश्चात् उसमे गाजे की लुगदी डालकर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर नीचे उतार कर छानकर शीशी मे भर रखे। रात्रि मे सोते समय इन्द्री पर धीरे-धीरे मालिश करे। यह बहुत पुराना, एक हस्तलिखित पुस्तक से प्राप्त योग है। मैं कई बार आजमा चुका हू।

—वैद्य स्वामी रामनारायण 'वियोगी' आयु शास्त्री,
राम द्वारा, छापर (राजस्थान)

चरस

मध्य एशिया मे जिस चरस का आयात होता हे, उसमे प्राय पत्तो, छोटी छोटी डालियो और धूल का मिश्रण रहता है। कारण वहा पर प्राय क्षुपो के शुष्क हो जाने पर उनमे से चरस निकाला जाता है। किंतु हिमालय के दक्षिण की ओर के प्रान्तो मे इसके क्षुप जब गीले एव ताजे रहते है तब ही उनमे से चरस प्राप्त किया जाता है। अत यह निखालस व उत्तम होता हे।

रासायनिक संगठन—

चरस मे टर्पिन १५%, सिक्विटर्पिन २०%, टसिक्रेड आइल ३३% और पैराफिन ०७५% पाया जाता है। चरस को लेटिन मे केनाबिनन (Cannabinin) कहते हे।

गुण, धर्म व प्रयोग —

चौथे दर्जे में शीत व रूक्ष हे। मदकारी, शुक्र स्तभ, मूर्च्छा तथा दौर्बल्यकारक हे। हृल्लास, विबन्ध, ज्वर, मासिक धर्म विकृति, आमातिसार, आक्षेप, शिरशूलादि मे यह प्रयुक्त होता है। इसके गुण धर्म प्राय गाजे के जैसे होते है।

इसका सेवन प्राय गाजे के समान ही तमाखू मिला कर चिलम मे रख कर धूम्रपान के रूप मे किया जाता हे और कई स्थानो मे इसे वैसे ही अफीम के समान खाया जाता है, उत्तर भारतवर्ष तथा राजस्थान मे इसका विशेष सेवन किया जाता है।

तमाखू के साथ इसका धूम्रपान उन्माद एव अपतन्त्रक आदि मे शामक औषधि के रूप मे किया जाता है।

चरस की शुद्धि—इसे जल से घोल कर स्वच्छ वस्त्र मे छानकर छायाशुष्क कर लेने से शुद्धि हो जाती है।

अफीम के स्थान मे, जहा अफीम का देना उपयुक्त न हो, वहा चरस की योजना विशेष लाभकारी है।

(१) स्तम्भनार्थ—उत्तम शुद्ध चरस ३ माशा, चादी के वर्क १ माशा तथा बीजरहित मुनक्का ६ मा एकत्र घोटकर मसूर जैसी गोलिया बना लेवे। शीघ्रपतन की रुकावट के लिये [स्तभनार्थ] सभोग से २ घण्टा पूर्व १ गोली दूध से लेते है।

(२) आमवातिक ज्वर, आमातिसार, मासिक धर्म



की विकृति तथा आक्षेपादि मानस रोगो पर—

आमवातिक ज्वर—इसमे हृदय क्रिया दूषित होती है। वेदना का स्थान बदलता रहता हे, सधि स्थानो मे मे पीडा होती है। मूत्र लाल हो जाता है और ज्वर अधिक आता है। इस पर चरस का उपयोग अति हितावह है। इसका धूम्रपान कराना चाहिये अथवा चरस की मात्रा आधी रत्ती, दिन मे ३ वार अन्य ज्वघ्न औषधियो के साथ देते रहना चाहिये।

मासिक धर्म की विकृति पर—यदि जीर्ण बीजाशय प्रदाह [Quaritis] के कारण मासिक धर्म स्राव मे विकृति हुई हो तो चरस १ भाग, अफीम १ भाग और कपूर २ भाग एकत्र मिला ग्वरपाठे के रस मे या जल मे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें। प्रात साय १-१ गोली २-४ मास तक देते रहने से बीजाशय प्रदाह एव मासिक धर्म विकृति दूर हो जाती हे।
—गा औ र।

आमातिसार पर—चरस और खसखस दोनो सम भाग एकत्र खरल कर शहद मिला गोलिया बना लें। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक शहद के साथ देवें।

आक्षेप, अपस्मार, उन्माद आदि मानसिक विकारो पर—चरस और हीग (भुनी हुई) समभाग खरल कर शहद के साथ घोटकर गोलिया १-१ रत्ती बना लें। इसे जटामासी के फाण्ट के साथ ३-३ घण्टे से देवें।
—सकलित

भाग के बीज—सकोचक, उत्तम पौष्टिक, उष्ण वीर्य, आध्मान एव वात नाशक, वमन शामक तथा शोथ शूल नाशक व कामोद्दीपक है।

प्रलाप पर—बीजो को जल मे पीसकर ५ रत्ती तक की गोलिया बना कर शहद मे देते है। ३-३ घण्टे के अन्तर मे।

पुत्रोत्पत्ति के लिये—गर्भ के दूसरे मास मे ही भाग के बीज १ माशा प्रात ताजे जल मे सेवन करावें। इस प्रकार निरतर १ मास तक देते रहने से अवश्य ही पुत्र होगा, पुत्री नहीं। —एकौषधि गुण विधान से।

बीजो का तेल—बीजो को कोल्हू मे पेरकर जो स्थिर तेल २० से ३०% प्राप्त होता है, वह ताजी अवस्था मे पीताभ हरित वर्ण का गध व रुचि मे प्रिय होता है, किंतु पुराना हो जाने पर रक्ताभ पीतवर्ण का एव गन्ध व रुचि मे अप्रिय हो जाता है। यह स्थिर तेल गुण धर्म मे अधिकाश मे अलसी के तेल जैसा ही होता है। इसके अभाव मे अलसी तेल लिया जा सकता है। बीजो के चूर्ण को वाष्पीकरण विधि या [पाताल यत्र से] जो तेल निकाला जाता है वह उडनशील होता है।

तेल मे केनाबेन Cannabene, केनाबिनन Cannabinin, केनाबिन हाइड्राइड cannabene Hypride, टेटानो केनाबिनिन Tatano cannabene, केनाबिनाल cannabinol आदि महत्वपूर्ण तत्व पाये जाते है।

बीजो का तेल निकाल लेने के बाद जो खली रहती है वह पशुओ के लिये उत्तम पुष्टिजनक खाद्य है। इससे पशुओ मे दुग्ध की भी विशेष वृद्धि होती है।

गठिया आदि वातज वेदना में मालिश करने से लाभ होता है। कान के दर्द पर तेल की कुछ बूदे डालने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट—आयुर्वेद के सिद्ध योग रसचन्द्रिका वटी (आगे विशिष्ट योगो मे देखिये) मे तथा लक्ष्मीविलास रस के एक योग मे [भै. र देखे] भाग के बीज डाले जाते है।

मात्रा आदि—भाग २-४ रत्ती यह साधारण मात्रा हे। इससे अधिक मात्रा विषादजनक होती है। किंतु भाग के व्यसनी बडी से बडी मात्रा का गोला खा लेने पर भी उन्हे कुछ विकार नही होता यह उन्हे सात्म्य हो जाती है। जो कभी भाग का सेवन नही करते उनके लिये इसकी घातक मात्रा ६ माशा से १ तोला तक हे।

गाजा आधी से १ रत्ती तक। कई व्यक्तियो को इस की अधिक मात्रा सहन नही होती, अत प्रारम्भ मे मात्रा कम देनी चाहिये।

चरस ½ मे १ रत्ती तक तथा भाग का सत्व (Ext cannabis Indica) ¼ मे ½ रत्ती तक है। इन दोनो की अधिक से अधिक २½ मे ३½ रत्ती की मात्रा घातक



होती है ।

भागका आसव (टिंक्चर) साधारण मात्रा ५ से १५ बूद तक है । अतिमात्रा ४ से ८ माशा घातक है।

उक्त भाग, गाजा आदि का विषाक्त प्रभाव यदि शीघ्र कम न किया जाय तो १२ से ४८ घण्टो मे मादक हो सकता है ।

भाग के मूल का चूर्ण १० रत्ती तक की मात्रा मे देवें ।

इनका हानिकारक प्रभाव विशेषत दृष्टि और मस्तिष्क पर होता हैं । उन्माद मे सिर दर्द आदि विकार होते है । हनिनिवारक-वमन कराना, अरहुल की दाल का धोवन, दूब, दही, घृत, तथा नारगी, अनार, अमरूद आदि फलो का रस है ।

ध्यान रहे इसके निरन्तर अभ्यास से जो व्यसन हो जाता है उसके कारण अग्निमाद्य, अनिद्रा, कृशता, कामावसाद स्मृतिह्रास, कम्प, उन्माद आदि जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

विषाक्त प्रभाव—भाग के अधिक मात्रा मे लेने से आधा घण्टे बाद तथा गाजा व चरस के अधिक मात्रा मे लेने से शीघ्र ही विष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमे जो लक्षण होते है उन्हे दो अवस्थाओ मे विभक्त किया जाता है—प्रथम या उत्तेजनावस्था मे आखे लाल होना, चेहरा फूल जाना, पैर लडखडाना, शिरशूली, भय, हास्य, असम्बद्ध बचन या प्रलाप, झुनझुनी, त्वचा मे शून्यता, पेशीदौर्बल्य तथा तन्द्रा कभी कभी उग्र होने पर हत्या करने का प्रयत्न करना आदि ।

द्वितीय (निद्रावस्था) मे—तन्द्रा के बाद मद का गभीर आक्रमण होने से गभीर निद्रा मे ग्रस्त होना, सपूर्ण शरीर मे या उसके किसी भाग मे गुरुता एव सज्ञाहीनता होना, बहुत देर बाद जागृत होने पर कुछ स्वस्थ होता हे मृत्यु बहुत कम प्राय: श्वासावरोध या हृदयातिपात (हार्ट फेल) से होती है ।

उपचार—तुरन्त ही कय (वमन) करावें । एक डाक्टरी रिपोर्ट मे ज्ञात हुआ है कि झिंक सल्फेट (Zinc sulphate) देने से शीघ्र ही वमन होती है, या अन्य वमनोपचार करे । मुख द्वारा आमाशय प्रक्षालन कर वमन करावे । वमन के हो जाने से नाडी की गति घट जाती है, यहा तक कि १०० तक आ जाती है । तब हृदय को बल देने वाली उत्तेजक औषधि देवे । ४–५ प्रहर की बेहोशी के बाद होश आ जाता है तथा उसे दुर्बलता का बोध होता है । होश मे आने पर भी कभी कभी अकारण हसता एव असङ्गत बाते करता है । ऐसी दशा मे विरेचक पदार्थ देकर दस्त करा देना चाहिये । विरेचन के लिये भी मुख द्वारा औषधि न दी जा सके, तो बस्ति क्रिया करनी चाहिए ।

गाजे व चरस के विषाक्त प्रभाव की दशा मे तो स्टमक पम्प का उपयोग ही उचित रहता है । नीबू का शर्बत देना लाभदायक होता है । मुख और मस्तिष्क पर शीतल जल छिडकना चाहिये । इससे गरमी व खुश्की दूर होती है । सामान्यत विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नही रहती । तथापि कभी–कभी कुचिलासत्व (स्ट्रिकनिया) या अन्य उत्तेजक औषधि देनी पडती हे । गर्दन के पीछे छाला उठाकर विषाक्त प्रभाव कम किया जा सकता है दूध पिलाना और सोने देना उचित है । डाक्टर लोग निद्रा के लिये पोटाशिय ब्रोमाइड देते है । किन्तु यह कार्य स्वर्णमाक्षिक भस्म और जटामासी से भी हो सकता है । —अ तत्र

ध्यान रहे भाग के प्रबल विष का प्रभाव दूर होने पर भी, रोगी की आखे कुछ दिनो तक लाल-लाल और चपल रहती हे, प्रलाप करता है, साधारण बात मे भी उत्तेजित हो जाता है, क्षुधा मन्द हो जाती तथा शरीर निर्बल हो जाता है । इन लक्षणो को दूर करने के लिये दही और मक्खन मिश्री का सेवन कराना चाहिये । अन्यथा निर्बलता व अग्निमाद्य दीर्घकाल तक रह जाते है । —गा औ र

नशा उतारने के लिये—भाग का नशा उतारने के लिये दही अथवा मठ्ठा और भात खिलावे । पथ्य मे मठ्ठा और भात खिलावे । जायफल खिलाने से भी अथवा अरहर की दाल १० तोला पीसकर ½ सेर जल मे घोल छान

कर यथावश्यक पिलावे । गाय के दही मे सोठ का चूर्ण मिलाकर देवे । सोठ चूर्ण १ तोला, दही २० तो मिला कर देते है । यह मात्रा युवा व प्रौढ की है । वालक के लिये मात्रा कम कर देवें । अथवा अदरख का रस १ तो को २० तो गोदुग्ध मे मिलाकर पिलावे, यह मात्रा भी युवा व प्रौढ की है । ध्यान रहे अदरख के रस का प्रयोग एक ही वार करे । शेष प्रयोग स्वास्थ्य लाभ होने तक वरावर कर सकते है ।

—धन्वन्तरि के विष चिकित्साक से ।

हमारा अनुभव हे कि कच्चा भाटा (वगन) पीस कर उसका रस निचोड कर पिलाने से, या अमरूद की पत्ती पीसकर पिलाने से, भरपेट अमरूद खिलाने से या आम की आमकली या आमका मवान/चूसने से भी नशा जाता रहता है । अथवा अदरख, सेंधानमक और नीबू निचोटकर चटनी वनाकर चटावे , या २–३ दाने काली-मिर्च व ½ तोला श्यामातुलसी की पत्ती पीसकर जल मे घोलकर पिलावे, या २–३ दाने कालीमिर्च और ½ तो जामुन की कोमल पत्तिया पीस छानकर पिलावे । मक्खन मिश्री खाने को देवें, अथवा—करेमुआ (कलमी शाक, नाडी शाक) शाक की १०–१२ पत्तिया जल में पीस छान कर पिलावे । या छ माशा पोस्त के दाने (खसखस), जल मे घोलकर पिलावे । दोनो मे कडुवा तेल डाले ।

—अ तत्र ।

हमारा खास अनुभव है कि कभी–कभी नीबू, इमली सतरे आदि के रसो से या तक्र , दही आदि से भी लाभ नहीं होता (मधुर रस से तथा घृत आदि स्निग्ध पदार्थो से तो और भी नशा वढ जाता है) ऐसी दशा मे केवल कागजी नीबू, मौसम्मी या सन्तरे के १–२ वीजो को जल मे पीस छानकर पिलाने से या इस पीसे हुये कल्क को शहद के साथ चटाने मे भाग, गाजा, चरस, अफीम आदि का नशा तुरन्त ही उतर जाता है । —सम्पादक ।

यदि नशे के साथ ही मे समस्त अङ्गो मे पीडा हो, वात प्रकोप हुआ हो, तो सोठ व अदरख को पीसकर पिलाने मे उपद्रवो का उपशम हो जाता है । कभी कभी नशे के कारण जिह्वा शोथ, श्वास प्रश्वास मे कठिनता, अत्यधिक प्रलाप, खुजली आदि उपद्रव भी हो जाते हैं । ऐसे समय मे सोया के क्वाथ मे नमक व जैतून का तेल मिला, उसमे दालचीनी, कालीमिर्च, सोठ या अदरख का चूर्ण मिलाकर पिलावे, तत्काल नशा उतर जावेगा ।

विशिष्ट योग—

(१) विजया चूर्ण—(भाग सेवियो के लिये उत्तम योग) शुद्ध भाग २० तोला को शुद्ध घोकर घृत मे भूनकर उसके साथ वादाम गिरी १० तोला, चिरोंजी ५ तोला और कालीमिर्च १ तोला इन सवके चूर्ण को शक्कर ४० तोला मे मिलाकर रखें । मात्रा २ माशा तक । प्रात साय ताजे जल के साथ सेवन से वृद्धावस्था मे होने वाली कमजोरी, क्षुधामाद्य आदि समस्त रोग दूर होते हैं । स्मरण शक्ति तथा शुक्र स्तभन शक्ति वढकर नपुसकता दूर होती है । —धन्वन्तरि विष चिकित्साक ।

आगे प्रयोग न० ८ व ९ मे चूर्ण प्रयोग देखिये ।

(२) विजया ठडाई—भाग शुद्ध, खसखस, वादाम गिरी, सौंफ, कालीमिर्च, ककडी व तरवूज के वीज, इलायची व गुलावकली ३-३ माशा इनको जल के साथ सिल पर खूब महीन पीस कर दूध और जल प्रत्येक ½ सेर और शक्कर बहुत थोडी रुचि के योग्य दिलाकर खूब नीचे ऊपर कई वार फेंट कर इस ठडाई के पीने से नशा किंचित आनन्ददायक आता है । पीने वाला वरावर होश मे रहता है अध्ययन, लेखन, पठन, मनन आदि वौद्धिक क्रियायें वडे उत्साह से करता है । जो कभी भाग का किंचित भी सेवन नही करते उनको यह पेय केवल ५ तोला ही देना ठीक होता है । अन्य लोग इसे २०-२५ तोला तक ले सकते हैं । किंतु ध्यान रहे, इसे नित्य वार-वार नही पीवें, अन्यथा इसका व्यसन भविष्य मे दुष्परिणामकारक ही होता है ।

(३) विजयावटी—विजयासार (भाग को १६ गुने जल मे पका, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर, पुन पका कर घनसत्व करलें) एलुवा (मुसव्वर), लाल कमल की जड, अपामार्ग जड सममाग एकत्र जल के साथ खूब महीन पीसकर २-२ रत्ती की गोलिया वना लेवें । यह वटी दारुण कटि व्यथा, जरायुशूल, वाझपन, विषम एव



कष्ट रज. स्राव को नष्ट करती है। —भै. र।

वटी नं २—भाग धोयी हुई १६ तोला, सफेद मिर्च ४ तोला, अभ्रकभस्म, छोटी इलायची बीज, जायफल २-२ तोला तथा लोह भस्म और सिन्दूर १-१ तोला लेकर, प्रथम भाग को खूब महीन पीसकर उससे शेप द्रव्यो का चूर्ण मिला खूब मर्दन करें। फिर ६ तोला भाग के अष्ट भाग क्वाथ मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना लें। मात्रा—१-१ गोली, दिन मे २ या ३ बार जल के साथ लेवें। यह रसायन, दीपन, पाचन, ग्राही, मादक व वृष्य है। यह विदेश के जलवायु लगने, वर्षा ऋतु मे जल विकार होने, वातविकार, कफरोग, मन्द ज्वर का बना रहना अपचन जन्य अतिसार आदि को नष्ट करता है। हिस्टीरिया, आमातिसार या ग्रहणी रोग वालो को शक्ति बढाने के लिए बहुत लाभदायक है। जिनकी ग्रहणी (Duodenum) निर्बल हो, उनको यह वटी कम मात्रा मे दीर्घकाल तक सेवन करनी चाहिये। —र तत्रसार

वटी न ३—उक्त प्रयोग न ३ मे लिखा हुआ विजयासार और अभ्रकभस्म १-१ तोला, सफेद मिर्च, इलायची छोटी बीज व वशलोचन २-२ तोला इनको थोडे जल मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना लेवे। १-१ गोली दिन मे ३ बार जल के साथ जीर्ण रोगो मे तीक्ष्ण प्रकोपावस्था मे आवश्यकतानुसार २-२ घटे पर देवें। इससे उन्माद, वाताक्षेप, प्रलाप, रज शूल, राजयक्ष्मा की कास, अग्निमाद्य, अरुचि, अतिसार, ग्रहणी, वृक्कशूल और स्वप्नदोष दूर होते हैं। दीपन, पाचन एव ग्राही गुण के लिए यह अतिसार, ग्रहणी एव प्रवाहिका मे अन्य औषधि के साथ दी जाती है। —र तत्रसार।

वटी न. ४—शुद्ध भाग और मालकागनी ३२-३२ तोला, खुरासानी अजवायन ४८ तोला, अजमोद ३ तो, भुने हुये धतूरे के बीज ६ तोला, जावित्री २ तोला, जायफल व शुद्ध अफीम ३-३ तोला लेकर अफीम थोडी-थोडी मिलाते हुये सबको घोट पीसकर चूर्ण करें। चूर्ण से दो गुना पुराने गुड की दो तार की चाशनी कर उसमे सब चूर्ण तथा ६ माशा पारद भस्म या रससिंदूर मिला कर ३ ३ माशा की गोली (४ रत्ती से ८ रत्ती तक का गोलिया बनाना ठीक रहेगा) बना १-१ गोली प्रतिदिन दूध के साथ लेने तथा दिन रात दूध ही पीकर रहने से नपुसकता नष्ट होती है। धातुदौर्बल्य, हस्तमैथुन कृतदोप एव वीर्यत्व दूर होकर आयु की वृद्धि होती है। —अ तत्र।

वटी न ५—रसचन्द्रिकावटी—भाग के बीज, धतूरे बीज, कटेली के बीज, समुद्रफल के बीज, सिधारे के बीज, शुद्ध पारद और शुद्ध गधक समभाग लेकर, प्रथम पारे गधक समभाग की कज्जली बना कर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिला, सबको अदरक के रस मे घोट कर मटर जैसी गोलिया बना लें। प्रात जल के साथ सेवन करने तथा पथ्यपूर्वक रहने से समस्त जीर्ण रोग, सन्निपात, आमवात, शिरोरोग, मन्यास्तभ, जलग्रह, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगदर, कामला, शोथ, पाडु, पीनस अर्शादि रोग नष्ट होते हैं। —भा भै र।

(४) विजया योग—भाग के पचाग का चूर्ण ३२ तोला, मिश्री २८ तो दोनो के चूर्ण को शहद १४ तोला तथा घृत ७ तोला मे एकत्र मिला कर रखें। इसे यथोचित मात्रा मे ४ महीने तक दूध के साथ सेवन करने तथा दूध भात का आहार करने से समस्त रोग नष्ट होकर यौवन युक्त दीर्घायु प्राप्त होती है। —व से।

(५) विजयाघृत—भाग की पत्ती २० तोला को सिल पर महीन पीसकर, उसके कल्क को ताजा गोघृत २ सेर तथा गोदुग्ध ८ सेर मे एकत्र मिला मन्द आच पर पकावे। घृत मात्र शेप रहने पर छान लेवें।

यह घृत अत्यन्त वाजीकरण वृष्य एव शुक्र स्तम्भक है। इसे कूष्माखण्डादि कान्तिवर्धक अवलेह और पाकादि मे डालना चाहिये। —भा भै, र.

(६) मोदक न १—मदनानन्द मोदक—बीजो सहित ३४ तोला भाग को खूब धोकर थोडे घृत मे भून लेवे। जलने न पावे। फिर त्रिफला, त्रिकुट, धनिया कचूर, कूट काकडासिंगी, जायफल, सेंधानमक, मैथी, नागकेशर, श्वेतजीरा, व तालीसपत्र इन १७ द्रव्यो को २-२ तोला

लेकर कूट पीसकर, छान कर जरा घी मे भून लें और उक्त भाग के चूर्ण मे अच्छी तरह मिलाकर उसमे घृत, मिश्री ६८ तोला और शहद २० तोला डालकर कर खूब सानो। एक दिल हो जाने पर १¼ तोला के लड्डू बना ले। काच या चीनी मिट्टी के साफ पात्र मे इलायची, तेजपात व कपूर को अन्दाज से पीसकर, थोडा सा नीचे बिखेर उस पर लड्डू जमा कर ऊपर से पुन इस चूर्ण को छिड़क दे। प्रात साय या एक ही समय एक मोदक खाकर दूध पीने से वृद्ध भी सबल,युवा जैसा हो जाता है। अपूर्व पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। यह मेरा अनुभूत योग है। ये मोदक आमवात, सग्रहणी व वातकफ विकारो मे भी लाभदायक हैं।

—श्री बाबू हरिदास (चिकित्साचन्द्रोदय से)

नोट–भैषज्य रत्नावली मे जो 'मदन मोदक' का प्रयोग है उसमे उक्त द्रव्यो के अतिरिक्त कायफल, अजमोद, अजवायन और मुलैठी भी ली गई है। गुणधर्म मे कहा गया है कि इसके सेवन से वातज, कफज रोग, कास, सर्वप्रकार का शूल, वली पलित आदि नष्ट होते हैं। अग्नि की वृद्धि होती है। यह बहुत अधिक बाजीकरण है।

न २ मदनप्रकाश पाक या मोदक—भाग (धोकर घृत मे भूनी हुई) तालमखाना, मूसली, विन्दारीकन्द, सोंठ, असगध, बीजबन्द, शतावर, सेमल के फूल, मोचरस, गोखरु तथा उर्द की दाल घृत मे भूनी हुई प्रत्येक का महीन चूर्ण लेकर सबको घृतपक्व उत्तम खोया ½ सेर मे मिला देवे। पश्चात् २ सेर खाड की चाशनी मे मिला पाक जमा दे या मोदक बना लेवें।

६माशा से १ तोला की मात्रा मे इसे नित्य रात्रि के समय दूध के साथ सेवन से बल वीर्य की वृद्धि होती, स्तभन होता तथा प्रमेह का नाश होता है। इसकी मात्रा २ या २½ तोला तक भी ली जा सकती है।

नोट—मदनोदयपाक, बलवर्धक पाक, विजयापाक, महामदनपाक, रतिवल्लभ पाक आदि के प्रयोग हमारे वृहत्पाकसग्रह ग्रन्थ मे देखने योग्य हैं। -

(७) माजून न १—माजून फलकसैर—भाग,अफीम, मीठा बादाम, फिंदक, अखरोट, मीठाकद्दू और काहू प्रत्येक की गिरी ६-६ माशा, जायफल जावित्री ४ ४ माशा तथा कस्तूरी, अम्बर ६-६ रत्ती, इन सबसे तिगुना शहद का पाक कर उसमे इनके चूर्ण को मिला यथाविधि माजून बना लेवे।

१ माशा की मात्रा मे प्रात या साय गोदुग्ध के साथ सेवन करने से यह वातसस्थान को उत्तेजित करने तथा रक्त मे शुक्र धातु के घटको की वृद्धि करने के कारण बाजीकर है। इसमे अफीम होने के कारण शुक्र स्तभन का कार्य भी सम्पन्न होता है। यह मैथुनानन्ददायक और बल्य है। प्रमेह मे भी यह लाभकारी है। अम्ल पदार्थों का त्याग करना आवश्यक है।

—यूनानी सिद्ध योग सग्रह, यू चि सा

माजून न० २—भाग के पत्ते २० तोला को ६ सेर ताजे दूध मे औटावें। दो सेर शेषरहने पर छानकर उसका मावा (खोया) बना लें। इसमे १ सेर शहद तथा गुलाब पुष्प, गावजवा, बिल्लीलोटन प्रत्येक ४½ माशा, जायफल, इलायची, केसर, जायपत्री, छोटी इलायची, वसलोचन ९–९ माशा और मस्तगी ७ माशा महीन करके मिलावें। मात्रा ४½ माशा प्रात साय। यह बाजीकरण एवं स्तभन के लिये विशेष उपयोगी है।

माजून न० ३—शुद्ध भाग ६४ तोला, शक्कर सफेद ३२ तोला, गोघृत २४ तोला इन सबको पुष्य नक्षत्र मे एकत्रित कर भाग के चूर्ण को कपडे से छानकर उसमें शेष द्रव्यो को मिला (यथायोग्य शहद मिलाकर) माजून तैयार कर ले। मात्रा १० माशा तक। गुण उपर्युक्त।

—श्री वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा

माजून न० ४—भाग ५ तोला पीसकर, १ सेर दूध मे पका उसका खोवा कर, उसे घृत मे सेककर शक्कर की चाशनी मे डाल बरफी सी बना लें। कोई–कोई भाग के पत्ते या गाजा को दूध मे उबालते, तथा उसमें घृत, शक्कर, पोस्त के दाने, धतूरा के फूल, कुचिले का चूर्ण मिलाकर माजून बनाते हैं। किंतु इसमे उग्रता और विष की मात्रा मे रहती है।

—अ तत्र।

न०५–भाग ११½ तोला, जायफल ३ नग, कस्तूरी १¾ माशा, अम्बर शहब ३½ माशा, केशर १०½ माशा,

अकरकरा १३/४ तोला, मिर्च सफेद, मस्तगी प्रत्येक ३२ तोला, बडी इलायची बीज, बादाम रोगन मधुर प्रत्येक ३३/४ तोला यथाविधि त्रिगुण मधु का पाककर औषधि चूर्ण मिला माजून तैयार कर ले।

मात्रा ५ माशा। यह कमर को दृढ करती है पुसक शक्तिवर्धक तथा दीपक पाचक है। इसे यूनानी मे 'माजून मसीह' कहते हैं। —यू चि सा।

(८) चूर्ण—भाग का चूर्ण २८ तोला तथा जायफल, बायबिडग, चित्रक, तगर, तालीश पत्र, लाल चन्दन, सोठ लौंग, कालाजीरा (या कलौंजी), शुद्ध कपूर, बडी हरड, आवला, कालीमिर्च, पिप्पली, वशलोचन, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेशर १-१ तोला इन सवके महीन चूर्ण के समभाग खाड मिलाकर रक्खे, इसे 'जाती फलादि चूर्ण' कहते है। —भै र

मात्रा १ माशा तक शहद के साथ सेवन से कास, श्वास, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय एवं अन्य वातकफ जन्य रोग नाश होते हैं। कफ या वातकफ जन्य सग्रहणी मे जब कच्चा मल पतला आव से मिला हुआ दिन मे दो-तीन बार प्रात या साय आवे तथा पेट भारी रहता हो, शरीर शिथिल हो, कास, श्वास और प्रतिश्याय हो, भूख न लगे, अरुचि हो, पेट मे शूल हो, आध्मान एव अनिद्रा हो तब इसे देना चाहिये। शार्ङ्गधर के अनुसार, इस चूर्ण मे भाग शेष द्रव्यो के समभाग [या आधा भाग लेना कहा गया हे। हमारे मत से आधा भाग ठीक है।] इस अवस्था मे इसकी मात्रा ३ माशा से १ तोला दी जा सकती है। यह क्षय मे भी लाभकर है। पाठानुसार कुछ ग्रन्थो मे भाग के स्थान मे दालचीनी ही १२ तोला मिलाई जाती है।

(९) लाई चूर्ण—शुद्ध पारद, शुद्ध गधक, त्रिकुट, अजवायन, श्वेत व काला जीरा, कालानमक, सेधानमक, हीग (घी मे भुनी हुई), और विडनमक १–१ भाग तथा भाग घी मे भुनी हुई सवके बराबर लेकर, प्रथम पारे गधक की कज्जली कर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर रखे। १ माशा की मात्रा मे तक्र के अनुपान से सेवन से सग्रहणी, शूल, आध्मान एव अनेक प्रकार का अतिसार दूर होता है।

नोट—लाई चूर्ण के अन्य प्रयोग ग्रन्थो मे देखिये।

(१०) ज्वालानल रस—सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पारा, गन्धक, पिप्पली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोठ १–१ भाग तथा इन सबके बराबर भाग (घी मे भुनी हुई) और भाग से आधी सहजने की छाल लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिला, ३–३ दिन भाग, सहजना, चित्रक व भागरे के रस की धूप मे भावना देकर उसका एक गोला बना सम्पुट मे वन्दकर लघुपुट मे फूक देवे। स्वाग शीत होने पर उसे निकालकर अदरख के रस की ७ भावना देकर रखे। १/२ माशा से १ माशा तक की मात्रा मे, शहद के साथ चाटकर ऊपर से सोठ के चूर्ण को गुड मिला सेवन से अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणी, अग्निमाद्य, कफ, हृल्लास [जी मिचलाना] वमन, आलस्य और अरुचि का अतिशीघ्र नाश होता है। —र सा सग्रह।

(११) ज्ञानोदय रस—शुद्ध धोई हुई भाग या गाजा १६ भाग शुद्ध गन्धक ४ भाग, जायफल २ भाग, पारद भस्म या चन्द्रोदय एक भाग तथा कपूर व केशर प्रत्येक १/२ भाग सबको एकत्र खरल कर, फिर शहद मिलाकर, खूब खरल कर (शहद लगभग दस भाग) दो-दो रत्ती की गोलिया बना अकरकरे के चूर्ण मे डालते जावे। मात्रा एक दो दिन मे दो बार मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन करे। यह रस शक्तिवर्धक, क्षुधा वर्धक, आनन्द दायक शातिकारक हे। मलेरिया से निर्बल बने हुये तथा निर्बल पचन शक्ति एव निर्बल ग्रहणी वालो को यह रसायन शक्तिवर्धक रूप से दिया जाता है। इससे उत्तम निद्रा आती, चित्तभ्रम दूर होता है। जीर्ण सुजाक के रोगी का मूत्रमार्ग की वेदना शमन करने तथा निर्बलता दूर करने एव बाजीकर शक्ति देने के लिये भी यह अति हितकारक है। स्त्रियो का गर्भाशय शिथिल हो जाने से मासिक धर्म की विकृति हो, या गर्भ धारण न होता हो

तो गर्भाशय को सबल बनाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

नोट—उक्त प्रयोग रस तंत्रसार मे लिया गया है अन्य ग्रन्थो मे कपूर व केशर नही लिया गया है। तथा शहद के स्थान मे बराबर की खाड मिलाकर चूर्ण रूप मे ही रख लिया जाता है। मात्रा शक्ति के अनुसार दो रत्ती से सात रत्ती तक उचित अनुपान के साथ लेने से जलदोष, वात कफज विकार तथा ज्वरातिसार नष्ट होते हैं। वाजीकरण अनुपान के साथ लेने से काम की वृद्धि होती है। इस रस मे चन्द्रोदय के स्थान मे रस सिन्दूर ले सकते हैं। —सम्पादक

(२) त्रैलोक्य समोहन रस—घी मे भुनी हुई शुद्ध भाग की पत्ती १२ तोला, हिंगुल रसायन, रस सिन्दूर, कर्पूर, लौंग चूर्ण, कृष्णाभ्रक भस्म और शखभस्म १-१ तोला और गोखरू बडे, कौंच बीज, काकड़ासिंगी प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला, लेकर सबको एकत्र खरल मे डाल, भाग के क्वाथ की तथा शतावरी के रस या क्वाथ की ७-७ भावनायें देकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। इसके सेवन से आनन्द व उत्साह की वृद्धि होती धारणा, स्मरण शक्ति एव शुक्रस्तभन शक्ति बढ जाती है।

नोट—इसमे हिंगुल रसायन (रसतंत्रसार प्रथम खड तृतीय विधि) तथा रस सिन्दूर (द्विगुण गन्धक जारित) कौंच बीज दूध मे स्वेदन कर छिलके निकाले हुये लेवें। मात्रा—१ से ४ गोली दिन मे १ या २ बार दूध के साथ लेवे। यह रस दीपन, पाचन, ग्राही एव कफघ्न होने से अर्श, श्वास, काम व क्षय मे भी हितावह है। पित्तप्रधान प्रकृति वालो को यह नही देना चाहिये।

—र तंत्रसार भाग ३ से साभार।

(३) विजयासव न १ धनुस्तंभादिनाशक—भाग के हरे ताजे पत्ते खूब कूटे हुए १ भाग तथा रेक्टिफाइड स्प्रिट (या सजीवनी सुरा) ५ भाग एकत्र मिला, बोतल मे भर दृढ काग लगाकर रखें। ७ या १५ दिन बाद फलालैन या बनात के कपडे मे छानकर उपयोग मे लावें। मात्रा २ से २० बूद तक। धनुस्तंभ के दौरे के बाद कुछ दिन तक इसके सेवन से रोग दूर हो जाता है। हैजे मे इसे कर्पूरासव के साथ देना चाहिये। अतिसार मे कुटजादि पदार्थ के साथ देवे। खासी मे इसकी कुछ बूदें मिलाकर सेवन कर सकते हैं। जिन अतिसारों की रात्रि मे वेग होता हो या अधिक मात्रा मे बार-बार दस्त आ रहे हों उन्हें इसकी कुछ बूदे अहिफेनासव के साथ देने से लाभ होता है।

न० २—(अजीर्णादि नाशक) भाग का घनसत्व १ भाग और मद्य (७० से ६० प्रतिशत वाली) २० भाग एकत्र कर बोतल मे या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर, मुख अच्छी तरह बन्द कर एक दिन सुरक्षित रखें। बीच-बीच मे हिलाते रहना चाहिए। फिर छानकर रख ले।

मात्रा—५ से १५ बूद तक। अग्निमाद्य, अजीर्ण, अरुचि, ग्रहणी आदि उदर रोगो पर लाभप्रद है। इसके सेवन से कभी-कभी क्षुधा की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। और लगातार एव अधिक मात्रा मे सेवन से मन्दाग्नि हो जाती है। वेदना, अनिद्रा, भ्रम धनुर्वात, उन्माद, अपस्मार एव हिस्टीरिया आदि पर भी यह विशेष लाभदायक है। शिर शूल और बच्चो के आक्षेपको मे इसे देने से तत्काल लाभ होता है। यह कामोत्तेजक भी है, किन्तु अधिक सेवन से नपुंसकत्व पैदा हो जाता है।

नोट—जिन मद्यासवो मे औषधि के घनसत्व ही पड़ते है, वे केवल एक ही दिन मे तैयार हो जाते हैं।

—बृहदासवारिष्ट सग्रह।

एलोपैथिक प्रयोग—

एलोपैथी मे भाग का बहुत कम तथा गाजे का अधिक उपयोग किया गया है।

(१) एक्स्ट्रेक्ट कैनेबिस इडीसी—यह तो भाग का एक प्रयोग है जिसकी मात्रा ½ ग्रेन से १ ग्रेन तक है। इसी का दूसरे गाजे का एक्स्ट्रेक्ट आफ इण्डियन हेम्प (गाजे का सत्वसार) है। गाजा या भाग का मोटा चूर्ण तैयार कर अलकोहल (६०%) मे डाल, पार्कोलेशन द्वारा मिलाते है। घुल जाने पर छानकर विविध प्रयोग तैयार किये जाते हैं। अजीर्णजन्य उदर व्याधि, सामान्य उदर विकार तथा क्षुधामाद्य पर यह कैनेप्रिम इण्डिसी १० ३० बूद तक तथा विस्मथ सबनाइट १० ग्रेन, स्प्रिट

क्लोरोफार्म २० बूद म्युसिल एकेसिमी ½ ड्राम और एकोसिनेमोमाई १ औस एकत्र कर एक मात्रा तैयार करते हैं। साधारणत १ भाग इस मिश्रण मे १९ भाग अल्कोहल मिला साधारण तरल तैयार करते है।

(२) इसका दूसरा मिश्रण–टिकचूरा केनिविस इण्डिसी है। इसकी २२ बूदो मे १ ग्रेन ऊपर का सा एक्स्ट्रेक्ट होता है। इस टिक्चर को क्लोरोफार्म एटमार्फिन मे मिलाते है।

गाजे का भी इसी प्रकार टिंक्चर तैयार करते है, जिसे 'टिंक्चर आफ इण्डियन हेम्प' कहते है। १ औंस गाजे के सार या गाजे के अरिष्ट को १८ औस अल्कोहल (जिसमे ६०% मद्यसार हो) मे मिला व छानकर काम मे लाते हे। इसमे यथावश्यक अल्कोहल मिला २ पाइण्ट तक टिंक्चर तैयार कर लेते है। इसकी मात्रा ५ से १५ बून्द तक होती है।

आमातिसार पर–टिंक्चर कैनेविस इण्डीसी १० बूद, लाइकर मर्की ५ से १० बूद और शुद्ध जल १ औस मिलाकर रोग की उग्रता के अनुसार १–१ घटे से देते है।

(३) कैनेवाइली (या फैनेविन) टन्नास (पल्व्हेरिस) यह पीताभ भूरे रङ्ग का चूर्ण है। यह पानी या ईथर मे नही घुलता, सुरावीर्य मे साधारणत घुलता है। क्षार युक्त जल मे घुल जाता है। मासिक धर्म कठिनाई से होता हो, या अधिक होता हो, तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह निद्राकारक है, किन्तु मादक नही है। उन्माद रोग मे निद्रा के लिये यह दिया जाता है। मात्रा २ ग्रेन से १० ग्रेन तक है।

(४) कैनेविनन–यह शुद्ध चरस का बनता है। इसका रङ्ग लाल और कोमल गुड की राव जैसा होता है। यह अवसादक है। पागलपान, मैनिया, हिस्टीरिया तथा अनिद्रा रोग मे व्यवहृत होता है। मात्रा ¼ ग्रेन से १ ग्रेन तक।

(५) अतिसार तथा ग्रहणी पर—एक्स्ट्रेक्ट कैनेविस ½ ग्रेन, एक्स्ट्रेक्ट ओपिआई सिक्कम ⅙ ग्रेन और आयल सिनामम ⅓ बूद या ¼ रत्ती, सबको मिला एक गोली बनावे। यह १ मात्रा है, ऐसी ही ८ मात्राये बनाकर ४-४ घटे पर देने से लाभ होता है।

(६) मूत्राशय सकोच, आमाशयक व्रण जन्य शूल, आत्रशूल, वृक्कशूल, परिणाम शूल पर–एक्स्ट्रेक्ट केनाविस ¼ ग्रेन एक्स्ट्रेक्ट हायोसिमामाई सिक्कम ½ ग्रेन, दोनों मिलाकर १ गोली बना ले। ऐसी गोलिया ४-४ घटे पर १–१ देने से लाभ होता हे।

(७) कष्टार्त्तव पर—एक्सट्रैक्ट केनाविस ½ ग्रेन, पल्व रोपियाई ½ ग्रेन, कैम्फर २ ग्रेन तथा ग्लिसरीन ट्रैगाकेन्थ यथावश्यक मिलाकर गोली बनावे। यह १ मात्रा है ऐसी ही ४ मात्रा प्रतिदिन मासिक धर्म के शुरू होते ही देने से मासिकधर्म के समय जो कष्ट होता है। वह दूर हो जाता है।

(८) मासिक धर्म के समय अधिक रक्तस्राव या रक्तप्रदर के लिए भी उक्त प्रयोग न ७ लाभकारी है। अथवा–

एक्सट्रैक्ट केनाविस ½ ग्रेन, हाईड्रैस्टिन हाइड्रोक्लोर ⅙ ग्रेन और कैम्फर ⅙ ग्रेन, इसमे उक्त ग्लिसरीन यथावश्यक मिला गोली बनावे। ऐसी गोलिया ४-४ घण्टे से देवे।

—सकलित।

भांगरा (श्वेत) (Eclipta Alba)

गुडूच्यादिवर्ग एव भृगराज कुल* (Compositae) के इस वर्षायु खडे या जमीन पर फैले हुए २½ फुट तक ऊचे क्षुप के काण्ड व शाखाये श्वेत रोमाच्छादित, शाखाये हरी, काली या बैगनी चमकीली, शाखा की पर्व सन्धि

*इस कुल के क्षुप के पत्र–एकातर, क्वचित् अभिमुख, उपपत्ररहित, पुष्प रचना–स्तान्याकार, कंदुकाकार, कहीं-कही प्यालाकार; पुष्पाभ्यन्तर कोष–दल ४–५ पु केसर ५ या ४, स्त्री के बीज कोष, फल–शुष्क, अविदारी, बीज–लम्बे, पतली त्वचा वाले होते है।

सफेद भांगरा

ECLIPTA ALBA HASSK.



पर मूल की रचनायुक्त, पत्र—वृन्तरहित, टहनियो पर प्राय अभिमुख, समवर्त्ती, लम्बे गोल किंचित कंगूरेकार, लगभग अखण्ड, नोकदार,प्राय दोनो ओर सूक्ष्म श्वेत रोमो से युक्त होने से कर्कश या खरदरे,ऊपर की ओर का रङ्ग गहरा हरित वर्ण का नीचे की ओर का किंचित फीका सा, १ से २$\frac{1}{2}$ या ४ इन्च तक लम्बे, $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ तक चौडे होते है। पत्रो को मसलने मे कृष्णाभ हरे रङ्ग का रस निकलता है, जो शीघ्र ही काला पड जाता हे। स्वाद में कुछ चरपरा, कडुवा सा होता हे। गध अच्छी आती है। कही-कही ग्रामीण लोग इसकी साग वनाते हैं। तथा कोकण प्रात मे पत्तो का रायता विशेपत पितृपक्ष या श्राद्ध के दिनो मे वनाते हैं। इसके पत्र या क्षुप पितृकार्य (श्राद्धादि कर्मो) मे लिये जाते है। इसी से सस्कृत मे इसे 'पितृ-प्रिय' कहा गया है,

पुष्प—पत्र कोण मे निकली हुई $\frac{1}{2}$ १$\frac{1}{2}$ इन्च लम्बी, कडे श्वेत रोमो से आच्छादित, नीचे की ओर पतली, ऊपर की ओर कुछ मोटी सलाका के अग्रभाग मे १ से ४ तक चक्राकार पुष्प निकलते है। जो व्यास मे $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ इन्च तक होते हैं। तथा अग्र भाग पर एक गोलाकार परदा सा होता है। और कोर पर बाहर की ओर ६ से १० खडी रेखायुक्त श्वेत सूक्ष्म केश जैसे अनीदार पुष्प-पत्र (पखुरिया) होती है। इन पुष्प पत्रो के भीतरी परदे पर चक्र के किनारे किनारे कुछ लम्बी पखुरियो वाले पुष्प होते है। ये प्राय स्त्री पुष्प होते है तथा इन पखुडियो के वाजू मे ही कुछ मध्य भाग मे उभरा हुआ सा स्त्रीकेशरा-ग्रमुख दो भागो मे विभक्त सा दिखाई देता है। इन पखु-डियो के मुख पर ४ या ५ कगूरे से होते है जिनके भीतर पुकेशर का पराग कोप पीले रङ्ग का होता है,तथा इसी के तल भाग मे सूक्ष्म वीज युक्त स्त्री केशर गर्भाशय होता है। उक्त पखुडियो के झड जाने पर बीजो की घुण्डिया रह जाती है। ये घुडिया गोल, किंचित चिपटी होती हैं, जिनमे सुगठित नन्हे-नन्हे वीज रहते हैं।

वीज—नीचे की ओर सकरे, ऊपरी भाग मे कुछ चपटे, किंचित काले वर्ण के, प्राय पीत वर्ण के भागरे के वीज जैसे ही होते हैं। गध मे कुछ उग्र, स्वाद चरपरा सा होता है। यह स्वाद तथा बीजो का वर्ण आदि उन श्वेत भागरा मे देखा गया है। जो उत्तम सजल स्थानो मे उपजते हैं। अन्य स्थानो के बीजो मे प्राय कुछ भी स्वाद नही होता। वे प्राय हरिताभ कुछ श्वेत वर्ण के होते हैं।

शरद ऋतु मे पुष्प व फल आते है। विशेपत अगस्त, सितम्बर मे पुष्प व अक्टूबर से फरवरी तक फल।

मूल—२ से ६ इन्च लम्बी, मोटी सुतली जैसी झीनी-झीनी रेखाओ से युक्त, तथा असख्य नन्ही उपमूल युक्त होती हे। छाल ऊपर से भूरी, कुछ लालिमायुक्त, भीतर से श्वेत, गध मे पीसी हुई राई जैसी उग्र, स्वाद मे कुछ कसैली, चरपरी सी होती है।

रेतीले स्थानो की अपेक्षा नदी या नहर के किनारे के इसके क्षुप विशेप मुलायम और अधिक वढे हुए होते हे।



इसके क्षुप विशेषत भारत के उत्तर प्रदेशो मे गगा जमुना के कछारो मे, हिमालय के तराई प्रदेशो मे तथा दक्षिण के मध्य प्रदेशो, कोकण वम्बई आदि प्रान्तो मे एव बगाल व आसाम मे विशेष पाये जाते हे। वैसे तो न्यूनाधिक प्रमाण मे जलाशय के समीपवर्त्ती स्थानो मे तथा इतस्तत भी पाये जाते हैं। वे क्षुप वर्षाकालमे प्राय सर्वत्र तथा सजल प्रदेशो मे सब समय पाये जाते हैं। इनमे पुष्प भी सदा देखने मे आते हैं। किंतु वर्षा काल या शरद ऋतु की अपेक्षा अन्य ऋतुओ मे कम आते हैं।

नोट न० १--श्वेत, पीत [पीला] और कृष्ण [काला या नीला] भेद से इसकी ३ जातिया होती है। प्रस्तुत प्रसग मे श्वेत का वर्णन दिया जा रहा है। यह प्राय सर्वत्र अधिक पाया जाता है। इसकी अपेक्षा पीला भागरा कम प्रमाण मे, तथा काला या नीला तो अत्यल्प प्रमाण मे क्वचित् कही देखा सुना जाता है। * पीले और काले का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पीला भांगरा—

Wedelia calendulacea इसके बहुवर्षायु, अधिक फैलने वाले, सूक्ष्म लोमयुक्त, १ से ३ फुट तक ऊचे या जमीन पर फैलने वाले क्षुप के काण्ड या शाखाये जमीन पर फैलने पर निम्न पर्वसन्धियो मे जडे वनती जाती है। काण्ड इसके मुख्य मूल के जैसा ही जाडे, किंतु अन्दर से कुछ पोले होते हैं। शाखाये प्राय अभिमुख ६ से १८ इच तक लम्वी, जड की ओर भूमि पर फैली हुई और २ या ४ पर्वसन्धियो से शोरिया निकलकर भूमि मे घुसी हुई रहती हैं। किन्तु इनका अग्रभाग ऊपर की ओर खडा हुआ रहता हे। काण्ड व शाखाये न्यूनाधिक रोमश, कुछ फीकी पीली, हरी या जामुनी रग की होती हे।

पत्र—विषमवर्ती, काण्ड व शाखाओ के मध्य भाग से निकले हुये दोनो ओर कुछ चमकीले, ऊपरी भाग कुछ पीताभ हरितवर्ण का, नीचे का भाग कुछ फीका सा होता है। पत्र पर ४ से ५ तक खडी नसे [शिराये] होती हे। जो ऊपर की ओर के भाग मे अन्दर को धँसी हुई, तथा नीचे की ओर के भाग मे उभरी हुई होती है। पत्र के दोनो सिरे सकरे, एव कोर पर कगूरे से होते है। कई पत्तो के कगूरे श्वेत वर्ण के होते है। ये पत्र १ से १½ या ३ इच तक लम्वे, अनियमित चोडे, अण्डाकार, जाडे, खुरदरे होते है। मसलने पर वे स्वाभाविक ही चिकने एव मुलायम मालूम देते है। गध गाजर जैसी तथा स्वाद मे कुछ कडवापन होता है।

पुष्प—पत्र कोण से पुष्प युक्त घुडियो वाली सलाका निकलती है। ये घुडिया चपटी सी, गोल एव पीले फूलो से युक्त होती हे। पुष्प की पखुडियो के वीज (Achenes) चिपकीले, चमकीले होते है। वीज सूक्ष्म काले रग के होते है।

श्वेत भागरे की अपेक्षा इसके पत्र अधिक खुरदरे तथा चौडे होते हैं। पुष्प दण्ड भी अधिक लम्वा होता

---

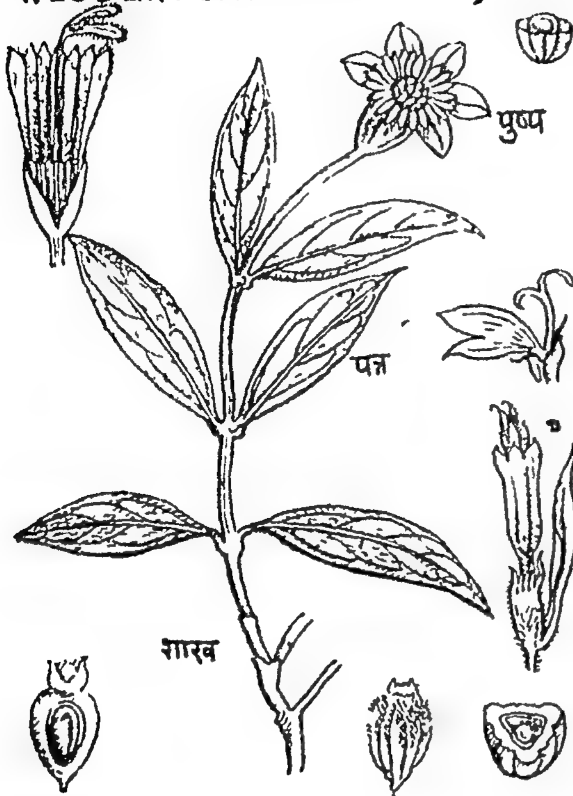
* आधुनिक अन्वेषकों की मान्यता है, कि श्वेत भागरा ही फूलो के झड जाने पर काला भागरा कहाता है, कारण उसका फलकोष (Achenes) काला ही होता है। अत जब श्वेत भागरा के फूलो की श्वेत पखुडिया झड़ जाती हैं। और बीज की काली घुडी शेष रह जाती हे तब उसे ही काला भागरा कहते है–The black Bhangra is a variety of the white one, when it flowers it is called white, when in fruit it is called Kala Bhangra।

I M medica by Khory

किन्तु उक्त मान्यता को हम भ्रमात्मक मानते है। बिल्कुल काले वर्ण का (कृष्ण वर्ण के पत्र, पुष्प, शाखादि युक्त) भागरा हमारे विश्वसनीय आप्त आचार्यो ने केवल देखा ही नही, प्रत्युत उसका सफल प्रयोग भी किया है, और करते हैं। तब हम कैसे मान लें कि वह श्वेत भागरे की ही एक अवस्था विशेष है। भिन्न नही हे। हा यह बात निर्विवाद है कि कतिपय विशेष प्रभावशाली वस्तुओ की तरह यह जहा, तहा हर किसी को प्राप्त नहीं होता।

—सम्पादक

पीला भागरा (पीत भृङ्गराज)
WEDELIA CALENDULACEA, LESS



हे ।

मूल—४-५ इच लम्बी, ऊपर से भूरे रग की भीतर श्वेत, छोटी पेसिल जैसी मोटी, कठी अनेक उपमूल युक्त गध और स्वाद मे उग्र होती हे ।

इसमे फूल और फल—मार्च से सितम्वर मास तक आते हे । इसके क्षुप विशेषत बगाल, आसाम, कोकण, मद्रास, सिलहट तथा पूर्व और पश्चिम के प्रायद्वीपो मे पाये जाते है । हिमालय और विन्ध्याचल की तराई की आर्द्र भूमि मे भी कही-कही पाये जाते है । कही कही बाग बाटिकाओ मे भी यह स्वयमेव ऊगा हुआ मिलता हे ।

नाम—

स०—पीत भृङ्गराज, देवप्रिय, केशराज, स्वर्णभृङ्गार, हरिवास इ । हि०—पीला भगरा (भगरैया), भागरा इ । म०—पिवला माका । गु०—पीलो भागरो । ब०—हल्दी भीमराज, केशराज, वगरा । अ०—फ्लाव्हेरिया रेपाडा (Flavieria Repanda) । ले०—वेडेलिया बयालेंडुलेशी, वेडेलिया स्कयान्डेन्स (Wedelia Scandens) । Verbisina Calendulacea) व्हर्बेसिना केलेंडुलेशी ।

इसके रासायनिक सगठन तथा गुणधर्म आदि श्वेत-भागरा जैसे ही है । यह काले भागरे के समान रसायन गुणयुक्त है । आधुनिक मतानुसार यह विरेचन ग्राही है । शरीर मे इसकी क्रिया पोडोफिलीन (पापडी या गुलककडी) और टेरेक्सेकम (दुधली) की तरह होती है । आगे श्वेत भागरे के प्रयोगो के साथ ही इसके प्रयोग दिये गये है ।

काला भांगरा—

कहा जाता है, कि इसका क्षुप छत्ता सा लगभग १ बालिश्त का होता ह । पत्र—अतिन्यून, कुछ गोल या अण्डाकार, फूल—इकहरे, दानेदार, नीले एव बैंगनी रङ्ग के होते है । यह शरद ऋतु मे जलाशय के किनारे पाया जाता है ।

अजमेर, आवू पहाड तथा जयपुर मे गगाशहर के पास सलावत ग्राम के निकट के एक तालाब के आसपास यह प्राप्त हो सकता है । बूटी दर्पणकार प उमाशकर जी त्रिपाठी ने अपने एक लेख मे उपर्युक्तानुसार ही लिखा है ।

नाम—

स०—नील भृङ्गराज, महानील, महाभृङ्ग इ० । काला भागरा, काला घमिरा । म—काला माका । गु०—कालो भागरो । ब०—काला भृङ्गराज, केशराज ।

गुणधर्म व प्रयोग—कडुवा, उष्ण, नेत्रो को हितकारी, केशो को शीघ्र काला करने वाला, रासायनार्थ उत्कृष्ट तथा कफ, आमदोष, शोथ और श्वेत कुष्ठ का शीघ्र नाशक है। इसके योग से कीमिया, सुवर्ण की निष्पत्ति होती है। शेष गुणधर्म श्वेत भागरा जैसे ही किंतु श्रेष्ठ प्रति के हैं। रसायन के लिये विशेषत इसके सेवन का विधान है। १ मास तक इसके स्वरस पान के साथ दुग्धाहार पर रहने से बल, वीर्य शुद्धि व दीर्घायु प्राप्त होती है ।

(१) फिरङ्ग रोग (उपदंश) पर—इसके आधा सेर

स्वरस मे कालीमिर्च २ तोला मिला, पत्थर के खरल मे इतना मर्दन करे कि गोली बनने लायक हो जाय। फिर १ मे २ माशा तक की गोलिया बना छाया शुष्क कर रखें। १ या २ गोली इसी भागरे के (या श्वेत भागरे के) स्वरस केसाथ या ताजे जल केसाथ सेवन मे इस रोग के चट्टे या फुंसिया दूर हो जाती है। यह उत्तम रक्त शोधक योग है।

(२) जीर्ण ज्वर या क्षय रोग पर—इस भागरे की जड के ७ टुकडे (४ मे ८ रत्ती के) कर प्रतिदिन १ टुकडा प्रात या ज्वर आने से पूर्व अदरख के स्वरस के साथ पीसकर खिलाने मे ७ दिन मे ही पूर्ण लाभ होता है।

(३) चादी और हरताल भस्म—शुद्ध चादी के पत्रो को तपा तपा कर २१ बार इसके स्वरस मे बुझाकर इसी भागरे की लुगदी मे रख सपुट मे बन्द कर लघु पुट मे आच देने से जो भस्म तैयार होती है वह उत्तम वाजीकरण कही गई है। शुक्रमेह एव स्वप्नदोषादि वीर्य विकारो के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

इसी प्रकार गोमूत्र मे शुद्ध किये हरताल की भस्म तैयार की जाती है, जो श्वेतवर्ण की होती है। श्वास, कास के लिये रामवाण मानी गई है। —सकलित

नोट न २—चरक और सुश्रुत मे भागरे के औषधि रूप मे कई प्रयोग मिलते है। वाग्भट तथा अन्य आचार्यो ने इसके कल्प लिखे है।

भागरे की विशेष पहिचान यह है, कि हाथ पर मलने मे एक मिनिट मे ही हाथ काला पड जाता है। इसके रस मे भिगोया हुआ श्वेत वस्त्र भी काला होजाता है।

नोट न ३—इसी भागरे के ही कुल का एक परदेशी भागरा होता है। इसे लेटिन मे ग्लासोगिनी पिन्नाटिफिडा (Glossogyne Pinnatifida), गुजराती—परदेशी भागरो, बगला—बरागम कहते है।

प्राय जमीन पर फैले हुए इसके कडे रोमश क्षुप २ मे ३ फुट तक लम्बे, पत्र गहरे हरे रङ्ग के, कगूरेदार, फूल-पत्रकोण से निकली हुई लम्बी सलाका पर पीले रङ्ग का फूल आता है। बीज-भूरे रग के रोमश होते है।

यह अमेरिका का मूल-निवासी है। भारत के बागो मे भी यह सौन्दर्य के लिये विशेषत लगाया जाता है। तथा पजाब के मैदानो मे गगा के ऊपरी कछार, कुमाऊ, छोटा नागपुर, पश्चिमी बगाल आदि मे पाया जाता है।

प्रयोग—कर्ण शूल पर—इसके पत्तो ‌का ‌रस तैल मे मिलाकर कान मे टपकाते है। अर्श पर पत्तो की पुल्टिस बनाकर बाधते है। शोथ और चर्म रोगो पर इसका रस लगाते है। पहाडी लोग इसकी जड को सर्पऔर बिच्छू के विष पर लगाते हैं।

एक परदेशी भागरा (Tridox Procumbens) होता है। यह भागरे के जैसे ही वर्षाकाल मे अधिक पैदा होता है तथा बारहो मास देखने मे आता है। इसका स्वरस माथे पर होने वाले चकत्ते दद्रु आदि पर लगाते है।

नोट न ४—श्लेष्मातक कुल (Boraginaceae) की एक बूटी जिसे हिन्दी मे चितीफूल कहते है, उसे श्वेत भागरा भी कहा जाता है, मराठी मे—सजुवनची बेल, सिताचे केस, पजाबी मे—तिन्दु, सफेद भागरा, गोरख पायो, और लेटिन मे—हेलियोट्रोपियम स्ट्रिगोसम (Heliotropium Strigosum) कहते है।

यह प्रस्तुत प्रसङ्ग के भागरे से बिलकुल भिन्न है। इसका बहुशाखी छोटा पौधा होता है यह हिमालय के पश्चिम प्रदेशो मे विशेष रूप मे तथा साधारणत समस्त भारत मे बलोचिस्थान तक पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

मृदु विरेचक और मूत्रल है नेत्रो की सूजन, अभिष्यन्द, व्रण, मसूढो के छालो पर इसका रस लगाया जाता है। यह विशेष रूप से फोडो को परिपक्व करता है, पूय को बढाता है। विषैले कीटक आदि के दश पर भी इसका उपयोग करते हैं।

प्रस्तुत प्रसग के भागरे के नाम, गुणधर्मादि—

नाम—

स०—भृङ्गराज (भृङ्गइव राजते अथवा भृङ्गइव रजोऽस्य[1] जो भ्रमर जैसा काला है या जिसका चूर्ण

भ्रमर जैसा काले रंग का हो जाता है। इसका क्षुप सूखने के बाद काला हो जाने से या केशो को भौंरे जैसा शोभाय मान करने से), मार्कव—("मारयति मारि केश शौकल्य नाशने कूयते" जो केशो की सफेदी को दूर करता है) केश रजन, भृङ्ग इ। हि—भागरा, भगरैया, घमिरा हट्टकेसरी, जल भागरा इ। म—माका। गु—भागरो। व—केसुरिया, भीमराज, बागरडी। अ—ट्रेलिंग एक्लेस्टा (Tralling Eclista) ले—एक्लिप्टा आलवा। एक्लिप्टा एरेक्टा (Eclipta Erecta), ए प्रोस्ट्राटा (Eclipta prostrata)।

रासायनिक सगठन—

प्रचुर मात्रा मे राल तथा एक्लिप्टिन (Ecliptine) नामक क्षार तत्व इसमे पाये जाते है।

प्रयोज्याग—स्वरस, पत्र, मूल और बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफ वातशामक, दीपन, यकृदुत्तेजक (इसकी मुख्य क्रिया यकृत पर होने से, पित्तस्राव ठीक प्रकार से होता एवं आमदोष का पाचन होता है) पित्तरेचक, वातानुलोमक, उदरस्थ कृमिनाशक, शूलप्रशमन, शोथहर, वेदनास्थापक, व्रणशोधन रोपण, सवर्णीकरण, चक्षुष्य, केशवर्धन, केशरजन, रक्त-वर्धक, मूत्रल, हृद्य, विषघ्न, वलवर्धक, रसायन, स्वेदजनन, कुष्ठादित्वग्रोगनाशक, ज्वरघ्न, दातो के लिये हितकारी, तथा शिर शूल, भ्रम, दृष्टिमाद्यादि नेत्र रोग, अग्निमाद्य, अजीर्णादि मे प्रयुक्त होता है। अधिक मात्रा मे इसका रस वामक है।

आधुनिक मतानुसार—इसकी प्रधान क्रिया यकृत की विकृति दूर करना, पित्तस्राव को यथास्थित करना और आमाशय व पक्वाशय की पचन क्रिया को सुधारना है। जिससे शरीर मे सर्वाङ्गीण उन्नति होकर तेज एव कान्ति की वृद्धि होती है। इसीलिये यह रसायन माना जाता है। उसके नित्य, नियमानुसार सेवन से 'वृद्धोऽपि तरुणायते' (बूढा भी जवान होता है) यह कहावत चरितार्थ होती है। इसमे (विशेषत पीले भागरे मे) दुधली (Taraxacum officinale पीछे दुधली बूटी का प्रकरण देखिये) के समान या उससे भी अधिक, पित्त को शुद्ध रखने, बालों को बढाने एव रसायन कार्य मे प्रभावशाली है। इसके द्वारा यकृत का सुधार होने पर कामला रोग स्वयमेव दूर हो जाता है, यकृत एव प्लीहा की वृद्धि कम होती, अर्श, उदर सम्बन्धी विकार तथा अग्निमाद्य भी नष्ट होता है। यकृत की विकृति से शरीर मे एक प्रकार का विष (आम दोष) सचित हो जाने से जो आमवात, भ्रम, शिर शूल, दृष्टिमाद्य एव विविध चर्म रोग पैदा हो जाते हैं, उनमे इसके यथाविधि सेवन से बहुत लाभ होता है। सर्व प्रकार के चर्म रोगो पर इसका भीतरी व बाह्य प्रयोग लाभदायक है।

इसके रस मे हीराकसीस (कसीस Iron Sulphate) मिला कर लेप करने से खिजाब का काम देता है। श्वेत केशो पर काला रग चढ जाता है। बम्बई की ओर इसके रस को अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यो के साथ मिलाकर एक पौष्टिक एव वीर्यवर्धक प्रयोग तैयार किया जाता है। कहीं कहीं इसके पत्र चूर्ण को प्रसूति के बाद होने वाले रक्तस्राव के निवारणार्थ तथा रक्त शुद्धि के लिये उपयोग मे लाते हैं।

पलित [अकाल मे ही केशो का श्वेत होना] और भागरा—पित्त प्रकृतिवालो मे यह रोग विशेष देखा जाता है। वृद्धावस्था मे तो प्राय वात प्रकोप से बाल सफेद हो है। अत यह सिद्ध होता है कि केशो के श्वेत होने मे पित्त और वात ये दोनो दोष कारणीभूत है। चरक ने लिखा है कि पित्त [तेज] वात आदि दोषो के साथ मिला कर केशो की जडो को दग्धकर खालित्य [केशो का धीरे धीरे झडना Baldness] रोग करता है। [च चि अ २६]। अत जब तक पित्तवृद्धिकारक आहार विहारादि का त्याग नही होता, तब तक केवल बाहर से तैलादि लगाने से कोई लाभ नही होता। वातादि के साथ मिला कर पित्त का जो विमार्गगमन हुआ है उसको अपने स्व-स्थान मे लाना ही इसकी मूलगामी चिकित्सा है।

भागरा जो कि कटु, उष्ण, तीक्ष्ण व रूक्ष है, वह पित्त प्रकोप जन्य पलित-रोग कैसे दूर कर सकता है? इसके

ये गुण तोऔर भी पित्त वृद्धिकारक है। इन शका के समाधानार्थ पलित रोग की सम्प्राप्ति की ओर ध्यान देना आवश्यक है । वातप्रेरित पित्त ही इस रोग को पैदा करता है। वाग्भट का कथन है, कि शोक, श्रम व क्रोध से उत्पन्न शरीरोष्मा मस्तिष्क मे जाकर दोपोसहित केशो को भी पकाकर इस विकार को पैदा करता है [अ हृ उ अ २४/२९] । शोक, श्रमादि से वातोत्पत्ति तथा पित्ताधिक्य भी होता है । वढे हुये पित्त को वात स्थानभ्रष्ट कर शिर मे ले जाता है। भागरा उष्ण व तीक्ष्ण होने से वात का अनुलोमन एव शमन करता है। इससे पलित रोग की सम्प्राप्ति भङ्ग हो जाती है। तथा भागरा रसायन गुणवाला होने से स्रोतो दुष्टि को दूर कर केशो के मूल मे रस रक्तादि धातुओ को यथायोग्य पहुचाने मे सहायता करता है। दग्ध हुये केश मूलो मे योग्य परिमाण मे पोषण मिलने से केश अपना प्राकृत रङ्ग फिर से प्राप्त करने लगते हैं। इसीलिये भांगरे के आभ्यन्तर प्रयोग मे उसके साथ दूध या जीवनीय गण के द्रव्यो का उपयोग किया जाता है। चक्रदत्त मे भागरे का एक रसायन का प्रयोग बताया गया है, उसकी फल प्राप्ति मे यही बात कही है। भागरे के स्वरस मे आमला, और तिल मिलाकर पीने वाला कृष्ण केशी, विमलेन्द्रिय व निर्व्याधि होकर सौ वर्ष की आयुष्य प्राप्त करता है। (चक्र रसायनाधिकार अ० २७) वाग्भट्ट ने उत्तरतत्र के अ० ३९ मे नारायण घृत का एक रसायन प्रयोग किया है। उसमे भी अन्य जीवनीय द्रव्यो के साथ भागरे की योजना होती है। इस घृत के प्रयोग से भी पलित रोग दूर होकर मनुष्य शतायु एव स्वस्थ रहता है। इन रासायनिक प्रयोगोके साथ-साथ षड्विन्दु तैल का नस्य प्रयोग भी करना चाहिये। रुग्ण को पाव उसके सिर से ऊचे रहे इस प्रकार लिटाकर उसके नासा द्वारोमे इस तैल की २-२ बूदे डालनी चाहिये। कुल मिलाकर ६ बूदो का उपयोग करे। ७ दिन से अधिक इसका प्रयोग नही करना चाहिये। देखो चक्रदत्त शिरोरोग चिकित्सा ३१ मे ३३ तक। साथ ही भृगराज तैल का उपयोग शिरोभ्यग के लिये करना हितकर है। केवल भृगराज तैल की ही मालिश से लाभ नही होता, उक्त प्रकार से भागरे के भीतरी प्रयोगो के साथ ही साथ पित्तवर्धक आहार विहार का त्याग करना आवश्यक है।

—श्री गोविन्द दवे (आयुर्वेद विकास)

यूनानी मत से—यह दूसरे दर्जे मे उष्ण व रुक्ष है। इसके पत्तो का स्वरस दृष्टि और ओज को वढाने वाला है। कफज स्निग्धता, प्लीहा का कडापन, कुष्ठ व गुल्म रोग पर लाभकारी है। इसके क्वाथ की कुल्ली करने से मुख रोग एव दातो की पीडा दूर होती है । इसके पत्तो का रस वीनाई और वाह को कुव्वत देता है। यह बालो के रग को वढाता है। यह पौष्टिक, कफ निस्सारक, अग्निवर्धक और ज्वरनाशक है। इसके सेवन से सिर के चक्कर दूर हो जाते है। यह कामोत्तेजक भी है। इसका प्रतिनिधि बैंदजीर (रेंडी) के पत्र है ।

प्रयोग—

(१) केशवर्धन, रजन एव पलित और दारुण व इन्द्रलुप्त विकार पर—वालो को उस्तरे से साफ कर उस स्थान पर भागरे के पत्र स्वरस को मर्दन करते रहने से कुछ दिनो मे अच्छे काले वाल निकलते है। साथ ही निम्न प्रयोग का सेवन भी करे—

भागरा (काला मिले तो उत्तम अन्यथा श्वेत) के पचाग को छायाशुष्क कर लोह खरल मे कूट, चलनी से छान कर काच के पात्र मे रख उसमे भागरे का ताजा रस इतना डाले कि रस ४ अगुल ऊपर तक आ जावे। फिर लोह खरल मे खरल कर सुखा लेवे । इस प्रकार २१ या कम से कम ७ भावनायें देकर यदि यह भावना दिया हुआ चूर्ण २० तोला हो तो उसमे आमला चूर्ण १० तोला, वहेडा चूर्ण ५ तोला और हरड का चूर्ण २० तोला अच्छी तरह मिलाकर वादाम के तैल से उसे तर कर सवके वरावर मिश्री का चूर्ण मिला काच के पात्र मे सुरक्षित रखें। मात्रा-६ माशा प्रात साय ताजे दूध से सेवन करे। ७ दिन के वाद मात्रा ९ माशा और तीसरे सप्ताह से १ तोला रोज सेवन करे। गरम, वादी, खट्टी आदि पित्त वात वर्धक चीजोसे परहेज रखे। निरतर ४१ दिन के सेवन से वाल काले निकलते है, शरीर की शक्ति

बढती है। अथवा—

त्रिफला के चूर्ण को भागरे के रस की ३ भावनायें देकर, अच्छी तरह शुष्क एव खरल कर रखे। प्रति दिन प्रात १½ माशा सेवन करने से बाल काले निकलते हैं। अथवा—

आवश्यकतानुसार केवल आमलो का ही मोटा चूर्ण कर किसी चीनी मिट्टी के पात्र मे रख, ऊपर से भागरे का रस इतना डालें कि आमले उसमे डूब जावे। फिर पत्थर के खरल मे खरल कर शुष्क करे। इस प्रकार ७ भावनाये देकर सूखने पर महीन चूर्ण कर रखे। प्रतिदिन ३ माशा की मात्रा मे ताजे जल के साथ सेवन से अकाल मे बालो का श्वेत होना रुक जाता है।

—सकलित।

नस्य प्रयोग–तिल तैल आधा सेर मे गोदुग्ध और भागरे का रस २–२ सेर तथा मुलैठी का कल्क १० तोला मिलाकर मन्द आच पर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसकी नस्य लेते रहने से पलित विकार दूर होता है। –वृ० मा०।

नोट–इस विकार पर भृंगराजादि तैल के प्रयोग आगे विशिष्टयोगो मे देखिये। यहा केश सम्बन्धी इन्द्रलुप्त व दारुण विकारो पर प्रसगानुसार कुछ प्रयोग दिये जाते है।

इन्द्रलुप्त (गज) पर–इसके ४ सेर स्वरस मे तैल १ सेर तथा ५ तोला इसके (भागरे के) ही कल्क को मिला कर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान लेवें। इस तैल मे हाथीदात और आमले की भस्म मिलाकर लगाने से गज के स्थान मे भी घने बाल निकल आते हैं। अथवा–इसके रस मे लोहे के महीन चूर्ण को पीसकर लेप करें।

जहा के बाल गिर गये हो, वहा भागरे को पीसकर दिन मे २–४ बार लेप करे। घटे आध घण्टे बाद जब लेप कुछ गीला ही रहे, उसे हटा दिया करें। कुछ दिनो मे पूर्ववत बाल उग आते हैं।

—अनुभूत योग नामक पुस्तक से।

दारुण (कफ वात के प्रकोप से सिर पर रूक्षता, खुजलाहट व कठोरता के साथ फटन होना, खौरा (Seborrhoea) पर–भागरा, त्रिफला, अनतमूल, मंडूर व आम की गुठली इनका कल्क २० तोला को तैल २ सेर व जल ८ सेर मे एकत्र मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले। इसे सिर मे लगाने से लाभ होता है। तथा बाल घुंघराले व मजबूत हो जाते हैं।

(२) यकृत विकार, अग्निमाद्य, पाडु, कामला, विबन्ध, आन्त्र विकार तथा अतिसार और अम्ल पित्त पर—

यकृत विकार पर—यकृत वृद्धि हुई हो, क्षुधा न लगती हो, अपचन हो, नवीन रक्त नहीं बनता हो या रक्ताल्पता हो तो भागरे (पीला भागरा हो तो उत्तम) के स्वरस मे थोडा अजवायन चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं। इससे पाडु व कामला मे भी लाभ होता है। यह प्रयोग कई दिनो तक करने से ही विशेष लाभ होता है।

अग्निमाद्य पर—छायाशुष्क भागरे के पचाग के महीन चूर्ण मे समभाग त्रिफला चूर्ण तथा सबके समभाग मिश्री चूर्ण मिला शीशी मे भर रखें। ६ माशा से १ या २ तोला तक उचित अनुपान के साथ सेवन से मदाग्नि व पाडुरोग मे भी लाभ होता है। यदि रसायन की विधि से सेवन किया जाय तो यह अकाल मृत्यु व वृद्धावस्था को दूर करता है। आगे विशिष्ट योगो मे इसके रसायन प्रयोग देखिये। उक्त योग से विबन्ध व आन्त्र विकार भी दूर होता है।

जीर्ण अग्निमाद्य की दशा मे—इसका रस नित्य वर्द्धमान प्रमाण मे सेवन करने से महास्रोतसो को बल प्राप्त होकर आन्त्र विकार दूर होकर जठराग्नि की वृद्धि होती है। कोष्ठस्थ आमदोष जन्य आनाह, अलसक आदि विकारो पर इसका उपयोग किया जाता है। किन्तु अलसक मे इसका व्यवहार करते समय इसे पच कटु (कटेरी) गिलोय, सोठ, कूट व चिरायता, अथवा–नीम छाल, पटोल पत्र, वासा पत्र, कटेरी व गिलोय, अजवायन आदि मे से किसी एक के साथ देने से विशेष लाभ होता है। दण्डालसक चिकित्सा करने मे अत्यन्त कष्टदायक है। किन्तु उसमे भी भागरा स्वरस के साथ हेमगर्भ, सूतशेखर आदि की मात्रा दी जाय तो लाभ होता है।

—श्री हीरामण जी जगले।

भागरा के पत्ते और फूलो का छायाशुष्क चूर्णकर थोड़ा सैंधानमक मिला सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती



है, अरुचि दूर होती है।

पाडु व कामला पर—इसके ताजे पत्तो को अच्छी तरह धोकर पीसकर, २ मासे की लुगदी के साथ काली-मिर्च ७ दानो का चूर्ण मिला, नित्य प्रात खाली पेट खट्टे दही या तक्र के साथ देने से ५ या ६ दिन मे ही पाडु या पीलिया [कामला] रोग मे विशेष लाभ होता है पित्तवाहक स्रोत मे शोथ के कारण हुई कामला शीघ्र दूर होती है। इस प्रयोग की क्रिया ठीक यशस्वी होने के लिये आवश्यकतानुसार रोगी को विरेचन देना चाहिये।

—श्री डा० कोमान व डा० नाडकर्णी।

यदि ये विकार कफजन्य हो तो पीला भागरा लेना विशेष हितकर होता है। अथवा—

भागरे के स्वरस १ तोला मे १ माशा कालीमिर्च का चूर्ण और मिश्री ३ माशा मिलाकर दिन मे ३ बार सेवन कराने तथा पथ्य मे केवल दही, भात देते रहने से ४-५ दिन मे कामला कम होने लगता है। इस प्रयोग मे वैद्य आप्पा शास्त्री साठे (मराठी 'घरगुली औषधि' के सम्पादक) १ तोला स्वरस के साथ ४ तोला कालीमिर्च चूर्ण व १ तोला मिश्री मिलाकर प्रात साय रोगी को दिया करते थे।

अतिसार पर—इसके १ तोला स्वरस को १० तोला दही मे मिला प्रात, साय पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। शूल एव रक्तयुक्त आमातिसार हो तो इसके स्वरस को पकाकर गाढा कर १-१ मासे की गोलिया बनाकर सेवन से लाभ होता है।

—व से

नोट—आमातिसार पर इसकी जड का प्रयोग नीचे देखे।

अम्लपित्त पर—भागरे के चूर्ण के साथ समभाग हरड का चूर्ण मिला, गुड के साथ सेवन से अन्न के विदाह युक्त अम्लपित्त एव वमन दूर होता है।

—चक्रदत्त।

(३) ज्वर पर—

भागरा स्वरस और नीम का पत्र रस २०-२० तोला लेकर लोहे की कढाई मे धीमी आग पर रख के, उसमे ५ तोला पिप्पली चूर्ण व २ तोला कालानमक मिलाकर खूब घोट कर गोली बनाने लायक होने पर जगली बेर जैसी गोलिया बनाकर सुखाकर शीशी मे रख ले। दिन ३ बार १-१ गोली उष्णोदक से सेवन करने पर ३-४ दिन मे ज्वर छूट जाता है। मियादी ज्वर हो तो एक मास के सेवन से निकल जाता है। अथवा—

भागरा स्वरस २॥ तोला गरमकर उसमे पिप्पली चूर्ण व कालानमक ३-३ माशा महीन पीसकर मिलाकर प्रात साय पिलाने से भी लाभ होता है।

—गृ चि

अथवा—भागरा पत्र २० तोला और कालीमिर्च २ तोला दोनो को सिल पर खूब महीन पीस, चना जैसी गोलिया बना, छाया शुष्क कर, शीशी मे रख ले। एकाहिका, द्वाहिक, त्रितीयक, चातुर्थिक इन ज्वरो मे, ज्वर वेग के ३ घण्टे पहले से ही प्रतिघण्टा २-२ गोली उष्ण जल या शहद से देने से अवश्य लाभ होता है। शीतज्वर तथा चातुथिक ज्वर पर आगे जड के प्रयोग देखे।

अथवा—इसके पत्र ११ नग और उतने ही काली मिर्च के दाने लेकर एकत्र सिलपर खूब घोटकर एक वटी बनावे। यह १ मात्रा है। ऐसी ३ मात्राये ज्वर चढने के एक घण्टा पूर्व ही देते रहने से, ३-४ दिन मे ज्वर दूर हो जाता है।

जीर्ण ज्वर पर—रोज थोडा ज्वर बना रहता हो, प्लीहा वढी हो, क्षुधा न लगती हो, यकृत का कार्य ठीक न होता हो, पाचन शक्ति मन्द हो गई हो, कफ का प्रकोप मालूम देता हो, थोडी खासी भी हो तो इसका स्वरस ४ से ६ माशा को ३ तोला दूध मे मिलाकर (यह १ मात्रा है) प्रात और रात्रि के समय सेवन कराने से १४ दिन मे लाभ होता है।

कई वैद्य शुद्ध हिगुल आधा रत्ती, शहद के साथ चटाकर ऊपर से इसका स्वरस पिलाते है। इससे लाभ होता है।

वढे हुये ज्वर, जिसमे ज्वर जोर का हो तथा प्रबल होने के कारण रोगी प्रलाप करता हो ऐसी

मे इसके स्वरस मे थोडी रस सिन्दूर की मात्रा घिसकर देने से शीघ्र ही वात शमन होकर लाभ होता हे।

आन्त्रिक ज्वर (टायफाईड) मे आध्मान [अफरा] हो तो इसका स्वरस १-१ चम्मच दिन मे २ या ३ बार देने से आमदोष एव आन्त्रगत कोथ स्वभावी [सडान पैदा करने वाले] द्रव्यो का नाश होकर शीघ्र लाभ होता है।

हाथ पैरो की दाह [जलन] और शोथ पर इसके स्वरस की मालिश करनी चाहिये।

—सकलित

(४) कफ प्रकोप तथा वालको के विकारो पर—

कफ प्रकोप के कारण छाती मे कफ भर गया हो, तो इसका स्वरस शहद मिलाकर बार-बार चटाने से कफ सरलता से बाहर निकल जाता हे।

छोटे वालको को या तत्काल के पैदा हुये नवजात शिशु को यदि कफ का जोर हो, कफ प्रकोप के कारण उसके कण्ठ मे अधिक घरघराहट हो, तो इसके ताजे पत्र स्वरस की २ बूदो मे ८ बूद शहद मिला, उस मिश्रण को उगली से मुख के भीतर गले तक पहुचा देने पर सब कफ निकल पडता हे। बच्चा चैतन्य लाभ पाता हे।

बडे वालक के लिये इसके १ तोला स्वरस के साथ ६ माशा शहद मिला उङ्गली से वार-वार चटाने से कफ प्रकोप शात हो जाता है। इस प्रयोग से वालक या वडो के कफजन्य श्वास रोग मे भी लाभ होते देखा गया है। इसे दिन और रात्रि मे भी थोडा-थोडा कई वार चटाते रहना चाहिये। इससे खासी मे भी लाभ होता है।

यदि कास श्वास का विशेप प्रकोप हो तो इसके १० भाग स्वरस के साथ १ भाग शुद्ध उत्तम तिल तेल मिला कर पकावे (इसमे ४ भाग जल मिला लेवे) तेल मात्र शेप रहने पर छानकर रख लेवे। यथोचित मात्रा मे सेवन करावे। —व से

नोट—वगसेन ग्रथ का भृगराज तेल जिसमे दशमूल आदि द्रव्यो के कल्क की योजना हे उसका नस्य एव सेवन कराने मे वात, कफज, कास, श्वास, प्रतिश्याय, पीनस तथा अन्य कफज रोग नष्ट होते है। तैसे ही रस रत्नाकर ग्रथ का भृङ्ग राज घृत, शहद के साथ सेवन करने से स्वर भेद और कास पर परम लाभ होता है। घृत व तेल के प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

वालको के अन्य रोगो पर—उत्फुल्लिका (डब्बा) पर—इसका स्वरस १ भाग, गरम किया हुआ घृत ½ भाग तथा घृत मे आधा शहद मिलाकर, दिन मे ३ बार चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

कृमि रोग हो तो इसके पत्र स्वरस को ३-४ बार गुदा मे लगाये और प्रात शुद्ध रेडी के तेल के साथ इसके स्वरस को पिलावे।

वालक को पेशाव करने मे कष्ट हो मूत्रकृच्छ्र हो तो इसके फूलो का क्वाथ, मिश्री या शक्कर मिलाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

वालको के जीर्ण ज्वर पर—इसकी जड का चूर्ण २ या ४ रत्ती की मात्रा मे, मन्दोष्ण दूध के साथ सेवन कराते है।

मुखमडिका नामक ग्रहजनित विकार (जिसमे वालक के मुख एव उदर पर नीली नसे उभर आती है, वहुत खाता है, शरीर शिथिल होता है, मूत्र तुल्य गन्ध आती है) पर—इसका रस ८ सेर, तिल तेल २ सेर तथा वच और असगन्ध का कल्क ४-४ तोला एकत्र मिला पकावे। और असगन्ध तेल मात्र शेप रहने पर छानकर रख लेवे, शरीर पर इसकी मालिश करने से लाभ होता है।

—यो र

नोट—उपरोक्त कफप्रकोपादि के प्रयोगो मे पीला भागरा विशेप उपयोगी है।

—सकलित

(५) नेत्र विकार- शिर शूलादि, शूल, भ्रम, चक्कर आना और शोथ पर—

नेत्र विकार पर—छाया शुष्क इसके पत्तो का महीन चूर्ण १ तोला मे शहद ३ माशा व गोघृत ३ माशा मिला कर (यह एक मात्रा है) नित्य सोते समय रात्रि मे ४० दिन तक सेवन से दृष्टिमाद्यादि सर्व प्रकार के नेत्र रोगो मे लाभ होता है। इस प्रयोग के साथ ही साथ इसका स्वरस २ बूद सूर्योदय से १ घडी के अन्दर या सूर्यास्त के १ घटी पूर्व आखो मे डालते रहने से लाली,

फुली आदि नेत्र विकार शीघ्र ही अच्छे होते है। कोई कोई इसके पत्र रस के साथ मिश्री या शक्कर मिलाकर आंखो मे डालते है। नेत्रस्राव या नेत्रो की लालिमा या आंखें आना [अभिष्यन्द] भी इससे शमन होता है।

रोहे या पोथकी पर—इसके स्वरस मे साफ मलमल के कपडे को भिगो भिगो कर बार२ धूप मे सुखा ले। फिर उसका एक बालिश्त लम्बा और उतना ही चौडा टुकडा लेकर उस पर ६-६ माशा फिटकरी व कपूर के चूर्ण को फैलाकर व लपेटकर वत्ती बना ले। इस वत्ती को घृत मे भिगोकर तथा जलाकर काजल पार लें। इस काजल का अञ्जन अधिक लाभप्रद होता है।

मामूली आंखें आई हो, दर्द करती हो तो इसके पत्तो को पीसकर पुल्टिस जैसा बना आंखो पर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

दृष्टिक्षीणता पर—इसके दो सेर स्वरस मे, मुलेठी का कल्क ५ तोला, तिल तेल आध सेर और गो दुग्ध २ सेर एकत्र मिला मन्द आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे नेत्रो मे लगाने से तथा इसकी नस्य लेने से, नेत्र शीघ्र ही स्वच्छ हो जाते है दृष्टिमाद्य दूर होता है तथा नष्ट हुई चक्षु भी ठीक हो जाती है। एक मास तक लगातार प्रयोग किया जाय तो बलिपलित विकार भी दूर हो जाता है—

—यो र और वृ मा

पलको के विकार पर—इसके रस मे रुई भिगो छाया शुष्क कर, वत्ती बना मीठे तेल मे जला कर काजल तयार करे। इसमें थोडा फुलाया हुआ सफेदा मिलाकर पलको के भीतर लगाते हैं।

नोट—आख की फूली पर इसकी जड का प्रयोग आगे देखें।

शूल पर—

शिर शूल पर—इसके पत्र रस को सिर पर मेलने तथा उसकी २-२ बून्दे नासिका मे टपकाने से शीघ्र लाभ होता है।

वातज शिर शूल हो तो इसके स्वरस के साथ (२०-२० तोला) धत्तूर पत्र स्वरस और आक के पीले पत्तो का स्वरस एकत्र कर उसमे लाल गुञ्जा (घुघची) ५ तोला, मालकागनी ५ तोला, कुचला २॥ तोला एकत्र ३० तोला जल के साथ पीसकर किया हुआ कल्क और २० तोला तिल तेल मिलाकर मन्द आग पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे पीडित स्थान पर मर्दन करने से प्राय सर्व प्रकार की वातजन्य पीडा विशेषत सिर दर्द मे लाभ होता है।

पित्तज सिर दर्द हो तो इसके १ सेर स्वरस मे लाल गुजा ५ तोला के कल्क को १ सेर जल मे घोलकर मिलावे और २० तोला तिल तेल मिला, मन्द आग पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे माथे पर मर्दन करने तथा इसकी नस्य देने मे लाभ होता है। यह तेल ऊर्ध्वजत्रुगत प्राय सर्व विकारो मे हितकारी है।

कोष्ठबद्धता या रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) के बढने से यदि शीर्षशूल हो तो प्रथम रोगी को स्नेहन देकर २ या ४ बार इसका रस पिलाने से उत्तम लाभ होता है। यदि इसके साथ शिलाजीत का प्रयोग किया जाय तो विशेष लाभ होता हे।

आधाशीशी (सूर्यावर्त) पर—इसके साथ समभाग बकरी का दूध मिलाकर धूप मे रख देवे। गरम हो जाने पर इसकी नस्य लेवे। साथ ही साथ इसके रस मे कालीमिर्च को पीसकर सिर पर लेप करें। तथा इसके रसमे समभाग गौदुग्ध मिला सूर्योदय के पूर्व ही पिलावे। यह सब क्रिया सूर्योदय से पूर्व ही होनी चाहिए। केवल नस्य की क्रिया सूर्योदय के बाद करावे।

नोट—हारीत सहिता ग्रन्थ का भृङ्गराज तेल (जिसमे कटुतुम्बी का रस, दशमूल क्वाथ आदि पडते हैं) भयकर शिरशूल, भौ का दर्द, नेत्र पीडा आदि पर उत्तम उपयोगी है। आगे विशिष्ट प्रयोग देखो।

उदरशूल पर—इसके १ तोला पत्र के साथ ३ माशा काला नमक थोडे जल मे पीस छानकर सेवन से जीर्ण शूल भी दूर हो जाता हे।

वात शूल (Colic pain) पर—इसके पचाग को जल के साथ खूब महीन पीस छानकर रोगी जितना अधिक

पी सके, कई बार पिलाते है ।

दतशूल (डाढ की पीडा) पर—रोगी की जिस ओर की दाढ मे दर्द हो उससे विपरीत (दाहिनी डाढ मे हो तो बाये और बाये डाढ मे हो तो दाहिने) कान के भीतर इसके स्वरस की २-४ बूदे टपका देने से दर्द तत्काल दूर होता है। यदि एक बार के टपकाने से दर्द दूर न हो तो दुबारा इसी प्रकार करने से अवश्य लाभ होता है ।

कर्ण शूल पर—पत्र रस को गरम कर थोडा तेल मिला कान मे डालने से लाभ होता है ।

नोट—योनिशूल पर—आगे मूल के प्रयोग देखो ।

भ्रम (चक्कर आना—वात प्रकोप से चक्कर आते हो, घर बार घूमता हुआ मालूम पडे, बिस्तरे पर शाति से लेटने पर भी मालूम पडे कि खुद चक्कर खा रहे है, ऐसी दशा मे इसके १ तोला रस मे नारियल का दूध ५ तोला और मिश्री ३ माशा मिलाकर सेवन करे। २-३ बार के सेवन से भ्रम आदि विकार दूर हो जाते हैं। इस प्रयोग से वातजन्य सर दर्द भी शात होजाता है।

शोथ पर—अण्डकोष मे सूजन हो तो इसके पचाग या पत्रो को पीस टिकिया बनाकर बाधने से शीघ्र लाभ होता है ।

जतु विष जन्यशोथ शरीर के किसी भी भाग मे हो तो इसके रस को मसलने से दूर हो जाती है ।

—सकलित

(६) स्वरभेद पीनस, कुष्ठ, विसर्प, छाजन, अपरस कण्डू और पाददारी पर—

स्वरभेद पर—इसके स्वरस द्वारा सिद्ध किये हुए घी का, (या स्वरस को घी मे जलाये हुए घी का) सेवन कराने मे कठ शुद्ध होकर स्वरभग दूर हो जाता है।

पीनस (Coryza) पर—इसका स्वरस और काले तिल का तेल १०-१० तोला तथा सेंधा नमक १ तोला एकत्र कर मद आग पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इस तैल की कुछ बूंदे (लगभग १० बूद तक) दिन मे २ बार नाक के दोनो नथुनो मे टपकाने (नस्य देने) मे अन्दर का दूषित कफ तथा कृमि बाहर निकलकर थोडे ही दिनो मे यह रोग नष्ट हो जाता है ।

पथ्य मे—गेहू की रोटी और मूङ्ग की दाल देवे ।

कुष्ठ पर—भागरे को लोह पात्र में तेल के साथ भून या सेक कर प्रति दिन प्रात खाने से तथा ऊपर से विजयसार की छाल का चूर्ण डालकर पकाया हुआ दूध पीते रहने मे २-३ मास मे जीर्ण श्वेत कुष्ठ भी दूर हो जाता है। लेपार्थ—इसकी जड के साथ हरड वृक्ष की जड समभाग, मिट्टी के पात्र मे बन्द कर जलावे। इस भस्म को काजी मे पीस कर लेप करे। —वृ नि र

गजचर्म कुष्ठ पर—इसके कोमल पौधो को सिल पर महीन पीस कर इस लुगदी को चौगुने तिल तेल मे पका लेवे। इस तेल की मालिश करे।

विसर्प पर—इसकी जड और हल्दी को ताजे जल मे पीस कर लगातार लेप करते रहने से लाभ होता है।

छाजन पर—इसके रस को तुलसी पत्र स्वरस के साथ मिलाकर लगाते हैं।

कडु (खाज, खुजली) पर—शरीर मे खुजली हो खुजाने से समाधान न होता हो तथा खुजाने के बाद बारीक फुसिया उठ आवे या शरीर मे फुलके की तरह खाल निकले, ऐसी अवस्था मे इसके रस मे कालीमिर्च का थोडा चूर्ण मिला खुजली के स्थान पर अच्छी तरह मलने से शीघ्र ही लाभ होता है। —अथवा

ऊपर शिर शूल के प्रयोगो मे जो पित्तज शूल पर प्रयोग दिया गया है उसके लगाते रहने से कडु, कुष्ठ और शिर दर्द पर भी लाभ होता है । अथवा—

इसके पत्ते और जवासा १-१ तोला, चिरायता व सरफोका ६-६ माशा इनको १० तोला जल मे पीस, छान कर उसमे २ तोला शहद मिला प्रतिदिन ७ दिन तक सेवन करने से शरीर की सूखी या गीली खुजली दूर होती है। शरीर स्वस्थ (आरोग्य) रहता है । फुसियो के स्थान पर इसका लेप करें। अथवा निम्न मरहम का प्रयोग करे।

पारा और सादा गन्धक १-१ तोला की कज्जली कर उसमे आमाहल्दी, अजवायन, हिंगुल १-१ तोला और तूतिया (नीलाथोथा) ३ माशा इनका महीन चूर्ण व गुड १ तोला मिला, उसमे गोघृत १० तोला मिलाकर खूब घोटें; साथही भागरे का रस १० तोला थोडा-थोडा

मिलाते जावें। सब एक दिल हो जाने पर शीशी मे रख लें। इसे खाज पर लगाने मे शीघ्र लाभ होता है।

अपरस (यह त्वग्रोग हाथो की हथेली व पैरो के तलुओ मे होता है, कुछ खुजली होती तथा ऊपर की त्वचा निकलती है।) पर—

इसके ५ तोला स्वरस मे तूतिया ६ माशा मिलाकर गोघृत मे पकाकर मालिश करते हैं।

पाददारी (विवाई) पर—इसके रस को तैल मे मिलाकर लगाते है। —सकलित।

(७) वातज विकार, मेद रोग, श्लीपद, रोहिणी, कठमाला और अर्श पर—

वातज विकार धनुर्वात पर—इसका स्वरस १ तोला, गूमा (द्रोण पुष्पी) का रस ३ माशा, निर्गुण्डी का रस १ तोला, अदरख का रस २ तोला तथा अगस्त के पत्तो का रस २ तोला सबको एकत्र कर, उसमे सबसे चौगुना नारियल का दूध मिला और थोडे से चावल (लग भग २ तोला) और गुड मिला कर मन्द आच पर खीर पकावें। इसी प्रकार प्रात साय बनाकर सेवन करें। यदि इस प्रयोग के सेवन से बेचैनी मालूम हो तो प्याज को भूनकर थोडा घृत मिला खा लेवे।

नोट—कोष्ठस्थ वात दोष जन्य हिस्टीरिया, अपस्मार आदि मे भी इस प्रयोग के सेवन से वातवाहिनियो का क्षोभ नष्ट होकर लाभ होता है।

मासपेशियो मे खिचाव—जिसमे शीत के लगने, अम्ल द्रव्य का अधिक सेवन करने या अन्य कारणो से वात प्रकोप होकर पेशियो मे वाइटे आने लगते हैं। अति वेदना होती है। यदि रोगी सोया हो तो ऐसी अवस्था मे तुरन्त उठकर पीडित स्थान को मसलने लगता है। उसे इसके रस और शहद ४-४ माशा के साथ शुद्ध हिंगुल ½ रत्ती मिलाकर देवे। १-१ घण्टे पर २-३ बार देने से लाभ हो जाता है। यदि यह विकार केवल शीत के लगने से हुआ हो तो थोडा सेककर गरम कपडा ओढा देना चाहिये। —गा औ र.

मेद रोग पर—बादी से शरीर मोटा हो गया हो, अत्यधिक स्थूलता आ गई हो, चमडी मोटी हो गई हो, तो इसके स्वरस को प्रतिदिन रात्रि मे सोने समय सर्व शरीर पर मसलते हुये सुखा देवे। इस प्रकार ४ या ६ मास तक लगातार करते रहने से शरीर की बढी हुई चर्बी तथा उसके कारण स्थान-स्थान पर उभरी हुई गाठें विलीन होकर त्वचा पतली तथा शरीर फुर्तीला होता है।

श्लीपद पर—इसके पचाङ्ग की लुगदी को मीठे तेल मे मिलाकर मालिश करते है।

रोहिणी (Diphtheria बाघी) यह बडा भयकर रोग है। तत्काल ही चिकित्सा करने पर शात होता है। अन्यथा पाश्चात्य चिकित्सा करनी पडती है। अत रोग के प्रारम्भ मे ही इसके १ तोला स्वरसमे समभाग गो घी तथा चतुर्थांश असली जवाखार मिलाकर पकावें। जब खूब खौल जाय तब पिलावे इस प्रकार दो-दो घण्टे पर बार-बार पिलाने से बाघी शात होती है। —चिकित्सादर्श

कठमाला पर—इसके पत्तो को पीस टिकिया बना घी मे पकाकर कठमाला की गाठो पर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

अर्श पर—इसके पत्र ५ तोला और कालीमिर्चे ६ माशा दोनो को खूब महीन पीसकर छोटे बेर जैसी गोलिया बना छाया शुष्ककर रखें। प्रात साय १ या २ गोली जल के साथ सेवन करने से वातज अर्श मे शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—इसके पत्र ३ माशा व कालीमिर्चे ५ माशा दोनो का महीन चूर्ण ताजे जल से दोनो समय प्रयोग करने से ७ दिन मे ही आशातीत लाभ प्रतीत होता है। घी दुग्ध अधिक सेवन करें। लालमिर्च आदि का परहेज करे। —सकलित

अथवा—इसके रस मे गेहू का आटा सानकर गो घी मे पूडी बनाकर मट्ठे मे भिगोकर खावे। ऊपर से १-२ मूली खिलावे। शीघ्र ही लाभ होता है।

—वैद्य नगेन्द्रनाथ दीक्षित आ भिषक् व्यवस्थापक 'आ सन्देश' लखनऊ।

अर्श के मस्सो पर इसके पत्तो का बफारा दोनो समय

देते रहने से विशेष लाभ होता है।

(८) व्रण, भगदर, उपदश तथा प्रमेह पिडिका पर–

व्रणो पर—दूषित या दुष्ट व्रणो पर इसके रस का व्रणपट्ट (व्यान्डेज) बाधने से उनका उत्तम शोधन व रोपण होकर वे शीघ्र सुधर जाते है। व्रण का रोपण हो जाने पर इसी के रस का लेप करते रहने से उसका दूषित दाग नही रहने पाता।

बलाय (चिप्प)—हाथ, अगूठे या उगली मे जो व्रण होता है जिसे देहात में बलाय या घिनही कहते हैं। इस पर इसे पीसकर मोटा लेप करे तथा उसपर किसी तरह पानी न पडने देवे। जलन मिटेगी, पीडा बन्द होगी तथा वह फूटकर भीतर की गाठ निकलकर घाव अच्छा हो जावेगा।

अग्निदग्ध व्रण पर—इसके पत्रो को मेहदी और मरवा के पत्तो के साथ पीसकर लेप करने से दाह नष्ट होकर शीघ्र शोधन व रोपण होता है तथा नवीन आने वाली त्वचा शरीर के वर्ण की होती है।

जब उक्त व्रण कुछ ठीक होने पर आवे तब इसका पत्र रस २ भाग और काली तुलसी पत्र रस १ भाग, दोनो एकत्र मिला दिन मे २-३ बार लगाते रहने से, उस स्थान पर श्वेत दाग नही पडने पाते।

मुख मे व्रण, छाले या मुखपाक पर-इसके पत्ते आधा तोला मुख मे रखकर चबाये तथा लार को बार बार थूकते जावें। इस प्रकार दिन मे कई बार करने से शीघ्र लाभ होता है।

श्लीपद या फीलपाव के व्रणो पर—इसके पचाग को खूब महीन पीसकर तिल तेल मे मिला गाढा लेप करने से लाभ होता है।

भगन्दर पर–इसे पीसकर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधते रहने से थोडे ही दिनो मे भगन्दर शुद्ध होकर भर जाता है।

उपदश पर—इसका चूर्ण ३ भाग तथा कालीमिर्च चूर्ण १ भाग दोनो एकत्र भागरे के ही स्वरस से खरल कर १-१ माशा की गोलिया बना रखें। प्रात सायं १-१ गोली सेवन करावें।

अथवा—इसके १ तोला स्वरस मे २ नग कालीमिर्च का चूर्ण मिला, प्रात साय १०,१४ या २१ दिन तक सेवन करायें। पथ्य में गोदुग्ध, गेहू की रोटी और शक्कर देवें। उपदशादि विकार दूर होकर रक्तशुद्धि होती है।

उपदश के व्रणो को इनके पत्र स्वरस के साथ चमेली पत्र का स्वरस मिलाकर धोवें और इसीका लेप करे। या केवल इसी के पत्र स्वरस से धोकर इसीका लेप करें। शीघ्र लाभ होता है। अथवा—

इसके चूर्ण के साथ हरड, बहेडा, आवला, दन्तीमूल, ताम्र चूर्ण और लोह चूर्ण सब समभाग लेकर खूब महीन पीसकर इसके स्वरस मे घोटा२ मिलाकर लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता है। —भा. भै र

अथवा- धूम्रपान–इसका पञ्चाग ८ तो॰ शुद्ध हिंगुल १ तोला, माजूफल २ तोला और आक की जड की छाल ४ तोला इनको लोह खरल मे एकत्र विना जल के खूब खरल करें। इसके पञ्चाग मे जलीयाश होने से कुटाई करते करते पिंड सा बन जावेगा, इसमे से २ माशा की मात्रा मे, चिलम मे रख तमाखू की तरह सुलगाकर धूम्र पान करे। यह योग ताजा ही लाभ करता है। इससे उपदश में आश्चर्यजनक लाभ होता है। पथ्य में चने के बेसन की रोटी केवल घृत या मक्खन से खानी चाहिये। —आचार्य चन्द्रशेखर जी गौड़

प्रमेह पिडिका पर–इसके १ भाग रस मे तुलसी पत्र, श्वेत सेम [निष्पावक] के पत्र और पटोल पत्र १-१ भाग का चूर्ण मिलाकर तथा काजी मे पीस, लेप करने से वातज प्रमेह पिडिका नष्ट होती है। —हा स।

पित्तज मेह पर–इसका चूर्ण और बबूल फूल चूर्ण १-१ भाग मे मिश्री २ भाग मिला ६ माशा की मात्रा मे बकरी के दूध से सेवन करें।

[९] बल वीर्य वृद्धि, दीर्घायु, बाजीकरण एव रसायनार्थ–

ज्वरादि रोग जनित या प्रौढावस्था की निर्बलता को दूर कर शारीरिक शक्ति बढाने के लिये–इसके पत्रो का



चूर्ण १½ तोला की मात्रा मे प्रतिदिन घृत, शहद और शक्कर मिलाकर १ वर्ष तक लेते रहने से बल वीर्य की वृद्धि होती तथा बुद्धि व स्मरण शक्ति भी बढ जाती है।

दीर्घायु के लिये– इसका रस नित्य प्रात १ मास तक सेवन करने से और केवल दूध पर रहने से वलवीर्य युक्त होकर मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता है

—गा औ. र

बाजीकरणार्थ [कामदीपक रस]–१ तोला शुद्ध गंधक के बारीक चावल जैसे टुकडे कर उन्हे ७ दिन तक धूप मे इसके रस की भावना देवें। फिर उसमे जायफल, जावित्री, कपूर और लौंग का दो-दो माशा चूर्ण मिलाकर गुड के साथ घोटकर १ से २ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

प्रति दिन प्रात सूर्य की बन्दना के पश्चात् १ या २ गोली खाकर थोडा सेंधानमक तथा ७ कालीमिर्च चबाकर १० तोला दूध पीवे। इस प्रयोग से बूढा भी युवा के समान हो जाता है।

—भा भै र

नोट–इस रसायन के लिये प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

(१०) गर्भस्राव या गर्भपात तथा रक्तस्राव पर– गर्भवती स्त्री को इसके ४ माशा स्वरस मे समभाग गौदुग्ध मिला नित्य प्रात पिलाते रहने से अकाल मे ही इसका गर्भस्राव या गर्भपात नही होने पाता।

–वै भ

रक्तस्राव, मूत्र मार्ग या योनि से होते रहने की शिकायत हो तो इसके पत्रो का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर मात्रा २½ से ५ तोला तक, प्रात साय सेवन करने से लाभ होता है। रक्त प्रदर मे भी इस प्रयोग से लाभ होता है।

(११) विषो पर—

पारे के विष पर—कच्चा पारा खाने मे आगया हो तो इसके २ भाग रस मे अगस्त (हथिया) के पत्तो का रस और कलमी सोरा १-१ भाग मिलाकर सबको तक्र या दूध जल की लस्सी मे मिला ४-४ तोला की मात्रा मे दिन मे कई बार अथवा प्रतिदिन [प्रात १ वार ३ दिन तक पिलाने से पारा मूत्र मार्ग से निकल जाता है।

जमालगोटा (जैंपाल) के विकार पर–इसके स्वरस को पिलाने से लाभ होता है। जमालगोटे की शुद्धि के लिये उसे इसके रस मे खूब खरल करने से उसका दूषित विकार निकलकर यह परम शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार इसके रस द्वारा शुद्ध किये हुए जैंपाल को चाहे किसी भी प्रयोग मे लिया जाय, कदापि पेट मे ऐंठन वगैरा तक्लीफो को नही करेगा।

गधक के विकारो पर भी इसके रस को पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। गधक मे इसके रस की भावनायें देने से वह परम शुद्ध होकर रसायन कार्य के योग्य हो जाता है।

बिच्छू के विष पर इसके पत्तो को पीसकर बिच्छू के डक की जगह पर जितने भाग मे सूजन आगई हो या जहा तक वेदना फैल गई हो वहा तक खूब अच्छी तरह मसलने से फैली हुई वेदना डक स्थान मे केन्द्रीभूत हो जाती है। फिर उसी स्थान पर अच्छी तरह मसल कर पत्तो की लुगदी को बाध देने से उस स्थान से भी वेदना निकल जाती है। साथ ही साथ इसके रस को नाक मे टपकाना भी चाहिये।

मूल–भागरे की जड वामक, रेचक, दाहशामक, शोथ प्रशमन, ज्वरघ्न, तथा रसायन है। इसे मूत्रदाह निवारणार्थ उपयोग मे लाते है।

कोथ (सडान) दूर करने के लिये इसका बाह्य प्रलेप व्रणादि पर करते हैं। उदर विकार निवारणार्थ इसे पेट पर बांधते है।

(१२) गुदभ्रंश पर—इसकी जड और हल्दी के चूर्ण को एकत्र पीस कर लेप करते रहने से वाराह दंष्ट्र (गुदभ्रंश रोग का एक भेद) नष्ट होता है। —भा प्र

(१३) ज्वर पर—जड २ माशा, अदरख १ माशा दोनो को पीस कर उसमे ५ तोला तक जल मिला गरम कर पिलाते है। शीत ज्वर दूर होता है।

चातुर्थिक ज्वर हो तो जड को पुष्प नक्षत्र मे लाकर



बाधते है। प्रति तीन दिन के बाद ज्वर के दिन ही प्राय बाधते है।

(१४) आमातिसार पर—छाया शुष्क मूल का चूर्ण १ माशा की मात्रा मे, विकार तेज हो तो २-२ घण्टे पर ३-४ बार जल के साथ देने से तथा विकार मन्द हो तो दिन मे ३ बार देने से शूल सहित इस विकार मे लाभ होता है। —गा औ र

(१५) योनिशूल पर—प्रसव के बाद गर्भाशय मे या योनि प्रदेश मे शूल होने लगे तो इसकी जड के चूर्ण को समभाग बेल की जड की छाल के चूर्ण के साथ मद्य (शराब) मिलाकर उचित मात्रा मे देने से शीघ्र ही शूल शमन हो जाता है। —व से

(१६) आख की फुली पर—(अञ्जन)—जड की छाल को छायाशुष्क कर खूब महीन चूर्ण करलें। यह चूर्ण ६ माशा, काला सुरमा १ तोला, सिरस के बीजो की मीग १ तोला, हाथी के नाखून ३ माशा, कपर्द भस्म ६ माशा, हरा तूतिया भुना हुआ १ माशा और गोद बबूल ३ माशा, सब के चूर्ण को एकत्र सिरस के रस मे ८ दिन खरल कर कुछ उत्तम शहद मिला वत्तिया बना लेवे। इसे जल मे घिस कर आख मे अजन करे। फुली के लिये यह लाभकारी है।

—वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा

(१७) रसायनार्थ—(रसायन के लिये काला भागरा लेना उत्तम होता है)। अभाव मे श्वेत या पीला भी काम मे लिया जा सकता है। इसकी जड को पुष्प नक्षत्र मे लाकर सूर्य के ताप मे सुखाकर कपडछन चूर्ण करें। यह चूर्ण पुष्प नक्षत्र का सूर्य हो उस दिन १ तोला की मात्रा मे काजी के साथ सेवन से रोग प्राप्ति नही होती है। तैल के साथ सेवन से वृद्धावस्था नही आती। १ महीने तक सेवन से सब रोग दूर हो जाते हैं। २ मास तक सेवन से खूब स्मरणशक्ति बढती है। ४ मास सेवन करने पर कठ किन्नर के समान हो जाता है। ६ मास सेवन करने पर व्यवहार और परमार्थ दोनो सुधारने की शक्ति आ जाती है। ७ वें मास मे नख व केश गलकर नये आजाते हैं। ९ मास तक सेवन से प्राणिमात्र मे आत्मभाव आता है। १० मास होने पर अकालमृत्यु की चिंता दूर होती है। १ वर्ष तक सेवन करके मनुष्य दीर्घायु बन जाता है। इसके सेवन काल मे कद्दू, करेला, धनिया और राई से परहेज करें।

—व गु

बीज—भागरे के बीज वाजीकरण है। इनका प्रयोग काम शक्ति वर्धनार्थ किया जाता है।

नोट-मात्रा—स्वरस अच्छी तरह छाना हुआ ताजा स्वरस १ से २ ड्राम [६० बूद से १२० तक]। इसका रस निकालकर कुछ देर तक कलईदार पात्र मे रखने से उस पर जो फेन आता है उसे निकाल डालना चाहिये। पात्र को हिलाना नही। बाद पात्र के रस को धीरे धीरे दूसरे पात्र मे निकालकर नीचे की गाद को फेंक दें। यही रस उपयोग मे लावे। इसकी मात्रा अधिक हो जाने से वमन होता है। बालको को इसकी १ या २ बूद शहद के साथ देवें।

पत्र चूर्ण ४ से १५ रत्ती। बीज चूर्ण १ से ३ माशा तक। ध्यान रहे उबालने से या क्वाथ करने से इसका गुण नष्ट हो जाता है। अत जहा तक हो सके इसके स्वरस का ही उपयोग करें। इसका चूर्ण भी विशेष गुणकारी नही होता तथापि रसायनार्थ चूर्ण लिया जाता है।

उष्ण प्रकृति के लिए यह हानिकारक है हानिनिवारक कालीमिर्च, शहद, अदरख हैं। प्रतिनिधि बिनोला है।

विशिष्ट प्रयोग—

[१] रसायनार्थ—वमन, विरेचन से शुद्ध होकर निम्न प्रयोगो का सेवन करें—

[अ] इसकी पत्ती को छायाशुष्क कर कपड छान चूर्ण बना शीशी मे सुरक्षित रखे। मात्रा—लगभग १ माशा घी ६ माशा और मिश्री ५ माशा एकत्र मिला [यह १ मात्रा है] नित्य सेवन से क्षुधा वृद्धि होती, दस्त साफ आता तथा चित्त प्रसन्न रहता है। यह प्रयोग लगातार ४० दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन से शरीर हृष्ट पुष्ट होकर बुद्धि भी बढ जाती है।

[आ] उक्त प्रकार से तैयार किया हुआ पत्र चूर्ण १ भाग, काले तिल का चूर्ण आधा भाग तथा आमला चूर्ण आधा भाग, तीनो को एकत्र मिला, सबके बराबर मिश्री [या गुड] मिला कर, घी के चिकने मृत्पात्र मे

सुरक्षित रखे। मात्रा—१-१ तोला प्रात साय गौ दुग्ध के साथ सेवन से कोई रोग नही होता, अकाल मृत्यु और वृद्धावस्था का विशेष भय नही रहता। इस योग को 'भृङ्गराजादि चूर्ण' कहा गया है। स्व कविराज प्रतापसिंह जी का कथन है कि आश्विन शुक्ल पक्ष मे साधारण शरीर को शोधन कर इसे प्रात खाकर ऊपर से २० तोला दूध पीवे। ४ घटे तक कुछ न खावें। फिर यथेष्ट मात्रा मे भोजन करें। रात्रि मे सोते समय पुन इसे लेकर उतना ही दूध पीवें। कोई विशेष पथ्य की आवश्यकता नही। निरतर ३ मास के सेवन से ही शरीर मे परिवर्तन अनुभव होने लगता है। कामशक्ति जागृत होती है। यदि नियमित व सयमित जीवन की विधियो का पालन करे तो १ वर्ष मे शरीर तरोताजा हो जाता है।

—भा भै र

[इ] उक्त पत्र चूर्ण मे समभाग केवल काले तिल का चूर्ण मिलाकर रखे। इसे कम से कम १ मास तक सेवन करने तथा केवल दूध पर ही रहने मे मनुष्य रोग रहित एव दीर्घ जीवी हो जाता है तथा उसके केश भौरे के समान काले हो जाते है। —वृ मा

[ई] अथवा छायाशुष्क किया हुआ इसका पचाग और त्रिफला समभाग का महीन चूर्ण कर उसमे चूर्ण के समभाग मिश्री मिला, नित्य १ तोला की मात्रा मे सेवन मे अकालमृत्यु और वृद्धावस्था के कष्ट नही उठाने पडते।

—भा भै र

अथवा—सबसे उत्तम प्रयोग ये है—

[उ] शारीरिक शुद्धि हो जाने के बाद १ तोला ताजे हरे पचाग को थोडे जल के साथ घोट छानकर लगभग १ से ५ तोला तक रस निकाल कर प्रात सूर्य के सामने खडा होकर पी लेवें। ४-५ घण्टे तक कुछ भी न खावे। बाद मे केवल शक्कर मिला हुआ दूध पीवें। इस प्रकार १ मास तक निरतर नित्य इसका सेवन कर, फिर धीरे स्वल्प प्रमाण से सात्विक भोजन करे। शरीर मे नवीन शक्ति का सचार तथा बल वर्ण युक्त दीर्घायु प्राप्त होती है, जीर्ण सुजाक समूल नष्ट होता है। —वृ मा

नोट—उक्त रस निकालने के बाद जो फुजला शेष रहे उसे पुन पानी मे पीसकर सर पर थोप ले। सूखने पर धोकर स्नान करलें। चूर्ण का सयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मुनिवृत्ति का जीवन, औषधि सेवन काल मे व्यतीत करे। अथवा—

[ऊ] इसके छाया शुष्क पचागके चूर्ण को इसके रस की २१ भावनायें देकर शुष्क होजाने के बाद उसमे दशवा भाग निम्न द्रव्यो का चूर्ण मिला ले। श्वेत चन्दन का बुरादा, वशलोचन, छोटी व बडी इलायची, पिप्पली, सोठ, मीठी वच, नागकेशर, मुलैठी, अकरकरा और लाजवती के बीज सबको समभाग महीन चूर्ण कर एकत्र मिला ले। मात्रा—आधा से १ तोला तक प्रात साय मिश्री मिले हुए बकरी के दूध के साथ सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात नष्ट होकर शरीर मे नूतन स्फूर्ति होती है। पथ्य परहेज से रहे।

—बूटी चित्राक से

[ए] इसके छाया शुष्क पचाग के २ सेर खूब महीन किये हुए चूर्ण मे आवले का चूर्ण और काले तिल का चूर्ण १-१ सेर मिला शीशी मे सुरक्षित रखे। प्रति दिन प्रात १। तोला चूर्ण मे समान भाग गुड अथवा दुगनी शक्कर मिला थोडा थोडा मुख मे डालकर दूध के साथ निरन्तर १ वर्ष तक सेवन से शरीर निरोग रहता है। वृद्धावस्था व अकाल मृत्यु का भय नही रहता। यह प्रयोग प्रमेह व मूत्राविकार को भी दूर करता है। —भा ज. बू

(२) कल्प प्रयोग—ऊपर जो इसकी जड का योग रसायनार्थ न० १७ मे दिया गया है, वह तथा विशिष्ट योग न० ७ के प्रयोग सब प्राय कल्प प्रयोग ही है। अन्य कल्प प्रयोग इस प्रकार है—

[अ] भृगराज कल्प—इसके बीजो को बोकर त्रिफले के क्वाथ से सीचने से जो इसके पौधे पैदा होंगे, वे अत्यन्त कोमल होंगे। प्रतिदिन प्रात उसके कोमल पत्तो [कोपलो] को [मुट्ठी मे आ सकें उतने] लेकर थोडे मे तिलो को साथ मिलाकर चबावे। और ऊपर मे दो चुल्लू सभालू का रस, बिना गर्म किये हुये ही पी जावे पश्चात् सुपारी और इलायची आदि सुगन्धित पदार्थ युक्त पान

का बीडा लेवे । इसके ६ घण्टे बाद दूध, भात, खाड, मूग की दाल और घी युक्त भोजन करे । अन्य कोई चीज न खावे । इस प्रकार ६ मास तक सेवन से वृद्ध मनुष्य के केश भी कोमल एव निर्मल हो जाते है । शरीर नवीन, अत्यन्त कातिमान तथा दात सुदृढ हो जाते है ।

—र चि म

[आ] भागरा, पिप्पली, पनवाड बीज, चित्रकमूल, शतावर, कृष्ण हरीतकी, आमला, बहेडा, सोठ और गुड प्रत्येक ३० तोला सबको बारीक कर, गुड का पाककर चूर्ण मिला १-१ तोला की ३०० वटी बनावें । सावन भादो के मास से प्रारम्भ कर १-१ वटी प्रात सेवन करें । यह माजून वृद्धो को युवक तथा युवको को बलवान बनाती है ।

इस योग को यूनानी मे माजून भागरा [काया कल्प] कहा गया है ।

—यू चि सा

(३) भृंगराजादि तैल [अ] इसका स्वरस २५६ तोला, ब्राह्मी स्वरस ६४ तोला, आवले का रस ६४ तोला, तिल तैल १२८ तोला तथा त्रिफला, नागरमोथा, कचूर, लोध, मजीठ, बावची, खरेंटी की जड, चन्दन, पदमाख, अनन्तमूल, मडूर [कच्चा लौह किट्ट], मेहदी, प्रियगु, मुलैठी, जटामासी और कूठ प्रत्येक १-१ तोला इनका कल्क मिला, सबको एकत्र तैल पाक विधि से पका, छान कर रख लेवें । यह तैल नित्य सिर पर लगाने मे बाल बढते तथा सिर का दर्द, बाल श्वेत होना और झडना ये विकार अच्छे होते हैं । स्वस्थ स्त्री पुरुष को नित्य सिर मे लगाने के लिये यह तैल उत्तम है ।

—सिद्ध योग सग्रह

[आ] इसका रस ४ सेर, गुडहल [जपा] पुष्पो का रस आधा सेर, शुद्ध तिल तैल एक सेर तथा दूध दो सेर एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे । पकाते समय उसमे इसका [भागरे का] कल्क २० तोला तक मिला देवे । तैल मात्र शेष रहने पर, छानकर उसमे गन्ध विरोजासत, तगर, दवना मरुवा और पानडी का महीन चूर्ण दो-दो मिला, बोतलो मे भर मुख अच्छी तरह बन्दकर, कुछ दिनो तक धूप मे रखें । यह तेल सुगन्धित एव उत्तम गुण कारी होता है । इसे लगाते रहने से बाल काले होते, झडते हुये बाल फिर से जमते तथा वे लम्बे व मुलायम होते हैं ।

[इ] इसका रस, अदरख का रस और गोमूत्र २-२ सेर लेकर प्रथम दशमूल (समान भाग मिश्रित), कुलथी, सूखी मूली, सहजने की छाल व भारगी २०-२० तोला सब को जौकुट कर ८ सेर जल मे पका, २ सेर शेष रहने पर छान लें । फिर देवदारु, वच, कूट, सोया, सेंधा-काला-विड नमक, हीग, नेपाली धनिया [तुम्बरु], त्रिकुट, अजवायन, श्वेत व काला जीरा, चित्रक, पीपलामूल, त्रिफला भागरा, कायफल समभाग मिश्रित २० तोला का कल्क बनाकर दो सेर सरसो के तेल मे इस कल्क को तथा उक्त क्वाथ और रसादि द्रव पदार्थ मिलाकर पकावें । तेल मात्र शेष रहने पर छान लें । इसे पान एव नस्य द्वारा सेवन से वात कफज कास, श्वास, प्रतिश्याय, पीनस तथा अन्य कफज रोग नष्ट होते है ।

—भा भै र

[ई] इसका रस कडवी तूबी का रस, वस्त्र से छनी हुई स्वच्छ सौवीरक काजी, * दशमूल का क्वाथ, उर्द का क्वाथ, कुलथी का क्वाथ, और बकरी का दही २-२ सेर तथा तिल तेल एक सेर एकत्र मिला मन्द आग पर पकावें । तेल मात्र शेष रहने पर छान लें ।

इसकी मालिश करे, कान मे डालें, किंतु पिलाना नही और न वस्ति कर्म मे प्रयुक्त करे । यह तेल कर्णरोग भयकर शिरशूल, आधी शीशी, भौंह का दर्द, कनपटी व आखो की पीडा, कुष्ठ, पामा, त्वग्रोग और भयकर अपस्मार का नाशक है ।

—हा स०

* गेहूँ अथवा जव भिगोकर छिलका निकाल कूटकर ८ घुने जल में पका, सन्धान विधि से बन्द करें । शरद व ग्रीष्म में ६ दिनो में, वसत व वर्षा में ८ दिनो में तथा हिम व शिशिर में १० दिनो सन्धान सिद्ध होकर जो काजी तैयार होती है उसे सौवीरक कहते हैं । यह ग्रहणी अर्श व कफ विकारो में लाभकारी है । मल भेदक, अग्नि प्रदीपक तथा उदावर्त्त, अङ्गमर्द, अस्थिशूल, आनाह, शिरो रोग व शिथिलता नाशक है । केशो को हितकारी, बल

[उ]इसके १० सेर रस मे एक सेर तेल मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान लें। इसके यथोचित मात्रा मे सेवन से काम और श्वास मे लाभ होता है। —ब से

[ऊ] इसके १ सेर स्वरस मे तिल तेल २० तोला तथा मण्डूर चूर्ण, त्रिफला, व सारिवा (अनन्त मूल) प्रत्येक १-१ तोला (कुल ५ तोला) का कल्क मिलाकर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले। यह तेल सिर का दारुणक [शिर से भूसी झडना] असमय मे केशो का पकना, सिर की खुजली, और इन्द्रलुप्त (सिर के बालो का गिरना खल्वाट या गजापन Alopecia) रोगो को नष्ट करता है। —शार्ङ्गधर

[ए] इसके २ सेर रस मे मुलैठी का कल्क ५ तोला और तिल तेल आधा सेर मिलाकर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें।यह तैल नेत्रो को शीघ्र ही स्वच्छ कर देता है। दृष्टि को बढाता तथा इसकी नस्य लेने से १ मास मे बलि पलित का अवश्य नाश होता है, बाल पकने नही पाते। —ब से

नोट—योग रत्नाकर मे इस प्रयोग मे दूध २ सेर मिलाकर तेल सिद्ध किया गया है और कहा गया है कि यह नष्ट हुई चक्षु को भी ठीक कर देता है।

[ऐ] जल प्राय स्थान मे [आनूपदेशज] उत्पन्न हुआ उत्तम पुष्ट भागरे का रस ८ सेर मे २ सेर तिल तेल तथा मजीठ, पद्माख, लोध, लालचन्दन या श्वेत चन्दन, गेरु, खरेटी, हल्दी, दारुहल्दी,नागकेशर, प्रियगु मुलेठी, पुण्डरिया काष्ठ, श्यामालता(या कमल)४-४ तो के एकत्र कल्क (दूध मे पीसकर बनाये हुये कल्क) को मिला पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले। इस तेल के नस्य तथा मर्दन करने मे केशपात [बालो का गिरना] शिरो रोग, मन्यास्तभ, गलग्रह, कर्ण रोग, नेत्र रोग आदि व्याधिया नष्ट होती है। इसके प्रयोग से खालित्य (गञ्जापन) एव इन्द्र लुप्त भी नष्ट होकर स्निग्ध, घने एव घुघराले बाल पुन. निकल आते है। इस प्रयोग को महाभृङ्गराज तेल भी कहते ह। —भै र

नोट—ध्यान रहे शास्त्रो मे इन तेलो की जो महिमा कही गई है वह व्यर्थ कपोल कल्पित नही हे। किंतु इनके बाह्य प्रयोगो से ही वह सिद्ध नही होती। भागरे का पथ्यापथ्यपूर्वक एव नियमपूर्वक, सयम के साथ आभ्यतर सेवन की भी आवश्यकता है। यह हमारा खास अनुभव है —सम्पादक

(४) भृङ्गराज घृत—भागरा, गिलोय, अडूसा दशमूल की प्रत्येक औषधि व कसौंधी समभाग मिश्रित ४ सेर जौकुटकर ३२ सेर जल मे पकावे। ८ सेर शेष रहने पर छान ले। उसमे २० तोला पिप्पली का कल्क और दो सेर घृत मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले। इस घृत को शहद के साथ सेवन से स्वरभेद और कास मे लाभ होता है —च द

(५) षड्बिंदु तेल—भागरे का रस ६ सेर ३२ तोला, बकरी का दुग्ध व काले तिलो का तेल प्रत्येक १ सेर ४८ तोला तथा एरण्ड की जड, तगर, सोया, जीवती, रास्ना, सेधा नमक, दालचीनी, वायविडङ्ग, मुलेठी व सौंठ समभाग मिश्रित ३२ तो का कल्क कर सबको एकत्र पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले इसकी ६ बूदे नित्यप्रति नासिका मे डालने (नस्य लेने) से समस्त शिरोरोग शीघ्र नष्ट होते, बालो का गिरना नष्ट होकर उनकी जडे मजबूत होती, दात दृढ होजाते है। दृष्टि तीव्र होती और बाहुओ का बल बढता है। —भै र

(६) रसमडूर—शुद्ध पारा २ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला दोनो की कज्जली कर लोहखरल मे उसे डालकर उसमे हरड चूर्ण १६ तोला, मण्डूर भस्म ८ तोला मिला भागरे का रस १२८ तोला थोडा-थोडा डालते हुये घोटते तथा धूप मे सुखाते रहे। सब रस शुष्क हो जाने पर शीशी मे सुरक्षित रखें। मात्रा एक माशा प्रात साय घृत ३ माशा व शहद १ तोला के साथ सेवन से तथा पथ्य मे केवल दूध भात लेते रहने से कफ पित्तज रोग उदर शूल, परिणाम शूल, अम्ल पित्त, ग्रहणी विकार उग्र कामला,यकृत व प्लीहा वृद्धि का नाश होता है। —भै र.

इस याग मे श्वेत तथा काले भागरे दोनो का रस डालना ठीक होता है। अभाव मे श्वेत भागरे से ही काम चल सकता है, अश्वचोली रस मे भी इसके रस की ७ भावनाये देने से यह विशेष प्रभावकारी होता है।

—सम्पादक

भृङ्गराजासव–भागरे के स्वरस १३ सेर मे १ सेर गुड और साढे ६ छटाक हरड का चूर्ण मिला चिकने मटके मे भर अच्छीतरह मुख बन्दकर रख दें। १५ दिन बाद छानकर उसमे पिप्पली, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नाग केशर का चूर्ण ८-८ तोला मिलाकर पुन. मटके मे भर मुख बन्द कर देवें और १५ दिन बाद निकाल छान बोतलो मे भर लेवे।

मात्रा—१ से ढाई तोला तक। भोजनोपरात यह धातु क्षय, सर्व प्रकार की खामी व कृशता नाशक अत्यत बलकारक एव कामोद्दीपक है। इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री को सन्तान होती है। क्षय के रोगीको इसकेसेवन सेपेशाव मे धातु का जाना शीघ्र बन्द होता है। यह आसव सुस्ती, निर्बलता, २० प्रकार के प्रमेह, स्मरण शक्ति की कमी, नेत्र रोग, श्वास, नजले के कारण होने वाला नेत्र विकार आदि रोगो को दूर करता तथा बिगडे हुए रक्त को सुधारता है।

—ग नि

भाट–देखिये-सोयाबीज। भाटा–देखिये-बेगन।

भाटिया [Dalbergia volubilis]

अपराजिता कुल [Papilionaceae] की इस बडी जाति के झाडी के पत्र १०-१५ से मी तक लम्बे, अधिक चमकदार होते हैं। इसे बनखारा म –अलई, बन्दीगरजन और कुमायू की ओर भाटिया कहते हैं। यह हिमालय के कुमायूं प्रान्त के पूर्व की ओर तथा मध्य और दक्षिण भारत मे, कोकण मे अधिक होती है।

गुण धर्म व प्रयोग--

बलवीर्य, स्नेहन व व्रण रोपण है। जीभ के छाले फोडे, गले के फोडे व मसूढ़ो की सूजन पर इसके रस के कुल्ले कराते है। छाल को चबाया जाता है। नूतन सुजाक मे जड का रस २ तोला मिश्री के साथ देते हे। पत्तो का रस मुख क्षत पर लगाते है।

भारद्वाजी–देखो-कपास मे। भाभिरग–देखो-वायविडङ्ग मे। भारग मूल—देखो भारगी मे।
भिरचागन्ध–देखो-रूसा घास।

भाटी (Fluegga Leucopyrus)

एरण्डकुल (Euphorbiaecae) के इस के क्षुप ३-६ फुट ऊचे, खडी व आडी कई शाखायुक्त, अलग-बिखरी हुई टहनिया त्रिकोणाकार पतली पत्तियो से भरी हुई, पत्र-चौडाई लिये हुए गोल, १ ६ से २ ५ सेन्टीमीटर तक लम्बे तथा १ ३ से १ ६ तक चौडे, फूल–गुच्छेदार, पत्रकोण से पुष्प के सूक्ष्म श्वेत गुच्छे निकलते हैं। फल-गोल पकने पर श्वेत मोती जैसे रस भरे, चिकने, त्रिकोष्ठ-युक्त प्रत्येक कोष्ठ मे २ बीज १/८ इन्च लम्बे, गहरे भूरे रङ्ग के चमकीले होते है।

इसे पाटली भी कहते हैं।

नाम–

स०—कपियद्रुम, भूरिफल, पाडुफली,श्वेत कम्बोज। म०—पाढरफली। गु०—शेणवी। प०—भाटी, गार्गस, गिर्यान, काकुन, बनूथी। हि०—पाटली। ले०—फ्लुइगा ल्युकोपास।

यह बूटी पजाब, सिंध, सीलोन, वर्मा आदि प्रातो मे पाई जाती है।



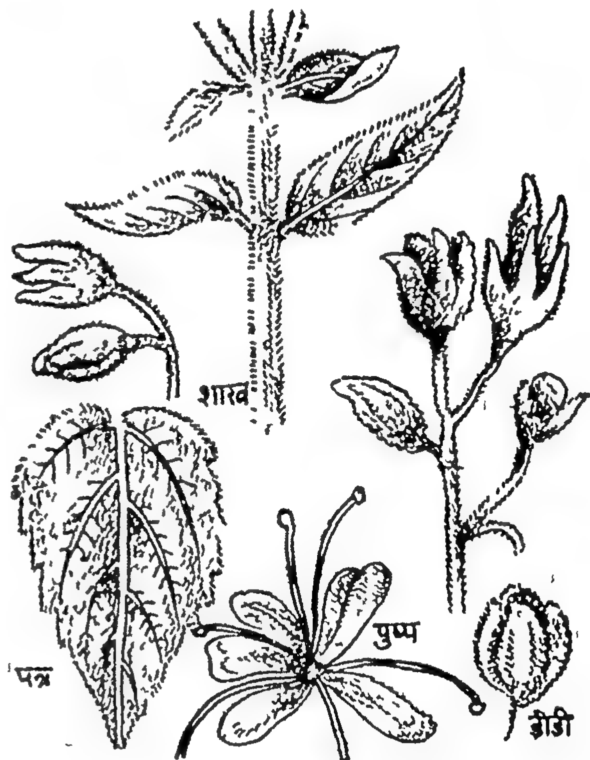
गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, बलकारक, वीर्यवर्धक, शीतल तथा मूत्राघात, पित्तरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त विकार आदि नाशक है। इसका पत्र रस अथवा पत्ती को तमाखू के साथ पीसकर तैयर किया हुआ लेप, कुष्ठ युक्त घावो पर लगाते है। यह बूटी। मछलियो के लिये विष है।

भांट (Clerodendron Infortunatum)

निर्गुण्डी कुल (Verbenacea) के इसके ३-४ फुट मे १२ फुट तक ऊचे क्षुप झाडीदार प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते हैं। इसका प्रत्येक भाग कटु व दुर्गन्धयुक्त होता है। पत्र—विपरीत ४-६ इच लम्बे, ३-६ इच चौडे; लट्वाकार, दोनो ओर रोमश, कटी हुई किनारे के, लम्बी नोक एव लम्बी पत्रनाल से युक्त, बाह्य पृष्ठ भाग स्थाई वर्धनशील व लाल तथा आभ्यन्तर भाग रक्ताभ श्वेत होता है। फूल-श्वेत, लम्बे, सुगन्धित, पत्र के मूल भाग से निकलते हैं।

औषधिकार्यार्थ प्राय पत्र व मूल का प्रयोग किया जाता है।



नाम—

म०—कारी, मन्दिरा। हि०—कारु, घटो, थुनेग, म०—करि, मन्दिरा; ब० भाट, घेंटु, प०—वरंगु, कलीबतुती तथा ले०—क्लोरोडेन्ड्रान इन्फार्चुनेटम कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटुपौष्टिक, उत्तम आनुलोमिक, पित्त सारघ्न, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, तृतीयक व चातुर्थिक ज्वर मे लाभदायक है। इसके गुणधर्म प्राय चिरायता जैसे है।

बालको के प्राय लम्बे कृमि (केंचुए जैसे) रोग मे इसके पत्ररस को पिलाते हैं। उदरशूल व अतिसार मे जड को तक्र मे पीसकर पिलाते है। त्वचा के रोगो मे (खुजली मे) इसका बाह्य त्वचा पर प्रयोग करते है। बालको को पत्र-चूर्ण २ से ५ रत्ती तक शहद व सुगधित द्रव्यो के साथ देते है।

इस बूटी के क्षुप प्राय शाल वनो मे, मध्य प्रदेश व सीलोन मे पाये जाते हे।

भाड—देखो—भडा।

भांवर (Ipomoea Hispida)

त्रिवृत्त कुल (Convulaceae) की इस बूटी के पौधे निशोथ के पौधे जैसे प्राय समस्त भारत व सीलोन मे पैदा होते हैं।

नाम—

इसे पजाब की ओर भावर, हरनखुरी उत्तर प्रदेश मे हारा तथा ले०—इपोमिया, हिस्पिडा कहते हैं।



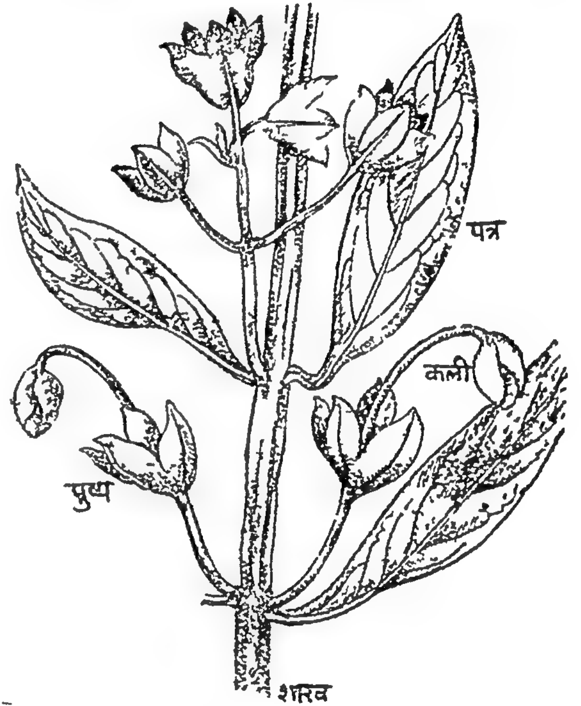
गुण धर्म व प्रयोग–

इसके पचाग को पीसकर तेल मे पकाकर सधिवात, गलित कुष्ठ, व्रण, मृगी, व मस्तक शूल पर लगाने से लाभ होता है।

भारंगी (Clerodendron serratum)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस वहु वर्षायु ५-८ फुट ऊचे शाखा रहित या अत्यल्प शाखायुक्त (जो शाखाये होती हैं,वे चौपहल पीले रङ्ग की होती है), पत्र–७-८ इञ्च लम्बे,लम्बगोल १-२ इच चौडे,नौकदार, रूक्ष, तीक्ष्ण, ऊपर की ओर कुछ काले धब्बो से युक्त, पिछला भाग सूक्ष्म रोमश , पत्र-वृन्त–छोटा अतिदृढ, पुष्प–अग्र-भाग पर गुच्छो मे, वाह्य रूप मे अति सुन्दर दो शाखावाली शिथिल मजरी मे, पुष्प दल ½ से १½ इच लम्बे। पुष्प वाह्य कोप प्याली के आकार का छोटे ३ खण्डयुक्त अन्तर-कोप–हल्का नीला, पुष्प नलिका लगभग आधा इच लम्बी। फल–गोल कडा, पकने पर नारङ्गी रङ्ग का,कुछ रसदार पुष्प काल–मई से अगस्त तक प्राय ग्रीष्म मे फूल व वर्षा मे फल आते है। मूल या जड ग्रन्थियुक्त होती है जो औषधि प्रयोग मे विशेप आती है।

इसके क्षुप हिमालय की तराई मे नेपाल, कुमाऊ, खासिया पहाड और आसाम तक तथा व्रह्मा, नीलगिरी, पश्चिमघाट, दक्षिण भारत व सीलोन मे अधिक पाये जाते है।



नोट न० १—इस वूटी के विपय मे कुछ मत भेद है। अधिकाश विद्वान तो प्रस्तुत प्रसग की भारगी को ही शास्त्रीय भारङ्गी मानते हैं। किंतु इसी नाम से निम्नाकित ३ बूटिया भी व्यवहृत होती हैं। ध्यान रहे प्राय वाजारो मे इसी शास्त्रीय भारगी के नाम से जो मोटी-मोटी छाल विकती है, वह इसकी छाल नही है। कारण इस छोटे से क्षुप की छाल इतनी मोटी नही हो सकती। मालूम होता है यह छाल निम्न नोट न १ करुई-तिथाई (भारगी) की है, जो इससे भिन्न कुल की है।

[I] भारगी न २—**Premna Herbacea** प्रस्तुत प्रसग की भारगी के ही कुल के ३-८ फुट तक ऊचे इस अनेक शाखायुक्त क्षुप के काण्ड चतुष्कोणाकृति, पत्र-अभिमुख ९ इच लम्बे ४॥ इच चौडे, दन्तुर, प्राय ३-३ पत्र एक साथ, रूक्ष व भगुर, पुष्प—वडे वडे गुच्छो मे गहरे लाल या कुछ नीले रग के, मूल (जड)-भूरे रग की टेढी मेढी, लगभग १ इच मोटी, छाल पतली, गधरहित स्वाद मे कुछ कडुवी होती है।

इसके क्षुप हिमालय व दक्षिण मे कोकण की पहाडी प्रदेशो मे वर्षाकाल मे पैदा होते है। कोकण की ओर इसके जड की छाल ही औषधि कार्यो मे भारंगी के नाम से विशेष व्यवहृत होती है।

नाम–

स—भूमि जम्बूक, भारंगी। हि०—भारंगी।



म०—गण्तु भारगी। गु०—भारगी। ब०—भुइजाय, वामन हाटी। ले०—प्रेम्ना हरबेसिया।

रासायनिक संगठन–

जड की छाल मे एक नारगी रग की अम्ल राल तथा अत्यल्प मात्रा मे एक क्षाराभ एव स्टार्च पाया जाता है। इसमे टेनिन नही होता।

गुणधर्म व प्रयोग–

दक्षिण मे यद्यपि भारगी के नाम से इसका व्यवहार होता है तथापि इसमे भारगी के यथार्थ गुण नही है। डा० देसाई लिखते हैं कि इसका उपयोग करके देखा गया है। इसमे असली भारगी के गुण नही मालूम पडे। प्रतिश्याय आदि कफ विकारो मे इसका उपयोग किया जाता है। तमक श्वास मे इसका कल्क, सोठ तथा उष्ण जल के साथ या जड को अदरख के स्वरस या उष्ण जल के साथ देते हैं।

जड उत्तेजक,धातुपरिवर्तक, दीपक, कटुपौष्टिक तथा कफ विकृति, यकृत विकृति, श्वास, कास, ज्वरादि मे प्रयुक्त होती है।

पत्र–धातुपरिवर्त्तक, ज्वर,कफ, सधिवात मे दिये जाते हैं। व्रणो को पकाने के लिये पत्तो की पुल्टिस बाधते है।

II भारगी–चिंगारी, ब्रह्मयष्ठा Clerodendron Siphoneohthus।

उक्त असली भारगी के ही कुल की इस खडे, ४ से १३ फुट तक ऊचे, छोटी शाखायुक्त क्षुप के काण्ड पोले, कुछ रसमय, पत्र—रचना मे चक्राकार, प्रति चक्र मे ३ से ५ तक, ६-९ इच लम्बे, १-१½ इच, लम्ब गोल, पतले कुछ कडे, भालाकार, छोटी नोक युक्त, सकरे, अखड या तरगदार किनारे वाले चिकने, पुष्प—शिथिल मजरी मे प्राय ३-३ एक साथ, आधा इच व्यास के, ३-५ इच लम्बे श्वेत, पुष्प–दल लम्बे,रेखाकार, पुष्पाभ्यन्तर नलिका ३-५ इच लम्बी,मुडी हुई, अति कोमल, फल—आधा अच व्यास के पकने पर गहरे नीलाभ हरित या गहरे लाल वर्ण के हो जाते हैं।

पुष्प—पूस, फुवार्इ में तथा फल–अगस्त सितम्बर में आते हैं।

इसके क्षुप बगाल, विहार, कुमाऊं, सिक्किम व आसाम से तेनासरिम तक तथा दक्षिण मे महाराष्ट्र कर्णाटक, मद्रास के पश्चिम घाट मे अधिक पाये जाते है। बागो मे ये सजावट के लिये लगाये जाते है। वगाल मे यह विशेष प्रचलित है। इसके क्षुपो मे एक प्रकार का गोद निकलता है।

नाम–

स—ब्रह्मयष्ठी, ब्राह्मणी। हि–चिंगारी भारगी, अर्नाह, दवाए मुबरक। म—भारगी। व.—वामन हाट्टी वमनोटी। ले—क्लेरोडेडान सिफोनान्थिस, सिफोनेन्थस इडिका (Siphonanthus Indica)।

गुणधर्म व प्रयोग–

गुणधर्म साधारणत असली (प्रस्तुत प्रसग की भारगी के जैसे ही है। जड–कास, श्वास और कठमाला मे उपयोगी है। इसका गोद उपदश जन्य सधिवात पर प्रयुक्त होता हैं। रोगो से बचने के लिये इसके काण्ड के पोले टुकडो को, वगाल की ओर गले मे, बाधा जाता है। राजयक्ष्मा मे जड का कल्क और सोठ चूर्ण को उष्ण जल से पिलाया जाता है। मास क्षय वाले बालक को जड के कल्क व क्वाथ से सिद्ध किये हुये तेल की मालिश करते है। छत्तेदार फुसियो के नाशार्थ कोमल पत्र व डालियो का निचोडा हुआ रस घृत मे मिलाकर लगाते है।

भारगी न० ४ करुई तिथाई Picrasma Quassi Benn।

इगुदीकुल (Simarubaceae) के इस बडे, अल्प किन्तु मजबूत प्राय श्वेत दागो से युक्त शाखा वाले क्षुप की छाल बहुत कडवी, पत्र—अयुग्म पक्षाकार, ६-१५ लम्बे, अरलू वृक्ष के पत्तो के समान, रक्त रोमश, पत्रक सख्या मे ९-१४ अभिलट्वाकार, आरा जैसे, अग्रभाग में लम्बे, सबसे नीचे के पत्रक बहुत छोटे, पुष्प—हलके हरे रग के गुच्छो मे, फल—बहुत छोटे पकने पर काले रग एक बीज युक्त होते हे।

इसके क्षुप हिमालय के बाहरी भाग मे चिनाब से

लेकर पूर्व की ओर ३ से ७ हजार फुट की ऊचाई पर तथा चम्बा, कुल्लू, बशहर, उत्तरी गढवाल मे ६ से ८ हजार फुट की ऊचाई पर एव नेपाल, भूटान एव आसाम मे खासी व नागा पहाडियो पर पाये जाते है।

इस क्षुप के काण्ड के टुकडो का व्यवहार बगाल मे भारगी नाम से किया जाता है। वे टुकडे पीताभ श्वेत या चमकीले पीले रग के, हलके, लचीले, सहज मे ही मे टूटने वाले, गन्धहीन और स्वाद मे अत्यन्त कडवे होते है। यह एलोपैथी की क्वाशिया नामक वनस्पति की उत्तम प्रतिनिधि है।

नाम–

हि —करूई-तिथाई, भारगी। म —करशिंग। प — तिथु, वेरिंग, पुथोरिन। द —भूरूगी। अ —क्वसिया (Quassia)। ले —पिक्रेस्मा क्वसिओइडिसे।

रासायनिक संगठन–

इसमे पिक्रस्मिन (Pirasmin) के सदृश एक क्षाराभ ०.०५%, क्वासिन (Quassin) नामक कड़ुवा पदार्थ तथा अन्य प्रभावशील एव क्लोरोफार्म मे घुलनशील कड़ुवा पदार्थ ०.१५% पाया जाता है।

गुण, धर्म और प्रयोग–

भारगी- रूखी, चरपरी, कडवी, रुचिकारी, गरम, पाचक, हल्की, अग्नि को प्रदीप्त करने वाली, कषैली, गुल्म, रुधिर विकार, सूजन, कास, श्वास, पीनस, ज्वर तथा वात विनाशक है। —भा नि

भारगी को कृमि और दाह नाशक विशेष बतलाया है (रा नि) और भी इसके वात ज्वर, हिक्का, गुल्म, ज्वर, वातरक्त, क्षय तथा पीनस नाशक गुण धन्वन्तरि निघण्टु मे लिखे हैं।

पत्तो के गुण—ज्वर, हिक्का, दाह और त्रिदोष नाशक लिखे हैं। यह रस मे तिक्त और कटु है। गुण मे दीपन, रूक्ष और [नि र] लघु है। वीर्य मे उष्ण तथा विपाक मे कटु है। वात कफ दोषो की शामक और फुफ्फुस पर इसका प्रभाव है। खास करके ये प्रतिश्याय, यक्ष्मा, कास, पीनस, वात कफ, ज्वर, नेत्र रोग, जलोदर और गलगण्ड नाशक है।

यूनानी मत से—

यह वनस्पति गरम और खुश्क होती है। यह सूजन को उतारती है। भूख बढाती है। कच्चे दोषो को पका कर निकाल देती है। सूजन, खासी, कफ के उपद्रव और कफ से होने वाले ज्वर को आराम करती है। सास की तगी को दूर करती है। योनि के दर्द और पेट के दर्द से होने वाले ज्वर को भी यह दूर करती है। दर्पनाशक इसका दर्पनाशक इमली का सत या इमली का निर्यास है।

इसके चूर्ण की मात्रा डेढ से चार माशे है। अनुपान जल, मधु और अदरक का रस है।

प्रयोग–

१ ज्वर और जुकाम—भारगी की जड का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर या जुकाम मिटता है।

२ नेत्र रोग—इसके पत्तो को तेल मे औटाकर लगाने से आख के पलको की सूजन मिटजाती है और गीडो का आना बन्द हो जातहै।

३ दमा और खासी—भारगी मूल त्वक और सोठ को समान भाग लेकर बनाया गया चूर्ण ३ माशे की मात्रा मे गरम जल के साथ बार-बार लेने से दमा और खासी मे लाभ होता है।

(च चि अ २१-२२)

४ श्वास का दौरा—भारगी के मूल का कपडछन चूर्ण ३-३ माशा आध२ घण्टे पर २-३ वार शहद के साथ देने पर घवराहट का ह्रास हो जाता है।

५ हिक्का—भारगी मूल का चूर्ण ३-३ माशे आवश्यकतानुसार दिन मे ४-६ वार शहद के साथ चटाने पर हिक्का निवृत हो जाती है।

६. रक्त गुल्म [कुरण्ड]—स्त्रियो के गर्भाशय मे होने



वाला गुल्म बहुत न बढा हो तो भारगी, पीपल, करज की छाल, पिप्पलामूल और देवदार को समभाग मिलाकर चूर्ण बनावे। इसमे से ४-४ माशे चूर्ण तिल के क्वाथ के साथ दिन मे दो बार देते रहने से रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है।

७ वृद्धि रोग—भारगी की जड की छाल यव के पानी मे पीसकर गरम करके अण्डकोप की सूजन पर लगाने से अवश्य मिटती है। —बङ्गसेन

विशिष्ट योग--

भार्ग्यादि क्वाथ १—भारगी मूल त्वक्, हर्र, वच, नागरमोथा, हल्दी, मुलैठी और पित्त पापडे का क्वाथ पित्त कफ ज्वर को नष्ट करता है —भा भै र

भार्ग्यादि क्वाथ २—भारगी, गिलोय, मोथा, देवदारु, कटैरी, सौंठ, पीपल और पोखरमूल का क्वाथ पीने से श्वास और ज्वर नष्ट होने है तथा क्षुधा और अग्नि की वृद्धि होती है। —भा भै र

भार्ग्यादि क्वाथ ३—भारगी, मोथा, पित्त-पापडा, पोखरमूल, सौंठ, हर्र, पीपल,और दशमूल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ विषम ज्वर, सन्निपात, जीर्ण ज्वर, शोथ शीत और अग्नि माद्य को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ४—भारगी, सोठ, कटेरी, कुलथी और मूली समान भाग लेकर क्वाथ बना लीजिये।

इस क्वाथ मे पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से खासी और श्वास का नाश होता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ५—भारगी, पित्तपापडा, सोठ, बासा, पीपल, चिरायता, नीम की छाल, गिलोय, नागरमोथा और धामन वृक्ष की छाल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर विपम ज्वर और उपद्रवयुक्त भयकर ज्वरादि समस्त ज्वरो को नष्ट करता है। यदि इस केवल दो दिन ही सेवन कर लिया जाय तो रोगी यमराज के फन्दे से छूट जाता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ६—भारगी, मोथा, पित्तपापडा धमासा, सोठ, चिरायता, कूट, पीपल, कटेरी, और गिलोय समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ जीर्णज्वर, सतत, सन्तत, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ७—भारगी, पोखरमूल, हर्र, कटेरी, सोठ और गिलोय समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ तन्द्रिक सन्निपात को अवश्य नष्ट कर देता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ८—भारगी, अरणी, पोखर-मूल, कटेरी, सोठ, मिर्च, पीपल, जगली जमीकद, काकडा सिंगी, कुटकी और रास्ना समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ कर्णक सन्निपात को अवश्य नष्ट कर देता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ९—भारगी, पोखरमूल, रास्ना बेल की छाल, अजवायन, सोठ, दशमूल और पीपल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

इसके सेवन से सन्निपात ज्वर,हृदय और पसली का शूल, आनाह, खासी, श्वास, अग्नि मांद्य और तद्रा नष्ट होती है।

भार्ग्यादि क्वथ १०—भारगी और गज पीपल का मन्दोष्ण क्वाथ पीने से कफ, खासी, प्रतिश्याय, श्वास और हृद्रोग नष्ट होता है।

भार्ग्यादि गण—भारगी, पोखरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखुरू, बडी कटेरी, कर्णिनी, सोठ समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ कफ पित्तज ज्वर, हृल्लास, अरुचि, छर्दि तृष्णा, दाह और विबध को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि चूर्णम् १—भारगी, सोठ और पीपल का चूर्ण १-१ भाग लेकर उसे ३ भाग गुड मे मिलावे।

यह चूर्ण श्वास और खासी को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि चूर्णम् २—भारगी, काकडासिगी, चव्य, तालीम पत्र, कालीमिर्च और पीपला मूल १०-१० तोले, सोठ ३० तोले, पीपल और गज पीपल १०-१० तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर और

खस ५-५ तोले और सफेद [illegible] २० तोले लेकर यथा विधि चूर्ण बनावे ।

यह चूर्ण आठ प्रकार के ज्वर, भयकर खासी, श्वास, शोथ, शूल, उदर रोग, आध्मान और त्रिदोष को नष्ट करता है । मात्रा-३ से ८ माशे ।

भार्ग्यादि योग—भारगी, रास्ना और काकडा सिंगी के चूर्ण को शहद मे मिला कर चटाने से वातकी की खासी और श्वास का नाश होता है ।

भार्गीगुडावलेह—भारगी की जड ६। सेर, दशमूल ६। सेर और हर्र १०० नग (१सेर) लेकर भारगी, और दशमूल को अधकुटा करलें और हर्रों को कपडे की पोटली मे बाधले एव सबको एकत्र मिलाकर १०० सेर पानी मे पकावे २७ सेर पानी शेष रहने पर हर्रों को अलग निकाल ले तथा क्वाथ को छान लें ।

इस क्वाथ मे ६। सेर गुड मिला छानें और फिर उसमे उपरोक्त हर्र डालकर पुन पकावें । जब लेह के समान गाढा हो जाय तो अग्नि से नीचे उतार लें और ठण्डा होने पर उसमे ६० तोले शहद तथा पाच-पाच तोले सोठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण तथा २॥ तोला जवाखार मिलाकर चिकने पात्र मे भरकर रख दे ।

इसमे से नित्य प्रति १ हर्र और २॥ तोला अवलेह खाने से भयकर श्वास और ५ प्रकार की खाँसी नष्ट होती तथा स्वर वर्ण और जठराग्नि की वृद्धि होती है ।

२३ भार्ग्यादि लेह—भारगी, मुलैठी का चूर्ण, शहद और घी मे मिलाकर चाटने से श्वास नष्ट होता है ।

२४ भार्ग्यादि लेह—भारगी, मुनक्का, कचूर, काकडा-सिंगी, पीपल, सोठ के समान भाग मिश्रित चूर्ण को गुड और [illegible] मे मिलाकर चाटने से [illegible] खासी नष्ट होती है ।

२५ भार्ग्यावलेह—भारगी, हर्र, [illegible] और कटेरी एक-एक सेर लेकर सबको [illegible] सेर पानी मे पकावे और ८ सेर पानी शेष रहने पर छानकर [illegible] सेर गुड मिलाकर पुन पकावें । जब वह गाढा [illegible] उतारकर ठण्डा करलें । तत्पश्चात् [illegible] तोला [illegible] और [illegible] २॥ तोले पीपल, जायफल, [illegible], मुलैठी, लौंग, वंशलोचन और [illegible] का चूर्ण मिलाकर [illegible] पात्र मे भर कर रख दें ।

२६ भार्ग्यादि [illegible]—रास्ना, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, चीता और [illegible] पाव-पाव तोले लेकर पीस लें ।

क्वाथ—दशमूल की प्रत्येक वस्तु अश्वगन्ध और भारगी समान भाग मिश्रित १॥ सेर लेकर सबको अध-कुटा करके [illegible] सेर पानी मे पकावें और तीन सेर पानी शेष रहने पर छान लें ।

विधि—दो सेर घी, उपरोक्त [illegible] तथा क्वाथ और दो सेर दूध तथा तीन सेर दही एकत्र मिलाकर पकावें और घृत मात्र शेष रहने पर छान लें ।

यह घी गुल्म, उदर रोग, अरुचि, भगदर, अग्निमान्द्य, खासी, ज्वर, क्षय, शिरो रोग, ग्रहणी विकार और वात-कफज रोगों को नष्ट करता है ।

२७ भार्ग्यादि घृतम्—भारगी का क्वाथ ८ सेर, घी ४सेर, दही १६ सेर और भारगी का कल्क आधा सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावें । जब घी मात्र शेष रह जाय तो छान ले ।

इसे सेवन करने से वातज खासी नष्ट होती है ।

भिण्डी*

यह एक वर्ष जीवी शाक वर्ग एव कार्पासादि कुल (Malvaceac) का पौधा है जो समस्त भारत

* यह श्री त्रिवेदी जी का आखिरी लेख है । जिस समय पर वह मृत्यु शय्या पर पडे थे उस समय उन्होने इसे बोलकर लिखाया था । इससे पूर्व की वनौषधि भारगी में आधा उन्होने स्वय लिखा था तथा "गुणधर्म प्रयोगादि" से आगे श्री उदयलाल जी महातमा का लिखा हुआ है । इस "भिण्डी" के प्रकरण से आगे सभी वनौषधियो का विवेचन श्री उदयलाल जी महातमा द्वारा किया गया है ।
—सम्पादक

वर्ष मे पैदा होता है, मुश्कदाना वा लताकस्तूरी इसका ही एक भेद है।

नाम—

इसे स —भेडा, भिंडा, करपर्णफल, भिंडिनिका आदि हि —भिडी,भेंडा,रामतुरई,लिलिविखा आदि। ब —ढेडश, भेनुरस। गु —भिंड, भिंडा। म —भेंडा। त —वेंडाई तै —बेंडा। फा —वामिया। अ —लेडीज फिंगर (Lady's Finger) और ले —हिबिस्कस एस्क्यूलेटस (Hibiscus Esculentus) कहते हैं।

पहिचान—इसका पौधा प्राय ४ फुट तक ऊचा होता है। पत्र दतुर, चमकीले, प्राय कपास के पत्र जैसे, पुष्प—श्वेत वर्ण के कहीं कहीं लालामीयुक्त पीतवर्ण के होते है। फल—६ इच से ९ इच तक लम्बे, ½ इच से १ इच तक ६ या ८ पहल मे चौडे होते हैं। जो नोक की तरफ क्रमश पतले नुकीले होते जाते हैं। कोई कोई पौधे व फल रोमश भी होते हैं।

नोट नं० १—वनभेंडी नाम का एक दूसरा पौधा होता है जो एक प्रकार का सन का पौधा है। इसके पत्ते, फूल, फल आदि भिंडी के समान ही होते हैं। इसे बन भिण्डी भी कहते है। —आयु० वि० कोप खड ३

नोट न० २—रान भेडी (जगली भिडी)—इसका पौधा महाराष्ट्र, गोवा, सावतबाडी मे अधिकतर पाया जाता है। लैटिन मे इसे Urena cobeta [युरेना कोवेटा] कहते हैं इसका उपयोग स्थानिक जनता पौष्टिक द्रव्य के समान बिशेषकर प्रमेहरोग पर करती है।—व०गु०भाग ५

नोट न० ३—बचेटा नाम का एक पौधा और होता है जिसे सस्कृत व मराठी मे बनभेडा,काठियाबाड मे स्वर्ण भिंडी तथा लैटिन मे युरेना लोबेटा [Urena Lobeta] कहते हैं। इसका पौधा बरसात के दिनो मे घास के साथ पैदा होता है जो १ से २ फुट तक ऊचे फूल गुलाबी रग के और फल ५ खाने वाले होते हैं जिन पर टेढी नौक वाले काटे होते हैं। इसे सधिवात, उदरशूल आदि पर प्रयोग करते हैं। —व० च० भाग७

नोट न० ४—लोटलोटी नामक उक्त बचेटा जैसेगुण धर्मों वाला १॥ से २ फुट ऊचा एक पौधा और पाया जाता है जिसे लैटिन मे युरेना सिन्यूएटा [Urena Sinuata] कहते है। इसके पत्र ५ कोने वाले और फूल फीके गुलाबी रग के होते है। इसे काठियावाड मे वगडाऊ भिडो कहते है। इसका उपयोग कटिवात, आतो और मूत्राशय की सूजन पर किया जाता है। —व० च० भाग ९

नोट न० ५—माखनियो भिडो—इसका पौधा २ से ६ फुट तक ऊचा भिंडी के समान पत्र-पुष्प-फलयुक्त होता है। इसके पौधे पर मक्खन के समान मुलायम रूये होते है। इसीसे इसका नाम माखनियो भिडोसार्थक जान पडता है। लैटिन मे हिबिस्क्स एन्गूलोसस [Hibiscus Angulosus] कहते है। यह कच्छ मे अधिक होता है। वहा के लोग इसकी शाक बनाकर खाते है और भिडी के समान औषधि रूप मे व्यवहार भी करते है।

प्रयोज्याङ्ग—कच्ची फली, वीज और मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन—

ताजी फली मे विपुल लुवाव, श्वेतसार और अधिकाधिक श्लेष्म नि सारक द्रव्य और सूखी फली मे २% मासल द्रव्य, क्षार मे—यवक्षार और मग्नेशिया तथा सूखे बीजो मे २।% शोरा जनक सत्व रहता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे सर्द एव तर।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह चिकनी, लुआवदार,पौष्टिक,कोमोद्दीपक,आनाहकारक, स्नेहन और मूत्रल होती है। गरम प्रकृति वालो के लिये पेचिस, अन्त्रव्रण, सुजाक और गरम खासी मे लाभदायक है। पेचिस और सुजाक मे इसका लुवाव निकालकर पिलाना गुणकारी है। कोमल भिंडी जिसमे बीज न पडे हो का चूर्ण बनाकर खिलाने से शुक्र प्रमेह तारल्य मे उपकार होता है। इसका काढा मिश्री के साथ देने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, पथरी और सुजाक मे हितकारी है।

दोप—यह खासी, मन्दाग्नि, वात और पीनम रोगी को हानिकारक है।

हानि निवारक—गरम मसाला और अदरख।

मात्रा—औषधि रूप मे ५ से ७ माशे तक।



रोगानुसार विशिष्ट प्रयोग—

१—मूत्रकृच्छ्र—भिंडी और उसके बीजो का चेप निकालकर मिश्री मिला पीने से मूत्रकृच्छ्र की दाह मिटती है।

२ मूत्र और वीर्य की दाह—मूत्र और वीर्य सम्बन्धी अगो की दाह मिटाने के लिये भिंडी और उसके बीजो का शरबत बहुत उपकारी होता है।

३ प्रमेह—भिंडी की सूखी जड के चूर्ण मे मिश्री मिलाकर खाने और कच्ची भिंडी के चूर्ण मे मिश्री मिला दूध के साथ फाकने से लाभ होता है।

४ पुरुषार्थ वृद्धि—भिंडी की जड का पा॰ बनाकर खाने से पुरुषार्थ की वृद्धि होती है।

भिंत गलोडी (Linaria Ram osisissima) wall

जल नीम कुल (Scrophulariaceae) की वनस्पति है। इसके पौधे लताओ की तरह दीवालो पर तथा नदी किनारे उगते हैं। इसकी जड दीवाल के अन्दर रहती है और उससे बहुत सी पतली-पतली शाखायें निकलकर दीवाल के अन्दर फैल जाती हैं। इसके पत्ते छिरेटे (जल जमनी) के पत्तो के मानिंद होते हैं। इसके फूल पीले और फल छोटे-छोटे होते हैं।

नाम—

हिं०—भीत गलोडी। गु०—भीत गलोडी, कानोटी। कच्छी—भित वल, भीत चट्टी। अ०—Toadflax। ले०—लिनेरिया रिमो सिसिमा (Linoria ramosissima wall) है।

गुण, धर्म और प्रयोग—

वाट के मतानुसार यह वनस्पति मधु प्रमेह के ऊपर काम मे ली जाती है और इसके पत्तो को पीसकर फोड़े फु सियो पर बाधते हैं। मुरे के मतानुसार मधु प्रमेह के लिये इस वनस्पति की बहुत प्रशसा है।

भिल्लर (Bischofia Javanica)

यह एरडादि कुल (Euphorbiaceae) का एक बडी जाति का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरी भूरी और मुलायम होती है। इसके पत्ते एक के बाद एक लगते हैं। इसके फल बहुत छोटे होते हैं। इसके फल भूरे तथा काले रग के और मुलायम होते हैं। हर एक फल मे ३-४ चिकने और चमकदार बीज होते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भिल्लर के वृक्ष हिमालय के जगलो मे, दक्षिणी पेनिनसुला, पूर्वी घाट, कोकन, नीलगिरी, छोटा नागपुर, आसाम, अवध, गोरखपुर, बिहार, बङ्गाल, चिटगाव के पास और बरमा के जगलो मे पदा होते हैं।

नाम—

हिं०—भिल्लर, इरुम, पनियाला, पान केन। बबई-बोक। नेपाल—कैंजल। गढवाल—केन कोट सेमला। आसाम—युरियाना। ता०—मदागिर, वेम्बु, टोड़ी। ते०—नालूपूमुष्टी। अ०—व्हिनेगरवुड Vinagar wood ले०—बिसचोफिया जावनिका।

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके पत्तो मे विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा मे रहता है अत इसके पत्तो के रस का पूरण सद्योव्रणो को मिटाने वाला है। व्रणोपचार मे अतिशय लाभकारी है।

भिलावा (Semicarpus Ana cordium Linn)

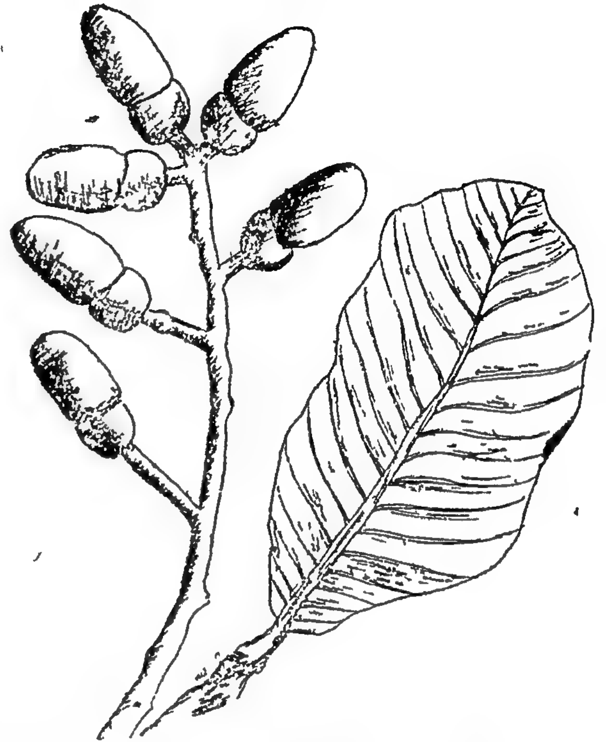
यह हरीतक्यादि वर्ग और भिलावा कुल (Anacardiaceae) के प्रसिद्ध वृक्ष के फल है।

उत्पत्ति स्थान—इसके वृक्ष समस्त भारत के जगली उष्ण भागो मे खास करके निम्न हिमालय, पजाब, देहरादून, विहार मे हजारी बाग, वीरभूमि, बालेश्वर, पार्श्वनाथ पहाड, बङ्गाल, आसाम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि मे होते हैं।

वर्णन—

सेमीकार्पस=भिलावा वाचक ग्रीक शब्द–'सेमियोनकार्पस' परसे जाति सज्ञा। एनेकार्डियम–फल हृदयाकार। मध्यम ऊंचाई का पतनशील पान वाला वृक्ष। ऊंचाई लगभग ३० फीट, इसके पिंड की गोलाई ४ फीट तक होती है। छाल खुरदरी एक इच मोटी धुए के रग की गहरी भूरी। रस तेज (Acrid) नया भाग रुयें दार। पान-अन्तर पर, शाखा के अन्त मे, सादे ८ से २४ इच लम्बे और ५ से १४ इच चौडे, लगभग लम्ब गोल, सारगी के आकार के अखण्ड प्राय· चिमडे, निम्न तल मे रुयेंदार भस्मी धूसर रग के श्वेताभ होते है, पत्र वृन्त-आधा से डेढ इच लम्बा। पुष्प–२ से ३ इच आडाई मे हरा, पीला बहुजातीय, [Polygamous] अर्थात् नर फूल अलग, मादाफूल अलग और नर मादा साथ मे भी। कभी नर मादा पृथक-पृथक [dioclocus]। शाखा के अन्त मे गुच्छो मे लम्बी विभाजित पुष्प रचना पर, लगभग वृन्त रहित। स्त्री पुष्प रचना पुरुष पुष्प रचना से छोटी। पुष्प बाह्य कोष के कोण पर, पखुडी और पुंकेसर ५–५ फल–१ इंच लम्ब गोल सा, सतरे के रंगका मासल फलवृन्ताग्र प्राय फल तुल्याकृति पीला और मीठा होता है अतएव इसे खाते हैं। फल कच्चा होने पर भीतर का रस (तेल) दूध सदृश, पक जाने पर काले रङ्ग का। फूल–मई जून फल–नवम्बर से फरवरी तक। पान रहित वृक्ष–फरवरी से अप्रैल तक। नये पान–मई मे। उपयोगीअङ्ग—पुष्प, फल फलवृन्त, पके फल के साथ रही हुई प्याली (कणिका) कच्ची, सुखाकर और सेक कर खाई जाती है। स्वाद–लगभग मधुर कषैला। फलो के भीतर गिरी (गोडम्बी) रहती है। वह भी खाई जाती है।

इसमे से ३२% तेल भी निकलता है। फलो के भीतर जो विषाक्त, काला तैली रस रहता है, उसका उपयोग धोबी लोग कपडे पर चिन्ह करने मे करते है।



सूचना—पुष्पित वृक्ष के नीचे सोने या अधिक समय तक बैठने, पुष्प पराग के सेवन और भिलावे को उबालने के समय वाष्प लगजाने पर मुह और तमाम शरीर पर सूजन आजाती है।

नाम—

सस्कृत—भल्लातक, अरुष्कर, अग्निमुखी, तैलबीज हिं०—भिलावा, भिलामा, भेला, भिलोरा। बम्बई–बिब्बा भिलामा, बिलावी। ब०–भेला, भेलागाच्छ। गु०–भीलामा। म०बिब्बा (गिरी को गोडम्बी)। नेपाली–भेलाई। आसामी–भीलागुटी। क०–करेबीज। तेलगू–जिडि, चेट्टु, नाला जडि, नल्ड जिडी। ता०—शेन कोट्टाई, तेताकोटे। मल०—चरमारा सोनकोटे। कन्नड-जरकायी। प०–भिला, भिलावा। फा०–भिलादर, बिलादर। अ०—हब्बुल कल्ब, हुब्बुल फहम, समरुल फहम, इर्न्कादिया। कोल–सोसो, औवलिया। अं०-Uarking nut tree। ले०—(Semicarpus Anacardium), सेमेकार्पस एनाकार्डियम।

रासायनिक संगठन–

फल के मगज मे काजू की गिरी के समान पौष्टिक द्रव्य और अनुत्पत्त मीठा तेल और फल के रस मे काला दाहजनक तेल ३२% होता है। यह ईथर मे घुलनशील है ।

गुण, धर्म और प्रयोग–

भिलावे के पके फल—रस मे मधुर, विपाक मधुर, उष्ण वीर्य, लघु, अनुरस कपैला, पाचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, गर्म, कफादि मलो का छेदन करने वाला, भेदन (विरेचन कराने वाला), मेदा वर्धक, रसायन, शुक्रल, केश्य, अग्नि-प्रदीपक और दातो को दृढ करने वाले हैं तथा कफ वात, उदररोग, व्रण, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, शोथ, (वातप्रकोपज या विषज) मलावरोधक, ज्वर, उदर कृमि और कीटाणु विष आदि का नाशक है।

गोडम्बी–मधुर, कामोत्तेजक (वृहण) मास पौष्टिक, दीपक और वातनाशक है ।

कर्णिका (डण्डी)—मधुर, कषाय, वात प्रकोपक, वालो को हितावह, विष्टम्भकारक, दुर्जर, रक्तपित्त प्रकोपक है ।

भिलावा वृक्ष की छाल—रस मे कपैली, उष्णवीर्य, शुक्रवर्धक, मधुर, लघु, वात श्लेष्म प्रकोपक, उदर रोग, मलावरोध, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वित्र (कुष्ठ के श्वेत दाग), अग्निमाद्य, कृमि और व्रण रोग की नाशक है। चरक मुनि ने लिखा है कि–

भिलावा अग्नि के समान तीक्ष्ण और पाचन है। इसका यथाविधि सेवन किया जाय तो यह अमृत सदृश लाभ पहुचाता है। कफ प्रकोपज ऐसा कोई रोग नही है तथा मलावरोधज वातावरोधज भी ऐसा कोई रोग नही है कि जिसे भिलावा तुरन्त दूर नही कर सके। यह बुद्धिवर्धक और अग्निप्रदीपक है ।

यूनानी मतानुसार--

प्रकृति—फल का रस चौथे दर्जे मे गरम और खुश्क, मगज–दूसरे दर्जे मे गरम और पहले में खुश्क है । गुण—फल का रस–व्रण कारक, श्वयथु जनक, उष्णता जनन, श्वयथु विलयन, वातानुलोमन, वातनाड़ी बलदायक, बुद्धि-स्मृति वर्धक, इसकी धूनी अर्शांकुरो को सुखाने वाली है; मग्ज (गोडम्बी)–वाजीकर और कफ रोग नाशक, विशेषकर सर्व रोगो मे गुणदायक है ।

सर्पदश पर पछाने लगाकर इसे लगाने से सर्पविष भीतर शोषित होने से रुक जाता है। इसके मग्ज (गिरी) को बाजीकर माजूनो मे डालते हैं । अधिक मात्रा मे उन्मादजनक है। अहितकर—व्रणकारक । निवारक—तिल का तैल और घी। मात्रा—मग्ज-१ माशा ।

डा० वामन देसाई ने लिखा है कि भिलावा तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, चरपरा, दीपन, पाचक, स्वेदल, सारक- यकृदुत्तेजक, मूत्रल, कुष्ठहर, अर्शोहर, कामोत्तेजक, वातनाडियो को उत्तेजक, रक्ताभिसरणवर्धक, कासहर, उत्तेजक श्लेष्म नि सारक, शोथहर, रस ग्रथियों को उत्तेजक, आम नाशक, रक्त मे श्वेताणुवर्धक रसायन है ।

भिलावा रक्त में जल्दी मिल जाता है किन्तु देह में से बाहर अति शनै. शनै निकलता है । पचन यत्र के भीतर आमाशय और गुद नलिका पर इसकी क्रिया अधिक प्रबल होती है। यकृत मे रक्त आवागमन जल्दी और नियम पूर्वक होता है । परिणाम मे गुदा मे स्फीत शिरा (अर्श के मस्से) छोटे पतले हो जाते हैं। एव गुदा नलिका को उत्तेजना मिलने से मल सग्रह नही होता । भिलावा क्षुधा-वर्धक है और यकृतस्राव अधिक करा, मल को अधिक पीला बना देता है।

त्वचा पर भिलावे की क्रिया प्रबल होती है, त्वचा मार्ग से वह बाहर निकलता है जिससे स्वेद अधिक आता है। त्वचा उष्ण और रक्त बनती है, कण्डु उपस्थित होती है। त्वचा मे से बाहर निकलने के समय उसभाग की विनिमय (चयापचय) क्रिया सुधरती है।

दोनो वृक्को पर भिलावे की क्रिया अति तीव्र और उत्तेजक होती है । पहले मूत्र परिमाण बढाता है; किन्तु थोडे ही समय मे वृक्क थक जाते हैं। फिर मूत्रोत्पत्ति कम होजाती है। इसकी उत्तेजक क्रिया इतनी तीव्र होती है कि कभी कभी मूत्र से रक्त (Haematuria)आजाता है।

वृक्को के समान मूत्र प्रसेक नलिका पर भिलावा उत्तेजक है । इस हेतु से भिलावे का सेवन करने पर मूत्र-



न्द्रिय मे झनझनाहट होती है। मूत्रेन्द्रिय को दबाने की इच्छा होती है। प्रत्यक्ष क्रिया के अतिरिक्त वातवाहिनियो द्वारा भी मूत्र]नलिका और वृष्ण को उत्तेजना मिलती है।

मात्रा—अधिक होने पर गाजा सेवन के सदृश रोगी को घबराहट होती है।

मासपेशियो पर भिलावे की प्रत्यक्ष क्रिया नही होती परन्तु वात वाहनियो द्वारा मासपेशियो को उत्तेजना मिलती है। परिणाम मे उनकी सकोच विकास क्रिया योग्य होने लगती है। भिलावे से नाडी की गति बढती है हृदय स्पन्दन स्पष्ट होने लगता है। रक्त मे श्वेताणुओ की वृद्धि होती है

इस हेतु से (स्थानिक) शोथ आया हो तो दूर होता है। श्वेताणुओ की वृद्धि और सब ग्रन्थिओ को उत्तेजना मिलने से गाठ और अवयवो की वृद्धि हुई हो तो उस का ह्रास होने लगता है। सामान्यत भिलावा शरीर के भागो के लिए उत्तेजक है। छोटी मात्रा मे लेते रहने पर विनिमय क्रिया (Metabolism) सुधरती है।

(अ)—भिलावा वातज और कफज रोगो मे प्रयुजित होता है। यह अति उष्ण वीर्य है अतएव ग्रीष्म ऋतु में नही दिया जाता। शीतकाल मे ही देना चाहिए। भिलावा छोटे बालक, सगर्भा और वृद्धो को नही दिया जाता। भिलावे के सेवन काल मे घी, दूध, दही, तैल, मट्ठा, शक्कर, भात, गेहू का भोजन हितावह है। इन सबमे तैल अधिक है। मिर्च नही देवें या कम से कम देवें। नमक बिल्कुल नही दें तो अच्छा, या थोडी मात्रा में सैंधानमक देवें। मास बिल्कुल नही देना चाहिए। मासाहारी भिलावे को सहन नही कर सकते।

(आ)—भिलावा देने के पहले विरेचन लेकर उदर-शुद्धि कर लेनी चाहिए। आवश्यकता हो तो उपवास या मासवर्धक लघु भोजन देना चाहिए। भिलावा लेने के पहले मूत्र परिमाण और मूत्र द्रव्य की जाच कर लेवें। फिर भिलावा देने पर हमेशा मूत्र की जाच करते रहना चाहिए। यदि मूत्र परिमाण कम हो जाता है या रङ्ग लाल हो जाता है तो दर्पहर औषध रूप मे नारियल का जल या इमली के पानी का रस पिलाना चाहिए।

(इ)—भिलावे की मात्रा अधिक होती है, तो दाह, तृषा, छोटी-छोटी फुसिया निकलना, त्वचा मे लाली, कण्डू, स्वेद, मूत्र मे लाली और मूत्र ह्रास आदि लक्षण उत्पन्न होते है। ऐसा होने पर भिलावा बन्द कर दे और दर्पहर औषधि देवें।

(ई)—भिलावा व्यक्तियो को प्रबल असर पहुचा देता है। अत आरम्भ मे मात्रा कम देनी चाहिए और उसका परिणाम देखकर फिर उसकी मात्रा कम या ज्यादा करनी चाहिए।

(उ)—भिलावा बाह्य त्वचा पर जहा-बाल आते हैं उस पर लग जाय तो विष प्रकोप दर्शाता है। वहा फुसिया होती हैं, आग से जलने के समान दाह होता है। इस दोष को ध्यान मे रखकर उपयोग करना चाहिए।

(ऊ)—भिलावे के सेवन काल मे धूप मे घूमना, अग्नि का सेवन और गरम-गरम भोजन के खाने का त्याग करना चाहिए।

(ए)—पित्त प्रकृति वाले, जिनके मुह मे छाले रहते हो, तृषा अधिक लगती हो, निद्रा कम आती हो, स्वेद अधिक आता हो, दाह और घबराहट रहती हो, उनको भिलावा नही देना चाहिए।

(ऐ)—भिलावा खाने वाला धूप सेवन, स्त्री सहवास मास भक्षण छोड देवे। घृत, दुग्ध, दही, तक्र, मिश्री और भात अधिक खाना चाहिए। नमक और पानी का त्याग करने से अल्प काल मे ही फल प्राप्त होता है। भूख लगने पर दूध पिलाना चाहिये। मासाहारियो के लिए यह बहुत हानिकारक है।

भिलावे का शोधन—

जो भिलावे जल मे डालने पर तल मे बैठ जायें उनको ही शुद्ध करना चाहिये। शेष को अलग कर दें।

(१) एक भगोने मे जल गरम करें। जल के उबलने पर उसमे भिलावा डाल दें। १० मिनट चूल्हे पर रहने देवें। फिर नीचे उतार कर ढक देवें, शीतल होने पर जल को निकाल स्वच्छ कपडे मे पोछ लेवें। फिर टोपी को काटकर निकाल देवें। —भावप्रकाश

(२) भिलावो को एक कपडे की पोटली मे बाधें। फिर एक घडे मे गोमूत्र भरें उसके किनारे पर लकडी या लोह शलाका रख उस पर पोटली को लटका देवे। घडे के तल से एक अगुल ऊची रहे, इस तरह लटकावे। इसे दोला यत्र कहते है। इस घडे को चूल्हे पर चढा बारह घण्टे अग्नि देवे। गोमूत्र कम होने पर बार २ डालते जाये। तेज अग्नि लगने पर गोमूत्र मे उफान आता है। अत घडा बडा लेना चाहिये। गोमूत्र मे शुद्ध होने के पश्चात् भिलावा को गरम जल से धोकर दूध मे उसी तरह मन्दाग्नि पर १२ घण्टे उबाले। फिर भिलावो को गरम जल से घो देवें और टोपी काटकर निकाल डाले। इससे भी अधिक शोधन करना हो, (भिलावे की उग्रता को अधिक शान्त करना हो,) तो उस शुद्ध भिलावे को नारियल के जल मे १२ घण्टे तक उसी विधि से स्वेदन करें।

वक्तव्य—जितना शोधन अधिक होता है, उतना ही भिलावा सौम्य (निर्मल) बनता है। उग्रता जितनी सहन हो सके, उतना शोधन करें। केवल गरम जल से शुद्ध किया तत्काल लाभ पहुचाता है, गोमूत्र से शुद्ध हो तो देर में, गोमूत्र और दूध मे शुद्ध करने पर उससे भी अधिक समय मे तथा गोमूत्र, दूध और नारियल के जल से शुद्ध भलावा शनै शनै लाभ पहुचाता है। इसके उपयोग मे भय नही रहता। जिनको दूध अनुकूल नही रहता, उनको मट्ठा लेना पडता है। वे मक्खन, दही ले सकते हैं। दूध, दही, दोनो अति मात्रा मे नही लेने चाहिये।

प्राचीन आचार्यों ने कुष्ठ रोगी को दूध सेवन निषेध किया है। दूध से कच्चे सर (आम) और कृमि की उत्पत्ति होने को लिखा है। कृमि होने पर रक्त विकार हो जाता है। इस हेतु से पथ्य दूध रूप से नही देना चाहिये, ऐसी शङ्का कितने ही चिकित्सक करते है।

किंतु भल्लातक सेवनकाल मे दूध को पथ्य माना है। भावप्रकाशकार ने महाभल्लातकावलेह के साथ लिखा है कि "अनुपान प्रयोक्तव्य छिन्ना तोयपयोऽथवा" अर्थात् गिलोय का रस या दूध अनुपान रूप से देना चाहिये। सुश्रुताचार्य ने भी भल्लातक कल्प काल मे 'अपराह्ने क्षीर सर्पिरोदन इत्याहार" इस वचन से दोपहर को दूध और घी भात के भोजन का विधान किया है अनुभव से भी दूध का सेवन हितावह विदित हुआ है।

—(गा औ र.)

सुश्रुताचार्य ने 'सर्वेपातुवरक तैल भल्लातक तैलवेति' इस वचन से सब प्रकार के कुष्ठ की चिकित्सा मे भल्लातक को लाभदायक माना है। यदि पथ्यपालन मे पूरा आग्रह रखा जायगा तो वशागत कुष्ठ भी नष्ट हो जायगा।

भिलावा आयुर्वेद की बहुत प्रसिद्ध, प्रभावशाली और हाजिर जवाब चीजो मे से एक है। इससे अनेको प्रकार के रोग दूर होते है किन्तु इसके प्रयोग मे बहुत सावधानी रखने की जरूरत है क्योकि क्रिया की तरह इसकी प्रतिक्रिया भी बहुत जोरदार होती है।

भिलावा की मात्रा—मग्ज १ माशा। स्वरस ½ से १ रत्ती। अनुपान—वधा हुआ दही या दूध। तेल २ से ५ बूद। भिलावा गिरी [गोडवी] १ से ३ नग। फल—१-२ वाल।

भल्लातक विष निवारण—

[अ] भिलावा लग जाने पर छाला होजाता है और उस मे जल भर जाता है। एक सुई से उसमे छिद्र कर जल निकाल डाले। त्वचा न निकल जाय, यह सम्हाले। उस पर तिल को दूध, दही या मक्खन मे पीस कर लेप करने से दाह तुरन्त शात होती है और छाला मिट जाता है। अथवा बहेडे की गिरी को पीसकर लेप करें। बरार प्रदेश मे मक्खन मे चूना (पान मे खाने का जल वाला) मिलाकर लेप करने का विशेष रिवाज है।

[आ] भिलावे का धुआ लग जाने से सूजन आगई हो तो तिली बीज, नारियल की गिरी, चिरौंजी, काजू, बादाम, पिस्ता, अखरोट गिरी आदि खावें, खाने मे तिल और नारियल तैल का उपयोग अधिक करे तथा नारियल के तैल की मालिश या लेप करे। —गा औ. भा ३

प्रयोग—

हैजा (विशूचिका)—हैजे के रोग मे भिलावा बहुत लाभदायक है। एक भिलावा लेकर उसका डठल निकाल

कर उसको आधा तोला इमली के साथ पीसकर दो तोला प्याज के रस के साथ मिलाकर पिला देना चाहिए। यह दवा सिर्फ एक ही बार पिलानी पडती है और पेट मे जाने के बाद ५ मिनट के अन्दर ही अपना असर बतलाकर दस्त और उल्टी को बन्द कर देती है। इमली के साथ भिलावा देने से शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया होने का डर नही रहता और वह जठराग्नि को प्रदीप्त करके शरीर मे गर्मी बढा कर अदभुत तरीके से हेजे के कीटाणुओ को नष्ट कर डालता हे। प्याज का रस भी हेजे के रोग मे बहुत गुणकारी वस्तु हे। इसलिये उसका प्रभाव भी अनुकूल होता है।

जगलनी जडी बूटी के लेखक लिखते है कि हैजे के अनेक रोगियो पर इस प्रयोग के अनेक अनुभव किये जा चुके है और दूसरी अनेक औषधियो से असफल हुए, मूर्छित अवस्था मे पहुचे हुये, ठण्डे हाथ पैरो वाले भयकर रोगी भी इस औषधि से अच्छे हुये हैं। हैजे के सिवाय मरोडी और अतिसार के रोगियो को भी भिलावे को इमली के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मज्जा तन्तु के रोग—भिन्न-भिन्न प्रकार के वात रोगों मे भिलावा बहुत गुण्कारी वस्तु है। मज्जा ततुओ की सूजन, पक्षाघात, लकवा, अर्दित, उरुस्तम्भ इत्यादि रोगो मे इसके सेवन से बडा लाभ होता है। मस्तिष्क की थकावट मे भी इसको देने से बहुत फायदा होता है। मज्जा ततु समूह रोगो मे भिलावे को थोडी मात्रा मे अधिक दिन तक देना चाहिये। मद्रास मे ऐसे रोगो मे भिलावे को इमली के पत्ते, लहसुन, बायविडग, नारियल का रस और मिश्री के साथ देते है। नवीन आमवात मे भी भिलावे को देने से बहुत लाभ होता है। जीर्ण आमवात मे इसके प्रयोग से विशेष लाभ नही होता हे। नवीन आमवात मे तीन माशे भिलावे का अवलेह दिन मे ३-४ बार देने से २-३ दिन मे ही लाभ दिखाई देने लगता हे। फिर भी कई लोगो को भिलावा अनुकूल न पडने से ऐसे रोगो मे वे लोग इससे लाभ नही उठा सकते है। ऐसी स्थिति मे जगलनी जडी बूटी के लेखक ने एक ऐसा प्रयोग लिखा है जो बिल्कुल खतरे से रहित हे। उनका लिखना है कि इस प्रयोग से मनुष्य को भिलावे के सब लाभ प्राप्त हो जाते है मगर उसकी प्रतिक्रिया से वह बच जाता है। वह योग इस प्रकार है—

२-३ सेर भिलावों को लेकर उनको कूटकर अधकचरे करके खेत की २-३ क्यारियो मे खाद की तरह बिछा देना चाहिए और फिर उन क्यारियो मे मेथी बो देनी चाहिए। उस मैथी को प्रतिदिन पानी पिलाना चाहिये। इससे ८-१० दिन के अन्दर मैथी की तरकारी तैयारी होजायगी। इस मैथी का साग बनाकर बिना नमक मिर्च के प्रति-दिन खाने से सधिवात, उपदश की वजह से पैदा हुआ पक्षाघात इत्यादि अनेक प्रकार के वातरोग मिट जाते है और भिलावे की प्रतिक्रिया होने का बिलकुल डर नही रहता।

दमे का रोग—दमे के रोग मे भिलावा एक बहुत उत्तम औषधि है। सरदी मे उठने वाला दमा इसके फूलों के उपयोग से चला जाता हे। गोआ मे दमे के रोग मे इसको मट्ठे के साथ मिलाकर देते है। ज्वर के साथ होने वाली फेफडो की सूजन और कफ के साथ रक्त गिरने की बीमारी मे इसको मुलैठी के साथ लेने से बहुत लाभ होता है।

डाक्टर मुडीन शरीफ लिखते है—भिलावे के काले, गाढे और चरपरे तेल का उपयोग किया जो कि उसको दबाकर निकाला गया था अथवा गर्मी देकर प्राप्त किया गया था। मैं यह कह सकता हू कि तीव्र सधिवात मे यह इतना प्रभावशाली है कि इस बीमारी के लिये यह एक विशिष्ट या चमत्कारिक औषधि कही जा सकती है। दमे के अन्दर भी इस औषधि के फायदे बहुत बहुमूल्य हैं।

भीतरी चोट—कभी कभी आकस्मिक घटना से मनुष्य जब ऊपर या नीचे से कही गिर पडता है तो उसके शरीर के भीतर उस चोट की वजह से बडी जर्जरता हो जाती हे और किसी किसी के अन्दर तो यह असर जन्म भर के लिए रह जाता है। ऐसी भयकर चोटो मे भिलावा बडा अदभुत कार्य करता है। इसके सम्बन्ध मे सन् १९१२ के जून मास के वैद्य कल्प तरु मे एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका साराश नीचे देते है—

गिरनार नामक जैनियो के प्रसिद्ध तीर्थस्थान मे पत्थर

चट्टी नामक एक बहुत प्रसिद्ध है। इस स्थान पर उन दिनों खगेन्द्र स्वामी नामक महन्त रहते थे। एक दिन ये महन्त पहाड की एक टेकरी के ऊपर शौच के लिये गये और वहा से वापस लौटते समय उनका पैर फिसलने से करीब १० हाथ नीचे एक खाई मे गिर गये। दैवयोग से उनके बाहरी शरीर मे तो कोई चोट नही आई मगर उनके भीतर ऐसी पछाड लगी कि उनका हिलना चलना बिलकुल बन्द होगया और पानी पीने तथा पेशाब करने के लिये भी उनसे उठना बैठना असभव होगया। यह बात जब जूनागढ मे मालूम हुई तब वहा के दीवान साहब और चीफ मेडीकल आफिसर डाक्टर त्रिभुवन दास उनके पास गये और उनको कहाकि आपको ४-६ माह दवाखाने मे रहना पडेगा। आपकी सुविधा की हर प्रकार से व्यवस्था करदी जायगी और आप वहा चलिये। तब महाराज ने कहा कि अभी तो वहा चलना बहुत कठिन है। थोडे दिनो के बाद कुछ आराम होने पर चलेगे। कुछ दिनो तक उन्होने डाक्टर की दवा वहा की, पर चोट इतनी सख्त थी कि उससे कुछ लाभ नही हुआ। तब उन्होने अपने प्राचीन आचार्यो की पुस्तक मे एक योग देखा और उसी योग को प्रारम्भ किया। वह योग इस प्रकार था–

चोट पर भल्लातक योग—७ भिलावे को लेकर उनके टुकडे करके १० तोला घी मे भून लेना चाहिये। उसके बाद उन भिलावो को घी मे से निकाल कर बाहर फेक देना चाहिये और उस घी मे गेहू का आटा डालकर उसको सेककर उसमे गुड डालकर हलवा बना लेना चाहिये उस हलवे को खा लेना चाहिये। इस प्रकार ७ दिन करने से चाहे जैसी भयकरपछाड लगी हो मिट जाती है। भिलावे का हलवा खाने से अगर शरीर मे गर्मी मालूम हो और शरीर फूट निकले तो ४ दिन तक प्रतिदिन भैस का गोबर शरीर पर चुपड कर ३ घटे तक धूप मे बैठे रहने से भिलावे का सब असर मिट जाता है।

महन्त जी ने इस प्रयोग को शुरू किया। पहले ही दिन उनको रात मे आराम मे नीद आई, दूसरे दिन इस हलवे को खाने के बाद वे बिना किसी मदद के अपने आप पखा चलाने लगे। तीसरे दिन उनके शरीर मे कुछ गर्मी मालूम होने लगी और पहले जहा पेशाब को उठते समय वे चार पाच मनुष्यो का टेका लेते थे वहा सिर्फ १ मनुष्य के सहारे से वे उठकर पेशाब करने के लिये नीचे उतरे। चौथे दिन जब उन्होने यह हलवा खाया तब उनका सारा शरीर लाल होगया और बारीक फुसिया शरीर पर फूट निकलीं। लेकिन फिर भी उस दिन वे बिना किसी मनुष्य की सहायता से लकडी टेके अपने आप बिस्तर मे से उठ कर धीरे कमरे मे फिरने लगे, पाचवे दिन उन्होने यह हलवा नही खाया क्योकि उनके सारे शरीर मे भिलावा फूट गया था तब उन्होने भैस का गोबर शरीर पर मलकर धूप में बैठना शुरू किया। इस प्रकार ४ दिन करने पर भिलावे का खराब असर मिट गया और १० दिन के अन्दर उनके शरीर मे बहुत शक्ति आगई और जठराग्नि भी बहुत प्रदीप्त होगयी। दशवे दिन वे जूनागढ के लोगो से मिलने के लिये अपने आप पैदल गिरनार पहाड से उतर कर जूनागढ गये।

उपरोक्त वर्णन 'वैद्य कल्पतरु' मे प्रकाशित होने के बाद और भी कुछ वैद्यो ने इस प्रयोग को आजमाया और उसका परिणाम सतोषजनक पाया। यह ख्याल मे रखने की बात है कि रोगी की प्रकृति, ऋतु, देश और बल का विचार करके भिलावे की मात्रा मे कमी-ज्यादा की जा सकती है। सात भिलावे की जगह १-२ या ४ भिलावे भी लिये जा सकते हैं और ७ दिन की जगह ३ या ४ रोज भी सेवन किया जा सकता है।

उदर कृमि पर—भिलावे का एक दाना इमली के साथ कूटकर खाने से एक ही दिन मे पेट के कृमि मर जाते है। सुजाक मे भी इससे एक ही दिन मे फायदा होता है। मगर इसके सेवन काल मे नमक बिलकुल छोड़ देना चाहिये। इसका छिलका अत्यधिक काम शक्ति वर्धक है। बालो को काले रखने के लिये भी यह बहुत मुफीद है। हकीम शरीफ खा लिखते हैं कि भिलावे की मगज को कामशक्तिवर्धक माजूनो मे मिलाकर सेवन किया। इससे कामेन्द्रिय और मेदे को बहुत शक्ति मिली तथा वीर्य मे बहुत रुकावट हुई। एक बार सर्दी की वजह से नजला हो गया। कितना ही इलाज किया मगर कुछ फायदा नहीं

हुआ। कुचले और अफीम से भी लाभ नही हुआ। उसके बाद भिलावे को मय मगज के शहद के साथ खिलाया जिससे नजला बिलकुल मिट गया।

नहरुआ—नारु पर भिलावा अच्छा काम करता है। एक छोटा सा भिलावा लेकर बिना उसकी टोपी उतारे हुये उसको गुड मे लपेट कर नारु के रोगी को निगलवा दे। तीन दिन तक इस प्रकार निगलवाने से नारु बिल्कुल मिट जाता है।

अर्श पर—१ माशा गाय के घी मे थोडा सा भिलावे का मगज डालकर उसको घोटकर गुदा के भीतरी भाग मे लगा देना चाहिये और एक घण्टे तक कडे की आच से इस प्रकार हल्का हल्का सेक करना चाहिए जिससे अण्ड कोषो को गरमी नही पहुचे। इस प्रकार करने से ववासीर से गिरने वाला खून दूसरे दिन बन्द हो जाता हे और उसका चटका मिटकर आराम से नीद आती है।

कृमि रोग—भिलावे को छोटी मात्रा मे दही के साथ अथवा इमली के साथ खाने से कृमि नष्ट होजाते हे।

दांत का दर्द—दाढ की पीडा मिटाने के लिये भिलावे की राख से मजन करना चाहिए।

हस्तिमेह (बहुमूत्र Polyuria)—वृद्धावस्था मे या अन्य रोगादि कारणो से पेशाब का परिमाण अधिक होता है और मूत्र त्याग भी अनेक बार होता हे। रात्रि को बार बार उठना पडता है जिससे निद्रा भी पूरी नही मिलती। तृषा बहुत लगती है और कृशता आती हे। उस पर भिलावे का सेवन आशीर्वाद के समान हितावह है। भल्लातक क्षीर का सेवन करने पर ४-८ दिन मे ही रोग काबू मे आजाता है या प्रतिदिन क्वाथ बनाने के समय १-१ तोला बेलगिरी भी साथ मे मिलाते रहे तो लाभ जल्दी पहुचता है।

जखम—बरार आदि प्रदेशो मे किसान और मजदूर लोग घाव लगकर रक्तश्राव होने या त्वचा खुरच जाने पर वहा भिलावे का तेल लगा फिर उस पर गीला चूना लगा लेते है। भिलावे और चूने के कारण घाव नही पकता एव चूना भिलावे की विष क्रिया नही होने देता।

अर्श रोग पर भिलावा—एक भिलावा के तीन चार तथा पाच छोटे टुकडे करके उन्हे सोलह गुने पानी मे उबाले। आठवा भाग शेष रहने पर छानकर रोजाना रोगी को ४ तोला क्वाथ का सेवन करावे। क्वाथ पीने के पूर्व रोगी के तालु, जीभ, होठोपर घी लगा देवे वा थोडा पी लेवे। क्वाथ प्रात काल मे पीवे। भोजन मे दूध, घी, साठी चावल आदि स्निग्ध पदार्थ लेवे। सुश्रुत ने १ भिलावे से प्रारभ करके पाच भिलावा तक लेनेको कहा है। —सुश्रुत चिकि अ. ६

कुष्ठ मे—प्रत्येक प्रकार के कोढ मे भिलावा, हरड और वाय विडग का क्वाथ अथवा भिलावे का तैल अकेला सब प्रकार के कुष्ठो को मिटाता हे। —सुश्रुत चि अ ९

बादी बवासीर मे—शुष्कार्श मे भिलावा उत्तम दवा मानी गई है। —आदर्श निघण्टु

बाजीकरण पर—एक भिलावा को लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करके गाय के ४ सेर दूध मे उबाल ले और वह दूध पी लिया करे। इस प्रयोग से शक्ति आती है और चाहे जैसा वृद्ध व्यक्ति भी इसके सेवन से घोडे के समान बलवान बन जाता है।

कफज गुल्म—भल्लातक के कल्क और कषाय से घी तैयार कर लेवे। यह घी मिश्री के साथ हमेशा सेवन करे। इससे रक्तपित्त, कफ, गुल्मादि मिटते है।

प्लीहोदर—भिलावा, हरड, जीरा ये तीन चीजे समभाग लेकर गुड के साथ लड्डू तैयार करे। इन मोदको के सेवन से अति दारुण प्लीहोदर भी सात दिन मे मिट जाता है।

गण्डमाला मे—शुद्ध भल्लातक और अजवायन दो-दो भाग, शुद्ध पारद १ भाग एकत्र खरल कर मटर प्रमाण गोलिया बना रक्खे। मात्रा १ से २ गोली मलाईदार दही के साथ प्रात साय सेवन करावे।

आमवात में—नूतन और तीव्र आमवात मे उत्तम लाभकारी हे। रोगी को पूर्ण शास्त्रीय विधि से बनाया हुआ भल्लातकावलेह लगभग ८ माशे तक दिया जावे, प्रात काल मे (दिन मे केवल एक बार अथवा रोग की विशेष प्रबलता हो तो २ बार देवें) २ या ३ दिन मे ही रोग भागने लग जाता हे।

रोग प्रतिरोधार्थ–प्रतिवर्ष शीत काल मे इसका सेवन कर लेने से कोई रोग नही होने पाता। बगाल मे इसका अत्यधिक सेवन किया जाता है। इसका एक उत्तम पौष्टिक प्रयोग इस प्रकार है–उत्तम वजनदार भिलावो को एकत्रकर १२ दिन तक गोवर मे रखें। गोवर को प्रति दूसरे दिन वदल देना चाहिये। यदि प्रतिदिन गोवर वदला जाय तो और भी अच्छा है। फिर शीतल जल से साफ कर एक दिन अम्ल तक्र (खट्टी छाछ) मे रक्खे फिर भडभूजो के द्वारा भुनवा लेवे। यह लाही जैसा भुने हुये भिलावा की मात्रा चौथाई भिलावे से १ भिलावा तक, दूध के साथ दोनो समय सेवन करने योग्य है। इसमे वाजीकरण धर्म विलकुल नही रहता, किन्तु शरीर को हृष्ट पुष्ट करता तथा मस्तिष्क की और देह या इन्द्रियो की थकान को शीघ्र दूर कर देता है।

यदि वाजीकरणार्थ ही इसका प्रयोग करना अभीष्ट हो तो उत्तम वजनदार भिलावो को काटकर, ईट के चूर्ण के साथ खरल करे। दो या तीन वार इस तरह ईंट चूर्ण को वदलते हुये खरल करने के पश्चात् ठण्डे जल से साफ धोकर छाया शुष्क कर लेवे। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक, घी और शहद के साथ सेवन करावे। यह उत्तम वाजीकरण होते हुये, वातज और कफज रोगो पर परम लाभदायक है।

—स्व० श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी

नपुंसकता पर—भिलावा, कालेतिल, अखरोट की गिरी ५-५ तोला। तीनो को खूव कूटे, जव लेहवत् होकर एकजीव हो जावे तो काम मे लावें। इसके व्यवहार से काम शक्ति उत्तेजित होकर नपुसकता का नाश होता है वल वढता तथा शरीर का रग लाल होता है। मात्रा-१ माशे से ३ माशे तक, गो दुग्ध के साथ।

इसके व्यवहारकाल मे तेल, लाल मिर्च, खटाई, गुडादि कच्चा मीठा नही खाना चाहिये अन्यथा हानि होती है।

काग गिरने की खांसी पर—भिलावे को चिराग की लौ पर जलावें जलने से जो तेल टपक कर निकले उसको सावधानी से ले लें। उस तेल की ३-४ बूद पावभर दूध मे मिलाकर पिलाने से तालू अथवा काग गिरने से खांसी होती है वह तुरन्त दूर हो जाती है।

नपुंसकता पर तेल—भिलावा ५ तोला, तिल तेल २० तोला। दोनो को लोहे की कटाही मे इतना पकावे कि भिलावे जल जायें फिर ठण्डा करके तेल छान लें। इसकी मालिश से नपुसकता दूर होजाती है, हस्त मैथुन से निर्वल स्नायु पुन वलवान होते हैं।

—प० युगलकिशोर जी, राजगागपुर

सन्धिवात या गठिया पर—भिलावे की डण्डी, भुने चने की दाल, नारियल की गिरी, गुड और घी इन पाचो को सम भाग एकत्र कूट पीस कर ५-५ तोले वजन के लड्डू वना लेवें। रोज सवेरे एक लड्डू खावें।

अर्श पर-भल्लातक, अर्श (ववासीर) पर वडा हितकारी है, इसी से इसे सस्कृत मे 'अर्शोहिता' भी कहते हैं। यदि वातजन्य अर्श हो, खून न गिरता हो तो क्रमवृद्धि से भल्लातक दुग्ध का इस प्रकार सेवन करावें। प्रथम दिन एक भिलावा को सूजे से टोचकर या सरौते से कतर कर ४० तोला जल मे डाल किसी कलई के पात्र मे पकावें। अष्टमाश क्वाथ शेष रहने पर उसे धीरे से दूसरे पात्र मे (केवल जल मात्र) इस प्रकार ढाल लेवे जिसमे भल्लातक का कचरा उसमे न आने पावे [वस्त्र मे छानने से स्निग्धाश जो उपयोगी है वह वस्त्र मे ही लग जावेगा] फिर उसमे १० तोला दूध मिला पिलावे। इसी प्रकार दूसरे दिन दो, तीसरे दिन ३ आदि वढ़ाते हुये पाचवे दिन ५ भिलावो का भल्लातक दुग्ध पिलावें, फिर घटाते हुये १ पर लावे। इस प्रकार भल्लातक दुग्ध के सेवन से वातार्श दुम दवाकर भाग जाता है।

वल वीर्य वढ़ाने के लिए—वल वीर्य वृद्धि आदि वढाने के लिये भल्लातक मे 'मेध्य' अर्थात् मेधाजनक गुण तथा वह शुक्रल और वृष्य भी है। तरुणावस्था मे किसी भी कारण से वीर्य क्षय होगया हो, अशक्ति एव निर्वलता अधिक वढ़ गई हो, भूख न लगती हो, नित्य ज्वराश वना रहता हो तो उक्त प्रकार से भल्लातक दुग्ध वढाते घटाते रहे तो अग्निमाद्य [डिस्पेप्सिया] क्षय आदि की शिकायत दुर होकर वल वीर्य की वृद्धि होती



है तथा बुद्धि और स्मरण शक्ति भी बढती है। चरकाचार्य जी ने आयुष्यवर्धक कतिपय साधनो मे भल्लातक योग की इसीलिये गणना की है।

जिह्वास्तम्भ और मूकत्व पर—भल्लातक का विधियुक्त चतुर्थांश क्वाथ तैयार कर उसमे घृत,दूध और शक्कर समभाग १-१ तोला और कालीमिर्च का महीन चूर्ण ३ माशा मिला सेवन करावें। इस प्रकार नित्य सवेरे एक मास तक सेवन कराने से लाभ होता है।

कृमि पर—प्रायः बच्चो को कृमि का विकार बहुत सताया करता है। बार-बार पेट मे वेदना होकर पतले दस्तो का होना, मुख से लालास्राव अधिक होना, नाक को बार-बार उंगलियो से रगडना, ज्वर, अशाति,कान का अधोभाग शीतल होना, पेट का फूलना आदि लक्षण हो तो वायविडग का महीन चूर्ण ३ माशा से ६ माशा तक लेकर उस पर उक्त विधि न० १ [वजनदार भिलावो को लेकर,उनमे सूजा या कोई लम्बी लोह शलाका से छेद कर दीपक की ज्योति पर पकडे रक्खें, उनमें से तेल की बूंदें टपकने लगेगी, इन बूंदों को सेवनीय द्रव्यो पर टपकाकर तथा अच्छी तरह मिलाकर सेवन करे।) के अनुसार भल्लातक तेल टपकावें, चूर्ण के अच्छीतरह भीग जाने पर, जब गोली बनाने लायक होजाय तब उसमे, उतना ही गुड मिला कर छोटी-छोटी गोलिया तैयार कर लेवें। दिन मे ३ बार १-१ गोली निगल जावे। ७ दिन के अन्दर कृमि नाश होकर तज्जन्य विकार दूर होते है।

प्रदर पर—श्वेत प्रदर पर इसका अच्छा उपयोग होता है। दारु हल्दी का महीन चूर्ण २ माशा लेकर थोड़े से जल मे भिगो देवें। फिर उसमे उक्त विधि न० १ के अनुसार भल्लातक तेल की बूंदें टपकाकर तथा थोड़ा घी और शक्कर चटावें। इसी तरह रोज दो बार देवें। ७ दिन मे प्रदर दूर होता है।

भिलावे के विष की शांति—फलो के काटने से उनसे एक प्रकार का रस निकलता है जो शरीर मे लगकर खाज और फोडे उत्पन्न करता है। उस जगह पर माखन और चौलाई का रस मिलाकर लेप करना और यदि खाने से वेदना हो तो चौलाई के रस मे माखन मिलाकर पिलाना चाहिये। या मक्खन मिश्री चाटकर ऊपर से चौलाई का रस पीना चाहिये।

—[स्व० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी,
अभिनव बूटी दर्पण से साभार]

शोथ के लिए—२ माशा भिलावा खिलाकर ऊपर एक पाव दूध पिलादो, बाद मे प्यास भूख लगने पर दूध ही पिलाओ, आहार पानी मत दो, दश दिन मे शोथ का पता नही लगेगा। इस क्रिया से प्रथम शोथ बढता है फिर एकदम नष्ट हो जाता है, घबडाना नही चाहिये।

व्रण के लिए मरहम—५ नग भिलावा कूटकर १ छटाक तेल कडुआ मे मिलाकर जलादो। जब बिलकुल जल जायें तब उसमे ३ माशा मोम, ६ माशा सगजराहत मिलाकर खूब महीन पीस कर रख छोडो आवश्यकता पडने पर व्रण मे लगाओ अच्छा हो जावेगा।

कर्णस्राव पर—बहते हुये कर्ण मे भिलावा ६ माशे को कूटकर १० तोला तिल के तेल मे पका लो, बाद मे छानकर के उसमे १½ तोला कपूर मिलादो। फिर इस तेल को ३-४ बूंद सफाई करके कर्ण मे डालने से कर्ण स्राव चाहे जितना पुराना हो दूर हो जाता है और कर्णनाद भी मिट जाता है।

स्थूलता पर—भिलावा १ माशा, शहद ३ तोला प्रमाण मिलाकर चाटने से और ऊपर से शीतल जल पीने से स्थूलता का पता नही लगता है।

[प्रो० रामकृष्ण शर्मा, सर्प मृत्यु कार्यालय
लखनऊ, अभिनव बूटी दर्पण से]

पामा पर लेप—भल्लातक ५, घी २० तोला, मेनसिल २ तोला, हरताल डली २ तोला, गधक २ तोला, तूतिया १ तोला, कपूर १ तोला। पहले मनसिला आदि दवाओ को खरल मे बारीक पीस ले। लम्बे बडे बरतन मे घी डालकर स्टोव या सिगडी पर रख देवे। इस घी मे टुकडे किये हुये भिलावे डाल देवे। जब देखें कि भिलावे घी मे जल चुके है और घी पर तैर करके आगये हैं तब घी को उतार कपड़ मे छान ले। भिलावे के टकडो को फेंक देवे और पुनः घी को बरतन में डाल

स्टोव या सिगडी की आच पर रखे और मनशिला आदि का पाउडर मिला देवे और देखे कि जब घी आग पकड रहा है तो बरतन को थाली आदि से ढकदे और आच सामान्य रखे। जब घी इस प्रकार ३–४ बार आग पकड ले तब नीचे उतारकर कपूर मि ा किसी परात या बडे बरतन मे जो पानी से भरा हो कुछ घी ठण्डा पड जावे तब (पानी मे) उलट दे ठण्डा होने पर जल पर जमे हुये घी को लेकर अच्छे चीनी के बरतन मे रख देवे। गुण-इस घी की मालिश से पामा, चर्म रोग आदि शीघ्र और निश्चय रूप मे मिट ज ते हे। परीक्षित हे

—वैद्य उदयलाल महात्मा

उपदंशारि भल्लातक—शुद्ध रस कर्पूर, विशुद्ध पारा १-१ तोला, शुद्ध भल्लातक ४ तोला, (३० वर्ष से अधिक) प्राचीन गुड १० तोला। प्रथम गुड़ गरम कर पारद मिलाकर खूब खरल करे या मिल पर पिसवावें। फिर शुद्ध रस कर्पूर डाल यथा शक्ति न्यूनातिन्यून आठ प्रहर कूटें या पिसवावे। गोलिया ४–४ रत्ती की बनाकर उन पर सूक्ष्म कागज आवेष्टित करे या केपस्यूल्स मे भरके बन्द करले। जिससे मुख, दात, जिह्वा स्पर्श होने से बच जाय। स्मरण रखिये पारद मिश्रित कोई भी औषधि दत स्पर्श नही कर सके। इसका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। इन गोलियों मे से ३ या देशकाल तथा अवस्थानुसार न्यूनाधिक लेकर दही के साथ निगलवादे तथा ऊपर से भी कुछ दही पिलावें। सात दिन तक बेसनी रोटी और घी खिलावे। अनुमानत प्रथम दिवस ही लाभ प्रतीत होने लगता है। सात मात्राये पूर्ण लाभ प्रदान करती है।

भिलावा विष नाशक—(१) इमली के बीज (चीया या कूघचा) पीसकर खावें।

(२) भैंस की छाछ शरीर पर मलकर या तीन चार घण्टे तक धूप सेवन करे। इससे भल्लातक का दर्पदलन होता है।

(धन्वन्तरि भा १९ अ ११)

काली गोलिया—शुद्ध भिलावा ४ तोला, अजमोद २ तोला, खुरासानी अजवायन २ तोला, कुन्दरगोद १ तोला, मस्तगी २ तोला, तिल काला ४ तोला, खोपरा ४ तोला, गुड देशी पुराना ४ तोला, शुद्ध पारा ६ माशा शुद्ध गधक ६ माशा।

विधि—पारा गधक की कज्जली बना उसमे पहले खुरासानी अजवाअन की पिष्टी मिलाना फिर अजमोद, बाद मे दूसरी दवाइयो मिला पीसकर अलग रखना।

शुद्ध भिलावे, तिल, गुड, खोपरा के साथ हमाम दस्ते मे एक प्रहर कूट करके फिर ऊपर की दवाइया मिलाकर खूब सूक्ष्म हो जाये तब तक तिल्ली के तेल मे हाथो को तर करके सिल पर बहुत बारीक पीस ले। गोली १ तो की बनावे। देते वक्त चने जैसे छोटे टुकडे करके भैंस के बचे हुये दही के अन्दर रखकर निगलवावे। दांत नही लगावें। ७ रोज केवल प्रात काल। फिरग के लिये ३ माशा शुद्ध रसकर्पूर मिलाना चाहिये।

गुण—आमवात, फिरग, कुष्ठ, रक्तविकार एव रक्तार्श मिटे। ये गोलिया परम्परा से काम मे लायी जा रही है और अनुभूत है।

—स्व० वैद्य धूलचन्दजी महात्मा, खमणोर

भल्लातक का प्रयोग बिना उपद्रवी—भल्लातक जल-डूब प्रारम्भ मे ५, प्रतिवर्ष २ बढावे। उत्तम घृत १० तोला मे उनकी मुण्डी काटकर आग पर या स्टोव पर छोटी कडाही रख ऊपर थाली ढक कर आधा घण्टा आच देने पर घृत तैयार होजायगा। यानी भिलावे ऊपर जलकर तैर जाये तब भिलावे अलग कर दे और घृत छानकर रख ले।

१ सप्ताह तक इसको सेवन करना है।

१ पाव हल्दी कच्ची को दोलायत्र से दूध मे पकाकर खोया बनाले। प्रातः काल घी ग्वार के रस मे गेहू का आटा चूरमे की पिण्डी का सानकर पिंडी आदमी भर पेट खा सके उतनी तादाद मे घृत मे तल के निकाल कर चूरमा बना ले। पश्चात् उस घृत के ७ भाग करे। प्रतिदिन प्रात खाली पेट उस चूरमे मे घृत, मावा २-२ तोला, खोपरा २ तोला, बादाम गिरी १ तोला, पिस्ता, चारोली १-१ तोला, पीपल ४ रत्ती, छोटी इलायची दाना ४ माशा, केसर ४ रत्ती। चूरमे के बराबर शक्कर

मिला लड्डू बनाकर सेवनकरें। मुख शुद्धि के लिए मूग का पापड ले, भोजन शाम को करे।

नोट—भिलावो को गरम जल मे उबाल कर बीट चाकू से काटकर कपडे मे साफ पौछकर फिर घृत मे पकावे।

—वैद्य माधव लाल जी महात्मा, छोटी सादडी

बवासीर नाशक वटी—हरड, काले तिल, शुद्ध भिलावा, नीम के बीजो का मगज, बकायन नीम के बीजो की गिरी कट करज के बीज की गिरी। ये सब चीजे १-१ तोला, रसोत तथा पुराना गुड ३-३ तोला, इन सब चीजो को खरल मे डालकर लोहे के दस्ते से ही २४ घण्टे तक खूब कूटना चाहिये। फिर उसकी तीन २ माशे की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियो मे से सवेरे शाम एक-२ गोली पानी अथवा दूध के साथ लेने से बादी बवासीर मिट जाता हे।

विशिष्ट योग—

भल्लातक क्षीर—उत्तम भिलावे जिनको किसी प्रकार की चोट न लगी हो, किसी प्रकार का कीडा न लगा हो, जो रोग रहित हा, रस, प्रमाण और वीर्य से भरपूर हो और पके हुये जामुन के फल के सदृश वर्ण वाले हो उन भिलावो को ज्येष्ठ और आषाढ के महीनो मे सग्रह करके जव के ढेर मे गाडदें। ४ मास तक वही पडे रहने द पश्चात् अगहन और पौष मास मे उनका सेवन करे। सेवन से पूर्व शीतल, स्निग्ध तथा मधुर आहार विहार और औषधियो से शरीर को सस्कारित कर लेना चाहिये। उष्ण प्रकृति वाले लोगो को ग्रीष्म ऋतु मे और जिन दिनो मे पित्त का उभाड हो उन दिनो मे इसका सेवन नही कराना चाहिये।

सबसे पहले १ भिलावे को कुचल कर आठ गुने जल मे डालकर हलकी आच से पकावे जब पानी का आठवा भाग शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान ले और उसमे दूध मिला दे। उस दूध को पीनेमे पहिले सारे मुह को घी से तर कर देना चाहिये और थोडा सा घी पी भी लेना चाहिये जिससे गले तक सब भाग घी मे तर हो जाय।

उसके पश्चात् उस दुग्ध मिश्रित रस को पीले। जब प्रात काल सेवन किया हुआ यह रसायन पच जाय तब घृत युक्त दूध के साथ साठी चावलो का भोजन पथ्य मे ग्रहण करे। इसे हेमत मे कम से कम ४० योम तक सेवन करना चाहिये।

महर्षि चरक लिखते है कि इस योग का सेवन करने वाले मनुष्य का शरीर पर्वत के समान दृढ और गठीला होता है। उसकी इन्द्रिया दृढ और अतिबल सम्पन्न होती हैं। उसका रूप अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी हो जाता है और उसका वर्ण निर्मल और स्वर मेघ-गर्जन के समान होता हे। उसकी काम शक्ति बहुत प्रबल रहती है और नवयुवती स्त्रियो को वह बहुत प्रिय रहता है। उसकी सताने भी बहुत दृढ होती है। यह परम रसायन है।

अष्टाग सग्रह के अनुसार जितने दिनो तक भिलावो का प्रयोग किया जाय उससे तिगुने काल तक दूध, घी, और साठी चावलो के भात को पथ्य मे ग्रहण करना चाहिये।

यह चरक सहिता का प्रसिद्ध योग है। मगर आज-कल के क्षीण वीर्य पुरुष इतनी मात्रा मे भिलावो को सहन नही कर सकते। इसलिये उनको एक भिलावे से यह प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये और ज्यो २ वह सहन होता जाय त्यो-त्यो उसकी मात्रा धीरे धीरे बढानी चाहिये।

भल्लातक क्षौद्र—भिलावे का मशीन द्वारा या पाताल यत्र द्वारा निकाले तेल को भल्लातक क्षौद्र कहते हे।

इस तेल को उचित मात्रा मे आठवा भाग शहद और शहद से दूना घी मिलाकर सेवन करने से मनुष्य शतायु हो जाता हे वर्तमान मे इस तेल की मात्रा २-२ बूद से ज्यादा नही होनी चाहिये।

नारसिंह चूर्ण—सोठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, तिल और भिलावा। इन सब चीजो को समान भाग लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को १॥ ग्राम की मात्रा मे आधा तोला घी, १ तोला शहद और मिश्री १ तोला के साथ सेवन करना चाहिये और

पथ्य मे सिर्फ दूध पर ही रहना चाहिए। अन्न, जल और दूसरी सब वस्तुओ का त्याग कर देना चाहिए इस योग का कुछ दिनो तक सेवन करने से जलोदर की भीषण व्याधि और दूसरे सब प्रकार के उदर रोग मिट जाते हैं।

भिलावे के फल का पाक—मगसर(पौष)के महीने मे जब नवीन भिलावे आते हैं तब भिलावो के ऊपर एक प्रकार का फल लगा हुआ रहता है जो पीले रग का होता है और सूखने पर भिलावे की टोपी के आकार मे परिणत हो जाता है। यह फल कुछ चपटा, चिकना, चमकदार, पीले रग का और आकार मे सूरती बोर सरीखा होता है। इसमे बीज नही होता। यद्यपि बहुत से लोग इस फल के सम्बन्ध मे परिचित नही है तथापि यह बहुत कीमती वस्तु है। इसमे पहला गुण तो यह है कि इसमे भिलावे के बराबर गरमी और उग्रता नही होती। भिलावे को व्यवहार करते समय जो भय रहता है वह भय इसमे नही रहता। इसका उपयोग बालक और नाजुक प्रकृति की स्त्रिया भी कर सकती है। दूसरा गुण यह है कि इसमे मिठास रहती है। यह मनुष्य की शक्ति को बढाता है और अनेक प्रकार के वायु रोग और प्रदर रोग मे बहुत फायदा पहुचाता है। इन फलो का पाक बनाया जाता है। यह पाक वायु के रोग मे, काम शक्ति की कमजोरी तथा दूसरे रोगो मे भी फायदा करता है। इस पाक को बनाने की विधि इस प्रकार है—

भिलावे के पके हुये फलो को लेकर उनमे से भिलावो को अलग कर देना चाहिये। फिर उन फलो के दो दो चार चार टुकडे करके छाया मे सुखा लेना चाहिए। बाद मे उनको धूप मे सुखाकर पीस कर चलनी मे छान लेना चाहिए। पश्चात् चने का आटा या बेसन १ सेर लेकर उसमे पाव भर घी का मोण डालकर घी मे सेक लेना चाहिये। जब तीन चौथाई सिक जाय तब उसमे भिलावे के फल का चूर्ण पाव भर मिला देना चाहिये। जब वह पूरा सिक जाय तब उसमे भाग का चूर्ण ३ माशे, कालीमिर्च का चूर्ण आधा तोला, इलायची चूर्ण आधा तोला, बादाम की मगज का चूर्ण पाव भर मिला देना चाहिये। इसके बाद उसको उतार कर फिर तीन तारी शक्कर की चाशनी मिला देनी चाहिये। बाद मे ५-५तोले से लेकर १०-१० तोले के लड्डू बना लेना चाहिये। इन लड्डुओ मे से प्रतिदिन १-१ लड्डू प्रातःकाल खाना चाहिये। इस पाक को खाते समय किसी विशेष प्रकार के परहेज की आवश्यकता नही होती।

धात्री भल्लातक वटी—भिलावा ८० तोला, हरड, बहेडा, आवला ४०-४० तोला, सोंठ, मिर्च और पीपल ३०-३० तोला, काले तिल १ सेर और पुराना गुड १ सेर लें। सबको कूट कर गुड मे अच्छी तरह मिला २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

वक्तव्य—भिलावा कूटते समय हाथो मे तैल लगा लेवें। लोहे की कलछी से चलावें और निकालें तिल और दूसरी औषधिया मिलाकर कूटने पर भिलावे के तेल का भय कम हो जाता है। उक्त गोलियों में से १-२ गोली दिन मे २ बार जल के साथ सेवन कराने से आमाशय के विकार, अग्निमाद्य, अपचन, अरुचि, शूल, आमवात सब प्रकार के वात रोग,उपदश अथवा अन्य रोगो से होने वाला सधिवात, अर्धाङ्ग वात, उरुस्तम्भ और सुजाक जनित उपद्रव दूर होते हैं।

चौंचा भल्लातक वटी—भिलावा और इमली समभाग मिला कूटकर २-२ रत्ती को गोलिया बना लेवें। जल न मिलावें। दोनो को मिलाकर कूटने से गोलिया बन सके उतना गीलापन आजाता है। इनमे से १ से २ गोली दिन मे २-३ बार मठा या जल के साथ देवे।

इस वटी से विशूचिका, सग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदशज सधिवात, पक्षाघात, अर्दित वात(मुह रहजाना) मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागत वायु आदि दोष दूर होते हैं। यह विशूचिका की अच्छी औषधि मानी गई है। अन्य रोगो मे भी अच्छा प्रभाव दिखाती है।

चिञ्चिकादि वटी—पकी बीज रहित इमली, मठे मे भिगोकर शुद्ध किया हुआ छिलका रहित लहसुन और भिलावा इन तीनो को समभाग मिलाकर इमली के बीज रहित फली को ८ गुने जल मे भिगोकर निकाले हुए लुआब मे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। इनमे से १-१ गोली १५-१५ मिनट पर प्याज के २-२ तोला रस के साथ देते रहने से ३-४ घण्टे मे कालेरा दूर

होजाता है। यह उपचार रोग होने पर तुरत करना चाहिये। —गा औ र भा १

भल्लातक तेल—५-१० सेर भिलावो को कूट चौडे मुह के घडे मे भरकर मुह पर कपडा बांधें फिर मुह पर भगोना रख चारो ओर सम्हालपूर्वक कपडमिट्टी करे। बाद जमीन मे १ हाथ गहरा गड्ढा कर उसमे भगोना नीचे और घडा ऊपर रहे, उस तरह रख चारो ओर मिट्टी दवा दे। घडे का १ अगुल जितना भाग बाहर रहे शेष सब जमीन मे रहे इस तरह योजना करे। फिर घडे पर तीन घण्टे अग्नि जलावें। तत्पश्चात घडा और जमीन शीतल होने पर भगोने सहित घडे को निकाल ले। यदि भिलावे मे तेल रहा हो तो उसी तरह फिर अग्नि देकर निकाल लें। इस तेल को बोतल मे भर लेवे।

भल्लातक पर्पटी—ऊपर लिखी विधि से तेल निकाल उसे भगोने या कडाई मे भर कर चूल्हे पर चढावें। पहिले तेल पतला होगा फिर गाढा होने लगेगा। गाढा होने पर २-४ बूद जल मे डालें। बाद मे निकाल कर तोडे। टूट जाय तो तेल पक्व जाने। फिर सब तेल को जल पर डाल देने पर पर्पटी बन जायगी। उस पर्पटी को जल मे से निकाल सुखाकर बोतल मे भर ले।

—स्व पं सुखरामदास जी टी ओझा

भल्लातकादि मोदक—भिलावे, काले तिल और हरड तीनो को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर चूर्ण के समान गुड मिलाकर १॥-१॥ माशे के मोदक बनालें। फिर १-१ मोदक सुबह शाम जल या मठे के साथ खाने से १ मास मे रक्तार्श दूर होता है।

भल्लातकावलेह—शुद्ध पके भिलावे १० सेर ले। सबके सरोते से ४-४टुकडे करे। उसमे एक मन जल मिला कर चतुर्थांश क्वाथ करें। उस जल को छान ले। उसमे १ मन दूध मिलाकर खोवा बनावे। पतली रवडी जैसी होने पर उसमे २॥ सेर घी मिलाकर पाक करे। फिर पाच सेर शक्कर मिलाकर ७ दिन रहने दे तब ½-½ तोले दिन मे दो वार दूध के साथ सेवन करावे। यह अवलेह कुष्ठ, अर्श, जीर्णवात व्याधि, अपस्मार और पक्षाघात को दूर करता है। नेत्र दृष्टि बढाता है, अग्नि प्रदीप्त करता है और शारीरिक शक्ति बढाता है।

भल्लातकादि लेप—भिलावा, कसीस, चित्रकमूल छाल, थूहर के मूल की छाल, इन चार औषधियो को समभाग मिला आक के दूध मे १२ घण्टे खरल करके ६-६ माशे की लम्बी गोलियां बना ले। उसे गो मूत्र या जल मे घिसकर लेप करते रहे। यह कठमाला और अर्श के मस्सो को दूर करता है।

घाव तेल—भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन इन सबको ५-५ तोला लेकर ४० तोले तिली के तेल मे भूने फिर कडाही को नीचे उतार कर दूसरे वर्तन मे तैल डाल देवे। शीतल होने पर तेल छान लेवे। यह तेल छुरी आदि से होने वाले आगन्तुक जखम मे से होने वाले रक्तस्राव को तुरन्त बन्द कर देता है।

—गा औ. र भा ३

भल्लातकादि क्वाथ—भिलावा, पीपल और पीपलामूल का क्वाथ पीने से कष्टसाध्य उरुस्तम्भ भी अवश्य शीघ्र हीनष्ट हो जाता है। —भा. भै. र

भल्लातकादि चूर्ण—काले तिल और शुद्ध भिलावा समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे सेवन करने से अग्नि दीप्त होती और कुष्ठ तथा अर्श का नाश होता है।

—भा भै र

भल्लातकादि चूर्ण २—शुद्ध भिलावे के चूर्ण को दही या इमली के पानी के साथ सेवन करने से कृमि रोग नष्ट हो जाता है। भा भै र

भल्लातक मोदक—शुद्ध भिलावा, हर्रे और जीरे का चूर्ण १-१ भाग तथा गुड ६ भाग लेकर सबको एकत्र कूट कर या चूर्ण को गुड की चाशनी मे मिलाकर गोलिया बनावे। इन्हे सेवन करने से ७ दिन मे भयकर तिल्ली भी नष्ट होती है। (मात्रा—१तोला। अनुपान—जल)

भा भै, र

भल्लातक तेलम् १—भिलावा, आक की छाल, कालीमिर्च, सेंधा नमक, वायविडग, हल्दी, दारुहल्दी और चित्रक की छाल का चूर्ण समान भाग मिलित १० तोले, तेल २ सेर और भागरे का स्वरस ८ सेर लेकर

सबको एकत्र मिलाकर पकावे जब रस जलजाये तो तेल को छान लेवे। यह तेल नाडी व्रण (नासूर) कफ वातज अपची (गण्डमाला भेद) और व्रणो को नष्ट करता है।

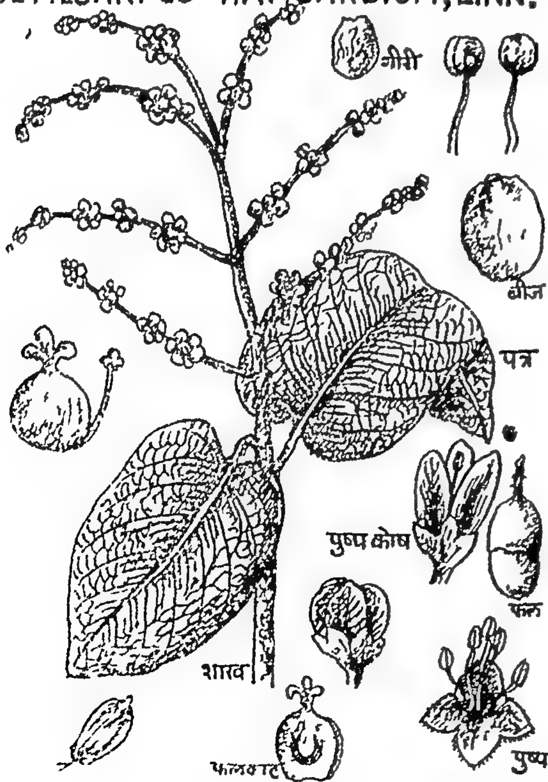
भा भै र

भल्लातक शोथान्तक लेप१—भिलावे के स्पर्श से उत्पन्न हुई सूजन को पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ से या भैंस के दूध मे पीसे हुये तिलो को नवनीत (नौनी घी) मे मिलाकर लेप करने से नष्ट होजाता है।

भा भै र

भल्लातक शोथातक लेप२—तिल और काली मिट्टी अथवा जले हुये तिलो को भैंस के नवनीत (मक्खन) मे मिलाकर उसका लेप करने से भिलावे के स्पर्श से उत्पन्न हुई सूजन नष्ट होती है। भा भै र

भल्लातकादि लेप३—भिलावे अथवा कटेरी के फल



को अत्यन्त महीन पीस कर अरण्डी के तेल मे मिलाले इसमे शहद मिलाकर लेप करने मे गज (इन्द्रलुप्त) थोडे दिनो मे ही नष्ट हो जाती है। भा भै र

भल्लकादि लेप४—भिलावा, कसीस, चीता, दन्ती मूल और गुड समान भाग लेकर सबको अत्यन्त महीन पीसकर सेहुड [थूहर] और आक के दूध मे मिलाकर लेप बना ले। इसे लगाने मे गण्डमाला इस प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे पवन के वेग मे मेघमाला।

भा भै र

भल्लातकामृतम्—शुद्ध भिलावे ४ सेर, दूध ८सेर पानी ३२ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावे जब दूध मात्र शेष रह जाय तो उसे छानकर उसमे ८सेर घी और १ सेर मिश्री मिलाकर पुन पकावे और जब वह गाढा हो जाय तो उसमें १ सेर शहद, १ सेर आवले का चूर्ण, आधा सेर हरड का चूर्ण तथा पाव पाव सेर (२०-२० तोला) लोह भस्म और गिलोय सत्व मिलाकर सबको बरनी मे भरकर उसका मुह बन्द करके अनाज के ढेर मे दबादे और ७ दिन पश्चात् निकाल कर काम मे लावे। इसको १। तोले की मात्रा मे सेवन करने से रक्तार्श अवश्य नष्ट हो जाता है। इसके सेवन काल मे क्षार और तीक्ष्ण पदार्थो मे परहेज करना चाहिये तथा शरीर पर तेल मर्दन करना चाहिये।

भा भै र

भल्लातक सिद्ध हिंगुल—४० तोले भिलावे को २-२ टुकडो मे काटकर लोहे की कडाही मे फैला दे। इस पर ४० तोले हिंगुल के ५-५ तोले वजन के ८ टुकडे कुछ अन्तर से रखदे। इस पर ४० तोला एरड तेल, ४०तोला घृत, ४० तोला मधु डालकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब इसमे से ज्वाला निकलने लगे तब अग्नि देना बन्द करदे और स्वाग शीत होने पर हिंगुल के टुकड़ोकोवस्त्र से पोछ ले, इसको २-३ दिन खरल मे घोटें। यही है भल्लातक सिद्ध हिंगुल। —वैद्य यादव जी त्रिकम जी

संग्रहणी मे—जायफल, जायपत्री चूर्ण ४०-४० तोला मिला कर देवे। उदर, आनाह, कृमि रोग मे पथ्या, विडग इन दोनो का समभाग चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। अनु-

लोमनार्थ दधिजल (मस्तु) के साथ देना चाहिये। एरंड तेल, शहद, घी आदि त्रिदोषघ्न द्रव्यों के संस्कार हिंगुल मे होने से त्रिदोषज जीर्ण विकारो मे यह अति लाभप्रद सिद्ध होगा। जिन रोगो में भिलावा उपयुक्त माना गया है उन सब विकारो मे लाभदायक सिद्ध होगा। मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा मे इसका सेवन करे।

—आ० पत्रिका

यूनानी माजून बलादर—तिल छिले हुये ४ तोला शीरा भल्लातक, मगज वादाम, मगज चिलगोजा, असगध अकरकरा, पान की जड, जावित्री ३-३ तोला, जायफल, सोठ, साहलब मिश्री २-२ तोला, पिप्पली, मस्तगी, हालो बीज प्रत्येक १॥ तोला, गाजर बीज, अजरा बीज, कौंच-बीज, केशर १-१ तोला, समुद्र शोष, कस्तूरी ६-६ माशा शक्कर औषधि मान के सम भाग, मधु द्विगुण लेकर यथा विधि पाक कर औषध चूर्ण मिलाकर माजून वनावे। मात्रा ९ माशे से १ तोला।

गुण—पुंसक शक्ति तथा सब शरीर को बल देती है।

हरड, बहेडा, आवला, २-२ तोला, बालछड, वच, चुकन्दर, कालीमिर्च, सौठ और भिलावे का शहद (भिलावे के अन्दर रहने वाला काला रस) १॥-१॥ तोला। इन सब चीजो को कूटकर इनमे थोडा सा बादाम रोगन मिलाले, फिर इसमे भिलावे का शहद मिलाकर सब चीजो मे जितना वजन हो उससे तिगुने शहद मे माजून बनालें और उसको जौ के ढेर मे गाढ दे। ६ मास के बाद उपयोग मे लेवें। इसकी मात्रा ४ माशे की हे।

नुकरूयाकबीर, अकरकरा, कलौजी, कूठ, कालीमिर्च पीपल और वच प्रत्येक तीन-तीन तोला। पाषाण भेद हीग, जराविद मुदहरज, हुब्बुलगार, जुन्दवेदस्तर, राई और चित्रक छाल, हरएक १॥-१॥ तोला, भिलावे का शहद १। तोला, इन सब चीजो को कूट-छान कर अखरोट और तेल मे तर कर ले और फिर तिगुने शहद मे माजून बनाले। ६ माह के बाद इसको ४॥ माशे की मात्रा मे उपयोग मे लावें।

—ब च भा ७

भिलावे के उपद्रव और शांति

भिलावे कोअधिकमात्रा मे लेनेसे गर्मी, खुजली, भीतरी सूजन और बैचेनी पैदा हो जाती हे तथा हलक और जवान मे छाले पैदा हो जाते हे। इसके उपद्रवो को दूर करने के लिये गाय और बकरी का ताजा मक्खन और तिलो का तेल खिलाना चाहिये और बदन पर मालिश करनी चाहिये। जदवार को गाय के दही मे मिला चटाना चाहिये, नाक मे रोगन बनफ्शा और रोगन बादाम टपकाना चाहिये। सिर पर ठण्डी चीजो की मालिश करनी चाहिये। भिलावे की वजह से घाव पडजाय तो उस पर मोम का तेल लगाना चाहिये। अगर सूजन हो तो मरवे के पत्तो का लेप करना चाहिये। इमली के पत्तो का रस पिलाने से भिलावे का जहर मिट जाता है। इमली के दरख्त की अन्तरछाल को दही मे पीस कर भिलावे से उत्पन्न फोडे फुसियो पर लगाने से बहुत जल्दी आराम हो जाता है। इमली की छाल, पत्ते और फल भिलावे के लिये उत्तम दर्पनाशक वस्तुये है।

भुंइ अरण्डी (Sebastiania Chamaelea)

एरंडादि कुल (Euphorbiaceae) की जाति की एक वर्ष जीवी छोटी वनस्पति है। इसके पत्ते २ से लेकर ५ से १० से० मी० तक लम्बे और ४ से लेकर १ से ३ से० मी० तक चौडे होते हे। इसके फल पीले रग के होते है। इसके बीज पीले दोनो किनारे से गोल और ४ मिलीमीटर लम्बे होते हे। यह वनस्पति कोकण, बिहार और श्रीलंका मे पैदा होती हे।

नाम—

हिं०—भुइ अरंडी। कोकण—भुइ अरटी। ले०—सबस्टेनिया चेमेलिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके पौधे का रस शराब के साथ मिलाकर एक सकोचक वस्तु की तरह काम मे लिया जाता है। इसके रस से सिद्ध घृत पौष्टिक माना जाता है और सिरके चक्कर को दूर करने के लिये इसका लेप मस्तक पर किया जाता है।

मुंई आंवला (Phyllanthus Niruri Linn)

गुडूच्यादि वर्ग और एरण्डादि कुल (Euphorbiaceae) के भूमि आवले के क्षुप वर्षा ऋतु मे खेतो और जगलो की आर्द्र भूमि मे निकल आते हैं। यह भारत के सब उष्ण प्रदेशो मे होता है। ऊचाई पौन से डेढ फीट। पान-फीके हरे विविध प्रकार के आवलो के पत्तो के समान लम्ब गोल और सकरे होते है। अत भूम्यामलकी कहा है। पान और फलो का आकार लगभग आवले सदृश किन्तु वहुत छोटा सरसो के वरावर, पत्तो के पिछले भाग मे सीक पर पीले रङ्ग के छोटे छोटे फल आते है जिनका स्वाद आवले के समान होता है। इनकी सख्या वहुत होती है अत 'वहुफला' कहा है। नर पुष्प १ से ३ तक साथ मे। पखडिया ४ से ६। पुकेसर ३। मादा पुष्प एकाकी। गर्भाशय ३ कोष युक्त। फूल–हरे या सफेद प्रभावाले। फूल-फल—वर्षा ऋतु मे। वरसात के अन्त मे यह वनस्पति सूख जाती है। इसलिये इसको कार्तिक मास मे सग्रह करके सुखाकर रख लेना चाहिये।

उपयोगी अङ्ग—सर्वांग। साथ प्रदत्त चित्र अवलोकन करें।

नाम–

स०—भूम्यामलकी, शिवा, ताली, सूक्ष्मफला। हि०—भुई आवला, भद्र आवला, पातल आवला, जराम्ला वं०—भुई आवला। ववई—भुई आवला। गु०–भोय आवली। म०–भुई आवला। ता०—कील कायनेल्ली। ते०—नेल नेल्नी। उर्दू–भुई आवला। ले०–फिलैंथस निरूरी (Phyllanthus niruri Linn)।

गुणधर्म व प्रयोग–

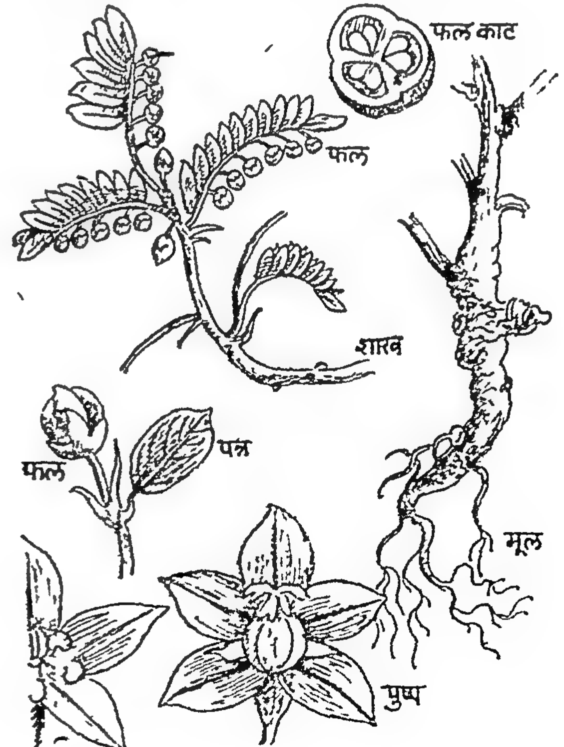
भूधात्री रस मे मधुर, अनुरस कडवी, रुचिकर, लघु, शीतवीर्य, पित्तशामक, कफनाशक, रक्त प्रसादन और दाहशामक है। नेत्ररोग व्रण, शूल, प्रमेह, मूत्ररोग, प्यास, कास, पाडु, क्षत और विष को दूर करता है।

भुई आवला वातकारक, कडवा कषैला, मधुर, शीतल और तृषा, खासी, पित्त, रुधिर विकार, कफ, खुजली तथा दाह नाशक है —भाव प्रकाश।

यूनानी मतानुसार—यह वनस्पति अग्निवर्धक और फोडे फुसी तथा आमातिसार मे वहुत लाभदायक है। इसका फल कडवा होता है और यह क्षयजन्य व्रण, चोट, रगड, खाज और दाह मे उपयोगी है।

डा देसाई के मतानुसार—भूधात्री दीपन, पाचन, मूत्र जनन, स्रशन, दाह शामक, व्रण रोपण, शोथ हर और नियत कालिक ज्वर प्रतिवन्धक है। ए जे अमादेव ने फरमास्यूट जनरल मे सन् १८८८ के अप्रैल मास के अङ्क मे लिखा था कि यह दीर्घकाल स्थायी पार्यायिक ज्वरो को जिनमे यकृत और तिल्ली की वाधा भी होती है, वहुत लाभ पहुचाता है। यदि इसको ठडी हालत मे वार वार लिया जाय तो यह मूत्रल औषधि का काम भी करता है। इसकी ताजी जड पीलिया की एक उत्तम दवा मानी

मुई आवला
PHYLLANTHUS NIRURI LINN.



जाती है। कर्नल चोपरा के अनुसार—भुई आवला जीर्ण आमातिसार, जलोदर, अत्यधिक रज. स्राव और घावो के ऊपर काम मे लिया जाता है। इनके पत्तो की साधारण मात्रा ३॥ माशे की है। चूर्ण ४ से ६ माशा। क्वाथ ५ से १० तोला।

प्रयोग—

कामला—इसकी १। तोला ताजी जड को दूध के साथ पीस छानकर दिन मे २ बार पिलाने से कामला रोग मिटता है।

जलोदर—इसके पचाग का क्वाथ बनाकर पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर जलोदर मिटता है।

रक्तप्रदर—इसकी जड के चूर्ण को चावलो के पानी के साथ २-३ दिन तक देने से रक्त प्रदर मिटता है।

—वगसेन

मूत्रकृच्छ्र—भुई आवले के स्वरस २ तोला को २ तोले गोघृत के साथ मिलाकर प्रात साय पिलाने से मूत्र शुद्धि होती है और मूत्रदाह शमन होता है। इस प्रकार मूत्राशय शोधन से यह हितावह है।

हिचकी श्वास में—भुई आवले की जड को पानी मे पीसकर उसमे शक्कर मिला लेने से तथा नस्य लेने से हिचकी और श्वास रोग दोनो मिट जाते है।

—चरक चि० अ० २

आंख की पीडा—तावे के बरतन पर भुई आवला को सेंधा नमक के साथ जल मे घिस कर के (जब तक गाढा हो जाय तब तक घिसकर) आख के बाहर लेप करने से आखें ठीक हो जाती हैं।

—चक्रदत्त

भुंई आंवला लाल (Phyllanthus Urinaria)

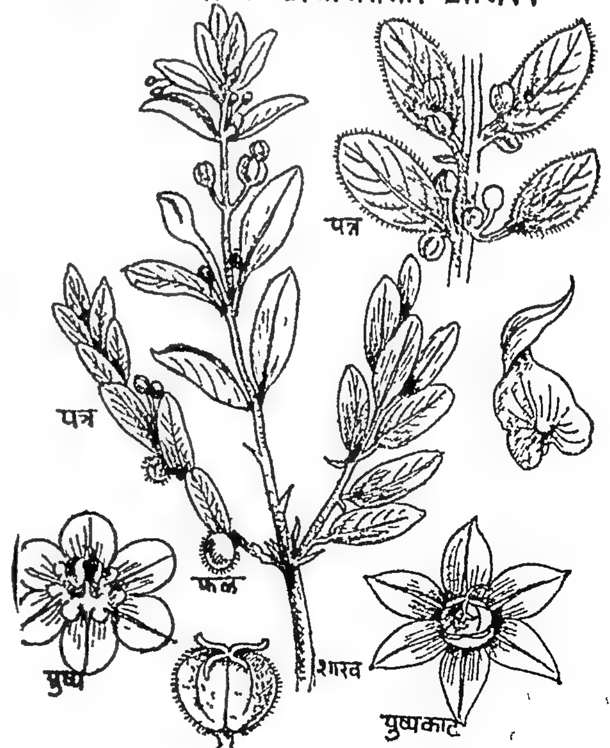
गुडूच्यादि वर्ग और एरडादि कुल (Euphorbiaceae) की भुई आवले की एक दूसरी जाति है। इसके क्षुप भुंई आवले से मिलते हुए किन्तु कुछ ललाई लिये हुए होते हैं। जिसमे फल खुरदरे होते हैं। जिसका लेटिन नाम फाइलेन्थस युरिनरिया है। यह भी भारत के समशीतोष्ण प्रदेशो मे सर्वत्र होता है। इसके पान, फूल, ये सब बिना डठल के उक्त निरूरि जाति की अपेक्षा बड़े-बडे होते हैं। क्षुप की ऊचाई निरूरि जाति के समान ६ से १८ इंच, तना और फूल रक्ताभ होते हैं। फूलने फलने का समय जुलाई से दिसम्बर तक। चित्र साथ मे प्रकाशित है।

नाम—

हि०—लाल भुई आवला, हजारमनी। गु०—खरसट, भुई आवली। म०—लाल मुडज आवली। पारवन्दर—कडार आवली। ले०—फाइलेन्थस युरि नरिया।

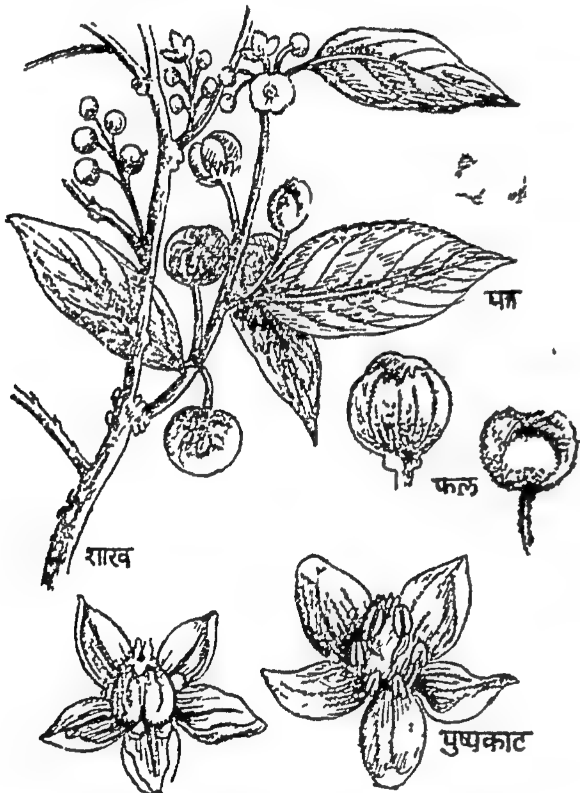
गुणधर्म व प्रयोग—

इसके गुण धर्म भुई आवले के समान ही होते है। इसके सूखे पौधे का काढा चाय के चम्मच की मात्रा मे कामला रोग को दूर करने के लिये दिया जाता है।



इसका पौधा जलोदर के रोग मे मूत्रल औषधि की तरह बहुत उपयोग मे लिया जाता है। सुजाक और मत्र सबधी दूसरी बीमारियो मे भी इसका बहुत उपयोग होता है।

भुंई आंवला बड़ा (Phyllanthus Simplese)



गुडूच्यादि वर्ग और एरंडादि कुल (Euphorbiaceae) की भुई आवले की तीसरी जाति का लेटिन नाम फाइलेन्थस सिम्पलेक्स है। इसके पौधे भुई आवला के पौधे से कुछ बडे होते हैं। इसकी ऊचाई १ से ३ फीट। इसकी डालिया कुछ पतली सी और दबी हुई होती है। इसके फूल भुई आवला के समान। नर पुष्प २ साथ मे, स्त्री पुष्प का दण्ड प्रत्येक गुच्छे मे से निकलता है। फल भी भुई आवले के समान ही होते हैं। फूल फल अगस्त से दिसम्बर तक आते हैं। इन तीनो मे पहली जाति जिसका लेटिन नाम फाइलेन्थस निरुरि है गुण मे अधिक मानी गई है। उपयोगी अग पञ्चाग। मात्रा–डेढ से तीन माशे।

नाम–

हि०—भुई आवला बडा। गु०–मोटी भोय आवली। म०—मोटी भुई आवली। काठियावाडी—मोटी मोइ आवरी। ले०—फाइलेन्थस सिम्प्लेक्स।

गुणधर्म व प्रयोग–

इसका पंचाग जीरा और मिश्री इन तीनो को समान लेकर पीसकर एक चाय के चम्मच की मात्रा मे दिन मे २ वार सुजाक को मिटाने के लिये दिया जाता है।

भुंई कन्द [पहाड़ी कंद] (Scilla indica)

यह कोल कन्द कुल (Lilicaeae) का एक कन्द है इसका पौधा भी कोल कन्द की तरह होता है। इसका कद कोली कद से कुछ छोटा सफेदी लिये हुये भूरे रग का परतदार और जायफल के आकार का होता है। इसका कद बहुत मुलायम होता है। पहिचान के लिये चित्र अवलोकन कीजिये।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति विहार, मध्यभारत, छोटा नागपुर और पश्चिमी भारत मे पैदा होती है।

नाम–

हि—भुइकंद, पहाडी कद। वबई—भुइकंद। व.—

मुफेदीखस । ले —स्किला इंडिका (Scilla indica Baker) ।

गुणधर्म व प्रयोग—

इस वनस्पति के कद मे प्राय वे सब तत्व मौजूद रहते है । जो कोली कद के अन्दर पाये जाते है । चोपरा और दे ने सन् १९२६ मे इस वनस्पति का परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि ब्रिटिश फारमाकोपिया मे दर्ज अर्जिनिया स्क्विला (कोली कंदा) और अमेरिकन फारमाकोपिया मे दर्ज अर्जिनिया मार्टिमा (कोली कदा) से यह वनस्पति किसी कदर कम नही है। अन्तर इतना ही होता है कि कोली कद के ऊपर झिल्ली रहती है और भूमिकंद मे प्याज के समान ऊपर से नीचे तक परत रहते है । यह रस मे कड़वा और वमनोत्पादक हे । यह कफ को निकालने वाला- हृद्य, वलकारक और मूत्रल है ।



भुई कन्द
SCILLA INDICA BAKER

भुइ खाखसा (Cassia Augustifolia)

यह शिम्बी कुल (Leguminosae) की सनाय की एक देशी जाति होती है जो भारत के कुछ भागो मे वोयी जाती है । इसके पत्र उत्तम जाति की सनाय के स्थान पर वेचे जाते हैं ।

नाम—

स —मार्कडिका, मृदुरेचनी, पीत पुष्पी । हि —भुइ खाखसा । गु —मीढी आवल । म —भुह तरवड । ते —नेलापोन्ना । व —सेनामकी, सोनपात । फा —सनाये हिन्दी । अ —Bombay Senna । ले —केसिया ओगस्टी फोलिया ।

गुणध धर्म प्रयोग—

इसका पौधा कब्जियत को दूर करने वाला और भूख वढाने वाला होता है । यह उदरशूल, यकृतरोग, प्लीहा की वृद्धि, अजीर्ण, अम्लपित्त, पीलिया, पाडु रोग, कुष्ठ, विप विकार, खासी, श्वास की दुर्गन्ध, अर्वुद मे लाभदायक है ।

भुंई गली (Indigofera Enneaphylla)

यह शिम्वी कुल (Leguminoceae) की वनस्पति हैं इसके पौधे वरसात मे वहुत पैदा होते हे । इस पौधे की ऊचाई आधे से लेकर डेढ फीट तक होती है। इसके पत्ते सरपखे के पत्तो की तरह होते हैं । इसके फूल लाल रग के सुन्दर पतग के आकार के और फलिया छोटी होती हैं। हर एक फली मे दो-दो वीज रहते हैं।

नास–

स —वासुका। हिं —भुईगली। म –भुईगली। गु – भोयगली। ता —चेप्प निरंजी । तेल.—चेरायेड्डमु। ले —इडिगोफेरा इनेफिला (Indigofcra Enneaphylla Linn)।

गुणधर्म और प्रयोग–

इसके वीज वहुत पौष्टिक माने जाते हैं। अकाल के समय गरीव लोग इन वीजो को खाते हैं। इसके पौधे का रस–मूत्रल, रक्तशोधक और चिरगुणकारी पौष्टिक वस्तु की तरह काम मे लिया जाता हे। इसके पौधे का रस रक्तातिसार नाशक, धातु परिवर्तक और मूत्रल वस्तु की तरह उपयोग मे लिया जाता हे। मैथुन शक्ति की कमजोरी मे यह धातुपरिवर्त्तक औपधि की तरह काम मे ली जाती है। कुष्ठ रोग मे भी इसका उपयोग होता है।

भुंई चम्पा (Kaempferia rotunda)



यह सोठ कुल (Zingiberacese) का विस्तृत सुगधित फूलो का क्षुप होता है। यह वाग वगीचो मे कई स्थानो पर लगाया जाता है। इसके पत्ते १२ इच लम्वे तीन चार इच चौडे, हरे गाढे पीतवर्ण और वैंगनी रग विशिष्ट होते है। पुष्प दण्ड का पत्र लम्वा, फूल लम्वे गध युक्त श्वेत वर्ण । इसकी जड़ के वीच गोल गोल गठानें होती हैं। उन गठानो मे से वहुत सी मासल और मोटी जडें फूटकर उनके समान कन्द वन जाते हैं। इनका स्वाद कडवा होता है। औपधि प्रयोग मे इसका कन्द काम आता है। ग्रीष्म काल मे फूल और वाद मे फल आते हैं। चित्र इसका साथ दिया गया है।

उत्पत्तिस्थान—छोटा नागपुर, पार्श्वनाथ पहाड, चिटग्राम, समग्र भारत मे लगाया तथा कृषि की जाती है। आदि वास स्थान—दक्षिण पूर्व एशिया।

नाम–

स —भूमि चपक। हि —चन्द्रमूला । ब.—भुईचापा। ते —कोंडा कारवा। ले —कॅंफेरिया रोटुडा।

गुणधर्म और प्रयोग–

आयुर्वेद मत से यह वनस्पति शोथनाशक और व्रण रोपक होती है। इसके कन्द का पुल्टिस वनाकर फोडो को पकाने से लिये उन पर वाधा जाता है। इसके सारे पौधे को पीसकर उसका लेप वनाकर ताजे जख्मो पर वाधने से चमत्कारिक रूप से जख्म भर जाते हैं । भीतरी प्रयोग



करने मे यह हर प्रकार के रक्त के जमाव को दूर कर देती है। इसकी जड़ सर्वांगीय शोथ मे लाभदायक होती है। सारे भारतवर्ष मे यह विश्वास किया जाता है कि इसका कद सूजन को दूर करने मे बहुत उपयोगी है।

भुंई जाम (Ardisia Humilis)

यह वायविडंगादि कुल (Myrsinaccae) की एक झाड़ी होती है। इसके पत्ते बडे होते हैं। यह वनस्पति कमीबेश सारे भारत मे पैदा होती है।

नाम—

हिं०—भुईजाम। व०—वनजाम। मध्यप्रदेश—मयारवा। मल०—मोलाक्का। उड़िया—भुइजामू, भुइजाम। ता०—मानेपुडवाम। ते०—कोडा मयूरी। ले० अरडीसियो ह्यू मिलिस।

गुण, धर्म व प्रयोग—

यह वनस्पति उत्तेजक और शातिदायक होती है डा० चोपडा ने ज्वरघ्न, अतिसारघ्न और वातघ्न लिखा है। (व. च०)

भुँइ दरी (Tylophora Fasciculata)

यह आक कुल (Asclepiadaceae) की एक छोटी वनस्पति है। इसकी डालिया जमीन मे ही फूटती हैं।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति मध्यभारत से लेकर सिलोन और गगा के उत्तरी मैदानो मे होती है।

नाम—

हिं०— भुइदरी। व०—भुइदरी। ले०—टिलोफेरा फेसिक्युलेटा (Tylophora Fasciculata)

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसकीजडका रसदूधमे मिलाकर पौष्टिक वस्तुकीतरह दिया जाता है। इसके पत्तो को कुचलकर लेप के रूप मे दुष्ट व्रण और जख्मो मे स्वस्थ मासाकुर पैदा करने के लिये लगाया जाता है।

भूमि कुम्हड़ा (Trichosanthus Cordata)

यह पटोलादि कुल (Cucurbittaceae) की पराश्रयी बेल है। जो गगा के उत्तरी मैदानो मे और हिमालय मे नेपाल से बगाल तक पैदा होती है। इसकी लता बहुत दूर तक फैली हुई होती है। काड मे गहरे रोयें होते हैं। पत्र ६ से ८ इच तक लम्बा, किनारे करोती के दातो के समान होते है। आकडी [तातिये] १ से २ फीट लम्बाई मे। आकडी मे ३ प्रशाखा होती हे। फूल-एक लिंग विशिष्ट। पुष्प-दण्ड—४ इच लम्बा अतिशय सख्त। पुष्पपत्र पर घने रोये होते है और यह डेढ इच लम्बा होता है। फल—लाल इन्द्रवारुणि केसमान उज्जवल लाल वर्ण के, मस्तक नारगी रग विशिष्ट। इसका कद स्वाद मे तिक्त, कटु और कषाय, देखने मे पीत वर्ण का वडिशाल और चट ग्राम के लोग इसको भूकामडा कहते हैं। प्राकृत भूमि कुष्माड स्वाद मे मधुर एव उसके कद मे श्वेत वर्ण का दूध होता है, कद देखने मे श्वेत वर्ण का होता हे।

प्राकृत भूमि कुष्माड का लेटिन नाम (Ipomoeadigitata Linn अथवा Convolvulus pauecatala Lim] यह बङ्गाल मे सर्वत्र होता है। शालिग्राम वैद्य कहते है कि इसका कन्द मूली के समानवर्ण—रक्त और श्वेत एव प्रति शाखा के ७-८ पत्र होते है। वही क्षीर विदारी [Ipomoeadigitata] इसका भुई कुम्हडा नाम सार्थक नही है। भूमि कुष्माड [Ipomoea digitata] ही हे।

नाम–

हि०—भूमि कुम्हडा । स०–विदारी । व–भुईकामडा ले०—ट्रिकोसेन्थस कोरडेटा ।

गुण धर्म और प्रयोग–

इसकी जड का उपयोग पौष्टिक वस्तु की तरह किया जाता है। ढाका मे उसकी जडको सुखाकर उसका चूर्ण करके ४ रत्ती की मात्रा मे तिल्ली, यकृत और आतो की खराबी को दूर करने के लिये देते है। इसकी ताजी जड को तेल मे मिलाकर उसका लेप कुष्ठजनित व्रणो पर किया जाता है।

भूत केशी (Corydalis govaniana)

यह पर्पटादि कुल (Fumariacae) की वनस्पति हिमालय मे काश्मीर से लेकर कुमायू तक ८ हजार से १२ हजार फीट की ऊचाई पर पैदा होती है। फूल पीले रग के, दूध पीले रग का, स्वाद वहुत कडवा होता है । औषधि मे इसकी जडे काम मे आती है। पहचान के लिये चित्र देखिये ।

नाम–

स०—भूतकेशी । हि०—भूतकेशी, भूतकिस । प०—भूतकेसी । व०—भूतकेशी । ले०—कोरिडेलिस गोवेनियेना ।

गुण, धर्म और प्रयोग–

इसकी जड पौष्टिक, मूत्रल, धातु परिवर्तक और पार्य्यायिक ज्वर निवारक मानी गई है । यह उपदशजन्य विकृति कण्ठमाला और चर्म रोगो मे उपयोग मे ली जाती है।



भूत केशी
ELAEODENDRON GLAUCUM PERS

भूतिया बादाम (corylus colurna)

यह वटादि वर्ग, भोजपत्र कुल [Betulaceae] का छोटा वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रग की और पतली होती हे।

उत्पत्ति स्थान—यह वृक्ष हिमालय मे काश्मीर से कुमायू तक पाच हजार मे दशहजार फीट की ऊचाई तक पैदा होता हे ।



नाम—

हिं०—भूतिआबादाम। गढ़वाल—कावसी। कुमायू भूतिया बादाम। काश्मीर—विनरी, थागी। ले०—कोरिलस कोलुर्ना (Corlus colurna Linn)

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके फल पौष्टिक वस्तु की तरह उपयोग मे लिये जाते है।

मेदस (Eugenia spicata)

यह लवगादि कुल (Uyrtaceae) की एक वनस्पति है। इसका वृक्ष मध्यम कद का और झाडीनुमा होता है। जब इस पर फूलो की बहार आती है तब यह बहुत सुन्दरमालूमहोताहै।इसकेफूल सफेद रंग केहोते है। इसका फल मटर के आकार का बिलकुल सफेद और एक बीज वाला होता है। यह वनस्पति उडीसा, सिलहट और सीलोन मे पैदा होती है।

नाम—

म०—भेदस। उ०—सागरवटना। ता०—मरूगी म०—नयारा, कन्नड—नेरकल। ले०—युगेनिया स्पिकेटा [Eugenia spicataLam] ता०-मरूगी

गुण, धर्म व प्रयोग—

इसके बीज उत्तेजक, सधिवात को नष्ट करने वाले और उपदशज विष को दूर करने वाले होते है। इन गुणो के कारण इण्डोचायना मे इस वनस्पति का वहुत प्रचार है।

भेरी—देखो-चिल्ला न० १

भोजपत्र (Betula Bhojapatra)

यहवटादिवर्ग, भोजपत्रकुल (Betulaceae) का एक यह छोटी जाति का झाडीनुमावृक्ष होता है। वृक्ष की छाल को ही भोजपत्र कहते है। यह कागज के समान अथवा केले के सूखे पत्ते के समान होता है। पहले जब कागज नही बनता था तब भोजपत्र काही कागज के स्थान पर व्यवहार किया जाता था। पहिचान के लिये चित्र साथ मे दिया जा रहा है।

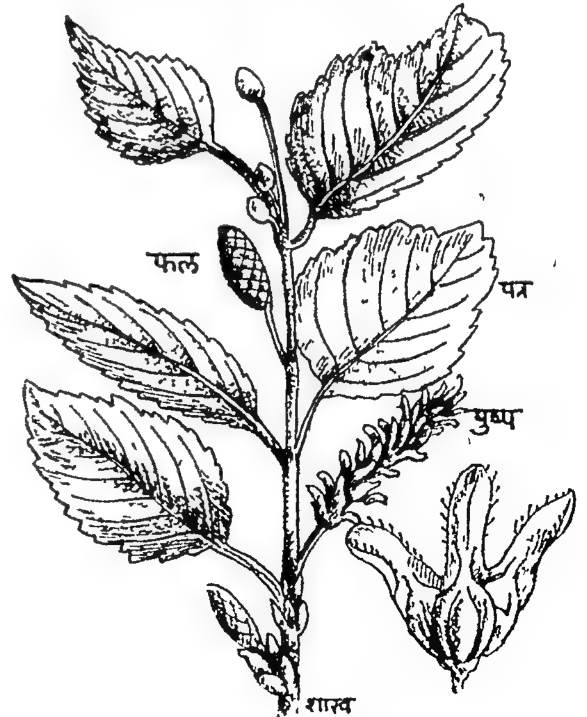
उत्पत्ति स्थान—यह हिमालय मे ७ हजार फीटसे १३ हजार फीट की ऊचाई पर काश्मीर से सिकिम तक और ९हजार से १४ हजार फीट की ऊचाई तक भूटान मे होता है।

नाम—

स—भूर्जपत्र। हिं—भूजपत्र। बबई-भोजपत्र। ब—भूजपत्र। ते—भूजपत्री। म—भूर्जपत्र। गढवाल—भूज। प—भूज। ले—बेटुला भोजपत्र (Betulabhojpatra wall)

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी छाल कसैली, चरपरी, गरम, पौष्टिक, भूतघ्न, आक्षेप, कास, कर्ण रोग, कुष्ठ और त्रिदोष को दूर करने वाली होती है।



यूनानी मतानुसार—भोजपत्र कर्णशूल मे लाभदायक होता है। इसकी छाल का काढा कान से वहने वाली पीप और जहरीले जख्मो को धोने मे प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल का शीत निर्यास हिस्टेरिया मे उपयोगी और शातिदायक माना जाता है। इसमे कुछ सुगधित और कृमिनाशक तत्व रहते है। मलाया मे इसकी छाल का काढा पीलिया या पित्त ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है।

भोमा (Glochidion Hohenackeri)

यह एरडादि कुल (Euphorbiaceae) का एक मध्यमकद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते ६ ३ से लेकर १५ सेंटी मीटर तक लम्बे और २ ५ से ४ ५ सेंटीमीटर तक चौडे होते है इसके फूल कुछ हरापन लिये हुये पीले रग के होते है। बीज लाल रग के और मुलायम होते है।

नाम—

म भोमा। मल —कुलुचन। उडिया—कलचिया। ले०—ग्लोचिडिओनहोहेनेकेरी (Glochidion Hohenache Neri Bedd)

गुण धर्म और प्रयोग

इसकी छाल उस समय औषधि के रूप मे दी जाती है। जबकि पेट मे भोजन का पाचन नही होता और पेट भोजन के विरुद्ध विद्रोह करता है।

भोरी लोध (Combretum Pilosum)

यह हरितक्यादि कुल (Combretaceae) की एक प्रकार की झाडी होती है। यह कन्छार जिला और आसाम मे पैदा होती है।

नाम—

हि—भोरीलोथ, थूनिया लोथ। ले—कोम्ब्रेटम-पिलोसम (Combretum Pilosum Br)

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके पत्तो का काढा कृमिनाशक औषधि की तरह काम मे लिया जाता है।

भोपाथरी देखो वनगोभी

भोलन (भ्रमरछल्ली) (Hymenodictyon Excelsum)

मजीठकुल (Rubiaceae) का यह एक वडी जाति का वृक्ष होता है। इसकी ऊचाई ३० फुट से ५० तक होती है। और इसके पिड की गोलाई ६ से लेकर ८ फुट तक होती है।। वृक्ष वहुत शाखा प्रशाखा युक्त होता है। अवध और उत्तर प्रदेश मे इसकी लम्बाई और गोलाई वहुत अधिक होती है। इसकी छाल दलदार, पोची, वाहर की ओर भूरे हरे रग की, भीतर की सफेद तथा हल्के लाल रग की होती है। इसके पत्ते आमने सामने ६ से लेकर १२ इन्च तक लम्बे, ३ से ५ इन्च चौडे, डण्ठल की तरफ से गोल और दूसरी तरफ से कुछ लम्बे और मुलायम होते है। कही २ साग के पान के समान १ से १½ फुट जितने लम्बे होते है। उपपान चौडे और दातेदार होते है। इसके फूल शाखाग्र या पत्र कोणोद्भू गुच्छो मे लगते हैं। ये कुछ हरापन लिये सफेद रग के और सुगन्ध युक्त होते हैं। पुकेसर ५, छोटी पुष्प नली मे होते हैं। फल—¾ इन्च लम्बा, देखने मे मटर के समान किंतु लम्बाई मे दुगुना होता है। फल के अन्दर ७ से १२ बीज होते हैं। इसके वृक्ष मे घाव करने से इसकी नसो से एक जात का प्रवाह झरता है वह भूरे रग का और चिकना होता है। वास मधु के समान और स्वाद कड़ुवा होता है। उपयोगी अ श पत्र, छाल। पहिचान के लिए चित्र अवलोकन करें।

उत्पत्ति स्थान—मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, टेनासरिम, चटगाव, तिरुहत, हिमालय की पर्वत श्रेणियो मे एव सूखे प्रदेशो के पहाड़ी भागो मे होते है।

नाम—

म —भ्रमरछल्लिका, भ्रमरछली, भ्रमरा, भृगमूलि-

का, भृगाव्हा, छालि, उग्रगन्धा । हिन्दी—भमरछाली, भ्रमरच्छली, बदारू, बौरगा, भेलन, भामिनी, भौलन, भुरकुल, धौली, फलदु । ब०—कुकुरकट्ट । बबई—काला-कडु, काला करवा । मध्यप्रदेश—बोहर, पोतुर, वदारी । मराठी—भवरछाल, भौरछाल, भ्रमरसालि, भुरसाल दोन्द्र कर्णाटिकी—उप्युशक्के । पजाब—बरथोआ, थाब, भुरकुर । श्री—गुजरात मरसाल, डोड्रो । देहरादून—भौलन। तमिल—विलारी, सगाप्पु । तेलगू—बदारू, बगरू । लें—हिमिनोडिक्टीअन एक्सेलसम ।

गुण धर्म और प्रयोग—

भ्रमरच्छली की गीली छाल—कटु, गरम, दीपक, रुचिकारक, तिक्त और वल्य है । (शा. नि.)

इसकी छाल का क्वाथ रुचिकारक और भूख को बढ़ाता है । गले के रोगो को दूर करता है और हर प्रकार की गठानो को मिटाता है ।

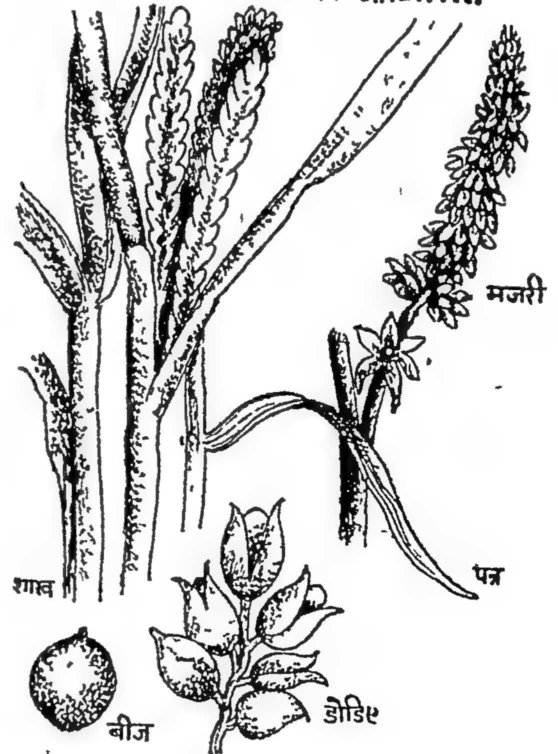
यह बहुत ही ग्राही और उग्र ज्वर मे सिनकोना के समान लाभ करती है ।

इसकी छाल को औटाकर पिलाने से तिजारी और दूसरे पर्यायिक ज्वर मिटते है ।

डा० ओ० शोगनेशी लिखते है कि ज्वर के लिये यह बहुत उत्कृष्ट और परीक्षित दवा है ।

मक्र [मंडुआ] (Eleusine Coracana Mill)

यह धान्य वर्ग और तृण धान्यादिकुल (Gramineae) का एक जाति का धान होता है जो मारवाड आदि मे कृषि द्वारा पैदा किया जाता है। परिचय के वास्ते चित्र आपके सामने है।



नाम—

सं—बहुपत्रका, भूचरा, गुच्छा, रागी, राजिका । हि—मक्र, मडुआ । म—नाचनी, नागली । गु नागली, नबटोगली । कोकण—नाचनी । प—कोदा, कोदरा । फा—मडुआ । ब—मरुआ । ते—रग्गूलू । ले—इल्यूजिन कोरेकेना ।

गुण धर्म व प्रयोग—

आयुर्वेदीय मत से मडुआ कसैला, कडुआ, मधुर, तृप्तिकारक,हलका, बलकारक, शीतल, पित्तनाशक, त्रिदोष निवारक और रुधिर के दोषो को दूर करने वाला होता है । कमर के दर्द मे इसकी पेया बनाकर देने से लाभ होता है । अफ्रीका मे इसके बीजो का काढा गुर्दे के दर्द को दूर करने के लिये उपयोग मे लिया जाता है । —ब च

श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी एम. ए. आयुर्वेदाचार्य मडुआ के विषय मे लिखते है—

इसकी गणना अन्नवर्ग मे की गई है । इसकी उत्पत्ति उत्तर प्रदेश मे प्राय सर्वत्र देखी जाती है । गरीब जनता इसकी रोटी व भात बनाकर अपना जीवन निर्वाह करती है।

गुण—यह वातल, रूक्ष, ग्राही, उष्ण एव कफनाशक होता है । जगली मडुआ शीतवीर्य होता है ।

प्रयोग—छोटी या बड़ी माता निकलने के बाद, पाटु



रोग मे तथा यकृत जन्य विकारो मे पथ्य के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है।

पुलटिस—मडुआ को पीसकर आटा बनाले। इसमे नमक, घी तथा शहद डाल कर सान ले। उसको फोडे के ऊपर बाध दीजिये शीघ्र फूट जायगा।

साबुन का प्रतिनिधि—इसकी भूसी को जलाकर उसमे से स्वच्छ राख ले ले इसको पानी मे घोलकर सिर मे चुपडकर पाच मिनट छोड दें, इसके बाद शिर को मल मलकर धो डालें, ऐसा करते रहने से बाल रेशम के सदृश मुलायम हो जाते हैं और रूसी भी साफ हो जाती है।

मोटापा में—शहद के साथ इसकी रोटी खिलाने से लाभ होता है। इसके साथ मक्खन निकाले हुए दही का मठा लेना चाहिए यह कार्य कठिन अवश्य है पर इससे मोटापा दूर हो जाता है। इसके सेवन काल मे घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थों का सर्वथा परित्याग करना चाहिये। प्रात साय घूमना इसमे लाभदायक होता है।

एक तोहफा—इसकी भूसी बडी मुलायम होती है, अत इसका तकिया बनाया जाता है। यह सेमल की रुई से भी अधिक मुलायम तथा आराम देह होती है।

मक्का (Zea mays Linn)

यह धान्य वर्ग और तृण धान्यादि कुल (Graminceae) का प्रसिद्ध धान्य है।

मक्का का धान्य हिन्दुस्तान मे सब जगह होता है इसको सब जानते हैं। इसलिये इसके लिये विशेष वर्णन की आवश्यकता नही।

नाम—

स०—मकाय, महाकाय। हि०—मकई, मक्का, भुट्टे। रा०—मकी। ब०—भुट्टा, जनार। गु०—मकोई। म०—मक्का। अ०—दुराहकिझान, दुराहशमी। प०—मक्का, मकई। उर्दू—मकई। ता०—मक्काशोजम ते०—मक्का जाना। अ०—इडियन कोर्न मेझ (Indian Corn Maize) ले०—जियामेझ।

रासायनिक संगठन—

मक्का के कच्चे दानो मे ८॥। प्रतिशत मासवर्द्धक द्रव्य, ५४ प्रतिशत आटा, ३ प्रतिशत वसा, २॥। प्रतिशत शक्कर, १२ प्रतिशत पानी और १॥ प्रतिशत राख होती है। इसके सूखे दानो मे ६ प्रतिशत मासवर्द्धक द्रव्य, ७० प्रतिशत आटा, ३ प्रतिशत वसा, १ प्रतिशत राख पाई जाती है।

गुण धर्म व प्रयोग—

मक्का—तृप्तिकारक, वादी, कफ पित्त नाशक, विष्टम्भकारक और रूखी है। कच्ची मक्का पुष्टि और रुचि को करने वाली है।

यह अन्न बहुत पौष्टिक होता है। इसका पौष्टिक तत्व ओट (Avena sativa) जो गेहूं से ऊचा माना जाता है। इसके मखोलिये (डीडू) की राख मूत्रल होती है और वह पथरी रोग मे दी जाती है। इसके भुट्टे के कोमल बाल (corn silk) वेदनानाशक और मूत्रल होते है। इसलिये सुजाक, वस्तिशोथ और पथरी मे इनका काढा बनाकर पिलाया जाता है। ये बाल ताजी हालत मे गुणकारी होते हैं। मक्का के पौधे में शक्कर रहती है। यह शक्कर ऊख की शक्कर की अपेक्षा कम मेहनत और कम खर्च से निकाली जा सकती है।

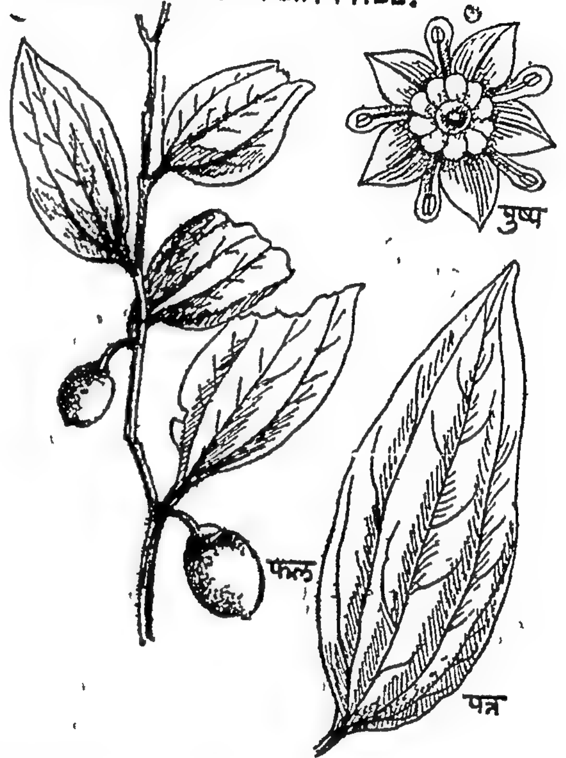
ग्रीस मे इसके भुट्टे के कोमल बालो का काढ़ा मूत्राशय के रोगो को दूर करने के काम मे लिया जाता है और कुछ समय से इस वस्तु ने अमेरिका के लोगों का ध्यान भी आकर्षित किया है। वहा ये बाल, कोर्न सिल्क (corn silk) के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनका तरल सत्व वहा के औषधि विक्रेता मूत्राशय की तीव्र वेदना और मूत्र कष्ट को दूर करने की औषधि के रूप मे बेचते हैं।

फिलिपाइन मे इसका सारा पौधा एक मूत्रल वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है। इसके भुट्टे के बालो का अथवा डठलो (Stalk) का काढा मूत्राशय और गुर्दे की सूजन और वेदना को दूर करने के लिये घरेलू औषधि की तरह काम मे लिया जाता है। मक्का का तेल इसके १०० तोले कच्चे मखोलियो (डिडुओ) को यत्र मे दबाने से तेरह से पन्द्रह तोले तक तेल निकलता है। इस तेल के गुण जैतून के तेल से मिलते हुए होते हैं। —ब. च

मकाई (Zigyphus OenopliaMill)

यह फलवर्ग और बदरी कुल (Rhamuaceae) की एक छितराई हुई झाडी होती है। इसके पत्ते बहुत सघन होते हैं। ये २ ५ सेन्टीमीटर से लेकर ६ ३ सेंटीमीटर तक लम्बे और २ से लेकर २.५ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। यह बनस्पति हिन्दुस्तान के सभी गर्म प्रातो मे पैदा होती है।

इसका चित्र साथ मे दिया जा रहा है।



नाम—

सं.—बहुकटका, दुस्पर्शा, कर्क हुण्डू, शृगालकोली। हि.—मकाई।म —मकार। ब —सियाकुल। मध्यप्रात—इरून। उड़िया—काठाकोली। ता.—अम्बुलम, सुराइ। ते.—बोका, बाराकि। ले —झिझीफस ओनोप्लिया।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जड की छाल का काढा ताजे जख्मो के भरने के उपयोग मे लिया जाता है। —न. च.

मकोय (Solanum Nigrum Linn)

यह गुडूच्यादि वर्ग और कटकारी कुल (Solanaceae) की प्रसिद्ध बनस्पति है।

उत्पत्ति स्थान—यह समस्त भारतवर्ष मे बगीचे और जोते हुये खेतो मे होती है। दोनो प्रकार की मकोय के क्षुप दक्षिण भारत मे लगाये जाते हैं। परन्तु काली मकोय अपेक्षाकृत अधिक और सामान्य रूप से मिलती याने सुलभ है।इसलिये प्राय यही प्रयुक्त की जाती है। इनके गुणो मे कोई अधिक अन्तर न होने के परिणामस्वरूप अनेक अवसरो पर इनका एक साथ उपयोग किया जाता है।

वर्णन—

मकोय के स्वावलम्बी परन्तु अनेक शाखाओ वाले, कटकरहित, सरल, वर्षायु, सावधानी से आरोपित होने पर द्वि या बहु वर्षीय १ से ३ फीट ऊंचे, छोटे-छोटे क्षुप होते हैं। शाखायें किंचित कोणयुक्त (चतुष्कोण) और कोणो पर फूली हुई, स्थान—स्थान पर बैंगनी रङ्ग से चिह्नित बहुत बार डडी और शाखायें हरे या काले रङ्ग से लिप्त और चमकती हुई ज्ञात होती है। पत्र लाल मिर्च के समान लड्वाकार, प्रासवत लट्वाकार या आयताकार ४–१० इच तक बडे, पत्राग्र भाग क्रमश सरु, वृन्त की ओर पत्रभाग क्रमश सूक्ष्म होकर दीर्घ पत्र वृन्त के पार्श्व मे क्रमश अवसित, क्वचित व विषमभाव मे अवसित और उनका फलक प्राय. वृन्त पर नीचे तक फैला रहता है।

पत्रोदर मसृण- क्वचित विरल लोमान्वित गाढा हरिद्वर्ण, पत्र पृष्ठ शिरावधुर और फीका हरिद्वर्ण, पत्र प्रान्त अखण्ड, क्वचित तरगायित (लहरदार) कभी-कभी अशत दतित या खडित, सवृन्त, वृन्त क्षुद्र और क्वचित तटयुक्त पुष्प छोटे देखने मे प्राय लाल मिर्च के फूल के समान सफेद और पत्र कोण से हटकर निकले हुये, पुष्प दण्ड पर गुच्छाकार एव दीर्घ वृन्त पर अधोमुख लवित समस्थ मूर्धज क्रम मे निकले रहते हैं। प्रत्येक छत्राकार पुष्प दण्ड मे ३-४ पुष्प होते हैं। पुष्प वाह्यावरण (कटोरी) स्थायी, हरा, पुट पत्र ५, पुष्पाभ्यन्तर कोष (पखडी) सफेद, दल ५, गर्भ केशर ५, फल छोटी गुन्दी के तुल्य, परन्तु उस से छोटे, काली मिर्च के आकार प्रकार के चिकने गोल, लवित, पुष्कल बीज युक्त, रसीले, कच्चे हरे, स्वाद मे तिक्त और पके लाल या पीले, बाद मे काले पड जाते है। वे किंचित अम्ल (अम्लतायुक्त मधुर वाग्भट सूत्र १५) बीज—बैंगन के बीज की तरह, किन्तु उससे क्षुद्रतर होते है। यह सदैव विशेषकर भाद्रपद से माघ फाल्गुन तक फूलती-फलती रहती हैं। यह वर्णन काली मकोय का है जिसे लेटिन मे सोलेनम नाइग्रम (Solanum Nigram Blume not linn) कहते है। लाल मकोय जिसको लेटिन मे सोलेनम रूब्रम (Solanum rubrum) कहते है कतिपय निम्न लक्षणो को छोडकर शेष अन्य लक्षणो मे सर्वथा काली मकोय के समान है। लाल मकोय का फल पीला व पिलाई लिये लाल वा लाल और किंचित मधुर, पत्र प्राय स्पष्ट तथा दतित, अपेक्षाकृत वृहत्तर, स्थूलतर, रङ्ग मे हल्का, अतिरगायित, किंचित अप्रिय गन्धयुक्त, शाखाग्रे अधिक परिविस्तृत और प्रत्यक्ष तथा कोणयुक्त या जोडो पर फूली हुई नही होती।

वक्तव्य—

यह उभय वनस्पतिया एक दूसरे की भेद मात्र हैं। और इन दोनो के गुण कर्मो मे कोई विशेष अन्तर नही है। फलत इन दोनो को प्रत्येक दशा मे समान रूप से एक साथ वा पृथक-पृथक व्यवहार होता है। यह दोनो ही सर्वत्र भारतवर्ष मे विपुल होती हैं और निरापद एवं निर्विष होती हैं। अस्तु, भारतीय हकीम और अन्य देशी चिकित्सकगण वाह्यान्तरिक रूप से इनका पुष्कल उपयोग करते है। प्रचलित काली मकोय (S nigrum-Blume के रस का हकीमो और वैद्यो द्वारा न केवल एक वार औंसो मे ६ औंस अर्थात् ३ छटाक या अधिक आन्तरिक उपयोग किया जाता है, अपितु भारतवर्ष के अनेक भागो मे स्वय पौधे का प्रायः शाक रूप मे उपयोग होता है। इतने अधिक प्रमाण मे इसके बारबार प्रयोग करने पर कभी कोई दुष्परिणाम देखने मे नही आता, प्रत्युत लाभ ही देखने मे आता है। इसके अतिरिक्त लाल मकोय भी प्रायः गुण कर्म मे समान होने पर भी यूनानी ग्रन्थो मे वर्णित लाल मकोय नही मालूम पडती है। यूनानी ग्रथो मे वर्णित मकोय लाल जिसको भारती बाजार मे इन्बुस्सालव और लेटिन मे (Solanum Dulacmars linn) सोलेनम डलकेमारा कहते है, वह भिन्न है।

उपयुक्त अङ्ग—शुष्क अपक्व फल, पत्र और फलयुक्त पञ्चाङ्ग (समग्रक्षुप)।

नाम—

स—काकमाची, ध्वाक्षमाची, काकाह्वा, वायसी। हि—मकोय, कवैया, भट कोवा। राज—कवाई, चिरपोटी, चिरपोटण। मालवा—चरबोटी। ब—काइस्ता शाक, गुडकामाई। म—लघुका वट्ठी, कामोनि। गु-पीलुडी। क—कावई, काको। अ—इनबुस्सालव। द.-कामूनी। प—काकमाच, मको। सिं—कावलि। कच्छ कापेरू। ता.—मल०—मणत्तक्कालि, करुप्पुमणत्तक्कालि। ते—काञ्चिटेट्टु, नल काञ्चिचेट्टु। कन्नड—काञ्च। ले—सोलेनम नाइग्रम। वक्तव्य—उपर्युक्त नाम काली मकोय के हैं। लाल और काली उभय प्रकार की मकोय के विभिन्न देशी भाषाओ मे प्राय एक सामान्य नाम से बोली जाती है—प्रसिद्ध है। किन्तु आवश्यकता होने पर अपने फलो के रग के द्वारा पहिचानी जाती है जैसे काली और लाल। जिसके लिये लेटिन शब्द क्रमश नाइग्रम (Nigrum) और रूब्रम [Rubrum] है।

(वैद्य दलजीत सिंह जी)

भावप्रकाश निघण्टुकार पूज्य विश्वनाथ जी द्विवेदी

ने मकोय के दो भेद लिखे है। (१) बडी (२) छोटी। बडीमकोय—के बीज एक सूखे छिलके से आवृत वृहती के बराबर होते है इसकी खेती बनारस, लखनऊ इत्यादि जिलो मे अधिक होती है, इसे 'रस भरी मकोय' कहते हैं। इससे छोटी इसी जाति की मकोय और होती है जिसे बलिया—छपरा के जिलो मे भट कोवा कहते है यह जगलो मे अपने आप होती है।

छोटी इसके फल काली मिर्च से कुछ बडे बडे काले लाल, भूरे इन तीन रगो के छिलकेरहित होते है। यह जगल मे ही होती है या अपने आप वर्षा ऋतु मे उगते है। इसका शाक बहुत ही उत्तम होता है। लेखक ने इसका पुष्कल उपयोग किया है और शोथघ्न गुण इसी मे पाया है।

रासायनिक संगठन-

इसके समस्त अगो विशेषकर फल मे काकमाचीन (सोलेनीन Sol_anin) नामक एक मणि भीय क्षारोद पाया जाता है जो शर्करा एव सोलेनिडीन का एक यौगिक [समास] हे।

गुणधर्म व प्रयोग-

मकोय—कटु, तिक्त, अनुष्णाशीत, भेदन [सारक], वृष्य, चक्षुष्य, स्वर्य, रसायन, त्रिदोष प्रशमन, कुष्ठ, शूल, अर्श, शोथ, कफ और कडू को मिटाने वाली एव ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन और हृद्य रोग को हरने वाली है।

—भा० नि०

मकोय—चरपरी, तिक्त रसान्वित, गरम, कफनाशक, शूल, बवासीर, सूजन, कोढ और कडू का नाश करती है।

—रा० नि०

मकोय—सारक [दस्तावर] स्वर को उत्तम करने वाली, वीर्यक, त्रिदोष नाशक, न अत्यन्त उष्ण है और न अत्यन्त शीतल है, कुष्ठनाशक और रसायन है।

—शो० नि०

मकोय—तिक्त रसान्वित, गरम, चरपरी, रसायन, वीर्य-वर्धक, स्निग्ध, स्वर को उत्तम करने वाली, हृदय को हितकारी, धातुवर्धक, नेत्रो को हितकारी, रुचिकारी, दस्तावर, हल्की तथा कफ, शूल, बवासीर, सूजन, त्रिदोष, कोढ कण्डु, कर्ण कीट, अतिसार, हिचकी, वमन, श्वास, खासी, ज्वर और हृदय रोग को हरने वाली है।

(नि० र०)।

देशी चिकित्सा विज्ञान मे सूजन को दूर करने वाली जितनी वनस्पतियां प्रधान मानी जाती है उनमे मकोय भी एक है। इसकी प्रधान क्रिया यकृत के ऊपर होती है। इसके सेवन से यकृत की सब क्रिया सुधरकर उसमे उचित रूप से रस की उत्पत्ति होने लगती है और विषैले उपरसो की उत्पत्ति बन्द हो जाती है। यकृत की क्रिया विगडने से जो सूजन, बवासीर, उदररोग, अतिसार या कई प्रकार के चर्म रोग हो जाते है वे सब इस औषधि के सेवन से धीरे-धीरे मिट जाते है। (व० च०)

सुश्रुत ने काकमाची के शाक को मटर के शाक के समान लिखा है। चरक मे वातरक्त, अर्श, उरुस्तभ आदि मे मकोय शाक को गुणप्रद माना है।

मकोय और मधु मिलाकर खाने से विष होकर मरण की आशका रहती है। उनके मत से मकोय का वासी शाक खाने का निषेध है। (काकमाची मधु च मरणाय) (च० सू० २६-१९-२२)। यहा मकोय और मधु का मेल सयोग विरुद्ध और वासी शाक कर्म विरुद्ध है।

यूनानी मतानुसार—प्रकृति—दूसरे दर्जे मे सर्द एव खुश्क (आयुर्वेदीयमत से अनुष्ण शीत च० सू०) और उष्ण वीर्य (वा० रा० नि०) हे।

गुण-कार्य—

सग्राही, दोष विलोम कर्त्ता, उपशोषण, तारल्य जनन, सतापहर, लेपतः और पानत उष्णश्वयथु :विलयन है।

उपयोग—कोपस्थ अङ्गो की सूजन विशेपत यकृच्छोथ, अन्त्रामाशय, शोथ और जलोदर मे सूखी मकोय पान और लेपत उपयोग की जाती है। उक्त रोग मे इसके पत्र स्वरस का फाडकर (मुरव्वक) लिया हुआ पानी पिलाते

है या अन्य औषधियो के साथ पीसकर मकोय का लेप करते है। इसके विरेक एव मूत्रोत्सर्ग द्वारा दोषोत्सर्ग होता है प्रारम्भ मे लेप करने से यह दोष विलोम करण और उसके वाद श्वयथु विलयन कर्म करती है । अग्नि-दग्ध विष्फोट जन्य व्रण, परिसर्पी व्रण और व्रणित-कर्कट (सर्तान-कॅसर) रोग मे इसका अकेला अन्य औषधियो के साथ लेप किया जाता है। जिह्वा शोथ और कण्ठ शोथ-खुनाक मे इसका अकेला या अमलतास की गुद्दी डालकर वनाये हुये काढे से गण्डूप कराते है । नासिका एव कर्ण रोग मे मकोय के पत्तो का कुनकुना रस कान के भीतर टपकाया जाता है। यह उष्ण रस कर्णशूल का प्रशमन एव सूजन उतारने वाला है। अहितकर वस्ति रोगो मे। निवारण—मधु। प्रतिनिधि-काकनज । मात्रा-सूखी मकोय २ माशे से ७ माशे तक। मकोय की पत्ती का फाडा हुआ (मुरव्वक) रस ४ से ७ तोले तक ।

प्रयोग--

इसके फूलो के खाने से पेशाव साफ आता है। ४० माशे रोजाना सेवन-करने से पेशाव काफी तादाद मे होता है। मसाने के जख्म, गुदो का वरम और विद्रधि के वास्ते यह वहुत मुफीद है।

अर्क मकोय—मकोय १ पाव, शाहतरा आधापाव, कासनी के वीज ५ तोला मिलाकर सवका अर्क तीन वोतल अर्क विधि से निकाल लेवे। यह अर्क रक्त शोधक है। रक्त विकार सवधी रोगो को ठीक करता है। प्यास को शान्त करता, कलेजे की गर्मी को मिटाता तथा ज्वर को कम करता है।

मात्रा—६ से १० तोला तक।

शर्वत मकोय—मकोय का स्वरस निकाल कर मामूली आच पर गरम करें इससे वह अर्क फट जायगा और हरा गाढा मेल अलग हो जायगा और साफ पानी अलग। साफ पानी को लेकर इससे दूनी मिश्री मिलाकर शरवत की चाशनी वना लेवें। शरवत तैयार होने पर रख लेवें। ये शरवत अन्दरूनी और वाहरी सूजन को दूर करता है। पीलिया, कलेजे के वर्म और जख्मो को मिटाता है। मात्रा—३ तोला सुवह और ३ तोला शाम को।

[रहनुमाए अकाकीर]

नव्यमत—डा० आर० एन० खोरी—मकोय का क्षुप-रसायन, अवसादक, मूत्रप्रद, शोथहर तथा कफ नाशक है। इसका प्रलेप वेदनाहर है। रसायन होने से यह विविध चर्म रोगो मे तथा फिरग रोग मे एव मूत्रप्रद होने से यह विविध वात, शोथ, सोजाक, कफ रोग, प्लीहा वृद्धि मे सेव्य है। काकमाची (मकोय) का शर्वत तथा शीत पानीय ज्वर रोग मे सेवन करने से धर्मप्रद है। इसके पत्र गरम करके वेदना स्थान पर तथा शोथयुक्त अण्डकोषो की सूजन पर तथा हाथ पैरो की सूजन पर लगाना फायदेमन्द है ।

(मे० मे० आ० इ० भा० २ पृ० ४५१)

मोहीदीन शरीफ लिखते हैं कि "सशोथ या अशोथ चिरकालानुवन्धी यकृद वृद्धि मे काली और लाल दोनो प्रकार की मकोय के पत्र स्वरस के फाडे हुए पानी तथा पत्र स्वरस की रस क्रिया का वहुत वडी मात्रा मे मैं स्वय प्रयोग कर चुका हू और इससे अत्यन्त उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये है। कतिपय यकृद्विकारो मे वास्तव मे यह औषधि अतीव गुणकारक सिद्ध हुई है

डा० डी० वी० मास्टर—इसके ताजे पत्र के रस से तैयार किया हुआ क्वाथ (फाडकर लिया हुआ मुरव्वक पानी और रस क्रिया काम मे ली जाती है) इसके रस को अग्नि पर पका छानकर प्राप्त किये हुये पानी को ३ से ४ छटाक की मात्रा मे प्रतिदिन प्रातःकाल देने से इसका जलवत विरेचक तथा मूत्रजनन कार्य होता है । इसकी रस क्रिया को २॥ माशा की मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से इसका मूत्रजनन और मृदु विरेचन कर्म होता है। यह यकृत वृद्धि एव अन्य चिरकालनुवधी यकृत रोगो मे इसका वडा अच्छा प्रभाव होता है। विशेष चर्म रोग (Psoraisis) मे काकमाची का व्यवहार कराकर विशेष लाभ प्राप्त किया है। डा० वामन गणेश देशाई-मकोय—शीतल, मूत्र जनन, रेचन, वेदना स्थापन, श्लेष्महर, स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। मकोय की मुख्य क्रिया यकृत पर होती है। यकृत की क्रिया विगडने से जीर्ण यकृद वृद्धि, अर्श, उदर, आम और नाना प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न होते है। मकोय के पत्र स्वरस से दस्त साफ होकर अन्त्रगत विष निकल जाते है। जल शोथ मे



स्वरस बडी मात्रा मे देते है । ज्वर, जल शोथ, हृद्रोग और नेत्र रोग मे लाभप्रद है । —(ओ० स०)

कर्नल चोपरा के मतनुसार-इसके काले फल एक मूत्रल और पसीना लाने वाले द्रव्य की तरह हृदय रोग मे जबकि टागो और पजो पर सूजन आ गई हो तब दिये जाते है।

मुरब्बा बनाने की विधि—

एक मिट्टी के वर्तन मे इसके रस को गरम करना आरम्भ करे। और रसके सब्ज वर्ण के ईपत लाल होने पर उतार ले। शीतल होने पर कपडे से छानकर सेवन करावे। ऊपर लिखित प्रणाली से पकाकर सेवन कराने से विशेप गुण कर होता है। आधी छटाक से १ छटाक की मात्रा मे विविध चर्म रोगो मे हितकारक है।

(फा इ.)

प्रयोग——

१ कुष्ठ मे—काकमाची (मकोय) के पत्र का कल्क प्रलेप कुष्ठ मे हितकर है। (च० चि० ७ अ० ९३)

२ विसर्प मे—मकोय के पत्र स्वरस मे घृत मिलाकर लेप करना चाहिये।

३ शोथ मे—मकोय का शाक शोथ रोगी को खाना चाहिये। —च० चि० १७ अ० ६०।

४ उरुस्तम्भ मे—विना नमक केवल जल और तेल के योग से बनाया हुया इसका शाक खाना चाहिये।

—च चि २७ अ २५

५ वातज खासी मे—मकोय का शाक खाना चाहिये

—च चि २२ अ ७९

६ पिल्ल (कृमि रोग) मे—मकोय के फल चूर्ण मे घृत मिलाकर धूम (धूनी) देने से पिल्ल रोग मिटता है अर्थात् नेत्रो के भोओ के वालो के समस्त कीडे गिर पडते है। —चक्रदत्त नेत्र रोग चि

७ यकृत की वृद्धि—इसके पौधे का १५ से २० तोले तक फाडा हुआ रस पिलाने से वहुत दिनो की पुरानी यकृत वृद्धि मिट जाती है।

८ लाल चट्टे—इसको थोडी मात्रा मे देने से शरीर पर पटे हुये वहुत दिनो के लाल चट्टे मिट जाते है।

९ जलोदर और हृदय रोग—इसके पत्ते, फल और डालियो का सत्व निकालकर उस सत्व को २ से ८ माशे तक की मात्रा मे दिन मे २-३ वार देने से जलोदर और सब प्रकार के हृदय रोग मिटते है। व च०

१० शोथ—मकोय के पत्तो को पीसकर लेप करने से तमाम प्रकार की सूजने मिट जाती है। —व० वर्णन

११ चूहे के विप मे—मकोय के स्वरस से सिद्ध घृत उपयोग मे लेवे। —सु क ७

१२ गर्भ मुक्ति हेतु—मकोय की जड पानी के साथ पीसकर टुडी के नीचे पेडू पर लेप करने से तुरत गर्भ वाहर आजाता है। —आदर्श निघण्टु

मकोय के विशिष्ट योग--

१ अर्क मकोय—मकोय शुष्क १ पाव को ४ सेर जल मे भिगोकर दूसरे दिन प्रात दो सेर अर्क निकाले, अर्क निकालते समय प्रारम्भ मे अग्नि कम होनी चाहिये मात्रा १० तोला।

गुण—पित्त तथा यकृत रोगो मे उयोगी है।

२ कैरूती मकोयवाली—मकोयशुष्क, अलसी, खतमी के वीज प्रत्येक ६ तोला, सबको एक पाव जल मे उबाले। आधा भाग रहने पर छानकर मोम सफेद और गुलाब तेल डालकर पकाये, क्वाथ के जल जाने पर उतार ले।

गुण—निमोनिया मे लाभप्रद है।

३ शरवत मकोय—वरजासफ, शकाही, वादावरद, मकोय, अफसनतीन, सौफ की जड, कासनी जड, कसूसवीज (पोटली मे वाधकर), करफसमूल, अजखरमूल, गुलाव पुष्प, अलसी वीज १-१ तोला, द्राक्षा बीजरहित १ तो कासनी, वथुआ, मकोय, मूली इनका रस १०-१० तोला, पुराना गुड १ सेर शरवत तैयार करे।

मात्रा—२-४ तोला।

गुण—यकृत रोगो मे अति उत्तम है।

—यू चि सार

४ काकमाची तैलम्—कल्क द्रव्य—मनसिल, वावची, सिदूर और गन्धक प्रत्येक ४-४ माशा। उक्त कल्क को मकोय रस आधा सेर, सरसो का तेल १ पाव मे पकावें। तेल सिद्ध होने पर रख लेवे। इसकी मालिश करने से

अरुंषिका, भामा, विचर्चिका और सिरके घावो का अवश्य नाश होता है।

५. मकोयमाका—मकोय स्वरस १ किलो, दुग्ध १ कि० मधुयष्टी १/१६ किलो लेकर ¼कि तिल तेल मे सिद्धकरके शीशी मे भरके रखें। इस तेल का अञ्जन करने से गयी हुयी दृष्टि पुन प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इस तेल का नस्य करने से अकाली हुये सफेद बाल (केश) काले होते है और इतर ज्ञानेन्द्रियो और मस्तिष्क को बल मिलता है। परीक्षित है। —प्रेषक

—श्री द रा डायलकर अमरावती

मखाना (Euryal Ferose salisb)

यह फल वर्ग और कमलादि कुल (Nymphaceae) की एक जाति है। इस शाखारहित जलज छोड के खूब काटे होते हैं। इसके पत्ते ढाल सदृश झुर्रीदार अण्डाकार कमल के समान १ से ८ फीट व्यास के रहते है। ये ऊपर की ओर से हरे और नीचे की तरफ से किरमिजी रङ्ग के होते है। कद छोटा होता है। इसके फल नीले, लाल, गुलाबी १से२ इच लम्बे होते है। ये भीतर से तेजस्वी लाल और बाहर से हरे तेजस्वी रहते हे। इसका फल गोल नारगी के समान २से४ इच व्यास का चिकना होता है। फल के अन्दर से ८ से २० तक बीज निकलते हैं। ये मटर से झाटी बेर तक की कद के होते हैं। इसके ऊपर का छिलका कठोर व काला होता है। कच्चे मखाने का सफेद मगज निकालकर खाते हैं। इनको भाड मे भून ने से फटते है। उपवास मे ये बीज काम मे लेते है।

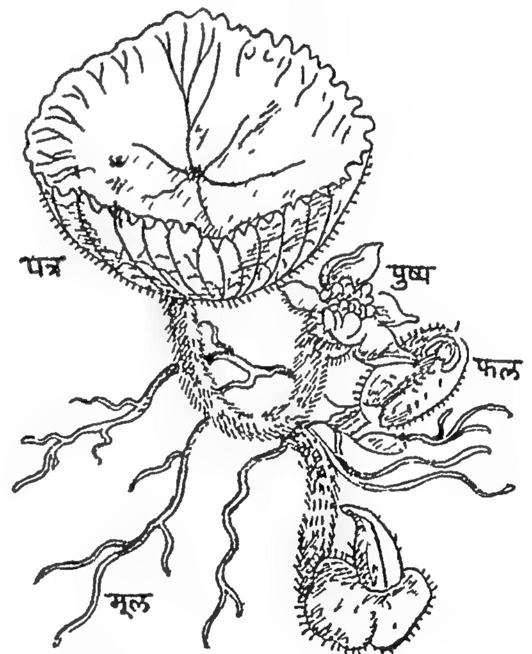
आपकी जानकारी के वास्ते चित्र साथ मे दिया जा रहा है। विशेष प्रकार से कमलगट्टे (मखाने) को भूनकर ही मखाना तैयार किया जाता है। खील मखाने की सफेद हल्की छोटे बताशो की तरह होती है। यही मखाना है।

उपयुक्त अङ्ग—बीज। फूलने का समय वर्षाकाल।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति काश्मीर, अवध, पू० बगाल और विशेषकर दरभगा मे पैदा होती है।

नाम—

स०—मखानाना, पद्म, मखाद्य, पानीय फल। हिं०—मखाना, मचना। प०—जेवार। गु०—मखाना। ब०—मागाना। म०—मखाना। उ०—मखाना। राज०—फूल मखाना। उडिया—कुनने,कुतापत्र। ०—मरलनिपद्मनु दे०—गीनागिचो। अ०—फोक्स नट [Fox Nut]।



ले०—इयूरियल फेरोक्स।

प्रयोग—

यह रस मे मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य मे शीत, विपाक मे कटु, मधुर और शुक्र दोषो को नष्ट करता है। मखाना विष्टम्भी, वृष्य,रूक्ष,परम गर्भ सस्थापक, कफ वात नाशकबल्य, ग्राहि, रक्त पित्त और दाह नाशक है।

—भा० प्र०

मखाने के गुण कमल बीजो के समान है।

—शा० नि०

मात्रा—आधा से एक तोला।

प्रसवान्तर दौर्बल्य, शुक्रस्राव, वीर्याल्पता मे मखाना

उपयोगी है। मखाना वल्य और बाजीकर है। मखाने के लावे को थोड़े घी मे भून कर खिलाने से अतिसार शमन होजाता है। यह वीर्य स्तम्भक और धातु वर्धक होने से शुक्र की निर्बलता वालो के लिये भी हितावह है। इसके आटे मे घी शक्कर मिलाकर स्त्रियो को पिलाने से गर्भाशय की उष्णता शात हो जाती है, प्रदरादि विकार दूर होते है और गर्भाशय गर्भधारण के योग्य बन जाता है। हृदय गति बढ़जाने पर कमल के समान फूलो की पखुडियो का १ से २ तोले का फाण्ट पिलाया जाता है। ज्वर वेग बढने से होने वाली व्याकुलता के शमनार्थ छाती पर इसका मोटा लेप भी कराया जाता है। इसकी केशर दाहशामक रक्तसग्राहक है। सब प्रकार के रक्तस्रावो मे निर्भयतापूर्वक उपयोग होता है। —गा औ र

इसको लेने से रात मे भयानक सपने आना बन्द हो जाता है। इसके बीज पौष्टिक, सकोचक और पीडा निवारण गुणो की वजह से बहुत उपयोग मे लिये जाते है। (ब० च०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पहले दर्जे मे गरम और तर। ताजे मखाने बल्य बाजीकर और शुक्रल है। सूखे भुने हुए मखाने सग्राही है। मखाने से पुष्टि भी प्राप्त होती है। इनको अधिकतया स्त्रिया प्रसवोत्तर दौर्बल्य को दूर करने के लिये हलुओ मे डालकर खाती है। इसके अतिरिक्त शुक्र प्रमेह एव कामावसाद के लिये इसे चूर्णो मे डालकर उपयोग करते है। यह विशेष रूप से वृहण है। अहितकर शीतल प्रकृति केलिये। निवारण—इसको भ्रष्ट करना मात्रा—७ माशे से १ तोला तक (यू० द्र० वि०।)

मजीठ (Rubia Cordifolia Linn)

यह हरितक्यादिवर्ग, मजीठ कुल (Rubiaceae) की एक बडी बेल है। ये बहुवर्षायु होती है। मूल लबी और मोटी होती है। इसकी लता बहुत लम्बी बढती है और झाड़ो पर भी अपना फैलाव करती है। शाखाचार कोन विशिष्ट खर स्पर्श और श्वेत वर्ण। मृदुलता की डाडी की प्रत्येक ग्रथी केऊपर चारचार पानो का एक चक्र आया हुआ होता है। इन चार मे से दो मोटे और दो छोटे होते हैं। पत्र देखने मे अति सुन्दर होते हैं। पत्र दो से चार इच लम्बे डिम्बाकृति, मूल की ओर हृत्पिण्डाकृति, देखने मे छोटे पानो के समान। किनारो पर छोटे सफेद टेढे काटे होते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद होते है। जो झुमको मे लगते हैं फूल की पखडी ५। इसके फल काले और मटर के समान होते हैं। इसकी जड़ें शुरू शुरू मे ललाई लिये हुए सफेद रग की होती हैं। इनको तोडने से इनके अन्दर लाल रग का गर्भ दिखलाई देता है। रग के काम मे यह आता है। इसीलिये इसका नाम 'वस्त्र भूषणा' भी है।

उत्पति स्थान—

देहरादून, काश्मीर, हिमालय के उत्तर, पूर्व और पश्चिम भाग मे ८००० फीट की ऊचाई के स्थानो पर, दक्षिण मे सिंहल, छोटा नागपुर, चित्रकूट, विहार मे पार्श्वनाथ पहाड, ईरान अफगानादि देशो मे होती है।

नाम—

स०—मजिष्ठा, समगा, भडीरी। हि०—मजीठ। ब०—मजीठ, मजिष्ठ। म०—मजिष्ठा। गु०—मजीठ। मजीठ। रा०—मजीठ। कुमाऊ—मजेठी। काश्मीर—डाडू, फहारगस। प०—मजीठ। ता०—मजीठी। ते०—मजिष्ठातिगे। अ०—फोव्व। फा०—रूनास। ऊ०—हार्ट लीव्हडमैडर (Heart leaved madder) ले०—रुबिया कार्डिफोलिआ।

रासायनिक संगठन—

जड मे रालदार एव तद्भव पदार्थ, निर्यास, शर्करा, रजक द्रव्य और चूने के लवण होते है। रजक द्रव्य मे पर्प्युरीन (Purpurin) नामकएक लाल स्फटिकीय सत्व, मजिष्टीन नामक एक पीला सत्व प्रभृति सत्व होते

गुणधर्म व प्रयोग--

मजीठ—मधुर, कडवी, कसेली गरम, रक्तातिसार नाशक, स्वर को शुद्ध करने वाली, कान्तिवर्धक, भारी तथा विप, कफ, सूजन, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्ण रोग, कुष्ठ, रुधिर विकार, विसर्प, व्रण और प्रमेह को नष्ट करने वाली होती है। —भा० प्र०

मजीठ—कसैली, गरम, वर्ण्य, भारी, कडवी, हलकी, मधुर, घाव, प्रमेह, कफ, नेत्ररोग, सूजन, योनि दोप, ज्वर, कामला, पक्षाघात, शूल, कर्णरोग, कुष्ठ, ववासीर, कृमि, रक्तातिसार और विसर्प रोग को नष्ट करती है। —शा० नि०

मजीठ मे स्तम्भक, पौष्टिक, आर्तव-प्रवर्त्तक, वेदना नाशक, शोथघ्न, चर्म रोग नाशक, व्रण रोपक और गर्भाशय को संकुचित करने के धर्म रहते हैं। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जा ततुओं पर होती है। इसको थोडी मात्रा मे देने से सारे शरीर मे शांति पैदा करती है। मगर अधिक मात्रा मे देने से यह मस्तिष्क मे विकृति पैदा करके भ्रम उत्पन्न करती है। इसकी दूसरी क्रिया गर्भाशय के ऊपर होती है। इसमे गर्भाशय का सकोचन होता है। उसमे होने वाली वेदना वन्द होती है और मासिक धर्म साफ होने लगता है। इसकी तीसरी क्रिया त्वचा के ऊपर होती है। इससे त्वचा की रक्ताभिसरण क्रिया वढकर विनिमय क्रिया के द्वारा रक्त की शुद्धि होती है। —व० च०

मजीठ के पत्तो का शाक हलका, स्निग्ध, दीपक और वातपित्त नाशक है। —शा० नि०

इसके फल यकृत-प्लीहा की वेदना के लिए एक आवश्यक औपधि है। मजीठ की जड चर्म रोग और तिल कालक को दूर करती है। —शा नि

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। यकृत और प्लीहा के अवरोध का उद्घाटन कर्त्ता तथा उनका सशोधन कर्त्ता, मूत्रार्त्तव जनन, लेखन, उष्णता जनन है। अहितकर-वस्ति को, निवारण-कतीरा और अनीसू। प्रतिनिधि-कवावचीनी और तज। मात्रा ३ माशे से ५ माशे तक।

(१) मजिष्ठ मेह मे—मजीठ और चन्दन का क्वाथ पिलाना। —सु चि ११

(२) व्यग मे–मजीठ का चूर्ण मधु मे मिलाकर लगावें। —चक्रदत्त

विशिष्ट योग–

मजिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, नीम की छाल, लाल चन्दन, नागर मोथा, गिलोय, इद्रायण की जड, अतीस, त्रायमाण, निसोत, असना वृक्ष की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, पाठा, वासा, खैर की छाल, हर्र, वहेडा, आवला, पटोल, कुटकी, वायविडग, पित्तपापडा, वच, वावची और इद्र जौ समान भाग लेकर क्वाथ वनावें।

यह क्वाथ कण्डू (खाज) मण्डल, पुण्डरीक, कुष्ठ, किटिभ कुष्ठ, पामा, विचर्चिका (खुजली), व्रण, सिध्म, श्वित्रकुष्ठ, विसर्प, दाद और रकसा तथा सुन्नवहरी (सुप्तता) आदि समस्त कुष्ठो को नष्ट करता है। —भा भै र

मजिष्ठादि क्वाथ (लघु)–मजीठ, हर्र, वहेडा, आमला कुटकी, वच, देवदारु, हल्दी, गिलोय और नीम की छाल समान भाग लेकर क्वाथ वनावे।

यह क्वाथ वातरक्त, पामा, कपालिका कुष्ठ और रक्त मण्डल को नष्ट करता है। —भा० भै० र०

मजिष्ठादि क्वाथ (वृहत)—मजीठ, नागरमोथा, कुडे की छाल, गिलोय, कूठ, सोठ, भारगी, वहेडा, आमला, पटोल, कुटकी, मूर्वा, वायविडग, असना वृक्ष की छाल, चीतामूल, सतावर, त्रायमाणा, पीपल, इन्द्रजौ, वासा, भागरा, देवदारु, पाठा, खैरसार लाल चदन, निसोत, वरना, चिरायता, वावची, अमलतास, शाखोट वृक्ष (सिहोड़ा) की छाल, वकायन की छाल, करज की छाल, अतीस, सुगन्धवाला, इन्द्रायण की जड, अनन्तमूल, सारिवा और पित्तपापडा समान भाग लेकर क्वाथ वनावें।

इसमे शुद्ध गूगल और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से अठारह प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, उपदश, श्लीपद, प्रसुप्ति (सुन्नवहरी), पक्षाघात, मेदोदोष और नेत्र रोग नष्ट होते हैं। भा० भै० र०

मञ्जिष्ठाभया योग–मजीठ, कुडे की छाल, नागर-

मोया, गिलोय, हल्दी, दारु हल्दी, कटेरी, वच, सोंठ, कूठ, नीम की छाल, परवल, बांझ ककोड़े की जड, वायविडंग, मकोय, मूर्वा, पिलखन की छाल, देवदारु, इन्द्रजौ, भागरा, त्रायमाना, पाठा, गम्भारी की छाल, अरणी, खैरसार, हरड़, बहेड़ा, आमला, कुटकी, नारिवा करंज की छाल, वासा (अडूसा), बड़, मेंहड़ (मेंड-थूहर) का डण्डा, वावची, फूल प्रियङ्गु, लाल चन्दन, पित्त पापडा, अनन्तमूल, इन्द्रा, वण की जड, निसोत, सुगन्धवाला, सोठ, मिर्च, पीपल और खुरासानी अजवायन ५-५ तोले, तथा हर्ड़ ११० तोले लेकर हर्ड़ के सिवाय सब चीजो को अधकुटा करके और हर्ड़ को साबित ही डालकर ३२ सेर पानी मे पकावें। जब ४ सेर पानी शेष रहे तो हर्डों को निकालकर उन्हे सूजे या लोहे की सीख से बांधें और फिर शहद मे डाल दे। २१ दिन पश्चात् पुराने शहद को फेंक दें और उनमे नया शहद डाल दें।

इस क्रिया मे हर्डे अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाती हैं। इनमे से नित्यप्रति प्रात. काल १-१ हर्ड़ सेवन करनी चाहिये। इन्हें सेवन करने से समस्त प्रकार का विसर्प, अठारह प्रकार के कुष्ठ, खुडवात, पामा, खाज, दाद, विस्फोटक, विद्रधि तथा अन्य त्वग्रोग और विकार नष्ट हो जाते हैं। —भा. भै र।

मञ्जिष्ठादि घृतम्—मजीठ, सफेद चन्दन और मूर्वा पाच-पाच तोले लेकर सबको पीस लें। और १२० तोले घी मे यह कल्क तथा ६ सेर पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब पानी जल जाय तो घी को छान लें।

इसे लगाने से समस्त अग्नि दग्ध व्रण नष्ट होते है। —भा भै. र

मञ्जिष्ठादि तैल—कल्क—मजीठ, पद्माक, कूठ, सफेद चन्दन, गेरु, खरैटी, हल्दी, दारु हल्दी, फूल प्रियंगु, हाथी दात का चूर्ण, मुलैठी, वावची, देवदारु और पुण्डरिया २॥-२॥ तोले लेकर सबको पीस लें।

२ सेर तेल मे गाय का दूध, असना का क्वाथ, भागरे का रस या क्वाथ समान भाग-मिश्रित ८ सेर [प्रत्येक २ सेर ५३। तोले] तथा उपरोक्त कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब जलाश शुष्क हो जाय तो तेल को छान लें।

यह तेल गिरते हुये बालो को रोकता और शिर शूल, मन्या [गरदन की नस] का स्तम्भ, हनु ग्रह, दन्तशूल, कर्ण शूल और आख के दर्द को नष्ट करता है।

इसके व्यवहार से केश स्निग्ध और घुघराले होते तथा बढते हैं। यह तैल पलित (बालो का सफेद हो जाना) और इन्द्रलुप्त (गज) रोग मे अत्युपयोगी और शिरोरोगनाशक है। इसकी नस्य लेनी और मालिश करनी चाहिये। —भा भै र।

मञ्जिष्ठा तैलम्—कल्क—मजीठ, हल्दी, दारु हल्दी, लोध, गोपी चन्दन, हरताल, मनसिल, लाख, गोलोचन, कूठ, दो प्रकार की केशर, गेरु, तूतिया, पारद, गधक, तेजपात और दालचीनी १।-१। तोला लेकर पारे गन्धक को घोटकर कज्जली बना लें और अन्य पदार्थो को पीस लें। ३ सेर तिल के तेल मे १२ सेर गाय का दूध और उपरोक्त कल्क (पारे गन्धक की कज्जली समेत) मिलाकर मदाग्नि पर पकावें। जब दूध जल जाय तो तैल को छान लें। इसे सात दिन तक मुह पर मलने से माक्षिक (मुह के मस्से) का नाश होता और मुख चन्द्रमा के समान कान्तिमान हो जाता है। —भा भै र

मञ्जिष्ठाद्य तैलम् द्वितीय—मजीठ, केशर, लाख, सरसो, लोध, सफेद चन्दन, पुण्डरिया, मुलैठी, पतङ्ग, गेरु, वच, बिनौला (कपास का बीज) मनसिल और माजूफल का चूर्ण २॥-२॥ तोले। ४० तोले तिल के तैल मे उपरोक्त कल्क और २ सेर (१६० तोले) बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब दूध जल जाय तो तैल को छानकर उसमे २० तोला मोम मिलाकर सुरक्षित रक्खे। इसे सात दिन तक मुख पर मलने से मुख की पिटिकायें, तिल, व्यङ्ग, कालक, कलोम, जन्तुमणि और पद्मिनी कण्टक इत्यादि नष्ट होकर मुख का रङ्ग निखर जाता है। —भा भै र

मञ्जिष्ठादि लेप—मजीठ, नागकेशर, तेजपात और हल्दी समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसका लेप करने से मकडी का विष नष्ट हो जाता है। —भा भै र

स्वानुभव–

मञ्जिष्ठादि शीत कषाय–मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, सनाय समान भाग लेकर शाम को जव कुट करें। इनमें से १ तोला दवा को लेकर शाम को मिट्टी के बरतन में भिगो देवें। सुबह निथार कर जल में घोट छानकर ३ तोला स्वरस पिला देवें। इसी प्रकार सुबह-शाम या दिन में ३ बार पिलाने से पुराना शीतपित्त कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाता है। परीक्षित है।

मञ्जिष्ठादि चूर्ण–मजीठ, हर्र, वहेडा, आमला, शुद्ध गन्धक, मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इसमें से १ तोला चूर्ण जल के साथ दिन में ३ वक्त लेने और पथ्य में केवल छिले हुए चने खाने से चर्म रोग नष्ट हो जाते हैं। इस दवा को १ सप्ताह प्रयोग करना चाहिये। अनुभूत है।

मझेरी यून (Daphne Mejhreon)

रामेठादि कुल (Thymelacaccac) की यह वनस्पति भारतवर्ष में बाहर से बिकने को आती है। इसकी छाल के टुकड़े पतले और चपटे होते हैं। ये बाहर से और भीतर से सफेद होते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है।

नाम–

हि०—मझेरीयून। ले०—डेफन मझेरीयून।

गुण धर्म और प्रयोग–

मझेरीयून मूत्रल, स्वेदजनक और शोणित स्थापक होता है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया अनन्तमूल और अपराजिता की जडकी क्रिया की तरह होती है। इसमे रहने वाले तत्व पसीने के जरिये त्वचा के मार्ग से निकलते हैं। जिनसे त्वचा की विनिमय क्रिया सुधरती है। इसका वाह्यलेप करने से चमडी लाल हो जाती है, जलन होती है और छोटी-छोटी फुंसिया हो जाती हैं। चर्म रोगो मे, उपदंश मे और गण्डमाला मे इस वनस्पति को देने से अच्छा लाभ होता है। पुराने आमवात मे इसको पेट मे देने से और इसकी छाल से सिद्ध किये हुये तेल की जोडो पर मालिश करने से लाभ होता है। —व० च०

मटर (Pisum sativum Linn)

यह शाकवर्ग और शिम्बीकुल (Leguminocae) का पौधा है। मटर की शाक भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसका पौधा दो तीन फीट ऊंचा होता है। कुछ बड़ा होने पर यह लता की तरह फलाश्रयी हो जाता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और गोल होते हैं। इसके फूल सफेद और गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी फलियां २ इञ्च से ३ इञ्च तक लम्बी होती हैं। हर एक फली में ४-६ दाने निकलते हैं। इसकी डंठी और पत्ती की भाजिया होती है। उपयुक्त अङ्ग—बीज।

उत्पत्ति स्थान—भारत के सब प्रान्तों में इसकी कृषि होती है। बिहार में मटर प्रसिद्ध है।

नाम।

स – वर्तुल, कलाय, खंडिक, कटी, मुंड चणक, हरेणु रेणुक, सतील, नीलक।

हिं० मटर, बड़ा मटर, वटला। ब—बड़ामटर, वाटूला मटर। बम्बई—वटाणा। म०–वाटाण। गु०–वटोना, मटाना। प०–वटामटर, खाडा, मटर, सेन। ता०–पट्टानि बेनापट्टानि। ते०–पेटालु। अ०–हुम्मस। अ०–Garden-pea ले०—पीसम सेटियम।

गुण धर्म और प्रयोग—

मटर-मधुर, खाने में स्वादिष्ट, रूखी, शीतल, रक्तशोधक मृदु विरेचक, शूल बढाने वाली, वातवर्धक और खासी पित्त विकार तथा दाह को शान्त करने वाली

होती है। इसको कच्ची हालत मे अधिक खाने से अतिसार होने का भय रहता है। स्पेन मे इसके वीजो का आटा चमडे को मुलायम करने वाला और फोडे को गलाने वाला माना जाता है। वहा इसका पुल्टिस वनाकर फोडो पर वाधा जाता है।

सौन्दर्य वर्द्धक प्रयोग—भूनी हुई मटर और नारगी के छिलको को दूध मे पीसकर उवटन करने से शरीर का वर्ण सुन्दर हो जाता है।

आग से जल जाने पर—हरी कोमल मटर को पीसकर लगाने से वहुत शान्ति मिलती है।

शीतकाल मे उगुलियो के सूज जाने पर–मटर से चौगुना पानी डालकर क्वाथ तैयार करले। उक्त गरम क्वाथ मे ही मीठा तेल मिलाकर धोने से वहुत लाभ होता है। (वैद्य के फल और अङ्क से साभार)

मछेछी

भाव प्रकाश के अनुसार मछेछी के छत्ते छोटे-छोटे जलासन्न या आर्द्र भूमि मे अधिक होते है। ये जमीन पर फैले रहते है। इसके पत्ते इमली के पत्तो से छोटे-छोटे होते हैं। फूल सफेद और गुलावी रङ्ग के होते है। प्रत्येक पत्र मूल के साथ अनेक पुष्प तथा इनमे मछली के समान गन्ध आती है। यह शीत ऋतु मे फूलती है।

नाम—

स०–मत्स्याक्षी, वालिका, मत्स्यगधा, मत्स्यादनी। हि०—मछेछी। गु०–व०–म०—मत्स्याक्षी।

गुण-धर्म व प्रयोग—

मछेछी सकोचक, शीतल, हलकी, कडवी, कसैली, स्वादिष्ट, पचने मे चरपरी तथा कोढ, पित्त, कफ और रुधिर विकार को दूर करने वाली होती है। (भा० नि०)

१ मत्स्याक्षी—घोटकर पीने से नेत्रो की अनेक वीमारियो को नष्ट करती है, नेत्रो को वल देती है।

२ मत्स्याक्षी का कल्क दही के साथ मिलाकर खाने से अतिसार, सग्रहणी नाशक है।

(धन्वन्तरि वूटी चित्राक)

ममीरा [Coptis teeta wall]

यह वत्सनाभादि कुल (Rananculaceae) का काण्ड हीन छोटा क्षुप होता है। क्षुप वर्षायु परन्तु मूल वहु वर्षायु होती है। पत्ती देखने मे हन्सराज की पत्ती सी मालूम होती है। मूल (पातालो जड) १ से ३ इच लम्बे गिरहदार और टेढा, ऊपर से श्याम वर्ण वा कालाई लिये पीले और भीतर से पीले, स्वाद मे तिक्त होते है। ये मूल ही औषध के काम मे ली जाती हैं। फूल नियमित, छोटे सफेद, कोमल, मूलोद्भव पत्रहीन पुष्प दण्ड ऊपर आये हुये। पुष्प वाह्यकोष के पत्र ५ से ६, पुष्प अन्दर कोष के पत्र ५ से ६ नाग फणाकार या पजा के समान होते है। इसके फल छोटी फलियो की तरह होते हैं और उनमे वहुत छोटे-छोटे तिल के समान वीज रहते हैं। ममीरा आख के रोगो पर अकसीर माना जाता है। इसको लेते समय पीले रङ्ग की कठिन जडो को ढूढ कर लेना चाहिये। इसकी नर मादा दो जातिया होती है। नर जाति को ममीरा और मादा को ममीरी कहते है।

वक्तव्य—

आसाम के मिश्मी नामक पर्वत मे यह होती है वहा की मिश्मी जाति के लोग इसको वेचने के लिये आसाम के कस्वो मे ले आते है। स्वाद मे तिक्त होने से आसाम मे यह मिश्मी तीता नाम से पहिचानी या जानी जाती है।

उत्पत्ति स्थान–कावुल से लेकर आसाम तक ५००० फीट की ऊचाई पर समशीतोष्ण हिमालय के प्रदेश मे विशेषत आसाम के पूर्व के देशो के पहाडी स्थानो मे तथा चीन मे होता है।

व्यवहार्य अङ्ग—मूल। सग्रहकाल—ग्रीष्मकाल।

नाम—

स—महातिक्ता, ममीर, पीतमूला। हि—ममीरा, ममीरी। बबई—ममीरा। गु—ममीरो, ममीरी। सिंधी—महमीरा। आसाम—मिष्मीतीता। फा—मामीरान। अ—कोप्टीसगोल्ड थ्रेड। ले—कोप्टीसटीटा।

रासायनिक संगठन—

मूल मे दारुहारिद्रिक [बर्बेरीन] नाम का एक पीला तिक्त वीर्य होता है जो जल और सुरासार मे विलेय है।

गुण धर्म व प्रयोग—

ममीरा रस मे तिक्त, वीर्य मे उष्ण, विपाक मे कटु और दोषघ्नता-वातकफ है।

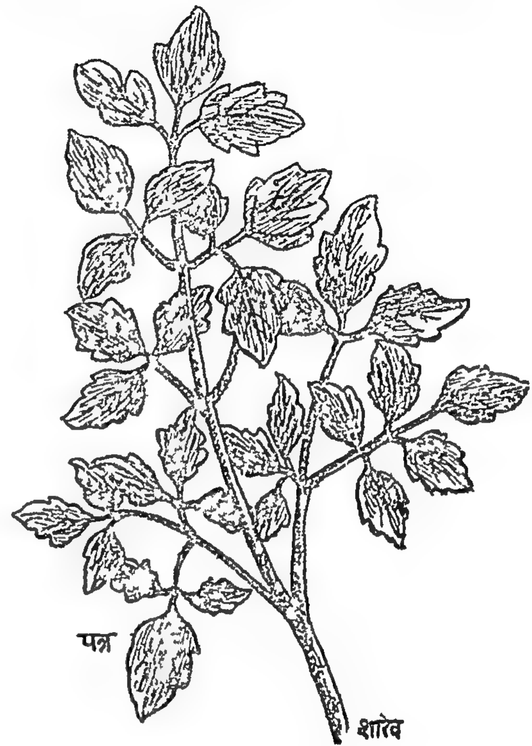
ममीरा—रस मे तिक्त, वीर्य मे उष्ण, लेखन, शोथहर चक्षुष्य, ज्वरहर, दीपन, पाचन, सर, वृक्कशूल और आख के रोगो को आराम करने के लिये लब्ध प्रतिष्ठ, मलरोध का नाशक और कल्याणकर है। ममीरा उत्तम कटु पौष्टिक और आमपाचक औषधि है। किसी प्रकार की अशक्ति मे, ज्वर की विमुक्तावस्था मे, शरीर की शक्ति का ह्रास करने वाले अन्य विविध प्रकार के रोगो मे यह उत्तम औषधि है। —आ० निघण्टु

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। ममीरा लेखन और दृष्टिबलवर्धक है। आतरिक उपयोग से वातानुलोमन और मूत्रल है। इसको अकेला या उपयुक्त औषध द्रव्य के साथ खरल करके दृष्टि दौर्बल्य, जाला, फूली और धूम्रदर्शन [गुब्बार] प्रभृति जैसे नेत्र रोगो के निवारण के लिये नेत्र मे लगाते है। यह नेत्र रोगो मे विशेष गुणदायक है। लेखन होने के कारण नखो का सफेद होना, श्वित्र, छीप वा झाई कच्छू तथा त्वचा के दाग [धब्बे] मे मधु और सिरके के साथ इसको पीसकर लेप करते है। मूत्रल होने के कारण इसे अवरोधजन्य कामला मे अनीसून के साथ पीसकर पिलाते हैं तथा उपयुक्त औषधि के साथ इसे सुजाक मे मिलाते है। अहितकर-वृक्क रोगो मे। निवारण—मधु। प्रतिनिधि—हल्दी और

ममीरी

'THALICTRUM FOLIOLOSUM.D C.



मुरमक्की। मात्रा १ से २ माशे तक।

प्रयोग—

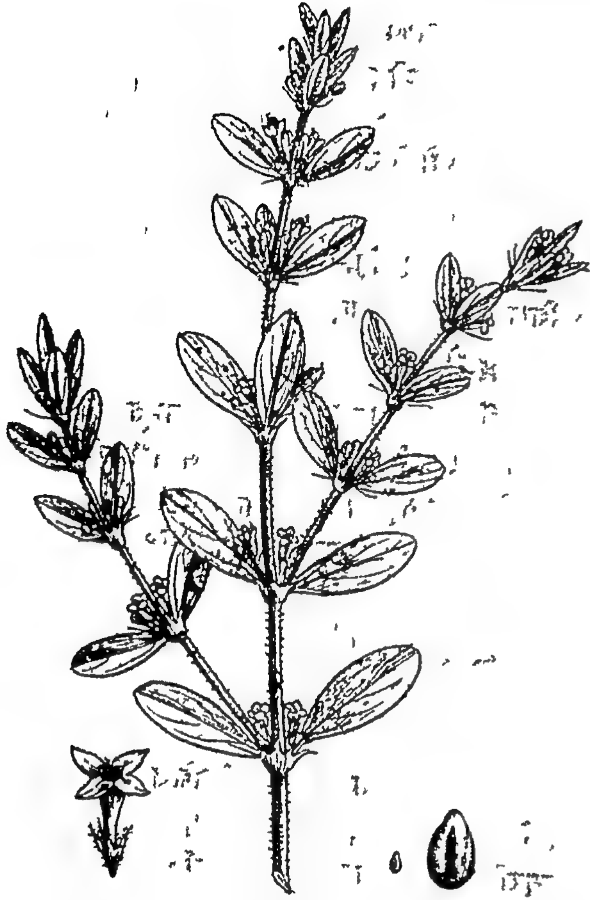
नेत्रशोधक सुर्मा—उत्तम जाति का सुर्मा, भीमसेनी कपूर, केशर, विना बिंधे हुए मोती और कल खपरिया, ये सब चीजे समान भाग लेकर इन सबके वजन के बराबर ममीरा मिलाकर सात दिन तक सफेद पुनर्नवा के रस मे खरल करके शीशी मे भर लेना चाहिए। आख के हर किस्म के रोग मे इस औषधि को आजने से बडा लाभ होता है।

सावधान—

मादा जाति अर्थात् ममीरी के पौधे ४ से लेकर ८ फीट ऊचे होते है। इसके फल फीके लाल रग के अथवा कुछ बैंगनी रङ्ग के होते है। इसकी जडो का रग भी पीला होता है। यह वनस्पति कुमाऊ मे पैदा होती है और वहा से बाहर निकल कर ममीरे के नाम से बिकती है मगर यह ख्याल रखना चाहिये कि ममीरे के गुण ममीरी के समान नही होते।

ममीरी देखिये पियारागा भाग ४ मे

मदनघंटी (Spermacoce Hispida Linn)



मदन घंटी
SPERMACOGY HISPIDA LINN.

यह हरितक्यादि वर्ग और मजीठ कुल (Rubiaceae) का एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसके क्षुप जमीन पर छत्ते की तरह फैलते हैं। इसकी डालिया १ से ३ फीट खुरदरी, चौधारी और कुछ लाल होती हे। इसके पत्ते आमने-सामने लगे रहते है। ये खुरदरे दलदार और गोलाई लिए हुए होते है। इसके फूल आधे से डेढ इच लम्बे, ¼ से ½ इच चौडे, धौले, नीले और बैंगनी रङ्ग के होते है। ये पत्र कोण मे गुच्छियो की मुवाफिक आये हुए होते हे। ये ३ लाइन मे २ इन्च लम्बे होते है। इनकी सपाटी पर बहुधा खुरदरे रोये होते हे। इसके फल खुरदरे होते हे और जब ये पक जाते हैं तब उनके दो पडदे खुल जाते है। यह वनस्पति बरसात के दिनो मे बहुत पैदा होती है।

व्यवहार्य अङ्ग—सर्वाङ्ग।

उत्पत्ति स्थान—

हिमालय की तराइयो मे शिमला से आसाम, दक्षिणी क्षेत्र मे लङ्का तक बहुत पायी जाती है। नदियो के रेतीले ढालो पर पहाडो मे और कीचड़ वाली जमीन मे भी चौमासे मे बहुत उगते है। ये समग्र भारत वर्ष मे होते है।—

(व० वर्णन)

नाम—

स०—मदनघटी। हि०—मदनघटी। ब०मदचबुन्तकडु। गु०—मधुर जडी, खर सर शख लो। कच्छी वनकजोभाड। सथाल-पिटवारा। ता०—नुवटेचुरी। ते०—मदन ग्रन्थी। ले०—स्परमेकोसी हिस्पिडा, बोरेरिया हिस्पिडा।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जडे पौष्टिक, उत्तेजक और रक्तशोधक होती है। बीज—शीतल और स्नेहन होते हैं। इसकी जडे अपने रक्त शोधक गुणो की वजह से सार्सापरिला या अनन्तमूल की जगह पर उपयोग मे ली जाती है। इसके बीज काफी की तरह उपयोग मे लिये जाते हैं। इस औषधि का पौधा दुग्धवर्धक होता है इसे घास की जगह भैंस को खिलाने से भैंस का दूध बढता है। घी मे इसका शाक बनाकर खिलाने से स्त्रियो के स्तनो मे भी दूध बढता है।

(व० च०)

मयूरशिखा नं. १ (Adiantum Caudatum Linn)

यह हसराज कुल (Polypodiaceae) की एक वनस्पति है जो प्राय सारे भारतवर्ष मे आर्द्र स्थानो मे जहा जल

बहता रहता है, मिलती है ।

यह पत्र उद्भिद है, पत्र–२ से ४ इच लम्बे और गुच्छ बद्ध होते है। पत्र दण्ड के दोनो ओर पत्ते होते हैं। पान पाच भागो मे विभक्त होते है। प्रत्येक अश का अगला भाग बडा होता है। किनारो से जडें निकलती हैं।

विशेष परिचय—एडिएण्टम–वाल सदृश शिखा वाले पर्ण। कौडेटम–काण्ड के अन्त मे पुच्छ सदृश मृदु, सकरा, उपागयुक्त। डोरे सदृश मूलो के गुच्छयुक्त क्षुद्र क्षुप। कोमल मध्य दण्ड युक्त छोटा क्षुप। मध्य दण्डके दोनो ओर अन्तर पर रचना। पर्ण दण्ड २ से ४ इन्च लम्बा। गुच्छेदार, पर्णयुक्त, तार जैसा फैला हुआ, तेजस्वी काले गहरे धूसर। पानमध्य दण्ड के दोनो ओर अन्तर पर ६ से १६, लम्बे, या रेखाकार रेखाकार लम्ब गोल, पक्षाकार, वहुधा तेजस्वी हरे। पक्षयुक्त, छोटे वृन्त युक्त। रचना चर्म सदृश। मध्यदण्ड और पर्ण दण्ड लम्बे कोमल वालो मे आच्छादित। वीज समूह पानो के अन्त मे। वीज जुलाई मे दिसम्वर तक। जनवरी मे क्षुप सूख जाते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भारत मे सर्वत्र, सीलोन, मलाया, पेनिनसुला, दक्षिण चीन, अफ्रीका का उष्ण प्रदेश, मलाया, जावा द्वीप। वगाल के प्राचीन देवालयो, शिवपुर, चन्दननगर आदि मे यह तालावो के किनारे पर और दीवारो पर एव तरी वाले स्थानो मे उत्पन्न होती ह।

नाम—

स. व.—मयूरशिखा। हिं—मोरशिखा। मा म. गु. क.—मोरशिखा। ले—एडिएण्टम कौडेटम।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके पत्र सर्दी और ज्वर रोग मे व्यवहृत होते है। इसके पत्ते पीसकर चर्म रोगो पर लगाने से चर्म रोग आराम हो जाते है। यह वहुमूत्र रोग में हितकारी है।

—भारतीय वनौ० वगला

मोरशिखा नं. २ (Celosia Cristata)

यह अपामार्गादिकुल [Amranthaceae] की एक क्षुप जाति की छोटी वनस्पति है। इसका क्षुप वर्षायु, खडा शाखायुक्त, सूक्ष्मरूयेंदार या चिकना क्षुप। ऊचाई १ से ४ फीट। पान–रेखाकार या वल्लमाकार, नोकदार, क्रमान्तर, ६ इन्च लम्बे और २ इन्च चौडे। पुष्पदण्ड नलिकाकार, कठोर, कभी-कभी शाखायुक्त मजरी तेजस्वी गुलावी लगभग १ से ४ इन्च लम्बी, प्रारम्भ मे नोकदार। पुष्प छोटे [¼ इच के], सफेद, पीले, गुलावी होते है वैसे वहुधा पीले रग के। वीज–छोटे, काले तेजस्वी। फूल और वीजकाल अगस्त से दिसम्वर तक। इसके कोमल पत्तो की तरकारी वना कर खायी जाती है।

उत्पत्ति स्थान–वगाल, विहार, काश्मीर, उत्तरी भारत, उत्तर प्रदेश के पूर्ण गिरी, नैनीताल, अल्मोडा की पर्वत शिलाओ पर अधिक और राजस्थान मे विशेषतौर से पैदा होती है।

नाम—

सं.–मयूरशिखा, केकिशिखा। हिं–मोरशिखा- मोर पखी, लालमुर्गा। व–लालमुर्गा, हलदीमुर्गा, गु–मोरशिखा। म-मयूरशिखा। काश्मीर–मावेल। कर्णा०–होरेयसूसुव। ते०–मयूरशिखियनेक्षुप विशेषमु। प०–मावल। फा०–असनाने, असलान। अ०—[Cock's Comb] कोकसकोम्व। ले०–सेवोसियाक्रिस्टेटा।

गुणधर्म और प्रयोग—

मोरशिखा–हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसार को दूर करने वाली है।

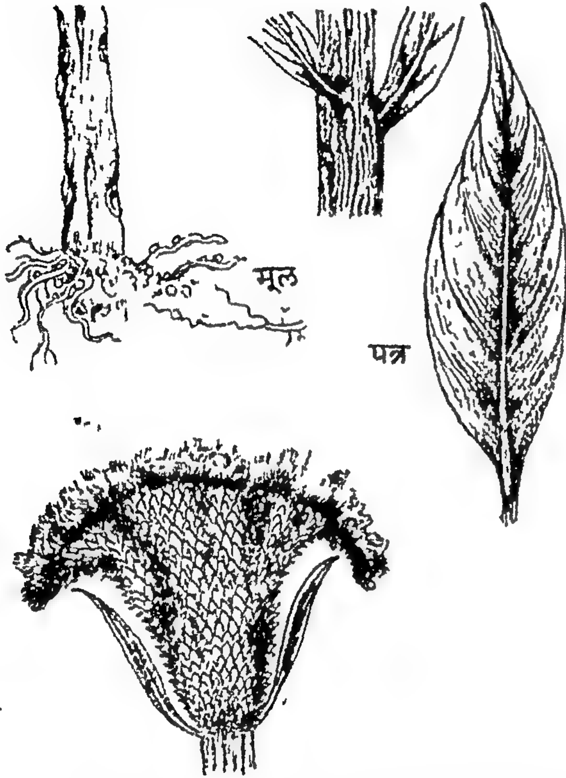
मोरशिखा–स्वादु, रसान्वित, मूत्रकृच्छ्रनाशक, वालग्रहादि दोष निवारक और वशीकरण कर्म मे प्रशसायोग्य है।

मोरशिखा–शीतल, कपैली, खट्टी, पचने मे भी खट्टी, हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसार निवारक है।

—नि० र०



लाल मुर्गा (मायूरशिखा)
CELOSIA CRISTATA LINN



मयूर शिखा सबधी जयकृष्ण इद्रजी ठाकुर के विचार Polycarpoca corymbosa नामक वनस्पति को अधिकतर सज्जन मयूर शिखा कहते है किन्तु उत्तर-भारत, मारवाड, मेवाड और कोकण मे हसराज की जाति की एक वनस्पति जिसको Asplcrieem radiatum कहते हैं वो मानी जाती है और वही मुझको खरी (सत्य) "मयूर शिखा" लगती है । नाथद्वारा मे इसके सैकडो छोड मैने देखे है और इकट्ठे भी किये थे । यह कुल Felices की वनस्पति है । देखिये—Dalget Bomby flora P 307 और गुजराती मे "छोगालो हसराज" भी कहते है । इसलिये मयर शिखा का लेटिन नाम Asplenium radiatum है और नोट करे कि Celosia cristata को कलगी मुर्गा अथवा लाल मुर्गा भी कहते हैं । —आदर्श निघण्टु

मयूर शिखा के सम्बन्ध मे कैयदेव निघण्टु का मतव्य—मयूर शिखा के क्षुद्र मृदु हरित क्षुप 'भारत मे सर्वत्र मिलते है । पत्र लम्बे और कटे हुये । क्षुप के शिखर पर एक गोल नील वर्ण मुण्डाकार पुष्प होता है जो मोर की शिखा के समान होता है और इसी कारण से इस क्षुप को मयूर शिखा कहा गया है। पुष्प शीत ग्राही और रक्त स्तम्भक होते हैं, जिन्हे अतिसार, प्रवाहिका, रक्त-प्रदरादि मे प्रयोग किया जाता है । बीज-पिच्छिल होने से कास, मूत्रकृच्छ्रादि मे काम आते है । —कै नि.

वक्तव्य--

मयूर शिखा के नाम से Adiantum caudatum Linn (Polypodiaceae) यह वनस्पति हसराज कुल की है और दूसरी Celosia Cristata (Amranthaceae) कुल की है जिसका क्षुप १ से ४ फीट ऊचा होता है । भा नि शा० नि०, रा०नि०, कैयदेव निघण्टु मे एक ही मयूरशिखा के गुण लिखे है । आदर्श निघण्टु मे आदरणीय जयकृष्ण इन्द्रजी का मतव्य Asplenium-Radiatum के वास्ते है । इस वनस्पति का चित्र भी पहिचान के लिये दिया जा रहा है । अन्वेषक वन्धु इन तीनो वनस्पतियो का परीक्षण कर परिणाम प्रकट करावें कि शास्त्रो मे लिखित गुण किसमे हैं और वास्तविक मयूर शिखा कौन सी है ?

डा आर एन चौपडा अपनी पुस्तक मे लिखते है कि एकटिनोप्टेरिस डिचोटोमा का प्रयोग रक्त शोधक और कृमिनाशक है । (२) एडिएण्टम कोडेटम' का गुण—चर्म रोग नाशक, मधुप्रमेह, कफ और ज्वर नाशक है । (३) 'सेलोसिया क्रिस्टेटा' का प्रभाव-ग्राही अतिसार नाशक और अधिक मासिक श्राव का रोधक है । शास्त्र मे लिखित अतिसार नाशक और अधिक रक्तस्राव स्तम्भक गुण सिलोसिया क्रिस्टेटा नाम की वनस्पति मे ही लिखित है। फिर भी परीक्षण कर परिणाम पर पहुचना चाहिये ।

योग—

मयूरशिखा मूल योग—मयूर शिखा की जड को



दूध मे पीसकर ऋतुमती स्त्री को पिलाने से वह गर्भ-धारण कर लेती है। भा भै र

मासिक धर्म की अधिकता—इसका शरवत पिलाने या जल मे घोट छानकर स्वरस मे मिश्री मिलाकर पिलाने से मासिक धर्म मे प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना वन्द हो जाता है।

पथरी पर—मोर शिखा की जडो को चावलो के धोवन के साथ पीने से और पथ्य मे सिर्फ दूध का आहार लेने से कुछ दिनो मे पथरी गल जाती है।

—गा० औ० र०

मयूर पंखी (Actinopteris dichotoma Bedd)

यह हसराजकुल (polypodiaceae) की एक वनस्पति है। इसके पत्र दण्ड सघन सन्निविष्ट और गुच्छबद्ध होते हे। पत्र लम्बे, दण्ड सलग्न पत्राश चौडा, वहुत भागों मे विभक्त होते है। कई एक तालपत्रो के समान विस्तृत। बीजवाही पत्रांग बीजहीन पत्रो की अपेक्षा वडे होते है। उपयोगी अग—पत्र।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्ष मे सर्वत्र। ३००० फीट से नीचे शुष्क और पर्वतमय स्थानो मे। फारस, कावुल, खान्दार लकाद्वीप, महावलेश्वर रोड के कातराजघाट, वम्बई के विक्टोरिया उद्यान, कुमायू और नीलगिरी मे विशेष रूप से होते है।

नाम—

स०—मयूर शिखा। हि०—मोरपंखी, मयूरपखी। वम्बई—मयूर शिखा। गु०—भूईतार। ले०—ऐक्टिनोप्टेरिस डिचोटोमा।

गुण, धर्म और प्रयोग—

यह कृमिनाशक और रक्तस्राव निवारक है।

—भा. व वङ्गला भा ३ से

मजनूँ (Salix Babylonica Linn)

यह गुडूच्यादि वर्ग और हंसराजादि कुल [poly-podiaceae) का एक मध्यम कद का वृक्ष होता है।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय और उत्तरी हिदुस्तान मे यह बहुत पैदा होता है।

नाम—

हि०—मजनू। प०—वेद, वेसू, विदाइ, कतीरा, लेला- मजनू, वाला इत्यादि। बङ्गला—तिस्सी। काश्मीर—गुहरु, विसा। अं०—weeping willow। ले०—सेलिक्स वेवीलोनिका।

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके पत्ते और इसकी छाल सकोचक होती है। पार्यायिक ज्वर और अविराम ज्वर मे इसका विशेष तौर से उपयोग होता है। इसकी छाल कृमिनाशक होती है।

—व च

इडियन मेटेरिया मेडिका मे इसमे विशेष तत्व (Salcine) और प्रभाव कृमिघ्न, कोथप्रशमन और वल्य लिखा है।

मरूल (Sansevieria Roxburghiana)

यह घणसपातादि कुल ['Haemodoraceae] का एक वडी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते १ से ४ फीट तक लम्बे होते है। इनका रग हरा होता हे और वीच मे सफेद धारिया होती है। इसकी जड वहुत मोटी होती है। ताजी जड मे सोठ के समान गन्ध आती हे। इसके पत्तो से रस्सिया वनाई जाती है।

इसके बीच तलवार के आकार की शाखा निकलती है जो पहले पीलापन लिये हरे रग की होती है। पत्तो के बीच से एक डंडी निकलती है जिस पर फूलों के गुच्छे लगते है। गुच्छे वाली डंडी की लम्बाई १ से २ फीट की

और गोलाई डेढ से दो इन्च की होती है। फूलो से आनन्द दायक सुगध आती है। फल—बहुत कम आता है और यह एक बडे और दो छोटे छिलके के भीतर गोलाकार तिहाई इन्च के घेरे का होता है। इसके अन्दर सफेद रग का एक बीज होता है जो सफेद रोवो से घिरा रहता है।

उपयोगी अङ्ग—मूल।

स्वर्गीय परम श्रद्धेय लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी विशेषज्ञ ने सदिग्ध बूटी चित्रावली के पृष्ठ २१ पर इसको मूर्वा नं० ५ लिखा है और चित्र भी दिया है तथा इसीको श्रेष्ठ गुणकारी माना है।

उत्पत्ति स्थान—

कोरोमण्डल के किनारे, पश्चिमी प्रायद्वीप और सिलोन के जंगलो मे पाया जाता है तथा यह वहा रोपन भी किया जाता है। डिडिगल प्रात के वसिनन्दे पहाडो पर और कम्बकम मे इसकी खेती बाहुल्यता से की जाती है।

नाम—

सं०—मूर्वा। हिं०—मुरहरी, मरुल, मूर्वा। बबई—घणसपात, मूर्वा, मुर्गली। च०-गोराचक, मूर्गावी, मुरगनी। गु०—मुरबेल। दक्षिणी—मुरगली। म०—घणसपात, नागफण। क०—मारुगा। मल०—कटुकापेल। कन्नड—हेगुरुठिके। ता०—मरुल, कालाग। ते०—चागा। अ०—बोस्ट्रिग हेम्प [Boustring hemp] ले०—सेन्से वेरिया राक्स वर्घियाना।

गुण धर्म—

पुरानी और हठीली खासी मे इसकी जड के रस को चाय के छोटे चम्मच की मात्रा मे थोडी शहद मिलाकर दिन मे दो बार देने से बहुत लाभ होता है। बच्चो के गले मे जमे हुए कफ को छुडाने के लिये भी इसके पत्तो का रस दिया जाता है।

के. एम. नादकर्णी महोदय ने इण्डियन मेटेरिया मेडिका मे इसको दस्तावर, भारी, मीठे, बलकारी, स्वाद तथा गन्ध मे तीक्ष्ण, हृदय को हितकारी, क्षय, रुधिर की उष्णता, सुजाक, उन्मत्तता, तृष्णा, हृदयरोग, खुजली, कोढ, ज्वर, आमवात और मास वृद्धि का नाशक है। यह क्षय रोग और पुरानी खासी मे बहुत लाभदायक है। इसके रस को आधे छोटे चम्मच की मात्रा में बालकों को देने से उनके गले मे जमा हुआ कफ सहज मे निकल जाता है।

—सं० बू० चि०

मधुक (Cyanometra Ramiflora Linn)

यह शिम्बी कुल (Leguminosae) का एक छोटी जाति का झाडीनुमा वृक्ष होता है जो समुद्र के किनारो पर पैदा होता है।

उत्पत्ति स्थान—दक्षिण भारत के पर्वतो मे, सुन्दर बन, आडमन, सिलोन में पाया जाता हे और बगीचो मे कृषि की जाती है।

नाम—

स०—मधुक। हिं०—मधुक। बं०—शिग्र। मल०—इरीया। ता०—इरुदवू। ले०—सिनोमित्रा-रमिफ्लोरा।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जड़ विरेचक होती है। इसके पत्तो को गाय के दूध मे उबाल कर उनका लोशन बनाकर उसमे शहद मिलाकर गीली खुजली, गलित कुष्ठ और दसरे चर्म रोगो पर लगाया जाता है। इसके बीजो से तैयार किया हुआ तेल भी सब प्रकार के चर्म रोगो मे लाभदायक होता है।

—ब० च०

मरचुला (Murraya Paniculata)

य सदापादि कुल (Rutaceae) का एक हमेशा हरा रहने वाला झाडीनुमा पौधा होता है। इसकी छाल



मुलायम चिकनी और कुछ पीलापन लिये मफेद होती है इसके फूल सफेद रग के अत्यन्त खुशबूदार होते हैं। यह एक सुगन्धित फूलो वाली वनस्पति है।

उत्पत्ति स्थान—

यह पाच हजार फीट की ऊचाई पर आसाम, पेनिनसुला की सतपुडा पर्वत श्रेणियो, पश्चिमी घाट और जमुना के उद्गम से हिमालय से वाहर पर्वत श्रेणियो मे पाया जाता है।

नाम—

हि०—मरचुला। व०—कामिनी। वम्बई—चुलाजुति। कन्नड—पाडरी। ना०—मिमाठक कोजी। ते०—नागा गोलुगा। कुमाऊ—मरचोव। म०—कुन्नि, मरचुला जुति। नेपाल—सिमाली। उत्तरपश्चिमी प्रदेश—मरचूला। उडिया—बीरी जुगी। ले०—मुरैया पेनिक्यूलेटा।

गुणधर्म व प्रयोग—

शरीर के किसी भी स्थान के दर्द को दूर करने के लिए इसकी जड की छाल को पिलाते हैं और दर्द के स्थान पर इसकी मालिश करते हैं। इसके पत्तो का चूर्ण ताजे घावो पर लगाने के लिये काम मे लिया जाता है। इसके पत्तोका काढा जलोदर रोग मे पिलाने के काम मे लिया जाता है।

मरेडी (Erigeron Asteroides Roxb.)

यह भृङ्गराजादि कुल (Compositae) की एक वर्ष जीवी क्षुप जाति की वनस्पति होती है। इसका पौधा वालिस्त भर लम्वा और रुयेंदार होता है। इसके फूल पीले रग के होते है जो जाडे के दिनो मे आते हैं। औषधि प्रयोग मे इसका पचाग काम मे आता है।

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष मे तथा सिलोन मे पैदा होती है।

नाम--

हि०—मरेडी, मारेडी। गु०—मारेडी। व०—मारेडी, सोनसली। ले०—इरिगेरोन एस्ट्राइडस।

गुणधर्म व प्रयोग

इसका पौधा मूत्रल और उत्तेजक होता है। ज्वर की हालत मे पेशाव कराने के लिये अथवा रोगी को उत्तेजना देने के वास्ते इसका व्यवहार कराया जाता है।

मरोडफली (Helicteris Isora Linn)

यह मुचकदादि कुल (Sterculiaceae) का एक छोटी जाति का झाडीनुमावृक्ष ८-९ फीट ऊचा झोपडाकार पत्तो करके सघन किंचित अनीदार होता है। इसके पत्ते गोलाकार २ से ४ इच तक लम्वे और २ से ३ इच तक चौडे होते हैं। चैत्र से वर्षा कल के शेष तक यह वृक्ष फूलता फलता है। इसके फूल लाल रग के होते हैं। इसकी फलिया एक दो इच लम्वी रस्सी की तरह वल खाई हुई होती है। इन फलियो के गुच्छे लगते हैं। हरी हालत मे ये हरी और सूखने पर काली होजाती है। फलिया शीत काल मे पक जाती हैं।

उपयुक्त अग—फली।

उत्पत्ति स्थान—समस्त मध्य और पश्चिम भारतवर्ष, जम्वू तक के सूखे (निरस) जगलो मे, विहार, मेवाड तथा अवध के जगलो मे एव पश्चिमी प्राय द्वीप मे होते हैं। सिवालिक पहाड की घाटी पर यह स्वयं उत्पन्न होती है और सीलोन के नीचे के प्रान्त मे भी यह पायी जाती है।

नाम—

स.—आवर्त्तकी, आवर्त्तनी, आवर्त्त फला, रङ्गलता। हिं—मरोड फली, मरोर फली, मुर्रा, ऐंठी जोडठो। वं—आन्तमोरा। प—मरोड फली। मा—मरोडा फली। गु—मड्डासिगी। मल—केवणीवाशेंगा। म—मुरडशेंग। तै—कवंची शामली गुवदर्रा। क—कवगी। द्रा—वलुवेरी। सिंध—वुरकटी। दक्खनी—वामिनी। मु—कउन। गौंडी—ऐंता। ता—विरकई। ले—हेलिक्टेरस



आइसोरा।

रासायनिक संगठन–

फली मे थोडी मात्रा मे एक स्निग्ध पदार्थ होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

ग्राही, पौष्टिक, उपलेपक और ज्वरघ्न। वातकारक, कास, श्वास, नेत्र, शूल, व्रण, कोढ, प्रमेह, कृमि और विष नाशक है।

इसके मूल की छाल का काढा मिश्री के साथ प्रमेह रोगी को पिलाते है।

प्रमेह और गरमी की व्याधि से ज्वर आता हो उसके लिये इसकी मूल की छाल का काढा थोडा भुना सुहागा मिलाकर पिलाने से लाभ हो जाता है।

मरोडफली का चूर्ण मिश्री के साथ अतिसार और सग्रहणी मे दिया जाता है।

पेचिस मे मरोड़फली का चूर्ण व सोठ का चूर्ण मिला नमक का अनुपान देकर देते हैं। बच्चो के दस्तो मे मरोडफली का चूर्ण दही मे देते हैं। मरोड फली का चूर्ण बहुत से पौष्टिक पाको मे काम मे लिया जाता है।

प्रयोग–

अतिसार में–अतीस या इन्द्रजव के साथ अथवा दोनो के साथ इसके चूर्ण का सेवन करें।

पेचिस मे–कफ और रुधिर की दस्त पर इसकी १॥ तोले की मात्रा जल मे भिगो मल छानकर पिलावे।

कर्ण स्राव पर–कान बहने पर इसको एरण्ड तेल के साथ तैल साधितकर कान मे डालना चाहिये।

—स० वू० चि०

बालातिसार पर–इसकी फलिया शान्तिदायक, सकोचक, आतो के दर्द को रोकने वाली और बच्चो के कोष्ठ वायु को नष्ट करने वाली होती हे।

यूनानी मतानुसार––

पहले दर्जे मे गरम और खुश्क, शोथ विलयन, तारल्य जनन, दोपो को स्वच्छताकारक, पिच्छिल, कफ को अति सार द्वारा शोधन करने वाली, लेखन, सशमन (अवसादक) और प्रवाहिकाहर है।

विलयन और तारल्यजनन होने के कारण यह श्लेष्म विकृति को दूर करती और उदर स्फीति मे गुणकारी है। अरतिकर–पुस्त्वोपघाति है। प्रतिनिधि–एलुवा। मात्रा—५ माशे से ७ माशे तक। जो दिन मे ३ या ४ वक्त दी जाती है।

—यू० द्र० वि०

मसूर (Lens esculenta Moench)

यह शाक वर्ग, शिम्बीकुल (Leguminosae) का द्विदल धान्य है जो चपटा, ऊपर से मटमैला और भीतर लाल होता है। इसकी दाल पका कर खाई जाती है। इस का झाड हाथ डेढ हाथ ऊचा होता हे। इसके तने का बाहरी रग काला होता हे किन्तु शाखो का रग ताम्रवर्ण का होता है। मसूर की दाल प्राय सारे भारतवर्ष मे खाने के काम मे ली जाती हे। इसको सब कोई जानते है इसलिये विशेष विवेचन की आवश्यकता नही है।

व्यवहार्य अङ्ग—बीज।

उत्पत्ति स्थान–समस्त भारतवर्ष मे कृषि की जाती है।

नाम–

स०-मसूर, मङ्गल्यक,मङ्गल्या। हिं-मसूर। ब –मसूरी मसूर दाल। म०–मसूरी। प०–मसूर। कर्णाटक–चणर्ग। ता०–मिस्सूर पर पर। तै०–मिसूर पप्पू। अ०–अदस। फा०–नशिक। अ०–lentle लेंटिन। ले०—लेंस एस्क्युलेंटा मोइन्च।

रासायनिक संगठन–

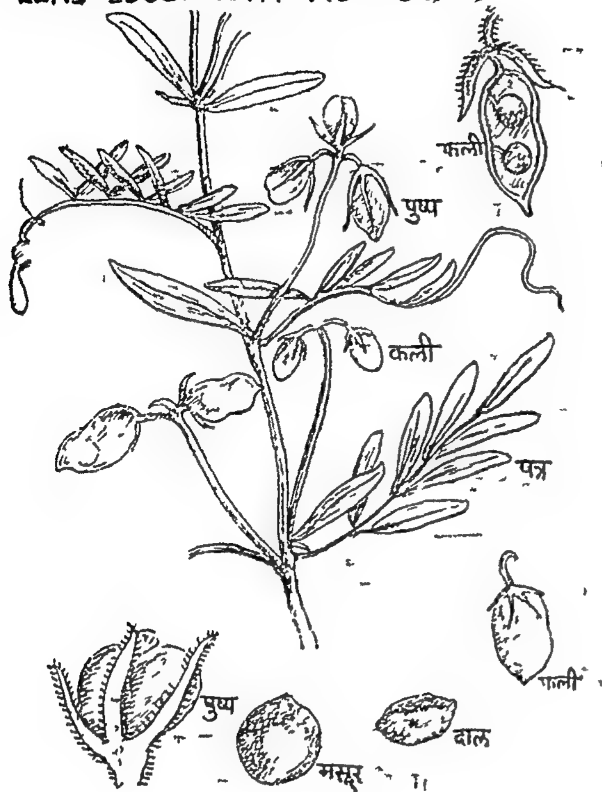
इसमे जल, माँसवर्धक और पिष्ट द्रव्य, तेल, ततु, राख और भाखराम्ल ये तत्व होते है।

गुणधर्म व प्रयोग–

रस-मधुर। वीर्य-शीत। विपाक-मधुर। दोपघ्नता-

मसूर

LENS ESCULENTA MOENCH,



कफपित्त है।

मसूर—लघु, शीत, मधुर, कषाय, रूक्ष, विपाक मे मधुर, सग्राही है। मसूर कफ पित्त मे उपयोगी है। (यूप तथा वाह्योपचार मे यह काम मे आती है।

—भा० प्र० नि०।

मसूर—रुखी, विशोषक, मधुर तथा शूल, गुल्म और सग्रहणी रोग को उत्पन्न करने वाली है, वातरोगो को वढाने वाली तथा रक्त पित्त और मूत्रकृच्छ्र रोग को हरने वाली है। —हा० स०

मसूर—हलकी, अत्यन्त रुखी, विशद, नेत्रो को हितकारी, ग्रहनाशक, श्लेष्म पित्त नाशक, रुचिकारक, वातरोग कारक, विष्टम्भ जनक, मलरोधक, मूत्रकृच्छ्र, पथरी और सर्व प्रकार के पित्त विकारो को दूर करती है, हृदय को हितकारी और मधुर हे। —शा० नि०

मसूर का लेप—वर्ण को सुन्दर करने वाला और त्वचा के रोगो को हरने वाला है। मसूर—रुखी, मलवर्धक, शीतल, वातकारक, किंचित आध्मानकारक, रक्तपित्त और कफनाशक, हलकी, कषैली, मधुर, मेद नाशक है। इसके पत्तो का शाक कषैला, हलका और कडवा है।

—शा० नि०

डाक्टरी मतानुसार——

मसूर मे गन्धक नही है इसलिये अन्य द्विदलो के समान यह पेट मे वायु नही करता है। अर्थात् गैस होता हो उनके लिये यह उत्तम है। भावमिश्र जी ने ऐसा होते हुए इसको वातल कहा है। यह भूल है। मसूर मे नाइट्रोजन (प्रोटीन) का प्रमाण वहुत है और यह ऊची जात का है। मसूर सग्रहणी, अतिसार, गैस मे उत्तम धान्य है। मसूर रक्तवर्धक भी हे।

मसूर—चणा और उडद के वाद पोपण की दृष्टि से दूसरे नम्वर की है। इसका नेत्रजन ऊची जाति का सुपाच्य और पौष्टिक है। इसमे वी. ग्रुप विटामिन्स वहुत सारे प्रमाण मे हे। थियेमिन ०-२६, रिवोफलेवीन ०-२१, निकोटिनिक एसिड १-७, चोलाइन २२३, फोलिक एसिड १०६, नीसिटोल १६०, पेन्टोथिथिनिक एसिड १-६, आयोडिन १३-२, पाइरीडोक्सीन ०४० (प्रत्येक १०० ग्राम मे इतने मिलीग्राम्स है) इसके अलावा अन्य विटामिनो केरोटीन १-६, एस्कोर्विक एसिड ४-२, विटामिन 'के' ०-२५, टोकोफेरोल २० मिलिग्राम प्रत्येक १०० ग्राम मे हैं। फूलते-फलते समय विटामिनो का प्रमाण वढता है। नीचे के एमिनो एसिडो मसूर के नेत्रजन मे है आर्जीनीन,हिस्टिडिन, मेथियोनीन, लाइसीन, नेलिन, फेनिलेलि नाइन, ट्रीप्टोफन, ल्युसाइन, आइसोल्युसाइत, थ्रेओनाइन।

नीचे के खनिज पदार्थ—

केल्सियम ३८.६, फास्फोरस २४२ ०, मेग्नेसियम ७६ ५, सल्फर १२२-०, क्लोराइन ६३ ६ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम मे है।

आयोडीन, ब्रोमीन, मेगेनीज, अ‍ेल्यूमिनियम्, कापर, जिक, आर्सेनिक भी है। फूलते-फलते समय लोहे का प्रमाण ज्यादा वढता है। (नि० आदर्श



यूनानी मतानुसार—

प्रकृति-समता के साथ उष्ण और दूसरे दर्जे मे खुश्क है। समूचे मसूर के काढे से गल शोथ और कठ शोथ मे गण्डूप कराते है। यह सूजन उतारती और वेदना शमन करती है। चेहरे का रङ्ग निखारने के लिए इसका आटा उबटन मे डालते है। मुख पाक और कठ शोथ मे यह विशेष गुणकारी है। अहितकर अर्श के लिये। निवारण बादाम का तेल, घी और पकाना। प्रतिनिधि उडद-और बाकला। (यू० द० वि०)

प्रयोग—

रक्तार्श मे—मसूर की दाल खट्टी छाछ के साथ खाने के लिये देवे।

संग्रहणी मे—सोठ, बिले का घर दोनो को समान लेकर मसूर के यूप के साथ लेने से सग्रहणी मिटती है। (शार्ङ्गधर)

वमन मे—मसूर का आटा, अनारका रस और मधु समान भाग मे लेकर थोडा पानी या छाछ मिलाकर लेने से त्रिदोपज उल्टी मिटती है।

अतिसार मे—मसूर १०० पल का १ द्रोण पानी मे क्वाथ करे। चतुर्थांश रहने पर ८ पल बेल का चूर्ण डाल-कर १ प्रस्थ घी तैयार करे। इस घी को खाने से सर्व अति-मार मिटते है। ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका भी मिटती है। मात्रा—१ तोला।

मसूर के विशिष्ट योग—

मसूर घृतम्—सोठ, जीरा और बेलगिरी प्रत्येक ३। तोले लेकर सबको एकत्र पीसले। क्वाथ २-सेर मसूर को १६ सेर पानी मे पकाकर ४ सेर शेप रहने पर छानले।

१ सेर घृत मे उपरोक्त क्वाथ और कल्क मिलाकर मदाग्नि पर पकावे जब क्वाथ जल जाय तो घी को छानले। यह घी सग्रहणी को नष्ट करता है।

—भा० भै० र०

मसूरादि घृतम्—४ सेर मसूर को ३२ सेर पानी मे पकाकर ८ सेर शेप रखे और फिर उसे छानकर उसमे २ सेर (१६० तोले) घी तथा १०-१० तोले पीपल और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर पुन पकावे। जब पानी जल जाय तो घी को छानले। एव ठडा होने पर उसमे (½ सेर) शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

यह घृत समस्त प्रकार के तिमिर रोगो को नष्ट करता है।

मलाड़ी (Canngeum odoratum Hook)

यह सीताफलादि कुल (Anaceae) का एक ऊची जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम होती है। इसके पत्ते ५॥ इच लम्बे और २ इच चौड़े होते है। इसके फूल पीले रङ्ग के होते है। इस वनस्पति की भारत वर्ष मे खेती की जाती है।

नाम—

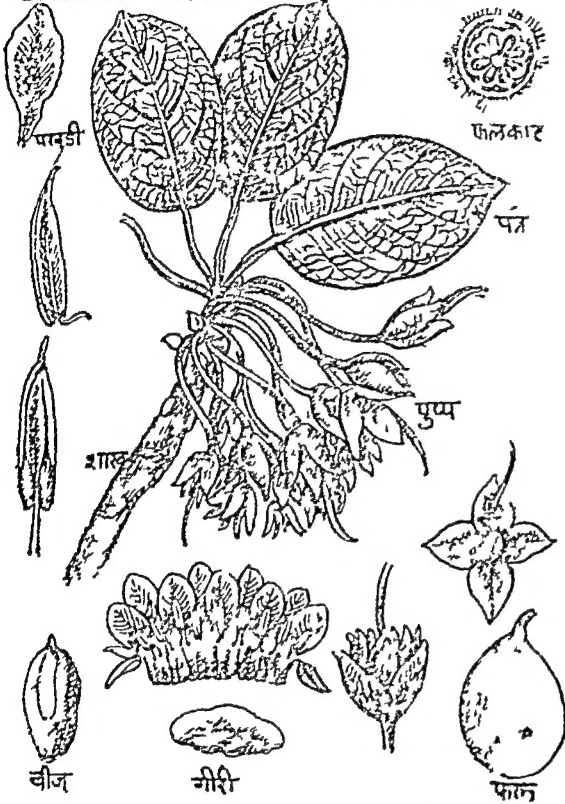
हि०—मलाडी। ता० मलाडी, करुमुगाई, सादी। ते०—चेट्टु समपागी। बरमी—कदातम्यन। ले०—कैनेन्जि-यम ओडोरेटम।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके फूलो से एक प्रकार का खुशबूदार तेल तैयार किया जाता है। इसका यह तेल मस्तक शूल, नेत्राभिष्यन्द और सधिवात के ऊपर लगाने के लिये काम मे लिया जाता है। (व० च०)

महुआ (Bassia Lat.folia Roxsb)

यह फलवर्ग और मधुकादि कुल [Sapotaceae] का महुआ का वृक्ष भारतवर्ष भर मे प्रसिद्ध है, कोई-कोई किसान अपने खेतो के आस पास या बीच मे, खलियानो मे या सडको के किनारे-किनारे लगाते है। बाकायदे वृक्ष



के तने की जडो मे चारो तरफ गड्ढा खोदकर पानी दिया जाता है। इस प्रकार सिंचित महुआ के पुष्प-फल आदि एव पत्ते बडे-बडे होते हैं। पर्वतीय स्थानो मे जायमान महुआ के वृक्ष मे भी पुष्प फल उत्तम प्रकार के होते हैं। पर्वतो मे लगभग तीन हजार फीट से अधिक ऊचाई पर महुआ का वृक्ष नही पाया जाता। विना सिंचित महुआ के पुष्प फल वहुत ही छोटे-छोटे होते है। महुआ पुष्पके पीली झाई लिये हुये श्वेत वर्ण के रसदार, ठोस और वीच मे खोखलापन लिये होते है। इस खोखले भाग मे जीरे के समान छोटे-छोटे पुष्प पराग होते हैं। इन पुष्पो मे मीठी-मीठी, भीनी-भीनी सी गध आती रहती है। खूब रसदार होने पर पुष्प नीचे गिर जाते हैं। कृषक वालायें इन पुष्पो को एक टोकरी मे एकत्र करती हैं और खलियान या आगन मे सुखाती है। सूखने पर ये लाल वर्ण के मुनक्का के समान हो जाते है। गरीब ग्रामीण जनता अपने दुर्दिनो मे इन महुआ पुष्पो से ही जीवन रक्षा कर लेती है।

इनसे शराब भी बनती है। पर्वतीय स्थानो मे जहा जहा जगल के जगल महुआ के होते है। सरकार ठेकेदारो के हाथ वेच देती है। ठेकेदार इन महुआ पुष्पो को सुखाकर वडे-वडे शहरो मे जैसे उत्तर प्रदेश का प्रमुख शहर कानपुर आदि स्थानो को निर्यात करते है।

कानपुर मे महुआ की शराब काफी तादाद मे बनती है। महुआ के फल डेढ दो इच लम्बे और एक इन्च मोटे होते है। इनकी आकृति अण्डे के समान होती है। फल पकने पर मीठा हो जाता है। गरीब लोग इन फलो को भी खाते है। फल के अन्दर से लाल आवरण युक्त १ या २ बीज निकलते है। इन बीजो की मीगी के कोडआ, ठोइया, डोलमा आदि अनेक नाम है। मालवा, मेवाड, नीमाड आदि गुजरात पार्श्ववर्ती स्थानो मे इसे गुल्ली कहा जाता है। इस मीगी से तेल निकाला जाता है जिसको डोरिया, टोईया या डोलमे का तेल कहा जाता है। बीजो का तेल जल्दी खट्टा हो जाता है। इस हेतु से उसका उपयोग औषध रूप से नही होता। इस तेल का औद्योगिक महत्व बहुत ही अधिक है। कपडे धोने के साबुन बनाने मे महुआ का तेल एक प्रमुख उत्पादन है। तेल निकाल लेने के बाद महुआ की खली बच जाती है। इस खली का उपयोग किसान लोग गाय भैंसो को खिलाने मे करते हैं। महुआ की खली खिलाने से गाय भैंस के दूध की मात्रा डेढ़ दो गुनी वढ जाती है।

उत्पत्ति स्थान—मध्यप्रदेश, पश्चिम बगाल से पश्चिम घाट तक, राजस्थान, विहार, गुजरात, दक्षिण आदि अनेक प्रदेशो मे पाया जाता है।

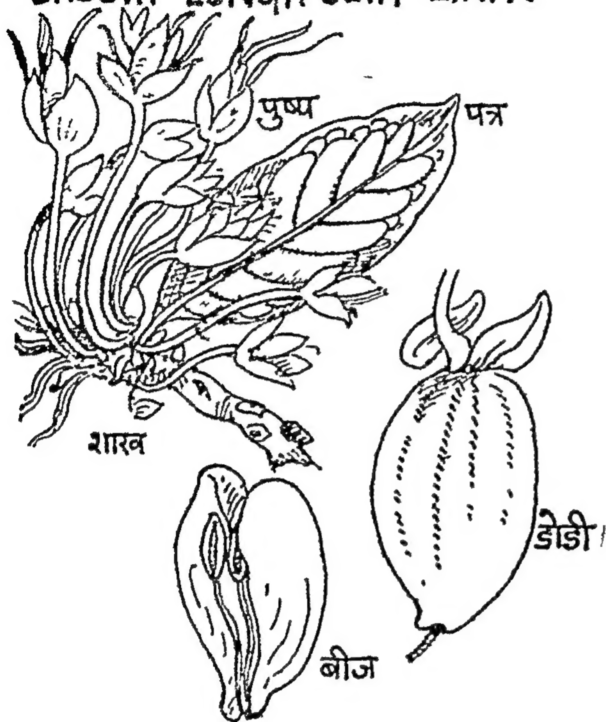
महुआ की दो किस्म हैं। १ [Bassia Latifolia] चौडे पानवाला २ [Bassia Longifolia] लम्बे पान वाला।

सक्षिप्त विवरण—पहली जाति के वृक्ष की ऊचाई लग भग ५० फीट। शाखा के अन्त मे पानो का गुच्छा। नया भाग ऊन सदृश रुयेदार। पान की लम्बाई ५ से ६ इच, चौडाई ३॥ से ३॥ इच। पुष्प मासल, मलाई के सदृश रग के। (पीताभ सफेद), पुकेसर सामान्यत २४ से २६



दूध महुआ

BASSIA LONGIFOLIA LINN.



पराग कोष पीछे की ओर रुयेदार, क्रमश तीन प्रकार के, नीचे चौडा, ऊपर तग। फल १ से २ इच लम्बे, हरी आभा वाले, अण्डाकार, १ से ४ वीज युक्त। फूल जनवरी से अप्रैल तक।

दूसरी जाति के वृक्ष विशेषत दक्षिण (मद्रास, कर्णाटक, मैसूर, सीलोन आदि) मे होते हैं। ऊचाई ५० फीट सव नया भाग रुयेदार। पान चार से पाच इच लम्बे, १॥ इन्च चौडे। फूल शाखा के अन्त मे पानो के नीचे। पुकेसर १६ मे ३०, दो पक्ति मे, ३ दात वाले आधार स्थान पर हृद्याकृति। फल १ से १॥ इन्च लम्बे, पकने पर पीले, १ से २ वीज युक्त (क्वचित ३–४)। पुष्प नवम्बर से जनवरी तक। छाल–ग्राही। छाल का दूध ग्राही।

औषधि रूप से फूलो का अधिक उपयोग होता है। फलो का स्वाद मधुर है, फल पकने पर गिर जाते है फल खाने के काम आते हे तथा औषध रूप से भी उपयोग होता है। इसके फलो का तेल–जलाने, नकली, घी बनाने और साबुन आदि वनाने मे व्यवहृत होता हे।

उपयुक्त अङ्ग—पुष्प, तेल, छाल, मधुकसार।

नाम—

स.–मधूक, गुड पुष्प, माधव, मधुस्रव। हि–महुआ, महुवा। व–महुल, मोआ। ता–मधुकम। ते–इप्पचेट्ट। गु–महुडी। म–मोहडा। क–महुइप्पे। फा,–चका। अं-इलूपाट्री Elloopatree। ले–वेसिया, लाटिफोलिया, वेसिया लोगि फोलिया। फल को वनारस मे—कोइन्दा, फतहपुर जिला उत्तर–प्रदेश मे–गुल्हु। गु–डोलिया। म–टोलवी। राजस्थान मे–डोलमा।

रासायनिक संगठन—

वीज मे एक वसामय अनुत्पत्त तेल ५० से ५५%; फूल मे काफी प्रमाण मे शर्करा, अभिषवजनक द्रव्य (Enzymes) और किण्व (Yeast) होते हे। वायु शुष्क फूल मे ईक्षु शर्करा २ २%, इन्वर्ट शर्करा ५२ ६, अन्यान्य जल विशेष पदार्थ ७ २%, काष्ठोज २ ४%, मासवर्धक द्रव्य (Albuminoids) २ २%, राख ४ ८% प्रभृति द्रव्य होते हैं। राख मे सिलिसिक अम्ल, भास्वराम्ल, सुधा, लोह, पोटास और अशत सोडा प्रभृति द्रव्य होते है।

विशेष विवरण—फूलो मे ६०% एक प्रकार की शर्करा होती है, उसकी शराव जल्दी होती है। फूलो से कुछ अश मे सर्वदा शराव वन जाती है। इस हेतु से पुष्प खाने पर कुछ नशा आता हे।

निम्न कोष्ठ मे शराव कितनी और जल कितना तथा उसे कितने प्रतिशत की शराव कहते हे, यह दर्शाया है—

सज्ञा	शराव	जल	उपयुक्त नाम
९९%	९९	१	पवित्र
९०%	९०	१०	औषधि के लिये शुद्ध
७०%	१००	३१	
६०%	१००	५३½	
५०%	५०	५०	आवकारी विभाग का निर्णीत
४५%	१००	१०५½	
२०%	१००	३५५	